080584

080584

Acc. No
RT-0508

क

सारिका

वर्ष:२०: अंक:२७५

क समस्या पर

• विशिष्ट रचनाएं

• प्रेमकाल नहीं रहा है!

कहानियां तथा अन्य सामग्री

080584

080584

टाइम्स ऑफ इंडिया
२·०० रुपया
प्रकाशन

ज़्यादा किफ़ायत और सफ़ेदी चाहिए
तो साबुनों को भूल जाइए, लाइए

सुपर ७७७ डिटर्जेण्ट बार

- साबुन से १½ गुना ज़्यादा शक्तिशाली, ज़्यादा किफ़ायती!
- ऑप्टिकल व्हाइटनर युक्त!!

दुनिया की नं. १
डिटर्जेण्ट
धुलाई की बार
सुपर ७७७

मैल की शामत,
सफ़ेदी की
ताक़त

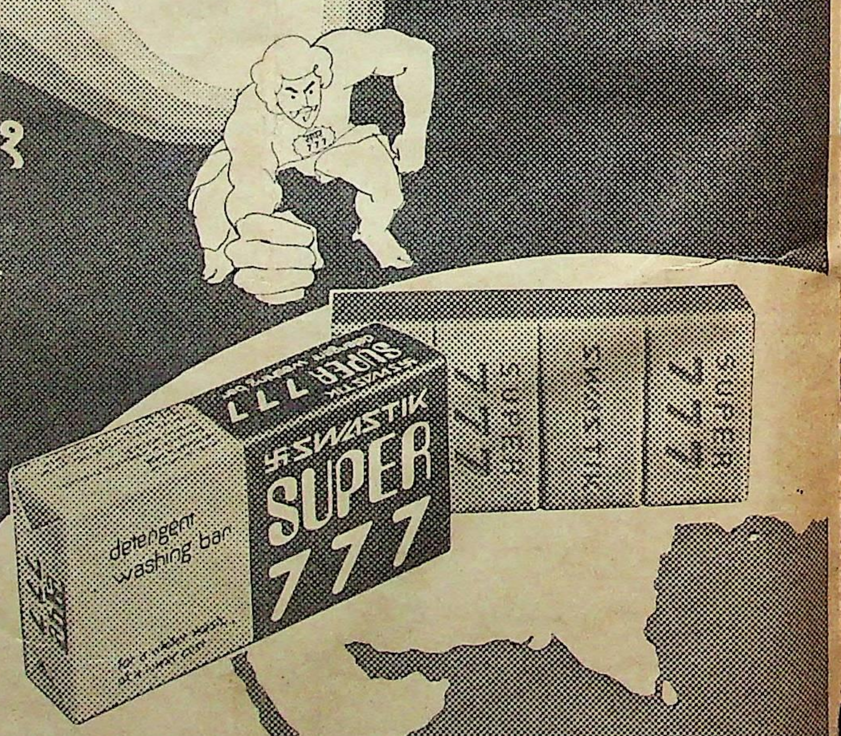
SWASTIK
SUPER
777
detergent
washing bar

Shilpi DM 13A/80 Hin

राध कि लब

कि रें

H.L.
SARIKA
1980
G.K.V.
Lib
HARDWAR

केवल 10 र

आपको राध वर्चित पुस्तकों
पर भी एक

पुस्तकों के व

50 रुपये क

हर महीने अथवा दूसरे महीने पुस्तकें मँगवाने का आप पर कोई बन्धन नहीं होगा।

नयी पुस्तकों की सूचना आपको लगातार मिलती रहेगी ताकि पुस्तकों का चुनाव करने में आपको सुविधा हो।

विस्तृत जानकारी के लिए आज ही लिखें और सदस्य बनें।

एक विशिष्ट साहित्यिक पत्रिका

अभिरुचि

लेखक और पाठक के बीच

- संवाद की त्रैमासिकी

संपादक : डा० विद्यानिवास मिश्र

खेमों तथा वादों से मुक्त रहकर पठनीय श्रेष्ठ सर्जनात्मक साहित्य के प्रति लेखक-पाठक की साझेदारी की ईमानदार कोशिश।

इसके हर अंक में आप पढ़ेंगे :

- नये प्रकाशनों के विषय में आस्वादपरक आलोचना
- रचनाकारों के साथ अनौपचारिक बातचीत
- महत्वपूर्ण प्रकाश्यमान रचना से कोई अंश
- पाठक समस्या पर लेख
- लेखक शिविरों/लेखक सम्मेलनों पर रपट
- विश्व साहित्य की उल्लेखनीय नयी कृति का प्रभावांकन
- अनेक अन्य स्तम्भ

एक प्रति 4 रुपये वार्षिक मूल्य 15 रुपये
(रजिस्टर्ड डाक से सवा दो रुपये प्रति अंक अतिरिक्त)

कृपया बैंक ड्राफ्ट, पोस्टल आर्डर या मनीआर्डर राधाकृष्ण प्रकाशन के नाम से ही भेजें। आज ही ग्राहक बनें।

पहला अंक जनवरी 1981 में प्रकाश्य

न्दी के पाँच प्रतिष्ठित साहित्यकारों ने पिछले 10 वर्षों
हिन्दी में प्रकाशित सार्थक पुस्तकों का चयन किया है।
ाधाकृष्ण प्रकाशन के संस्थापक श्री ओम्प्रकाश की स्मृति
इन पुस्तकों की एक प्रदर्शनी भी दिल्ली में आयोजित की
यी। इस अवसर पर प्रकाशित सूचीपत्र निःशुल्क मंगवायें।

अच्छी पुस्तकों के लिए

राधाकृष्ण प्रकाशन

2 अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

नियमित रूप से थोड़ी-थोड़ी बचत कीजिये—और तब वह हर चीज़ आपकी होगी, जिसका आप हमेशा सपना देखते हैं।

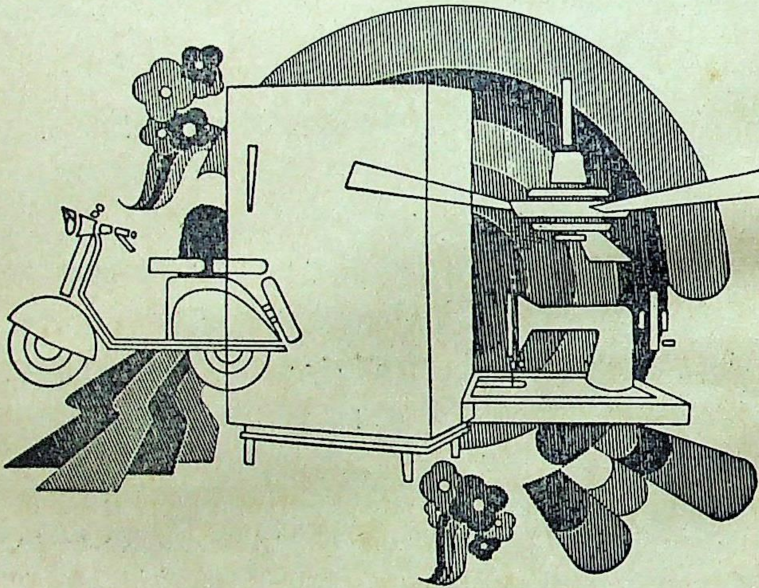

इलाहाबाद बैंक की रेकरिंग डिपॉजिट योजना आपके सपनों को सच करती है।

इस योजना की सबसे बड़ी खूबी यह है कि इसमें आप खुद तय करते हैं कि हर माह आपको कितना जमा करना है। कम से कम १० रुपये से लेकर अधिक से अधिक १,००० रुपये तक— १ से १० वर्ष तक की अवधि के लिये।

इस प्रकार आप बगैर किसी परेशानी के आसानी से बचत कर सकते हैं। और अन्त में जो आपको वापस मिलेगा, वह आपके जमा किये हुए पैसों से ५०%...या शायद उससे भी ज्यादा हो सकता है। तब आप बड़े आराम से वह सब कुछ खरीद सकेंगे, जिसका आप हमेशा सपना देखते हैं।

अधिक जानकारी के लिये अपने करीब की किसी इलाहाबाद बैंक की शाखा में पधारिये।

इलाहाबाद बैंक

आपका अपना बैंक

प्रधान कार्यालय : १४ इण्डिया एक्सचेंज प्लेस,
कलकत्ता-७०० ००१।

U-AB 3A-HIN

M

प्रतिभा और सर्जनात्मकता

सुरेंद्रनाथ त्रिपाठी

पिछले बीस वर्षों में मनोवैज्ञानिकों और शिक्षाशास्त्रियों ने सर्जनात्मकता के अध्ययन में जो शोध किए, जिन विधियों का अपने परीक्षणों में उपयोग किया और जो निष्कर्ष निकाले गए, इस पुस्तक में उनका लेखा-जोखा प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है.

प्रतिभा, बुद्धि और सर्जनात्मकता का विवेचन करते हुए इनका सर्जनात्मकता पर क्या प्रभाव पड़ता है, इस संबंध में मेडनिक, वेलेश, कोगन, बैरन, बाकर मेंहदी और बालकृष्ण पासी आदि के कार्यों का उल्लेख किया गया है.

डिमाई अठपेजी, सजिल्द, पृष्ठ 190, मूल्य 37.00

हिंदी का समसामायिक व्याकरण

यमुना काचरू

यह पुस्तक रूपांतरणात्मक प्रजनक सिद्धांतों के द्वारा भाषा विज्ञान के क्षेत्र में उठाए गए सैद्धांतिक प्रश्नों से, हिंदी में हमारा प्रथम परिचय कराती है. यह पुस्तक अर्थविज्ञान और संरचना के परस्पर-संबंध की विवेचना करने के साथ-साथ वाक्यविन्यास संबंधी संरचना के नियमों को स्पष्ट तथा निभ्रांत ढंग से सामने लाती है. इसमें जिस भाषावैज्ञानिक सिद्धांत और माडेल को आधार बनाकर नियम प्रतिपादन किया गया है, उसकी आधारभूत संकल्पनाओं को भी स्पष्ट किया गया है. मैकमिलन की भाषा भाषिकी सिरीज की यह तीसरी पुस्तक है.

डिमाई अठपेजी, सजिल्द, पृष्ठ 148, मूल्य 32.00

आधुनिकता और सर्जनशीलता

रघुवंश

प्रस्तुत पुस्तक तीन खंडों में विभक्त है. प्रथम खंड में सुधी लेखक ने आधुनिक साहित्य के संदर्भ में सर्जनशीलता के विविध रूपों तथा पक्षों पर विचार किया है. इसमें भाषा की सर्जनशीलता के अतिरिक्त साहित्य के मूल्यों और मानदंडों पर भी विचार किया गया है. द्वितीय खंड में लोक साहित्य और लोक काव्य को आधुनिक दृष्टि से परखा गया है. तीसरे खंड में हिंदी उपन्यास साहित्य और प्रेमचंद की प्रासंगिकता से संबंधित निबंध हैं.

डिमाई अठपेजी, सजिल्द, पृष्ठ 188, मूल्य 45.00

शोध : स्वरूप एवं मानक व्यावहारिक कार्यविधि

बैजनाथ सिंहल

प्रस्तुत पुस्तक शोध की प्रकृति और उसके प्रायोगिक स्वरूप का मानक स्थिर करने का एक प्रयास है. इसे अंगरेजी के 'एम. एल. ए. स्टाइलशीट' के अंतरराष्ट्रीय प्रयोगों को आधार मानकर लिखा गया है. शोध और शोधप्रबंध लेखन की समूची प्रक्रिया को उदाहरणों और अभ्यासों के माध्यम से स्पष्ट किया गया है. शोधार्थियों और शोधनिर्देशकों के लिए समान रूप से उपयोगी.

डिमाई अठपेजी, सजिल्द, पृष्ठ 180, मूल्य 45.00

भारती का काव्य

रघुवंश

इस पुस्तक में धर्मवीर भारती की संपूर्ण काव्ययात्रा का गहन विवेचन प्रस्तुत करते हुए उनके काव्य की विविधता को उजागर करने वाली रचनाओं को संकलित किया गया है. उद्देश्य है हिंदी साहित्य के विद्यार्थियों के लिए एक स्तरीय पाठ्यपुस्तक उपलब्ध कराना. यह पुस्तक इंद्रनाथ मदान द्वारा संपादित 'आधुनिक कवि : एक नया मूल्यांकन' सिरीज के अंतर्गत प्रकाशित दूसरी कृति है.

डिमाई अठपेजी, सजिल्द, पृष्ठ 116, मूल्य 22.50

हिंदी प्रचार विभाग

मैकमिलन इंडिया लिमिटेड

4 कम्युनिटी सेंटर, नारायणा इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-I नई दिल्ली-110 028

U-AB 3A-HIN

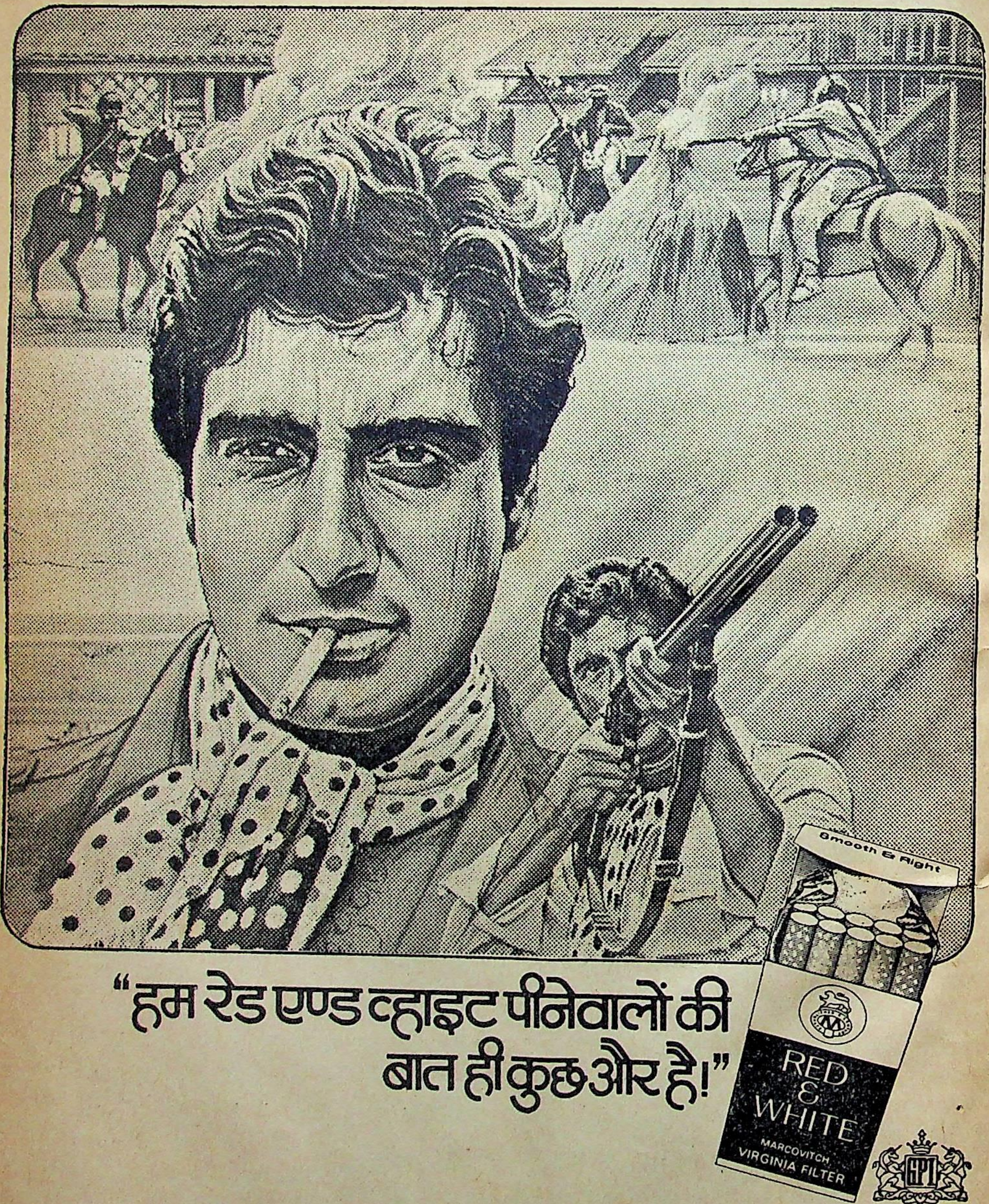
"हम रेड एण्ड व्हाइट पीनेवालों की
बात ही कुछ और है!"
Smooth & Right
RED & WHITE
MARCOVITCH
VIRGINIA FILTER
GPI

गॉडफ्रे फिलिप्स इंडिया लिमिटेड

वैधानिक चेतावनी: सिगरेट पीना स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है।
STATUTORY WARNING: CIGARETTE SMOKING IS INJURIOUS TO HEALTH

Rediffusion/GPI/1143d/HN

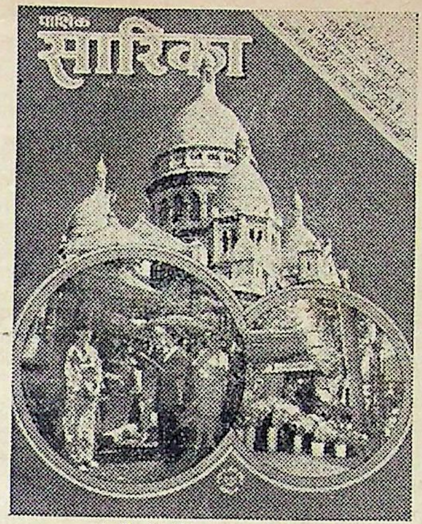

आवरण (तीनों चित्र) : विश्व विख्यात
फ्रांसीसी छायाकार : रे हालिन

सारिका

कहानियों और कथा-जगत की जीवंत पाक्षिकी

वर्ष : 20; अंक : 275; 16 से 31 दिसंबर, 1980

कहानियां

18. जोज़फ गुड की पाप स्वीकृति : पाल ज़कारिया
22. लाज़ारस : कारेल चापेक
28. भटकती राख : दामोदर खडसे
32. सफेद रात : फिरटर विकसीन
36. लड़ाई स्थगित : सुरेश उनियाल
41. विमोहन : अरुणा सीतेश
46. आवश्यकता है कुछ अदद छात्रों की : राजेंद्र मेहता
48. मात : प्रेमकुमार मणि
54. दोनों : परमानंद श्रीवास्तव
63. एक शाम की कहानी : मोहन डिमरी

धारावाही उपन्यास

24. खुदा सही सलामत है : रवींद्र कालिया

साक्षात्कार

12. जगवीरसिंह वर्मा की रावी से बातचीत.

विशेष

50. अनजानी इतिहास कथाएं—कितना था बदनसीब ज़फर! : बाला दुबे
58. पेरिस की डायरी : विनोद भारद्वाज

लघु रचनाएं

15. चार लघुकथाएं : रावी
30. टाइपिस्ट : महेश दर्पण
34. राजेंद्र सिंह बेदी : दो प्रसंग
47. जेबकतरा : एखलाक अहमद जेई

ग़ज़लें

23. शिवओम अंबर
66. जाफ़र बेग, संतोष कुमार गौड़

अन्य आकर्षण

8. ज़रिया-नज़रिया
10. पाठकों का पन्ना
31. प्रसंगवश : महेंद्र कुलश्रेष्ठ
39. तस्वीर बोलती है : आर. के. गोयल
49. उनने कहा था
62. गपशप, कार्टून
67. पखवारे की पुस्तकें : डॉ. वचनदेव कुमार
72. हलचल
73. पत्र-पत्रिकाएं

संपादक
कन्हैयालाल नंदन
मुख्य उप-संपादक :
अवधनारायण मुद्गल
उप-संपादक :
रमेश बत्तरा, सुरेश उनियाल, बलराम, अरुण वर्द्धन
सज्जा : **रवि शर्मा**

बीतते हुए वर्ष की संध्या में पाठकों को सलाम

बात विचित्र जरूर है लेकिन सरसरी तौर पर किये गये सर्वेक्षणों से पता लगा है 'सारिका' के स्तंभों में 'पाठकों का पन्ना' को पाठकों ने सबसे अधिक जीवंत, विचारोत्तेजक और दिलचस्प माना है और पत्रिका में उसे सबसे पहले पढ़े जाने के संकेत दिये हैं. हम अपने पाठकों के इस 'पक्षपात' के लिए आभारी हैं कि उन्होंने अपने ही 'पन्ने' को सबसे अधिक लोकप्रिय माना. दूसरा नंबर 'ज़रिया-नज़रिया' और 'अगले अंक की घोषणा' को दिया है. पाठकों की इस हौसला-अफ़ज़ाई के लिए हम उन्हें धन्यवाद देते हैं और बीतते हुए वर्ष की संध्या में अपने अभिनंदन भी. साथ ही निवेदन भी कि वे अपने आसपास की जिंदगी को 'सारिका' में प्रकाशित सामग्री के संदर्भ में (या वे चाहें तो इसके विपरीत) देखें-परखें और हमें पत्र लिखने से न चूकें. कई बार हमारे पाठक हमसे अधिक बढ़िया ढंग से सोचते हैं (बढ़िया सोचना सिर्फ हमारी ही ठेकेदारी है भी नहीं!) और कान ऐंठने में कमाल का कलम का जौहर दिखाते हैं. स्वागत है पाठकों की ऐसी सामग्री का जो सोच की धार को और तेज करने में सहायता करे, लेकिन पाठक मुझे अपने मन की बात कहने की इस वक्त माफी दें, मैंने कई बार उन्हें नितांत असहिष्णु भी पाया है. हमारे पाठकों का एक बहुत बड़ा वर्ग तात्कालिक प्रतिक्रियाओं के ओज में उलझ कर, विषय और व्यक्ति का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य निगाहों से ओझल कर देता है. पाठकों ने अपनी इस असहिष्णुता का शिकार बनाने से किसी को नहीं बख्शा. वह चाहे हम हों, जैनेंद्र हों, अज्ञेय हों, कृष्णा सोबती हों, शिवप्रसाद सिंह हों या रघुपति सहाय 'फिराक' हों. बहुत पीछे न जाकर ताजा उदाहरण फिराक साहब का लेता हूं, जिसमें पाठकों को उनका हिंदी को 'डर्टियस्ट लिपि और बदबूदार जबान' कहना सबसे अधिक खल गया था. साहित्य के सुधी पाठक इस बात से भली प्रकार परिचित हैं कि फिराक के हिंदी संबंधी ये विचार नये नहीं हैं. दर्जनों बार अमृतराय उनसे भिड़कर बौखलाये हैं. कितनी ही बार हिंदी के मूर्धन्य साहित्यकारों ने उन्हें उनके इस 'हिंदी प्रेम' का डटकर जवाब भी दिया है. श्री केदारनाथ अग्रवाल का लिखा प्रत्युत्तर बहुत से पाठकों को अभी तक नहीं भूला. शायद इसीलिए उमाकांत मालवीय ने यह कहकर टाल दिया था इस बात को कि. . . .'गुजरे वक्तों के हैं ये लोग इन्हें कुछ न कहो.'

हम अपने पाठकों के विचारों और उनके भावों को दबाने की पेशकश में विश्वास नहीं करते. इसलिए हमने उनके पत्रों के विचारोत्तेजक अंश बराबर छापने में कभी हिचक नहीं दिखायी. लेकिन यह अफसोस भी करते रहे हैं कि क्या फिराक ने अपने इंटरव्यू में सिर्फ डर्टियस्ट लिपि और बदबूदार जबान वाली बात ही कही थी! ऐसा नहीं कि जो कुछ हम यहां कहना चाहते हैं, उसे किसीने पकड़ा नहीं. हमारे एक पाठक श्री अशोक गुप्त ने फरीदाबाद से लिखा था—"शब्दों को मात्र उनके ज्यामतीय आकार से पकड़कर चलने और मंतव्य तक पहुंचने की प्रक्रिया में मूल अभिव्यक्ति अंततः कुचली ही जाती है. और ऐसा आभास निश्चित ही तब होता है, जब यह प्रक्रिया एक 'मॉब मेंटैलिटी' के तहत गतिमान हुई हो." हम चाहते हैं कि हमारा पाठक सिर्फ मॉब मेंटैलिटी में न रमे, गहरे उतरकर सोचे. असल में वह फिराक नहीं, सचमुच शीर्षक की तरह 'सदी बोल रही थी.' दिनकर बोलते थे तो युग बोलता था, महादेवीजी बोलती हैं तो हमारी मनीषा का समूचा युगबोध बोलता है. आक्रोश के जज्बे की बात अलग होती है. लेकिन यह सच है कि एक सदी में फिराक या 'दिनकर' या महादेवी पैदा होने की दर ज्यादा नहीं हुआ करती.

—संपादक

सन् १९८० का सफरनामा

हर जाने वाला साल हमें कुछ-न-
देकर जाता है. इस
(1980) ने हमें कुछ ज्यादा ही
अनुभव दिये हैं. ये अनुभव इं
जिंदगियों से खिलवाड़ के हैं, क
और व्यवस्था के बिगड़े हुए हाला
हैं, अल्पसंख्यकों पर ढाये गये अ
वीय अत्याचारों के हैं, बढ़ती
महंगाई, राजनीतिक अस्थिरता, च
डकैती, हत्या और बलात्कार के
और इनके साथ ही आत्मग्लानि
स्वीकृतियों के भी हैं. 'सारिका' ने
वर्ष इन हहराती समस्याओं पर अ
नज़रिया प्रस्तुत किया है.

अजीब संयोग है कि 1980
प्रारंभ चंद नेत्रहीनों के संदर्भ से
था और उसका अवसान भी नेत्रहीन
संदर्भ से ही हो रहा है. 16 मार्च,
को राजधानी की पुलिस ने अंधों
जुलूस पर लाठीचार्ज किया था
अभी इस वर्ष के जाते-जाते बिहार
पुलिस ने चंद कैदियों को बड़े घृ
और शर्मनाक ढंग से जिंदगी भ
लिए अंधा बना दिया. यह
आप में एक 'खतरनाक जंगली का
की मिसाल है. दुनिया का कोई
बुद्धिजीवी ऐसे 'पुलिसराज' की
किये बगैर नहीं रह सकता. 'सा
भी उस निंदा-स्वर में अपना
मिला रही है.

हरिजन कांडों से शुरू हो
सांप्रदायिक दंगों का सिल
अभी तक जारी है. आज भी देश के
नगरों में दंगों के नाम पर

इस साल प्रांतीयता और भाषावाद दक्षिण की जगह दूर पूर्व से सिर ठाया है—पूरा असम इसकी चपेट है और देश के अन्य हिस्सों को उसके टके झेलने पड़ रहे हैं. अंतर्राष्ट्रीय गत में गुपचुप शक्ति संतुलन के नये मीकरण, मुद्रास्फीति के भयावह झटके, फगानिस्तान में रूसी हस्तक्षेप, ईरान-राक के झगड़े से विश्व में ईंधन का त्पात. . .यानी इस फेहरिस्त मात्र से र लगने लगा है.

देश और विदेश के इन हादसों ने बसे ज्यादा तीसरी दुनिया के आम दमी को तकलीफों के भयावह दौर गुजरने के लिए मजबूर किया है. र इन मजबूरियों में जीना हमारी यति हो गया है.

अभी इन पंक्तियों के लिखते-लिखते खबार में पढ़ने को मिला कि राज्य-भा के अध्यक्ष और हमारे देश के उप-ष्ट्रपति श्री हिदायतुल्ला को राज्य-भा के एक वरिष्ठ सदस्य श्री साल्वे उनके 76 वें जन्म दिवस पर भरे दन में इस कदर जलील कर दिया कि अपमानित अनुभव कर सदन छोड़कर लि गये और अप्रत्यक्ष रूप से त्यागपत्र स्थिति में आ गये. इसके ठीक एक न पहले एक अन्य सदस्य उपराष्ट्र-ति को तीन बार 'फ्रॉड' की संज्ञा चुके हैं. यह हमारे यहां के 'अपर हाउस' हे जाने वाले सदन के सदस्यों की हमुत 'शालीनता' का प्रमाण है कि मारे उपराष्ट्रपति अपने ही 'सदन' सम्माननीय सदस्यों द्वारा अपमानित कर जन्म दिन का प्रसाद यों पा रहे हैं. गलपुर में कैदियों को अंधा कर दिये ने की खबर सुनकर प्रधानमंत्री दिरा गांधी बोल पड़ी थीं कि आखिर

बिहार पुलिस की ज्यादतियों के शिकार—शालिग्राम साह.
● छाया : वनवारी

हम जा कहां रहे हैं! 1980 बीतते-बीतते 'अपर हाउस' की इस अपमानजनक घटना से शायद प्रधानमंत्री को यह उत्तर मिल गया होगा कि हम कहां जा रहे हैं. शायद वहां, जहां "अब उजाले भी कहने लगे/एक दिया तो जला दीजिए." अपने मित्र राज़ इलाहाबादी की ग़ज़ल के इस शेर की गहनता शायद इससे पहले इतनी घनी होकर मेरे मन पर तारी नहीं हुई थी.

इन हादसों के सामने रहते हम आने वाले वर्ष की बहुत सुखद भविष्यवाणियां कर भी दें तो झूठ का दामन थामना हो जायेगा, लेकिन आकंठ निराशा में डूबे बने रहने की भी तो स्थिति नहीं है. कर्मठ और संघर्षशील आदमी लगातार निराशा की परिकल्पनाओं में नहीं जी सकता. संघर्षशील आदमी चारों ओर से एक साथ घिरते हुए अंधेरों के बावजूद किसी भी दरार से आ सकने वाली रोशनी की तलाश जारी रखे हुए है और यह तलाश जारी रहनी चाहिए. बग़ैर इस तलाश के संघर्षशीलता बेमानी है और सही जिजीविषा की ललक खोखली. सारिका का 1980 का यह अंतिम अंक रोशनी की उसी तलाश को अर्पित है.

कन्हैयालाल नंदन

कुणाल की आंखें

यह सही है कि हमारी जिजीविषा मरी नहीं है, हमारी आशा जीवंत और कर्मपरक है, लेकिन जो स्थितियां हैं उन्हें न तो नकारा जा सकता है और न उनकी ओर से आंखें बंद की जा सकती हैं. हमारे पाठक और रचनाकार इन स्थितियों के साथ संवेदना के स्तर पर गहरे जुड़े हुए हैं. इसका सबूत है योगेंद्रदत्त शर्मा की यह गजल जो अंधे किये गये कैदियों के नाम साया की जा रही है. ये आंखें कुणाल की भी हो सकती हैं, पृथ्वीराज चौहान की भी, कैदियों की भी और तकलीफें झेलती हुई समूची इंसानियत की भी. हमारा दर्द, हमारी आवाज और हमारा एहसास इस भावना की गहराई के साथ है.

हम भविष्य की रोशनियों के प्रति आशा के साथ आस्थावान होते हुए भी गये वर्ष के नाम यह गजल समर्पित कर रहे हैं :—

ख़ूं से तर हैं कुणाल की आंखें,
टूटे पर हैं कुणाल की आंखें!

पाटलीपुत्र हो या भागलपुर,
जख़्मेतर हैं कुणाल की आंखें!

चल के पूछो अशोक से लोगो,
अब किधर हैं कुणाल की आंखें!

काश! इंसाफ़ भी कहीं होता,
मुंतजर हैं कुणाल की आंखें!

रोशनी के फ़रेब क्या देखें?
दर-ब-दर हैं कुणाल की आंखें!

आंख कोई उधर नहीं उठती,
अब जिधर हैं कुणाल की आंखें!

इनसे गुज़रो तो कोई बात बने,
रहगुज़र हैं कुणाल की आंखें!

एक गूंगा सफ़र है हम सबका,
हमसफ़र हैं कुणाल की आंखें!

हम नुमाइश में हो गये अंधे,
जलसाघर हैं कुणाल की आंखें!

पाठकों का पन्ना

ढोल की पोल

'सारिका' नवंबर अंक-2 में कानपुर के भाई विश्वरूप मोइत्रा का पत्र विशेष तौर पर रुचिकर लगा. मोइत्रा की छटपटाहट या पीड़ा दरअसल काबिले गौर है. यद्यपि उनका यह कहना गलत है कि सभी लघुपत्रिकाएं स्पष्ट तौर पर तथाकथित जनवाद का ढोल पीटती पत्रिकाएं हैं या उनके लेखक-संपादक इन पत्रिकाओं के मोटे-मोटे विशेषांकों को पुस्तकाकार रूप में बाइंड करा कर ऊंचे दामों पर बेचते हैं. यहां मेरा मोइत्रा जी से स्पष्ट निवेदन है कि हिंदी में प्रकाशित समस्त लघुपत्रिकाएं न तो तथाकथित जनवाद का ढोल पीटती पत्रिकाएं हैं और न ही उनके लेखक-संपादक आर्थिक रूप से इतने भरे-पूरे हैं कि उनके विशेषांकों को पुस्तकाकार रूप में बाइंड करा सकें. लघुपत्रिकाओं पर ये प्रहार संभवत: समस्त लघुपत्रिकाओं के बारे में न जानने के कारण किया गया है. यह सही है कि कुछ पत्रिकाएं रजिस्टर्ड जनवादी पत्रिकाएं हैं और ये पत्रिकाएं बुर्जुआ लेखकों को (उनकी नजर से) लिफ्ट नहीं देतीं. इनकी अपनी सीमाएं हैं, इनके अपने लेखक हैं, जो शाब्दिक क्रांति में विश्वास रखते हैं, मार्क्स और लेनिन को मसीहा मानते हैं और उनके उसूलों पर चलने से घबराते हैं. कुछ लोग चलते भी होंगे, पर वे शायद बंगाल में ही मिल सकेंगे; पर इतना तय है कि ये लोग क्रिएटिव हैं. जहां तक हिंदी के जनवादी लेखकों का सवाल है, वहां शायद मोइत्राजी का सुबहा सच निकले, क्योंकि अधिकांश फ्रस्ट्रेटेड लेखक जनवादी शिविर में जा मिलते हैं और अपनी भड़ास सिर्फ प्रोपेगंडा करके निकालते हैं. यही वह लोग हैं, जो एक टांग जनवाद पर और एक टांग व्यावसायिक पत्रिकाओं पर रखते हैं. और अपनी तसल्ली व शिनाख्त या कहिए शख्सियत बताने के लिए एक अधकचरी लघुपत्रिका निकालने लगते हैं. और यह देखा जा सकता है कि हिंदी में निकलने वाली अधिसंख्य लघुपत्रिकाएं न जनवादी हैं, न साहित्यिक. वे बस ढोल पीटने वाली हैं. और इस अवसर की ताक में रहतीं हैं कि उनकी चर्चा पूंजीवादी व्यावसायिक पत्रिकाओं के माध्यम से ही की जाये ताकि उन्हें भी अंततः उन्हीं व्यावसायिक पत्रिकाओं का सहारा मिल जाये. मोइत्राजी इन्हीं पत्रिकाओं के संपादकों-लेखकों से पीड़ित हैं, पर यह भी सही है कि जनवादी पत्रिकाएं भी इन लोगों की घुसपैठ से अछूती नहीं हैं. यह उन पत्रिकाओं के हित में होता कि वे ऐसे लोगों से बचतीं, पर हिंदुस्तान का जनवाद अवसरवादियों की गिरफ्त से बच नहीं सका है और अपनी चालों से ये भ्रष्ट लोग जनवाद को ही बदनाम करने पर उतारू हैं. मार्क्सवाद का जो रूप ये जन के सामने रखते हैं वह व्यक्तिपरक अहमन्यता से सराबोर होता है, निश्चित ही है कि प्रगतिशीलता को फ्रस्ट्रेशन के दायरे में कैद कर उसे कठमुल्लेपन की हद तक दुरूह बनाये रखना ही इनका लक्ष्य हो गया है.

रही बात व्यवसायिक पत्रिकाओं की तो उनसे जनरुचि से विमुख होकर छापने की प्रत्याशा करना बहुत बड़ी नासमझी है. आज जरूरत है ऐसे लेखकों की जो सच बोलने की हिम्मत रखते हों. भले ही उन्हें जनवादी या व्यावसायिक कोई मंच स्थान न दे.

▣ **शैलेंद्र चौहान, नांदेड़ (महाराष्ट्र)**

पाप मुक्ति

'सारिका' मेरे जैसे अधिसंख्य पाठकों की अपेक्षाओं को निरंतर पूरा करने में संलग्न है. यह नहीं कहने से पाप लगेगा.

'दीपावली विशेषांक' का 'ज़रिया नज़रिया' स्तंभ झकझोर देने वाला है. इतने कम शब्दों में इतनी सारगर्भित और सामयिक बातें आपके रचनाशील मानस का परिचय देती हैं.

श्री रवींद्रनाथ त्यागी ने आज के हालात को खूब रोशनी दी है. एतदर्थ उन्हें बहुत-बहुत धन्यवाद दें. 'कुरु-कुरु स्वाहा' की आपने बिलकुल नयी शैली में बड़े अनूठे ढंग से 'समीक्षा' प्रकाशित की है.

▣ **प्रभाकर मिश्र, बभनान (गोंडा)**

शिकायत वाप

'सारिका' के अंक 274 (1 से
दिसंबर) में मुद्रण की जो भूल (**नामों में फेर**) रह गयी है और जिसके कारण दो ले
प्रभावित हुए हैं, उनमें से एक मैं स्वयं

बहरहाल मैं अपनी शिकायत वापस
रहा हूं; क्योंकि अभी कुछ ही दिवस
मुझसे भी ऐसी ही एक भूल हो गयी थ
जब मैंने अपनी एक 'लंबी' कहानी 'दे
जगतारिणी का आविष्कार' आप
विचारार्थ प्रेषित की थी और आपके न
की जगह लिफाफे पर श्री नंदकिशोर नं
लिख दिया था.

▣ **विमल विश्वास, मुजफ्फरपुर**

निवेदन : भुवनेश्वर

प्रख्यात नाटककार भुवनेश्वर की रचनात्मकता जितनी निर्विवाद है, उनका व्यक्तित्व उतना ही विवादास्पद रहा है अतएव उनके संपूर्ण व्यक्तित्व एवं कृतित्व को सामने लाकर उसका तटस्थ मूल्यांकन करने के ध्येय से शीघ्र ही एक पुस्तक 'भुवनेश्वर' प्रकाशित की जा रही है.

जिन महानुभावों के पास भुवनेश्वर से संबंधित कोई भी सूचना, संकेत, उनका प्रकाशित या अप्रकाशित साहित्य, पत्राचार, चित्र या इसी प्रकार की कोई अन्य सामग्री उपलब्ध हो तो कृपया उसे निम्न पते पर भेजने या सूचित करने का कष्ट करें—

चंद्रमोहन दिनेश, रोशनगंज,
शाहजहांपुर-242001

नयी घटना नहीं, सहज घट

'सारिका' अंक 270 पढ़ा. कमला
की 'मेरी कहानी' पढ़ने के बाद मन
हो गया. मासिक धर्म का उन्होंने
उत्तेजित ढंग से वर्णन किया है, मात्र पु
को बेचने के लिए! प्रत्येक नारी
नारीत्व पाती है, तब मासिक धर्म की
ही प्रक्रिया होती है, कोई नयी घटना
कमलादास के साथ घटी नहीं.

▣ **के.ए. दुबे 'पद्मेश,' कानपुर**

नर्यात के माल की मंडी

'मेरी कहानी' पर **रवींद्र कालिया** का ाक लेखकीय नजरिया प्रकाशित करने ु धन्यवाद.

'मेरी कहानी' पढ़ने पर लगा कि लेखिका **मलादास** की तमाम हरकतों के पीछे क लिजलिजी कामुकता के सिवाय और ई दर्शन नहीं प्रतिबिंबित होता है. इस ह उनकी कहानी एक कामुक औरत की ोग से समाधि की यात्रा की कहानी है. मैं परंपरावादी नहीं हूं, परंतु 'केवल र्यात के लिए' निर्मित ऐसी कृतियों के ी मंडी में प्रयोग के खिलाफ जरूर हूं.

औरत अपने बड़े दादा को अपनी ी की उत्तेजक मांसलता का गुलाम ती हो, सारी जिंदगी अपने को जांघों र वक्षों की मांसलता में गुदगुदाती उसे दूसरों को 'भूखे भड़िये' की उपाधि से पहले स्वयं की भूख का निरीक्षण ना चाहिए.

अशोककुमार तिवारी, वाराणसी

र्यात ही बेहतर

'मेरी कहानी' की ओर आपका ध्यान कृष्ट करना चाहता हूं. भगवान जाने यह मती **कमलादास** की सच्चाई है या गढ़ंत? कुछ भी हो, लेकिन यदि इसे र्यात करने के खयाल से' लिखा गया तो अवश्य ऐसा किया जाये, क्योंकि हमारे किसी भी काम की नहीं है.

अनिलकुमार 'अनल', सहरसा, बिहार

री कहानी' का दूसरा पहलू

मेरी कहानी' **कमलादास** पर **रवींद्र** **ल्या** का लेख पढ़ा. लेखक ने कमलादास कमात्र कामुकता के पहलू को ही अधिक गर किया है. कामवासना प्रत्येक प्राणी प्रकृतिदत्त है, यह तो लेखिका की गोई और स्वतंत्र लेखन है कि उन्होंने े किसी रहस्य को नहीं छिपा रखा, कि विरले ही कर सकते हैं. रहा सवाल वसायिक लेखन का तो यह पाठकों निर्भर करता है कि पुस्तक पढ़ें वा नहीं. क्या लेखक 'मेरी कहानी' आलोचनात्मक लेख लिखकर और के सेक्स प्रसंगों को उभारकर व्याव-यकता हासिल नहीं कर रहे? 'मेरी कहानी' की मद्रासी फिल्म से तुलना करना पुस्तक को घटिया करार देना है. यद्यपि इसमें भाषागत प्रदूषण हैं, किंतु वह अश्लील साहित्य की तरह नहीं बल्कि जिंदगी की वास्तविकता है.

उच्च मध्य परिवार में जन्मी लेखिका का किशोरावस्था से ही साहित्यिक सृजन निष्कपट व्यक्तित्व, जीवंत प्रकृति-चित्रण 'मेरी कहानी' में समाहित है. गरीबों, असहायों के प्रति लेखिका का हृदय करुणा से भरा है. लेखिका के अनुसार **'क्यों ऐसा कोई सरकारी आदेश जारी नहीं किया जाता कि सब बड़ी-बड़ी इमारतों के नीचे के हिस्से तेज बरसात और सर्दी की रातों में बेघरबार लोगों के लिए खोल दिये जायें, हर होटल वाले को अपनी दैनिक आय का दस प्रतिशत भाग गरीबों को भोजन कराने में खर्च करने को मजबूर कर दिया जाये.'**

नैतिकता का बाना पहने अनैतिक समाज के तथाकथित समृद्ध और राजनीतिक लोगों को भी लेखिका ने लताड़ा है. लेखिका का सांसारिकता के बारे में कहना है कि **'वास्तविक संसार वह नहीं होता, जो बाहर से दिखता है. असली दुनिया तो उसके भीतर होती है, जो किसी भी तरह नापी नहीं जा सकती, लेकिन उसे सिर्फ वही महसूस कर पाता है, जो अपने भीतर डुबकी लगा कर अपने अनंत आपे को पहचानने की कोशिश करता है.'**

▣ प्रमोद कु. पाठक, काशीपुर (नैनीताल)

ट्रेलर तो देख लिया

आत्मस्वीकृत्यात्मक लेखन में अमृता प्रीतम के बाद एक और नाम कमलादास है, लेकिन जहां अमृता प्रीतम का 'रसीदी टिकट' किसी भी अर्थ में प्रसिद्धि का मोहताज नहीं, वहीं कमलादास का मूल उद्देश्य ही चौंकाने वाले बाजारू साहित्य की रचना कर सस्ती लोकप्रियता हासिल करना रहा है. लेखिका की साफगोई एवं बेबाकी का कायल हुआ जा सकता है, किंतु यथार्थ के नाम पर नग्नता, कुरूपता एवं भोंड़ापन पाठक में जुगुप्सा ही जगा पाता है.

रवींद्र कालिया की टिप्पणी के रूप में 'मेरी कहानी' का ट्रेलर ही देखा है, पूरी फिल्म देखने का धैर्य संवेदनशील पाठक जुटा पायेंगे, इसमें संदेह है.

▣ संतोष व्यास, सुजानगढ़

ईद अंक क्यों नहीं?

'सारिका' के विशेषांक निस्संदेह पठनीय होते हैं. काफ्का अंक, प्रेमचंद अंक, मंटो अंक, चेखव अंक, हेमिंग्वे अंक आदि-आदि. और अब 'सारिका' का दशहरा अंक भी पसंद आया, परंतु आपकी एक बात बिल्कुल पसंद नहीं आयी—19 अक्तूबर को दशहरा था, ठीक दूसरे दिन यानि 20 अक्तूबर को मुस्लिम भाइयों की ईद (बकरा ईद) थी. दोनों बड़े त्योहार इतने कम अंतर पर होने के बावजूद आपने केवल 'दशहरा अंक' निकाला. क्या 'ईद अंक' नहीं निकाला जा सकता था? क्या ही अच्छा होता, यदि आप 'दशहरा-ईद संयुक्त विशेषांक' ही निकालते. 'सारिका' के लेखक व पाठक मुसलमान भी हैं. फिर यह पक्षपात क्यों?

▣ जुल्फिकार अहमद, बीकानेर

क्यों छापते हैं ऐसी कहानियां

'सारिका' अंक 270 में **मुद्राराक्षस** की कहानी 'हम सब मंसाराम' और **बीर राजा** की कहानी 'खुले जंगले का शेर' ऊपर से व्यवस्था विरोधी कहानी लगने के बावजूद भी व्यवस्था को और मजबूत बनाने की कहानियां बन गयी हैं. पलायन बीर राजा की कहानी का संदेश है और वही संदेश 'हम सब मंसाराम' का भी है कि सामंतों, जालिमों के आगे आम आदमी टिक नहीं सकता, अतः उनसे लड़ने की बजाय उनके आगे समर्पण कर देना चाहिए. समझ में नहीं आता कि 'हम सब मंसाराम' और 'खुले जंगले का शेर' जैसी यथार्थ से कटी, व्यवस्था-पोषक और आम आदमी के संघर्ष की धार को कुंद करने वाली कहानियों को प्रकाशित कर 'सारिका' पाठकों को कौन-सा संदेश देना चाहती है?

▣ डॉ. राम बहादुर वर्मा, रायबरेली, उ.प्र.

साक्षात्कार

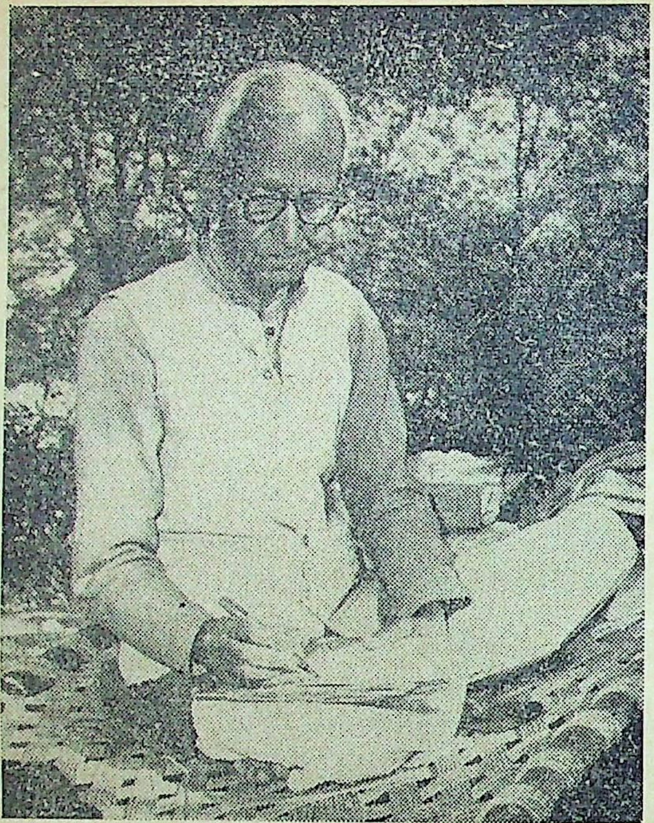

"व्यक्तित्व नहीं, चरित्र और कार्य ही समाज के काम की वस्तु हैं!"

▣ रावी

रावी कब जन्मे, यह जानना और सोचना फिज़ूल लगता है, क्योंकि जिस व्यक्ति की उंगलियों पर उनकी उम्र के साल गिने जाते हैं, वही उनका अधिनायक भी है--उनकी अंतरंग टीम का कप्तान! बहरहाल, उन्होंने लगभग सोलह साल की उम्र में सन् 1928 के आसपास लिखना शुरू किया--कविता, गज़ल, कहानियां, नाटक, लघुकथाएं और उपन्यास सभी कुछ लिखा. आजकल नयी पीढ़ी में वह मुख्यतः लघुकथाकार के रूप में जाने तथा माने जाते हैं और सब आदर से उन्हें 'लघुकथा का पितामह' कहकर उनका सम्मान करते हैं.

शहरी और दुनियावी हुजूम से दूर 1947 वे में युवावस्था में ही यमुना किनारे एक टुटहा-से गांव कैलास में जा बसे थे. इस बीच उनका जीवन अध्यात्म में रच-बस गया. इसी क्रम में उन्होंने तीन काम किये--नये विज्ञापन (पत्रिका) का प्रकाशन-संपादन, मैत्रीक्लब और फिर जीवन प्रवेश विद्यालय की स्थापना.

इन तीनों अध्यात्मिक माध्यमों ने काफी लोगों को आकर्षित किया है, मगर अधिकांश लोगों की समझ में नहीं आया कि वे क्या करना चाहते हैं. तिस पर तुर्रा यह कि उन्होंने एक उपन्यास लिखा--'नया नगर की कहानी' और इन दिनों वे ठीक उपन्यास में वर्णित नगर को कैलास ही में साकार करने की कोशिश कर रहे हैं.

रावी से जगवीरसिंह वर्मा की लंबी बातचीत

आगरा छोड़कर यहां कैलास में बसने के पीछे क्या कुछ क रहे थे?

हां, 1946 में दरअसल शहर में ऐसी घटना घटी, जिसने मुझे समाज विरक्त कर दिया और इस तरह मैं 2 फरवरी, सन् 1947 को एक ऐसे में आ गया, जिसकी आबादी भी घनी थी.

वह ऐसी कौन सी घटना थी, जि आपके जीवन को इस हद प्रभावित किया?

प्रेम की घटना थी वह. दरअसल, मकान में मैं रहता था, उसी में और परिवार रहते थे. उनमें से एक परि की नवविवाहिता महिला से मुझे प्रेम गया था. जिसे गलत समझा गया और तरह मेरा वहां रहना दूभर हो गया इसके कुछ ही समय पूर्व समाज में संबंधों के निर्माण के प्रति मेरी रुचि थी. फिर तो यह चिंतन और भी गहर मेरी 'बीच की दीवार' शीर्षक कहानी घटना पर आधारित है.

जिन परिस्थितियों में आपने सा का दामन थामा, वे आपके पला वादी होने का आभास देती इसलिए जानना चाहूंगा कि सा के काम को आपने किस रू समझा.

साहित्य का काम बहुआयामी है. मैं मानता हूं कि साहित्य का अभिप्राय सृजन है, लेकिन इसके साथ ही साथ म की मनोभूमि को परिष्कृत कर उसमें से बड़े छायादार और फलदार उगाने की प्रेरणा भी हो, जो म को उसकी उच्चतम स्थिति तक पहुं भरपूर रस और प्रश्रय के साथ. कि किसी रूप में और किसी न किसी स्तर मनुष्य के भीतर एक नयी चेतना यानी अपने हित के प्रति उसकी पहचान और परख बढ़े, और जिसमें वाह्य चेहरे का ही प्रतिबिंब न झलके,

सके विकास का पूरा चित्र दिखाई दे. मोबेश मैंने अपने लेखन में यही प्रयत्न या है.

आपने संदेश तथ्यात्मक या तात्विक प्रधान किस्म की लघुकथाएं ही लिखना क्यों पसंद किया?

ोंकि इनके माध्यम से वह संकेत अधिक ाम और ग्राह्य रूप में दिये जा सकते हैं.

कुछ नये लेखक लघुकथा और लघुकहानी को दो अलग विधाएं मानते हैं, आपका क्या खयाल है?

घुकथा मूलत: प्रतीकात्मक और संदेशर्मी होनी चाहिए, उसमें घटना और कथोकथन न्यूनतम हो—मेरी दृष्टि में यही घुकथा है. लघुकहानी कोई अलग विधा ीं है, यह केवल मात्र विशेषण है.

लघुकथा लेखन के पीछे किस देशी-विदेशी लेखक की प्रेरणा रही आपको?

सी की नहीं. मैंने पढ़ा ही बहुत कम है, च ही नहीं रही ज्यादा कुछ पढ़ने की. र फिर लघुकथाएं तो मैंने बाद में खनी शुरू कीं. पहले तो मैंने लंबी ानियां ही लिखीं. लघुकथा लिखने से ले तो मेरे छह कहानी संग्रह निकल थे.

'पचास परचे इरा क्लब के' नामक उपन्यास में आपने पचासवें पर्चे में धनंजय द्वारा वीरभद्र को लिखे गये पर्चे के अंतर्गत यशपाल, जैनेंद्र, विष्णु प्रभाकर से लेकर अमृतलाल नागर तक सत्ताइस लेखकों के नामों के साथ उनके अंतरंग की भी संक्षिप्त झलक दी है, इसके बाद उसी सूची का चालीसवां नाम अज्ञेय जी का है, बाकी इन दो (अमृतलाल नागर तथा अज्ञेय) के अंतरंग की झलक नहीं है और बाकी 12 लेखकों के नाम ही नहीं हैं. यदि हम इसका कोई आध्यात्मिक और वास्तविक अर्थ मानें तो क्या आप अब उन बारह लेखकों के नामों पर प्रकाश डालने की कृपा करेंगे?

सूची को पढ़कर जो लेखक सोचते हों उसका नाम भी रीना के सिरहाने दबे कागजों में होना चाहिए, अधिक संभावना है कि उनके नाम उस सूची में आ गये हों. और लेखक के प्रमाद अथवा रीना की ज्यादती या आलस्य के कारण प्रकाश में न आ पाये हों.

यहीं पर कनु की राय (जैसा कि अब स्पष्ट हो ही गया है कि कनु या कनिष्ठ तनु माने रावी की राय) में यह चालीस भी निश्चित रूप से हिंदी के सर्वश्रेष्ठ कथाकार नहीं हैं तो सर्वश्रेष्ठ कथाकार और कौन से हैं?

क्योंकि मैं सर्वश्रेष्ठ कथाकारों की सूची बनाने के लिए उपयुक्त जज नहीं हो सकता हूं. इसलिए यह बात मुझे कहनी पड़ी है, यह नाम वस्तुत: एटरेंडम ही लिये गये हैं.

आपके पात्रों उज्जवल, त्रिलोचन से लेकर स्नेहशिखा और नीतराग, वातायन वगैरह को लेकर काफी दिन से विवाद चल रहा है कि वे सशरीर हैं या अशरीर या एकदम काल्पनिक. आपसे पूछा जाता है तो आप कह देते हैं कि वे सब सदेह विद्यमान हैं, आप उनसे व्यक्तिगत संपर्क का आमंत्रण भी देते हैं, मगर जब कोई वैसी इच्छा प्रकट करता है तो आप कोई तरकीब नहीं बताते. आखिर, आप इस तरह की रहस्यभरी बातें क्यों करते हैं?

वक्तव्य मेरा यही है कि वे सदेह हैं, किंतु उन्हें मेरे पाठक सदेह मान ही लें, यह न आवश्यक है और न उनके अस्तित्व को प्रमाणित करने का मेरे पास कोई साधन है. दो-चार जन्म तक प्रतीक्षा करने की जिसमें रुचि हो, वह उन्हें प्रत्यक्ष देखने की दिशा में अग्रसर हो सकता है. उनका व्यक्तित्व नहीं, उनका चरित्र और कार्य ही समाज के काम की वस्तु है और यही पर्याप्त है.

इस उम्र में आकर बहुत से लेखक आत्मकथा लिखने लग जाते हैं या वैसा सोचने लगते हैं. आपने भी कभी इस बारे में सोचा है?

आप अपनी ही आत्मकथा लिख डालिए, वह मेरी ही आत्मकथा होगी. हर व्यक्ति की कथा, जिसके लिए आत्मकथा हो, वह अपनी अलग आत्मकथा लिखने की बात कैसे सोच सकता है?

आपात्काल को विनोबाजी ने 'अनुशासन पर्व' कहा था. . .आप भी अध्यात्म से गहराई से जुड़े है, इसलिए जानना चाहूंगा कि आपका इस बारे में क्या खयाल है?

अध्यात्म से जुड़ा हूं या नहीं, लेकिन जीवन से अवश्य जुड़ा हूं. आपत्ति मेरी दृष्टि में सदैव अनुशासन की प्रेरिका और किन्ही नयी उपलब्धियों में सदैव सहायिका होती है. उस काल में जो आपत्ति थी, वह सत्ता से ताल्लुक रखती थी, जीवन से नहीं. इसलिए कुछ भी कहना फिजूल के विवाद को पैदा करना है.

'नये विज्ञापन' और 'मैत्रीक्लब' के माध्यम से आप मांग और पूर्ति को लेकर एक लंबे अर्से से प्रयोग कर रहे हैं, लेकिन प्राय: यह देखा गया हैं जीवन व्यवहार में कि जब भी कोई आदमी दूसरे के सामने अपनी कोई मांग रखता है, तुरंत वह अपना मूल्य घटा बैठता है. इस मानसिकता के पीछे कौन से मनोवैज्ञानिक कारण है?

जिससे मांगा जाता है, उसकी हीन, संकीर्ण और छिछली दृष्टि? . . . मांगने वाला यदि अपनी अंतरंग हैसियत को पहचानता है तो जिससे मांगता है, उस पर एहसान ही करता है. शेर अर्ज है—"आपसे वाबस्ता हैं रावी की कुछ खुदगर्जियां, ये भी मुमकिन है ये उसका आप पर एहसान हो!"

आप अपने उपन्यास 'नये नगर की कहानी' की कल्पना को साकार करने की दिशा में भी संकल्पशील हैं. अभी तक इसमें आपको कहां तक सफलता मिली है यानी वैसा नया नगर कब तक बस जायेगा?

आप देख ही रहे हैं कि 'नये नगर' के लिए जमीन मिल गयी है और स्वामी असीमानंद बिल्कुल वेंकटाचलम (उपन्यास का नायक) के रोल को अदा कर रहे हैं. मैत्रीक्लब के ही एक अन्य मित्र 'बजरंग' का रोल अदा करने के लिए कटिबद्ध हैं. खाद्यान्न की शुरुअात कई वर्ष पहले आपने एक क्विंटल गेहूं का दाम देकर कर दी थी, और भी कुछ मित्र साधन और सुविधाएं जुटाने की दिशा में अग्रसर हैं. इस सबसे

उपन्यास के माध्यम से देखा हुआ सपना——रावी के उपन्यास 'नया न
की कहानी' के मूर्तरूप 'नया नगर' के प्रारंभिक निर्माण का चित्र

आपको भी यह पक्का यकीन होना चाहिए कि 'नया नगर' बस कर जरूर रहेगा. कम से कम 5 वर्ष और ज्यादा से ज्यादा 250 वर्ष के बीच.

आपके साहित्य से लेकर बातचीत तक रहस्य ही रहस्य भरा पड़ा है. आज के सामान्य जन-जीवन के व्यवहार में यह पचने वाली बात नहीं लगती?

रहस्य आप किसे कहते हैं? कल सुबह जो नाश्ता आपको यहां मिलने वाला है, क्या वह रहस्य नहीं है और उस नाश्ते के समय जो भाव और विचार आपके मन में उठने वाले हैं, क्या वे अभी आपके लिए रहस्य नहीं हैं? जो सुखद कल्पना घटित हो जाये और समझ में आ जाये, उसे आप रहस्य की संज्ञा दे दें तो मेरी रहस्यवादी अभिव्यक्ति में किसी को कोई एतराज या परेशानी नहीं होनी चाहिए.

नये, अधिक विकसित और सुखी मानव समाज की कल्पना अनेक प्रसिद्ध कलाकारों और चिंतकों ने की है और कुछ भविष्यदर्शी माने जाने वाले व्यक्तियों ने भी उसके चित्र विश्व के साहित्य को दिये हैं. प्लेटो का 'रिपब्लिक', सर थामस मूर का 'यूटोपिया,' विलियम मौरिस का 'न्यूज फ्राम नोहेयर,' सेमुएल बटलर के 'इरेह्वान' का उल्लेख आपने अपने उपन्यास 'नये नगर की कहानी' की भूमिका में किया है. क्या आपने इन लेखकों की इन रचनाओं को पढ़ा है?

इतना बड़ा बोझ उठाने की समाई मुझमें कहां? मैंने तो अपने एक मित्र प्रोफेसर से कहा कि कुछ ऐसे अंग्रेजी के लेखकों की कृतियों के नाम बताइए, जिन्होंने 'यूटोपिया स्तर' की कही जाने वाली चीजें लिखी हों. बस, मेरे मित्र भटनागर जी ने मुझे यह नाम लिख दिये और मैंने अपनी भूमिका में लिख लिये.

आपकी दृष्टि में 'वीरभद्र' और 'स्नेहशिखा' विश्व भर के साहित्य में कैसा स्थान प्राप्त कर सकते हैं?

विश्वसाहित्य के सर्वोत्तम पात्रों की श्रेणी में उनका नाम आ जाये तो मुझे कोई आश्चर्य नहीं होगा.

आपने पहले कभी मुझसे लेखन के लिए एकांतता और एकाग्रता की बात कही थी. आज के समय में वह सब कहां संभव है? तो क्या यह मान लिया जाना चाहिए कि नयी पीढ़ी जो कुछ लिख रही है, वह उतना गहरा, शाश्वत और लोकोपयोगी नहीं है?

मेरा खयाल है कि नये लेखक के सभी बक्सों की तलाशी ली जाये तो वैसा अवकाश उनके पास अवश्य दबा-ढका निकल आयेगा. अनेक नये लेखकों का भविष्य बतायेगा कि वह अवकाश उनके पास पर्याप्त था. सब कुछ——संभव है और सुगम है. हां, गहराई और शाश्वतता के लिए ग्राहकता एवं कर्म के प्रति समर्पण भाव तो चाहिए ही.

आप अपनी तात्विक लघुकथाओं के कथानक किस तरह प्राप्त करते हैं? क्या आपने कुछ वैदिक और औपनिषदिक साहित्य पढ़ा है?

वैसा साहित्य पढ़ा तो बिलकुल नहीं
लगता है, मुझे भी वहीं से यह प्लाट मि
हैं, जहां से उपनिषदकारों को मिले ह
यह कोई बढ़की बात नहीं. मैं सम
हूं कि हर कोई ध्यानस्थ होकर ऐसे जि
चाहे, कथानक पखेरुओं को आ
से पकड़ सकता है?

आप प्लाट बेचते भी हैं?

हां, बेचने की कभी कोशिश की थी,
कोई ग्राहक हाथ नहीं लगा. अब तो
बांटने को भी तैयार हूं.

आप अपनी रचनाओं को अं
रूप देने तक कितनी बार लिखते

लिखता तो एक ही बार हूं, कभी-
कुछ शब्दों का उलटफेर और पर्याय
अवश्य करना पड़ जाता है. इसी
में कुछ नये शब्द भी गढ़ जाते हैं.

आपने हिंदी साहित्य को नये शब्द भी दिये हैं?

मैंने साहित्य को नये शब्द दिये हैं या सा
ने मुझे, यह विवादास्पद है. मेरा खया
कि इसमें दूसरी बात ही अधिक ठी

पुस्तकालय
080584
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

रावी की लघुकथाएं

रावी के साथ साक्षात्कार कर लेने के बाद अब प्रस्तुत हैं उनकी चार लघुकथाएं

आदमी का नुस्खा

प्राचीन युग में एक बार देव और असुरों का संग्राम बढ़ते-बढ़ते भूलोक तक आ पहुंचा. देवताओं की प्रकृति और स्वभाव के अनुकूल होने के कारण मनुष्य तुरंत ही देव-पक्ष में सम्मिलित हो गये और पशुओं का वर्ग ही पृथ्वी पर ऐसा शेष रह गया, जिसे असुर-जनों को अपने दल में लेने के लिए विवश होना पड़ा. मनुष्य शरीर-बल में पशुओं से हीन होते हुए भी अपनी बुद्धि और मानवत्व के कारण अधिक समर्थ थे. इस प्रकार भूलोक के बटवारे में असुर-जन देवताओं की तुलना में घाटे में ही रहे. इस बटवारे के पश्चात् देवासुर-संग्राम में असुरों की विजय के अवसर बहुत घटकर पराजय के अवसर बहुत बढ़ गये.

असुरों ने मनुष्यों को देवताओं के वर्ग से तोड़कर अपने वर्ग में मिलाने के लिए भांति-भांति के प्रलोभन उन्हें दिये, किंतु उन्हें इसमें तनिक भी सफलता न मिली. बार-बार की पराजय से जब असुरों के हाथ-पांव फूलने लगे, तब अंत में उन्होंने अपने गुरु शुक्राचार्य की शरण ली.

उनकी संकट-कथा सुनकर शुक्राचार्य ने ध्यान के निमित्त अपनी एक आंख बंद की. कहते हैं कि दूसरी आंख बंद करने का कोई प्रश्न ही नहीं उठ सकता था. और तीन पल के भीतर ही ध्यान से निवृत्त होकर उन्होंने आंख खोल दी. असुर-जनों को उन्होंने सांत्वना देते हुए कहा, "मनुष्य जन आपके पक्ष में सम्मिलित होने को उद्यत नहीं हैं तो न होने दीजिए. मनुष्य के निर्माण का योग (नुस्खा) मैंने अभी-अभी खोज लिया है और आपके दल में सम्मिलित पशुओं में से ही जितने की आपको आवश्यकता होगी, उतने मनुष्य मैं बना दूंगा."

और सचमुच स्वल्पकाल के भीतर ही शुक्राचार्य ने बारह अरब पशुओं में से छांटकर सात अरब मनुष्य रूप में परवर्तित करके, सात अरब नवनिर्मित मानवों को असुरों के पक्ष में खड़ा कर दिया; जबकि देवताओं के पक्ष में कुल वास्तविक मानवों की संख्या केवल तीन अरब ही थी.

इसके पश्चात असुरों की पहली बड़ी विजय के उपलक्ष्य में जो बड़ा उत्सव-समारोह हुआ, उसमें शुक्राचार्य ने पशुओं को मनुष्यों में बदलने का वह आश्चर्यजनक नुस्खा भी सबके सामने प्रकट कर दिया. यह चतुःसूत्री बहुत सरल और आसान था. नुस्खा इस प्रकार था:

प्रथम सूत्र : पशु का शारीरिक आकार मनुष्य के आकार में बदलो. (आकार बदलने की यह कला छोटे से छोटे असुर को भी आती थी.)

द्वितीय सूत्र : पशु हृदय के सातवें (नीचे की ओर से चलकर) पटल पर जो भय की प्रवृत्ति है, उसे सबसे भीतरी प्रथम पटल पर ले जाओ.

तृतीय सूत्र : पशु हृदय के सबसे प्रथम (सबसे निचले) पटल पर जो छल-कौशल का पुट है, उसे ऊपर के सातवें पटल पर ले आओ.

और निस्संदेह इस नुस्खे से पशु का जो मनुष्य बना, वह अत्यंत शिष्ट, मृदुभाषी, दूसरों का चुपचाप गला काटने में निपुण और आज की सभ्यता के अनुरूप एक पूर्ण सभ्य मनुष्य था.

इस कथा को कोई आज की मनुष्य जाति का अनादर-अपमान न समझ बैठे, इसी के स्पष्टीकरण में मेरे कथागुरु की टिप्पणी है कि प्रस्तुत युग का मनुष्य उन वास्तविक मनुष्यों और पशुओं से बनाये गये मनुष्यों की सम्मिलित संतान है और जो भी मनुष्य इस तथ्य को अपने भीतर देखकर स्वीकार करने के लिए उद्यत हो जाता है, वह किसी शुद्ध मानवीय विधान के अनुसार द्रुत गति के साथ; अपने शुद्ध मानवत्व की ओर अग्रसर होने लगता है. □

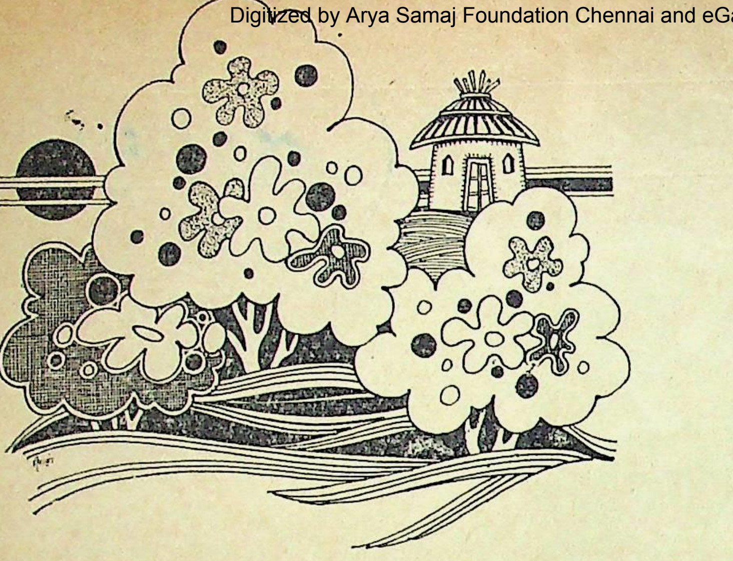

साधना का अंत

साधना की अनेक मंजिलें पार करते हुए अंत में मैंने अपनी अभीष्ट सिद्धि को प्राप्त कर लिया. स्वर्ग,अमरत्व और मोक्ष की कामनाओं से भी अनाकर्षित, मेरी एकमात्र कामना अपने परम आराध्य प्रियतम भगवान के साक्षात दर्शन की ही थी. लोचनाभिराम घनश्याम भगवान के दर्शन के आगे कोटि-कोटि स्वर्गों और मोक्षों के सुख को संत जनों ने न्यौछावर कर दिया था और मैंने भी उन्हीं की परिपाटी का अनुशीलन किया था. मेरी अखंड एवं अविचल अनुराग साधना के वशीभूत होकर भगवान अपने साकार रूप में मेरे सामने प्रकट हो गये. उन्मत्त उल्लास से मैं नाच उठा. भगवान नाम के कीर्तन की अजस्र धारा मेरे मुख से फूट पड़ी. अथक नृत्य-गति से मेरे पग धरती को नाप चले. सहस्रों भक्तों की भीड़ मेरी कीर्तन ध्वनि की अपने कंठों से आवृत्ति करती और मेरी नृत्य-गति पर झूमती मेरे पीछे चल पड़ी. मैं अपने युग और देश का भक्त-शिरोमणि संत घोषित कर दिया गया.

और अंत में कह नहीं सकता कि कितनी धरती और कितने काल की यात्रा के पश्चात् मेरे पग रुके, कंठ-स्वर थमा और उस असाधारण अननुभूतिपूर्व स्थिरता एवं नीरवता के क्षण में असंख्य वर्षों का पुरातन एक युग अनायास ही खिंचकर मेरे सामने प्रस्तुत हुआ. मैंने देखा, एक मोटा चूहा गेरू की एक छोटी डली मुख में दबाये उछलता-कूदता भागा चला जा रहा है. और उसके पीछे सहस्रों छोटे और कृशकाय चूहों की एक भीड़ लगी जा रही है, अग्रगामी मोटे चूहे का भयभीत अभिप्राय यही है कि उसे कोई अत्यंत सुस्वाद खाद्य-प्रदार्थ मिल गया है और उसे दूसरे सब से बचाकर वह किसी सुरक्षित स्थान में भाग जाना चाहता है और उसके पीछे लगे हुए चूहों की भीड़ उस पदार्थ में अपना भी कुछ भाग लगाने के लिए आतुर दौड़ रही है.

उसी क्षण की नीरवता में मैंने सुना :

"असंख्य वर्षों के पुरातन एक युग में मूषक शरीर में जन्म पाकर तुमने जो कुछ किया था, ठीक वही मानव सुलभ किंचित परिवर्तित रूप में इस समय भी कर रहे हो"

अपना प्रगतिशील नर्तन-कीर्तन मैंने उसी समय समाप्त कर दिया, किंतु मैंने देखा, मेरे अनुगामी भक्तजन मेरे बिना भी नर्तन-कीर्तन के उस पथ पर बढ़ते ही गये. भक्तशिरोमणि संत के पद से च्युत होकर ही मैं अपनी उस पुरातन मूषक गति से भी कुछ मुक्त हो पाया हूं और मेरी संघर्षमयी साधनाओं का भी अंत निकट आ गया है.

कथा कहने का अधिकार मेरा है और यदि उसे सुन लेने में इस समय आपको कोई आपत्ति नहीं हुई तो उसके भीतर एक खन नीचे उतरना भी संभवतः किसी समय आप स्वीकार कर लेंगे. मेरे कथागुरु का संकेत है कि मनुष्य के ऊंचे-ऊंचे आनंदोल्लास की परिभाषा इस कथा में निरापद रूप से खोजी जा सकती है. ☐

नया लक्षण

किसी नगर में एक परम तेजस्वी
आया. उसके तेज पांडित्य
चुंबकीय आकर्षण ने सारे नगर का
अपनी ओर आकृष्ट कर लिया.
से लोग उसके भक्त हो गये.

उसके व्यक्तित्व से प्रभावित
सभी लोग थे, धीरे-धीरे नगर
चर्चा फैल गयी कि वह जीवन
स्थितिप्रज्ञ परमहंस महात्मा है.
प्रवचनों में वह इन परम गतियों को
हुए पुरुषों के लक्षण श्रोताओं को ब
था.

वे लक्षण बहुत ही कुछ उस पर
होते थे.

कुछ समय पश्चात किसी गुप्त वि
वर्ग के प्रयत्नों से उस साधु की कुछ नै
आचरिक पोलों का पता चला.
बातों में रुचि रखनेवाले खोज
व्यक्तियों ने उन कथित आरोपों के
में छान-बीन की और उन आरोपों
किसी सीमा तक सच पाया.

यह स्पष्ट हो गया कि उस साधु
कहनी और करनी में बहुत अंतर है
उसका बहुत कुछ दिखावा आडंबर की
पर स्थित है.

▣

साधु की इन पोलों की चर्चा धीरे
नगर में फैल गयी और उसके बहुत से
और प्रशंसक उससे विमुख हो गये. उ
लौकिक समृद्धि के साथ-साथ उसके
का तेज धीरे-धीरे बहुत घटता गया
उदरपूर्ति के लिए उसे नगर में फे
लगाने पर उतर आना पड़ा.

साधु का मान दिनों-दिन नगर
गिरता गया और यह नौबत आ गयी
उसे भिक्षा द्वारा भर पेट अन्न प्राप्त
कठिन हो गया.

अब उसने छोटी-छोटी मजदू
और टहल के काम करके अ
पेट भरना प्रारंभ कर दिया. धीरे
उसकी स्थितिप्रज्ञता और जीवन्
का उपहास करना भी नगरवासी भूल
और वह नगर का एक उपेक्षित, निम्
कोटि का नागरिक बनकर रह गया.

आवश्यक आहार और शीतोष्ण से चाव के अभाव में वह दुर्बल होकर रोग-स्त हो गया.

अब वह अपनी टूटी-सी कुटिया में ा पड़ा.

वह अपने चरित्र से कैसा भी था, पर गर में दया और धर्म का अभाव हीं था.

कुछ दयालुजन उसकी कुटिया में ही सके भोजन के लिए रोटी-पानी और विशेष ावश्यक होने पर औषधि भी दे आने लगे.

◘

सी समय नगर का वार्षिक-मिलन-पर्व ा गया.

हो सकता है, वह होली जैसा ही ोई त्यौहार हो.

यथावसर सारा नगर एक बड़ी सभा एकत्र हुआ. सभा के मंच से उनका पूर्व-परिचित-सुदृढ़, गंभीर स्वर लोगों सुना :

"मेरे स्वजनो! स्थितिप्रज्ञ और जीवन क्त पुरुष के बहुत से लक्षण मैंने आप ागों को बहुत दिन पहले बतलाये थे, न्तु उसके लक्षणों में से एक, जो मैंने ापको अभी तक नहीं बताया था, यह भी कि आप वैसे पुरुष के संबंध में अपनी नी-सीखी धारणाओं की कसौटी पर से कभी स्थायी रूप से परख नहीं कते, क्योंकि वैसे पुरुष का मापदंड ापकी मानसिक धारणाओं की सीमा में हीं, उसके बहुत बाहर की वस्तु आपके नगर में मेरा कार्य आज से माप्त होता है और आपको अपना यह तिम संदेश देकर मैं दूसरे नगर को इसी मय प्रस्थान करता हूं."

और लोगों ने देखा, उसका कृशकाय ुख उसकी बहुत पहले की सी अदम्य ाभा से दमक रहा था. मंच से उतरते मय उसकी चाल में एक परम समर्थ म्राट की-सी चेष्टा थी. उसके पग नगर की श्चिमी सीमा पर फैली पर्वत माला की ोर जिस द्रुत गति से बढ़ रहे थे, वह पहले भी भी किसी पांव-पयादे मनुष्य में नहीं खी गयी थी. ◘

पूर्ण भिक्षु

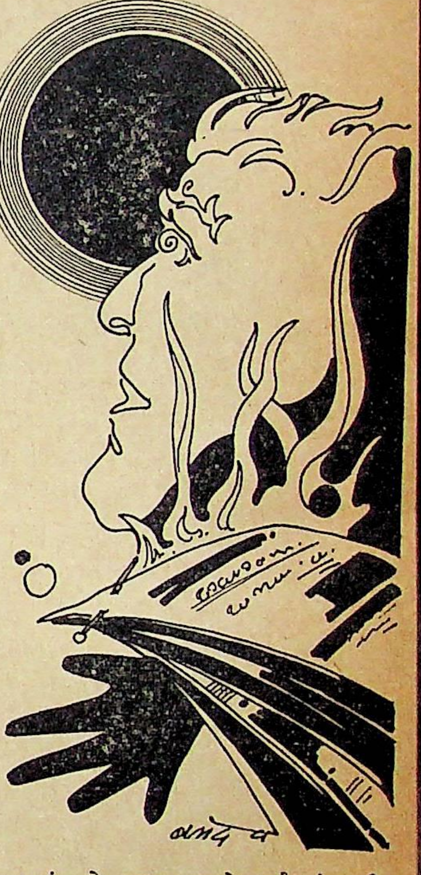

तीसरा पहर बीत चुका था. संघ के सभी भिक्षु अपनी-अपनी झोलियां भिक्षान्न से भरी लेकर लौट चुके थे. केवल एक तरुण-भिक्षु 'अजितकाम' अभी तक नहीं लौटा था.

नियमित प्रतीक्षा की अवधि पूरी करके संघनायक उपगुरु के आदेश से सभी भिक्षु भोजनशाला में आ बैठे. वे भोजन कर उठ ही रहे थे कि अजितकाम ने वहां प्रवेश किया. उसकी झोली खाली थी.

उपगुरु की प्रश्नभरी दृष्टि का अजितकाम ने उत्तर दिया :

"भिक्षा मैंने ली थी, थोड़ी, केवल अपनी उदर-पूर्ति भर के लिए. तदनंतर कुछ नगर जनों के साथ धर्मचर्चा में लग गया. बीच में समय होने पर मैंने वह भोजन प्रसाद पा लिया. वार्ता से निवृत्त होने पर अब यहां आया हूं."

सभी भिक्षुओं की कुतूहल, तिरस्कार भरी आंखें अजितकाम के मुख पर जा पड़ीं. अजितकाम का यह कार्य नियम विरुद्ध ही नहीं, उसकी संकुचित स्वार्थ-वृत्ति का सूचक भी था.

"तुमने संघ की मर्यादा का उल्लंघन किया है अजित, हम तुम्हें अब अपने बीच नहीं रख सकेंगे." उपगुरु के स्वर में तीव्रता का पुट था.

उपगुरु के आदेश पर सभी भिक्षु प्रवचनशाला में एकत्र हुए.

"अजितकाम को विदा देने के ही लिए हम सब यहां एकत्रित हुए हैं." उपगुरु का स्वर अत्यंत कोमल और विनीत था, "बहिष्कार की भावना के साथ नहीं, प्रत्युत अपनी नवोदित आंतरिक श्रद्धा एवं सम्मान-भावना की अंजलि लेकर. अजित बंधु ने आज हमारे धर्म संघ की अनुगति श्रेणी से उत्तीर्ण होकर अग्रगति श्रेणी मे प्रवेश किया है. जो वर्ग के लिए—दूसरों के लिए—मांगता है, वह अनुग, अपूर्ण भिक्षु है और जो केवल अपने ही लिए मांगता है, वही परम लोक-साधक पूर्ण भिक्षु है. अजित बंधु का भिक्षु-पद का कार्य आज से प्रारंभ हुआ है. वह अब इस संघ का अंग नहीं, यह संघ ही उसका अंग है. ☐

प्रेमकथा विशेषांक में

'टॉपिक आफ कैंसर' के प्रख्यात एवं विवादास्पद अमरीकी लेखक हेनरी मिलर से साक्षात्कार—प्रेम, सेक्स, आत्मा और शरीर के संदर्भ एक लेखक के लिए क्या अहमियत रखते हैं ? ये संदर्भ देश और काल से परे भी हैं और उनसे बंधे हुए भी—आखिर क्यों?

"जिस पादरी ने हमें धर्म-पुस्तिका पढ़ाई थी, उसके पास कुछ और चित्र भी थे. उदाहरण के लिए 'अच्छे लड़के का दिल' और 'बुरे लड़के का दिल. वह इन दोनों दिलों को एक जादूगर की भांति एक-दूसरे में गडमड करके हमें दिखाते थे!" . . . अच्छा और बुरा यानी पाप और पुण्य आज इस कदर उलझ गये कि इनमें से किसी एक को परख पाना बहुत मुश्किल हो गया है. मसलन—**"पड़ोसी की मदद करना ईसाई धर्म है, लेकिन एक गाल की दाढ़ी अधूरी छोड़कर भला कोई कैसे जाता?"** . . . ईसा के जन्मदिन पर उनकी स्मृति को ताजा करते हुए प्रस्तुत है पाप और पुण्य के आवरण को स्पष्ट करती एक स्वीकृति पूर्ण कहानी—

जोज़फ गुड की पाप स्वीकृति

• पाल ज़कारिया

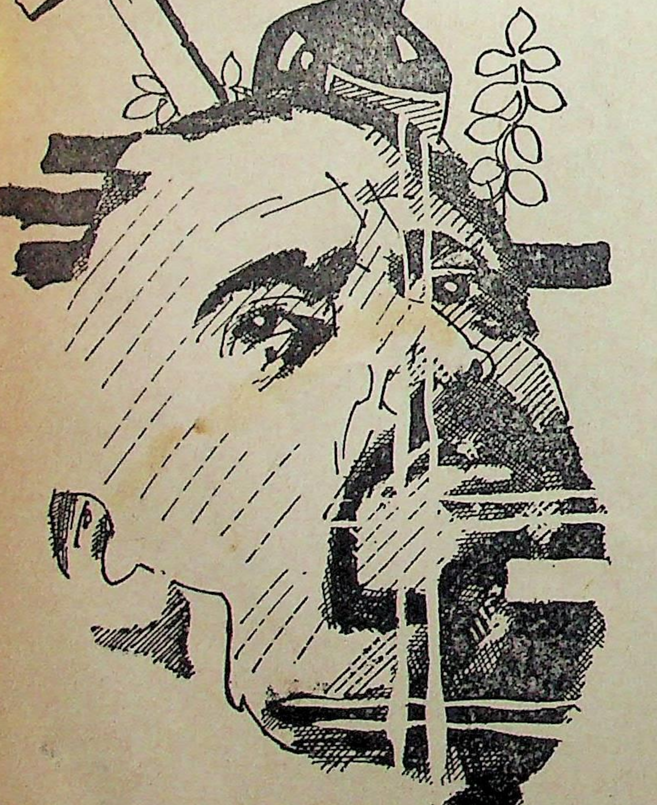

मेरा नाम जोज़फ गुड है. 'गुड' मेरा उप नाम मात्र है. ले
इससे आप यह न समझ लीजिए कि मैं इस नाम के संबद्ध संभावनाओं से परिचित नहीं हूं. जोज़फ नाम तो है, जिसका हम ईसाइयों के आध्यात्मिक जीवन में बहुत महत्त्व है. बचपन में गिरजे का वह भजन मुझे अब तक याद जो हम गाया करते थे:

सेंट जोज़फ के नाम के साथ
असंख्य गुण जुड़े हुए हैं
क्या ऐसे पुनीत बालक को गोद में लेना
अपने-आप में भारी वरदान नहीं है?

गिरजे के एक कोने में फादर जोज़फ की एक मूर्ति पर रखी हुई थी, जिसमें दाढ़ीयुक्त जोज़फ खड़े मुस्करा हैं; उनके एक हाथ में यीशु और दूसरे में शांति-प्रतीक रविवार को दोपहर की प्रार्थना के दौरान हम इसी मेज के घुसकर बैठ जाते थे और अपने गुप्तांगों का पापपूर्ण प्रद करते थे और ऐसा करते समय हमारे मुंह से किलकारियां निक थीं. अपने जीवन में मैंने जो भले-बुरे कर्म किये हैं, शायद उ प्रेरणा-स्रोत यही दुराचरण रहा हो, जो हम उस पुण्यस्थल किया करते थे.

अब मैं पैंतीस वर्ष का हूं. मेरी आधी या उससे अ जिंदगी बीत चुकी है और मेरे पास कुछ भी तो नहीं, अपनी उपलब्धि के रूप में पेश कर सकूं. मैंने शादी भी नहीं क इसलिए कि मैं न तो उसके लिए मानसिक रूप से तैयार पाया और न ही कोई ऐसा उपयुक्त दर्शन मेरे पास था, मुझे ऐसा करने के लिए प्रेरित करता. मैंने कभी मतदान में भाग नहीं लिया, क्योंकि उसके लिए जिस मानसिक संतुलन आवश्यकता होती है, वह मैं कभी नहीं जुटा पाया. सैंकड़ों की हत्या करने को मेरा मन चाहा है, लेकिन क्या यह

है? अक्सर मेरे मन में यह इच्छा हुई है कि मैं सुंदर स्त्रियों के स्नानागार में जाकर अदृश्य रूप से खड़ा हो जाऊं, लेकिन ऐसा हो भी सकता है? अनेक बार मैंने हिमालय पर चढ़ने की ठानी है, किंतु कभी मुझे समय ही नहीं मिल पाया. कभी-कभी मेरे मन में इस प्रकार का अस्पष्ट-सा विचार भी आया है कि मैं मदर टेरेसा के संगठन में शामिल हो जाऊं और उनके काम में हाथ बटाऊं, लेकिन मैं बार-बार भूल जाता हूं. अंततः मैंने यह निर्णय किया कि मैं अपने गांव लौट जाऊं और पहाड़ की चोटी पर वृक्षों के झुरमुट में छिपे अपने घर में जाकर रहने लगूं. लेकिन इस शहर का क्या करूं, जो निरंतर मेरे अहं को पोषित करता रहा है और मुझे कहीं जाने नहीं देता!

इसी उधेड़बुन का यह परिणाम है कि मैं उस समय भी अपने माता-पिता के पास जाकर न रह सका, जबकि उनके जीवन का सूर्य अस्त हो रहा था और उन्हें मेरी आवश्यकता थी. मैं अभागा अपने इसी कमरे में पड़ा अपनी नौकरी की खैर मनाता रहा और यही सोचता रहा कि जब उनकी दशा और बिगड़ जायेगी तो छुट्टी लेकर चला जाऊंगा.

मैं ऊंचाई पर बने शहर के इस मकान में रह रहा हूं. खिड़की में रखी वाट-69 की बोतल में लगे मनी-प्लांट की बेल अपनी नग्न जड़ें पानी में फैलाये ऊपर की ओर चढ़ रही है. मैंने इसे अपने घर के पेड़ों और बाग के पौधों की याद ताजा रखने के लिए लगा रखा है. घर में आने के बाद जब मैं दरवाजा बंद कर लेता हूं तो पत्तों से ढंकी इस खिड़की के माध्यम से मैं बाहर की दुनिया का दृश्य उसी प्रकार देखा करता हूं, जिस प्रकार पहाड़ी पर बने अपने मकान के बरामदे में से देखता. लेकिन यहां चूंकि आप सोलहवीं मंजिल पर हैं, इसलिए यहां से केवल अन्य सोलहा मंजिलें ही दीख पड़ती हैं. और कुछ दिखायी नहीं देता. खिड़की पर पत्तों में टंगे आईने के सामने खड़ा होकर मैं रोज दाढ़ी बनाता हूं. यदि कोई चाहे तो पत्तों को जरा-सा हटाकर नीचे दूर तक का नजारा देख सकता है, लेकिन मैं ऐसा कभी नहीं करता, क्योंकि मेरा सिर चकराने लगता है. जब मैं बीस वर्ष का था, तभी से मैं घुमड़ी का शिकार और उसे अपनी अन्य अनेक महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों की भांति संजोये हुए हूं.

आज सवेरे की ही बात है कि मैं बड़े मजे से पत्तों से घिरे आईने में अपना चेहरा देखकर शेव कर रहा था. जब भी मैं अकेले में अपना चेहरा दर्पण में देखता हूं तो एक काम जरूर करता हूं, मैं अपने होंठ दोनों हाथों से पकड़कर भरसक खींचता और अपने पीले दांतों से खोपड़ी की मुस्कराहट का अभिनय कराता हूं. प्रतिदिन मैं अपने को विश्वास दिलाता हूं कि यह निरंतर बनी घुटी-घुटी-सी मुस्कान ही सब कुछ है. बदहजमी कारण मेरा पेट अक्सर खराब रहता है और इसी से मेरे में छाले पड़ जाते हैं, जिनमें बड़ी पीड़ा होती है. एक दिन मैं अपने होंठ और गाल, दोनों हाथों से खींचकर इन छालों देख रहा था कि मुझे सहसा अपनी मुस्कराती हुई खोपड़ी र आयी और उसने मुझे फंसा लिया.

लेकिन यह सब योंही नहीं हो गया. हम ईसाइयों का कपाल के साथ बहुत ही आध्यात्मिक और घनिष्ठ संबंध है. इसका प्रारंभ गोलगोथा (कपाल) से हुआ था. और उसके बाद हमने कितनी ही बार यरूशलम पर विजय पायी और हमने अपने शत्रुओं के कपालों को अपनी तलवारों और भालों में लगाकर ऊंचा उठाया. यह और बात है कि अंत में यरूशलम हमारे हाथों से जाता रहा. मृत्यु के पश्चात भी हम अपने कपाल दूसरों की तुलना में कुछ अधिक लंबे रखते हैं. चिता की अग्नि में जलकर यदि कुछ बचता है, तो केवल अस्थियां! लेकिन हम मिट्टी में मिलकर अधिक संतोष का अनुभव करते हैं और धीरे-धीरे वर्षा के पानी में घुलकर नयी मिट्टी में परिणत हो जाते हैं, जिसमें से कहीं घास, कहीं फूल,कहीं खाद, कहीं संचित पराग उत्पन्न होता है और वह अदृश्य वाष्पपुंज निकलता है जो रात्रि का आलिंगन करता है. अस्थि-कूप के एकाकीपन में हमारे कपालों का राज्य होगा, जो आकाश में सूर्य की यात्रा; गिरते हुए तारों और चांदनी रात में उड़ते हुए चमगादड़ों के साथ देखकर निरर्थक हंसी हंसेंगे.

■

आज भी मैं कुछ देर तक अपने कपाल की हंसी देखता रहा. फिर मुझे अपने मृत पिता का स्मरण हो आया. उनकी मृत्यु से एक वर्ष पहले जब मैं गांव गया था, तभी मेरी उनसे आखिरी मुलाकात हुई थी. उन्होंने कभी अपने बच्चों से सहायता नहीं ली थी, लेकिन उस दिन उन्होंने मुझसे पांव दबाने के लिए कहा. मैंने भी अपने पिता के काले, झुर्रियोंभरे और सूजे हुए पांव अपने गोरे और बेदाग हाथों में लिये और आहिस्ता-आहिस्ता उन्हें दबाने लगा. बालिग होने के बाद वह पहला अवसर था जब मैंने अपने पिता का स्पर्श किया था. मैं उन्हें देखते हुए कतरा रहा था, उधर उन्होंने भी अपनी नजरें बचा ली थीं. लेकिन उन्हें जो तकलीफ थी, उसने हम दोनों को एक सूत्र में बांध लिया था. वही हम दोनों की बिचौलिया थी. मेरे स्मृति-पटल पर वे सभी स्मृतियां एक-एक करके उभरने लगीं. . .मैं उनके पीछे-पीछे खेतों, पहाड़ी नालों के किनारे पर बारूद का एक थैला, छर्रे और एक धागे में बंधे पक्षी लिये चला जा रहा हूं. मुझे वे दिन भी याद आये जब मैं उनके साथ दरिया के किनारे घास पर बैठा हुआ वायु के स्पर्श से पुलकित और संध्या की छाया से आवृत किसी बड़ी मछली के पानी से मुंह निकालने की प्रतीक्षा किया करता था. मुझे स्मरण हो आये वे दिन, जब मैं पहाड़ी पर उनके पीछे-पीछे दौड़ रहा हूं और दूसरी ओर पहाड़ी के पीछे छिपे गिरजे के प्रांगण से ढोल बजने की ध्वनि सुनायी दे रही है और मेरा सारा शरीर उस जादुई आवाज से पुलकित हो रहा है. पिताजी शांत थे और उस निस्तब्धता के वातावरण में मुझे इलहाम हुआ, जिसमें प्रश्नों का अस्तित्व समाप्त हो जाता है!

उसके बाद मैं लौट आया और शहरी जीवन के गर्त में तब तक छिपा रहा जब तक कि 'तार वाले' ने आकर मुझे वहां से न निकाला.

अभी मैंने एक गाल का शेव ही किया था कि नीचे सड़क पर कुछ अस्पष्ट-सी आवाजें मेरे कानों में आयीं. मैंने मनी-प्लांट के पत्ते हटाकर नीचे की ओर झांका. कैसा मूर्ख था मैं भी! मेरी सतत संगिनी घुमड़ी का चमत्कार देखिए कि नीचे की सड़क ऊपर उठती

हुई दिखाई दी, मानो किसी ने उसे रस्सी से बांधकर खींच लिया हो और उसने मुझे एक धक्का-सा दिया. मैं कुछ देर अपना चेहरा हाथों से ढंके खड़ा रहा, फिर दुबारा बाहर की ओर झांकने लगा. सड़क पर दुर्घटना हो गयी थी. सड़क के बीचों-बीच खड़ा एक ट्रक ऊपर से खिलौना-सा लगता था. लोग ट्रक के नीचे घुसकर कुछ देख रहे थे. यह देखते ही मुझे फिर एक जोर का चक्कर आया और मेरा दिमाग नीचे दूर तक धंसता चला गया. ट्रक, सड़क, भीड़ और जो कुछ भी वहां था, सभी का विलाप मेरे कानों में घुस गया और मैं फिर चकरा गया. खिड़की को कांपते हाथों से पकड़कर मैंने अपना सिर हटाया और खड़ा साबुन के उन बुलबुलों को देखता रहा, जो मेरे चेहरे पर मुरझाकर रह गये थे. मैंने सोचा, भला ऐसे में मेरा क्या कर्तव्य है? क्या मुझे इस चोटी से उतरकर नीचे उन लोगों की मदद के लिए नहीं जाना चाहिए? एक ईसाई होने के नाते मेरा क्या कर्तव्य है? मेरी 'धर्म पुस्तिका' में एक चित्र समारी का है, जो जेरिको को जाने वाली अंधियारी सड़क पर गिरे एक व्यक्ति को निकालने का प्रयत्न कर रहा है और उसका खच्चर पास ही खड़ा उसकी प्रतीक्षा कर रहा है.

▣

जिस पादरी ने हमें धर्म-पुस्तिका पढ़ाई थी, उसके पास कुछ और चित्र भी थे. उदाहरण के लिए 'अच्छे लड़के का दिल' और 'बुरे लड़के का दिल'. वह इन दोनों दिलों को एक जादूगर की भांति एक-दूसरे में गडमड करके हमें दिखाते थे. अच्छे लड़के का दिल उसके मुस्कराते हुए सिर के नीचे ताजा खरबूजे की भांति लटका होता और उसमें से प्रकाश की किरणें निकलती होतीं. ठीक बीच में ईसामसीह सिंहासन पर बैठे हैं. उनके सिर पर मुकुट और शरीर पर राजसी वस्त्र हैं और हाथ में एक दंड है. उनके चरणों में एक सिंह और एक भेड़ बैठी है. फरिश्ते तुरही बजाते हुए उड़ रहे हैं. बगीचों के फूल खिले हुए हैं. दूसरी ओर बुरे लड़के का दिल गहरे रंग और झुर्रीदार खरबूजे की भांति उसकी विकृत और प्रकुपित मुखाकृति के नीचे स्थित है. सिंहासन पर शैतान बैठा है, जिसके सींग और पूंछ दोनों हैं. सिंहासन को खरबूजे से निकली नार्किक लपटें चाट रही हैं और शैतान के हाथ में एक त्रिशूल है. उसके आसपास मकड़ियां, बिच्छू और एक मोर खड़ा है, जो अपने रंग दिखा रहा है और बंदर खड़े मुंह बना रहे हैं. हम नेकी और बदी के इन उद्यानों को विस्मय से देखा करते थे.

लेकिन जो चित्र हमें हमेशा याद रहता था, वह था, समारी और उसके खच्चर का. टट्टू बड़े शांत भाव से खड़ा प्रतीक्षा कर रहा है, सड़क के दोनों ओर विचित्र, अनजान जंगल हैं, जिनमें अज्ञात वृक्ष और खुफिया रास्ते हैं और उस एकाकी मार्ग के प्रत्येक मोड़ और चट्टानों को देखकर हमारे मन वश में नहीं रह पाते थे. हम दूरस्थ जेरिको (फिलिस्तीन का एक नगर) के धुंधले मीनारों को देखते और गुप्त प्रदेशों की कल्पना करते थे. हम कल्पना में ही उस टट्टू के इर्द-गिर्द एकत्र हो जाते, जो शांत भाव से खड़ा बटिया पर जुगाली कर रहा होता और उसे देखकर हमें नेकी और भलाई के नीरव वातावरण का आभास हो जाता.

मेरे गाल पर लगा साबुन सूख चला था.

मैंने तत्काल यह निर्णय किया कि मैं झटपट नीचे जाऊं और उन लोगों की मदद करूं. जी हा, यही मेरा फर्ज भी था. लेकिन तरह? इस प्रश्न का उत्तर मुझे नहीं मिला. मैंने मन में कहा. . अधिक समय नष्ट नहीं करना चाहिए. पड़ोसी की मदद करना धर्म है, लेकिन एक गाल की दाढ़ी अधूरी छोड़कर भला कोई जाता? क्या पता लोग मेरी नीयत पर संदेह कर बैठें. वे यह स सकते हैं कि मैं केवल दिखाने के लिए और खुद को नेक सा करने के लिए यह सब कर रहा हूं. मैंने जल्दी-जल्दी अपने बायें पर पानी लगाया और शेव किया. जल्दी में कई जगह ब्लेड लग गया, लेकिन मैंने सोचा अलमारी में से डिटोल निकालने देर लगेगी, इसलिए पानी से मुंह धोया और अभी तौलिये से ही रहा था कि मुझे याद आया कि मैं पाजामा पहने हुए हूं. व भीड़ है. कहीं मुझे अस्पताल ही जाना पड़ जाये!

लिहाजा मैंने जल्दी से पाजामा उतारा, धुली हुई क और पतलून पहनी, बालों में कंघी की, चप्पल उतारकर मोजे चढ़ाये और जल्दी से जूते पहने. जूतों पर चमक थी, क्योंकि पिछली रात को बारिश में चलने से वे भीग थे. मैंने तावड़तोड़ उन पर ब्रश का एक हाथ मारा, दर में ताला लगाया और लिफ्ट की तरफ जा रहा था कि अपना पर्स याद आया. हो सकता है पैसों की ज पड़ जाये. मैं लौटकर आया और अलमारी में से अपना निकाल लाया. मेरा रूमाल भी पर्स के पास ही रखा इसलिए मैंने वह भी उठाकर जेब में रख लिया और दर में ताला लगाकर नीचे की ओर भागा.

▣

लेकिन लिफ्ट के इंडिकेटर पैनल में अंधेरा था. मैंने दबाया लेकिन पैनल खाली ही रहा. इतने में हमारी जमाद हाथ में बुहारी और बोतल लेकर जीने में आती दिखाय और कहने लगी, "सा'ब, लिफ्ट काम नहीं कर रही औ यहां तक चढ़ते-चढ़ते मर गयी. सा'ब, कल क्रिसमस है क्या आप ईसाई होकर मुझ जैसी गरीब औरत को क्रि की बख्शीश नहीं देंगे?"

चाबी उसे देते हुए मैंने कहा, "सफाई करके चाबी द के ऊपर कगार पर रख देना. मैं नीचे जाकर अभी आता

"क्या आप वह दुर्घटना देखने जा रहे हैं, सा'ब? मैं अभी-अभी देखी है. ट्रक का एक पहिया उस पर से उतर है. बचना तो मुश्किल ही है. उधर उसके बीवी-बच्चे च लिए दूध का इंतजार कर रहे थे." उसने चाबी ली और सिर हिलाती हुई मेरे कमरे की ओर चल दी.

मैं खड़ा सोचता रह गया. नीचे जाने का मतलब था मंजिलों की उतराई, हर मंजिल की बत्तीस सीढ़ियां और रास्ते में कोई मिल गया तो उससे बातें भी होंगी ही, को देखकर नमस्कार करना होगा और किसी को न हुए भी मुस्कराकर देखना पड़ेगा. ऐसे भी अनेक होंगे, लोग बचते हैं और जो हाथ में दूध की बोतलें लिये कांपते चले आ रहे होंगे. करूं तो क्या करूं, मैंने सोचा वापसी तक लिफ्ट ठीक हो जायेगी? पैंतीस साल की में अब न मेरे पांवों में दम है और न फेफड़ों में ताकत.

ड़बुन में मैं इधर-उधर टहलता रहा. इसका मतलब यह है वह व्यक्ति खून में लिथड़ा पड़ा है. कौन होगा भला? कहीं कोई परिचित तो नहीं? ऐसा क्यों न करूं कि दूरबीन कर अपनी खिड़की से ही देखूं.और अगर इतनी देर में लोग उसे अस्पताल ले गये तो? नहीं नहीं, मुझे उसकी कुछ कुछ मदद तो करनी ही चाहिए. अगर दफ्तर जाते समय ट खराब हो जाती तो क्या मैं छुट्टी करके घर बैठ जाता? जी से सीढ़ियां उतरने लगा.

अभी मैं दस सीढ़ियां भी न उतर पाया था कि मेरा हाथ के जंगले पर किसी नरम और गुप्त चीज से टकराया. घूमा और मैंने झुक कर उस स्थान को देखा. जी हां, यह था, जिसका मुझे अंदेशा था. किसी ने नाक सिनककर जंगले पर लगा दी थी.

कुछ ही क्षणों में सीढ़ियों के अनंत ढाल ने बहती हुई की भांति मेरे पांवों को कंपाना शुरू कर दिया. वे लड़ने लगे. कभी तो वे सीढ़ियों पर से फिसलने भी लगे कहीं-कहीं जहां सीढ़ियां नहीं भी थीं, मुझे दिखाई देने. इस प्रकार दसवीं मंजिल के मोड़ पर मैंने एक ऐसी सीढ़ी पैर रखा जो थी ही नहीं और नतीजा यह हुआ कि मैं मुंह बल गिरा...और मुझे लगा वह सीढ़ी मेरा मुंह चिढ़ा रही मैं हड़बड़ाकर उठा. मेरा सिर चकरा गया. मैंने दीवार सहारा लेकर खड़ा होना चाहा तो मेरे पैर जवाब दे गये, अपनी आंखें बंद कर लीं. बंद आंखों के अंधेरे में मेरा जीवन तूफान में झुके हुए वृक्षों की भांति दिखायी दिया. तूफान मौत का था.

झुके-झुके मैंने हाथ फैला दिये और मैं अंदर ही अंदर भीत हो उठा. मेरे स्मृति-पटल पर मेरे पिता की मुखाकृति री—कष्ट से कराहती हुई और निस्तेज जैसी टूटी हुई शाखाओं सूरजमुखी मंद-मंद चमक रहे हों. एक असह्य उदासी की भूति मुझे हुई और दोनों हाथों से अपना चेहरा छिपाये मैंने भगवान का स्मरण किया. मैंने अपनी प्रार्थना याद करने की की. लेकिन प्रार्थना काहे के लिए? आओ, सब कुछ भूल के लिए प्रार्थना करें. आओ प्रार्थना करें! ईश्वर हमें शांति दे, सबसे पहले जो प्रार्थना याद आयी, वह यह थी: हे मेरी आत्मा, ईश्वर की स्तुति कर, उसके वरदान को न भुला. फिर मैंने प्रकार प्रार्थना की : हे परमात्मा! यदि तू हमारे पापों को याद गा, तो कौन बच पायेगा?

मेरे अनगिनत पापों की
गिनती न कर
और मुझे...से परख.

मनुष्य का जीवन घास की भांति है. वह खेतों के फूलों की तरह लता है और जब लू चलने, लगती है तो मुरझा जाता है. जहां उगा था, वह जगह भी लोग भूल जाते हैं. यह कैसी भयानक ह है, जहां मुझे अपने परमात्मा का साक्षात्कार हुआ... मत के दिन जब क्रास का निशान लिये फरिश्तों के साथ स्वर्ग में आयेंगे और स्वर्ग के द्वार खोल दिये जायेंगे, कब्रों से मुर्दे अपने-अपने शरीरों से युक्त उठेंगे और दुष्टों को साधुओं से अलग किया जायेगा.

> **"मुझे सबसे पहले जो प्रार्थना याद आयी वह यह थी—हे मेरी आत्मा, अपने ईश्वर की स्तुति कर, उसके वरदान को न भुला! फिर मैंने इस प्रकार प्रार्थना की—हे परमात्मा! यदि तू हमारे पापों को याद रखेगा तो कौन बच पायेगा!"**

मैंने चौंककर आंखें खोल दीं. कोई मुझे कंधे पकड़कर हिला रहा था. लोग मुझे घेरे खड़े थे. मैं दीवार से हटा और मूर्खों की भांति उन्हें घूरने लगा. मेरे चेहरे पर हवाइयां उड़ रही थीं. यह क्या गजब हो गया! क्या मैं एक अच्छा ईसाई बनने इसलिए चला था कि खुद ही किसी दुर्घटना का शिकार हो जाऊं? चोरी-छिपे अपने गालों से आंसुओं की नमीं पोंछते हुए मैंने उपस्थित जन-समुदाय से कहा, "मुझे चक्कर आ गया था" उन्होंने हमदर्दी में अपने सिर हिलाये... यह लिफ्ट भी एक लानत है. इसकी शिकायत करनी चाहिए!

◆

उन सबको वहीं छोड़कर मैं सीढ़ियों पर बेतहाशा दौड़ा और नीचे भीड़ के पास पहुंच गया. एक शोर करती हुई एंबुलेंस भीड़ को चीरती हुई मेरे समीप से गुजरी. मैं अपनी कांपती टांगों को किसी तरह घसीटता हुआ भीड़ तक पहुंचा. न जाने उन लोगों ने क्या-क्या कहा, जिनसे मैं टकराया, लेकिन मैंने कोई ध्यान न दिया. वाहन का दरवाजा पहले ही खुला था. जब मैं दोनों हाथों से भीड़ को हटाता हुआ वाहन तक पहुंचा तो उसमें से दो अनुचर स्ट्रेचर लिये उतरे और उन्होंने सड़क पर खड़े व्यक्ति को उठाकर उस पर लिटाया. मैंने अंतिम धक्का लगाया और मैं स्ट्रेचर के करीब था. आधा स्ट्रेचर एंबुलैंस में जा चुका था, लेकिन पूरे स्ट्रेचर को वे अंदर ले जा नहीं पाये थे कि मैंने उसका एक सिरा थाम लिया. मेरे हाथ उस आदमी के पैर आये...और वे काले झुर्रीदार मृत पांव एक क्षण के लिए मेरे हाथों में रहे!

फिर दरवाजा बंद हुआ और एंबुलैंस चीखती-चिल्लाती वहां से चली गयी. उसके निष्प्राण पैरों पर लगे रेत के कुछ कण मेरे हाथों पर चिपके गये मानो हमारे क्षणिक संपर्क का प्रतीक हों. देखा आपने, मैं कितना अभागा हूं, कितना अभिशप्त. तो क्या आप अब भी यहीं कहेंगे कि मैंने अपनी ओर से कोई प्रयत्न नहीं किया? और कल क्रिसमस है. जरा सोचिए तो, अभी मुझे बत्तीस जीने चढ़कर उसके लौह-शिखर पर जाना है. कृपया, परमात्मा से मेरे लिए प्रार्थना करें! □

● अनुवाद : नूरनबी अब्बासी
द्वारा : शब्दकार, गली डकौतान,
तुर्कमान गेट, दिल्ली-6

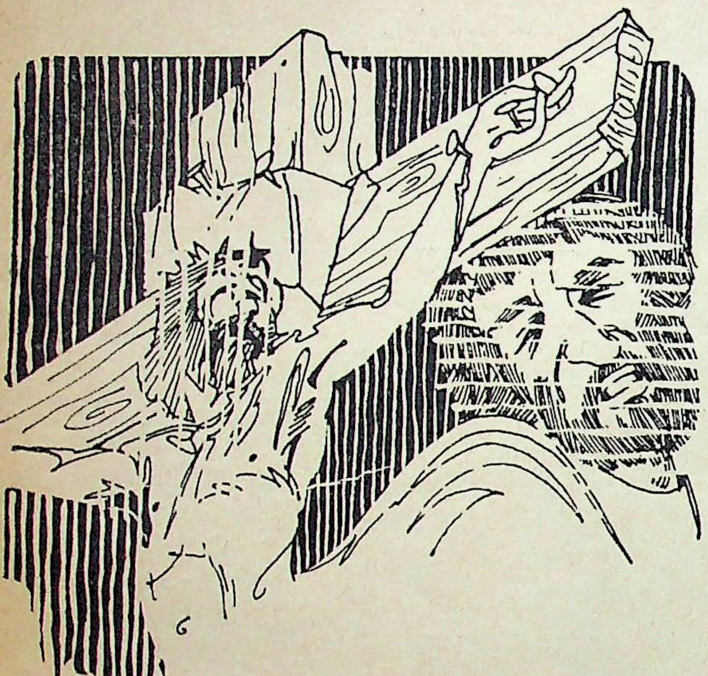

चित्रांकन : पाली

लाज़ारस

• कारेल चापेक

“. . . . मुझे पता है, वहां क्या क्या हो चमत्कार होगा, चमत्कार. बस, वो ज सा अपनी उंगली उठायेंगे और जेल दीवारें ढह जायेंगी. और फिर उन स समझ में आ जायेगा कि वो दरअस कौन. . . ”

प्रस्तुत है विश्वास, क और मौत के आतंक से सराबोर चेको वाकिया के पुरोधा लेखक कारेल च की एक कथाकृति.

यह खबर बेथानी में भी पहुंच गयी कि गैलीलिया के ईसा को पकड़कर सींखचों में बंद कर दिया गया है.

मार्था ने सुना तो वह हाथ मलने लगी और उसकी आंखों से टप-टप आंसू गिरने लगे, “और लो! मैं कब से कह रही थी! वो येरूशलम गये ही क्यों? वो यहीं क्यों नहीं रहे? यहां किसी को उनका पता भी न लगता. चुपचाप अपनी बढ़ईगीरी करते रहते. अपने पिछवाड़े के आंगन में वो अपनी सुथारशाला खोल लेते . . .” और वह फफकने लगी.

लाज़ारस के चेहरे का रंग उड़ गया और आंखों में अजब-सी कौंध आ गयी, “ऐसा नहीं कहते मार्था!” वह बोला, “येरूशलम तो उन्हें जाना ही था. फ़ारीसियों और पब्लिकनों के बीच न जाते तो क्या करते! सच्चाई तो मुंह पर ही बतायी जाती है. औरतों को कुछ भी समझ नहीं होती!”

“मैं सब समझती हूं,” मेरी धीरे से बोली. वह खो-सी गयी थी, “और मैं कहे देती हूं. मुझे पता है, वहां क्या-क्या होगा. चमत्कार होगा, चमत्कार. बस, वो जरा-सा अपनी उंगली उठायेंगे और जेल की दीवारें ढह जायेंगी. और फिर उन सबकी समझ में आ जायेगा कि वो दरअसल हैं कौन. सब के सब उनके पैरों में गिर पड़ेंगे और चिल्लाने लगेंगे, चमत्कार! चमत्कार!”

मार्था की आवाज रूखी-सी थी, “देखती रहो! उनसे कभी खुद की देखभाल हुई है? अपने वास्ते तो वो कुछ भी नहीं करेंगे. उंगली तक नहीं हिलायेंगे अपने लिए. हां, अगर मदद वाले आ जायें तो और बात है.” मार्था की आंखें फैल गयीं, पता, वो लोगों की राह ही देख रहे हों कि लोग आयें और करें. कितने लोगों ने उनकी बानी सुनी है, कितनों की मदद चुके हैं! वो सोच रहे रहे होंगे कि बस, अब सारे लोग खबर सु दौड़े आ रहे होंगे!”

लाज़ारस बोल पड़ा, “मुझे भी ऐसा ही लगता है. अ लोग डरती क्यों हो? सारा जूडिया देश उनके साथ है. ये कह कुछ अच्छा नहीं लगेगा कि. . .अरे सुनो, मैं जाकर दे मार्था, मेरा सामान तैयार कर दो. मैं येरूशलम जाता हूं.”

मेरी उठ खड़ी हुई, “मैं भी चलूंगी. जेल की दीवारें टूट ज और वो दिव्य ज्योति की तरह प्रकट होंगे. मार्था, ज़रा सोच कैसा लगेगा वह दृश्य! मैं कहती हूं, उनका कोई मुकाबला कर सकता!”

मार्था कुछ कहने ही जा रही थी कि रुक गयी, “ठीक है लोग हो आओ!” वह बोली, “लेकिन घर में भी कोई चाहिए. मुर्गियों और बकरियों को चारा देना है. मैं अभी एक में तुम्हारे कपड़े तैयार कर देती हूं और दो-एक रोटियां सेंक हूं. मुझे बड़ा अच्छा लग रहा है कि तुम वहां जा रहे हो!” कहा.

जब वह लौटी तो चूल्हे की आंच से उसका मुंह लाल था. ला

ल्कुल पीला पड़ गया था और कसमसा रहा था. कहने लगा, सुनो मार्था, मेरी तबीयत ठीक नहीं लग रही है. बाहर मौसम सा है?''

''अरे, बहुत प्यारा और गुनगुना,'' मार्था ने जवाब दिया, ''तुम्हें हुत अच्छा लगेगा.''

''यहां तो अच्छा होगा, पर येरूशलम में जब देखो, तब किट-कटाती ठंडी हवा चलती रहती है.'' लाज़ारस बोला.

''मैंने तुम्हारा गरम लबादा रख दिया है.'' मार्था बोली.

लाज़ारस भुनभुनाया, ''गरम लबादा! उसमें तो पसीने से र हो जाऊंगा और फिर बर्फ की तरह जम जाऊंगा. उसका क्या ायदा? देखो तो, मुझे बुखार तो नहीं है? मैं सफर में बीमार हीं पड़ना चाहता. मेरी के होने न होने से कुछ नहीं होगा. और गर मैं ही बीमार पड़ गया तो उनकी क्या मदद करूंगा?''

मार्था ने प्यार से उससे कहा, ''तुमको बुखार नहीं है.'' फिर न ही मन सोचने लगी, 'हे भगवान, जब से लाज़ारस का नया न्म हुआ है, यह कितना अजीब हो गया है!'

''उस बार ठंडी हवा ने ही तो मुझे दबोच लिया था. उस बार ब...जब मैं इतना बीमार हो गया था,'' अनमनेपन से ाज़ारस बोल रहा था. वह अपनी पिछली मौत को याद नहीं रना चाहता था, ''प्यारी मार्था, क्या बताऊं, तभी से मुझे कभी न महसूस नहीं हुआ. ये सफर, ये आपाधापी...मुझे गता है, मैं यह सब बर्दाश्त नहीं कर पाऊंगा, लेकिन जाऊंगा तो रूर ही. बस, ये सिहरन जरा-सी कम हो जाये.''

''जाना तो है ही,'' मार्था का दिल भारी था, ''उनकी मदद लिए किसी को जाना ही चाहिए. आखिर उन्होंने ही तुम्हें... गा किया था, है न?'' उसके स्वर में अनिश्चय आ गया, क्योंकि से लगा कि मुर्दों में से उसके जिंदा किये जाने का जिक्र करना ोड़ी नादानी होगी, ''लाज़ारस, सोचो तो भला! जब तुम उनको ाजाद करा लोगे तो उनसे फिर मदद मांग सकते हो, अगर तुम्हें ह लगे कि तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं है.''

लाज़ारस ने आह भरकर कहा, ''सो तो है ही, पर मान लो, वहां तक पहुंच ही न पाऊं! या मान लो, मैं बहुत ही देर से पहुंच ाऊं! तब? ये सब बातें भी सोचनी पड़ेंगी. और मान लो, येरूशलम दंगा हो जाये, तब? देवीजी, आपको इन रोमन सिपाहियों बारे में कुछ भी पता नहीं है. हे भगवान, काश मैं भला-चंगा ोता!''

मार्था बोल पड़ी, ''वाह, तुम भले-चंगे तो हो लाज़ारस! न्होंने जब से तुम्हें चंगा किया है, तब से तुम्हारा ठीक रहना ाजिमी है.''.

''हूं!'' लाज़ारस कट गया, ''मैं ठीक हूं या नहीं, यह मुझसे यादा कौन जान सकता है! मैं यही कह सकता हूं कि उस वक्त लेकर अब तक एक पल भी मुझे बेचैनी से छुटकारा नहीं मिला. सा नहीं है कि मुझे ... फिर से अपने पैरों पर खड़ा करने के दले में उनका शुक्रगुजार नहीं हूं. तुम ऐसा मत सोचना, मार्था! र अगर तुम वह जानती, जो मैंने जाना है... कि ... कि ...'' से झुरझुरी-सी आ गयी और उसने अपना मुंह ढांप लिया. ''मार्था! हरबानी करके मुझे अभी अकेला छोड़ दो. मैं अभी ठीक हो ऊंगा. बस एक मिनट लगेगा—यह दौरा निकल जायेगा.''

मार्था चुपचाप जाकर आंगन में बैठ गयी. वह अपनी सूखी अपलक आंखों से सामने घूरती रही. उसके हाथ जुड़े हुए थे, पर वह प्रार्थना नहीं कर रही थी. काली मुर्गियां ठिठककर कनखी से उसे देखने लगीं. उन्हें उम्मीद थी कि वह दाने देगी, पर जब ऐसा होता नहीं दीखा तो वे छांह में ऊंघने चली गयीं.

लाज़ारस दबे पांव बरामदे से निकल गया. उसका रंग जैसे मौत से सफेद हो गया था और दांत बज रहे थे. उसने हकलाते हकलाते कहा, ''मार्था, सुनो, मैं ... मैं नहीं ... अभी ... हालांकि मुझे जाना है ... शायद कल तक चला जाऊं.''

मार्था के गले में जैसे कुछ फंस गया, ''तुम जाकर लेट जाओ,'' किसी तरह उसने कह ही दिया, ''तुम... तुम नहीं जा सकते.''

''मैं जाना चाहता था,'' लाज़ारस हकला रहा था, ''पर तुम सोचो मार्था ... शायद कल ... पर मुझे घर में अकेले मत छोड़ना, सुना! अकेले मैं यहां क्या करूंगा?''

मार्था उठ खड़ी हुई, ''बस, तुम जाकर लेट जाओ,'' अपनी हस्बमामूल कड़ी आवाज में वह कह रही थी, ''मैं तुम्हारे पास ही रहूंगी.''

तभी मेरी सफर की पूरी तैयारी के साथ बाहर आंगन में निकल आयी, ''तो लाज़ारस, चलें हम लोग?''

''लाज़ारस नहीं जा सकता.'' मार्था ने भर्राई आवाज में कहा, ''उसकी तबीयत ठीक नहीं है.''

''तब मैं अकेली ही चमत्कार देखने जाऊंगी.'' मेरी ने आह भरी.

लाज़ारस की आंखों से आंसू टपकने लगे, ''मार्था, मेरी मी कितनी इच्छा थी कि मैं जाऊं ... लेकिन ... काश मुझे फिर से ... फिर से ... मर जाने का इतना खौफ न होता!'' □

● अनुवाद : गिरधर राठी

ग़ज़ल

इक तरफ बागी मशालें इक तरफ है शा'जहां,
देखना है यह कहानी खत्म होती है कहां.

पत्थरों का खौफ होगा शीशमहलों के लिए,
काटकर चट्टान को हमने बनाया है मकां.

बिजलियों पर टिप्पणी भी दूं मुझे ये हक नहीं,
गो चमन में सिर्फ मेरा ही जला है आशियां.

किस बहर में इस शहर की धड़कनें बांधूं यहां,
हर नज़र में हैं शरारे हर जिगर में है धुआं.

पंख जलकर ही रहे संपातियों के स्वप्न के,
है ज़मीं आखिर ज़मीं, है आसमां फिर आसमां.

▣ शिवओम अंबर

धारावाही उपन्यास : चौथी किस्त

खुदा सही सलामत है

'खुदा सही सलामत है!' यह कोई खबर नहीं है, क्योंकि खुदा तो जहां का भी होगा—आसमान का या जमीन का—सही सलामत ही होगा. सवाल तो सिर्फ बंदों की सलामती का है. बंदों की सलामती की पड़ताल करते रवींद्र कालिया ने इन्हें अपने उपन्यास के पात्रों में ढाला है. ये पात्र किसी एक गली के होते हुए भी एक गली, एक शहर या एक युग तक सीमित नहीं रहते. बल्कि पूरी इंसानियत का प्रतिनिधित्व करते हैं. ये आपके सामने आते हैं और अपनी छोटी-सी भूमिका निभाकर चले जाते हैं. और पीछे छोड़ जाते हैं एक सवाल— बंदों की सलामती का सवाल!

अगस्त, अंक-2 : 1980 में प्रकाशित 'हुस्नाबाई का भाषण' उपन्यास की शुरुआत थी. पहली किस्त में आपकी मुलाकात हुई थी शिवलाल से. फिर आप मिले हैदरी बी से दूसरी किस्त में और तीसरी किस्त में मिले मल्लू से. इस बार हाजिर हैं पंडिताइन.

● रवींद्र कालिया

कई रोज तक पंडिताइन का बाहर नल पर नहाने का
नहीं हुआ. कोठरी में पहले से ही इतनी सीलन थी
नहाकर उसे और सीलन से नहीं भरना चाहती थी. पंडित
उसकी बोल-चाल बंद थी. पंडित आता तो वह चुपचाप थाली
देती. एक-दो बार पंडित ने कोई किस्सा सुनाकर बातची
करनी चाही मगर पंडिताइन उठकर बाहर चली गयी.
पंडित ने धीरे-से उसे छूने की कोशिश की तो वह ऐसे तड़कक
बैठी जैसे पंडित के हाथ न हों, कोई सांप हो.

हैदरी कई दिनों से पंडित और पंडिताइन, दोनों को
उखड़े देख रही थी. एक दिन उसने पंडिताइन के बालों में तेल
समय पूछा, "का बात है बहू. पंडितजी से झगड़ा हो गया है

पंडिताइन रोने लगी, ''सहर में तो तुम्हीं रहि सकत हो. ाने का कोई परबंध, न पहरने का. ऊपर से हर वक्त बदमिजाज मी की घुड़की सुनो. मैं तो लौट जाऊंगी. देहात में कम से कम जून रोटी तो मिल जात है इज्जत के साथ.''

हैदरी भैरूलाल के यहां काम करने की बात पर दोनों में रार सुन चुकी थी. बोली, ''तुम पंडित की बात में न आओ. चुप- नौकरी कर लो, जहां वह कहता है. घर में दो पैसे आयेंगे जी का क्लेश भी कम होगा.''

''नौकरी करने भी देवें. पहले खुद ही कहत रहे कि नौकरी लो. जब मैं तैयार हो गयी तो लगे अनाप-सनाप बकन.''

''उसकी बात पर न जाओ. मरद ऐसे ही होते हैं. आदमी वह अच्छा है, इस बात को गांठ बांध लो. इतने बरस यहां रहा मजाल है किसी की बहू-बेटी की तरफ आंख उठायी हो.''

इस बात से पंडिताइन को हल्की-सी खुशी हुई. दूसरे हैदरी ने इतना हल्का कर दिया था कि उसे पंडित की ज्यादतियों पर आने लगा.

''मेरी मानो तो एक बात कहूं. यहां बगल में मास्टर सीताराम- रहते हैं, कई बार किसी काम करै वाली को ढूंढने के लिए कह हैं. चलो तुम्हें मिलवा लाऊं.''

''उनसे पूछ ल्यों तब तो.''

''मैं पूछ लूंगी.'' हैदरी ने कहा और पंडिताइन को लगभग घसी- हुए मास्टरजी के यहां खींच ले गयी.

मास्टरजी थोड़ी दूर पर ही रहते थे. लगभग रिटायर होने को थे. एक लड़का ए. जी. के दफ्तर में बाबू था. और दूसरा किताबों धंधा करता था.

मास्टरजी बाहर चौतरे पर बैठे अखबार पढ़ रहे थे. दूर से ही की आवाज सुनकर चौकन्ने हो गये.

''सलामालैकुम मास्टर साब!'' हैदरी दस मीटर दूर से ही लायी.

''वालकुम हैदरी.'' मास्टर साहब ने चश्मा उतारकर हाथ में लिया और हैदरी के साथ घूंघट में किसी औरत को देखकर गये कि हैदरी महरी का इंतजाम करने में सफल हो गयी है.

''अभी देहात से आयी है, इसलिए शरमा रही है. ऐसी नेक जिन आपकी न मिलेगी मास्टर साब.'' हैदरी बोली, ''दिन बार तो स्नान करती है. हर दूसरे दिन तो इसका व्रत होता है.''

''जाओ, अंदर बहूजी से मिलवा दो.'' मास्टर साहब ने कहा फिर अखबार में डूब गये. मगर अखबार में उनका मन नहीं रहा था, दिन में कई बार वही-वही समाचार पढ़ चुके थे.

मास्टरजी हाथ में चश्मा थामे अंदर दालान में चले गये. रनी पंडिताइन से एक ही बात पर उलझ रही थी कि उसे बर्तन लने पडेंगे. पंडिताइन इसके लिए तैयार न थी. वह खाना बनाने यार थी, चालीस रुपये भी उसने मंजूर कर लिये, मगर बर्तन म पर वह घूंघट निकाल लेती थी.

मास्टरजी ने पंडिताइन का चेहरा देखा तो समझ गये कि ी कोई मुसीबत की मारी ब्राह्मणी है. बोले, ''अरे मैंने कहा, बर्तन का काम नहीं करना चाहती तो न सही. तुम्हारा कुछ तो हल्का होगा.

मास्टरनी भड़क गयी, हाथ नचाकर बोली, ''ठीक है, खाना तो यह नवाबजादी बनाये और बर्तन बैठकर हम मलें! इस बुढ़ौती में मेरी यही गति लिखी थी!'' मास्टरनी अचानक रूठ गयी.

मास्टरजी उठकर बाहर चले आये और चौतरे पर बैठकर पुनः वही-वही खबरें पढ़ने लगे.

पंडिताइन सादालौह औरत थी, मास्टरनी की बात से पिघल गयी. हैदरी से बोली, ''बर्तन भी हम मल दें मगर पंडितजी सुनेंगे तो घर से निकाल देंगे.''

''पंडित को बताना ही मत.'' हैदरी ने कहा और अंदर जाकर मास्टरनी के पैर दबाने लगी, ''बेचारी मुसीबत की मारी है. आदमी ले-देकर सौ रुपल्ली कमाता है. उससे होता ही क्या है. यह भली औरत तो बर्तन भी मल लेती, मगर पंडित सुनेगा तो पगला जायेगा.

मास्टरनी सुबह रोज गंगा-स्नान के लिए पैदल जाती थी, और इस समय हैदरी से पैर दबवाकर उसे बहुत भला लग रहा था, बोली, ''हैदरीबी, तुम सोचो. मैं तो बर्तन मलूं और यह राजकुमारी खाना पकाये.''

''मैंने हल निकाल लिया है.'' हैदरी ने कहा, ''अगर पंडित को खबर न लगे तो यह चुपचाप सब काम कर लेगी.''

''एक और बात है, हैदरीबी,'' मास्टरनी ने कहा, ''घर में दो-दो जवान बेटे हैं. ऐसी जवान औरत को रखते हुए मुझे डर भी लग रहा है.''

''आपके जैसे बेटे किसके होंगे.'' हैदरी बोली, ''अब तो शादी रचा ही दो अम्माजी. एक-से-एक रिश्ते आते होंगे.''

मास्टरनी अपने बेटों की बढ़ाई सुनकर बहुत खुश हो गयी, जबकि मन-ही-मन वह बेटों से इतनी खुश न थी. अभी से वे लोग अपनी आमदनी छिपाने लगे थे. बहुएं आ जायेंगी तो एक कौड़ी भी मास्टरनी के हाथ पर न धरने देंगी.

''ठीक है हैदरी बी, अगर तुम कहती हो तो पंडिताइन को काम पर लगा लो. मगर यह उसे समझा देना कि यह मास्टर सीताराम का घर है. यहां किसी तरह की गंदगी वह न फैलाये.''

अगले रोज सुबह छह बजे पंडिताइन मास्टर सीताराम के घर की सांकल बजा रही थी. मास्टरजी ही ने दरवाजा खोला. उन्होंने दरवाजा खोला और बोले, ''बिटिया, इतनी जल्दी क्यों चली आयी. अभी तो घर में सब लोग सो रहे हैं.''

''जब तक वे लोग जागेंगे, मैं बर्तन मल लूंगी.'' पंडिताइन ने कहा.

''ठीक है, ठीक है.'' मास्टरजी ने दरवाजा बंद किया और पंडिताइन को रसोई घर तक ले गये. कल रात लड़कों के कुछ दोस्त आये थे. घर के तमाम बर्तन नल के पास पड़े हैं. बतनों पर बहुत चिकनाई थी. पंडिताइन ने सोचा संपन्न लोगों का घर है. उसके यहां तो जूठे बर्तन नल के नीचे रख दो तो धुल जाते हैं.

मास्टर ने बड़े इत्मीनान से पंडिताइन के गाल थपथपा दिये, ''मुझे दुःख है, तुम्हें बर्तन भी मलने पड़ रहे हैं.''

पंडिताइन ने अपनी धोती को ठीक किया, एक नजर मास्टरजी की तरफ देखा और बर्तन मलने बैठ गयी. घर में मास्टरजी के अलावा सब लोग सो रहे थे. मास्टरनी गंगास्नान के लिए जा चुकी थी.

मास्टरजी पंडिताइन के पास खड़े होकर चाय बनाने लगे. उन्होंने दो कप पानी अंगीठी पर उबलने को रख दिया, ''चाय पी लेती हो?''

पंडिताइन ने नजर उठाकर मास्टरजी की तरफ देखा और

बोली, "देहातों में तो कोई चाय का नाम नहीं लेता. मगर देखती हूं, सहर के लोगों को इसका चस्का लग गया है."

मास्टरजी हंसे और एक गिलास में चाय बनाकर पंडिताइन को थमा दी. "लो महराजिन, तुम भी पीकर देखो."

"न न, हम चाय न पीब." पंडिताइन बोली.

"अरे पी लो. एकदम तबीयत अच्छी हो जायेगी."

"मास्टरजी, मेरी तबीयत खूब अच्छी है." पंडिताइन बोली.

मास्टरजी चाय का प्याला थामे उसके पास खड़े रहे. पंडिताइन ने साड़ी भींगने के भय से जांघों में खोंस ली. पंडिताइन ने देखा, मास्टरजी उसकी पिंडलियों को बड़ी दिलचस्पी और उत्सुकता से देख रहे थे. उसने झट से पिंडलियों पर धोती ओढ़ ली और बर्तन मलने में जुट गयी.

मास्टरजी के हाथ में चाय का गिलास कांप रहा था.

"मैंने तो बड़ी मोहब्बत से चाय बनायी थी." मास्टरजी बोले और गिलास पंडिताइन के पास जमीन पर रख दिया.

पंडिताइन ने धोती बदन पर कंबल की तरह ओढ़ ली और चलने के लिए उठ खड़ी हुई.

"तुम्हारी चप्पलें कहां है?"

"चप्पल हम नहीं पहनत." पंडिताइन बोली.

पंडिताइन नंगे पांव थी. उसने पैरों पर लाल आलता मल रखा था. और चांदी के पाजेब पहन रखे थे. वह छम-छम करती चली गयी तो मास्टरजी को बहुत अकेला लगा.

गंगाजी से लौटकर मास्टरनी ने देखा सुबह के अधिकांश काम पंडिताइन निबटा गयी थी. उसने लौटते ही एक-एक डिब्बा
देखा कि वह क्या-क्या चीज चुराकर ले गयी है. थोड़ी
मास्टरजी ऊपर आये तो मास्टरनी ने कहा, "आप मानें या
मगर वह एक चोर औरत है. देखिए, चीनी और चायपत्त
कम रह गयी है."

मास्टरजी ने यह बताना उचित न समझा कि उन्होंने
प्याला चाय बनायी थी. मास्टरजी को हतप्रभ देखकर
ने दूध का बर्तन उघाड़कर देखा, उसकी अनुभवी आंखें
हो गयीं कि दूध में भी गड़बड़ी की गयी थी.

माटस्रजी बाहर धूप की इंतजार में बैठ गये और
पढ़ने लगे.

मास्टरनी देर तक कुढ़ती रही, "लगता है यह चुड़ैल
बर्बाद कर देगी."

▣

अगले रोज पंडिताइन ने अभी दरवाजा भी नहीं खटखटा
मास्टरजी ने दरवाजा खोल दिया, "राम-राम बिटिया. ब
अभी नहाने गयी हैं. मैंने सोचा महाराजिन को दरवाजा
अंदर जाऊं. दूसरे अखबार भी इसी समय आता है."

पंडिताइन अपने को समेटते हुए अंदर आ गयी. मा
दरवाजा बंद किया और तेज चलते हुए पंडिताइन के बरा
गये. मास्टरजी ने कंबल ओढ़ा हुआ था और अपना
निकालकर पंडिताइन की पीठ थपथपाते हुए बोले, "अरे म

हिन्दी में लिखी गई विधि का पुस्तकों पर पुरस्कार

भारत सरकार प्रत्येक वर्ष हिन्दी में लिखी गई विधि की पुस्तकों पर १०,००० रु० के दस पुरस्का
देती है. १९८० के पुरस्कार पाने के लिए १९८० में लिखी गई पांडुलिपियां या प्रकाशित पुस्त
१५ जनवरी, १९८१ तक पहुंच जानी चाहिए.

पूर्ण विवरण और विहित प्रवेश-पत्र के लिए निम्नलिखित पते पर लिखें:—

प्रकाशन और विक्रय प्रबन्धक

विधि साहित्य प्रकाशन

विधि, न्याय और कम्पनी कार्य मंत्रालय,
विधायी विभाग,
भगवान दास मार्ग,
नई दिल्ली - ११०००१

डीएवीपी ५९६(३)/

जाड़ा भी नहीं लगता? माघ महीने में भी तुम बिना गर्म कपड़ों .”

पंडिताइन ने धोती के अंदर ही अपनी दोनों बाहें छिपा रखी मास्टरजी के कंबल से निकले गर्म हाथ उसने अपनी ठंडी पीठ हसूस किये और जल्दी से सीढ़ी चढ़ गयी. मास्टरजी का आज ाय पीने का इरादा हो रहा था, मगर जिस घर में चायपत्ती, इस तरह तोल-नापकर रखी जाये, वहां कोई चीज भी क्या कता है. उन्हें मास्टरनी पर बहुत क्रोध आया, यह मैं ही था कि बरस निभा ले गया. दस-दस घंटे ट्यूशनें कीं, मगर कभी एक भी जेबखर्च न बचाया. यह औरत है कि इसे चीनी, दूध जात से भी ज्यादा प्रिय है.

मास्टरजी का मूड ऑफ होता चला गया. मास्टरजी अपना तभी तक ऐसा रखना चाहते थे जब तक बच्चे न जग जायें मास्टरनी स्नान से न लौट आयें. आखिर जब उनसे और न गया तो कमरे में टहलने लगे और कुछ ही देर बाद वह अच्छी से कंबल ओढ़े पंडिताइन के पास जा खड़े हुए. इतना पास खड़े ये कि जैसे मास्टरजी ने पंडिताइन के बैठने के लिए अपने पैरों टरा रख दिया हो. मास्टरजी ने पांव में गर्म मोजे टांग तक चढ़ा थे. पंडिताइन को लगा मास्टरजी के पैर सुलग रहे हैं. उसने ही मन सोचा कि मास्टरजी को कोई रोग है और ये कोई अच्छा मी नहीं है.

“मैंने अपनी जिंदगी के बयालीस वर्ष इस घर को खड़ा करने में दिये. अब ज़ाकर इतमीनान हुआ. दोनों बच्चे पढ़-लिखकर न हो गये. मकान खरीद लिया. अब चिंता है बहुओं की. न कैसी आती हैं, आजकल की लड़कियों से तो भगवान ही बचाये.” जी पटरा हिलाते हुए बोले.

पंडितजी के पैर लगातार जुंबिश कर रहे थे. पंडिताइन और सरक गयी. लगभग उसी गति से कच्चे धागे से बंधे रजी के पांव भी. आखिर पंडिताइन से बर्दाश्त न हुआ, उसने तीखी नजर से मास्टरजी की तरफ देखा और पटरे से उतरकर मलने लगी. मास्टरजी ने अनुमान लगाया कि पंडिताइन द पहलू बदलना चाहती हैं. इस बार फिर उन्होंने पटरे की का निभानी चाही तो पंडिताइन उठकर खड़ी हो गयी, “यह करत हो मास्टरजी.”

“कुछ नहीं, कुछ नहीं.” मास्टरजी ने कहा, “अब टांगें भी साथ दे रही हैं. खड़ा होता हूं तो पैर कांपने लगते हैं. बैठता हूं तो पड़ जाते हैं.”

“आप भी गंगास्नान किया करो.” पंडिताइन ने कहा, “हमने गी में कभी दूसरे का जूठन नहीं मला. पंडितजी को भनक भी गयी तो कान पकड़कर देहात रवाना कर देंगे.”

मास्टरजी को कुछ न सूझा, बोले, “नीचे जाकर देखता हूं कि ार आ गया है कि नहीं.”

पंडिताइन ने उनकी बात की तरफ कोई ध्यान नहीं दिया. कुछ ों में उसे हड्डियां-सी दिखाई दीं. उसने चिमटे से बर्तन नाली तरफ ठेल दिया और खूब साबुन मल-मलकर हाथ धोये.

ंडिताइन कपड़े धो रही थी कि मास्टरजी का बड़ा लड़का ता-भागता आया और बोला, “देखो मिसरानी, कहीं हमारी जेब छ रुपये तो नहीं हैं?”

इससे पहले कि पंडिताइन कुछ जवाब दे, लड़के ने झट से अपनी एक बुशर्ट अधभीगी उठा ली और जेब से नोट निकालते हुए लौट गया, “अब अगर रेजगारी भी है तो वह तुम्हारी.” उसमें सचमुच रेजगारी भी थी, लगभग डेढ़ रुपये की. पंडिताइन ने यह सोचते हुए धोती के पल्लू में गठिया ली कि हलाल की कमाई है, चोरी की नहीं है.

पंडिताइन कपड़े फैला रही थी जब मास्टरनी गंगाजी से लौटीं. लौटते ही उन्होंने बहुत तीखी नजरों से पंडिताइन का ऊपर से नीचे तक जायजा लिया और रसोई में जाकर चायपत्ती, चीनी, दूध आदि की पड़ताल की और बाहर तख्त पर बैठ गयीं.

पंडिताइन तार पर कपड़े फैला रही थी. तार जरा ऊंचा टंगा था. जितनी बार वह कपड़ा फैलाती, उसका वक्ष ब्लाउज के नीचे से उभर आता, मास्टरनी ने दो-तीन बार तो बरदाश्त किया और आखिर टूट ही पड़ीं, “हम लोगों के घरों में यह सब न चलेगा बहू.”

पंडिताइन ने मास्टरनीजी की तरफ मुड़कर देखा और पूछा, “का?”

“यह दूध की नुमाइश यहां नहीं चलेगी. दो-दो जवान बेटे हैं घर में. कल को कुछ हो गया तो?”

पंडिताइन की समझ में बात आ गयी और बोली, “हम गरीबन को ऐसी नजर से न देखो अम्माजी. भूखे रह लेंगे. ऐसा न सुनेंगे.”

“बड़ा घमंड है पंडिताइन!”

“गरीब आदमी क्या खाकर घमंड करेगा अम्माजी. मैं तो सहर भी न आती, मेरी ही मति फिर गयी थी.”

तभी मास्टरजी का लड़का अंदर से आया और बोला, “अम्मा, आज दो सौ रुपये कमीज में ही धुल जाते. महराजिन ने लौटा दिये.”

“दो सौ ही थे?”

“हां, हां, दो सौ ही थे.” लड़का बोला, “लगता है यह औरत चोर नहीं है.”

मास्टरनी को यह बात अच्छी न लगी. पैसे मिल ही गये थे तो नौकरों-चाकरों के सामने इसका बखान करने का क्या मतलब. जबकि इस बुढ़ापे में पहली बार उसे नौकर से काम लेने का अवसर मिला था.

“अच्छा-अच्छा, जाओ, अंदर जाकर काम करो. तुम्हारा यहां कोई काम नहीं.” दरअसल बहुत संभालते हुए भी पंडिताइन का दूध पुनः ब्लाउज के बाहर झांक रहा था. मास्टरनी नहीं चाहती थी, उनके बेटे की नजर से वह भी छू जाये.

मास्टरनी ने सोचा अपना कोई पुराना लंबा ब्लाउज जल्दी ही इस औरत को दान देना पड़ेगा.

क्रमशः

अगली किस्त:

“तुम्हारी तमाम वैल्यूज तुम्हारी नौकरी में घुस गयी हैं. तुम्हारी पूरी कांशंस तुम्हारी नौकरशाही ने लील ली है. तुम्हारा पूरा पतन हो चुका है!” शर्माजी की इस तेजबयानी से हम आपका परिचय करा रहे हैं ‘सारिका’ जनवरी-81, अंक-एक यानी ‘प्रेमकथा विशेषांक’ में. अपनी प्रति अभी से बुक करवा लीजिए.

भटकती राख

• दामोदर खडसे

मेरी अकाल मृत्यु मेरे जीवन की अंतिम घटना थी. अंतिम विराम था. लोग मेरे शव को घेरे खड़े थे.

ये सभी तीर्थ के लिए आये थे, पंढरपुर.

मेरा अचानक देहावसान सबके लिए आश्चर्य का विषय था.

मुझे चिता पर रख दिया गया. लोग लगातार मेरे संबंध में चर्चा करते रहे. चूंकि मैं हर साल यहां आता था, इसलिए मेरे गांव के अलावा अन्य गांवों से आने वाले तीर्थ यात्रियों से भी मेरा अच्छा परिचय हो गया था. वे मेरे बाहरी व्यक्तित्व से ही परिचित थे.

"बहुत ही सज्जन आदमी था."

"जीवन में सब कमाया इसने. . .इज्जत, पैसा, शोहरत."

"क्या मौत पायी है—शांत, चुपचाप, पूर्णता लिये हुए. . . ."

"मौत, वह भी पंढरपुर में! आषाढ़ी एकादशी के दिन!"

"सब पिछले जन्मों के पुण्य और इस जन्म के सदकर्मों का फल है भइया. . . ."

मैं सब चुपचाप सुन रहा था. कर भी क्या सकता था. लेकिन जिन स्थितियों के बीच मैंने अंतिम सांस ली, बड़ी अजीब थी. और बड़ी अजीब थीं मेरी यात्राएं भी. मुझे इस तरह की यात्राओं और देव-दर्शनों में कतई विश्वास नहीं था. परंतु जब विधवा यमुनाबाई तीर्थ के लिए पैदल चली, तो मेरे पांव भी इधर मुड़ गये. पिछले बारह सालों से मैं इधर आता रहा. वैसे यमुनाबाई का सहवास सिर्फ चार साल रहा. बाद में, मैं लोगों पर श्रद्धा जताने आया करता.

कभी-कभार मेरे व्यवहार पर कानाफूसी होती. मैं भजन-मंडली के सारे खर्च स्वयं उठा लेता! लोग मेरी नयी योजना मान लेते, मैं मंडली को एकाध सुविधा और बहाल कर देता. . . .

कल मैंने खाना खाया. भजन-कीर्तन में हिस्सा लिया. पर पेट में मंजीरे टकराते रहे. छाती में ढोलक-ताल गूंजती रही. गले में हारमोनियम घर्राता रहा. कानों में झांझ झनझनाने रहे. . . .इन हालातों को, अपने जिस्म पर लादे मैं सोने की कोशिश कर रहा था. आंख लगी नहीं कि सारे जिस्म को एक भयानक सपने ने धर दबोचा . . . . .मैं बेतहाशा भागा जा रहा हूं, क्योंकि एक खूंखार शेर मुझे दबोचने ही वाला है. . . . .यह क्या? मेरे पैर जमीन से चिपक गये. शेर के भूखे दांत और पंजे जब तक मुझे छूते, मैं उड़ने लगा. . . .! ऊंचा. . . . .बहुत ऊंचा. शेर पिछली टांगों पर बैठकर मुझे ताकता रहा. . . .मैं अचानक धड़ाम से शेर के सामने गिरता हूं. शेर एकटक मुझे देखता है, मानों वह जिंदा नहीं, मसाला भरा हो. तभी वह अचानक सुशील में बदल जाता है. . . .

. . . . .सुशील मेरा भांजा. हांफ रहा है वह. उसकी आंखें पथरा रही हैं. उसके मुंह से खून-सना झाग निकल रहा है. उसने एक डरावनी हिचकी ली. . . . .इधर मेरी आंखें खुल गयीं.

मैं हांफ रहा था. . . .चेहरे पर हाथ फेरा तो गरम-गरम कुछ बह रहा था मुंह से मेरे खून आ रहा था.

मैंने अपनी आंखें छुईं. बड़ी गर्म थीं, कांच-सी कठोर. ठीक शेर की आंखों की तरह खूंखार. . . . .सुशील की आंखों की तरह तेज, चुभती हुई. सिर्फ आंखें जल रही थीं और सारा शरीर लुंज-पुंज पड़ा था. . . ठंडे लोहे की तरह.

मेरे छटपटाकर उठने से मेरे आसपास सोये सभी लोग जाग गये. उन्होंने मुझे सहारा दिया. पर एक हिचकी आयी और कुछ करने से पहले खूंटी पर टंगी झांझ पर ज्यों कोई कंकड़ गिरा हो, वैसा ही जिस्म में एक झटका आया, ठीक झांझ की तरह धीरे-धीरे मैं चुप हो गया. . !

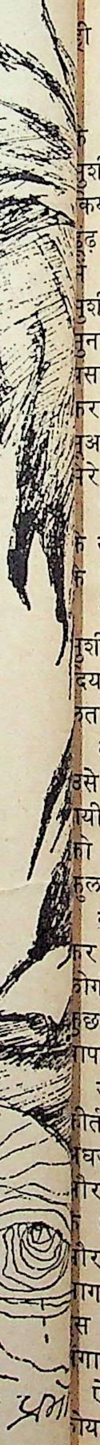

“क्या हुआ? . . . . .अरे, कैसे हुआ यह ब. . . . . ?” लोग एकत्र होने लगे.

“कुछ नहीं साब, हार्टफेल हो गया. . . . ाजकल की नयी-नयी बीमारियां हैं.”

“सब ऊपरवाले की माया है.”

“जिसके दिन पूरे हुए, उसे तो जाना ी है. . ?”

और मेरी शव-यात्रा शुरू हुई.

वैसे मेरी शव-यात्रा सुशील के मरने दिन से ही शुरू हो गयी थी. उधर ुशील को जिला अस्पताल में मृत घोषित किया गया, इधर मैं छिपने के लिए जगह ढ़ रहा था. प्रत्यक्ष रूप से बच निकलने सफल तो हुआ, पर पड़ोसियों ने, ुशील के घर, उस रात जो झगड़ा ुना, उसे प्रतिक्रिया सहित चारों ओर सारित कर दिया—‘देखो टुंडे की रामात’. और मेरा कटा बायां हाथ, ुअर के नथुनों-सा फड़फड़ा रहा था. रे अपने ही अतीत के गटर में. . .”

उन दिनों बीवी अपने भाई के परिवार साथ भ्रमण पर गयी थी, एक महीने लिए.

मेरी एक टॉकिज थी. जहां मैंने ुशील को टिकट बुकिंग के काम पर लगा दया था. गत दिनों उसे शराब की बुरी त लग गयी, वह देर रात गये घर आता.

तीन साल का एक बच्चा था उसे. से उम्मीद से ज्यादा सुंदर बहू मिल यी थी, देखने में. वैसे कान की बालियों ो लेकर वह लगन-मंडप में ही मुंह ुलाये बैठी थी. . .

लोग मेरे सिर के फटने की प्रतीक्षा र रहे थे. मेरी अधजली लाश पर ोगों ने थोड़ा-सा घी डाला, सिर पर ुछ अधिक. मेरी जलती लाश छोड़ सब ापस लौट गये.

उन्हें नहाना-धोना होगा. . .भजन-ीर्तन में जुटना होगा. यहां मेरी अकेली धजली लाश और लकड़ियां, अंगारे ौर नदी का सुनसान किनारा. आकाश अस्तित्व को ललकारती तेज लपटें ौर मुझसे उठता धुआं. . .मेरे आसपास ाग के गोले कितने प्यारे लगते हैं, मेरी स ठंडी देह को. कितनी चमक है इन ंगारों में. . .

ऐसी ही चमक उस दिन सिगड़ी के ोयलों में थी, सुमति ने उस पर तवा रख दिया. सारी चमक उसके चेहरे में सिमट आयी थी. मैं उसे देख रहा था. . .उसने मेरी ओर आंखें उठायीं, मैं सहम गया. सिर को एक झटका दिया और सारे दुमदार कीड़े दिमाग के दरवाजे बाहर भगाये.

पत्नी के जाने के बाद जब मैं अकेला था, तो खाने-पीने की बड़ी असुविधा थी. एक दिन सुशील ने कहा, “भई अपनी भाभी के आने तक तुम सब मेरे पास आ जाओ. मेरा भी जी बहल जायेगा. बच्चे से खेल लूंगा. . .तुम्हारी टॉकीज भी नजदीक रहेगी. . .मैं साफ-साफ था, उस वक्त. . .ऐसी-वैसी कोई बात मेरे दिमाग में नहीं थी.

सुशील राजी हो गया. सुमति और बच्चा मेरे घर आ गये. घर में कुछ चहल-पहल हुई. बाद में मैं ही हिसाब पर उतर आया—इन लोगों का, महीने भर का घर-खर्च बच गया. मुझे अपने खाने-पीने की सुविधा महंगी लगी. सुशील बहुत देर गये घर आता. बुकिंग का हिसाब तो रात साढ़े दस तक हो जाता, पर वह बाद में धुत्त होने तक पीता. . .मैंने कई बार उसे टोका. वह हंसकर आंखें झुका लेता. . . दिनों-दिन उसकी हालत गिर रही थी. चलती-फिरती लाश रह गया था वह. . .

◆

अभी-अभी श्मशान घाट में एक और लाश आयी है. बिल्कुल मेरी चिता के पास ही उसकी चिता बिछ रही है. किसी औरत की लाश है यह. दो जवान और एक बूढ़ा अपेक्षाकृत अधिक दुखी दीख रहे हैं. शायद बेटे और पति हों. बाकी सब बड़ी तेजी से अंत्यविधि निपटाने में व्यस्त हैं. लाश बड़ी शांत और संतुष्ट लगती है—उसके बेटे जो उसे अग्नि दे रहे थे.

मैं भी बेटे के लिए तरस गया. दोस्त छेड़ते. बुजुर्ग सलाह देते. मेंहदी की हरी फेंसिंग रेगिस्तान-सी सूख गयी और मैं प्यासा ही रह गया. . .

एक हाथ न होने की वजह से अच्छी लड़की मुझसे ब्याही न जा सकी. पहले तो मैं वहीं सूख गया, क्योंकि सपने बड़े ऊंचे थे. शायद सबके रहते होंगे. पर मेरे कटे हाथ ने मेरे सपने भी छांट डाले. और मेरा कटा-छंटा दैनिक जीवन, मेरे दांपत्य जीवन से कभी समरस नहीं पाया. कटा-कटा रहा मैं. धीरे-धीरे आदत हो गयी.

पर आये दिन मेरी ‘पराजय’ किसी कमजोर ‘फौज’ को देखकर तलवार उठा लेती. मैं ‘विजयी’ भी हुआ. यमुनाबाई जैसे उदाहरण मेरे खाते में जमा हैं. उस रात मैं बाथरूम गया. मेरा बाथरूम ब्लॉक के पिछवाड़े बाहर की ओर खुलता है. मैं बाथरूम से बाहर निकलते ही किचन में लाइट देखता हूं. किचन में गया तो सुमति पानी पी रही है. बिना मुंह लगाये वह गिलास से पानी ढुलका रही है. उसकी देह पीछे की ओर मुड़ी थी. कमान-सी देह पर पानी की लकीरें होंठों और छाती से होते हुए नीचे उतर रही थीं. . . मैं भी पानी की लकीर के साथ उतर रहा था. मैं देखते-देखते डर रहा था, डरते-डरते देख रहा था. दृश्य बड़ा डरावना था, भीतर से. मैं इसी डरावने उधेड़-बुन में था कि सुमति ने मेरी ओर देखा. हंस दी. वैसी ही खड़ी रही. मैं बगले झांक रहा था. वह बोली, “पानी दूं?”

मैं थूक निगल रहा था. कुछ कहने से पहले उसने पानी का गिलास मेरी ओर बढ़ाया और मैं उसकी पानीदार आंखों में. . . सब भूल गया मैं. . . शैतान मुझे संचालित कर रहा था शायद. मेरे शैतान के लिए यह सब विशेष नया नहीं था. . . पर सुमति के लिए?

दूसरी लाश भी लोग जलाकर चले गये. एक-एक आदमी दबे कदमों से श्मशान घाट से निकल रहा था, बस्ती की तरफ. . . जीने के लिए. . . डरे हुए. . . निर्वेद का बोझ लिये. . .पर श्मशान की सीमा पार करते ही अपने-अपने रुचि के मुद्दों में सब व्यस्त हो गये.

चिता धू-धू कर जलने लगी. उसकी लपटें लपलपाने लगीं. लपटों की पांतें खजूर के पत्तों-सी फड़फड़ाने लगीं.

किचन में मेरा भी इकलौता हाथ फड़फड़ाने लगा था. . . सुमति की नजरें जमीन में धंसी थीं. जैसे ही मैं खड़ा हुआ, सुशील के खयाल में मेरा सारा अस्तित्व उलझ गया. पर अब क्या. . . बाढ़ निकल जाने के बाद यह सब. . . मात्र सोच की विभीषिका. . . सड़ी हुई लाशें. . . दुर्गंध. . . ‘काश, बांध फूटने से पहले मैं कुछ कर पाता’. . .वाला पश्चाताप दबे

टाइपिस्ट ▪ महेश दर्पण

दोनों बचपन से साथ-साथ खेलते-कूदते बड़े हुए थे. पेशे से अलग-अलग हो गये, पर बचपन की आत्मीयता भला कहां जाती! सो, जब उसके मित्र ने उपन्यास लिखा तो उसे टाइप करना ही था.

मित्र की पहली किताब छपने पर उसकी खुशी की कोई सीमा न थी. अपनी तरफ से उसने पूरी ईमानदारी और सावधानी से टाइप किया. मित्र भी खुश था, "तुम्हारा नाम, मैं भूमिका में ही आभार ज्ञापित करते हुए दूंगा. . .और हां, जल्दी ही पेमेंट भी हो जायेगा तुम्हारा."

"अरे नहीं यार, तू कैसी बातें कर रहा है. तेरी किताब में मेरा इतना भी हक नहीं कि बगैर कुछ लिये ही टाइप कर सकूं." उसने उत्साहित होकर कहा.

कुछ ही दिनों बाद, जब उसे उपन्यास प्रकाशित हो जाने की खबर मिली, तो वह दौड़ा-दौड़ा मित्र के घर जा पहुंचा.

"अरे वो किताब तो दिखा यार, छप भी गयी और तूने बताया तक नहीं. . . .!"

मित्र से किताब लेकर उसने पलटनी शुरू कर दी. भूमिका पढ़ते ही उसकी आंखें एक जगह जड़ हो गयीं—

'यह पुस्तक. . . . .प्रकाशन संबंधी अशुद्धियां टाइपिस्ट की असावधानी से रह गयी हैं.'

किताब थामे वह भारी कदमों से वापस आ गया. ☐

कदमों से मेरे भीतर-बाहर पहरा दे रहा था. रात भर नींद नहीं आयी.

सुशील भी नहीं आया.

सुमति, चाय देते वक्त जरा हिचकिचायी.

मेरी चिता के अंगारे बुझ रहे थे. अंगारे अब राख की चपेट में थे.

मैं सोच रहा था, सुशील के परिवार को लौट जाना चाहिए. पर मैं कैसे कहता.

संघर्ष भीतर पनपता जा रहा था. रातें बदतर होती जातीं. मैंने अपने-आप को फुसलाने का क्रम शुरू किया—'मैंने कोई अत्याचार नहीं किया, जबरदस्ती नहीं की'.

एक दिन मैंने सुमति के लिए कान की बालियां ला दीं और हल्का हो लिया. बालियां उसके कानों में झूमने लगीं.

सुशील ने एक दिन उससे बालियों के बारे में पूछा तो कितनी सहजता से उसने कह डाला था, "घर खर्च के लिए जो देते थे, उसी से बचाकर मैंने यह खरीदा. आप तो कभी ध्यान ही नहीं देते. . ." और अपनी बालियों को छूकर वह इतरा रही थी. मैंने सुमति के चरित्र से अपनी तुलना करने की कोशिश की. वह कहीं अधिक चालाक और खुदगर्ज दीख रही थी.

उधर सुशील का चेहरा कसैला हो गया था. उसके आंखों में झाईं की एक और परत चढ़ आयी थी. वह कुढ़ता जा रहा था. . . शराब उसे पीती जा रही थी.

पत्नी घर आयी और मुझे राहत मिली.

सुशील का परिवार वापस लौट गया. मेरी उत्तरार्ध रातें उतनी बोझिल नहीं थीं.

सुबह के चार बजे होंगे, ठंडी हवा बह रही है. मेरी राख हवा में घुल रही है. उस दिन भी सुबह के चार बजे होंगे. मुझे गहरी नींद से जगाया गया था. 'सुशील की मौत हो गयी. . . उसने आत्महत्या कर ली'—दरवाजे पर दस्तक थी.

लगा, मेरे प्राण उड़ गये. सुशील ने मेरा पिंजरा छीन लिया. मैं रिश्तेदारों के झुंड में दुबका बैठा रहा था.

कहते है, उस रात सुशील घर आया था. पीकर घुत्त. जोर-जोर चिल्ला रहा था.

"बोल साली, किसका पाप पाल र है. . . ?" और पीटता जा रहा था. दो-नाम उसने अपनी ओर से गिनाये. को चारा नजर न आते देख सुमति ने उ दिया—"मामा!"

सुशील ढोर की तरह चीखा था. .

सुबह सबने देखा सुशील नहीं र उसने आत्महत्या कर ली. . .शराब एंड्रीन मिलाकर पी गया था वह. सु जब उसे पोस्टमार्टम के लिए ले जा र थे, तब सुमति ने सुशील की जेब से पैसे भी निकाल लिये. लोग सुमति पर थू कर रहे थे और मुझ पर आश्चर्य!

आश्चर्य तो मुझे भी मुझ पर हुआ. उम्र जिसके लिए तरसता रहा, वह एक 'अपरा से पैदा होने की तैयारी करे. . . ?

पता नहीं, वह पैदा हुआ भी या न आज मेरी तपती राख ठंडी हवा में रही है. मुझे लगता है, वे कोमल न उंगलियां मुझे सहला रही हैं. मेरी रा पर वे नन्हें हाथ फिर रहे हैं. मेरी तप उम्र को कितनी ठंडक महसूस हो रही वह मेरी दाढ़ी नोंच रहा है, खुरदुरे चे पर हाथ फेर रहा है. लाड़ में आकर आंखें मूंद लेता हूं. वह, नन्हीं उंगली मे आंख में ठूंसता है. . . देखते-देखते मे आंखों में वे उंगलियां झुलसने लगती उसकी नन्हीं आंखों में ज्वाला है. . .प्र शोध है, जिसकी भयानकता में मेरी आ पथरा जाती हैं.

एक नवजात चेहरा, एक गूंगी चीख साथ अंतराल में धुआं-सा फैल जाता

भोर का उजाला आते ही, एक श्मशा कुत्ता, खुजलाता हुआ मेरी ओर बढ़ है. मुझे लगा, सुशील अब भी मेरे पीछे वह कुत्ता फें-फें कर रहा है, झाग नि रही है उसके मुंह से.

मेरी आंखें चौंधिया गयीं, जैसे वे ज ही न हों. मैं आंखों से परेशान हो उठता

कुत्ते की धंसी आंखें मेरी आंखों तलाश में थीं. वह राख की आंच से कु मुनाता, पर तलाश जारी रखता.

अचानक उसने कुछ अंदाज लगा अपनी पिछली एक टांग ऊपर कर दी. . मुझे लगा मेरी आंखों को एंड्रीन पिल जा रहा है. . .!

● बैंक ऑफ महाराष्ट्र, अंचल कार्या तीसरी मंजिल, सीताबर्डी, नागपुर.

प्रसंगवश

निराशा से उबरने की कहानी

लेखक के लिए यदि ज्यादातर समय चढ़ाव का होता है तो कभी उसमें उतार भी आता है और सही तथा कभी-कभी गलत या मामूली-से कारणों से भी वह बहुत उदास हो उठता है और टूट तक जाता है. यह अनुभव सब नहीं तो अधिकांश लेखकों को अपने जीवन में एक या इससे अधिक बार अवश्य होता होगा, परंतु ऐसे कितने हैं, जिन्होंने इसी को विषय मानकर किसी कृति की रचना की हो. जहां तक ज्ञात है, प्रायः किसी ने भी ऐसी रचना नहीं की है.

इस प्रकार की पहली चीज जो देखने में आयी मे सार्टन की गत दिनों ही प्रकाशित 'रिकवरिंग' है, जिसमें उसने गहरी निराशा से उबरने की अपनी कहानी विस्तार से कही है. मे सार्टन अच्छी कवयित्री तथा उपन्यासकार हैं, परंतु 1978 में उन्हें कई कठिनाइयों से गुजरना पड़ा था. इनमें बीमारियां तो थीं ही, अपने नवीन उपन्यास 'ए रेकनिंग' की 'न्यूयार्क टाइम्स' में प्रकाशित तीखी आलोचना भी थी, जिसने उनके मन को बड़ी चोट पहुंचायी. वे बहुत व्यथित हो उठीं और महीनों अवसाद से ग्रस्त रहीं. अंत में, इस सबसे छुटकारा पाने के लिए उन्होंने कलम की ही शरण ली और जर्नल के रूप में धीरे-धीरे यह चीज लिखती रहीं. इससे उन्हें सचमुच राहत मिली और उनका मन स्थिर हो आया.

इस मार्मिक कृति में लेखक, उसके कृतित्व, समाज से उसके संबंध, स्वीकृति तथा निरादर, प्रेम, बढ़ती हुई उम्र और बदलता हुआ समय, एकाकीपन, स्त्री, पुरुष, संतान, जीवन का अर्थ आदि सभी विषयों पर अनुभव से मंजे हुए विचार व्यक्त किये गये हैं. ▣

'नरक के ऊपर का आसमान' अर्थात बदसूरत कहानियां

रूस तथा अन्य देशों की कम्युनिस्ट व्यवस्था से अनेक लेखक जब-तब बाहर निकलकर अपनी रचनाएं दुनिया को दिया करते हैं. इस तरह का नया महत्त्वपूर्ण लेखक यूरी मामलेयेव है, जो कुछ समय पूर्व ही अमेरिका में आकर बस गया था. सात कहानियों का उसका पहला संग्रह 'दि स्काई एबव हैल एंड अदर स्टोरीज' के नाम से हाल ही में प्रकाशित हुआ है. 'नरक के ऊपर का आसमान' शीर्षक से ही उसकी वास्तविकता जाहिर हो जाती है.

इसमें एक छोटा उपन्यास 'शातुनी' तथा छह औसत लंबाई की कहानियां हैं. कहानियों में जिंदगी कितनी भयंकर हो सकती है, इसकी दास्तानें हैं. सैडिस्टों का एक दल 'शातुनी' को किस प्रकार त्रस्त किये है, यह चित्रित किया गया है. एक कहानी में एक युवक पर पशु-व्यभिचार का आरोप लगाया गया है और बदले में वह आरोपकर्ता पर अपने पिता के साथ व्यभिचार करने का आरोप सार्वजनिक रूप से लगा देता है—और दोनों ही आरोप सही हैं. एक और कहानी में एक सिपाही रेप करता है और उसे फायरिंग स्क्वैड के सामने खड़ा कर दिया जाता है. लेखक के ही अनुसार इन चरित्रों की आत्मा में मृत्यु बस गयी है. बदसूरत कहानियों के ये अन्यतम उदाहरण हैं, परंतु ये उन परिस्थितियों की ओर इंगित करती हैं, जिनके कारण सादी-सरल जिंदगियां इस हद तक गलीज हो सकीं. ▣

एक और बदसूरत अनुभव का रचनात्मक उपयोग

एक और बदसूरत अनुभव की रचना शार्लट वान एलेन का उपन्यास 'डैडी'ज गर्ल' है, जिसमें लेखिका ने ऐसी स्वानुभूत कथा कही है, जैसी अब तक शायद ही किसी ने कही होगी—और जिसे कहने के लिए बहुत बड़ा कलेजा चाहिए.

शार्लट का पिता उसके साथ तब से व्यभिचार करता रहा, जब वह दस साल की थी और इसके लिए वह उसे शुरू में टॉफी-चॉकलेट तथा बाद में कीमती चीजें देता रहा. बचपन में तो वह इसे समझती ही नहीं थी, जब समझ पैदा हुई तो वह छटपटाने और इससे छूटने का प्रयत्न करने लगी, परंतु छूटना बहुत आसान नहीं साबित हुआ. शार्लट का व्यक्तित्व बहुत बिखर गया, परंतु उसने हिम्मत नहीं हारी और सामान्य ढंग से जीवन में स्थिर होने का प्रयत्न करती रही. जब उसका विवाह हो गया, अपना घर बन गया और बच्चे भी हो गये—तब उसने यह किताब लिखी है. यह भी सामान्य होने के उसके प्रयत्न का एक अंग ही है. ▣

लोग कैसे मरते हैं या दुनिया के जाने-माने लोग कैसे मरे?

लोग कैसे मरते हैं या दुनिया के जाने-माने लोग कैसे मरे, क्या इस पर भी कोई रचना हो सकती है? जी हां, और बॉब आर्नबेक ने 'प्रूस्त'स लास्ट बियर—ए हिस्ट्री ऑव क्यूरियस डिमाइजेज' नाम से प्रकाशित अपनी रचना में इस विषय को पहली बार उठाया है.

पुस्तक विस्तृत शोध पर आधारित है. मरने के ढंगों पर अध्यायों का विभाजन किया गया है. जैसे 'शानदार मौतें', 'जानकारियां : जिन्होंने जान ली', 'सिर हिलाकर मर गये' आदि. प्रूस्त ने अपने अंत समय में बियर की मांग की; चेखव ज्यादा कीमती चीज शैंपेन पीकर मरा. चार्ल्स प्रथम जब फांसी के लिए ले जाया गया, वह खास ढंग के कपड़े पहने हुए था, जो उसने इसी अवसर के लिए बनवाये थे. काले साटन का कुर्ता-पाजामा, मोतियों के बुंदे और हाथ में सोने की घड़ी. एक डॉक्टर जब कालरा पर लेख लिखने लगा, तभी उसे कालरा हो गया और दूसरे दिन वह मर गया.

पुस्तक में लेखक ने बहुत से व्यक्तियों की मृत्यु का जिक्र किया है. कई सीधे-सादे ढंग से मर गये, कई मरते-मरते दुनिया को परेशान कर गये. मौत जिंदगी का जरूरी हिस्सा है, इसलिए जिंदगी की तरह उसका भी अध्ययन आवश्यक है. ☐

● महेंद्र कुलश्रेष्ठ

क्रिसमस के अवसर पर एक जर्मन कहानी

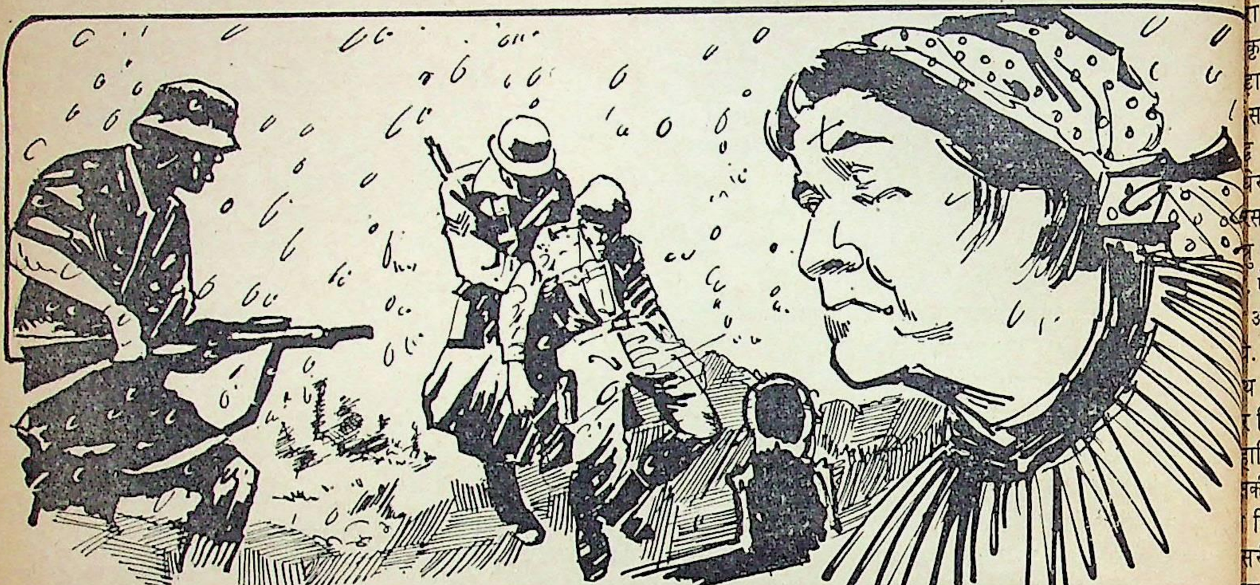

सफेद रा

• फिटर विंकसी

बात 1944 की है. मैं उन दिनों बहुत छोटा था, लगभग बारह वर्ष का. महायुद्ध का समय था. मैं और मम्मी एक घने जंगल में रह रहे थे. यह जंगल जर्मनी और बेल्जियम की सीमा पर स्थित था. मेरे पापा शिकार के शौकीन थे. उन्होंने दूसरे महायुद्ध से पूर्व जंगल में एक कॉटेज बनवा लिया था. मैं और मम्मी उस कॉटेज में रह रहे थे. वैसे हमारा घर शहर आशन में था. मित्र-शक्तियों द्वारा बमबारी के कारण वह खंडहर हो चुका था. इसलिए पापा ने मुझे और मम्मी को कॉटेज में भेज दिया.

मेरे पापा मोंशाऊ कस्बे में रुकने पर मजबूर थे. कस्बा मोंशाऊ चार मील दूर था. पापा नागरिक सुरक्षा के आग बुझाने वाले दस्ते में शामिल थे. महायुद्ध जारी था. इसलिए मुझे और मेरी मम्मी को अकेले छोड़कर पापा को मोंशाऊ में रुकना पड़ा. हमसे विदा होते समय वह मुस्करा रहे थे. उन्होंने मुझसे कहा था, "विटसकन! अब इस परिवार के संरक्षक तुम हो. अब अपनी मां की रक्षा का दायित्व तुम्हारा है. मुझे उम्मीद है, तुम लोग आबादी की अपेक्षा इस वीराने में अधिक सुरक्षित रहोगे."

हमें कॉटेज में आये नौ दिन बीत गये थे. इस अंतराल में कुछ भी नहीं हुआ था. मैं समझा कि शायद अब शांति हो गयी है. मैंने अपना अधिकतर समय घने जंगल में बिताया था. मासूम पक्षी मुझसे घुल-मिल गये थे. और वे मेरे बहुत अच्छे मित्र साबित हुए.

एक रात बर्फ गिर रही थी. रुई के नन्हे-मुन्ने गोले तैर रहे थे. तैरते-तैरते वे हर ओर बिखर जाते. क्रिसमस की रात थी. मैं कॉटेज की खिड़की से देर तक यह उदास दृश्य देखता रहा. अगर आज हम अपने घर होते, तो सारा घर नववधू की तरह सजा होता. हम हर वर्ष क्रिसमस की शाम बहुत रंगीन और शानदार तरीके से मनाते थे, पर आज हमारा बसेरा एक वीरान, सुनसान जंगल में था. और बाहर सारा संसार युद्ध की लपेट में था. आकाश आग बरसा रहा था और दूसरी ओर जंगल में बर्फ गिर रही थी. अंधेरा बढ़ रहा था. और सबसे बुरी बात यह कि मैं और मम्मी अकेले थे. पापा आज हमारे पास नहीं थे. धीरे-धीरे जाड़ा और अंधेरा बहुत बढ़ गया था. मैं खिड़की से हट आया. दो दिन पहले तक मैंने जंगल से सूखी लकड़ियां चुनी थीं. अंगीठी उन्हीं से गर्म थी, और प्रकाश भी हो रहा था. सुनहरे शोले भले लग रहे थे. मम्मी ने लैंप जला था. मैं और मम्मी देर तक लैंप के के पास बैठे रहे. पिछली शामों की आज शाम भी पापा के आने की नहीं थी. कुछ दिन पूर्व फील्ड-मार्शल इंडस्टत ने आखिरी लड़ाई में पूरी प झोंक दी थी. मित्र शक्तियों के यह आखिरी युद्ध हमारे जंगल के ही एक फ्रंट पर चल रहा था. सर्चल की तेज-नुकीली कटारें रातभर का सीना चीरती रहती थीं. बम विमान चिंघाड़ते हुए हमारे सिर गुजरते और गोलियां गरजती हुई ब दोनों, जर्मन और मित्र-शक्तियों सिपाही प्रतिदिन हजारों की में मरते, जैसे आदमी न हों, तुच्छ हों. मौत बेहद सस्ती हो गयी थी.

त्वहीन और व्यर्थ लगने लगा था. परिस्थितियों ने अल्पायु के बावजूद ा मस्तिष्क जवान कर दिया था. कृत सत्य अपने सही रूप में मेरे सामने ा था. अंगीठी जल रही थी. नीरवता सहसा मुझे मम्मी की दस्तक सुनाई दी. का वातावरण और जंगल में घुप रा. दिन के माहौल में भी सराहटें डरा देती थीं. हर पेड़ के पीछे के घात लगाये होने का शक होता ऐसे में रात के समय यह दस्तक कैसी? और मम्मी एक क्षण के लिए डर से . दस्तक दोबारा गूंजी. मम्मी ने लैंप में उठाया और मुझे अपनी ओट में लिया. मुझे ऐसा लगा जैसे मम्मी जादुई ानियों की कोई राजकुमारी हैं, अतः की ओट में खड़ा हुआ व्यक्ति शत्रु दिखाई नहीं देगा. लकड़ी का दरवाजा री दस्तक की चोट सहन करने के य नहीं था. मम्मी ने बढ़कर पट खोल ा. मेरी एक आंख उनकी बांह की ीं से झांक रही थी. दरवाजे सामने दो आदमी खड़े थे. उनके शरीर सैनिक-वर्दियां थीं और सिरों पर लोहे टोप. मैंने हठात् अपने मन से कहा, न हो, यह शत्रु-सैनिक हैं.' तत्काल मुझे ा के शब्द याद आये, 'विटसकन, अब इस वार के संरक्षक तुम हो. अब अपनी मां रक्षा का दायित्व तुम्हारा है.' मैं मम्मी बांह से सिर निकालकर बाहर युद्ध- में आ गया. दोनों आदमियों ने किसी नबी भाषा में मम्मी से बातें की और की ओर संकेत किया. फर्श पर बर्फ ी हुई थी, और बर्फ पर एक तीसरा क्ति लेटा हुआ था. वह नवागत सिपाहि-का जख्मी साथी था. बर्फ के कण अभी उसके बालों में चिपकने लगे थे. मैं समझा यह शायद मर चुका है. मम्मी चुपचाप ी रहीं. उनके चेहरे पर कोई भी क्रिया नहीं हुई. कुछ क्षणों के बाद का हाथ धीरे से मेरे कंधे पर आ टिका. का अंधकार और एकाकीपन. दो स्त्र पुरुष हमारे सामने थे. वे चाहते शक्ति के बल पर हमें विवश कर सकते पर वे केवल नजरों की शक्ति का योग करते रहे. उनकी आंखों में नुभूति और दया के लिए एक याचना . वे अपने जख्मी साथी को भय और चिंता से बार-बार देखने लगे. यद्यपि शत्रु थे, तथापि मुझे उन पर दया आने लगी. मम्मी एक कदम पीछे हटीं—"अंदर आ जाओ." उन्होंने फ्रांसीसी भाषा में कहा. सिपाहियों की आंखों में कृतज्ञता और उल्लास का प्रकाश दीपक की लौ की तरह लहराया. दोनों ने झुककर अपने साथी को सावधानी से हाथों पर उठाया. जख्मी के मुंह से कराह निकली. उन्होंने छोटे-से दरबे से कॉटेज में प्रवेश किया. कॉटेज में जीवन की गर्मी, सहानुभुति की महक और जीने की उमंग थी. पहले उनके चेहरे थकन, भूख और एक अज्ञात भय से मुरझाये हुए थे. अब लपटों का प्रतिबिंब पड़ा, तो रक्तिम दिखाई देने लगे. मम्मी ने उनसे कहा, "जख्मी को बिस्तर पर लिटा दो."

सिपाहियों ने जख्मी को बिस्तर पर लिटा दिया. मम्मी एक संकोच के साथ उनके निकट खड़ी थीं. वह कुछ क्षणों तक गौर से उन्हें देखती रहीं. फिर मेरी ओर पलटीं, "विटसकन, एक बाल्टी में बाहर से बर्फ ले आओ. सिपाहियों के हाथों की उंगलियां सर्दी से नीली हो रही हैं. बर्फ का मसाज इनके लिए उपयोगी होगा."

मैं बाल्टी उठाकर बाहर आ गया. गहरे अंधेरे में बर्फ बराबर गिर रही थी. भूमंडल जैसे बर्फ हो गया था. इस अवस्था में किसी भटके हुए आदमी के पास कोई शरणस्थल न हो और यह भय सिर पर छाया रहे कि किसी भी क्षण, किसी भी ओर से कोई गोली सीना छेद सकती है, तो जरा सोचिए, ऐसा आदमी कितना निरीह होगा! मुझे उन तीनों अमरीकियों पर बड़ी दया आयी.

▣

मैं बर्फ लेकर कॉटेज में पहुंचा. सिपाही विस्मय से पलकें झपकाने लगे. शायद उनकी समझ में नहीं आया कि बर्फ किसलिए मंगवायी गयी है. मम्मी ने फ्रांसीसी में उनसे कहा, "तुम लोगों के हांथ-पांव सर्दी से ऐंठे हुए हैं. तुम्हें बर्फ के मसाज की जरूरत है."

एक सिपाही फ्रांसीसी भाषा का कुछ ज्ञान रखता था. उसने अपने साथी को मम्मी की बात समझायी. दोनों अपने हाथों पर बर्फ मलने लगे. फ्रांसीसी-ज्ञाता सिपाही ने कृतज्ञतापूर्ण मुस्कान से मम्मी की ओर देखा और अपना नाम बताया, "मेरा नाम जिम है."

दूसरा सिपाही एक दुबल-पतला नवयुवक था, जैसे भोजन न मिलने से उसकी यह हालत हो गयी हो. उसने भी दबे स्वर से कहा, "मुझे रोबिन कहते हैं". फिर जख्मी सिपाही की ओर इशारा करते हुए बोला, "इसका नाम हैरली है." मैंने हैरली को गौर से देखा. उसका पीला चेहरा जैसे सफेदी में बदल गया था.

▣

ये तीनों बेचारे कुछ दिन पूर्व अपनी पलटन से बिछुड़ गये थे. शत्रुओं से छिपते-छिपाते ये अपने साथियों की तलाश में निकले, पर भटककर इधर आ गये. देखने में वे तीनों अल्पायु के छात्रों की तरह थे. इतने दिन से दर-ब-दर भटकने के कारण उनकी दाढ़ियां बढ़ गयी थीं और उन्होंने अमरीकी सेना की भारी-भरकम वर्दी अपने शरीरों पर लाद रखी थी. फिर भी उनका तारुण्य छिप नहीं रहा था. वे भयभीत और सहमे-सहमे लगते थे. मम्मी का व्यवहार उनसे ऐसा हो गया था, जैसे बड़ों का बच्चों से होता है. उन्होंने जिम और रोबिन को जख्मी हैरली के संबंध में कुछ निर्देश दिया. फिर मेरी ओर उन्मुख हुई, "विटसकन! घर में मेहमान आये हैं. उनकी दावत के लिए हरमन कैसा रहेगा?" मम्मी एक मुर्ग को हरमन कहती थीं. यह मुर्ग घर से हमारे साथ आया था. मम्मी चाहती थीं कि क्रिसमस पर पापा आयेंगे तो हरमन के गोश्त से उनकी सेवा की जायेगी. लेकिन पापा आये नहीं, उनके स्थान पर तीन अजनबी मेहमान आ गये. हिटलर के बायें हाथ वाले साथी का नाम हरमन था. मोटापा और भीमकाया हरमन की विशेष पहचान थी. हमारा मुर्ग भी खूब मोटा-ताजा था. इसलिए मम्मी उसे हरमन कहती थीं. मुझसे वह बोलीं, "बेटा! जाओ, हरमन को लेकर आओ. और हां, आलू भी लेते आना."

"अच्छा मम्मी." मैंने उदासी से कहा. मुझे पापा याद आ गये.

मैंने और रोबिन ने खाना पकाने में मम्मी का हाथ बंटाया. जिम एक चिंतातुर

मां की तरह हैरली के सिरहाने बैठा रहा. खाना पकाकर मम्मी ने अपने बिस्तर की चादर फाड़कर पट्टियां बनायीं और जिन के साथ मिलकर हैरली के सीने पर लपेट दी.

हैरली को युद्धक्षेत्र में गोली लगी थी और दायें फेफड़े के ऊपर फंस गयी थी. उसका खून बहता रहा. जिम और रोबिन अपनी पलटन की तलाश में उसे उठाये-उठाये फिरते रहे. मौत हर कदम पर घात में थी. गोलियां वर्षा की बूंदों की तरह उनके दायें-बायें गिर रही थीं. वह केवल संयोगवश बचते-बचाते यहां तक पहुंच गये थे.

हरमन के भुने हुए गोश्त की उत्तेजक सुगंध कॉटेज में फैल गयी. मैंने खाने की मेज लगा दी. ऐन उसी समय फिर दस्तक हुई. हम सब चौंककर अपनी-अपनी जगह निश्चल हो गये. 'अब कौन आ गया?' मेरे दिल में आशंकाओं के नाग फन उठाने लगे. फिर शांति की एक लहर ने मुझे आश्वस्त कर दिया. मैंने सोचा, यह भी अमरीकी सेना के बिछुड़े हुए सिपाही होंगे. तत्काल आगे बढ़कर मैंने दरवाजा खोल दिया. दरवाजा खुलते ही भय और आतंक की नुकीली कटार मेरे सीने में घुस गयी. मेरे शरीर को जैसे लकवा मार गया. मैंने लड़खड़ाकर चौखट का सहारा लिया और अंदर-बाहर दोनों ओर विस्मय से देखा. अंदर भुने हुए मुर्ग की सुगंध थी, हमारे बिन बुलाये अमरीकी मेहमान थे और उनके साथ उनका मरणासन्न साथी था. बाहर अमरीकी सेना के शत्रु, हमारी जर्मन सेना के चार सिपाही खड़े थे. उनकी अंगारे जैसी आंखें मुझे किसी अदृश्य दैत्य की तरह तक रही थीं. ऐसा कठिन और बोझिल क्षण मेरे जीवन में पहले कभी नहीं आया. मेरी टांगें कांप रही थीं. उनसे मेरा अपना बोझ नहीं उठाया जा रहा था. दरवाजे से धीमी-धीमी रोशनी आ रही थी. जर्मन-वर्दी के बटन बार-बार जगमगा उठते. मैं कांपकर रह जाता, क्योंकि हमारे देश में शत्रुओं को शरण देने का दंड मृत्यु था. मैं, मम्मी और रोबिन निश्चल हो हो गये थे. जिम और रोबिन को एक दीर्घ संघर्ष के बाद छत और खुराक प्राप्त हुई थी. अभी वह पहला ग्रास भी मुंह में न रख सके थे कि शत्रु ने उन्हें आ पकड़ा. उनकी हालत देखने लायक थी. मम्मी का रंग भी सफेद हो रहा था, पर उन्होंने स्वंय पर काबू पाया और प्रतिष्ठा से कदम उठाती हुई मेरे पास आकर सैनिकों को देखने लगीं. एक सैनिक ने आदरपूर्वक टोपी उतारी और कहा, "मैडम! क्रिसमस मुबारक हो!" वह मुस्कुराया. "वास्तव में हम अपनी रेजिमेंट से बिछुड़ गये हैं. अब सुबह के उजाले से पहले उसे हम ढूंढ़ नहीं सकते. क्रिसमस की रात है. यह रात हम किसी भी घर में बितायें, हमें अपने घर की कल्पना रहेगी." वह रुककर मम्मी को देखने लगा.

मम्मी ने ठहर-ठहरकर कहा, "यहां तुम लोगों को खाना भी मिल सकता है, सुखदायक और गर्म वातावरण भी, पर. . ." वह चुप हो गयीं. जर्मन सिपाही कृतज्ञता से मुस्कुरा दिये. मम्मी कहने लगीं, "हमारे यहां आज पहले से कुछ मेहमान आये हुए हैं. संभवत: तुम लोग उनके साथ ठहरना पसंद नहीं करोगे!" मम्मी को आवाज दृढ़ और विश्वासपूर्ण थी.

"मैडम!" एक जर्मन सिपाही ने कहा, "यह समय पसंद-नापसंद का नहीं है. हमें तो बस रात भर के लिए ठिकाना चाहिए."

"अच्छा, ठिकाना तुम्हें मिल जायेगा, पर याद रखना, आज क्रिसमस है. मेरे घर में कोई उत्पात न हो. कोई गोली-वाली न चले. समझ गये?"

"अंदर कौन है?" जर्मन विस्मित रह गये, "अमरीकी?"

मम्मी ने उनके प्रश्न का उत्तर दिये बिना कहा, "तुम लोग आयु को दृष्टि से मेरे बेटों के समान हो. उसी प्रकार वह मेहमान भी मेरे बेटे हैं, जो पहले से अंदर मौजूद हैं. वे भी तुम्हारी तरह ही रास्ता भटककर यहां आ निकले हैं. उनमें से एक बच्चे के फेफड़े में गोली लग गयी है और वह जीवन और मृत्यु के बीच लटका हुआ है. उसके दो साथी तीन दिन से किसी न किसी प्रकार उसे बचाये हुए हैं. आज क्रिसमस है और तुम सब मेरे बच्चे हो. आज तुम लोग क्रिसमस मनाने के लिए अपने घर आये हुए हो. यह लड़ाई का नहीं, प्यार का अवसर है. वैसे भी मां बच्चों को लड़ने नहीं देतीं. आ जाओ. घर के दरवाजे तुम सबके लिए खुले हैं." उन्होंने हाथ फैलाये और पीछे हटकर को रास्ता दिया. कारपोरल विस्म मम्मी का मुंह देख रहा था. निस्त का एक चिंतनीय और निश्चल क्षण गया. फिर मम्मी ने निर्णयात्मक स्व कहा, "अब इस विषय पर कोई बात होगी."

कारपोरल ने सिर झटका, जैसे बोझ उतार फेंका हो. उसके होंठों प झिझकती मुसकुराहट फैल गयी लोग अंदर आ गये.

"अपने हथियार उतारकर यहां दो." मम्मी ने अंगीठी के पास तल हाथ रखते हुए कहा, "जरा जल्दी खाना बहुत देर से प्रतीक्षा कर रह

उनके तने हुए अंग-प्रत्यंग धी

राजेंद्रसिंह बेदी : दो प्रसंग

आइडिया

बो. आर. चोपड़ा एक पंजाव फिल्म बनाना चाहते उन्होंने राजेंद्रसिंह बेदी से कहा, "ए आइडिया है मेरे पास, अगर आ उस पर कहानी तैयार कर सकें."

"कैसा आइडिया?" बेदी ने पूछा

"एक हिंदू स्त्री है," चोपड़ा बताया, "जिसकी औलादें बचत नहीं हैं. हर बच्चा जन्म लेते मर जाता है. आखिर किसी कहने पर वह अमृतसर में 'हरिमंदि साहब' (स्वर्ण मंदिर) गुरुद्वारे जाकर मनौती मानती है कि अग उसका अगला बच्चा बच जाये तो वह उसे सिक्ख बनायेगी.. उसके बच्चा होता है, तो वह ज सिख बना देती है और वह ब जाता है."

बेदी ने एक क्षण चुप रहक कहा, "पर चोपड़ा साहब, वह ब कहां? बच्चा सिख बन गया, बचा कहां?" □

इशारा

राजेंद्रसिंह बेदी कुछ लेखकों के साथ बैठे हुए थे. उनमें एक पहलवान किस्म का लेखक भी था, जो अपनी रचना सुनाने के लिए बहुत उतावला था. लेखकों के टालने पर भी वह अपनी रचना सुनाने से न रहा.

वह रचना उकताहटभरी थी, और फिर इतनी लंबी कि खत्म होने में ही नहीं आ रही थी.

हर कोई तंग आया हुआ था. किसी को छुटकारे का कोई रास्ता दिखाई नहीं दे रहा था. आखिर हर किसी ने बेदी की ओर देखा कि वही छुटकारा दिलायें तो दिलायें.

सो बेदी ने मौका पाकर लेखक से कहा, "देखिए, मैं आपका और तो कुछ नहीं बिगाड़ सकता, लेकिन आपके हाथों अपनी जान गंवाकर आपको फांसी पर जरूर चढ़वा सकता हूं!"

लेखक इतना मूर्ख नहीं था कि उनका इशारा न समझता. □

● प्रस्तुति : सुखबीर

होने लगे. उन्होंने अपने हथियार
वानी से तख्ते पर रख दिये. मम्मी
से फ्रांसीसी में बड़े प्रवाह के साथ
कह रही थीं. जिन उनकी बात अंग्रेजी
ोबिन को बताता रहा. बात खत्म होते
उन दोनों ने भी हथियार उतारकर
मारी में रख दिये. जर्मन और मित्र-
क एक-दूसरे से घृणा करते थे. दोनों
क लंबा शीत-युद्ध हुआ था. इस युद्ध
रे पांच वर्ष की जल-थल और हवाई
इयां भी शामिल थीं. दोनों की घृणा
अनुमान साधारण शत्रुता से नहीं लगाया
सकता. घृणा की यह विष-बेल वर्षों
रवान चढ़ी थी, पर आज जर्मन और
-सैनिक दोनों क्रिसमस मनाने एक
के नीचे एकत्र हो गये थे. इन सातों
उम्र बहुत कम थी. न जाने क्या सोचकर इतने छोटे-छोटे लड़कों को लड़ाई में झोंका गया था! शत्रुओं ने हिचकिचाकर एक-दूसरे को देखा और झेंपकर मुस्कराने लगे. हमारे पास केवल तीन कुर्सियां थीं. सैनिक निःसंकोच भावना से मम्मी का विस्तर उठा लाये. मम्मी ने मुझे और आलू लेने के लिए नीचे स्टोर में भेजा. मैं वापस आया, तो कमरे का वातावरण एक सुखद घरेलू माहौल में बदल चुका था. जर्मन कारपोरल का नाम हैंज था. वह अपने शीशे से हैरली के जख्म का मुआयना करने लगा. उसके बाकी साथी मुश्किल से सोलह-सोलह वर्ष के होंगे. वह मेरे साथ मिलकर आलू उबालने लगे. हरमन बेचारा अपने मोटापे के बावजूद इतने व्यक्तियों के लिए अपर्याप्त था. आलू उबालते समय मैंने मम्मी की आवाज सुनी. वह कारपोरल हैंज से पूछ रही थीं, "बेटे! क्या तुम सेना में चिकित्सा-विभाग से संबद्ध हो?"

"नहीं मम." कारपोरल ने कहा, "कुछ महीने पहले तक मैं हाईडलबर्ग यूनिवर्सिटी में मेडीकल का विद्यार्थी था." वह जख्मी हैरली की ओर उन्मुख होकर बोला, "हिमपात और तीव्र सर्दी के कारण जख्म सूख रहा है, पर खून बहुत अधिक बह गया है. कमजोरी हो गयी है. आराम और खुराक से यह ठीक हो जायेगा. चिंता की कोई बात नहीं."

सबके स्वरों में मित्रतापूर्ण मिठास थी. खाना लगा दिया गया. एक जर्मन ने अपने बैग से जौ की खासी बड़ी रोटी निकाली. मम्मी ने रोटी टुकड़ों में काटकर सबको बांट दी. कारपोरल हैंज ने अपनी जेब से लाल शराब की एक बोतल निकाली. मम्मी ने बोतल धन्यवाद के साथ प्राप्त की और अलग रख दी, "यह केवल हैरली के लिए है."

सबने खाने से पूर्व उठकर क्रिसमस की परंपरागत प्रार्थना दोहरायी. मम्मी की आंखों से आंसुओं की झड़ी लग गयी. उन्हें देखकर क्या मैं, जर्मन और क्या अमरीकी सभी रो पड़े. हम किसी भी देश से क्यों न हों, मनुष्य थे और स्वभाव से एक घर के और एक मां के साथ संबद्ध थे.

बाहर का घंटा बजा. हम सब बाहर आ गये. बर्फ पर कंधे से कंधा जोड़कर खड़े होकर हमने बैथेलेम-सितारा देखा. बैथेलेम-सितारा स्वर्ग की शांति और सुख का संदेश वाहक कहलाता है. वह स्वर्ग, जो संसार के सभी मनुष्यों के लिए होगा. बर्फ की सफेद पृष्ठभूमि में हम अब न जर्मन थे न अमरीकी और न एक-दूसरे के शत्रु, बल्कि हमारे दिलों से निकटवर्ती युद्धक्षेत्र तक का विचार निकल चुका था.

लाल शराब में अंडे और चीनी मिलाकर एक घोल बनाया गया. सुबह तक हैरली को यह घोल और मुर्ग का सूप बार-बार पिलाया गया. फिर सुबह हो गयी. अंधेरा अपनी आशंकाओं और भय के साथ दम तोड़ गया. जीवन की विजय हुई. हैरली को होश आ गया. कारपोरल हैंज ने उल्लास से कहा, "अब यह असानी से अपनी पलटन तक जा सकता है!"

मम्मी ने अपना सबसे सुंदर मेजपोश निकाला. जर्मन सिपाहियों ने मेजपोश दो डंडों के साथ बांधकर एक बढ़िया स्ट्रेचर तैयार कर दिया. कारपोरल हैंज ने जिम के नक्शे पर निशान लगाते हुए कहा, "देखो जिम! सूखी नदी है, इसके किनारे-किनारे चलते रहना. दूसरे मोड़ पर तुम अपनी पलटन से जा मिलोगे. वह मुस्करा रहा था, पर उसकी आंखों में आंसू थे.

"हम मोंशाऊ क्यों न चले जायें?" जिम ने उससे हाथ मिलाते हुए उदासी से पूछा.

"नहीं मित्र! मोंशाऊ नहीं. हम उस पर अधिकार कर चुके हैं."

मम्मी ने उन्हें उनके हथियार लौटा दिये. जर्मन और अमरीकी सिपाहियों ने पहले मम्मी से हाथ मिलाया. फिर एक-दूसरे से हाथ मिलाया. मम्मी ने उनसे कहा, "काश! तुम सब अपने-अपने घर सुरक्षापूर्वक लौट जाओ और अगला क्रिसमस अपने घर मनाओ. मेरी शुभकामनाएं तुम्हारे साथ हैं." उनका गला रुंध गया. वह धीमे स्वर में अटक-अटककर बोलीं, "जाओ बच्चो, जाओ." उन्होंने एक हाथ से मुझे निकट करके दूसरे हाथ से अपना भीगा हुआ चेहरा साफ किया.

हम दोनों अपने रात भर के मेहमानों को देखने लगे. वे परस्पर विरोधी दिशाओं में जा रहे थे. □

● अनुवाद : सुरजीत

लड़ाई स्थगित

▣ सुरेश अनियाल

छुट्टी का भोंपू बजे आधा घंटा हो गया था. तब से वह लगातार एक ही कहे जा रहा था कि उसे घर जाने दिया जाये, पर उसे वे लोग छो नहीं रहे थे. एक भीड़-सी आसपास जमा थी. ऊंची-ऊंची आवाजों में लोग जा रहे थे, उसके कानों में कुल मिलाकर शोर ही आ रहा था. उस शोर में से कुछ शब्दों को वह पकड़ पा रहा था, वे ही उसे आतंकित कर देने के लिए थे. उसने अपने कान दोनों हाथों से दबाकर बंदकर लिये थे और दोहरा हो अपना चेहरा घुटनों में दे दिया था. ऐसे में भी जब शोर कम नहीं हुआ तो वह उठा, "नहीं, कुछ नहीं करना मुझे! मुझे तुम्हारी हमदर्दी नहीं चाहिए! मुझे हाल पर छोड़ दो! रहम करो!"

उसकी बात का असर हुआ था. आवाजों का उठाव रुक गया था. आ आ जरूर रही थीं, पर उतना शोर नहीं लग रही थीं. एक शब्द जो हर आ में सम्मिलित था, वह था 'कल.'

इसके बाद धीरे-धीरे लोगों की संख्या कम होने लगी थी. . .और फिर अकेला रह गया था. अब भी उसे आशंका थी कि लोग फिर उसके चारों जुट सकते हैं और इसी आशंका से अपने को मुक्त करने के लिए वह तेज क से लपकने लगा. किस ओर? यह शायद वह खुद भी नहीं जानता था.

▣

आज सुबह जब वह फैक्टरी आया था तो उसने स्वप्न में भी नहीं सोचा था यह सब घट जायेगा. वह चिंतित और परेशान जरूर था.

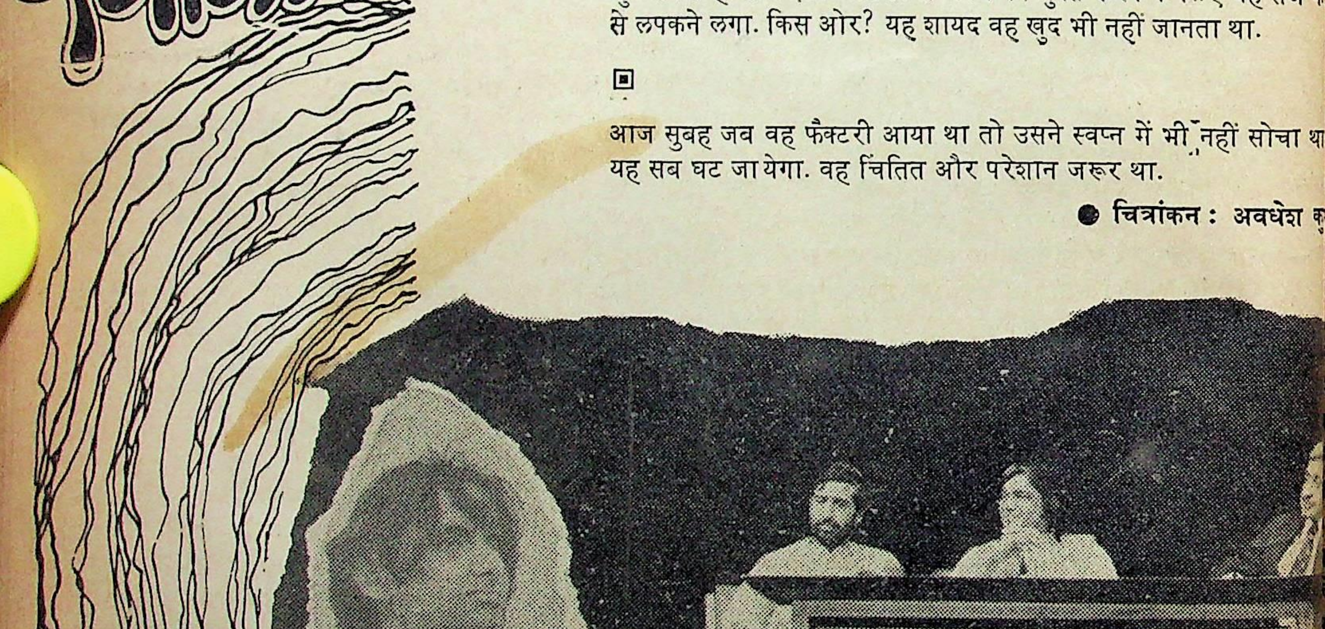

● चित्रांकन : अवधेश कु

मां को टी. बी. हो गयी थी. यह कोई नयी बात नहीं थी. कुछ अपवादों को छोड़कर उसके कई साथियों की माओं को टी. बी. होती थी या इसी तरह का कोई और रोग. उनका परिणाम भी वह जानता था और अपने हर साथी की तरह वह भी अपनी मां को ज्यादा से ज्यादा दिन तक जीवित देखना चाहता था. इसके लिए डाक्टर ने कुछ दवाएं लिख दी थीं और एक महीने तक लगातार उन्हें खिलाने के बाद मां को फिर एक बार दिखाने के लिए कहा था. आज सुबह पत्नी ने दवा की परची देते हुए बताया था कि शाम तक की दवा बाकी है. इसलिए लौटते हुए वह दवा लेता आये. उसने पत्नी से कहा था कि कुछ पैसे वगैरह हों तो दे दे, हालांकि वह जानता था कि पत्नी क्या जवाब देगी. और पत्नी का जवाब भी वही था. तनख्वाह तो सारी पिछले हफ्ते ही खत्म हो गयी थी, ओवरटाइम भी इस बार ज्यादा नहीं लगा था, जो लगा था, उसके से मिलने में भी अभी तीन दिन बाकी थे.

◆

फैक्टरी आते हुए उसने रास्ते में सोचा कि एकाउंटेंट से ही बात कर ले. अगर वह कुछ एडवांस दे दे तो कम से कम दवा लाने का काम तो हो ही सकता था.

वह यह भी जानता था कि इस फैक्टरी में हेल्पर के पद पर अस्थायी रूप से काम कर रहा है और यहां अस्थायी कर्मचारियों को एडवांस देने का कोई नियम नहीं है. फिर भी उसने सोचा कि नियमों के बीच में से भी कभी-कभी मानवता निकल आती है. उसकी जरूरत की अनिवार्यता को देखते हुए शायद एकाउंटेंट पसीज ही जाये और उसे एडवांस दे ही दे. एक और विकल्प उसके दिमाग में था कि यदि फैक्टरी से पैसे न ही मिल सके तो वह कैमिस्ट ही मिन्नत करेगा कि उसे तीन दिन के लिए उधार दवा दे दे. वह जानता था कि जिस रोग की दवा लेने वह जाता था, उसके आधार पर कैमिस्ट उसे मोटी मुर्गी समझता होगा और ऐसे ग्राहक को वह तीन दिन के लिए उधार तो दे ही देगा.

इसी सोच-विचार के साथ उसने उस दिन का काम शुरू किया था. दिन के खाने की छुट्टी तक उसने स्वयं को पूरा विश्वास दिला दिया था कि किसी न किसी तरह दवा का प्रबंध हो जरूर जायेगा और इसी विश्वास को लिये वह खाने की छुट्टी में फैक्टरी के दफ्तर की तरफ चल पड़ा था. यहां का नियम था कि पहले दफ्तर के कर्मचारियों की खाने की छुट्टी होती थी और उनकी छुट्टी का समय पूरा होने के बाद फैक्टरी के कर्मचारियों की. वह जानता था कि अब तक एकाउंटेंट अपनी सीट पर वापस आ गया होगा और पेट भरा होने के कारण अच्छे मूड में होगा.

◆

हे से एक कमरे के कोने में लगी एकाउंटेंट की मेज और उसके पीछे बैठे एकाउंटेंट की चमकती चांद उसने दरवाजे से घुसते ही देख ली थी. उसकी मेज के दूसरी तरफ कुर्सी पर एक और आदमी बैठा था और वे दोनों किसी बात पर ठहाके लगा रहे थे. एकाउंटेंट की इस मुद्रा को देखकर वह एक बार फिर आश्वस्त हो गया था.

उसने एप्लीकेशन पहले ही तैयार कर ली थी. वही सीधे एकाउंटेंट की मेज पर रख दी. 'टी' हेड का टोकन नंबर देखकर और विषय के स्थान पर एडवांस शब्द देखकर एकाउंटेंट ने पूरी एप्लीकेशन पढ़ने की जरूरत नहीं समझी और वापस उसे पकड़ाते हुए कह दिया, "तुम्हें पता नहीं कि टैंपरेरी लोगों को एडवांस देने का नियम हमारी फैक्टरी में नहीं है."

"साब, पता तो है, पर मजबूरी ही ऐसी आ गयी है. मां के लिए दवा आज ही चाहिए. परसों हमें ओवरटाइम मिल जायेगा, आप उसमें से ये पैसे काट लेना. ज्यादा पैसे भी तो नहीं मांग रहा हूं, सिर्फ पच्चीस रुपये. .."

"तुम्हारी बात ठीक है, पर हमें फैक्टरी के नियमों को भी ध्यान में रखना पड़ता है. आज अगर तुम्हें दे देंगे तो कल और लोग भी आ जायेंगे एडवांस मांगने."

"साब, दो ही दिन की बात है, परसों तो. . ." उसके स्वर की गिड़गिड़ाहट क्रमशः बढ़ती जा रही थी.

"मैंने एक बार कह दिया न. . ." एकाउंटेंट के स्वर में उसी अनुपात में तल्खी भर रही थी.

उसकी गिड़गिड़ाहट बढ़ते-बढ़ते इस सीमा तक आ गयी कि उसने एकाउंटेंट के पांव पकड़ लिये. परिणामस्वरूप एकाउंटेंट की तल्खी शब्दों की सीमा पार करके एक तमाचे के रूप में उसके गाल से जा चिपकी.

यह निर्णयात्मक स्थिति थी. वह समझ गया था कि यहां अब कोई संभावना शेष नहीं है. इसलिए वह गर्दन झुकाये चुपचाप सरकता हुआ बाहर आ गया. उसने यह भी नहीं देखा कि उस कमरे में बैठी कितनी गर्दनें कहां तक उसकी पीठ का पीछा करती रही थीं.

खाने की छुट्टी का समय भी करीब-करीब पूरा हो चुका था. खाना खाने की इच्छा यों भी उसके भीतर से मर चुकी थी, इसलिए वह चुपचाप अपनी शॉप में वापस आ गया.

◆

इस खबर को पूरी फैक्टरी में घूमने के लिए एक घंटा काफी था. घूमते-घूमते यह खबर फैक्टरी के नेतानुमा कर्मचारियों तक भी पहुंची थी. यूनियन के चुनाव करीब थे. हर कोई चुनाव में अपनी स्थिति मजबूत करने के लिए इस घटना का लाभ उठाने की फिराक में लग गया. अगले एक घंटे में करीब दस-पंद्रह लोग अलग-अलग उससे मिलने आये थे और सभी ने उसे आश्वासन दिया था कि उसके अपमान का बदला लेकर रहेंगे. शाम को वे एकाउंटेंट का घेराव करके उससे माफी मंगवायेंगे और अगर एकाउंटेंट ने सीधी तरह से माफी नहीं मांगी तो उसकी हड्डी-पसली एक कर देंगे.

वह उनसे एक ही बात कहता कि गलती उसी की है. जब फैक्टरी में टैंपरेरी कर्मचारियों को एडवांस देने का नियम ही नहीं है तो फिर उनका मना करना गलत तो नहीं था.

इस पर नेतानुमा लोगों को शिकायत थी कि एडवांस के लिए मना करना तो ठीक है, पर तमाचा मारना उनके अधिकार क्षेत्र में नहीं आता. इस बात का तो उसे मजा चखाना ही चाहिए, वरना कल तो वह और आगे बढ़ सकता है.

इस बात पर वह चुप रह जाता. कह भी क्या सकता था. वह कैसे कहता कि एकाउंटेंट से झगड़ा मोल लेने पर वे उसे नौकरी से निकाल देंगे. आखिर एक टैंपरेरी कर्मचारी को बाहर करते देर ही क्या लगती है; अगर वह यह बात उनसे कहता तो वे उसे कायर

कहते, धोखेबाज कहते. कहते कि वह अपनी नौकरी जाने के डर से अपने मजदूर साथियों का अहित कर रहा है. उसे आश्वासन देने की कोशिश करते कि अगर किसी ने उसकी नौकरी पर हाथ रखने की कोशिश की तो वे उन हाथों को तोड़ देंगे, पर वह जानता था कि इस सब का परिणाम क्या होता है. उसके सामने कई बार टैंपरेरी कर्मचारियों को किसी न किसी बहाने नौकरी से निकाला जाता रहा. दो-चार दिन नारेबाजी होती, पर फल वही ढाक के तीन पात. किसी को भी नौकरी पर वापस नहीं लिया गया. नौकरी से अलग होना क्या होता है, यह भी वह अच्छी तरह जानता था. वह बी. ए. पास था और बी. ए. कर लेने के बाद सामर्थ्य भर कोशिश कर लेने पर भी जब उसे अपनी योग्यता की कोई नौकरी नहीं मिल पायी थी तो उसे मजबूरन यह नौकरी कर लेनी पड़ी थी. यह भी उसे यों ही नहीं मिल गयी थी. एक हजार रुपये की पूजा चढ़ानी पड़ी थी पर्सनल ऑफिसर को. ऐसे में अगर यह नौकरी छूट गयी तो. . .! सोचते ही उसे झुरझुरी आ जाती.

उसे लगा, कहीं कोई गड़बड़ है. आखिर क्या कारण है कि वह एकाउंटेंट से भी आतंकित है और उसके खिलाफ नारे लगवाने की बात कहने वाले नेताओं से भी. वह कौन-सा स्तर है, जहां जाकर ये दोनों एक्स्ट्रीम एक हो जाते हैं और वह अकेला पड़ जाता है? इन्हीं सब सवालों को लेकर वह बाकी सारा समय सोचता रहा. कुछ-कुछ बातें उसके सामने खुलने लगी थीं.

छुट्टी का भोंपू बजते ही सब लोगों के साथ वह भी बाहर निकला. तभी उसे दो-तीन नेतानुमा लोगों ने रोक लिया. उसने साफ कह दिया कि वह किसी भी तरह से बात आगे बढ़ाने के लिए तैयार नहीं है. वे लोग तरह-तरह से उसे समझाने की कोशिश करते रहे. आसपास लोगों की संख्या बढ़ती जा रही थी. हर आदमी अपने-अपने ढंग से अपनी-अपनी बात उस पर लाद रहा था. हर आदमी अपनी आवाज को दूसरे की आवाज से ऊपर रखने की कोशिश कर रहा था ताकि आसपास के लोग भी समझ सकें कि वह कितना उत्साही है और उन लोगों का सच्चा नेता साबित हो सकता है. शुरू में उसने कुछ तर्क देने की कोशिश भी की, पर जब उसने देखा कि उन लोगों का ध्यान उसकी बात की तरफ कतई नहीं है और वे अपनी ही बात को अधिक से अधिक लोगों तक पहुंचाने के चक्कर में लगभग चीखे जा रहे हैं तो चुप ही रहना बेहतर समझा. पर इसमें भी उसे मुक्ति नहीं दिखी तो वह चिल्ला ही उठा, "नहीं, कुछ नहीं करना मुझे! मुझे तुम्हारी हमदर्दी नहीं चाहिए! मुझे मेरे हाल पर छोड़ दो! रहम करो!"

◆

जब वह उनसे मुक्त हुआ, तब तक उसका दिमाग इतना थक चुका था कि उसे पता ही नहीं चला कि वह कहां जा रहा है.

काफी देर तक चलते रहने के बाद उसने पाया कि वह रामलीला मैदान में आ पहुंचा है. सामने वह स्टेज था, जिस पर चढ़कर देश के बड़े-बड़े नेता जनता तक अपनी आवाज पहुंचाते थे. उसके स्वतः चलते कदम उसे स्टेज के ऊपर ले आये. उसने सामने मैदान पर नजर डाली. आश्चर्य! वहां लोग थे. वह भरा हुआ था, खचाखच. उसने पहचानने की कोशिश की. ये सब लोग उसकी फैक्टरी के कर्मचारी थे. वे उससे पूछ रहे थे कि वह लड़ाई से पीछे क्यों हटा?

"क्या कारण है कि एक व्यक्ति को दूसरे का अपमान करने का हक सिर्फ इसलिए है, क्योंकि वह आर्थिक रूप से सुरक्षित है और दूसरे को अपने अपमान का बदला लेने का हक सिर्फ इसलिए नहीं है, क्योंकि वह आर्थिक रूप से सुरक्षित नहीं है ?"

और वह खुद भी नहीं जानता था कि कब उसने बोलना कर दिया.

"नहीं, यह गलत है, मैं कभी लड़ाई से पीछे नहीं हटा. दरअस वह लड़ाई थी ही नहीं, जिसे आप लोग लड़ाई समझ बैठे थे. यह एक षड्यंत्र था. यह षड्यंत्र मेरे खिलाफ था, हम सबके, और इस उद्देश्य था अपनी-अपनी कुर्सियां बचाना. एकाउंटेंट या पर्सन ऑफिसर या इस तरह के सारे कर्मचारी अपनी कुर्सियों पर ही इसलिए हैं कि हम जैसे छोटे कर्मचारियों को नियमों की बेड़ि में जकड़ दें. हमारी हालत यह कर दें कि हमारी सारी ताकत अप ही समस्याओं से जूझने में लग जाये और उस बड़ी लड़ाई को करने की स्थिति में भी हम न रहें. यदि ये लोग हमें नियमों जरा भी मुक्त करते हैं तो इनका कुर्सी पर बैठे रहने का कारण खत्म हो जायेगा और इन्हें कुर्सी से उतारकर किसी ऐसे व्यक्ति को कुर्सी पर बिठा दिया जायेगा, जो हमें फिर से नियमों बेड़ी में जकड़ ले. . .और ये हमारे नेता! ये कुर्सियों को पाने उन पर अपनी पकड़ मजबूत करने के लिए बड़ी लड़ाई की तैया करने की बजाय सामने आयी छोटी-छोटी लड़ाइयों पर हमें अ देते हैं. इससे होता यह है कि हम लोग उसे ही असली लड़ाई स बैठते हैं. और इस प्रकार हम कुछ व्यक्तिगत लड़ाइयों में जुट अपनी असली लड़ाई को पूरी तरह से भूल जाते हैं. . .आप कहते मैं लड़ूं, मैं भी चाहता हूं कि लड़ूं. मेरा जो अपमान हुआ है, उस गुस्सा मुझे है. मैं ऑफिस में ही उस एकाउंटेंट के एक के बदले थप्पड़ रसीद कर सकता था, पर उसके बाद क्या होता. . नौकरी से निकाल दिया जाता. . .तब इन नेताओं में से कौन मेरे लड़ता. सब यही कहते कि वह टैंपरेरी था. यूनियन का सदस्य था. उसके लिए हम कुछ नहीं कर सकते. और मेरा परिवार जि मेरे अलावा मेरी मां है, पत्नी है, दो बच्चे हैं—दर-दर की ठो खाने के लिए मजबूर हो जाता. . .क्यों? असली सवाल तो यह कि क्या कारण है कि एक व्यक्ति को दूसरे का अपमान करने हक सिर्फ इसलिए है, क्योंकि वह आर्थिक रूप से सुरक्षित है दूसरे को अपने अपमान का बदला लेने का हक सिर्फ इस नहीं हैं, क्योंकि वह आर्थिक रूप से सुरक्षित नहीं है? हम असली लड़ाई उस तंत्र के खिलाफ होनी चाहिए, जो हितों के लिए आर्थिक सुरक्षा का इस प्रकार असमान बंट करता है? उसके बारे में क्या कभी किसी ने सोचा है? खिलाफ लड़ने के लिए क्या कभी किसी ने कमर कसी है?. . ."

काफी देर तक बोलते रहने के बाद जब वह चुप हुआ तो जैसे सिर से सारा भार उतर गया हो. फिर वह नीचे बैठ पीठ एक खंभे से टिका ली और आंखें बंद कर लीं.

● द्वारा 'सारिका', 10 दरियागंज, नयी दिल्ली-110002

● ईसा के जन्मदिन पर बीतते हुए वध की याद में—

जबां पे मुहर लगी है तो क्या, कि रख दी है,
हर एक हल्क-ए-जंजीर में जबां मैंने!

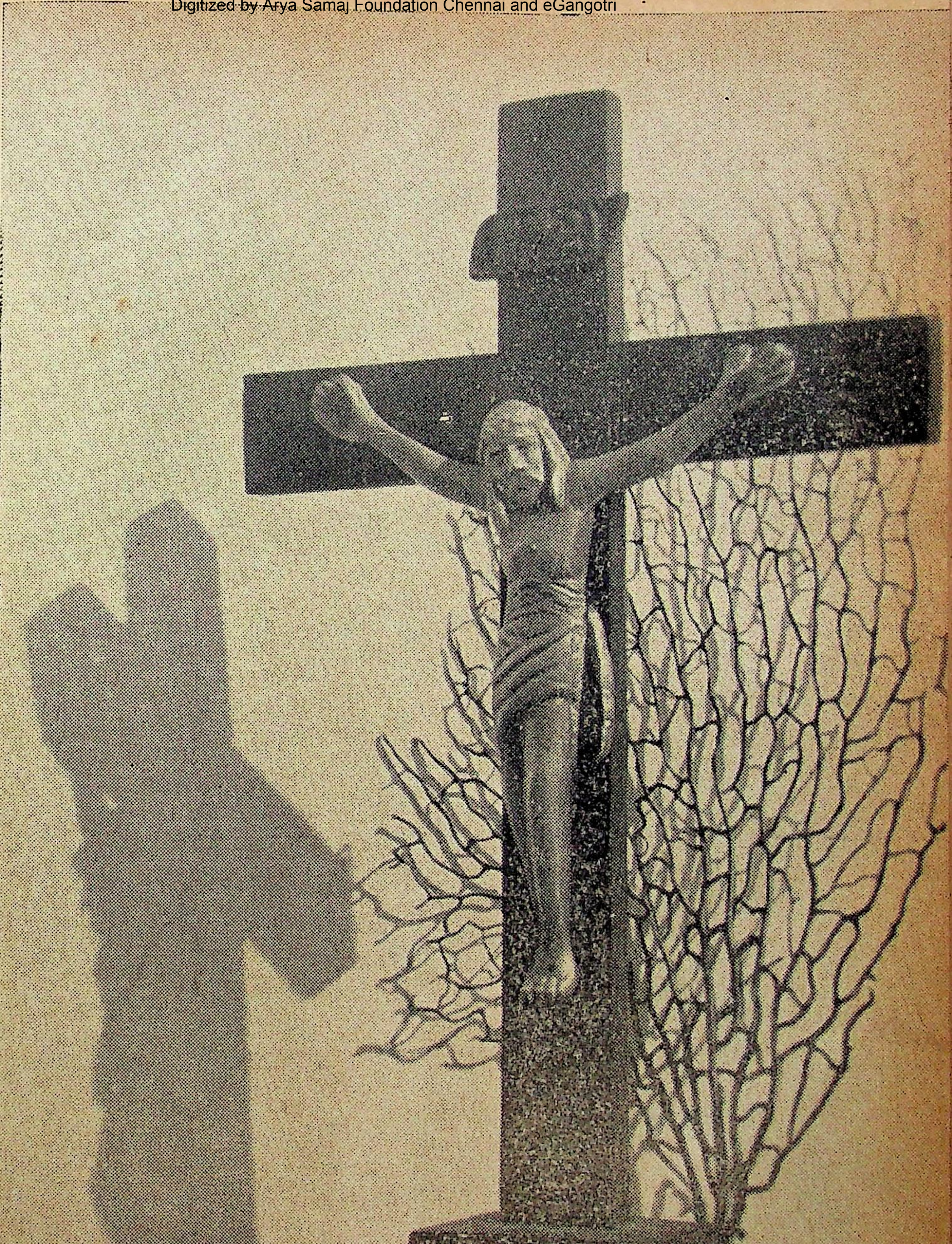

● तस्वीर बोलती है

● छायाकार : आर. के. गोयल, ७, खुड़बुड़ा देहरादून (उ.प्र.)

बढ़ते बच्चों की ज़रूरत कॉम्प्लान

Glaxo
Complan
COMPLETE PLANNED FOOD
STRAWBERRY FLAVOUR

लिंटास-GCL. 6.2519 HI

सिर्फ़ कॉम्प्लान® में ही २३ अत्यावश्यक पोषक तत्त्व हैं जिनकी उनको रोज़ाना ज़रूरत है

बढ़ते बच्चों की खास ज़रूरतें होती हैं क्योंकि साधारणतया १५ या १६ की उम्र तक उनके शरीर का पूर्ण विकास होता है.

शरीर के विकास में जो पोषक तत्त्व सीधे सहायक होते हैं, वे प्रोटीन हैं. इसीलिए आपके बच्चों को **कॉम्प्लान** की ज़रूरत इसी समय है. **कॉम्प्लान** में न केवल प्रोटीन (२०%) हैं, बल्कि इसमें बच्चों के लिए सर्वोत्तम प्रोटीन (दुग्ध प्रोटीन) भी हैं. इसमें कार्बोहाइड्रेट्स, स्निग्ध-पदार्थ, विटामिन्स और खनिज पदार्थ जैसे पोषक-तत्त्व भी हैं, जिनकी बच्चों को बढ़ती उम्र में ज़रूरत रहती है.

अपने बच्चों को **कॉम्प्लान** दीजिए, हर रोज़ दिन में दो बार. ध्यान रहे, **कॉम्प्लान** ही वह नियोजित आहार है जिसकी डाक्टर ज़्यादहतर सिफ़ारिश करते हैं.

कॉम्प्लान चॉकलेट, इलायची-केसर और स्ट्रोबेरी के स्वादभरे जायकों में—तथा प्लेन भी मिलता है. बच्चों को तो बस स्वाद भा जाए!

कॉम्प्लान®

-परिपूर्ण नियोजित आहार

मुफ़्त! ३२ पृष्ठ की पुस्तिका

"सम्पूर्ण परिवार की पोषाहार मार्गदर्शिका"

कृपया ५० पैसे के डाकटिकट सहित इस पते पर लिखें:

पोस्ट बैग नं. १९११६, (काम्प) जी-७३

बम्बई-४०० ०२५

विमोहन

• अरुणा सीतेश

कपड़े फैलाते हुए भी ताईजी राम-नाम का जाप किये जा रही हैं—"जय सिया राम, जय जय सिया राम. . ." इसके बाद वे बाती बनाकर दिए में घी डालेंगी, अगरबत्ती पैकेट से निकालकर स्टैंड में लगायेंगी, तांबे के छोटे से कलश में पानी भरेंगी, सदाबहार, बेला, चमेली और लिली के कुछ फूल छांटकर पूजा की थाली में रखेंगी, आंगन में लगे तुलसी के पेड़ से कुछ पत्ते तोड़ेंगी और प्रसाद के लिए बताशे निकालकर पूजा करने चली जायेंगी.

नहाने से पहले ही वे पूजा-घर झाड़-बुहार कर साफ कर चुकी होती हैं. फिर काफी देर तक विभिन्न स्तोत्रों के अस्फुट स्वर सुनाई देते रहेंगे. घंटी की मद्धिम ध्वनि के साथ जब वे 'जय जगदीश हरे' पर पहुंचेंगी, तब तक बाकी सब 'बेड टी' की रस्म समाप्त कर नित्य-कर्म से निवृत्त हो नहाने की तैयारी में लगे होंगे. यही इस घर की दिनचर्या की पहली कड़ी है.

सुबह जगने पर औरों की प्रतीक्षा न करनी पड़े, इसी से ताईजी सुबह चार बजे ही उठकर नहाना-धोना शुरू कर देती हैं. उनका कहना है कि नल के नीचे से उनका उठने का मन ही नहीं होता, अतः सवा-एक घंटे अवश्य ही उन्हें वहां लग जाता है. सोये हुओं की नींद में व्यवधान न पड़ने देने के लिए वे कपड़े की एक लंबी-सी कतरन नल की टोंटी में बांध दती हैं और पानी की धार बिना शोर किये बाल्टी में गिरती जाती है.

घर छोटा हो, ऐसी बात नहीं है. एक कमरा बाबा का, एक ताई का, एक छोटे ताऊ-ताई का, एक बैठक. ..घर में घुसते ही बायीं तरफ वाला कमरा विनय चाचा को मिला हुआ है, जिसमें इंतहान के दिनों में मुझे, रचना दीदी और रवि दादा को भी बैठने की आज्ञा प्राप्त है, शर्त बस यह है कि हम शोर न करें. भीतर आंगन पार वाला बड़ा-सा हालनुमा कमरा कई कामों में आता है. दिन में वह सबका, खासतौर से बच्चा पार्टी का खाने का कमरा बन जाता. मर्द लोग भी अक्सर वहीं खाना खाते हैं. रात में वहीं चारपाइयां बिछीं तो वह सोने का कमरा बन गया. और जब कभी कोई मेहमान आये तो किनारे खड़ी चारपाइयों पर चादरें डाल दी गयीं और खाने की मेज-कुर्सियां बीचमें लगाकर देखते ही देखते उसे डायनिंग हॉल बना दिया.

इस बड़े कमरे में सबसे मजेदार बात यह है कि चारों तरफ दीवारों में अलमारियां ही अलमारियां भरी पड़ी हैं—जिससे बटवारे में कोई कठिनाई नहीं होती. हर बड़े बच्चे (अर्थात आठवीं कक्षा से ऊपर वाले) को एक पूरी अलमारी और छोटे को एक पूरा का पूरा

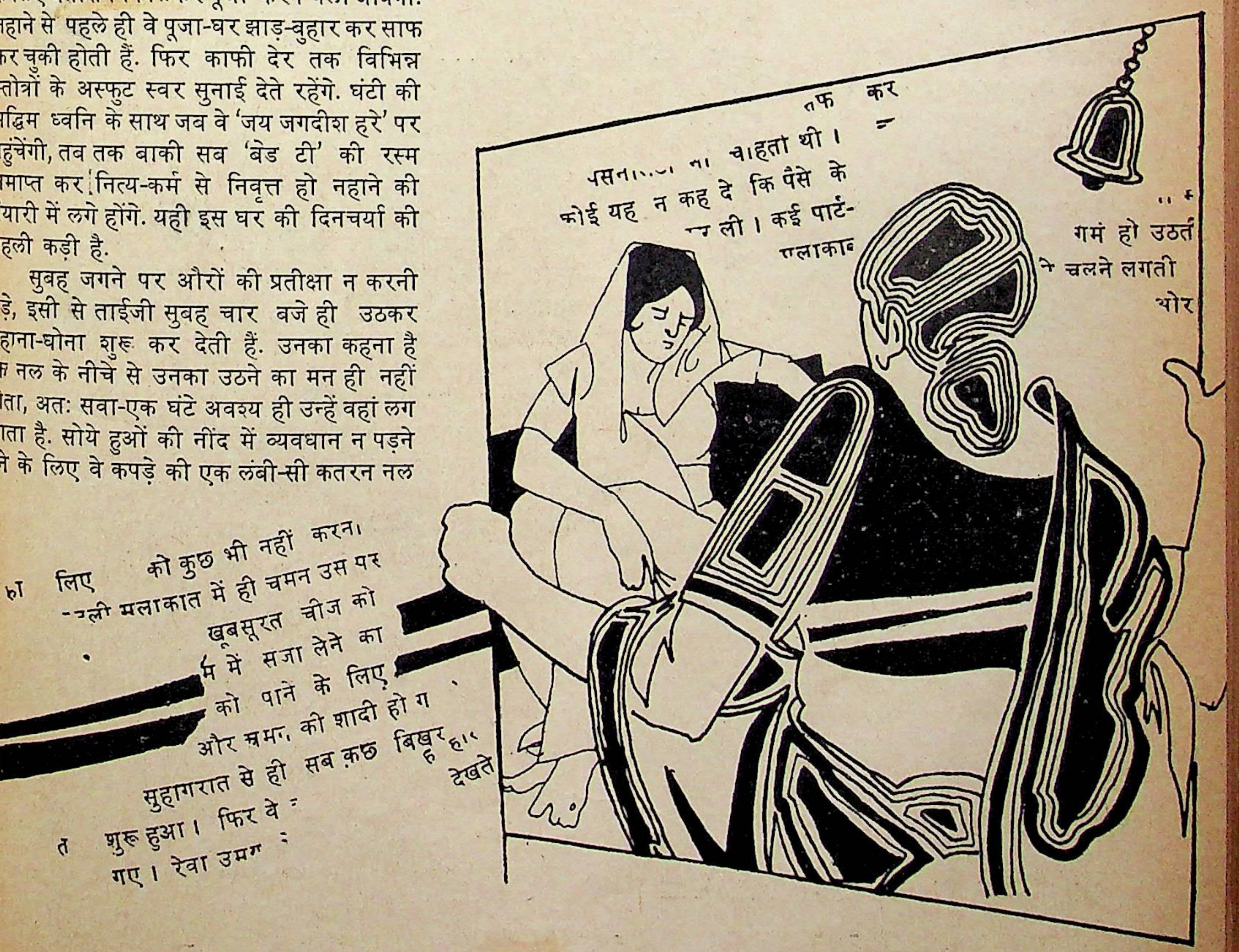
तफ कर
चाहता थी।
कोई यह न कह दे कि पैसे के
ली। कई पार्ट-
गमं हो उठत
ने चलने लगती
थोर
लिए को कुछ भी नहीं करन।
मलाकात में ही चमन उस पर
खूबसूरत चीज को
में सजा लेने का
को पाने के लिए
की शादी हो ग
सुहागरात से ही सब कुछ बिखर
देखते
शुरू हुआ। फिर वे
गए। रेवा उमग

खाना बिना बाल खींचे और मुक्के जमाये मिल जाता है. आंसू तो फिर भी अक्सर बहते ही हैं, क्योंकि कभी किसी की खुशबूदार रबर दूसरे के तख्ते पर पहुंच जाती है तो कभी किसी का शार्पनर ही बस्ते से गायब मिलता है, कभी किसी की लाल पेंसिल खो गयी तो किसी की साबुत चाक टुकड़े-टुकड़े मिली.

झगड़ों की सुनवाई ताईजी करती हैं, उनका फैसला अंतिम फैसला होता है. कभी वे आसानी से समझा-बुझाकर सुलह करवा देती हैं, कभी हल्के से कान उमेठकर और माफी मंगवाकर. जुर्म संगीन होता है और मुजरिम हठी तो मुर्गा बनवाने की भी नौबत आ जाती है.

रचना दीदी, रंजन दादा, राकेश और राका छोटी ताई के, मैं, मीतू, राजू और संजू मिलाकर ही आठ थे. फिर इस जुलाई से तो रवि दादा और रमा भी यहीं आ गये हैं—फूफाजी का तबादला किसी गांव में हो गया है और बड़ी बुआ इनको यहीं छोड़ गयीं, सिर्फ छोटे रोहित को अपने साथ ले गयीं. तो कुल मिलाकर सत्रह लोग. साथ में सत्तू काका और इमरती चाची भी. पिछले साल तक तो छोटी बुआ भी थीं, पर वे शादी होने पर अलीगढ़ चली गयीं. छोटे फूफा का तबादला होने तक यहां उन्नीस लोग ही हैं.

कमरों से लगी एक-एक कोठरी भी है, जिसमें जाने किस-किस का सामान भरा हुआ है. इनमें हमेशा बड़े-बड़े ताले लटके रहते हैं. इनकी सफाई भी सत्तू काका से नहीं करायी जाती. सिर्फ विनय चाचा के कमरे से जुड़ी हुई कोठरी की सफाई ही काका करते हैं. बड़ी ताई ने अपनी कोठरी को पूजाघर बना डाला है और वहां हम बेरोकटोक जा सकते हैं. भगवानजी को छूना वहां भी मना है. नहाये-धोये होने पर ही, चप्पल बाहर उतारकर, हाथ अच्छी तरह धोकर वहां जाना होता है.

बड़े लोग गुसलखानों में नहाते हैं. हम लोगों को तो आंगन में नल के नीचे ही बैठा दिया जाता—गुसलखाने केवल दो ही हैं. जैसे-जैसे बच्चे बड़े होते गये, आंगन के नल पर जाने से इंकार करने लगे. हर सुबह सबका हंसी-खुशी नहा लेना अपने आप में एक बहुत बड़ी उपलब्धि समझिए.

शायद इसी वजह से ताईजी सबके जगने से पहले ही अपना काम निपटा लेना आवश्यक समझती हैं.

पहले हम उन्हें बड़ी ताईजी कहते थे और छोटी वाली को छोटी ताईजी. फिर किसी ने सुझाया कि छोटी ताईजी और ताई जी से भी काम चल सकता है. बस, तब से वे केवल ताईजी ही रह गयीं कई बार तो 'जी' भी गायब हो जाता. हर काम के लिए तो उन्हें पुकारना होता है, बार-बार, जल्दी-जल्दी में 'जी' पता नहीं कहां रह जाता है, "ताई ये कर दो, ताई ये दे दो, ताई ये बना दो. . ."

ताईजी के बिना दो मिनट भी घर का काम नहीं चल सकता. छोटी ताईजी और अम्मा घर में टिकती ही कहां हैं—कभी किसी की बहू देखने जा रही हैं, कभी किसी के घर बीमार का हाल पूछने जा रही हैं, कभी किसी से यों ही मिलने जा रही हैं, बहुत दिन से मिली नहीं हैं, कभी बाजार जा रही हैं सामान खरीदने, कभी जा रही हैं उसे बदलने, ताईजी को कम से कम मैंने तो कभी घर से बाहर निकलते नहीं देखा. हां! सुखदेव अंकल के जवान बेटे हरीश दादा जब एकाएक हैजे में चल बसे थे, तब जरूर ताईजी हर रोज बिना नागा हफ्तों उनके घर जाती रही थीं. उन दिनों तो पूजा-घर में भी मैंने कई बार उन्हें आंचल से आंखें पोंछते देखा था. मेरे पूछने पर वे झट से मुस्कराने लगतीं, "पगला कहीं का, कहां रो रही हूं भला? ले, प्रसाद ले. . ." और बताशे से मेरा मुंह बंद हो जाता.

बाबा को भी छोटी ताईजी और अम्मा की जब देखो, तब घूमने-फिरने की आदत भली नहीं लगती दीखती, तभी तो हर बात में ताईजी का ही हवाला देते हैं. . .फलां मेहमान आ रहे हैं तो बड़ी बहू से पूछो क्या बनना है, कहां सोने का इंतजाम होगा, क्या-क्या सामान बाजार से आयेगा. . .फलां चीज चाहिए? बड़ी बहू से पूछ लिया है? रचना दीदी किस कालेज में पढ़ेंगी. . .बड़ी बहू तय करेंगी. मैं आर्ट्स लूंगा या साइंस. . .? बड़ी बहू ही बतायेंगी. . . रश्मि बुआ की शादी की तैयारी क्या होगी, कैसे होगी? बड़ी बहू से पूछो. जनवासे में तौलिए नहीं पहुंचे. . .? बड़ी बहू से मांगो. हर सवाल का बाबा के पास जैसे यही रटारटाया जवाब हो. और ताईजी भी तो कमाल की हैं. दो दिन का निर्जल व्रत, तिस पर भी छोटी बुआ के ब्याह में रात-दिन फिरकी-सी घरभर में दौड़ती फिरी थीं. वे न होतीं तो कौन जाने ब्याह हो पाता या नहीं. आखिरी मेहमान के साथ पकवान-मिठाई की डलिया बंधवा दी, तब जा के उन्होंने चैन की सांस ली. "रामा-रामा जपते जाओ, कामा-काजा करते जाओ. . ." बस इसी रट के सहारे भूखी-प्यासी ताईजी बड़े से बड़ा काम निपटा देतीं.

जब भी वे इस मंत्र को रटने लगतीं, मैं समझ जाता कि उनका काम बढ़ गया है. पूर्णमासी की कथा होती—ताईजी 'रामा-रामा' जपती जातीं और पंजीरी भूनती जातीं. शहर भर के कुटुंबजनों को बुलाया जाता, जिससे पुण्य में कोई कमी न रह जाये. सबकी आवभगत का भार ताईजी के कंधों पर. उस दिन तो चौके में इमरती चाची घुसने भी न पातीं. पाक-छूत का खाना ताईजी खुद बनातीं. प्रसाद के फल वगैरह काटने-बांटने में जरूर अम्मा और छोटी ताईजी मदद कर देतीं और इतने में ही सब लोगों के जाते ही दोनों ऐसी थककर चूर हो जातीं कि घंटों उठ ही न पातीं. पर ताईजी तो न जाने किस मिट्टी की बनी हैं. मेहमानों से लेकर पंडितजी तक को जिमाने का काम निपट जाता तो फिर से हवन स्थली पर पहुंच जातीं. जाने कितनी देर आंख बंद किये, हाथ जोड़े बैठी रहतीं. फिर जैसे तंद्रा टूटती और घर भर में उनकी सुमधुर आवाज गूंज उठती—"हे दीनदयाल कृपा करके भव सागर से कर पार मुझे. निर्बल के प्राण पुकार रहे जगदीश हरे, जगदीश हरे! !"

शब्द मुंह से ही नहीं, आंखों से भी बहने लगते. . .तन्मय हो ताईजी गाती जातीं, गाती जातीं. . .कभी-कभी तो उन्हें देखकर यह लगा था कि ताई नहीं, करुणा और भक्ति की कोई मूरत वहां बैठी है. . .हम मुग्ध से बैठे रहते, भारी पलकों और गीले गालों के साथ. . .पहले तो मैं अकेला ही चुपके-चुपके उनके पास जाकर बैठ जाया करता, फिर रचना दीदी और रवि दादा भी आने लगे. वैसे भी मैं घर भर में ताईजी की पूंछ के नाम से मशहूर हूं ही.

ताईजी की तरह ही उनकी कहानी भी अनोखी है. ब्याह हुआ था दस साल की उमर में. उनकी गुड़ियों को ब्याहने के लिए आयी बारात कब स्वयं उनकी बारात बन गयी, उन्हें बिल्कुल याद नहीं. गौना दो साल बाद का तय हुआ. यही उन दिनों का चलन था. कहीं

कहीं तो यह अवधि चार-पांच साल तक भी खिंच जाती. ताऊजी ने हाईस्कूल पास करके इंटर में दाखिला लिया ही था तो बुजुर्गों ने सोचा, दो साल में पढ़ाई खत्म कर लेगा, तभी बहू को भी बुला लेंगे. किसी को एतराज होने की बात थी ही नहीं! ताईजी शायद अपनी गुड़िया के गौने की तैयारी में लग गयी होंगी. जाने से पहले उसका पक्का इंतजाम जो करना था.

करीब डेढ़ साल बाद अचानक फड़फड़ाती आंधी आयी और मौसम बदरंग हो गया. कहते हैं, एक शाम ताईजी की अम्मा ने अचानक ही उनकी कलाइयों की हरी चूड़ियां तोड़ डालीं. लाख वे रोयीं, चिल्लायीं, हाथ-पैर पटके, पर किसी ने नहीं सुना.

और फिर एक दिन बड़े भाई के साथ उनको ससुराल के लिए रवाना कर दिया गया. धचके खाती बैलगाड़ी में बैठी ताईजी को भला क्या पता होगा कि वे कहां जा रही हैं, क्यों जा रही हैं, कौन-सा देश है वह, जहां जाने के लिए जबरन उन्हें बस एक सफेद कपड़े में लपेट दिया गया.

दादी ने बहू की आरती उतारने की जगह ऐसे-ऐसे स्वागत-वचन कहे कि वह नासमझ लड़की समझ ही नहीं पायी कि वह कौन हैं और उससे इस तरह क्यों बोल रही हैं. यह तो बहुत बाद में जाकर उन्हें पता चला था कि एक रात छात्रावास के कमरे में ताऊजी देर तक पढ़ने के बाद जो सोये तो फिर बस जगे ही नहीं. शायद वे पढ़ते-पढ़ते ही ऊंघने लगे थे. पता नहीं, कब किताब एक तरफ लुढ़क गयी और वे दूसरी तरफ. सुबह साथियों ने क्लास में चलने के लिए दस्तक दी तो जवाब में केवल असहज चुप्पी ही मिली. हारकर दरवाजा तुड़वाया गया. अंदर कोई नहीं था. उस रात जो कुछ भी घटा, उसका अकेला गवाह—वह लैंप, मेज पर अब भी जल रहा था. बस, ताऊजी बुझ चुके थे.

ताऊजी के साथ ही किसी रस्म के नाते ताईजी के भविष्य को भी बुझा दिया गया था. उनके अनजाने ही वैधव्य का वैताल उनके कंधों से चिपट गया था, जिसका बोझ उन्हें जिंदगीभर ढोते रहना था.

उस दिन वह जख्म ताईजी के दिल पर क्या लगा कि उनकी सारी जिंदगी ही एक जख्म बनकर रह गयी. वैधव्य के इस रिसते नासूर को ढोते-ढोते उन्हें पता ही नहीं चला कि कब किस राह से तरुणाई अपनी उमंगों के साथ आकर निकल गयी. इतने लंबे-चौड़े परिवार के एक-एक सदस्य की देखरेख करते, पूजा के कमरे में स्थापित देवी-देवताओं से अपने पिछले जन्मों के कुकर्मों के लिए रोज घंटों-घंटों क्षमा मांगते, अपने दुर्भाग्य की छाया को मात्र अपने तक सीमित रखने की चेष्टा करते-करते उन्हें इतना भी समय नहीं मिला कि कभी सदर दरवाजे से बाहर भी झांक सकें या शायद ऐसा रहा हो कि कहीं किसी फूल के सिर उठाने के डर से वे स्वयं ही अपने मन को बंजर बनाने में लगी रहती हों.

बाबा यदि कभी बहू को औरों के साथ कहीं भेजने की बात कहते भी तो दादी काट देतीं. बहू क्या करेगी? मंगल कार्यों में तो उसकी उपस्थिति पूरी तरह वर्जित थी ही. बाजार-हाट में जाकर भी बेकार समय ही गंवायेगी—दूकानों पर चकमक करती चीजें भला उसके किस काम की? सफेद धोती उसे पहननी है, सो किनारी का रंग कोई भी पसंद कर लेगा. रही किसी के घर ले जाने की बात, सो, पता नहीं किसके यहां क्या हो रहा हो, कल कुछ ऊंच-नीच हो जाये तो नाम तो दादी का ही धरा जायेगा. दादी की दलीलों और सख्त आवाज का सामना करने का साहस घर भर में किसी को नहीं. बाबा भी चुपचाप बाहर चले जाते.

जवान बेटे की मौत के लिए दादी ने पूरी तरह बहू को उत्तरदायी ठहराया था. बेटे की याद व्याकुल करती तो भगवान और भाग्य पर आया गुस्सा भी वे अपनी बहू पर उतारतीं और बहू की बिसात ही क्या थी, जो प्रतिवाद कर लेती. करती भी तो किसके बूते पर? मां मासूम बेटी के प्रति किये गये इस विश्वासघात की जवाबदेही करने सीधे दामाद के पास ही पहुंच गयीं. पिता ने इस दुहरे सदमे को किसी तरह झेल तो लिया, पर स्वयं इतना टूट गये कि समाज-भाग्य-ईश्वर किसी के भी प्रति खिलाफत करने की न तो उनमें शक्ति बची थी, न इच्छा. स्वयं अपने को ही नहीं, बेटी

लघुकथा

संकल्प

उपेंद्रप्रसाद राय

उस मैदान में स्थापित बापू की आदमकद प्रतिमा के सामने उस इलाके के सारे गांधीवादियों ने एक सभा का आयोजन किया. खादी पहने औरत-मर्द, बूढ़े-जवान, गरीब-अमीर सभी तरह के लोगों की एक भारी भीड़ वहां इकट्ठी हो गयी. गांधीवादियों को संबोधित करते हुए उस वयोवृद्ध तपस्वी ने कंपित स्वर में कहा, "क्या यही गांधी के सपनों का भारत है? देश की हालत किसी से छिपी नहीं है. उदाहरण के रूप में हम अपने ही इलाके को लें. हरिजनों पर कितने अत्याचार हो रहे हैं! उनके घर लूटे जा रहे हैं! उनकी बहू-बेटियों की इज्जत से खिलवाड़ किया जा रहा है! उन्हें जिंदा जलाया जा रहा है! क्या यह सब देखकर इस प्रतिमा की आत्मा नहीं कराहती होगी? इसका हृदय विदीर्ण नहीं होता होगा? यह प्रतिमा, सब कुछ देखती है और अपनी संतानों की कृतघ्नता और क्रूरता पर आठ-आठ आंसू बहाती है. आज हम किस मुंह से अपने को गांधीवादी कहें? बताइए!"

लोगों के सिर स्वतः झुक गये. उन्होंने एक स्वर में कहा, "हम प्रतिज्ञा करते हैं कि इस प्रतिमा को अब यह सब देखने का अवसर नहीं देंगे."

सभा विसर्जित हुई. लोग घर गये. रात देर तक वह यह सोच-सोचकर उद्वेलित होता रहा कि सचमुच गांधी के नाम में आज भी कितना जादू है! लोग कितने लज्जित हुए! कितना गौरवपूर्ण संकल्प उन्होंने किया—'इस प्रतिमा को अब यह सब देखने का कोई अवसर नहीं देंगे.'

सुबह हुई. हर रोज की तरह उसने खादी का गमछा उठाया और प्रतिमा की सफाई में लग गया, किंतु बापू के चेहरे पर नजर पड़ते ही वह फफक-फफककर रो उठा. रात में किसी ने प्रतिमा की आंखें फोड़ दी थीं.

को भी उन्होंने कुछ यही शिक्षा दी थी बार-बार— "जाही विधि राखे राम, ताही विधि रहिए."

बड़े भाई-भाभी. . .नौ बच्चों के अपने लंबे परिवार के साथ इस बहन की भी जिम्मेदारी उठायें, ऐसी अपेक्षा करना भी उनके साथ अन्याय ही होता. मंझली भाभी ठहरीं हमेशा की रोगी. वे तो अपनी ही देखभाल कर लेतीं तो बहुत था. बचे छोटे भाई-भाभी. छोटी भाभी दिल की बेहद अच्छी हैं—सभी मानते हैं. बहुत भली, बहुत दूरदर्शी. बहुत व्यवहारकुशल. इकलौती ननद का नाम आते ही उनकी आंखें भीग जातीं, पर वे जल्दबाजी में भावुकता की रौ में बहकर भी कभी ऐसा कोई निर्णय लेने के पक्ष में नहीं, जिसके लिए बाद में पछताना पड़े. उतना भर करो, जितना खुशी से कर सको—उनका जीवन मंत्र है. इसके तहत हर रक्षाबंधन और भैयादूज पर बिना नागा ताईजी के लिए आज भी एक भारी-सा मनीआर्डर आया करता है, ताईजी मुस्कराकर फार्म पर दस्तखत करती हैं और डाकिये की साइकिल निकलते ही घर भर के बच्चों में वह बंट जाती है.

ताईजी पैसे का करेंगी भी क्या? उनकी तो सब जरूरतें यों ही पूरी हो जाती हैं. बाहर आना-जाना ही इतना कम है कि कपड़े महीनों-महीनों बक्स में ही बंद रह जाते. विनय चाचा अपनी नौकरी लगने पर जो सफेद सिल्क की साड़ी लाये थे, वह तो ताईजी ने शायद अभी तक पहनी ही नहीं. इसी से तो लेने से भी इंकार कर रही थीं, "नाहक पैसा बर्बाद किया लाला. कहां पहनकर जाऊंगी इसे बताओ तो?" चाचा रुआंसे हो गये तो चुपचाप ले जाकर बक्स में रख दी.

एक बात है. ताईजी हर चीज को बहुत ही सहेजकर रखती हैं. चाचा वाली साड़ी को एक पुरानी फटी धोती में से टुकड़ा फाड़कर लपेटकर रखा. छोटे ताऊजी और बाबूजी की शादी में भी जो साड़ियां उनके लिए आयी थीं, इसी तरह के मुलायम टुकड़ों में लिपटी रखी हैं. ये रचना दीदी हैं न! ये ही खोद-खोदकर सब बातें ताईजी से पूछा करती हैं, पर पता नहीं, ताईजी उनका क्या करेंगी. पहने हुए तो मैंने उन्हें कभी देखा नहीं. विनय चाचा की शादी में जो साड़ी आयेगी, वह भी इसी तरह लपेटकर रख देंगी. हां, और क्या?

पर पहनें भी कब? दिन-रात तो काम में लगी रहती हैं. वे न उठें तो घर में सुबह ही न हो. पिछले साल दो हफ्ते के लिए तीर्थ यात्रा पर चली गयी थीं तो जैसे घर में तूफान आ गया हो. किसी के नाश्ते में देर हो जाती, किसी के खाने में. कभी दाल में नमक नदारद तो कभी सब्जी में दुगना नमक. कभी कोई बच्चा भूखा ही स्कूल भाग रहा है तो किसी का टिफिन का डिब्बा घर में ही रह गया. घड़ी की सुइयों के हिसाब से खाना खानेवाले बाबा अलग नाराज कि इतनी देर हो गयी, उन्हें अभी तक पूछा ही नहीं गया है. मजा यह कि वही इमरती चाची, वही सत्तू काका. फिर ताईजी के सामने ही क्या जादू हो जाता है, जो सबका सब काम बिना हवड़-तबड़ के समय पर होता रहता है, पर बस होता है. यह तो उनके लौटने के दूसरे दिन ही पता चल गया था.

कभी-कभी हैरानी होती है कि इस दुबले-पतले शरीर में इतनी ताकत आती कहां से है, जो इसे सुबह पांच बजे से रात के दस-ग्यारह बजे तक एक पैर पर चला सके. न मन को बांधनेवाले रेशमी धागे हैं, न तन को पुष्ट करने वाली खुराक. दिनभर में एक समय का खाना, वह भी पूरी तरह सात्विक. यह अनुशासन व्रत दादी ने उन को इस घर में आते ही दिलवा दिया था—तन-मन को इधर-उध भटकने से बचाने के लिए. आज दादी नहीं हैं, पर यह अनुशास अब उनका धर्म ही नहीं, स्वभाव बन गया है. अब तो हालत यह कि हम सब समझते हैं कि चाट-खटाई-मिठाई ताईजी को पसंद नहीं, पसंद थी ही नहीं कभी. अतः घर से उनकी बेचारगी के प्र सहानुभूति का भाव समाप्त हो चुका है और उनकी भिन्न दिनच घर की सामान्यचर्या का सामान्य अंग बन चुकी है.

फिर ऐसा क्यों होता है कि जब भी वे 'निर्बल के प्राण पुकार . . .' गाने लगती हैं, मेरा मन रोने को करता है? क्यों ऐसा लगता मुझे कि यह भजन भर नहीं, उनकी अपनी वेदना है, ईश्वर से उन अपनी टेर—इस जीवन के कष्टों से छुटकारा दिलाने के लिए पता नहीं और किसी को ऐसा क्यों नहीं लगता! अम्मा से भी पूछ चुका हूं, छोटी ताईजी से भी. "यह भजन तो घर में सभी गा हैं पगले." पर फिर मुझे ऐसा क्यों लगता है कि इसे गाते समय ता जी की आवाज गीली-गीली हो जाती है? शायद यह मेरे मन

लघुकथा

अर्थशास्त्र

▣ अशोककुमार खन्ना

मैं अपने को अर्थशास्त्र का भारी विद्वान मानता रहा हूं. इधर मेरे 'मांग, कीमत और उत्पादन' के सिद्धांतों को विश्व के अर्थशास्त्रियों ने माना है. भारत सरकार के योजना विभाग में कार्यरत मैं एक दिन केंद्रीय सचिवालय के भवन के बाहर सायकिलनुमा रेहड़ीवाले से केले खाने गया.

अपने अर्थशास्त्र के प्रथम नियम के अनुसार मैं उस रेहड़ी वाले के पास गया था, जिसके केले अच्छे थे, रश कम था तथा केलों का अंबार था.

"कहो भई, कैसे दिये!"

"अठन्नी के तीन बाबूजी!"

मैं अभी किसी सिद्धांत को सोचकर फैसला लेता कि कमेटी की गाड़ी आ गयी. आनन-फानन रेहड़ियां, पेनवाले व मोची वहां से भागे. केलेवाला इंस्पेक्टर के हत्थे चढ़ गया था. कुछ केले भागमभागी में दब गये थे. कुछ कमेटी वालों ने हथिया लिये थे. गाड़ी चली गयी. रेहड़ीवाला फिर आ डटा.

"ला भई, तीन केले देना!"

"बाबूजी, तीन के बारह आने होंगे!"

किसी भी अर्थशास्त्री का ध्यान कीमतों के बढ़ने के इस सच्चे सिद्धांत पर आज तक क्यों नहीं गया, मैं समझ नहीं सका हूं. ☐

वहम ही हो. मुझे तो यह भी लगता है कि ताईजी अक्सर चौके में बैठी-बैठी रोया करती हैं, हालांकि सब कहते हैं कि उनकी आंखों में रोहे हो गये हैं.

◆

शायद सब लोग ठीक ही कहते हैं कि मैं कुछ अधिक ही सोचता हूं, जरूरत से ज्यादा या शायद आलतू-फालतू की चीज़ें अधिक पढ़ता हूं. तभी तो आजकल मैं ताईजी के क्षितिज में उगे-अनउगे इंद्रधनुषों को तलाशा करता हूं. उम्र के खाते में रात-दिन जुड़ते उनके बेनाम दर्दों को खोजा करता हूं. सोचता हूं, कहीं ऐसा तो नहीं कि हर रात अनगिनत तारे पिघल-पिघलकर उनकी कसक में घुलते रहे हों और हम सब अपने-अपने स्वप्नों को मुट्ठी में बांधे सोते रहे हों. मुकुल ठीक ही कहता है कि अब मैं बड़ा हो गया हूं—ये सब बड़े-बड़े एहसास उसी के संकेत हैं.

पर एक बार ताईजी से पूछकर देखा जाये कि इतने पूजा-पाठ, दान-धर्म, त्याग-संयम से क्या सचमुच मन को अधिक शांति मिलती है. यदि हां, तो फिर सब ही ऐसा क्यों नहीं करते? क्या ताईजी को ही इसकी अधिक आवश्यकता है? मेरे खयाल से तो अम्मा और छोटी ताईजी को यह सब करना चाहिए. उन्हें ही हमेशा यह चिंता लगी रहती है कि इसके घर कल यह खरीदा गया, इसके घर उस दिन बहू के मायके वाले यह लाये, उसके घर वह लाये. उन्हें शांति की जरूरत ज्यादा है, पर उनसे कहे कौन? मुझे तो वे पगला कह-कर भगा देंगी.

बूझे-अनबूझे प्रश्नों को पीछे छोड़ समय आगे बढ़ता रहा. अपनी जगह टिकी रही तो बस मर्यादा की अभेद्य दीवारें, अनजाने विश्वासों के जाल, रीति-रिवाजों के लिपे-पुते चौबारे और संकरे गलियारों में समाये रहने का प्रयत्न करते हुए संस्कार.

घर में नये सिरे से मेहमानों का आना शुरू हुआ. पूरा मकान ऊपर से नीचे तक लीपा-पोता गया. फिर बंदनवार सजीं, ढोलक-मंजीरे बजे और एक शाम विनय चाचा गाजे-बाजे के साथ एक गुड़िया-सी चाची को घर ले आये.

घर भर के बच्चे कपड़े की बेजान गुड़ियों को इधर-उधर फेंक इस जीती-जागती गुड़िया के इर्द-गिर्द चक्कर काटने लगे. विनय चाचा की व्यस्तता हैरान करने लगी. अम्मा और छोटी ताईजी की मुहल्लेदारी बढ़ती गयी. बाबा की गर्दन कुछ अधिक ही हिलने लगी. बड़े फूफा का तबादला तीन साल बाद फिर किसी शहर में हो गया. रवि दादा और रमा अपनी मम्मी के पास लौट गये. रचना दीदी की शादी के लिए भाग-दौड़ होने लगी. मैं ग्यारहवीं में पहुंच गया. बस, नहीं बदला तो ताईजी का 'रामा-रामा' का जाप, पर अब उनके चेहरे की झुर्रियों और आंख के काले गोलानों को देखकर मुझे रह-रहकर किताब में पढ़ा कबीरदास का 'यह संसार झाड़ और झांखर' अनायास ही याद आने लगा था.

उस दिन भी सब कुछ यथावत ही था. . .सूर्य ने सिंदूरी रंग बिखेरते हुए अपनी सुनहरी किरणें बिखरायी थीं. चिड़ियां रोज की तरह ही चीं-चीं करती हुई दानों की तलाश में निकली थीं. . .सायों ने रोज की तरह धीरे-धीरे सिमटने के बाद फिर लंबा होना प्रारंभ किया था. . .दिनभर भी सब सामान्य था. शाम घिरने से पहले रोज की ही तरह शीशे के सामने खड़ी हुई चाची चाचा के स्वागत के लिए कोई मुस्कान पिरो रही थीं. . .लेकिन तभी, न जाने कैसे दर्पण टूटकर बिखर गया. बरसों पहले जो आंधी इस घर का दीप बुझा गयी थी, वह न जाने कहां-कहां अंधेरा करती हुई एक बार फिर यहां आ पहुंची थी.

विनय चाचा का फैक्टरी में एक दुर्घटना में तत्काल देहांत हो गया था और थोड़ी देर बाद ही उन्हें घर लाया जा रहा था. कुछ समझने-बूझने की न शक्ति थी, न इच्छा. बाबा की लगातार हिलती गर्दन, कांपते हाथ-पांव, सूनी दृष्टि सबका शेष साहस भी छीने ले रही थीं. ताईजी के होंठों और आंखों पर तो श्मशान ही आकर चिपक गया था, निःशब्द.

पर दिलों पर पत्थर रखकर सब कुछ किया गया, सब कुछ सहा गया. शीशे-सा कोमल दिल भी समय आने पर कितना निर्मम हो सकता है, यह वही जानते हैं, जो जिंदगी से जूझ चुके हैं.

सब कुछ खत्म कर हम लोग घर लौटे तो अम्मा और छोटी ताई चाची को संभाल रही थीं, "बस कर बिंदु, बस कर." चाची पछाड़ खा-खाकर गिर रही थीं.

तभी ताईजी भी अपनी कोठरी से आती हुई दिखाई दीं. . . हाथ में एक पोटली-सी लिये. चाची के पास पहुंचकर ताईजी ने उन्हें बाहों में समेट लिया, "बस कर बिटिया. . .उसकी इच्छा के आगे किसी का बस नहीं चलता. . .मेरी तरफ देख बहू, और आंसू पोंछ डाल. मैं तो अकेली थी, निपट अकेली. मैंने तो अब तक अकेले काट ली. . .आगे हम दोनों मिलकर काट लेंगी. उसने दुःख दिया, वही सहने का बल भी देगा. . ."

ताईजी ने बिना बोले ही पोटली खोलकर बरसों की सहेजी अपनी सफेद साड़ियां चाची को सहेज दीं. . .और. . .'जाहि विधि राखे राम, ताही विधि रहिए. . .' गुनगुनाती हुई लौट गयीं.

◆

महीने भर बाद ही चाची के पिता फिर आये. वे बेटी के प्रति भाग्य के अन्याय को चुपचाप सह लेने के लिए तैयार नहीं थे, "जो हुआ, वह अच्छा नहीं हुआ. अब तो आप आज्ञा दीजिए...कोई अच्छा लड़का मिलते ही मैं फिर बिंदु को दुल्हन बनाकर विदा करूंगा. . ." बेटी को भाग्य के विरुद्ध फिर एक बार खड़ा करने के लिए वे कृत-संकल्प थे.

उनकी बात से बढ़कर हैरानी हुई थी सबको बाबा के उत्तर से. "समय बदल गया है. . .इसकी जिंदगी बन जाये तो मुझे क्या ऐतराज होगा. . .ईश्वर की यही इच्छा है तो. . ." उनकी शेष बात शब्दों में नहीं, आंसुओं में बह निकली.

चाची को विदा होते हम सब सहमे हुए से देखते रहे थे. उन्हें दूर जाते देखकर एक अनजाना-सा बोझ दिल पर बैठता जा रहा था. . .भारी मन से हम मुड़े तो मैंने देखा, हमारे बीच सभी थे, बस ताईजी नहीं थीं.

तेज कदमों से जाकर मैंने ताईजी के कमरे में झांका. वह अपने ठाकुरजी के सामने बैठी अपनी हिचकियों में डूबी जा रही थीं. उनकी आंखों से आंसू बह रहे थे. सूने दीपक और मौन घंटी के पास ही उनकी सफेद साड़ियां बिखरी पड़ी थीं. ☐

● के 4/12 मॉडल टाउन, दिल्ली-110009

एक विश्वविद्यालय ने विज्ञापन दिया है कि~

आवश्यकता है कुछ अदद छात्रों की

▫राजेंद्र मेहता

छात्राक्रोश विश्वविद्यालय,
असंतोषनगर,

प्रवेश सूचना

विश्वविद्यालय के अगले सत्र में विभिन्न विषयों के स्नातक एवं स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों में प्रवेश हेतु ऐसे विद्यार्थियों से आवेदनपत्र आमंत्रित किये जाते हैं, जो विद्याअर्जन के सिवा सभी गतिविधियों में पूर्णरूपेण सक्षम हों.

अ : प्रवेश विषय : कला, विज्ञान, वाणिज्य एवं कानून संकाय में विभिन्न पाठ्यक्रमों की व्यवस्था है, जिनका पूर्ण विवरण आवेदनपत्र के साथ भेजी जाने वाली विवरणिका में उपलब्ध है. वैसे अंतः-संकाय पाठ्यक्रमों (इंटर डिसिप्लिनरी) की व्यवस्था भी आवश्यकतानुसार की जा सकेगी. विश्वविद्यालय के कुछ पुराने छात्रों ने राजनीति 'विज्ञान' की ऐसी 'कला' का अध्ययन भी किया है, जो बाद में 'कानून' व्यवस्था को बिगाड़ने-बनाने में सहायक सिद्ध हुई है, यह उनके वर्तमान कार्यकलापों से स्पष्ट है. विश्वविद्यालय यह जानता है कि आज के युवा ही कल के राष्ट्रनिर्माता हैं. सो, इस हेतु लगभग सभी पाठ्यक्रम इस दायित्व को निबाहने के उद्देश्य से ही बनाये गये हैं.

आ : प्रवेश संख्या : प्रत्येक विषय में प्रवेश के लिए निर्धारित स्थान हैं, जिनका ब्यौरा प्रवेश विवरणिका में उपलब्ध है. (**टिप्पणी :** प्रवेश के लिए अधिक छात्र उपलब्ध होने एवं प्रवेश देने के लिए उनकी दबाव एवं आतंक की राजनीति को मद्देनजर रखते हुए उनके घिराव और तोड़फोड़ की कार्यवाही के सामने घुटने टेकते हुए प्रवेश संख्या असीमित रूप से बढ़ाये जाने की संभावना है.)

इ : (क) प्रवेश के लिए निर्धारित कुल स्थानों में से दस प्रतिशत स्थान ऐसे 'दब्बू' और 'कायर' विद्यार्थियों के लिए सुरक्षित हैं, जो हड़तालों और तोड़फोड़ को मन ही मन अनुचित तो मानते हों, मगर दादा टाइप नेताओं का विरोध करने का जिनमें साहस न हो और जो विश्वविद्यालय के वास्तविक उद्देश्यों से भटककर वाकई शिक्षा प्राप्त करना ही अपना ध्येय मानते हों.

(ख) अनुसूचित जाति/जनजाति के लिए निर्धारित बीस प्रतिशत स्थानों के अलावा पांच प्रतिशत स्थान उन छात्रों के लिए भी सुरक्षित हैं, जो अपनी तिकड़म से अनुसूचित जाति/जनजाति का फर्जी प्रमाणपत्र ला सकते हों.

(ग) दस प्रतिशत स्थान 'पहुंच' वाले छात्रों के लिए सुरक्षित हैं. ऐसे छात्रों को मंत्री, नेता, बड़े अफसरों आदि की स्लिप लानी होगी या उनसे फोन करवाना होगा.

ई : शैक्षणिक योग्यता : तीन वर्षीय स्नातक पाठ्यक्रम के प्र वर्ष में प्रवेश हेतु किसी मान्यता प्राप्त या गैरमान्यता प्राप्त सं से हायर सेकेंडरी या समकक्ष कक्षा में उत्तीर्ण होने का प्रमाण देना आवश्यक है. श्रेणी अथवा अंकों के प्रतिशत का कोई बं नहीं है, मगर साठ प्रतिशत से अधिक अंक पाने वाले छात्रों अपनी संस्था के प्रधान से इस आशय का प्रमाणपत्र देना हो कि जिस वर्ष उक्त परीक्षा उत्तीर्ण की गयी, उस वर्ष संस्थान 'मास कॉपींग' या 'सामूहिक नकल' का कार्यक्रम नहीं चल गया था. ऐसे प्रमाणपत्र लाने वाले को उपर्युक्त वर्णित आर को क्रम संख्या (क) का लाभ मिल सकेगा.

स्नातकोत्तर कक्षाओं में प्रवेश हेतु इस विश्वविद्यालय अन्य कहीं से स्नातक उपाधि प्राप्त किया होना आवश्यक है.

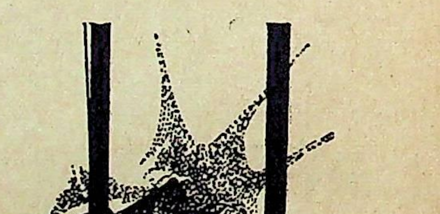

ी-एच. डी. के लिए शोधछात्रों को स्नातकोत्तर उपाधि के अतिरक्त चमचागीरी में दक्षता का प्रमाणपत्र भी देना होगा.

उ : अन्य योग्यताएं : उपर्युक्त शैक्षणिक योग्यताओं के अतिरक्त शैक्षणेत्तर प्रवृत्तियों में रुचि रखने वाले छात्रों को प्रवेश में ाथमिकता दी जायेगी. **टिप्पणी :** शैक्षणेत्तर प्रवृत्तियों से ात्पर्य, निम्न प्रकार के कार्यकलापों से है—हड़तालों, घिराव नारेबाजी में भाग लेना, शहर की बसों व सिनेमाघरों पर पथराव आगजनी करना, कक्षाओं का सामूहिक बहिष्कार करना, कक्षा प्रॉक्सी बोलना, आध्यापकों पर कक्षा में फब्तियां कसना व नके आने से पहले ब्लैकबोर्ड पर उनके कार्टून बनाना, लड़कियों दुपट्टे खींचना व उनकी वेशभूषा अथवा हावभाव देखकर त्काल कोई शेर या नये फिल्मी गीत का मुखड़ा सुनाना, बिना ात की बात पर मारपीट के लिए हमेशा तैयार रहना आदि. सा विश्वविद्यालय में शिक्षा के वर्त्तमान स्तर को बनाये रखने लिए आवश्यक है. यूनियनबाजी व स्पोर्ट्स में दक्ष छात्रों को शेष प्राथमिकता दी जायेगी.

जो छात्र 'पिछड़ी' शिक्षण संस्थाओं में पढ़े होने के कारण इन ोग्यताओं से वंचित रहे हों, उन्हें हीनभावना पालने की आवश्यता नहीं है, क्योंकि परिसर में प्रतिवर्ष सत्र के प्रारंभ में इन षयों पर दो सप्ताह का विशेष रिफ्रेशर कोर्स आयोजित किया ाता है, जिनमें विभिन्न विषयों के विद्वान छात्रों द्वारा अपने नुभव के आधार पर व्याख्यान दिये जाते हैं और प्रैक्टिकल निंग भी.

ऊ: उपलब्ध सुविधाएं : विश्वविद्यालय का अपने क्षेत्र में वशिष्ट नाम है. कई भूतपूर्व छात्र विभिन्न क्षेत्रों में नक्षत्र की तरह मक रहे हैं और अपने कारनामों से समाज, सरकारी कार्यालयों, जी उद्योगों व विधान सभा/लोक सभा में विश्वविद्यालय का म रोशन कर रहे हैं.

विश्वविद्यालय में राजनीति एवं राजनीतिबाजों के लिए ोई बंधन नहीं है. छात्रों की बढ़ती रुचि को देखते हुए छात्रसंघ चुनाव वर्ष में एक बार की बजाय दो बार कराने का प्रावधान छात्रसंघ के लेखा पर ऑडिट की दूषित एवं पुरानी प्रथा खत्म र दी गयी है. विश्वविद्यालय में कुश्ती, जूडो-कराटे के प्रशिक्षण विशेष व्यवस्था है. छात्रों के हितार्थ एक 'नकल अनुसंधान केंद्र' ला गया है, जो इस विषय पर नवीनतम जानकारी एवं आविारों से छात्रों को अवगत कराता है. परिसर में ही एक पेट्रोल पो, गिट्टी तोड़ने का क्रशर, हथियार शॉप व टेंट-हाउस है. श्वविद्यालय द्वार के ठीक बाहर हड़ताल के निमित्त विशाल गण है. इन सबके अतिरिक्त कक्षाएं लगाने हेतु कुछ कमरे व ोगशालाएं भी हैं, जिन्हें आवश्यक उपकरणों से सुसज्जित रने के प्रयास किये जा रहे हैं.

प्रवेश के इच्छुक छात्र कृपया स्वयं का पता लिखा, टिकट ा लिफाफा और पांच रुपये का पोस्टल आर्डर भेजें, ताकि हें प्रवेश हेतु आवेदनपत्र एवं विवरणिका यथाशीघ्र भिजवायी सके.

हस्ताक्षर
कुल सचिव ☐

ारा एस. एल. माथुर, 21 मीरा मार्ग, पाली-306401

लघुकथा

जेबकतरा

▣ एख़लाक अहमद ज़ई

बस-स्टेशन पर एक बस आकर रुकी तो चढ़ने-उतरने वाले यात्री गुत्थमगुत्था होने लगे.

बस में चढ़ने वाले सभी यात्री अपनी-अपनी सीट पर बैठ गये थे. कंडक्टर भी आ गया था, केवल ड्राइवर के आने की देर थी कि तभी अचानक सभी चौंक गये. एक वृद्ध व्यक्ति बस की अगली सीट पर बैठा, जेब में हाथ डाले जोर-जोर से चिल्ला रहा था :

"हाय, मैं तो लुट गया, बरबाद हो गया. किसी मरदूद ने मेरी जेब काट ली. अब मैं कैसे जाऊंगा? हमारे लड़के का लड़का मर गया है. आज मेरा इलाहाबाद पहुंचना बहुत जरूरी है..."

बस में बैठे सभी यात्री जेबकतरे को कोसते हुए वृद्ध को सांत्वना देते रहे, पर सहायता के नाम पर सभी लोग तटस्थ थे.

किसी को रुपये-पैसों से सहायता न करते देख, वृद्ध के पीछे वाली सीट पर बैठा एक नौजवान बोल उठा :

"बाबा, आप घबराइए नहीं. टिकट मैं लिये देता हूं."

वृद्ध ने चैन की सांस ली.

वृद्ध घूमा और दुआएं देता हुआ नौजवान का परिचय पूछने लगा :

"बेटा, तुम्हारा क्या नाम है? क्या करते हो? कहां रहते हो?"

"मेरा नाम अशोककुमार श्रीवास्तव है. मैं गोरखपुर का रहने वाला हूं और इंजीनियर हूं." फिर काफी देर तक दोनों के मध्य गांव-घर से लेकर न जाने कहां-कहां की बातों का सिलसिला चलता रहा.

दो स्टेशनों के बाद नौजवान एक जगह उतर गया. वृद्ध ने बस के अंदर से दूर जाते उस नौजवान को हिकारत-भरी नजरों से देखते हुए बगल में बैठे एक व्यक्ति से कहा :

"साला, जेबकतरा! अपने को इंजीनियर बताता है! इसीने हमारी जेब काटी है, वरना हमारी मदद काहे करता? आज के जमाने में सब अपने ही मूली-पतों से मारू हैं, दूसरों की मदद करना तो बहुत दूर की बात है."

आस-पास बैठे यात्री भी उसी की हां-में-हां मिलाने लगे.

"हां बाबा, आप बिलकुल सही कहते हैं और किसी ने तो आपकी मदद नहीं की, वही क्यों करने लगा? जरूर इसीने आपकी जेब काटी होगी." ☐

भात

▣ प्रेमकुमार मणि

मुदैया फिर यह बढ़नी उगा. बाप रे, इस साल क्या होगा! फिर बारिस नहीं होगी? फसल फिर मारी जायेगी? अकाल फिर पड़गा?

तीसरे ही साल लगातार हफ्ताभर इसी पूरबी छितान पर बढ़नी उगता रहा था. बारिस नहीं हुई थी. प्यासी धरती जगह-जगह फट गयी थी. फसल मारी गयी थी. घास-पुआल की कौन कहे, पेड़-बाग सूख-टटा गये थे. गोरू-डांगर तड़प-तड़प रहे थे, और. . .

और भी बहुत कुछ हुआ था. सोमारी की आंखों के को भर गये. भोर-भोर वह गोरू-डांगर को ठीक करने के लिए उठी थी. पूरबी क्षितिज पर नजर जाते ही आकाश में बढ़नी दीख गया. वह कांप गयी. लगता है, अभी पूरा भोर नहीं हुआ है. शुक्कर का कहीं पता नहीं. तिनडोरिया भी पच्छिम की तरफ झुका नहीं है. अभी तक किसी मुर्गे की बांग भी सुनाई नहीं दी. न कोई बकरी ही मिमियायी है और न किसी जानवर के डकारने की आवाज ही आयी है. यह उसकी अपनी गइया ही है, जो पहर भर से पोंछ झार रही है. उसका मन कई स्त्री-सुलभ गालियों से भर जाता है. निगोड़ी चार-साल से बांझ है, निपूती कहीं की. और शौक चरचराता है कि पहले भोर में पोंछ झारे. इनके लिए नौकर-दाई बैठा है! जाने कैसी कुलच्छिनी है. जबसे खूंटे पर आयी है, तबसे विपत्त ही विपत्त है. अबकी जो अकाल पड़ा, तो किसी बरहामन-फकीर को पगहा धरा दूंगी. ले जाइए ए पंडित बाबा, इस कुलच्छिनी से गरीब को उबारिए.

पुरुवा हवा का लफार तेज है. आलस लगता है. मन करता है, एक नींद और हो जाये, लेकिन यह बढ़नी साहिल के कांटे की तरह मन में बैठ गया है, जो रह-रहकर डस रहा है. इस साल यह निगो किसको बुहार ले जायेगी. ले जाये, न ले जाये, लेकिन अकाल पड़ग तब भात का क्या होगा! इस साल तो कोई नहीं मानेगा. ती ही साल से टालते आयी हूं. इस साल टालने का मतलब है, जात से कट्टिस. बाप रे, लाज रख लीजिए ए कृपानिधान. कुजात हो किस गली में बसेरा रखूंगी. चार साल में भगजोगनी विवाहने ला हो जायेगी. किसका पल्ला पकड़ाऊंगी. बस, यही एक बेटी है, इ हाल संभाल लीजिए ए राम जी. भात और अकाल दो बराबर का भय पैदा कर रहे हैं.

गुजरा हुआ तीसरा साल उसके माथे में कील की तरह हुआ है. चाहती है, सब कुछ भूल जाये, लेकिन नहीं भूल पाती कैसे भूल जाये. भूलने लायक बात भी तो हो. वह तो जिंदगी नहीं भूल सकती. हाय राम. ऐसा वज्र अकाल पड़ता है! तिन तिनका झुलस गया. भगवान भी इस तरह पथरा गये कि पूरा उनकी आंख से लोर तक नहीं ढलका. जाने किस बेईमान-शै के पाप के लिए भगवान ने पूरी धरती दहंज दी. यह भी कोई इं का ढंग हुआ कि चार पापी-हैवान के कारण कोटि-कोटि आ के सिर पर सितम ढा दिया गया! मुदा पूरा साल तितुलिया की रोटी चबाते गुजरा. और ए रामजी, इसी तितुलिया के का

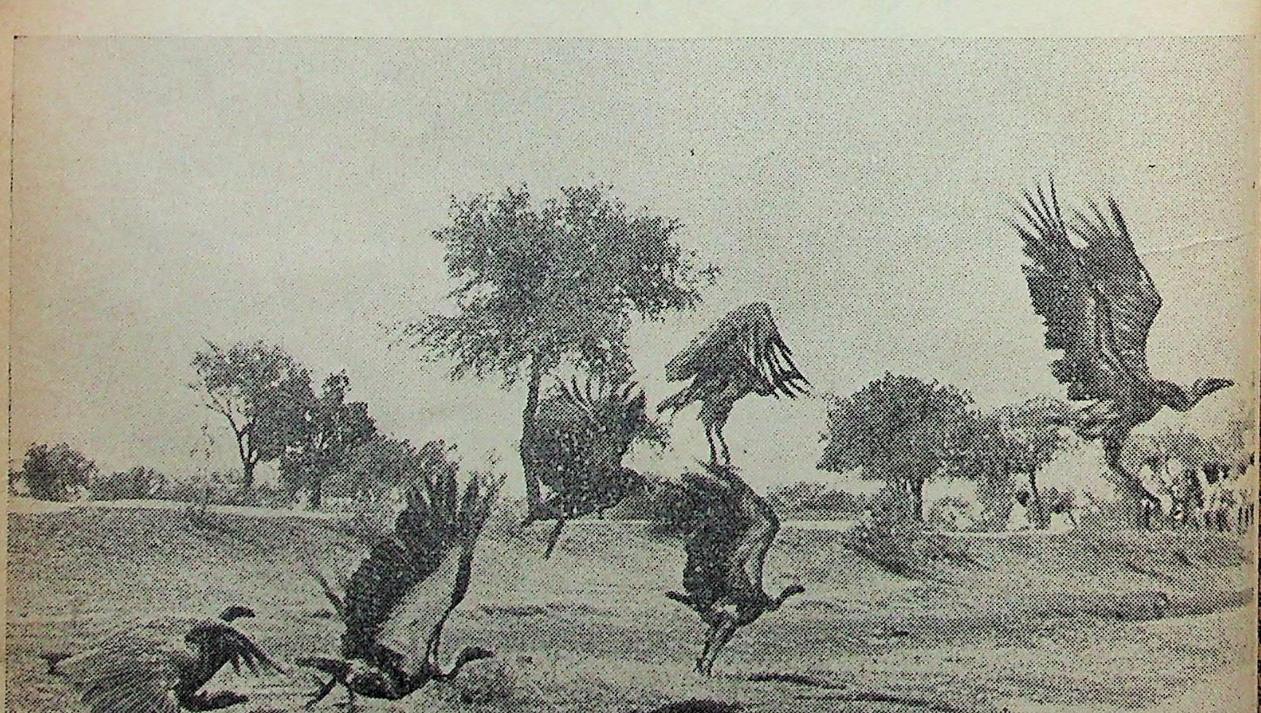

उसके दिल में काला समंदर हिलोर मारने लगा. बुझा दु:ख एक बार फिर सुलग गया. आंखें डबडबा गयीं. भगजोगनी के बाबू, ए भगजोगनी के बाबू! अकाल खतम हो गया.

हाय रे अकाल. घास की रोटी खाते-खाते जो पेचिस हुआ, सो जान लेकर ही मुदैया गया. हाय रे जमाना. मुट्ठीभर भात के लिए कलट-कलट कर रहे थे. दवाई की तरह भी एक मुट्टी भात उनको मिल जाता तो आज संतोष रहता. जमाना भी ऐसा बेशरम होता है! जाने कितने दरवाजे खटखटाये, लेकिन अकाल ने तो सब नेम-धरम लील लिया था. किसी ने मुट्ठीभर चावल नहीं दिया. किसी को यह विश्वास थोड़े ही था कि फिर धरती पर घासपुआल उगेगा. फसल लहलहायेगी.

कैसा समाज है, कैसा नेम-धरम! जिसने मांगने पर एक मुट्ठी चावल नहीं दिया, वही उनके आंख मूंदते भात के लिए सिर पर सवार हो गया. एक आदमी कहां तक करे ए राम जी. तनी रहे तब तनी, एकबारगी तीन-तीन भात. एक भात मतलब दो मन चावल. कहां तक कलेजा बांधूं. कितनी आरजू-मिनती की कि इस रांड-बेवा पर कृपा कीजिए ए पंच-परमेश्वर लोग. एक भात पर मान जाइए, लेकिन कौन मानता है. नहीं, तीनों भात, और एक ही साल. जाने कितनी हथजोड़िया पर लोग तैयार हुए कि तीन भात तीन साल में, लेकिन लगातार आग लगे ऐसे जात-धरम में. दु:ख में कोई जुट जाता, तब न जानती कि हां, जात के कलेजा में हमारे लिए भी कोई जगह है. दु:ख में तो कोई न जुटा. जुटी भी तो परवतिया की मां. परजात परमिन. वह यदि हठ करती, तब बात भी समझ में आती.

पुरुवा का अलसाया बयार मन के हाहाकार के आगे पछाड़ खा गया. नींद खतम हो गयी. मन में एक बार फिर भात पहाड़ की शकल में खड़ा हो गया. इस साल तो चाहे जैसे हो, निबाहना ही है. एक मन करता है कि इस कुलच्छिनी गाय को ही बेचकर भोज-भात करा दूं, लेकिन एक भाव मन को बांध लेता है. यह एक गाय ही तो है, जो उनकी याद के रूप में शेष है. इसे भी बेचकर उन्हें सदा-सदा के लिए बिसरा ही दूं. न, इतना दु:ख-सितम सह लिया, तब एक दु:ख यह भी, और क्या.

सोमारी गाय के नजदीक पहुंच गयी और स्नेह से उसकी देह सहलाने लगी. गाय ने भी देह फड़कायी और पूंछ झाड़कर दुलार से रंभायी. सोमारी का रोवां-रोवां जुड़ा गया. बहुत अफसोस हुआ कि कुछ देर पहले इसके लिए इतनी खराब-खराब बातें कैसे सोच गयी थी. अनमुनाही रोशनी में जब उसने एक बार कातर नजर से ताका, तब सोमारी भीतर से कट गयी. इस अनबोलते जीव ने भी मुझ अभागन के खूंटे पर कौन-कौन दु:ख नहीं झेला! जिस साल भगजोगिनी के बाबू ने आंखें मूंदी, उस साल यह बेचारी भी क्या कम टटायी थी. क्या जाने इसी कारण बांझ हो गयी हो. इसी साल से तो देह पर रोवां चढ़ना शुरू हुआ था. और फिर मुदैया बढ़नी उग गया. हम लोगों के लिए नहीं तो इस अनबोलते जीव के लिए तो तरस खाइए रामजी. इस पर तो नजर रखिए. गाय और धरम के लिए जाने आप कौन-कौन भेस धरते हैं, लेकिन किस गाय, किस धरम के लिए. गरीब की गाय और गरीब के धरम के लिए कहां भेस धर रहे हैं रामजी. द्रौपदी की लाज के लिए बहत्तर गज लूगा भेजा. मुझ गरीब को भी भात के पांक से उबार लीजिए.

उन ने कहा था

यौन स्वतंत्रता का सिद्धांत पश्चिम के विघटनप्राय समाज की देन है. इस सिद्धांत को डोरा रस्सेल ने प्रचारित किया था व खुद बर्ट्रेंड रस्सेल की मान्यता थी कि विवाह स्त्री और पुरुष में साथ रहने का समझौता मात्र है. वे यौन संबंध कहीं भी बनाये रखने में स्वतंत्र हैं, लेकिन जब डोरा रस्सेल ने एक अमरीकी पत्रकार से दो संतानें उत्पन्न कीं तो उनके विवाह संबंध में इतनी कटुता आयी कि अंत तलाक पर हुआ.

▣ हंसराज रहबर (संचेतना)

आप गोरे हैं, मैं काला हूं. गोरा आदमी आपकी बात सुनेगा. क्या आप उन्हें बता देंगे कि ईश्वर के लिए अब अपनी दया दिखाकर हमें अपमानित न करें. हमें अपनी लड़ाई खुद लड़ लेने दें.

▣ मुद्राराक्षस
('मेरा नाम तेरा नाम' उपन्यास में डा. लोठार लुत्से को समर्पण)

श्रीमती इंदिरा गांधी की मंत्रिपरिषद के लोग घरेलू नौकरों से अधिक अहमियत नहीं रखते. वे उन्हें कोई सही सलाह देने में अक्षम हैं.

▣ अरुण शौरी (सोसायटी)

जो जीवन को प्यार करते हैं, वे उसे जीते हैं और जो जीवन से डरते हैं, वे कायदे-कानून बनाते हैं.

▣ प्रीतिमा बेदी (ईव्स वीकली)

समाज में आप या तो भीड़ का हिस्सा हैं, जहां कोई आप पर ध्यान नहीं देता, या फिर आप जो चाहते हैं, उस राह पर हैं और तब आप पर पत्थर ही बरसेंगे.

▣ मल्लिका साराभाई को उनके पिता की सलाह

सोमारी का दिल भक्ति भाव से गलबला गया. भगवान जरूर इंसाफ करेंगे. जात-धरम की रक्षा भगवान नहीं करेंगे, तब कौन करेगा. इस कलमुंही बढ़नी के उगने से क्या होगा. भगवान की मरजी के आगे सब सून है.

भोर सरकने लगी है. मुर्गे की बांग सुनाई देने लगी है. जानवर भी कहीं-कहीं डकारने लगे हैं. कौए भी फड़फड़ा रहे हैं, कुरूर रहे हैं. शुक्कर पझाने लगा है.

सोमारी चुपचाप खड़ी नाखून से धरती कुरेद रही है. मन ही मन हिसाब जोड़ रही है कि भात का खरचा कैसे पूरा होगा. अपना कंठा और भगजोगनी की छागल बेच देने के बाद भी कुछ घट जायेगा क्या!

पूरबी कोने पर ललाम खिल रहा है. सूरज अब उगा कि तब. पूरे संसार में थिरकन है, कल्लोल है, पात-पात मुस्का रहा है. कोमल अरुणाई रेशे-रेशे पर फिसल रही है. सोमारी संसार से अलग-थलग क्लांत है. ठीक इसी समय उसके मन में एक काला सूरज उग रहा है. उसके दिल में कोई ललाम नहीं है, कोई थिरकन नहीं है. बस, केवल दो शब्दों की अनवरत गूंज है,––जात और भात, जात और भात. ☐

● **मधुवन, नौबतपुर, पटना-801109**

अनजानी इतिहास कथाएं

इतिहास को किसी ने 'अनुमोदित कल्पना' कहा है और 'किसी ने 'मानव जाति के अपराध, मूर्खता एवं दुर्भाग्य की पंजिका', लेकिन हमें लगता है कि इतिहास अतीत के हादसों की कब्रगाह है. किसी भी कब्र को कुरेदिए, आपको चीखते, कराहते, पैशाचिक अट्टहास लगाते हादसे नजर आयेंगे—वे हादसे, जिन्हें आम पाठक नहीं जानते. अगस्त : 80, अंक : 2 से प्रारंभ इस शृंखला में इस बार प्रस्तुत है—मुगलिया सल्तनत के आखिरी और शायर बादशाह के वक्त में नमूदार हुए हादसों और उसकी बदनसीबी की गाथा कि कैसे वह अपने पांवों पर खुद ही कुल्हाड़ियां चलाता रहा और बेमौत मारा गया!

कितना था बदनसीब ज़फर!

▣ बाला दु

अकबर शाह द्वितीय और राजपूतानी लाल बाई का बदनसीब बेटा—आबू ज़फर सिराजुद्दीन बहादुर गाजी. तैमूर वंश की महफिल की आखिरी शमा जो सहर होने तक कई रंगों में जलकर बुझ गयी.

वैसे मुगलों का वैभव तो उसी दिन समाप्त हो गया था जब शाह आलम के अनुरोध पर लार्ड लेक ने सन् 1803 में दिल्ली पर 'यूनियन जैक' फहरा दिया था. और जब बादशाह से ही कहा गया कि वह दिल्ली का लाल किला छोड़कर, बिहार के एक प्रांत में रहने लगे तो उसका कांपता हुआ हाथ तलवार के ऊपर जा पड़ा था. लरजते स्वरों में वह इतना ही कह पाया था, "यह कभी नहीं हो सकता." पर बादशाह पेंशनयाफ्ता बनकर रह गया. साढ़े ग्यारह लाख सालाना पेंशन पाने वाली कठपुतली! उसने राजा राममोहनराय को अपना वकील बनाकर इस अन्याय के बारे में महारानी विक्टोरिया के कान में बात डाली. पर हुआ कुछ भी नहीं. जब ज़फर डगमगाती गद्दी पर बैठा तो उसने भी एक अंग्रेज वकील जार्ज टामसन को 'सफीरुद्दौला मुशीरुल मुल्क बहादुर मसलह जंग' का खिताब देकर इंगलैंड भेजा. पर हुआ कुछ भी नहीं.

बदनसीब ज़फर के बाप-दादाओं का वैभव-प्रतीक 'तख्ते-ताऊस' तो ईरान का लुटेरा नादिरशाह पहले ही ले गया था. उसके बाद टूटे हुए मुगल बादशाह एक चांदी के तख्त पर बैठकर दीवाने खास में दरबार करते रहे. जब ज़फर आया तब अंग्रेजों ने इस चांदी के तख्त को भी उठवाकर नीचे तहखाने में बंद कर दिया. 'दीवाने आम' में ताला जड़ दिया. 'दीवाने खास' में दरबार लगाने पर पाबंदी लगा दी गयी.

ज़फर दरबार की जगह अब मुशायरे करके अपनी तबीयत बहलाता. अपने दिल के दर्द को आंसुओं से लिखकर शायरी में ढालता रहता. जब बाहर निकलता तो उसकी गाड़ी में 16 घोड़े जोते जाते. बेगम जीनत महल की गाड़ी मे आठ घोड़े जोते जाते. जब वह जाती तो आगे डंका बजता जाता. लार्ड डलहौजी ने इसका बड़ा उपहास उड़ाया और हंस-हंसकर जीनत बेगम को 'डंका बेगम' कहने लगा. अंग्रेजों को आदेश दे दिये गये कि बादशाही सवारी का कोई भी आदर न किया जाये.

जफर के साथ छेड़छाड़ करने में उन्हें आनंद मिलता. वे कहते कि वह लाल किला छोड़कर महरौली स्थित 'जहाज महल' (ज़फर महल) में चला जाये. तभी एक और अपमान ज़फर का किया गया. उसकी भाभी नवाब जमानी बेगम (जो मिर्जा सलीम की विधवा थी) ने अंग्रेजों की अदालत में दरख्वास्त दी कि उसके बागात ज़फर ने अपने कब्जे में कर रखे हैं. बागात लाल किले से बाहर थे. अंग्रेज जज ने बागात जमानी बेगम को सौंप दिये और जफ को आगाह किया कि किले से बाहर उसका कोई अधिकार नहीं है. ज़फर तड़प उठा. उसने आगरा के लेफ्टिनेंट गवर्नर के यहां अपील की, पर अपील खारिज कर दी गयी. ज़फर का दिल रो पड़ा:—

किस्सा ए गम से मेरे
खुश यूं हुआ वो बेरहम,
फिर कहानी न कोई और
उसने 'ज़फर' सुनी !

और—

अल्लाह ही हमारी तरफ है ए ज़फ
कोई अगर नहीं है हमारी तरफ न ह

बासठ वर्ष का यह टिमटिमाता दीप फिर भी किसी तरह जलता रहा. तभी ब नसीबी का एक और बादल उसके जीव पर घिर अया.

12 मई, 1857!

पहाड़गंज थाने के थानेदार मियां मु नुद्दीन हसन खां अपनी डायरी में लि हैं—"12 मई, 1857 को मेरठ से दो पै और एक घुड़सवार रेजीमेंट दिल्ली में आ उनके साथ दिल्ली की तीन पैदल रेजी तोपखाने की एक बैटरी भी मिल गयी. अ कुल मिलाकर 25-30 तिलंगे थे. इन नेता एक यूरोपीयन था जो कभी मेरठ '17 फुट' नामक अंग्रेजी पलटन का सिपा था और जिसे किसी जुर्म में बरख्वा कर दिया गया था. यह यूरोपियन सिपा मुसलमान बनकर अब्दुल्ला बेग कह लगा. यही बागी सिपाहियों का लीडर सलाहकार बन गया और इसके दबाव आकर ज़फर विद्रोह का नेता ब बादशाह का निजी दफ्तर अब्दुल्ला बे कब्जे में कर लिया. दीवानखाने बागियों का पहरा लगवा दिया और ब शाह को दरबार लगाने को मजबूर कि

12 मई, 1857 के दिन ही पंद्रह साल से बंद पड़ा चांदी का तख्त तहखाने से निकाला गया और दीवाने-आम का ताला तोड़कर ज़फर का दरबार करवाया गया.

जब किंकर्तव्यविमूढ़ 'ज़फर' से अबदुल्ला बेग के साथियों ने कहा, "आप बादशाह सलामत हैं. आप अपना हाथ हमारे सिर पर रखिए.". तब खिन्न मन से ज़फर बोला, "सुनो भाइयो, मुझे बादशाह कौन कह रहा है? मैं तो अपने आखिरी दिन काटता हुआ एक फकीर हूं. तुम यहां क्यों आये हो? मेरे पास न खजाना है, न फौज. मैं तुम्हारा सिर्फ इतना काम कर सकता हूं कि रेजीमेंट साहब से कहकर तुम्हारा तफसिया करा सकता हूं."

पर होनी को कौन टाल सकता है. ज़फर भी नहीं टाल सका. जब तिलंगों ने अंग्रेज किलेदार कैप्टन डगलस और अन्य अंग्रेजों को काट डाला तो भी जफर कांपता हुआ बोला था, "मैंने तुम्हें यहां नहीं बुलाया है. तुमने यह बड़ा गलत काम किया है."

पर उसकी सुनता कौन. समय की एक तूफानी लहर उठी और उसमें वह ज़फर को भी लपेटती ले गयी. अब ज़फर धड़कता दिल लिये उनका सहमा हुआ नेता बन गया.

12 मई, 1857 को दरबार के बाद सिपाहियों को मिठाई बांटी गयी और शाम को दावत हुई. दिल्ली के लाला रामसहाय और लालदिलवाली मल को आदेश दे दिये गये कि वे पांच सौ रुपये की दाल, चना इत्यादि सिपाहियों को नित्य निःशुल्क देंगे. पहाड़गंज के थानेदार मुईनुद्दीन हसन खां को दिल्ली का शहर कोतवाल बना दिया गया.

उसी दिन एक राजसी जुलूस भी चांदनी चौक होता हुआ निकाला गया. तिलंगों की दो रेजीमेंट और कुछ तोपें भी साथ निकलीं. तिलंगे चिल्ला रहे थे—"बहादुर शाह की जय".

दिल्ली के अखबारों को भी जोश आ गया. कितने ही अखबार थे—'दिल्ली उर्दू अखबार,' 'सादिकुल अखबार,' 'ज़फर अखबार,' 'सैयदुल अखबार,' 'सुबहतुल अखबार,' 'सिराजुल अखबार, 'मजहरूल अखबार,' 'बुद्धि प्रकाश,'—ज़फर को तरह-तरह के खिताब अखबार वाले देने लगे—'हुजूरे वाला', 'जिल्ले सुब्हानी,' खलीफा तुर रहमानी,' 'फारोग-ए-खादानी', 'आलीशानिये गुर्गानी' 'चिरागे दूद माने नज्दत', निशाने साहिबे किरानी' आदि आदि.

ज़फर भय और आशा की धूप-छांह से ढक गया. पर न जाने क्यों एक अनजाना संदेह उसे झिंझोड़ डालता. क्या ये बागी सिपाही अंग्रेजों को मसल सकेंगे? वह एक फीका-फीका दिवास्वप्न देखता रहता और उनमें खयाली रंग भरता रहता.

कंपनी बहादुर का तोहफा : ज़फर के शाहजादों का कत्लेआम!

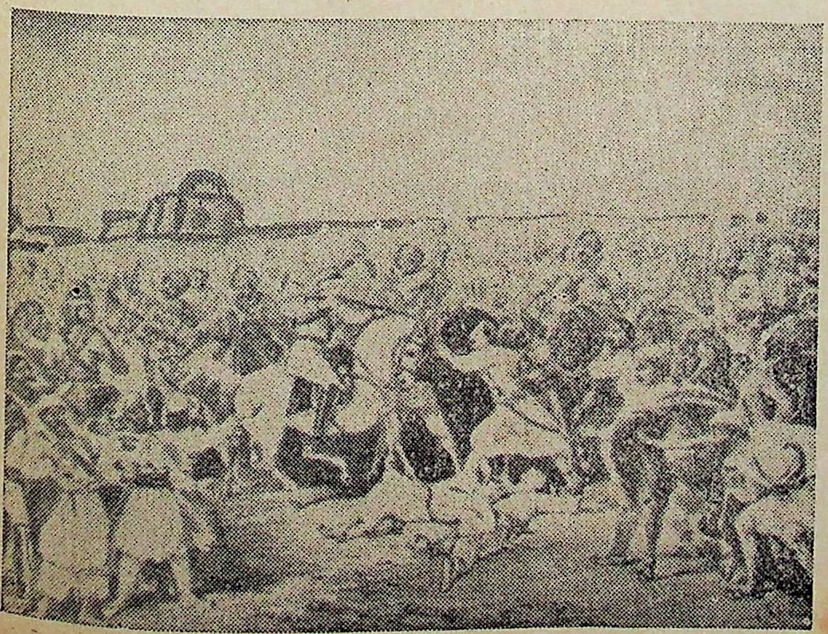

पहला झटका ज़फर को 25 मई, 1857 को लगा. मुईनुद्दीन खां अपनी डायरी में लिखते हैं.—"**बादशाह के शाहजादे मिर्जा अबू बकर को कमांडर-इन-चीफ बनाकर अंग्रेजों को हिंडौन नदी पार करने से रोकने को भेजा गया. मिर्जा अबू बकर पुल के करीब के मकान की छत पर खड़े होकर तोपखानों का सवाल-जवाब देख रहे थे कि एक गोला उनके पास आ फटा. कमांडर-इन-चीफ साहब ने पहले कभी लड़ाई देखी नहीं थी. बदहवास होकर छत से नीचे उतरे और घोड़े पर बैठकर बगैर पीछे देखे भाग निकले. उन्हें भागता देख फौज में भगदड़ मच गयी. दिल्ली आकर फसील के फाटक बंद कर दिये गये! दूसरे दिन अंग्रेजों ने हिंडौन नदी पार कर ली.**"

जफर की आंखों के आगे सपनों के महल तहस-नहस हो गये. मुंशी जीवन लाल ने अपनी डायरी में लिखा है.—

"**हकीम अहसानुल्ला खां ने बादशाह को बागियों का नेता बनने से बहुत मना किया था, जिसमें अमीनुद्दीन खां, मिर्जा जेरुद्दीन खां, हसन अली खां जो नवाब झज्जर के चचा होते थे.**"

ज़फर को पहली बार हकीम अहसानुल्ला खां की याद आयी. उसने बदहवासी में भारतीय राजाओं को पुकारा. पर कोई नहीं आया. महाराजा पटियाला खुल्लमखुल्ला अंग्रेजों में जा मिला और चित्तौड़ के महाराजा हरस्वरूप सिंह ने पूरे रजवाड़े को अंग्रेजों की झोली में ला पटका. यहां तक कि दिल्ली के आसपास के नवाब और राजा तक बहाने बनाने लगे. लोहारू के अमीनुद्दीन अहमद खां और जियाउद्दीन खां कन्नी काट गये.

ओखली में सिर देकर ज़फर ने अब चोटों की परवाह छोड़ दी. पर तभी दिल्ली में सिपाहियों की बाढ़ आ गयी. न वेतन का प्रबंध न राशन की जुगाड़. भूखा सिपाही खिसिआया चीता बन जाता है. उन्होंने शहर के बनियों को लूटना शुरू कर दिया. शहर में बदअमनी फैलने लगी.

ज़फर गर्दन तक बदनसीबी में फंस गया. अपने ही नाकारा बेटों को कमांडर-इन-चीफ, कर्नल और कमांडर तो बना दिया, पर उनसे उम्मीद कुछ भी नहीं थी. जब बरेली से सूबेदार बख्त खां अपनी नेटिव रेजीमेंट के सिपाही लेकर दिल्ली

आया तो उसने साफ-साफ कहा, "ये शाहजादे अंग्रेजी लड़ाइयों की चालें क्या जानें." लिहाजा उसे भी कमांडर-इन-चीफ बना दिया. अब शाहजादों में और उसमें वैमनस्य बढ़ने लगा.

वैसे बख्त खां :अंग्रेजी पद्धति का सुलझा हुआ तोपची था. उसने कई प्रयत्न भी किये पर विफल रहा. निराश होकर जकाउल्लाह खां उसे 'कम्बख्त खां' कहने लगा था.

सिपाहियों की अपार भीड़. . निरंकुश सिपाही. . बद इंतजामी. . . लूट-खसोट और आपा-धापी!

कई बार कहने पर भी जब दीवाने खास और दीवाने आम में डटे सिपाही नहीं हटे तो ज़फर ने रुआंसा होकर कहा था, "मैं कफन पहनकर जिंदगी के अय्याम किसी बाग में गुजार दूंगा." वह बार-बार कहता, "अंग्रेजों को पहाड़ी से हटाओ." बार-बार ही हमले होते पर अंग्रेजों को वे नहीं हटा सके.

अब तक 6,000 सिपाही इकट्ठे हो गये थे. जब बख्त खां ने बादशाह से शिकायत की कि सिपाही उसका हुक्म मानने में भी आनाकानी कर रहे हैं तो घबराकर ज़फर बोला, "उनसे कहो कि वे शहर छोड़कर चले जायें. वे अंग्रेजों को खत्म करने आये हैं या हिंदुस्तानियों को. मुझे यकीन हो चला है कि आखिरकार अंग्रेज इस शहर पर काबू कर लेंगे और मुझे मार डालेंगे."

ज़फर की बदनसीबी तो उस दिन रंग लायी जबकि वेतन न मिलने पर सिपाही उसके महल में घुसकर उसे ही बुरा-भला कहने लगे.

मुंशी जीवन लाल अपनी डायरी में लिखते हैं--**बादशाह से वे बदतमीजी से पेश आने लगे. कोई उन्हें 'अरे ओ बादशाह' कहता तो कोई 'सुन बुड्ढे', कोई बादशाह का हाथ पकड़कर 'मेरी बात सुन' तो कोई उसकी दाढ़ी को छूकर कहता 'मेरी सुन'. बादशाह उनके बर्ताव से गुस्सा होता पर अफसोस वह कुछ कर नहीं सकता था."**

बदनसीब ज़फर को यह दिन भी देखना था. . .जबकि 3 सितंबर को सिपाहियों ने यह धमकी दी कि अगर उनको पंद्रह दिन के अंदर वेतन नहीं मिला तो वे बेगम जीनत महल को कैद करके उनकी जगह ताजमहल बेगम को गद्दी पर बैठा देंगे.

ज़फर के धैर्य का बांध टूटने लगा था. एक दिन उसने अपने दरबार में अपनी 'कसौली' (जिस पर वह बैठता था) फेंक दी और कहा, "मैं किले का सब सामान बेच दूंगा. हाथी, घोड़े, झूलें. . .यहां तक कि बेगमों के जेवर भी बेच डालूंगा." यह कह कर उसने मक्का-शरीफ की तरफ देखा और फूट-फूटकर रो पड़ा. सिपाहियों का दिल पसीज गया और वे शर्म से गर्दन झुकाकर चले गये.

रिश्वत लेकर भी कत्ल!

बादशाह ज़फर और बेगम जीनत महल दोनों ही टूट गये थे. जेम्स लैसर अपनी पुस्तक "फौलो द ड्रम' में लिखता है—**"जीनत महल ने हकीम अहसानुल्लाह खां द्वारा कैप्टन हडसन को सात हजार रुपयों की रिश्वत दी थी जिससे कि बादशाह और उसके दोनों के जीवन की रक्षा का वचन मिल सके.**

इस बारे में नागपुर विश्वविद्यालय के डाक्टर आर. सी. मजूमदार और प्रोफेसर मेंहदी हसन के बीच नवंबर 28, 1956 के 'अमृत बाजार पत्रिका' में काफी शास्त्रार्थ भी हो चुका है.

जेम्स लैसर ने लिखा है—**"हडसन हमेशा कर्ज में डूबा रहा. तीनों शहजादों की मौजूदगी में उसे सात हजार रुपये और कुछ रत्न दिये गये थे. फिर इस डर से कि कहीं तीनों शहजादे इस भेद को दिल्ली गेट के पास इकट्ठी होती हुई हिंदुस्तानियों की भीड़ के सामने न कह डालें, हडसन ने उन्हें वहीं मार डाला.**

बदनसीब ज़फर के जीवन का अंतिम स्वप्न भी धुआं-धुआं हो गया. जब एक थाल में तीनों शहजादों के कटे सिर उसे 'कंपनी बहादुर का तोहफा' कहकर पेश किये गये तो अनायास ही उसके मुंह से निकल पड़ा, "अलहम्दोलिल्लाह, तैमूर की औलाद इसी तरह सुर्ख होकर बाप के सामने आया करती थी!"

जीनत महल की सिसकियों में सैकड़ों शाप घुले थे. बेगम का शाप निरर्थक नहीं गया. कैप्टन हडसन ने जिस हाथ से शहजादों को मारा था उसी में तलवार के दो घाव लगे थे जो नासूर बन गये. थोड़े ही दिन बाद हडसन लखनऊ के सिकंदर बाग के युद्ध में कुत्ते की तरह तड़प-तड़प कर मरा.

दो आने का भोजन रोज!

कल का बादशाह आज अपने ही घर में कैदी बन गया था. उसी के महल के एक गंदे कमरे में वह खरैरी खाट पर पड़ा रहता. आंखों में दुखों का अथाह सागर समेटे हुए वह माला फेरता हुआ अल्लाह से अपनी बदनसीबी का शिकवा करता रहता. एक चिलमन उसकी बदनसीबी की खामोश गवाह थी. उसी को उठाकर अंग्रेज आते और उसकी बेबसी का तमाशा देखते.

जब भी अंग्रेज तमाशाई उस 'बदनसीब तमाशे' को घूरते तो ज़फर के शरीर में उनकी निगाहें सूइयों की तरह चुभतीं.

क्रिस्टोफर हिबर्ट ने अपनी पुस्तक 'दि ग्रेट म्यूटिनी' में लिखा है—**"जब विलियम हार्वर्ड रसल ने 'उस सपनों में खोये कमजोर बुड्ढे' को मैला मलमल का कुर्ता और सिर पर कैंब्रिक की दुपलिया टोपी पहने देखा तो उसे दया आ गयी."** श्रीमती हडसन लिखती हैं——**"उसे देखकर मैं घृणामिश्रित दया से कांप उठी! जो कभी इस शाही नगर का मालिक था और जिसके धन और वैभव से कोई होड़ नहीं कर सकता था, वह इस कमरे में पड़ा था जहां कि कभी उसका नौकर से नीच गुलाम भी नहीं रहा होगा."**

'सीज ऑफ देहली' में एलेक्जेंडर लवैलियन लिखता है—"बहादुर शाह के रोजाना खाने के लिए दो आने खर्च किये जाते थे. वह इस खाने को उगल देता, क्योंकि खाना बहुत घटिया होता था और उसकी पाचन-शक्ति क्षीण हो चुकी थी."

बदनसीबी के भागीदार?

गवर्नर जनरल के आदेशानुसार ज़फर का मुकदमा फौजी कोर्ट मार्शल द्वारा किया गया था. कोर्ट का प्रेसीडेंट 'हार्स अर्टिलरी (घोड़ों द्वारा खींचे जाने वाले तोपखाने) का कर्नल डौज था जो कि ब्रिगेडियर शावर्स के स्थान पर नियुक्त किया गया था. कोर्ट में चार मेंबर और थे जो 60 वीं राइफल्स, 61 वीं फुट, 6 कैराबिनियर्स और 4 सिख इन्फैंट्री के अफसर थे. ज़फर का प्रोसीक्यूटर डिप्टी एडवोकेट जनरल मेजर हैरियट था. अंग्रेजी से हिंदुस्तानी तर्जुमा करने को दरियागंज

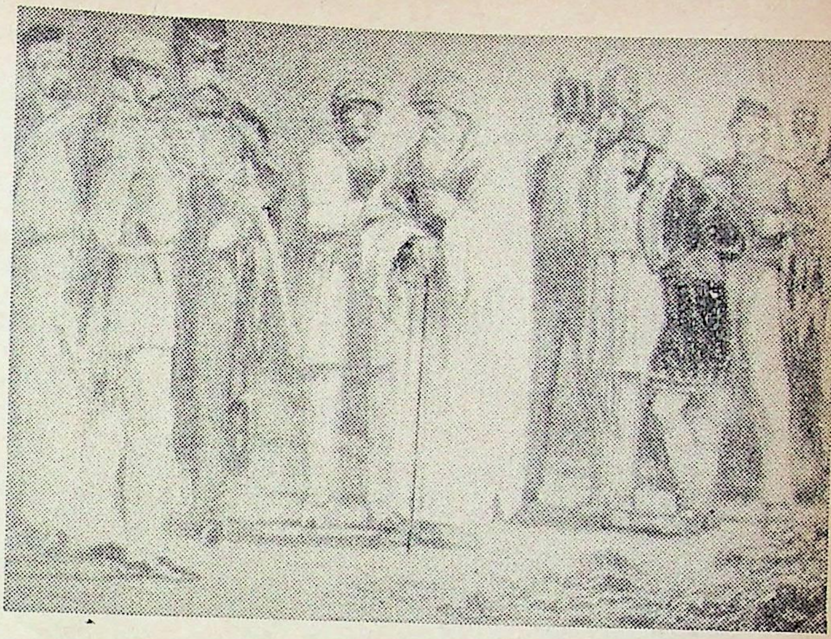

अरे ओ बादशाह! : बहादुरशाह ज़फर का आत्मसमर्पण

का रहने वाला यूरेशियन (अंग्रेज पिता और भारतीय माता की संतान) जेम्स मर्फी था. बादशाह का वकील गुलाम अब्बास था जो दरबार का पुराना कातिब था. एक पालकी में लुंज-पुंज ज़फर को लाया जाता और उसे गावतकियों पर डाल दिया जाता. उसकी कमजोर हालत देखकर मुकदमा ग्यारह बजे से चार बजे तक होता. ज़फर बुत की तरह देखा करता. न किसी बात पर ऐतराज करता न कुछ सफ़ाई पेश करता. 29 मार्च को मुकदमे का फ़ैसला सुना दिया गया. ज़फर को 'देश निकाले' का हुक्म दिया गया.

7 अक्टूबर, 1858 की सुबह ज़फर के साथ 28 लोगों का काफिला चल पड़ा. लेफ्टिनेंट ओमेनी को चार्ज दिया गया था. 9 वीं लांसर्स पलटन की निगरानी में यह दल 13 नवंबर को इलाहाबाद पहुंचे. वहां पर 28 में से 14 ने ज़फर के साथ जाने से मुंह मोड़ लिया. अब ज़फर के साथ केवल 14 साथी रह गये—मिर्जा जवां बख्त, जीनत महल, मिर्जा शाह अब्बास, शाही जमानी बेगम, (जवा बख्त की बेगम) मुबारिकउन्निसा, सुल्तानी, इशरत —खादिमों और बांदियों में अबदुर्रहमान, अहमद बेग, इंजूर, संदल, नियाजो, हुसैनी, हशमत और लुफ्तन.

वे मिर्जापुर से 'टेम्स' नामक स्टीमर द्वारा जलमार्ग से चल दिये और 9 दिसंबर, 1858 को सब रंगून पहुंच गये.

कूचा-ए-यार की जमीन!

रंगून के प्रांतीय कारागार का अधिकारी कैप्टन एच. एन. डेवीज लिखता है—**मेन गार्ड से थोड़ी दूर पर लकड़ी के घरों में ठहराया गया है... इन सोलह लोगों के खाने पर ग्यारह रुपये रोज खर्च किया जाता है, पर हरेक इतवार को एक रुपया अधिक दिया ज़ाता है. हर पहली तारीख को दो रुपये साबुन तेल के लिए दिये जाते हैं. स्याही, कलम और कागज देने पर सख्त मुमानियत है. बेगम जीनत महल और अन्य लोग अक्सर हकीम अहसानुल्ला को बहुत कोसते हैं कि खजाने को इधर-उधर करने में उसका बहुत हाथ रहा...छोटी उम्र की बेगम जमानी, जो जवां बख्त की बीवी है. पंद्रह साल की उम्र से ज्यादा नहीं होगी. वह दो बच्चों की मां है और शायद तीसरा आने वाला है... शहजादा बार-बार कहता है कि कितना अच्छा हो अगर दिल्ली के कमिश्नर उन सबको इंग्लैंड भिजवा दें.”**

इसके बाद कैप्टन डैवीज 1 जुलाई, 1861 को लिखता है— “अक्सर बेगम जीनत महल और जमानी बेगम मेरी पत्नी के पास आकर बड़ी देर तक बातें करती रहती हैं... जवां बख्त और शाह अब्बास अक्सर ब्रिगेड सारजेंट मेजर फिनकेन से अंग्रेजी सीखते हैं.

7 नवंबर, 1862 को सुबह पांच बजे ज़फर सब बंधनों को तोड़कर चला गया. मेन गार्ड के पीछे ही कैप्टन डेवीज ने ईंटों की कब्र बनवा दी थी, इसी कब्र पर ही गोरों की गारद बदला करती थी. उनके बूटों की धमक और ठोकरों से उसकी कब्र का निशान तक मिट गया. बहुत पहले ज़फर ही ने कहा था—

पसे मर्ग कब्र पे ऐ ज़फर कोई
फ़ातहा भी कहां पढ़े,
वो जो टूटी कब्र का था निशां
उसे ठोकरों से उड़ा दिया!

रंगून के खान बहादुर मुहम्मद नेकबारा और उनके साथियों ने थियेटर रोड पर 'बहादुर शाह दरगाह ट्रस्ट' बनाया और वे बहादुरशाह के मकबरे का मॉडल लेकर आये थे, पर अंग्रेजों ने उनका मशविरा नहीं माना.

न जाने कहां से 1934 में उसी जगह किसी ने एक छोटी-सी कब्र बना दी, जो आज भी 'दरगाह बहादुरशाह' के नाम से पुकारी जाती है.

महरौली में शाहआलम के मजार के बगल में ज़फर ने अपने लिये 'दो गज़ जमीं' रख छोड़ी थी. आज भी वह 'दो गज़ जमीं' 'कूचा-ए-चार' में सूनी पड़ी हुई है! ☐

प्रेमकथा विशेषांक में

ये न थी हमारी क़िस्मत!

राजस्थान के जाट इतिहास का वह मार्मिक किस्सा जब लड़का खुद लड़की द्वारा बनायी गयी योजना के अनुसार उसका अपहरण करने गया! ...प्रेम और जमाने की गमज़दा समझ में डूबी एक मार्मिक और दारुण गाथा.

दोनों

□ परमानंद श्रीवास्तव

“वह बड़ी की तरह प्रेम-वेम का चक्कर नहीं चलाना चाहती थी . . . वह सीधे करना चाहती थी. वह अपने तरीके से तहस-नहस करना चाहती थी. सुखी जीवन को लेकर उसमें कोई वहम नहीं था.” कमाऊ भाइयों की उपेक्षा के शिकार पिता और दो बहनों का अंतः-संघर्ष.

बड़ी ने चाय का प्याला छोटी के सामने रख दिया. छोटी को लगा, उससे कुछ गलती हो गयी है. . . उससे यह न हुआ कि खुद किचेन तक जाती और अपने लिए चाय का प्याला बनाकर ले आती. . .जबकि और कोई तो इस वक्त चाय पीता नहीं. गलती पहली बार नहीं हुई थी और पछतावा भी पहली बार नहीं हो रहा था. माना कि इम्तहान के दिन हैं और कल भी पेपर है ही, पर यह भी तो कुछ ठीक नहीं कि सारा बोझ अकेले बड़ी पर ही पड़े. उसने बड़ी की ओर सहानुभूति से देखा जो खिड़की की ओर रुख किये चुप खड़ी थी.

आंखों के नीचे की लकीरें कुछ और गहरी हो गयी थीं आंखें उसी अनुपात में छोटी लगने लगी थीं—माथा पहले की अपेक्षा ढीला और शायद चौड़ा दिखाई देने लगा था—रंग पहले ही दबा हुआ था, अब उस पर एक गहरी उदासी की पर्त जमा हो गयी मां के न होने के बाद यह सब तेजी से घटित हुआ. बड़ी की ड्योढ़ी लगने लगी और उसके पूरे चेहरे पर एक मां स चेहरा उभर आया.

घर की हालत यों ही सी थी. पिता रिटायर हो चुके और कमरे में पड़े रहते थे. जब तक मां थीं वे अपने दफ्तर दुनिया में ही डूबे हुए थे—दफ्तर से दफ्तर. . .यही उनकी जि थी—दफ्तर के चलते वे जगह-बेजगह भटकते भी रहे पर यह लिए शगल ही था—उनमें हमेशा एक चतुराईभरी चुस्ती हुई थी.

वे बहुतों के भाग्यविधाता थे इसीलिए अपने भाग्य को से पढ़ने का अवसर ही न था. फिर वे तेजी के साथ बुढ़ापे की

बड़े और आज जिस कोठरीनुमा कमरे में लगभग पस्त पड़े थे, उसकी ओर देखना मुश्किल हो रहा था.

कुछ चेहरे ऐसे होते हैं (या हो जाते हैं) जिन्हें आप देख नहीं पाते. जिन्हें सह पाना मुश्किल होता है. एक वीरान बूढ़ा चेहरा, एक भयानक रूप से अशक्त, असहाय लगने वाला चेहरा, एक हास्यास्पद रूप से भावहीन चेहरा. घर के दोनों लड़के बरसों से बाहर अलग-अलग शहरों में नौकरी पर थे—दोनों बैंक में लगे हुए—ठाठ का रहना—चुस्त फैशनपरस्त बीवीयां—जमाने की हवा—मकान—फ्रिज—स्कूटर—टी. वी. यानी सब कुछ. उनमें एक, बड़ा दो बच्चों का पिता था—बच्चे कान्वेंट में पढ़ रहे थे—साफ-सुथरे, चमक से भरे, गर्दगुबार से परे. हफ्ते में, कोई खास अड़चन न हो तो एक फिल्म जरूर देख ली जाती. दूसरे महीने एक नया एल. पी. भी आ जाता था. (हालांकि दाम बढ़ने लगे थे चीजों के इन दिनों) बड़े का खास शौक था तेज संगीत. तेजी जिंदगी में जो थी—फटाफट प्रमोशन मिल गये थे.

छोटा कुछ ज्यादा ही सलीके से रहता. उसके रहने के ढंग में एक महीन किस्म की व्यावहारिकता थी जो सीमित गृहस्थी के गणित को हमेशा ठीक रखती. जिंदगी की चमक को भी. अभी संतान न थी और इस बारे में पति-पत्नी दोनों अतिरिक्त सचेत थे. कभी धोखा भी हो गया तो उन्होंने उसका इंतजाम करा लिया. फिर क्या! सब कुछ ठीक दुरुस्त. संतान न होने तक जो चमक बनी रहती है उस पर पत्नी का भरोसा कुछ ज्यादा ही था. यात्रा-पिकनिक पर वे जाते ही रहते. पर अपने को पूरी तरह सहेजकर, बचाकर. कभी-कभी उन्हें साथ चलते देखकर कॉलेज के लड़की-लड़के जैसा एहसास जगता.

बड़े और छोटे—दोनों का अब घर से इतना ही संबंध बचा रह गया था कि कभी दूसरे-तीसरे महीने बड़ी या छोटी का खत आया तो पिता का हालचाल मिल गया. इस हालचाल में उनकी कोई दिलचस्पी नहीं रह गयी थी. दोनों को ताज्जुब था कि पिता बेवजह घिसट क्यों रहे हैं. ..आदमी को तो इस हालत में जल्द से जल्द दुनिया से विदा हो जाना चाहिए—जैसे यह आदमी के लिए इतना आसान हो.

बहनों के बारे में तो वे जैसे भूल ही गये थे कि उन्हें इस घर से जाना भी हो सकता है और इस जाने में उनकी कोई भूमिका भी हो सकती है. छोटी के बारे में वह यही सोचकर निश्चिंत थे कि वह फिलहाल पढ़ ही रही थी और इस तरह बहुत छोटी जान पड़ती थी—समस्या रहित. बड़ी के बारे में सोचते हुए उन्हें लगता था—खुद ही जिम्मेदार है, पढ़ा भी चुकी है, उल्टा-सीधा सब समझती है, जो भी फैसला करेगी, ठीक ही करेगी. जैसे फैसला उसी को करना था. अगर उसी को करना था तो बेशक वह कर भी चुकी थी.

वह पिता के इस हवेलीनुमा घर की दुनिया में व्याप्त धूल और जालों में पूरी तरह डूबी हुई थी. एक ठहरी हुई जिंदगी में चीजें होती ही कितनी हैं! पर बड़ी को उनके बीच फुर्सत ही न थी. चावल बिन रही है तो चावल ही बिन रही है. कपड़े धुले जा रहे हैं तो बस कपड़े धुले जा रहे हैं. वही-वही काम थे और उन्हीं-उन्हीं कामों में लगे रहना था. ऊब और सन्नाटे की मिली-जुली परछाईं बड़ी की व्यस्तता के ऊपर मंडराती रहती. ऐसे घरों के कुछ अपने खास दुख होते हैं और अपने ही ढंग के अभाव भी—पर उनके बारे में अक्सर कोई जिक्र नहीं होता. सारे दुख चुपचाप जी लिये जाते. सभी तरह के अभाव स्मृतियों से भरे जाते हैं. . .पिता को पेंशन के पैसे मिलते थे, यह एक नियम था.

बाहर से वे दोनों भी कभी कभार कुछ भेज सकते थे पर वह कोई नियम न था.

छोटी को पता नहीं चला, वह चाय पीते, न पीते, क्या कुछ सोच गयी. अब उसने सिर उठाकर खिड़की की तरफ देखा—बड़ी जा चुकी थी. उसका मन सहानुभूति से दुखने लगा—जी हुआ कि उस खाली जगह को अपने में भर ले जो बड़ी के कमरे से जाने के बाद खाली हुई थी. छोटी ने अंदर जाकर चाय का प्याला धोया और उसे ठीक अपनी जगह पर रखकर किताबों के बीच वापस आ गयी. बड़ी अब अंगीठी सुलगा रही थी—इसका मतलब चाय उसी बिगड़े हुए स्टोव पर ही बन गयी—अभी बड़ी जलते-जलते बची थी उस दिन. जब तक वह चीख सुनकर पहुंची खतरा टल गया था और धुआं ही धुआं हवा में टंगा रह गया था. मां रही होंगी उस जनम में तभी तो इतना खयाल रख पाती हैं. मां की याद छोटी को अक्सर आती है.

अक्सर उसे लगता है वह मां के सिरहाने खड़ी है. मां का चेहरा कभी बल्ब की तरह तेज चमकता है फिर यकायक फ्यूज़ हो जाता है. शाम होते ही अक्सर मां का चेहरा छोटी के जेहन में उतर आता है.

▣

ऐसी ही शाम थी वह जब छोटी को कुछ पता न चला—कब पिता कमरे से निकले और दालान में गिर गये. दोनों दौड़कर उठाना चाहती थीं पर एक शिथिल भारी शरीर संभाल में नहीं आ रहा था. छोटी ने घबराकर पड़ोस में किसी को आवाज दी—फिर कई लोग आ गये. पिता हिदायतों के साथ कमरे में लिटा दिये गये. शरीर तप रहा था. बड़ी ने उसका माथा छुआ. "इन्हें आराम करने दीजिए," कहकर पड़ोसी चले गये. किसी को यह न सूझा कि इन्हें डॉक्टर की जरूरत भी हो सकती है. जरूरत थी भी नहीं. धीरे-धीरे हालत सुधर गयी. दोनों ने अनथक सेवा की. पिता बच गये. कुछ चीजें बिना कहे किये भी ठीक हो जाती हैं. पिता भी ठीक हो गये थे पर वही अपंग, पस्त पड़े रहने के लिए. व्यक्तित्व के नाम पर वही चेहरा शेष रह गया था जिसे सह पाना कठिन होता है.

छोटी का मन पढ़ने में नहीं लग रहा था. बेचैनी-सी हो रही थी. पेपर देना है—दे देंगे. देकर ही क्या होगा. कुछ फर्क पड़ जायेगा! इस पढ़ाई से कुछ निकलने वाला है. सबके सब रास्ते तो बंद हैं जैसे. वह भी धीरे-धीरे बड़ी का रास्ता पकड़ लेगी—उसी के मानिंद सूख जायेगी—हो सकता है पढ़ाने लग जाये. इससे तो उम्र का खिसकना और तेजी पकड़ता है. पहले वह भ्रम में थी. सोचती स्कूल की मास्टरनी सुखी जीव होती है—तबीयत की आजाद—सुविधा संपन्न—चाहतों से भरी—रख-रखाव में अनोखी और दुरुस्त. पर जब बड़ी ने दो साल उस जिंदगी की रगड़ खा ली तो यह गलतफहमी दूर हो गयी.

बड़ी पढ़ाने निकलती थी तो कुछ उम्मीदें बंधती थीं,

पढ़ाकर लौटती थी तो उसकी थकी चाल और बुझा चेहरा देखकर सारी उम्मीदें खत्म हो जाती थीं.

छोटी को सोचने की आदत पड़ गयी थी. सोचने का रोग लग गया था जैसे. किताबें खुली हों, सोचना नहीं रुकता था. कोई सामने बैठा हो, अपनी सनक में बतियाता जा रहा हो, छोटी के दिमाग में सोचने का सिलसिला बना रहता था. सोचती वह सबके बारे में.

उन दोनों के बारे में भी जो शहरों में अपने-अपने काम के बहाने जम गये थे और भूल गये थे कि उनका अतीत भी इस भुतहे मकान के पुराने-धुराने कपड़ों में जैसे तह करके रखा हुआ था. उस दिन सफाई करते हुए क्या-क्या चीजें निकली थीं भला—दोनों के कपड़े के जूते —सचमुच कपड़े के—जो उनके नन्हें-नन्हें पांवों के लिए मां के कभी सिले होंगे—मखमल पर जरी के काम के कुरते-टोपियां—किसी एक की कुंडली भी उन्हीं कपड़ों में निकल आयी थी—पर उन्हें अब अतीत से कोई मतलब न था. नौकरियां उनके लिए घर से बचने का बहाना थीं मानो. होली दशहरे पर वे आते भी तो अपने-अपने कमरों में बंद. अपने-अपने परिवार में लीन. छोटे को अकेले पत्नी ही उलझाये रखने के लिए काफी थी. कितना समय निकल गया.

छोटे की पढ़ाई जब तक चल रही थी, इन्हीं बहनों के बीच हमेशा बना रहता था—हर काम में हाथ बंटाता—भविष्य के सपने देता. पर कहां! अब तो वह बड़े से भी ज्यादा बेलगाव उदासीन दिखता.

छोटी ने देखा, बड़ी अंगीठी पर रोटियां सेंक रही है. सिक नहीं रही हैं रोटियां—इस परेशानी की आहट कभी-कभी उस तक पहुंचती है. बस आहट—कोई शिकायत नहीं. छोटी को लगा जिंदगी में कुछ करना होगा वरना वह भी सूख जायेगी. ठूंठ हो जायेगी बड़ी की तरह. सब थिर हो गये हैं, जम गये हैं, दुनिया से लगकर या दुनिया से अलग होकर. वह बहुत इंतजार नहीं करेगी—कुछ करेगी—इतनी जल्दी करेगी कि वे देखते रह जायेंगे. वे दोनों—जो उन शहरों में जाकर बैठे हैं—अपनी-अपनी सफलताओं पर भरमे हुए—बेखबर.

वह खबर होकर रहेगी उनके लिए... वह चुपचाप खत्म नहीं हो लेगी.

छोटी के दिमाग में कुछ मथने लगा. कुछ करेगी वह जरूर. पर क्या करेगी आखिर! भाग लेगी घर से. चुपचाप. किसी अजनबी का हाथ पकड़कर एक ओर हो लेगी. धमाका तो तभी होगा. कुछ अनैतिक करने के लिए एक प्रलोभन उसे व्यग्र बना रहा था. वह सुलग रही थी.

वह उन लड़कों के चेहरे याद करने लगी जो उसमें वक्त-बेवक्त दिलचस्पी दिखाते रहते थे. उनमें एक तो वह पत्रकार था मलिक—बात-बात पर लड़कियों के इंटरव्यू लेता फिरता, दूसरा एम. आर. ..नक्शेवाला...अपने को काफी खूबसूरत समझता था जो, तीसरा पोलिटिकल था.. .तीसरी दुनिया से नीचे की बात न करता. उनकी भी दिलचस्पी उसमें थी जो कुछ ज्यादा उमर वाले थे...एक वह बीमा कंपनी वाला...दूसरा...खैर बहुतेरे थे...

.वह सबके विस्तार में नहीं जाना चाहती थी. वह जल्दी चुनना चाहती थी. जल्दी तोड़ना चाहती थी इस भ्रम को कि वे दोनों उम्र भर इन्हीं इन्हीं दीवारों में खपती चली जायेंगी. 'बताऊंगी तुम्हें एक दिन'...उसके भीतर डायलाग फूट रहा था. वह बड़ी की तर प्रेम-वेम का चक्कर नहीं चलाना चाहती थी. वह जानती थी प्रेम किस बदहवासी में शुरू और किन बेवकूफियों में खत्म होता है वह सीधे करना चाहती थी. वह अपने तरीके से सब तहस-नह करना चाहती थी. सुखी जीवन को लेकर कोई वहम उसमें नहीं थ इस स्वार्थी दुनिया को बस वह बताना चाहती थी : मैं होश में —मैं खत्म नहीं हो गयी हूं.

अगले दिन वह इम्तहान के लिए निकली तो जल्दी में न लगभग गुनगुनाती हुई बस स्टॉप पर जा खड़ी हुई. हवा जरूरत ज्यादा तेज चल रही थी . मौसम हर तरह से खुशनुमा लग र था. आसपास वाले सबके सब जैसे उसी की ओर देख रहे थे. लगा कि सामने की कतार वाला लड़का उसे 'हलो ऽ' कह रहा था सीटी मारने जैसे अंदाज में वह कुछ कह तो जरूर ही रहा था. उ बस उसी अंदाज में 'हलोऽ ऽ' कर दिया. इशारा उतना ही उत्ते

रचना प्रक्रिया

कूड़े में फेंकने के बाद

▣ **ए. के. क्रोनिन** (अंग्रेजी लेखक)

मैं तैंतीस वर्ष का था और लंदन में डाक्टर की हैसियत से काम कर रहा था. पेट में फोड़ा हो जाने के कारण मुझे छह महीने के लिए एक पहाड़ी इलाके में जाकर आराम करना पड़ा, वहां गये अभी एक सप्ताह ही हुआ था कि मैं बुरी तरह उकता उठा. मुझे पूरा आराम करने के लिए कहा गया था. समय काटना मेरे लिए सबसे बड़ी समस्या थी.

उस निराशाजनक स्थिति में लगातार यह सोचते हुए कि क्या करूं, एक दिन अचानक मुझे एक बात सूझी. कई वर्षों से मैं यह भ्रम पाले हुए था कि शायद कभी लिखने लगूंगा. मुझे लगा कि लिखने का इससे अच्छा मौका और कौन–सा हो सकता है. सो, मैंने एक उपन्यास लिखने का फैसला किया. तभी मैं पास के गांव में गया और दो दर्जन कापियां खरीदकर ले आया.

अगले तीन महीनों तक मैंने लेखन के सिलसिले में न जाने कैसी-कैसी आत्मपीड़ाएं सहीं. हां, मेरे दिमाग में उपन्यास का विषय बिलकुल स्पष्ट था—एक मनुष्य के अहंकार और झूठे गर्व के दुःखों की कहानी. यहां तक कि मैंने उपन्यास का नाम भी सोच लिया था.

लेकिन उपन्यास के विषय और नाम के अलावा मेरे पास और कुछ नहीं था. मुझे न तकनीक की जानकारी थी, न शैली या शिल्प का ज्ञान था. साफ, सरल स्पष्ट वाक्य लिखने में बड़ी कठिनाई होती थी. मैं अपने लिखे हुए को बार-बार काटता और सुधारता. इस काट-छांट से सारा पृष्ठ भर जाता. आखिर मैं उसे फाड़ डालता और नये सिरे

से लिखने लगता.

मैं उपन्यास लिख चुका तो मुझे बड़ी उदासी महसूस हुई. मैंने खुद से पूछा, "भला, मैं ऐसे काम में इतनी मेहनत क्यों कर रहा हूं, जिसके लिए मुझमें कोई योग्यता नहीं है. मुझे तो आराम करना चाहिए, अपनी शक्ति संचित करनी चाहिए, न कि इस प्रकार समय बरबाद करना चाहिए."

इसी मानसिक स्थिति में मैंने उपन्यास के शुरू के अध्याय पढ़े, जो लंदन से मेरे सेक्रेटरी ने टाइप करके भेजे थे. मैं स्तंभित रह गया. ऐसी बेहूदगी मैंने अपनी सारी जिंदगी में कभी नहीं देखी थी. आखिर मुझे लगा कि यह पागलपन है. जो कुछ मैंने लिखा है और जो कुछ भी आगे लिखूंगा, व्यर्थ में समय गंवाने वाली बात है. सो, मैंने उस काम को वहीं छोड़ देने का इरादा किया. मैंने गुस्से में आकर सारे कागज कूड़े-कर्कट के डिब्बे में फेंक दिये.

उपन्यास से छुटकारा पाकर, या कहूं कि इस पागलपन से छुटकारा पाकर मुझे संतोष हुआ और मैं वर्षा की मंद-मंद फुहार में भीगता हुआ चल पड़ा. कुछ आगे जाने पर श्रीमती आंगस के पति से मुलाकात हुई. उन्होंने मेरी ओर कुछ हैरानी से देखा. जब मैंने उन्हें बताया कि मैं अभी-अभी क्या करके आया हूं तो उनके झुर्रियों भरे चेहरे पर धीरे-धीरे परिवर्तन होने लगा. उनकी गहरी नीली आंखों ने मेरी ओर निराशा और अजीब-सी घृणा से देखा. वे चुप रहे और फिर काफी देर के बाद बोले :

"बेशक, आप सही हो सकते हैं और मैं गलत हो सकता हूं. . . मेरे पिता ने सारी उम्र इस दलदली जमीन को खोदा था और इसे चरागाह नहीं बना पाये थे. मैंने भी जिंदगी भर इसे खोदा है और इसे चरागाह नहीं बना पाया हूं. उन्होंने कुदाल पर पांव रखा, लेकिन खोदने से मैं रह नहीं सकता हूं. मेरे पिता जानते थे और मैं भी जानता हूं कि अगर काफी खुदाई की जाये तो यहां चरागाह बन सकता है."

मैं भीगा हुआ उसी हालत में वापस आया. कूड़े-कर्कट के डिब्बे में से मैंने अपना उपन्यास निकाला और रसोई में जाकर उसे चूल्हे पर सुखाने लगा. फिर उसे मेज पर पटका और एक नये जोश के साथ काम करने लगा. अपने मनोरथ की पूर्ति के लिए मैं काम में डूब गया.

तीसरे महीने के अंत में मैंने उपन्यास पूरा कर लिया. उस समय मैंने जो राहत की सांस ली, उसका वर्णन नहीं कर सकता. मैंने उपन्यास एक प्रकाशक को भेज दिया और उसके बारे में भूल गया.

जो उपन्यास ('हैटर्स कैसल') मैंने फेंक दिया था, वह छपने पर एक 'बुक-क्लब' द्वारा चुना गया. उसके आधार पर नाटक लिखा गया. उसे धारावाहिक रूप से छापा गया. उसका उन्नीस भाषाओं में अनुवाद हुआ. और हॉलीवुड द्वारा फिल्म के लिए खरीदा गया. उसकी लगभग तीस लाख प्रतियां बिकीं. उसने मेरी जिंदगी का रुख ही बदल दिया, और मैं वह कुछ बन गया, जिसकी मैंने कभी कल्पना भी नहीं की थी. अगर श्री आंगस मुझे दृढ़ता का पाठ न पढ़ाते, तो मैं शायद वह कुछ न बन पाता, जो आज हूं—एक लेखक. □

इतनी ही बेफिक्री लिये हुए था. लगा कि पहली बार जो भी मिलेगा वह उस पर झपटकर ही चैन लेगी. बहुत देर नहीं हुई है, जैसे वह अपने से ही कहना चाहती थी. वह जैसे नींद की दुनिया में थी और उड़ रही थी.

तभी अचानक बस आ गयी. सभी उधर ही लपके. वह भी अचानक हताश बस में दाखिल हुई और कोने वाली परिचित जगह में जाकर जम गयी. वह किसी से आंख नहीं मिला पा रही थी. उसकी आंखों के आगे किताब का वह पन्ना खुला था, जिसमें इम्तहान के मतलब के नक्शे और चार्ट बने थे. वह उसी में सिर झुकाये अपनी दुनिया की थाह ले रही थी. वह कुछ नहीं कर सकेगी शायद.

वही करेगी, जो कर रही है, वे दोनों इस घर को किसके सहारे छोड़ेंगी—पिता का क्या करेंगी. वही-वही चेहरे उसके सामने उभरने लगे थे.

इधर की ओर वे दोनों तो अब शायद रुख भी न करें. कितने महीने निकल गये. कोई खबर है! हो सकता है, दोनों अपना-अपना तबादला और दूर की जगहों में करा लें—दूर ही दूर होते चले जायें. छोटे ने पिछली बार कहा भी था कि वह कुछ दिनों के लिए 'बाहर' जाना चाहता है. 'बाहर' से खास मतलब था उसका. "अगर बैंक वालों ने भेज दिया तो ठीक है, नहीं तो हम लोग ही कुछ करेंगे." उसकी पत्नी इस बात पर किलक रही थी, "हाय बाहर! कितना अच्छा होगा सब कुछ! यहां तो भई तंग आ गये. वही-वही शहर देखकर. हमारे दद्दा तो एक बार स्टेट्स गये तो फिर लौटे ही नहीं." "क्यों लौटेंगे."—बड़ा समर्थन कर रहा था, "हिंदुस्तान में रखा ही क्या है! पूरी उम्र खपा दो. एक शानदार जिंदगी गैर-मुमकिन ही बनी रहेगी."

छोटी बस में चलते-चलते उनकी शानदार जिंदगी का धक्का महसूस कर रही थी. उसे लगा कि वह बस में नहीं है, उसी कोठरी में पड़ी है, जिसमें पिता पड़े हैं—अपंग, पस्त, उसी घर में दफन है. जिसमें बड़ी रोटियां सेंक रही है—बिना जाने हुए कि क्यों? □

● **बी 70, आवास विकास कॉलोनी, सूरज कुंड, गोरखपुर 273001**

पेरिस की डायरी

• विनोद भारद्वाज

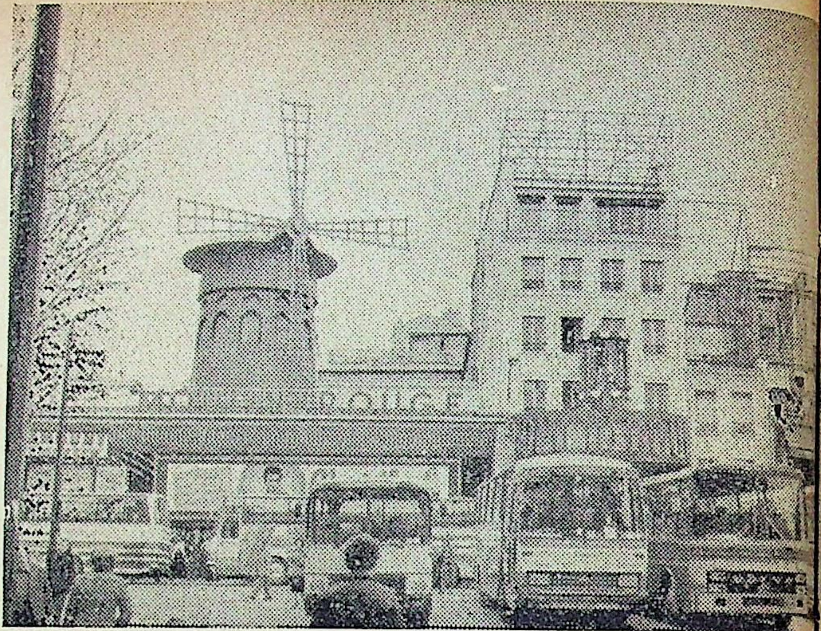

पेरिस जल नहीं रहा है सिर्फ मैट्रो के सफाई मजदूर हड़ताल पर हैं.

पेरिस : 30 मार्च, 80

आधुनिक मशीनी जिंदगी के खिलाफ फ्रांस में मई, 68 के छात्र आंदोलन का एक प्रमुख नारा था : 'मैट्रो-बूलो-दोदो' (मैट्रो-काम-नींद). मैट्रो का यहां की जिंदगी में विशेष महत्व है. मैंने सुना था पेरिस का मैट्रो लंदन के मैट्रो (अंडरग्राउंड) से कहीं ज्यादा साफ-सुथरा और चमकीला है. लेकिन इन दिनों यहां मैट्रो के सफाई मजदूर हड़ताल पर हैं (उनमें से बहुत से मजदूर गैर-फ्रांसीसी हैं) और जगह-जगह पर गंदगी दिखती है. पीले टिकटों के ढेर कहीं भी मिल सकते हैं. इससे यहां की 'मैट्रो संस्कृति' को काफी धक्का पहुंच रहा है.

और सचमुच पेरिस में मैट्रो की एक पूरी विकसित संस्कृति है. सुंदर और लुभावने विज्ञापनों से भरे ये स्टेशन मैट्रो के सफर की नीरसता को काफी कम कर देते हैं, लेकिन जैसे यह काफी नहीं है. कठपुतली नृत्य, बैले, संगीत वगैरह के 'मुफ्तिया' कार्यक्रम यहां हर वक्त चलते रहते हैं. आपकी मर्जी है तो एक-दो फ्रांक फेंक दीजिए (एक फ्रांक की कीमत 1.80 रुपये). इधर-उधर भागते हुए लोग अचानक किसी अफ्रीकी दल को अपने तेज संगीत का कार्यक्रम प्रस्तुत करते देख रुक जाते हैं. कुछ देर मन बहल जाता है, फिर आप अगली गाड़ी पकड़ने का रास्ता खोजिए.

कुछ मैट्रो स्टेशन तो सचमुच एक बड़ा सुपर बाजार ही बन गये हैं. शातले (जो कि पेरिस के बिलकुल केंद्र में है) में एक खूबसूरत बहुमंजिला बाजार है. वहां पर बढ़िया किस्म का संगीत बजता रहता है. आप चाहें, तो कुछ आराम कर सकते हैं, पढ़ सकते हैं. कुछ खरीद सकते हैं. शातले का स्थापत्य भी काफी दिलचस्प किस्म की कला है और स्टेशन से थोड़ी दूर बने प्रसिद्ध **पांपिदू सांस्कृतिक केंद्र** के अद्भुत स्थापत्य से उसका एक सतही संबंध भी है.

इफेल टावर वगैरह अब पेरिस के पुराने प्रतीक हो चुके हैं. पेरिस की नयी पहचान पांपिदू केंद्र है जो आधुनिक कला का एक अद्भुत केंद्र है. इस बहुमंजिली इमारत को दूर से देखकर यह नहीं लगता कि यह कोई कला केंद्र है. किसी बड़ी फैक्ट्री या सुपर-बाजार की तरह की यह जगह अभी कुछ ही साल पहले बनी है.

आज सुबह से पेरिस में हल्की बारिश हो रही है. इसलिए पांपिदू केंद्र में काफी भीड़ है. भीड़ का एक कारण प्रसिद्ध कलाकार **डाली** की विशाल प्रदर्शनी है जो दो हफ्ते बाद हटा ली जायेगी. टिकट की लंबी लाइन में लगने से पहले हल्की बारिश में मैं बाहर उस कलाकार के संगीत को कुछ देर तक सुनता हूं जो आरी को वायलिन की तरह के एक वाद्ययंत्र में बदलकर संगीत पैदा कर रहा है. पेरिस की एक बड़ी खासियत इस तरह के कलाकार हैं. कुछ दूर पर एक कलाकार बांसुरी से मोत्सार्ट का मीठा संगीत पैदा कर रहा

लंदन के बड़े संग्रहालयों की तरह पे
के कला-संग्रहालयों में प्रवेश नि:शुल्क न
है. काफी महंगे टिकट हैं. पांपिदू केंद्र
अगर आप एक दिन में सब कुछ देख ले
चाहते हैं (जो कि दरअसल एक असं
काम है) तो चौदह फ्रांक का टिकट
बहरहाल डाली की प्रदर्शनी के बारे में
इतना ज्यादा पढ़ा था कि पेरिस का पह
दिन पांपिदू केंद्र में ही बिताने की इ
थी. टिकट काउंटर तक पहुंचने का नं
आया, तो अब लिफ्ट की भयंकर भीड़
ऊपर जाने की लंबी लाइन थी. भार
व्यक्ति के लिए यह कोई मुश्किल चीज न
है, पर फ्रांसीसी लड़के जिस तरह का
और शरारतें कर रहे थे, उससे लग रहा
कि पांपिदू केंद्र उनके लिए कोई मछली
जैसी चीज है.

और सचमुच यह केंद्र स्टील और शी
में जिस तरह से खड़ा है—बारिश में
मछलीघर सरीखा ही हो गया था. धी
धीरे किसी तरह से लोग ऊपर की
बढ़ रहे थे. पर पेरिस की इमारतों
आनंद उठाने का इससे बढ़िया तरीका
नहीं है. और चूंकि पेरिस के केंद्र
इमारतों का पुरानापन काफी सुरक्षित
इसलिए सचमुच बड़ा अच्छा लगता
बल्कि यहां कुछ लोग तो इस बात से
दुखी हैं कि पांपिदू केंद्र जैसी आधु
इमारत पेरिस के इस पुराने केंद्र के आक
को भ्रष्ट करती है.

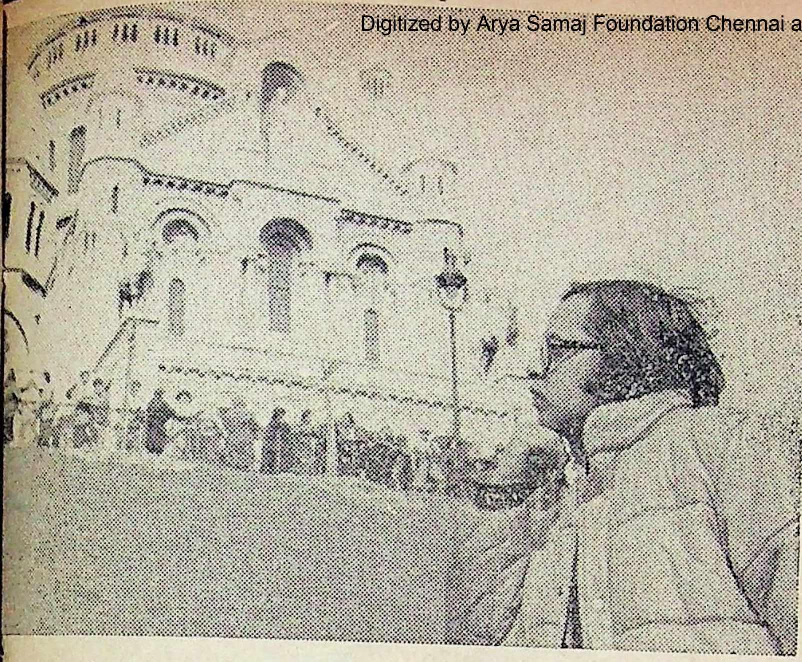

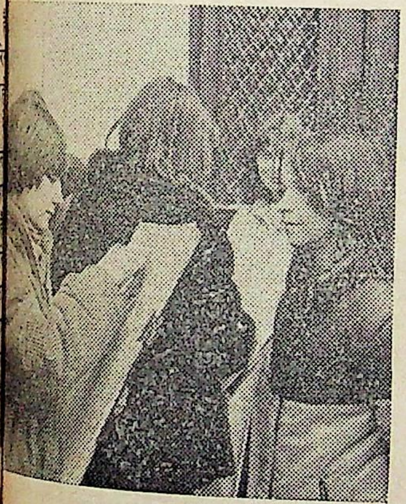

(ऊपर बायें) पिगाल का ऐतिहासिक स्थल मोलां रुश. (ऊपर) साक्रे-कर के प्रसिद्ध गिरजे के सामने लेखक. (नीचे) मों-मार्त्र के चित्रकार [सभी फोटो : पंकज सिंह]

डाली के बारे में सोचते हुए हमारे दिमाग में सबसे पहले पिघलती हुई घड़ियों का चित्र आता है. लेकिन डाली ने अपनी ारी जिंदगी में जितना काम किया है, ये चित्र उसका एक मुख्य हिस्सा ही कहे जा सकते हैं. डाली की कला अतियथार्थवाद और दादावाद के निकट होते हुए भी इनसे रे हैं. इस प्रदर्शनी में दुनिया भर के ग्रहालयों से डाली के काम को एकत्रित किया गया है. खास आकर्षण डाली के नाये आभूषण (जो सचमुच देखने वाले !) और उनकी पोर्नोग्राफी प्रधान कला डाली और बुन्अुल की बनायी फिल्म रावर चल रही है. वीडिओ पर डाली रावर कुछ बोल रहे हैं. डाली के पोस्टर, डाली के मूर्तिशिल्प, कैनवास, रेखांकन,

. . . . .आखिर आप थककर किसी पाइप पर बैठ जाइए और पेरिस को कला की ऊंचाई से देखिए. डाली पिकासो नहीं हैं लेकिन वे डाली हैं.

फ्रांसीसी लोग 'शुक्रिया', 'क्षमा करें' (मेर्सी, पार्दों, सिल्वू प्ले आदि) जैसी चीजों का इस्तेमाल जितना ज्यादा और एक सांस में जिस तरह से करते हैं, वह एक अलग ही चीज है. पेरिस में अफ्रीकी लड़के खूब दिखते हैं. मस्त फ्रांसीसी लड़कियों के साथ बांहों में बांहें डाले घूमते हैं. पहनावे में अफ्रीकी छात्र कुछ अलग ही दिखते हैं. अक्सर सूट और टाई में कसे हुए, साहब सरीखे. पर फ्रांसीसी भाषा ने उन्हें पेरिस में अपना-सा बना दिया है, जो काम अंग्रेजी भाषा लंदन में नहीं कर सकती.

सुना है यहां 'सूटेड-बूटेड छात्रों' के साथ पुलिस अच्छा व्यवहार करती है. लंबे बालों वाले हिप्पीनुमा लड़के अक्सर उनकी नजरों में खटकते हैं. यहां की पुलिस की वेशभूषा बड़ी आकर्षक है और अगर आप पेरिस में रास्ता भटक गये हैं तो जो थोड़ी-बहुत मदद आपको मिल सकती है वह पुलिस से ही. वह भी ज्यादा नहीं. और आपको अगर फ्रांसीसी भाषा नहीं आती तो भले ही आप दस दिन के लिए पेरिस में हैं—कुछ भाषा सीखिए नहीं तो दिक्कत में रहिए. खैर, पुलिस के पास आप जाइए तो बड़े कायदे से सलाम के साथ आपका स्वागत और विदाई होती है. कोई बड़ी बात नहीं—पुलिस के सिपाही से आप लूव्र का रास्ता पूछ रहे हैं और वह आपको बताना शुरू कर दे कि क्या देखना वहां ठीक रहेगा इन दिनों. . .(लेकिन फ्रांसीसी आप जानते हों—तभी न!)

1 अप्रैल

पिछले कई दिनों से अंग्रेजी अखबार उपलब्ध न होने के कारण आज यह समाचार पता चला कि **रोलां बार्थ** का एक सड़क दुर्घटना के बाद अस्पताल में निधन हो गया. **सार्त्र** काफी ज्यादा बीमार हैं—यह भी खबर आज ही मिली है. बार्थ से अभी अनेक महत्वपूर्ण पुस्तकों की उम्मीद थी—उनके पाठकों को—यह एक बड़ा दुखद समाचार है और पेरिस की जिंदगी का एक ऐसा पक्ष भी इससे पता चलता है, जो एक रोग का रूप ले चुका है.

फ्रांस पियक्कड़ों का देश है. यहां पीकर गाड़ी चलाने की सख्त सजा है पर पीने वालों से यहां बचना आसान नहीं है. जिस देश में हर 53वां आदमी बाकायदा शराबी (एल्कोहलिक) है—शराब से 55 लोग जहां रोजाना मरते हैं, वहां आप क्या आशा कर सकते हैं! विडंबना यह है कि एक खबर ने इन आंकड़ों के साथ बार्थ को ही उद्धृत किया है : 'फ्रांसीसी लोग धुत हो जाते हैं चूंकि वे पीते हैं. लेकिन वे इसलिए नहीं पीते कि धुत हो जायें.'

बहरहाल फ्रांसीसियों को अपने पीने पर नाज है. एक काफे (पेरिस की काफे संस्कृति सचमुच आकर्षक है) में मैं बार काउंटर पर बैठा बेयरे को देखकर काफी देर तक मजा लेता रहा. वह बड़ी फुर्ती से कॉफी, बीयर, सॉसेज, वाइन वगैरह के ऑर्डर ले रहा था, सिक्के ले रहा था. . .लौटा रहा था, पर बीच-बीच में अपने सफेद वाइन के गिलास में से वह चुस्कियां लेना बिल्कुल नहीं भूलता था. बीच-बीच में कुछ खास ग्राहकों से वह बात भी करने लग पड़ता था—दोस्ताना बातचीत.

इस तरह के काफे वक्त बिताने के लिए हैं—आप चाहें तो सड़क का आनंद उठाते हुए कुछ लिखते-पढ़ते रहिए. मेज पर बैठने के लिए कीमत थोड़ी ही ज्यादा है. पर आप

वो कोई बीच-बीच में आकर टोकेगा नहीं. अक्सर धूप निकलने पर काफे के बाहर लोग कुछ इस तरह से लोगों की तरफ मुंह किये बैठे होते हैं जैसे स्टेडियम में बैठे कुछ देख रहे हैं.

इस तरह का सबसे अनोखा वातावरण कार्तिए-लैतें (लेटिन क्वार्टर्स) की गलियों में शाम के बाद से रात तक रहता है. अभी पर्यटकों का मौसम ठीक से शुरू नहीं हुआ है, पर इन गलियों में घूमना आसान नहीं है. सारबोन के छात्र यहां देर तक बहसों में व्यस्त दिखते हैं.

2 अप्रैल

पेरिस के बारे में सपाट ढंग से कहा जा सकता है कि यह कला संस्कृति की राजधानी है. लेकिन यह सचमुच आश्चर्य की बात है कि फिल्म, रंगमंच, चित्रकला, बैले, ऑपेरा, संगीत वगैरह के जितने कार्यक्रम यहां एक साथ होते रहते हैं, वे किसी भी संस्कृति प्रेमी को अंत में दुखी कर सकते हैं. शांजेलिजे के चमकदार बाजार में 'लास्ट टैंगो इन पेरिस' आज भी यहां चल रही है. "एमानुएल" (बहुचर्चित पोर्नोग्राफिक फिल्म) न जाने कब उतरेगी. अच्छी-खराब फिल्में सब देख सकते हैं. फिल्म शुरू होने से थोड़ा पहले ही टिकट मिलेंगे और जो लड़की आपको सीट पर बैठाने जायेगी (सीट नंबर नहीं रहता) उसे टिप देना जरूरी है. पेरिस में पहली बार फिल्म देखते वक्त मेरे मित्र ने मुझे अंतिम मौके पर हड़बड़ी में दो फ्रांक सिक्के दिये कि इस लड़की को टिप देना जरूरी है. इसकी आय का स्रोत सिर्फ टिप है. पेरिस में मुफ्त में तो खैर पेशाब करना भी संभव नहीं है—इमारतों को बाहर से ज्यादा देर तक देखने के लिए भी कहीं टिकट न लगा दिया जाये. यों इन दिनों यहां फ्रांसीसी भी हर वक्त 'फ्रांक-फ्रांक' करते रहते हैं. बेचारा भारतीय पर्यटक और उसके डॉलर!

3 अप्रैल

सार्त्र की एक बातचीत कुछ साल पहले किसी अमेरिकी पत्र में पढ़ी थी जिसमें उनसे भेंटकर्त्ता ने मोना लिजा के जलाये जाने के बारे में सवाल किया था—मई 68 के आंदोलन के संदर्भ में. सार्त्र का जवाब था कि चीजों को जलाये जाने के बारे में वैसे मैं बराबर बहस की गुंजाइश समझता हूं, लेकिन मोना लिजा अगर जला दी जाये, तो मुझे कोई खास चिंता नहीं है.

जाहिर है इस बात से अधिकांश लोग सहमत नहीं होंगे. मोना लिजा के पास पहुंचते ही दिमाग में अंग्रेजी का शब्द 'मिस्ट्री' (रहस्य) अपने-आप ही दिमाग में बजने लगता है. लूव्र के विशाल गलियारों और वीथियों में कोई भी आदमी बदहवास हो सकता है. मोना लिजा की बगल से एक बार तो मैं आगे बढ़ गया—उस तरफ ध्यान ही नहीं गया. आगे जाकर एक निशान देखा—'मोना लिजा'— तो लौटा. चित्र के सामने कुछ लोग एक टेलीफोननुमा यंत्र लिये खड़े उस रहस्यमय मुस्कान का आनंद ले रहे थे. एक फ्रांक देकर मैंने भी वह यंत्र लिया और मोना लिजा की कहानी सुनते हुए कलाकृति को समझना चाहा. लेकिन व्यक्तिगत रूप से मुझे लियोनार्दो विची की कुछ दूसरी कलाकृतियां ज्यादा पसंद आयीं जो मोना लिजा के पास ही अपने बिना हलचल वाले इतिहास के साथ लटकी हुई हैं.

लूव्र में दुनिया भर की कला का अमूल्य खजाना है—तीसरी दुनिया के देश अब इधर सतर्क हुए हैं कि हमारी कला का खजाना फ्रांसीसियों का गौरव क्यों हो! पिछले वर्ष फ्रांसीसी प्रधानमंत्री इराक तेल का सौदा करने गये, तो इराक ने एक अजीबोगरीब मांग की : लूव्र में हमारी प्राचीन सभ्यता का सर्वोत्कृष्ट प्रतीक **हम्मुराबी का गुप्तलेखन** हमें लौटाओ. (इराकी बच्चों को यह बरसों से पढ़ाया जाता रहा है कि इस प्रतीक को फ्रांसीसी हमारे यहां से चुरा ले गये थे!) ऐसी चर्चा है कि लूव्र इराक को यह प्राचीन प्रतीक उधार पर कुछ समय के लिए देने की सोच रहा है. लेकिन लूव्र के पास दुनिया भर का जो कला खजाना है उसे यों लौटाया जाने लगा, तो फ्रांसीसी क्या करेंगे! जाहिर है कि उन्होंने सब कुछ लूटा ही नहीं है, खोजा भी है, रखा भी है. बड़ी मेहनत और प्यार से. वैसे इराक के इस प्रतीक पर ईरान भी दावा कर सकता है, जहां खुदाई में यह मिला.

4 अप्रैल

नोत्रे दाम गिरजे की बगल में एक दिलचस्प दृश्य देखा. एक स्कूल बस के पास बच्चों की एक कतार लगी हुई थी और एक बच्चे के चूतड़ पर मास्टर साहब पिटाई का सिलसिला चलाये हुए थे. मा पड़ा—कवि मित्र **पंकज सिंह** से—कि प्र में बच्चों को सर या मुंह पर नहीं म जा सकता, क्योंकि उससे बच्चे को गं शारीरिक क्षति पहुंच सकती है.

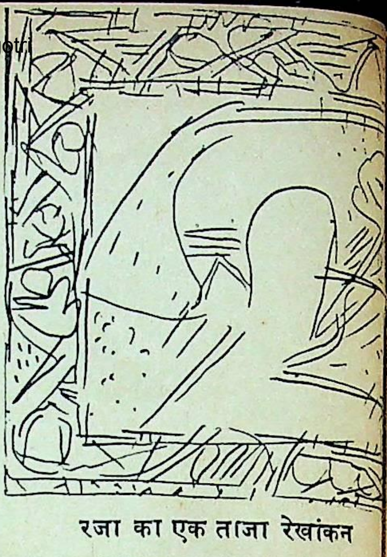

रजा का एक ताजा रेखांकन

नोत्रे दाम के पास ही अंग्रेजी पुस्त की एक ऐतिहासिक दूकान है—'शेक्सपि एंड कंपनी', जिसका इतिहास हें जैसे लेखकों से जुड़ा है. यह बड़ी पु दूकान है जिसमें लेखक कवि बड़े वातावरण में पढ़ते-बतियाते मिलते दूकान के ऊपरी हिस्से में बहुत पु किताबों और पुरानी लकड़ी की गंध बीच समय बिताना निश्चय ही एक रहने वाली चीज है. . .पंकज सिंह ने बता वे अक्सर अपना वक्त वहां गुजारते थे

लूव्र या प्रभाववादियों के प्रसिद्ध हालयों में तो हमेशा इतनी भीड़ रह कि किसी चर्चित कलाकृति को ठीक देख पाना आसान नहीं है. लेकिन संग्रहालय भीड़ से थोड़ा बचा हुआ है शायद यह पेरिस का एक सबसे मह संग्रहालय है. दरअसल यह एक बड़ा जिसके पीछे एक बड़ा सुंदर बगीचा इस घर में **जां कोक्तो** भी रह चु रोदैं के मूर्तिशिल्प इस घर में बड़ी सं एकत्रित हैं जिनमें रोदैं की कल्पना के अविस्मरणीय रूप हैं. वालजा बहुचर्चित प्रतिमा बाहर बगीचे अद्भुत नजर आती है. प्रेम और का काव्यात्मक व्याख्या रोदैं की अनेक कृतियों में है. एक कृति 'थकान' ने प्रभावित किया. पहली बार किसी कृति को देखकर कविता लिखने की

जबरदस्त इच्छा हुई. . .

पिगाल की बदनाम गलियां ऊपर साक्रे-कर के पवित्र गिरजे में ले जाती हैं जहां से बहुत ऊंचाई पर चढ़कर पेरिस दिखता है. गिरजे के ठीक नीचे मों-मार्थ्र के सड़क छाप कलाकारों की भीड़ किसी सब्जी बाजार का 'सुख' देती है. अपनी तस्वीर बनवाते पर्यटक कभी-कभी तो हास्यास्पद नजर आने लगते हैं. पिगाल की सेक्स दूकानों, नंगे नाचों और वेश्याओं का 'ग्लैमर' अव बहुत कम हो गया है. इसके लिए पर्यटक एमस्टरडैम और हांबुर्ग (रीपरबान) जाते हैं.

5 अप्रैल

पेरिस में बस गये भारतीय चित्रकार रजा के साथ एक दोपहर बिताने का मौका बड़ा सुखद रहा. रजा उन चित्रकारों में से हैं जो बड़े जितने भी हों, आदमी के रूप में बहुत सहज और आत्मीय हैं. पेरिस में उनके घर में पंकज सिंह के साथ गया. एक पुरानी-सी इमारत के भीतर एक अच्छी-खासी बड़ी जगह है. रजा ने इस जगह को हाल ही में खरीदा है. उनके कमरे में उनकी अनेक नयी कलाकृतियां देखीं जो जल्दी ही नार्वे में एक प्रदर्शनी में जाने वाली थीं. रजा को मैंने बताया कि किस तरह से पेरिस के अद्भुत कला संग्रहालयों से मैं लगभग परेशान हो गया हूं.

रजा की बात सुनकर मुझे बहुत संतोष हुआ चूंकि संग्रहालय देखने के उसी फार्मूले को मैं अपनाता रहा था. उन्होंने कहा, एक दिन में इस काम के लिए दो घंटे से ज्यादा मत रखिए. नहीं तो परेशान हो जायेंगे.

रजा से बहुत बातें हुईं—भारतीय कला से लेकर हिंदी कविता तक (उन्हें हिंदी बहुत अच्छी आती है). शाम को मेट्रो स्टेशन (शारों) की सीढ़ियों पर विदा के वक्त रजा ने एक बहुत अच्छी बात कही कि हम भले ही न्यूयॉर्क और पेरिस को जीत लें, दिल्ली आसान नहीं है.

कला बाजार इन दिनों पेरिस के नियंत्रण में नहीं है. प. जर्मनी और स्कैंडिनेवियाई देश पेरिस के कलाकारों के काम को खरीद रहे हैं.

7 अप्रैल

कार्तिए-लेतैं की एक भीतरी गली के सिनेमाघर में पासोलीनी की 'सालो' रात साढ़े आठ बजे दिखायी जाने वाली थी. काफी वक्त था. मैं अपने मित्र **श्रणिक कुमार लूंकड** और उनकी पत्नी के साथ सामने नुक्कड़ के एक काफे में बैठ गया. वहुत देर तक बैठना पड़ा. सामने शीशे से एक बहुत बूढ़े आदमी को धीरे-धीरे सड़क पार करते हुए गिरता हुआ देखना वहुत देर तक परेशान किये रहा. वह आदमी सड़क के बीचों-बीच एक घोड़े की तरह पसर गया और फिर बहुत ही धीरे-धीरे उठकर सड़क पार कर सका. कई लोग पास से गुजरकर आगे वढ़ गये.

पेरिस के कुछ छोटे-छोटे सिनेमाघर ऐसे हैं कि अचानक फिल्म के बीच छत पर से बड़ी जोर से फ्लश की जंजीर खींचने की आवाज आपको एक नया ही साउंडट्रैक सुना सकती है! पर्यटक दर्शक हैरान होकर ऊपर देखने लग पड़ते थे. 'सालो' में द साद की परपीड़न का ग्राफिक चित्रण करने वाली स्वैर कल्पना में हगना-मूतना वैसे भी बहुत महत्वपूर्ण था . . .

ऑटोबस का ड्राइवर कोई अफ्रीकी है. सामने किसी कार से हल्की-सी टक्कर के वाद अच्छा-खासा हंगामा मचा हुआ है. पके बालों वाला बूढ़ा आसमान सर पर उठाये हुए है. नुकसान का हिसाब-किताब लड़-झगड़कर और कागज-पत्रों के जंगल में हो रहा है. आखिर वह अफ्रीकी ड्राइवर रेडियो से अपने मुख्यालय से संदेश पाता है कि कागजों पर दस्तखत कर दो. तभी कार के मालिक की बीवी भी लड़ने के लिए आ जाती है. फ्रांसीसी बोलते तो बहुत हैं ही. एक यात्री परेशान होकर कार मालिक से कहता है कि तुममें पके बालों के बावजूद समझ की कमी नजर आ रही है. बीस मिनट की चकचक के बाद भी कोई समझौता होते न देखकर यात्री दूसरी ऑटोबस में लद जाते हैं. मेरा खयाल है भारत में किसी साहब की गाड़ी के साथ ऐसा होता, तो विदेशी पर्यटकों को देखकर वह शायद थोड़ी-बहुत बहस करके अपना रास्ता लेते. कार में उस टक्कर से जो नुकसान हुआ था, वह एक खरोंच के बराबर होगा.

8 अप्रैल

'एयर इंडिया' के एक जहाज के रद्द हो जाने की वजह से मुझे पेरिस की अंतिम शाम एक आलीशान होटल में बितानी पड़ी—दूसरे यात्रियों के साथ —उनमें से कुछ भारतीय भी हैं. अब आज दोपहर रोम जाकर 'एयर इंडिया' का जहाज मिलेगा. कल रात खाने के वक्त पर होटल के रेस्तरां में मैं ऑर्डर देकर अकेला बैठा हुआ था कि स्विटजरलैंड के एक भारतीय प्रोफेसर मिल गये जो वर्षों वाद कुछ दिनों के लिए भारत जा रहे थे. उनका विषय विज्ञान था. काफी युवा दिख रहे थे, पर थे अच्छी-खासी उम्र के. खाने पर काफी लंबी बात होती रही. आखिर हम सभी वहां वक्त काट रहे थे. लाल वाइन ने हम दोनों को काफी देर तक बात करने में मदद दी. दिल्ली-बंबई के रेलवे स्टेशनों और हवाई अड्डों के बारे में वे मुझसे कुछ जानकारी चाह रहे थे. भारतीय हालत से वे काफी निराश दिखे. बोले, कुछ नहीं हो सकता. इस हालत के लिए दोषी आप हैं (जोर से) और 'मैं हूं' (दबे स्वर में). मैंने उनसे सिर्फ इतना कहा कि यूरोप के कुछ हिस्सों में दो बार थोड़ा-थोड़ा रहकर मुझे यहां की जिंदगी बड़ी उत्साहजनक नहीं दिख रही है. बावजूद इसके कि मेरे जैसे लोगों के लिए यूरोप में देखने-जानने के लिए बहुत कुछ है. "पालम पहुंचकर बहुत चीजें मुझे निराश करती हैं. अचानक धक्का-सा लगता है. पर मैं भारत से घबड़ाना नहीं चाहता हूं. . ." लेकिन वे भारत से काफी घबड़ाये हुए थे और वेटर से बराबर सलीके की फ्रांसीसी बोलकर और मेज पर पड़े स्पानी संतरे को बहुत कायदे से काटते हुए लाल वाइन की रोशनी में धीमे-धीमे मुस्करा रहे थे. □

● **एफ-16, प्रेस एन्क्लेव, साकेत,**
नयी दिल्ली-110017

■ विनोद भारद्वाज
जन्म: अक्तूबर 1948 1979 में जर्मनी और लंदन की यात्रा कर चुके हैं. इस वर्ष मार्च-अप्रैल के दिनों में चेकोस्लोवाकिया, पोलैंड की यात्रा के दौरान पेरिस भी गये. सारिका के पाठक उनके कथाकार रूप के साथ-साथ 'साक्षात्कार' स्तंभ के अंतर्गत प्रकाशित वार्ताओं से परिचित हैं. पहला कविता संग्रह 'जलता मकान' अभी हाल ही में छपा है, समीक्षात्मक टिप्पणियों का संग्रह छप रहा है. संप्रति 'दिनमान' में.

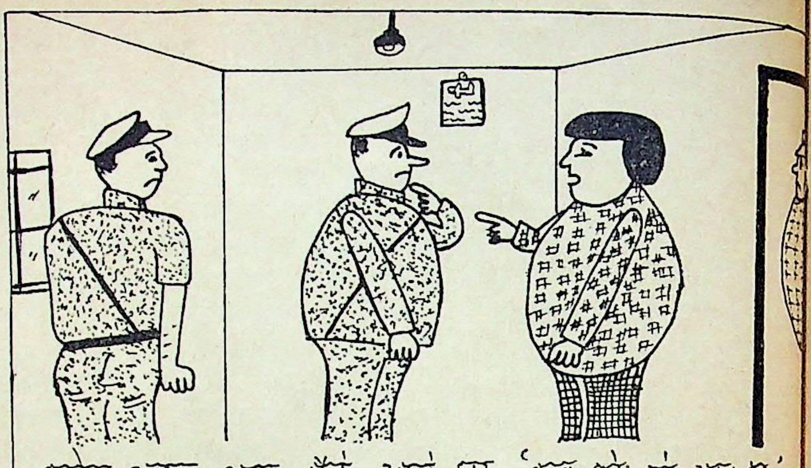

दारोगा साहब आज मैंने अपने घर 'कल करे सो आज कर' का बोर्ड लगाया थोड़ी ही देर बाद मेरा नौकर सारे पैसे ले कर भाग गया।. रवि

गपशप

एक व्यक्ति पैसों के मामले में काफी परेशान हो एक मनोचिकित्सक के पास आया. मनोचिकित्सक ने उसे सांत्वना देते हुए कहा, "चिंता मत करो. कुछ दिन पहले ऐसा ही एक रोगी मेरे पास आया था, उसे किसी दर्जी का बहुत बड़ा बिल देना था. मैंने उसे सलाह दी कि सब भूल जाओ और कुछ दिन में वह ठीक हो गया. अब तुम अपनी चिंता का कारण बताओ."

"मैं ही तो वह दर्जी हूं." उसका संक्षिप्त-सा जवाब था.

▣

"अब तुम्हीं बताओ कि ऐसी कौन-सी बात रह गयी है, जो मैं तुमसे कहूं, ताकि तुम मुझ पर विश्वास कर सको?" प्रेमी ने शक्की प्रेमिका से कहा.

"सिर्फ तीन शब्द."

"क्या?"

"दस लाख रुपये." जवाब था.

▣

एक बीमा एजेंट बहुत दिनों से किसी ग्राहक को नहीं फांस पाया था. अंत में उसने एक कंजूस सेठ की सेक्रेटरी को इस बात के लिए तैयार कर लिया कि वह फोन पर सेठ से उसकी बात करा देगी. उसने अपनी बात सेठ के सामने रखी. सेठ ने पहले ही वाक्य में पूछा, "तो आप बताइए, मुझे कितनी रकम की पॉलिसी लेनी चाहिए. . ."

एजेंट को इसकी उम्मीद तक न थी. वह गड़बड़ा गया, "क्षमा कीजिए, मुझे लगता है, गलत नंबर मिल गया है."

▣

एक गाड़ी कीचड़ में फंस गयी थी. कुछ ग्रामीणों ने धकेलकर उसे बाहर निकाला. गाड़ीवाले ने उन्हें उचित पारिश्रमिक देते हुए कहा, "यहां तो बहुत कीचड़ है. गाड़ियां जरूर फंसती होंगी. तुम लोग रात-दिन यही काम करो तो काफी कमा सकते हो."

"दिन में तो ठीक है साहब, पर रात को हम यह नहीं कर सकते, क्योंकि उस समय हमें यहां कीचड़ बनाये रखने के लिए पानी ढोना होता है."

▣

एक महिला तलाक के मुकद्दमे के दौरा गवाही में कह रही थी, "जज साह मेरे पति को घुड़दौड़ के अलावा क किसी बात का ध्यान ही नहीं रहत जब भी बात करते हैं, घुड़दौड़ बीच आ जाती हैं. आप खुद ही सोचि कि ऐसे आदमी के साथ गुजा कैसे हो सकता है, जिसे विवाह तारीख तक याद नहीं रहती."

"यह बात गलत है जज साह मुझे याद है, हमारी शादी उसी दि हुई थी, जिस दिन सिलवर हैड ने चौ महीने के पहले शनिवार को तीस दौड़ जीती थी!" पति ने सफाई दी.

▣

सिनेमा देखते हुए एक महिला हीरो के दुख देखकर आंसू बहा रही थी. प को यह अच्छा नहीं लग रहा था. आखि वह कह ही उठा, "एक ऐसी महि के झूठे रोने पर क्यों रो रही हो, जि तुम जानती तक नहीं?"

"और तुम क्यों क्रिकेट की कमेंट सुनते हुए सिर्फ यह सुनकर एक व्यक्ति ने छक्का लगा दिया उछल पड़ते हो, जबकि तुम उसे जा तक नहीं?"

एक सुनी सुनायी भी

एक मुशायरे में फिराक के बाद श्रोताओं की तरफ से एक नौजवान शायर ज़बेर रिज़वी का कलाम सुनने की फरमाइश की गयी.

मुशायरे के सेक्रेटरी ने ज़बेर को माइक पर बुलाया तो वह बहुत याचना से झिझकते हुए कहने लगे, "श्रीमान, फिराक साहब के बाद मैं अपने शेर कैसे पढ़ सकता हूं."

फिराक साहब ने यह सुनकर बड़ी उदारता से फरमाया, "वाह मियां, तुम अगर मेरे बाद पैदा हो सकते हो तो मेरे बाद शेर क्यों नहीं पढ़ सकते!"

एक नया नाम

एक शाम की कहानी

• मोहन डिमरी

ढ़ने की काफी कोशिश करने पर भी मैं आज मन लगाकर नहीं पढ़ पा रहा था. एक-दो वाक्य ध्यान से पढ़ने के बाद ता ही नहीं चलता कि कब मैंने पूरा पैराग्राफ पढ़ लिया है. जब चानक होश-सा आता तो मन लगाकर पढ़ने का निश्चय करके र आरंभ से ही पढ़ने लगता. मस्तिष्क को केंद्रित करने के प्रयत्न ऊंचे स्वर में भी पढ़ता, लेकिन जब थोड़ी देर बाद पाता कि ना भी वही है और आंखें भी उसी पैराग्राफ पर टिकी हैं, पर स्तिष्क फिर से भटक गया है, तो बड़ी झुंझलहलाहट होती—ब इसकी पुनरावृत्ति पांच-छह बार हो गयी तो मैंने गुस्से से ताब बंदकर अटैची पर फेंक दी और आंखें बंद करके लेट गया.

वीरू और उसका बाप, दोनों ही बारी-बारी से मेरी आंखों सामने आने लगे. खीसें निपोरता बीरू अदृश्य होता तो बुझी-झी आंखों से कहीं दूर तक देखने का प्रयत्न करता हुआ उसका प आंखों के सामने आ जाता. असल में इस बुढ़ऊ ने ही कल से झे परेशान कर रखा है. पीछा ही नहीं छोड़ता. दफ्तर में काम रते समय भी जब-तब अपनी बुझी-बुझी आंखें मुझ पर टिकाये मने आ जाता. पता नहीं क्यों?...मैंने तो अब यह विचार बना या है कि किसी दूसरे आदमी के दु:खों के बारे में सोच-सोचकर रेशान होना बिल्कुल ही मूर्खता है. किस्मत के मारे और दुनिया सताये ऐसे तो लाखों और करोड़ों की संख्या में होंगे. किस-स के बारे में सोचें. हमी को कौन-सी जागीर मिली है, हम भी तो रेशान हैं. जिंदगी ऐसे ही चलती है. अपने बारे में सोच लें, यही हता है.....फिर.....

....फिर भी न जाने मैं कल से क्यों इतना संवेदनशील हो ठा हूं....कल की ही तो बात है. मैंने शाम को घूमने के इरादे से कपड़े बदले. लेकिन बाहर निकला तो देखा आकाश में बादलों के बड़े-बड़े टुकड़े इधर-उधर चले जा रहे हैं और हवा चलने लगी थी. अंधड़ आने की आशंका से मैं तिलिस्मी मौसम को कोसता हुआ कमरे में चला आया. यहां अक्सर ही ऐसा हो जाता है—दिनभर खिली-खिली धूप और शाम को धूल उड़ाता भयंकर अंधड़. कमरे में आकर मैंने रजाई का गावतकिया बनाया और उस पर पसर गया. फिर पेटी को पांवों से ही समीप खींचकर उस पर अपने पांव टिका दिये. यह पेटी भी बड़े काम की है—पेटी है लिहाजा उसमें सामान भी रखता हूं. दोस्त लोग आते हैं तो आवश्यकतानुसार इससे मेज अथवा कुर्सी का काम भी लिया जाता है. हालांकि कुर्सी का काम लेने में अक्सर चारपाई के टूटने का भय भी काम करता है. पसरे-पसरे ही मैं एक पत्रिका निकालकर उलट-पुलट ही रहा था कि दरवाजे पर किसी के कमरे के अंदर झांकते सिर की एक झलक दिखाई दी. मैं अपना संदेह मिटाने के उद्देश्य से दरवाजे के पास गया तो देखा, वहां पर एक बुढ़ऊ खड़ा था. मुझे देखते ही वह मूठवाली छड़ी टेकता हुआ अंदर चला आया.

"कहिए?" मैंने उससे पूछा. दिमाग पर काफी जोर डालने के बाद भी मैं उसे नहीं पहचान पाया था.

"यहां बीरू भी आया है?" कमरे में इधर-उधर देखते हुए उसने पूछा, मानों मैंने बीरू को कमरे में छिपा रखा हो.

बीरू?—अच्छा तो ये बीरू का बाप होगा—प्राइमरी का रिटायर्ड मास्टर. मैं गौर से उसके चेहरे को देखने लगा...दंत-विहीन पोपला मुंह, गाल की दोनों चमड़ियां एक-दूसरे का स्पर्श करने को आतुर और कहीं गहरे से झांक रही बुझी-बुझी दो अदद आंखें. "अच्छा तो आप बीरू के पिताजी हैं? बैठिए." मैंने [illegible]पाई

से रजाई एक तरफ हटाते हुए कहा. बुढ़ऊ चारपाई पर बैठा तो मैं भी पेटी को एक कोने में सरकाकर उस पर बैठ गया. "बीरू तो यहां नहीं आया. वह तो मुझे पंद्रह-बीस दिनों से मिला ही नहीं." मैंने जमीन पर गिर गयी बुढ़ऊ की छड़ी को दीवार के सहारे खड़ा कर दिया.

▣

"मुझे बाजार में मिला था तो उसने थोड़ी देर बाद आपके कमरे में मिलने को कहा था. बाहर हवा चल रही थी. इसलिए मैं सीधे आपके कमरे में ही चला आया." बुढ़ऊ ने नजरें चुरा लीं, शायद मेरा अपने चेहरे को घूरते रहना वह बर्दाश्त नहीं कर पाया.

"ठीक किया आपने. घर से कब आये आप?"

"आज ही आया."

"पेंशन लेने आये होंगे." मैंने अनुमान लगाया.

"नहीं, पेंशन तो मनीऑर्डर से चली आती है. इक्कीस रुपये तो कुल मिलते हैं, अगर उसे लेने हर महीने यहां आना पड़े तो ऊपर से कुछ अपना ही खर्च करके खाली जेब वापस जाना पड़ेगा." बुढ़ऊ हंसा.

मैं भी हंसा. "हां, बात सही है. अच्छा तो आप किसी और काम से आये होंगे." मैंने तनिक रुककर पूछा.

"हां, कुछ ऐसा ही." बुढ़ऊ एक निःश्वास भरकर खिड़की से बाहर झांकने लगा था. "वो समन आया था. पिछले समन तो तामील नहीं हो सके, क्योंकि वह गांव में नहीं था. इस समय उन्होंने लिखा है कि यदि इस बार भी हाजिर नहीं हुए तो एकतरफा फैसला दे दिया जायेगा."

बुढ़ऊ एक ही सांस में यह सब बोल गया, जैसे पहले से ही रट के आया हो.

"समन? किसके नाम पर?" मैं कुछ समझ नहीं पाया था.

"अरे साहब इसी बीरू के नाम पर." बुढ़ऊ का स्वर कुछ तिक्त हो आया.

"बीरू के नाम पर!" मैं आश्चर्यचकित था. बीरू की कोई भी बात मुझसे छिपी नहीं थी और फिर बीरू जैसा लाटा आदमी और समन!

"हां, एक्साइजवालों ने पकड़ा था इसे दारू लाते हुए." बुढ़ऊ फिर खिड़की से बाहर झांकने लगा था.

अरे ठीक, ठीक...तब याद आया—बीरू ने एक बार बताया तो था. हुआ यों कि इसके बड़े भाई के पुलिस में होने के कारण पुलिस के सिपाहियों से इसकी जान-पहचान हो गयी थी. एक दिन दो पुलिसवालों ने दारू पीने का प्रोग्राम बनाया. यह उनके यहां आता-जाता तो था ही, उन्होंने इसे भी उस प्रोग्राम में शामिल कर लिया. जब ये लोग वापिस आ रहे थे तो एक्साइज वालों का छापा पड़ा. इन लोगों द्वारा लायी जा रही दारू की बोतल छीन ली गयी. लेकिन...

"लेकिन ये तो बता रहा था कि पुलिसवालों के कारण मामला दबा दिया गया था." मेरे स्वर से अनजाने ही परेशानी झलकने लगी थी.

"अजी कहां? इसके खिलाफ ऐसा मामला बन गया है कि ये हमेशा ही दारू लाता है और उसकी अवैध बिक्री करता है." बुढ़ऊ ने दोनों तर्जनियों की नोकों को दो-तीन बार छुआकर समझाया.

"हद है!" मुझे गुस्सा आ गया था. ..."बताइए, जरूरत थी उसे उन पुलिसवालों के साथ जाने की! ऐसा का अंधा और गांठ का पूरा आदमी मैंने कहीं नहीं देखा." मैंने महसूस किया कि बीरू मेरे गुस्से का निशाना नहीं था.

'अक्ल का अंधा और गांठ का पूरा' वाली उक्ति से मुझे बीरू के बारे में एक बात और याद हो आयी. बात तब की है यह करीब चार साल पहले हमारे दफ्तर के चौकीदार के पर जाने के फलस्वरूप दो महीने के लिए लगा था. मेरा इससे परिचय उसी समय हुआ.

सत्रह-अट्ठारह साल का गोरा-चिट्टा, शर्मीला, में ही खोया हुआ और आंखें मूंदकर आदेशों पालन करने वाला... दो महीने बाद जब वह वहां से चला तो पता चला कि कैंटीन में इसका चाय-बिस्कुट का हिसाब सौ बीस -एक सौ तीस रुपये महीने का था. तब नेगी ने कहा "स्साले करेंगे चपरासीगीरी और चाय पियेंगे डेढ़-डेढ़ सौ की. यही तो कंगाली की निशानी है... भाई साहब, इसीलिए इधर का आदमी उन्नति नहीं कर सकता." तभी थपलियाल दूसरा भेद खोला, "अरे कहां यार, वो खुद पीता तब भी बात ये सब खर्च तो उसने अपने दोस्तों पर किया यार. स्कूल के लड़के उसके दोस्त थे."

और उसने निर्णय दिया था, "इसी को तो कहते हैं अक् का अंधा और गांठ का पूरा. हा-हा-हा!" ... हंस पड़े थे.

बुढ़ऊ ने कोट की जेब से बीड़ी का एक तुड़ा-मुड़ा निकाला, और एक बीड़ी निकालकर जलायी. पहला कश ही बुढ़ऊ को बड़े जोर की खांसी आयी. खांसते-खांसते बुढ़ऊ मुख लाल हो गया और आंखों में आंसू भर आये.

▣

इस बीच बातों का सिलसिला टूट चुका था, अतः मैंने उसे जोड़ा, "मास्साब, मैं तो इसे यही सलाह देता हूं कि जाकर गांव में चाय-पानी की एक दूकान खोल ले. वहां पर कुछ कर्म भी रहते ही हैं. कामचलाऊ खर्चा निकल आयेगा और वहां रहकर जमीन-जायदाद भी देख लेगा..."

..."नहीं साहब नहीं, ये काम उसके वश का नहीं है. क्या, वह तो किसी काम के लायक नहीं है." बुढ़ऊ के स्वर का पन मुझे कहीं गहरे तक कंपा गया.

"नहीं, मैं इसलिए कह रहा था कि आखिर वह कब तक तरह की एक-एक दो-दो महीने वाली नौकरी करता रहेगा. उमर ज्यादा हो रही है, अब तो कहीं परमानेंट ठिकाना हो जाना चाहिए." अपनी सफाई देने के बाद मैं तनिक रुका. "एक तो किस्मत ही ऐसी है और फिर ये एक जगह पर मन काम करता ही नहीं."

"बड़ी ही चंचल बुद्धि का है." बुढ़ऊ के होंठ मुड़ने के उसका पोपला मुंह अजीब-सा दिखाई दिया.

मैंने बात आगे बढ़ायी, "मैंने एक साहब के यहां उसे

▣ मोहन डिमरी

जन्म : 5 जनवरी, 1952

शिक्षा : एम. ए. (अंग्रेजी)

'गुलामी का दौर नहीं देखा है, मगर भारत के आम आदमी को पिछले कितने ही वर्षों से देख रहा हूं जो न हंस सकता है और न रो सकता है. इस विवशता को वाणी देना चाहता हूं, क्योंकि यह विवशता अब असह्य होने लगी है.'

ा, वहां भी उसने छोड़ दिया. खैर वहां तो उन्होंने उसे काफी परेशान भी किया. फिर इसको एक जान-पहचान वाले ओवरसियर के गैंग में दिनवारी में लगवाया. ओवरसियर से मैंने कह दिया था कि यार अपना आदमी है, जरा मजदूरी में खयाल करना. उसने वहां भी छोड़ दिया. बिस्कुट वाले के यहां लगा तो दो महीने बाद वहां भी छोड़ दिया. . . और अब जहां लगा है वहां लगा ही सिर्फ दो महीने के लिए है.''

मेरे पूरे भाषण के दौरान बुढ़ऊ के चेहरे पर एक निर्लिप्तता विराजमान रही. शायद बुढ़ऊ को सब मालूम था जिसे दुबारा सुनने में उसे कोई दिलचस्पी नहीं थी.

मैं फिर अपनी पुरानी बात पर लौट आया, ''इसलिए मेरा विचार है कि गांव में दूकान खोलना ही इसके लिए ठीक रहेगा. वहां पर आपके कंट्रोल में भगवान चाहेगा तो ये सब काम ठीक-ठाक कर लेगा. फिर आपका एक लड़का तो नौकरी पर है, उसे तो बाहर ही रहना है. जमीन-जायदाद की देखभाल करने के लिए भी तो कोई चाहिए ही. मैं बुढ़ऊ की प्रतिक्रिया जानने के लिए चुप हो गया.

बुढ़ऊ ने एक निःश्वास भरी, ''अजी साहब, यह जो होता तो मुझे इस बुढ़ापे में रोने की जरूरत ही क्या थी! बड़ा लड़का तो हाथ से गया. अब तो उसको अलग रखकर ही सारी समस्या पर सोचना है. . . दो साल पहले वह अपनी बहू को लेकर जो गया तो आज तक घर आना या पैसे-पाई की मदद करना तो दूर, उसने चिट्ठी तक नहीं दी. उसे तो अब यह जानने की भी जरूरत नहीं है कि हम लोग जिंदा भी हैं या नहीं.''

बुढ़ऊ का रुआंसा स्वर बड़ी गहराई तक मुझे छेदता चला गया. मैं अपने पास कुछ भी कहने के लिए नहीं पा रहा था.

बुढ़ऊ ने अपनी बात जारी रखी, ''पंडीजी, मुझे दुःख इस बात का है कि मेरी नौकरी नासमझ बच्चों को जिंदगी का सही रास्ता बताने की थी. इसी में मेरी सारी उमर गुजर गयी. लेकिन अफसोस कि मैं अपने ही बच्चों को सही रास्ता नहीं बता सका . . चलो बड़ा एकदम अच्छी हालत में तो नहीं है, पर एकदम बुरी हालत में भी नहीं. पर इस बीरू का क्या होगा, यही मैं दिन-रात सोचता रहता हूं और शायद सोचते-सोचते ही मर भी जाऊंगा.'' बुढ़ऊ की नाक बहने लगी थी और मुझे एक घुटन-सी महसूस होने लगी. . .रह-रहकर कोई चीज गले में अटक जाती थी.

''लेकिन मास्साब, ऐसी बात भी नहीं है. आपने अपनी तरफ कोई कमी थोड़े ही की होगी. लड़के ऐसे ही निकले तो इसमें आपका क्या दोष!'' लेकिन बुढ़ऊ के चेहरे पर मेरी इस सांत्वना की कोई भी प्रतिक्रिया नहीं झलकी. मैं कहना चाह रहा था कि समय कटते कोई देर नहीं लगती. चार-पांच साल उस बीरू ने ऐसे काट दिये, क्या पता चला? ऐसे ही बाकी जिंदगी भी कट जायेगी. लेकिन कह नहीं सका. समय काटने की बात से मुझे उसके इस कस्बे में आने से पहले की अवधि की बात न जाने क्यों याद आ गयी. जब वह पिछले वर्ष इस गोपेश्वर में आया था तो उसका सिर घुटा हुआ था. पूछने पर उसने बताया कि वह ऋषिकेश में एक दिन अपने एक परिचित के साथ, जो एक आश्रम में खाने-पीने का बंदोबस्त करता था, उसके आश्रम में गया. इसने भी ऐसी ही नौकरी मिलने की इच्छा प्रकट की. परिचित ने सोदाहरण इसे यह समझाने की कोशिश की कि यहां नौकरी करने से अधिक ठाठ जोगी होने में है. बात इसके मन में कुछ इस तरह बैठी कि यह दूसरे दिन ही जोगी हो गया. दो-तीन महीने पश्चात यह एक दूसरे नये बने जोगी के साथ भ्रमण के लिए चल पड़ा. ये जब उत्तरकाशी में थे तो दूसरे जोगी का पीछा करती उसकी रोती-कलपती मां वहां आ पहुंची और मना-बुझाकर अपने लड़के को वापिस घर ले गयी. इसको लेने तो कोई नहीं गया, पर अकेले में मन न लगने से उसने भी भगुवे कपड़े फेंक दिये और यहां चला आया.''

बुढ़ऊ मेरे सांत्वना-शब्दों को अनसुना कर अपनी ही रौ में बोलने लगा था, ''अरे इतना भाग्यहीन भी मैंने कोई नहीं देखा. क्या नहीं है? पुलिस में भरती हो जाता, पल्टन में भरती हो जाता या जहां लग रहा है, वहीं पक्का हो जाता, और तो और जोगी हो जाने के बाद भी वापिस ही आया. . .कम से कम इसी में संतोष कर लेता कि मेरा एक ही लड़का है और वह नौकरी से अपना गुजारा कर ही रहा है. . .

तभी बीरू ने कमरे में झांका, ''आइए बीरेंद्र प्रसादजी.'' मैंने उसे अंदर बुलाया. बुढ़ऊ ने एक निरपेक्ष दृष्टि उस पर डाली. वह रोज की तरह खींसे निपोरता हुआ जमीन पे बिछी बोरी पर बैठ गया.

''क्यों रे, उस बिस्कुट वाले ने तेरा हिसाब कर दिया?''. . . बुढ़ऊ ने भरसक तोप दागने का प्रयत्न किया.

''नहीं.''

''तो क्यों नहीं किया. मैंने तुझसे कहा था कि तू उसके बिक्री के पैसे तब तक वापिस मत लौटाना, जब तक वह तेरा हिसाब न कर दे. मैं अभी उसके पास गया था, उसने तो बताया कि तेरे ऊपर उसका ढाई सौ रुपये का हिसाब बाकी है. . . मैं क्या करता! भैंस की तरह मोटा होता जा रहा है और उसके ठगने में आ गया? नालायक कहीं का''. . . बाकी आवाज बुढ़ऊ की खांसी में दब गयी. . . और मैं सोच रहा था, जब यह बुढ़ऊ मास्टर होगा तो बड़ा कड़े मिजाज का होगा. बुढ़ऊ की खांसी तो बंद हो गयी थी, लेकिन वह अभी तक हांफ रहा था.

मैंने बीरू से चाय बनाने को कहा. स्टोव की घरघराहट के कारण सभी चुपचाप थे. मैं बुढ़ऊ के विचारमग्न चेहरे पर उसके अतीत को खोजने लगा. कितने अरमान रहे होंगे उसके दिल में. . . अपने बारे में. . . लड़कों के बारे में. . . लेकिन अपने अरमानों को

ग़ज़लें

एक

जिंदगी पर किसी साये का गुमां होता है,
जैसे मिटता हुआ धुंधला-सा निशां होता है.

जिंदा रहने का सलीक़ा तो उसे आता है,
मौत की गोद में पलकर जो जवां होता है.

वक्त की धुंध में खोया हुआ तेरा चेहरा,
जैसे बुझती हुई यादों का धुआं होता है.

तेरी जुल्फों का बहुत नाम सुना करते हैं,
इसका साया भी है लेकिन वो कहां होता है.

कुछ न कुछ उनसे तअल्लुक़ तो अभी बाक़ी है,
चोट लगती है वहां, दर्द यहां होता है.

▣ **जाफ़र बेग**

दो

जख़्मों से भरा दिल का चमन बेच रहा हूं.
ये गीत, ये नग़मात, ये फ़न बेच रहा हूं.

जिस अज़्म से दुनिया को एक आईना मिलेगा,
वोह बोझ उठाने को थकन बेच रहा हूं.

क्या मोल है लोगो, मुझे इतना तो बता दो,
नादार हूं, मैं अपना कफ़न बेच रहा हूं.

है कोई हक़ीक़त का ख़रीदार तो आये,
मैं आज सरे-दार घुटन बेच रहा हूं.

किस क़ौम ने मुफ़लिस को कलेजे से लगाया,
नश्तर है जो दिल को वो चुभन बेच रहा हूं.

जब प्यार नहीं दिल में तो बेकार है जीना,
इंसान हूं, गीता का वचन बेच रहा हूं.

इस दौर का भगवान भी सोया है महल में,
फुटपाथ पे ग़ुरबत के भजन बेच रहा हूं.

▣ **संतोष कुमार गौड़**

पूरा न होते देख यह कितना दुःख सह रहा होगा, यह मैं दिल में महसूस कर सकता हूं, अभिव्यक्त करने की क्षमता मु नहीं है.

चाय पीने के बाद वे दोनों चले गये थे और मुझे सौंप गये अनिद्रा रोग. . .

आज शाम भी बीरू आया था.

"हो गया तुम्हारा फ़ैसला?" मैंने पूछा.

"हां." वह बाकायदा अपनी खींसे निपोरता चला जा रहा

"क्या हुआ?"

"जुर्माना. . . ढाई सौ रुपये."

"ये ढाई सौ रुपये कहां से दोगे? हैं तुम्हारे पास?"

"नहीं साब, पिताजी देंगे."

"मेरा मन अजीब-सा हो आया था. . ."

"तो क्या तुमने अपनी सफाई में कुछ कहा ही नहीं." झुंझलाया.

"कहा था साब, पर उन्होंने कहा कि दारू तो तुम्हारे प पकड़ी गयी है, पुलिस वालों को हम क्या जाने!"

मैंने एक निःश्वास भरा. अचानक मुझे समन वाली एकतर फ़ैसले की बात याद आयी, तो मन में कुछ अजीब-सा महसूस हो लगा. उसने आगे कहा, "वकील ने भी कहा कि मुकदमा ल से कोई फायदा नहीं है. . . मुकदमा लंबा खिंचता चला जाये और उसमें बहुत पैसा बर्बाद हो जायेगा."

"ठीक ही कहा वकील ने भी." मैं मन ही मन बुदबुदाया.

वह चला गया था.

▣

. . . और मेरी आंखों के सामने बारी-बारी से ये दोनों चेह आते चले जा रहे हैं. . . जब बीरू यहां आया था तो मैंने ही उस मदद की थी, लेकिन कुछ समय बाद मैं उसकी ओर से विर सा हो गया था.

कहां तक हम किसी के बारे में सोचें, और भी तो दुनिया में. . .दोस्तों के बीच मेरे लिए वह मजाक का विषय मसलन उसका जोगी बनने का किस्सा, उसके चाय-बिस्कुट खर्चा—इन किस्सों को मैं नमक-मिर्च लगाकर पेश करके दोस्तों अधिक से अधिक हंसाने का प्रयत्न करता. . . लेकिन आज लग है, मेरा दिल बुढ़ऊ का दिल हो गया गया है और आंखें भी बु की. . . इन बदलती हुई आंखों से जब मैं बीरू की तरफ देखता तो ये बुढ़ऊ वाला दिल एक अव्यक्त पीड़ा से क उठता है. . .

ओह, लगता है आज नींद आयेगी ही नहीं. . . सा गोपेश्वर नींद के आगोश में निश्चल पड़ा है. इस निश्चलता में क चौकीदार की सीटी की आवाज तैर जाती, कभी-कभी कुत्ते भौंक उठते. . .

मैंने करवट बदली और सोने के प्रयास में रजाई सिर ओढ़ ली.

● **कार्यालय जिला विद्यालय निरीक्षक, चमोली, स**
गोपेश्वर-246401 (उत्तर प्रदे

शिवसागर मिश्र के दो उपन्यास ▣ डा. वचनदेव कुमार

दलते परिवेश में मूल्यों के ध्वंस का विस्फोट समसामयिक हिंदी उपन्यासों लिए पटाखे की आवाज भर नहीं रह या है, अपितु मूल्य-विघटन और नव्य विन-मूल्यों के आरोहण की मौजूदा क्रिया में इधर के कथाकारों की खासी लचस्पी है. भविष्य से अनभिज्ञ वर्तमान संकट को मूल्यों के संदर्भ में उद्घाटित रने वाले उपन्यासों के बीच 'जनमेजय चों' की अस्मिता इसी कारण स्थिर है कि स्तविकता के जीवित और विश्वसनीय सार को चिंतन और अनुभव, संवेदना और भिव्यक्ति के धरातल पर साकार करने क्षमता शिवसागर मिश्र में है. **'जनमेजय चों' कथानक लक्ष्मीकांत के जीवन इस निचोड़ की औपन्यासिक व्याख्या कि हमारे देश में अब तक कोई क्रांति हीं हुई, देश जहां का तहां है.**

ऋषियों की रिश्तेदारी सर्प से है

स्वाधीनता संग्राम के दिनों से लेकर जतक के सामाजिक-राजनीतिक परिय का रेखांकन इसी पीठिका पर शिवगर मिश्र ने इस उपन्यास में किया है. केवल सुगिया और जनकिया की दुखरी कहानी ही नहीं, लक्ष्मीकांत की वनयात्रा का मूल्यदर्शक प्रतिरूप ही हीं, रेतिया कोठी को केंद्र बनाकर लिखी शोषक बनाम शोषित के सनातन र्ष की गाथा भी है. इस गाथा में नारीपण की सिसकियां और निम्नवर्गीय तियों की मजबूरियां उद्घाटित हुई हैं. गाथा कहीं बलात्कार और भ्रष्टाचार कुंजगलियों से गुजरती हुई राजनीति अखाड़े तक पहुंचती है तो कहीं इसके ड़े में व्यवस्था को चरागाह की तरह माल करने वालों की वास्तविकता हुई है.

'जनमेजय बचो' में एकत्र लोग स्याओं और संघर्षों के बीच विकसित हैं. उनके बीच न कोई मसीहा है और न कोई क्रांतिदर्शी. लक्ष्मीकांत की कथा कहां सुगिया की व्यथा बन गयी है और जनकिया की चिंता कहां आनंद का साहस बन गयी है, घटनाओं के इस विस्तृत ताने-बाने में औपन्यासिक वस्तु का विकास उपन्यासकार ने रोचक शैली में किया है.

हर सिंहासन के नीचे तक्षक !

लक्ष्मीकांत की आत्मकथा के बाद लेखक को डायरी और पत्रों का जो पुलिंदा आनंद ने दिया, वही 'जनमेजय बचो' का कथास्रोत है. उपन्यास को विश्वसनीय बनाने की इस औपचारिक कोशिश के बिना भी शिवसागर मिश्र के इस उपन्यास में पाठक को सामाजिक-राजनीतिक यथार्थ के संकटपूर्ण संसार में भटकाने की पर्याप्त सामग्री थी. 'जनमेजय बचो' का विकास एक चुके हुए सामंत और नेता की कथा से हुआ है और इसका पर्यवसान परिवेश की विविध विसंगतियों और असुरक्षाओं की चिंता में मौजूद है. **उपन्यास के अंत में कथाकार ने गांधीजी के उस स्वराज्य की परिकल्पना की है, जब सोलह साल की लड़की कश्मीर से अकेली चलकर कन्याकुमारी सकुशल पहुंच जायेगी.** जिस वातावरण में सुगिया और जनकिया को जगदंबी, नत्था सिंह, रबिया, सरयू मिसिर जैसे लोगों की पाशविक लोलुपता से बचने के लिए लगातार संकट का सामना करना पड़ता है, उसमें असुरक्षा की भावना ही सामाजिकता का केंद्रीय स्वर है. आनंद और सुगिया, कन्हैया और जनकिया के बहाने उपन्यासकार ने मन की कोमलता का गहरा ज्वार दिग्दर्शित किया है, लेकिन घटनाओं के घुमावदार रास्तों से गुजरती हुई यह कथा न इन प्रेमिल प्रसंगों पर टिकी है और न उन उत्तेजक वर्णनों पर ही आधृत है, जिनमें शिवसागर मिश्र ने पर्याप्त रुचि ली है. बलात्कार और सौंदर्य पिपासा के प्रसंगों में उपन्यासकार ने एक नये अंदाज में वर्णन का वैभव दिखलाया है. ऐसे प्रसंगों की चटुल रंगाभेजी में 'जनमेजय बचो' का रचनात्मक संकल्प नहीं छिपा है; और न सुगिया को सुधा के रूप में रेतिया कोठी की बहू बना देना ही उपन्यास का चरमोत्कर्ष है. उपन्यास की आत्मा उन बहुत सारे अनुत्तरित प्रश्नों में निहित है, जो घटनाओं की पारस्परिक टकराहट और समाज के उपेक्षित पात्रों के प्रति उड़ेली गयी सहृदयता के कारण आविर्भूत हुई है. कहीं उपन्यासकार ने परिवेश की प्रतिक्रियात्मक अनुभूतियों के बहाने अपने पात्रों के अंतर्लोक की यात्रा की है और कहीं इस यात्रा को दुर्गम बनाने वाले कांटों और रोड़ों का विस्तृत उल्लेख किया है. उपन्यास के अंत में शिवसागर मिश्र का मूल्यचिंतक स्वरूप प्रकट हुआ है—

हर सिंहासन के नीचे तक्षक लिपटा है. **ऋषियों की रिश्तेदारी सर्प से है. इसका इलाज संघर्ष या आंदोलन नहीं, इलाज है जनक्रांति, मान्यताओं और मूल्यों की क्रांति. जब तक सामंती परंपरा का इंद्र सिंहासन पर बैठा रहेगा, तब तक तक्षक का वंश फलता-फूलता रहेगा और 34 करोड़ नहीं, इससे भी अधिक संख्या में भारतवासी भूख, बेकारी और बीमारी के दंश से मरते रहेंगे. रोकना होगा आस्तीक को, जो ऋषिपुत्र होकर भी यज्ञ में बाधा डाल देता है. जनमेजय की आंखों में उंगलियां डालकर उसे समझाना होगा कि यदि पितृकुल का ऋण चुकाना चाहते हो तो सर्प-सत्र चलने दो और जब तक 'तक्षकाय स्वाहा' न हो जाये, तब तक 'इंद्राय स्वाहा' कहकर आहुति डालते रहो!**

भ्रष्टाचार की राजनीति

समूचा उपन्यास इसी रूपक का पल्लवन है. प्रारंभ से अंत तक जनमेजयों को तक्षकों और इंद्रों से बचने के लिए अपनी राह बनाने का निर्देश कथाकार ने दिया है. सत्ता की राजनीति और भ्रष्टाचार की रणनीति को

मूर्त करने के लिए उसने पौराणिक मिथ का सप्रयोजन उपयोग किया है.

आनंद को प्रारंभ से अंत तक अपनी मानवतावादी दृष्टि के लिए लज्जित अंकित किया गया है. असंतोष और विवशता का यह आचरण वर्तमान परिवेश में आनंदों की लाचारगी का लेखा-जोखा है. आनंद और सुधा का अंतर्जातीय विवाह आदर्शवाद का उदात्त शिखर है तो जनकिया के साथ थाने में हुआ बलात्कार यथार्थ की तस्वीर है. मूल्य संदर्भों की तलाश करनेवाले कथाकार ने आनंद और सुधा के आदर्श विवाह से उपन्यास की समाप्ति नहीं की है, अपितु उपन्यास का अंत होता है लक्ष्मीकांत की आत्महत्या से. लेखक ने लक्ष्मीकांत की आत्महत्या, आनन्द के तबादले, कन्हैया के डाकू बनने, जनकिया की तबाही के साहस के लिए उस परिवेश को प्रश्नों में खड़ा कर दिया है, जिसमें प्रश्नों का समाधान नहीं खोजा जा रहा है. 'जनमेजय बचो' आद्यंत एक क्रांतिकारी मूल्यमुखी रचना है, जिसमें पीढ़ियों के अंतराल, वर्जनाओं के बंधन, व्यवस्था की मर्यादा और मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषित होते जाने की नियति की अभिव्यक्ति कथाकार ने की है. यह उपन्यास सामाजिक बदलाव में लेखक की भूमिका को रेखांकित करनेवाली सर्जना का रचनात्मक प्रस्थान है, कथाफलक की विसंगमूलक संरचना से निखरी हुई और परिवेश की वास्तविकताओं के दर्पण के रूप में उभरती हुई रचनाधर्मिता का सजग आख्यान . ▣

वह जो अभी जन्म लेगा !

'जनमेजय बचो' में जहां शिवसागर मिश्र मूल्य चिंतक की भूमिका में दिखाई पड़ते हैं, वहां 'अजन्मा वह' में चरित्रकल्पक के रूप में. इस उपन्यास का संपूर्ण रचना-विधान जिस विशिष्ट पात्र की चरित्रभित्ति पर निर्मित है, वह सिद्धार्थ विज्ञान और अध्यात्म का सेतुबंध है, आचार और विचार का तीर्थस्थल है, कथनी और करनी का संगम है, सेवा और त्याग का साकार उद्गम है. समूचे उपन्यास को सिद्धार्थ की धीरोदात्त चरित्र-सृष्टि का वाहक बनाने के क्रम में शिवसागर मिश्र ने 'अजन्मा वह' को कल्पना और यथार्थ, मोह और त्याग, सिद्धांत और व्यवहार की अनेकानेक धाराओं से सींचा है. यह उपन्यास बिहार के पूर्वी कोशी अंचल से हिमालय प्रदेश की शिवालिक घाटियों तक विस्तृत कथाफलक में उपलब्ध पात्रों के विशाल मेले द्वारा सामाजिक और दार्शनिक बोध की घाटियों से गुजरने का अवसर प्रदान करता है.

काल्पनिक नायक की भूमिका

सिद्धार्थ के रूप में शिवसागर मिश्र ने एक असामान्य एवं अप्रितम क्षमता-संपन्न पुरुष की परिकल्पना की है, जो अपने आचरण के दर्पण में 'अजन्मा वह' की आयोजना को साकार करता है. उसके व्यक्तित्व में चिंतन और समाजशास्त्रीय दृष्टि का विलक्षण समन्वय है. उपन्यास के प्रारंभ से अंत तक एक ऐसे 'सुपरमैन' के रूप में उसकी मूर्ति उभरी है कि उसकी विराटमूर्ति के सामने आद्यंत अविश्वसनीय आवरण पड़ा रहता है. **भूमिका में शिवसागर मिश्र ने स्वीकार भी किया है कि उनका नितांत काल्पनिक कथानायक सिद्धार्थ, संभवतः पाठक को विश्वसनीय नहीं लगे--मैं नहीं जानता कि सिद्धार्थ किस हद तक यथार्थ की भूमि पर खड़ा है और किस हद तक वह एक आदर्श है. मैं यह भी नहीं कह सकता कि वह किसी पाठक को झकझोर पायेगा अथवा नहीं.**

उपन्यास में आये विभिन्न पात्रों ने भी सिद्धार्थ को अविश्वसनीय दिव्य-पुरुष के रूप में ग्रहण किया है. समूचे उपन्यास में सिद्धार्थ के बारे में अभिव्यक्त उद्गारों में उसकी देवोपम छवि उभरी है. उषा को लगा--**सिद्धार्थ इस धरती का प्राणी नहीं है. इस घोर उपयोगितावादी युग में ऐसे परमार्थी, संवेदनशील और सशक्त किशोर का जन्म महज कल्पना की चीज है.**

बिल्टू दुसाध को लगा, जैसे भगवान धरती पर उतर आये हैं और तेजपाल को वह आधुनिक युग का आदर्श कर्मयोगी पुरुष प्रतीत होता है. केशव को वह आदमी नहीं, एक सिद्धांत नजर आता है और सुक्खो ने उसे राम, कृष्ण, हनुमान और अर्जुन के समानांतर पाया है. हिमाचल प्रदेश तराई में रहने वाले कुछ लोगों के लिए एक आदर्श सिद्धपुरुष है तो किसी ने देवता मानकर मन में बैठा लिया अलौकिक, असामान्य, समाधिस्थ स्थितप्रज्ञ व्यक्ति के रूप में विख्यात सिद्धा ऐसा होगा, जैसा कभी कोई न हुआ न भविष्य में होगा.

राम-कृष्ण बनाम सिद्धार्थ

श्यामा के रोम-रोम में अलौकि अविस्मरणीय स्पंदन की तरह व्या सिद्धार्थ की महनीयता को उपन्यास ने अविश्वसनीयता के स्तर तक ला दि है. उपन्यास के अंत में बाढ़ से घिरी रेल पर औरतें आरती सजाकर ले आयीं सिद्धार्थ की आरती उतारने लगीं, जय-जयकार करने लगे. देवपुरुष की सिद्धार्थ उपन्यास के प्रारंभ से अंत अपने परदुखकातर व्यक्तित्व का प्र छोड़ता है. उसकी पूरी जीवनयात्रा मसीहा के रूप में विकसित हुई है. जहां पीड़न-उत्पीड़न है, अनाचार-अत्याचार रोग-शोक है, सतीत्व हरण, अधिकार है, वहां सिद्धार्थ अवतार की तरह त्राता मुद्रा में उपस्थित हो जाता है. राम कृष्ण के चरित्र पर भी प्रश्नचिह्न लगते सिद्धार्थ के चरित्र में कोई दाग नहीं जा सकता है. सिद्धार्थ का चरित्र चंदन गंध से सुवासित स्फटिक का विशाल वि है. यह विग्रह विस्मयकारी और नमस्य बन गया है, लेकिन ग्राह्य और विश्वस नहीं बन सका है.

अनेक संकटों, विचलन की घड़ियों उत्तेजना भरे प्रसंगों में भी सिद्धार्थ ने संयम और चरित्रबल का परिचय दि पर सिद्धार्थ का एक वाक्य शेष छवि से भिन्न स्वाद की प्र देता है—**उनसे कहो, अपने हाथ-पांव जायें. एक-दूसरे को नोचकर खा यही तो कर रहे हैं लोग.** यह प्रमोद को महसूस होता है, जैसे दूसरा ही सिद्धार्थ उसके सामने से जा रहा हो. श्यामा को देखते ही की मनःस्थिति सामान्य हो गयी और तन-मन में वही सारे शीतल शुद्ध बहने लगे, जिनके प्रवाह ने 'अजन्मा को उदात्त चारित्रिक-बोध प्रदान कि

सिद्धार्थ के पास स्नेह और क्षमा, त्याग र सेवा का अक्षय भंडार है. सिद्धार्थ अपनी विमातृज बहन रेणुका को अग्रज स्नेह दिया है और सौतेले भाई गोपाल उसकी समस्त बुरी आदतों के बावजूद ा मकान सौंप दिया है. अपनी विमाता ना देवी को जितनी सहजता के साथ ह क्षमा करता है, उतनी ही सहृदयता साथ उसने अघोरी साधु भोला और नेता माफी दी है. उसका उद्देश्य है—देश के ने-कोने में घूमकर जरूरतमंदों की सेवा ते हुए ऐसे केंद्रों की स्थापना करना, हां वर्तमान व्यवस्था के विरुद्ध लड़ने वाले द्धा तैयार किये जा सकें. पटना के अपने कान के आसपास रहने वाले बच्चों की ठशाला के प्रारंभ से ही किशोर सिद्धार्थ सांस्कृतिक-बोध और नैतिक उदात्तता मंत्र फूकना प्रारंभ किया.

किस चीज की आजादी है?

ने कथानायक के चरित्र-विकास को वसागर मिश्र ने सामाजिक यथार्थ की ठभूमि में औदात्य प्रदान किया है. अनेक लों पर राजनीतिक व्यवस्था, सामाजिक समता आदि पर सिद्धार्थ के बेबाक चार क्रांति की मशाल प्रज्वलित करते हैं. मींदार रामानंद के ज्येष्ठ पुत्र और विपुल त्ति के स्वामी सिद्धार्थ की चिंता आजादी अवमूल्यन से जुड़ी है—**बेशक, इस देश आजादी है. गरीबों की बहू-बेटियों के थ बलात्कार करने की आजादी, बंधुआ दूर रखने की आजादी और पचास सदी आबादी को भूखों मारने की आजादी!** एक अन्य स्थल पर भी सिद्धार्थ ने जादी के इस खोखलेपन को रेखांकित या है—**बीस साल की आजादी इन रीबों के लिए पीने के पानी की व्यवस्था नहीं कर सकी थी.** 'अजन्मा वह' अघोरी साधु भोला में शिवसागर थ ने अपने ही उपन्यास 'राजतिलक' अघोरी वक्रघोष और नेता में पुलिकसेन प्रतिबिंबित किया है. इन दोनों के बहाने द्धार्थ ने राजनीतिक सांस्कृतिक परिवेश विरूपताओं पर तीखे प्रहार किये हैं. न को अधिक गरीब और धनी को धिक धनी बनाने की व्यवस्था की राज- तिक साजिश पर सिद्धार्थ ने नेताजी को ना प्रवचन पिलाया है—**आप लोग केवल सत्ता और प्रभुता के लिए चुनाव लड़ते आये हैं. सत्ता और प्रभुता की इस लड़ाई में हर प्रदेश में बीस-पच्चीस और केंद्र में चौदह-पंद्रह व्यक्ति ही हमेशा जीतते रहे हैं. वे जिस किसी भी पार्टी के हों, घूम-फिरकर सत्ता और प्रभुता उन्हीं के चरणों में बिछ जाती है. मानवीय मूल्यों की स्थापना की चिंता किसे है? आप लोग जो कुछ करते हैं, उससे मानव-कल्याण हो ही नहीं सकता. आप तो अकल्याण ही करते आ रहे हैं. लोगों को बांटते रहे हैं. . .कभी धर्म के नाम पर, कभी भाषा के नाम पर और कभी पिछड़ी जाति और ऊंची जाति के खोखले नारों के नाम पर.**

जाति का जहर !

जहां कहीं शोषण दिखता है, सिद्धार्थ अपने अपार शौर्य, अलौकिक क्षमता और असीम शक्ति के सहारे उसका सामना करता है. बचपन से ही सिद्धार्थ में परंपरा-भंजन प्रवृत्ति दिखलाई पड़ती है. जिस सामंती व्यवस्था की हवेली असवर्णों और शोषितों के रक्तस्वेद पर खड़ी होती है, उसी हवेली का वारिस सिद्धार्थ, हवेली की मानसिकता के विरुद्ध विद्रोह करता है. जमींदार रामानंद का बेटा शूद्र कैलास के घर जाकर अपनत्व बढ़ाता है, अछूतों के हाथ का खाना खाता है, मेथुरिया दुसाध पर हुए अत्याचार का विरोध करता है और कैलास की बहन शकुंतला पर बुरी नजर डालने वाले अपने ही लोगों का विरोध करता है. उसकी सहानुभूति प्रत्येक मनुष्य के साथ है. उसकी दृष्टि में न कोई ऊंची जाति का है और न कोई निम्न वर्ण का. वर्ण व्यवस्था के बारे में उसकी स्पष्ट मान्यता है—**कभी-कभी मेरी भी इच्छा होती है कि रात के अंधेरे में घूम-घूमकर जाति का नाम रखने वालों को मौत के घाट उतार दूं. इन तमाम अपराधों और पाप की जड़ में मुझे जाति का जहर ही नजर आता है.**

'अजन्मा वह' को शिवसागर मिश्र ने सिद्धार्थ की चरित्र-सृष्टि का माध्यम बनाया है. अपने आदर्श रूप में सिद्धार्थ वास्तविक परिवेश में अब तक प्रकट नहीं हो पाया है, लेकिन उपन्यासकार ने भारतीय और पाश्चात्य जीवन-बोध के समवाय से एक ऐसे विरल पुरुष की रचना की है, जिसके पैर भारत की धरती पर हैं और जिसकी आंखों में आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की ज्योति जल रही है. इस चरित्र-कल्पना के क्रम में कथाकार ने एक ऐसे घटनाबहुल कथानक की सृष्टि की है, जिसमें पाठक को बांध रखने की क्षमता है. बड़ी चतुराई के साथ लेखक ने दार्शनिक चिंतन को सामाजिक परिष्कार और यथार्थबोध के साथ गूंथा है. कथानक का प्रारंभ प्रत्यावलोकन शैली का उदाहरण है और कथा विकास की वक्रिमवीथियों की यात्रा करती है.

'अजन्मा वह' की चर्चा हिंदी उपन्यास के इतिहास में इस कारण होती रहेगी कि चरित्रकल्पक कथाकार ने इसमें खुले दिल-दिमाग से पूरब-पश्चिम को देखने का महत्वपूर्ण कार्य किया है. ☐

चर्चित पुस्तकें

▣ जनमेय बचो

▣ अजन्मा वह

● शिवसागर मिश्र

प्रभात प्रकाशन, नयी सड़क, दिल्ली-6, मूल्य : क्रमशः 20 रुपये व 30 रुपये.

▣ अभिव्यक्ति के दो छोर

● प्रेम जनमेजय

'चीख के आर-पार' (साहित्य सहकार, कृष्णनगर, दिल्ली-51) ज्योत्स्ना मिलन का पहला कहानी संग्रह है. अभिव्यक्ति के स्तर पर जहां एक ओर 'धड़ बिना चेहरे का', 'चीख के आर-पार' जैसी अस्पष्ट बोझिल, अति सूक्ष्म, मानसिक असंतुलन की कहानियां कथा-संग्रह में हैं, वहीं 'घर' 'अंतराल' 'स्वदेशी' 'सुख' जैसी कहानियां भी हैं, जो अपनी सहज मानसिकता के कारण मन को छू लेती हैं. इनके पात्र संतुलित जीवन जीते हैं, वह कुंठाग्रस्त नहीं अपितु अपनी अभिव्यक्ति को सही रूप में संप्रेषित करते हैं, जबकि पहली कहानियों के पात्र प्रतीकात्मक बोझिलता के कारण संप्रेषित नहीं हो पाते हैं. ज्योत्स्ना मिलन अपने आसपास के परिवेश से जुड़ने को लालायित दृष्टिगत होती हैं. उनमें परिवेशगत समस्याओं को पकड़कर उन्हें अभिव्यक्त करने की क्षमता है. आशा है कि वे हमें 'घर', 'बैठक', 'अंतराल', 'लीली' जैसी कहानियां ही देंगी. ☐

अगला अंक

नये साल में प्यार की किरणें
आपके जीवन को जगमगायें! ...
अनंत शुभकामनाओं सहित ...
आपके लिए सादर भेंट—

प्रेमकथा विशेषांक

प्रेम के उस इंद्रधनुषी जज्बे के नाम जिसके बिना संसार की उत्पत्ति ही असंभव थी. . .!

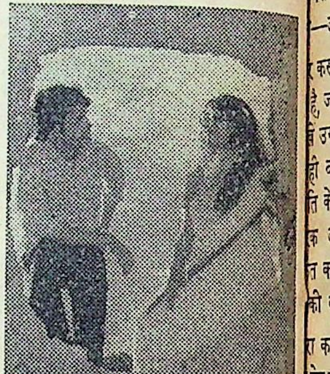

तुझको मालूम है क्यों उम्र गवां दी हमने? उम्र और जज्बे को जिंदगी की मासूम धड़कन से जोड़ती जीवंत कहानियां—

● पत्नी की उपेक्षा करके जब आदमी बाजारू होने लगता है तो दाम्पत्य प्रेम पर क्या अनहोनी गुजरती है? पत्नी और वेश्या तथा वेश्या और पत्नी की सीमाएं निर्धारित करके आधुनिक जीवन पर कटाक्ष करती, इंसान के मन में बैठकर लिखने वाले कहानीकार **मोपासां** की नायाब कहानी—**नया अनुबंध**

● "तुम क्यों हंसे?" उसने बाजार की ओर मुड़कर कहा... "यूं ही, लेकिन मैं इधर से नहीं जाऊंगा. मैंने लोगों के पैसे देने हैं. . ." "फिर क्या हुआ? हम कायर नहीं, उन्हें फेस करेंगे!"... प्रेम के मध्यमवर्गीय फासलों को नये आयाम देती **बीर राजा** की अनुभूतिपरक कहानी — **बीच का फासला.**

● मैं चाहता था कि वह सिर्फ मुझसे और मुझसे ही जुड़ी रहे किंतु वह थी कि बहुतों से संबंध बनाये रखना चाहती थी. . .और उसका कहना था कि मेरे और उसके संबंध में जो गरिमा है वह किसी अन्य में नहीं. वह प्यार को किसी एक खूंटे से बांधे नहीं रखना चाहती!—संबंधों की आधुनिकता और परिवेशगत संस्कारों को उकेरती **गोविंद मिश्र** की मानसिक द्वंद्व की कहानी—**अलग-अलग समय.**

● उसे पढ़ना था, परीक्षा देनी थी. जिस घर में वह रहता था उस परि हमउम्र लड़की उसे पढ़ने न देती शरारतें ही करती रहती. उसने घर जाना चाहा किंतु उसे हॉस्टल रूपी खाने में भी नहीं जाने दिया गया. उसने एक ऐसा इलाज ढूंढा कि लड़की शरमाने लगी. . .सहयोग करने **शफीकुर्रहमान** की लोटपोट मार्मिक कहानी—**ज्यादती.**

◘ ये न थी हमारी किस्मत !

जवाहर सिंह!—भरतपुर के महाराजा का होनहार राजकुमार!. . .और ग बेगम—फर्रुखाबाद के अहमद खां बंगश के दोस्ती की हूर बेटी, जिसके कहने जवाहर सिंह उसके प्रेम में पागल हुआ, उसका अपहरण करने जा पहुंचा! गन्ना खुश थी, मगर होनी को कुछ और ही मंजूर था—पिता और पुत्र में टक्कर सलीम-अनारकली से भी कहीं रोमांचक एक अनजानी इतिहास कथा —**बाला दुबे** की कलम से.

◘ प्रेम कहानियों का निर्वासन किसके कारण ?

अब भी दिलकश है तेरा हुस्न मगर क्या कीजे, और भी गम हैं जमाने में मुहब्बत के सिवा!. . .कथा-साहित्य में प्रेम के निरंतर गायब होते जाने की वजह, एक विचारोत्तेजक परिचर्चा में पूछ रहे हैं **शैवाल** और जवाब दे रहे हैं—आबिद सुरती, मधुकर सिंह, अनिल ठाकुर, अरुण रंजन, हृषीकेश सुलभ और राबिन शा पुष्प.

● दो सपने—एक लड़की का, ए का!. . .नयी उम्र का पहला प्रेम दुनिया से पहले साक्षात्कार का बयान. . .कि जमाना आखिर बेदर्द जा रहा है! एक नया नाम— **अरोड़ा** की कहानी—**दुःस्वप्न.**

आंखें मंटो ने देखी थीं—वे आंखें मिलकर चार हुई थीं, विश्वासघात ण फिर दो ही रह गयीं. . .और दो ने पर बरसों बाद वे उन पुरानी दो को ढूंढने बंबई से लाहौर जा पहुंचीं! त और दूरी में नारी मनोविज्ञान की मिसाल—सरताज कथाकार **मंटो** की **—ओ बेवफा!**

कसाई की जिंदगी में एक दिन ऐसा है जब दूकान पर लटके हुए गोश्त उग आती हैं और पूछती हैं—तुम ही बना सकते हो, जो हम थे . . . ? ति के प्रेम तथा यौन संबंधों के बाह्य, क और आध्यात्मिक संसार को त करता टकराव—युवा कथाकार की कहानी—**ज्वार के उस तरफ.**

र कल्पना कीजिए कि जिस लड़की प्रेम करते हैं, उस तक पहुंचने के लिए ड़की की मम्मी से प्रेम करने लगें. . . ड़की को यह पता लग जाये कि आप. . एक लड़की के प्रेम, घृणा और री की दास्तान—**दयानंद अनंत** नी—**माध्यम**

और अगला ही अंक . . .

प्रेमकथा विशेषांक—दो

"मैं इस दुखद एहसास से कभी न उबर सका कि मैं किसी के प्यार के काबिल नहीं हूं. और न ही उस एहसास से कि जब भी किसी प्यार का इजहार होता है, मैं संदेहशील हो जाता हूं और खरे को भी खोटा जैसा समझने लगता हूं. इसमें मेरा ही कुछ खोया है, क्योंकि मैं नहीं जानता कि असली प्यार क्या होता है. . .?"—प्रेम से लेकर पत्रकारिता और राजनीति तक की यात्रा के बारे में **खुशवंत सिंह** से बातचीत कर रहे हैं—**जनार्दन ठाकुर और से. रा. यात्री**

▣ अगर कोई हमारे पत्र पढ़े तो क्या हो?

अब्राहम लिंकन, फ्रायड, बालज़क, नजरुल इस्लाम, काफ्का, दोस्तोयेव्स्की, ज्यार्ज साँद, नेपोलियन, खलील जिब्रान द्वारा लिखे गये दिल के संसार को खोलते दुर्लभ और प्रेरक प्रेमपत्र

▣ ओ. हेनरी, तुर्गनेव, एमेलीन स्तानेफ, पूरबी बैनर्जी, सुदर्शना द्विवेदी, लक्ष्मीकांत वैष्णव, विजया राज्याध्यक्ष, बलराम की रचनाओं एवं स्थायी स्तंभों से भरपूर

- **विस्तृत जानकारी अगले अंक में**

आज तक तेरे खतों से तेरी खुशबू न गयी!

महात्मा गांधी, प्रेमचंद, स्वामी रामतीर्थ, लेनिन, नाजिम हिकमत, नेपोलियन, दाग़, ज्यॉर्ज साँद के आश्चर्यजनक एवं अनूठे प्रेम पत्र.

▣ यात्रा एक वेश्यानगर की

'मन पत्थर' पर अंकित सीता चरण. . .जहां लड़कियां मन्नत मांगती हैं! . . .कवि नयनसुख की कब्र, जिसे देखकर उस लड़की ने कहा था, "अगर यह किसी कहानीकार की कब्र होती तो मैं रोज इस पर फूल चढ़ाती!" धुंधली होती जिंदगी और गमज़दा आवाजों का कथा-रिपोर्ताज—**राबिन शा पुष्प** के मार्मिक संस्मरण.

▣ तुमको हमारी उमर लग जाये

पुराणों में दहकते प्रसंगों के संदर्भ में भारतीय आख्यानों का अद्वितीय प्रेमोत्सर्ग जिस पर किसी रचनाकार ने कलम चलाने की तकलीफ गवारा नहीं की और अब इसे प्रस्तुत कर रहे हैं—**उमाकांत मालवीय**

, सेक्स, आत्मा और शरीर के एक लेखक के लिए क्या त रखते हैं?—

लेखक हेनरी मिलर से बातचीत

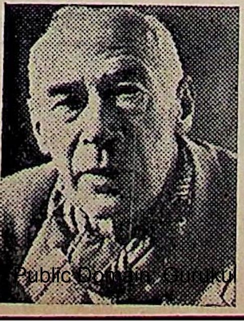

सारिका

१ जनवरी, १९८१

बेहतरीन प्रेमकथाओं का अनूठा संकलन

दोनों अंकों की प्रतियां अभी सुरक्षित करवा लीजिए

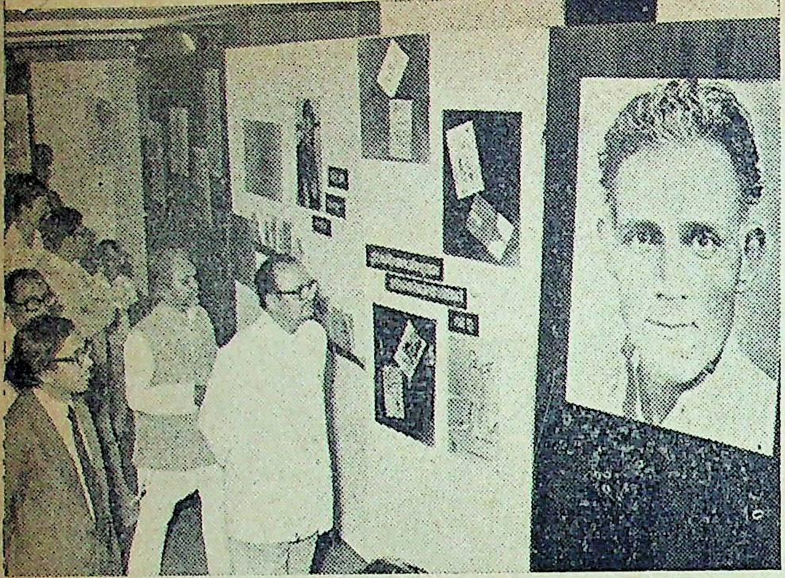

मुक्तिबोध के चित्र और कृतियों का अवलोकन करते हुए म.प्र. के मुख्यमंत्री अर्जुनसिंह, बालकवि बैरागी व अशोक वाजपेयी. छाया : प्रकाश हतवलने

मुक्तिबोध प्रसंग

सतह से उठता आदमी

●मृणाल पांडे

म. प्र. कला परिषद द्वारा आयोजित 'मुक्तिबोध प्रसंग' का उद्घाटन गत 13 नवंबर (जो स्वर्गीय कवि की जन्मतिथि है) को मुख्यमंत्री श्री अर्जुनसिंह ने राजकमल प्रकाशन द्वारा प्रकाशित तथा श्री नेमिचंदजैन द्वारा संपादित 'मुक्तिबोध ग्रंथावली' की प्रतियां कवि-पत्नी श्रीमती शांता बाई को भेंट कर किया. इसी अवसर पर 'पूर्वग्रह' के स्व. मुक्तिबोध पर केंद्रित अंक का विमोचन भी हुआ. इसके बाद एक सिनेमाघर में फिल्म 'सतह से उठता आदमी' दिखायी गयी, जो मुक्तिबोध की गद्य तथा पद्य रचनाओं पर आधारित है और इसकी पटकथा व निर्देशन मणि कौल के हैं. फिल्म, जिसकी काफी प्रतीक्षा की जा रही थी, कुल मिलाकर निराश करती है. मुक्तिबोध की रचनाओं की घुटन और संत्रास के चित्रों के बावजूद उनकी वह बीहड़ ऊर्जा, उनका धधकता आत्मविश्वास और मनुष्य की संघर्षशीलता तथा जिजीविषा के प्रति उनकी गहन श्रद्धा को फिल्म सक्षमता से व्यक्त नहीं कर पायी. कथा के तीन नायक, मुक्तिबोध की रचनाओं से ऐसे चुने गये हैं, जो कवि के रचनाधर्मी व्यक्तित्व के तीन अंगों का प्रतिनिधित्व करते कहे गये हैं. अंधेरे चक्करदार और उजाड़ भुतहा बंगलों, फटेहाल निम्न-मध्यमवर्गीय गलियों की गुंजलकों से गुजरती हुई पटकथा, सही पृष्ठभूमि तथा फोटोग्राफी काफी संवेदनशील होने के बावजूद निष्प्राण, निस्तेज और दिशाहीन ही रह जाती है. पात्रों का भावहीन उच्चारण तथा अभिनय कहीं भी मानवीयता की ऊष्मा की लौ नहीं देता. सिर्फ फिल्म के लगभग अंत में जब कवि की डायरी के कुछ पन्ने टाइपांकित रूप में पूरे पर्दे पर आते हैं, लगभग हर जमुहाते दर्शक ने अचानक मानों मुक्तिबोध का तेज और उनकी प्रतिभा की तड़प को एक साथ महसूस किया. शब्दों, विशेषकर कविता के अपने कुछ अनिवार्य आयाम हैं, जो ध्वनि तक फैलते हैं, पर दृश्य रूपाकारों में बदलकर (भले ही वे रूपाकार कितने ही प्रतीकात्मक हों) उनकी मूल ऊर्जा की सघनता नष्ट ही होती है, बढ़ती नहीं. फिल्म देखकर लगता है कि शब्दों का दृश्याकार बनना, ऐसे कि शब्द की शब्दवत्ता अखंड रहे, असंभव है. अच्छा होता, यदि रचनात्मक साहित्य के पीछे जाने की बजाय फिल्म मुक्तिबोध के व्यक्तित्व के उस भाग पर केंद्रित होती, जो दृश्य रूपाकारों से व्यक्त करना संभव होता.

14, 15 तथा 16 की शाम हुई कविता पाठ की गोष्ठियों, जिनमें हिंदी की लगभग चार पीढ़ियों के कवियों सर्वश्री नेमिचंद्र जैन, श्री हरिनारायण व्यास, विनोद कुमार शुक्ल, प्रभातकुमार त्रिपाठी, मलयज, विष्णु खरे, रघुवीर सहाय,

हलच

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, चंद्रकांत
लीलाधर जगूड़ी, विष्णु नागर,
रावत, सोमदत्त तथा अशोक
ने भाग लिया, जिन्होंने फिर
दृढ़ता से सिद्ध की कि रचनात्मक
के शब्दों का एकमात्र सार्थक तथा
आयाम मानवीय वाणी की ध्वनि
निहित है.

इस सबके साथ-साथ इसी
अंतर्गत सुख्यात चितेरे अकबर
के सियाही व ब्रुश के अंकनों
प्रदर्शनी का उद्घाटन 14 तारीख
को हुआ. प्रदर्शनी में कुल 43
सभी चित्र चेहरों की शबीहें हैं—
विषय पर इतने सारे चित्रों में
(तकनीक एक ही होते हुए भी)
अंतर होगा ही. श्री मुक्तिबोध के
शबीह, जो 'पूर्वग्रह' के मुखपृष्ठ व
के पोस्टरों व अन्य प्रपत्रों में
गयी थी, आकर्षक लगती थी, पर
इन सभी चेहरों के नेत्रों के
निष्प्राण मुखौटे की भावशून्यता
एकरसता का ही असर पैदा करते

14 तारीख को ही
गोष्ठी में मुक्तिबोध के गद्य पर श्री
वर्मा ने एक बहुत सुचिंतित और
आलेख पढ़ा—दूसरा आलेख
की कविता पर था, श्री कुंवर
द्वारा, जो किन्हीं कारणों से
सके. यह लेख भी एक सुलझा
बहुत संवेदनशील वक्तव्य था.
बाद की परिचर्चा और प्रश्नोत्तर
त्तेजक थे. कुल मिलाकर यह
हिंदी में उभरती एक स्वस्थ व
आलोचनात्मक दृष्टि के परिचा

इस सब के साथ ही कलापरि
स्व. मुक्तिबोध के पत्रों, डायरि
लिपियों आदि की एक छोटी, पर
जित प्रदर्शनी भी रखी गयी
निस्संदेह मुक्तिबोध के पाठकों
एक सुखद अनुभव थी.

ीविजन पर

टपाथ के फ़रिश्ते

ई का फुटपाथ है अपने आप में एक दुनिया, एक समाज, एक कुटुंब! यही या है, जो रोजी-रोटी की तलाश में हुए हजारों-लाखों लोगों को घर की दिये हुए है. भले ही यह छत, वह छत जिससे बड़ी तथा पक्की छत कोई नहीं, खुला हुआ निस्सीम आकाश! स छत के तले पड़े अपने-अपने संघर्षों जूझते हुए जीने और जीते चले जाने हौसले भरते रहते हैं. . .इस दुनिया. . . इस दुनिया में बसे परिवारों में मी जीता है—आदमियत भी जीती जिसे महानगर का रंग-रोगन कतई 'कलर' में नहीं समेट पाया है. इन वारों में बसे हुए लोग एक दूसरे के भी नहीं हैं, फिर भी, सब कुछ हैं.

माघी एक नटिन है. उसका पति माघी शीलरक्षा करते हुए एक गुंडे की चाकू शिकार हुआ. माघी अपने दोनों छोटे ों के साथ फुटपाथ पर रहती है. जगह-ह तमाशा दिखाती है, 'बक्शीश' पाती ौर गुजारा करती है. फुटपाथ पर बसे परिवार का एक सदस्य है दादा बास्को! को चोरी करता है, पर अब उसका मन इस पेशे के प्रति हिकारत और पछ-से पूर्ण है. उसे घर 'बनाना' है और निक किन्हीं क्षणों में—वह माघी को मन में समेट लेता है. वह ईसाई है, र धर्म उसके लिए सरहद नहीं है. . . परिवार का सदस्य बनता है पैंट-टर! शरीर का व्यापार करने वाली ना! भीख मांगकर गुजारा करने वाले बाबा और जेबकतरा तात्या. जब कभी को के हाथ में कुछ नहीं होता या जमना क भी 'गि[illegible]क' नहीं फंसता, माघी को में नाममात्र की बक्शीश मिलती है, बाबा अपने भीख के कटोरे को खन-ता है. रेजगारी गिनता है. एलान करता मेरे पास सब के लिए एक चाय और के पैसे हैं." और उनका दिन कट जाता इसी परिवार में वे एक दूसरे के लिए बुनते हैं. . .सपनों के पूरे होने की दुआ ते हैं और सपनों से टूट-टूटकर एक की दुखती रग को सहलाते हुए आपस में हिम्मत बांटते हैं. . .इस दुनिया में. . . और विशेषत: इस परिवार में अनायास शामिल हुआ व्यक्ति उनका कुटुंबी हो जाता है, वे उसके दुख-सुख के भागी बन जाते हैं.

'फुटपाथ के फरिश्ते' में याकूब सईद, अजय मेहरा, वृजभूषण साहनी तथा सविता बजाज. छाया : विक्रांत माथुर

यह कथा वस्तु है स्वर्गीय कृश्नचंदर के बहुचर्चित उपन्यास 'फुटपाथ के फरिश्ते' की. बंबई दूरदर्शन द्वारा निर्मित इस फिल्म के निर्देशक हैं बी. के. गिरि तथा पटकथा तैयार की है कृष्णकिशोर श्रीवास्तव ने.

'फुटपाथ के फरिश्ते' को मैं बंबई दूरदर्शन द्वारा अब तक निर्मित की गयी फिल्मों के मुकाबले श्रेष्ठ फिल्म मानती हूं. युवा निर्देशक गिरि कृश्नचंदर के उपन्यास में निहित मानवीय संवेदना को बड़ी गहराई से 'सेलूलाइड' पर उतारने में सफल हुए हैं. इसकी एक खूबी यह भी है कि इस फिल्म का हर एक पात्र अपनी संवेदना और संपूर्णता में उजागर हुआ है और अभिनय में बाजी मार ले गयी हैं सविता बजाज! सविता ने माघी के तेज तर्रार चरित्र की तह में डुबकी लगा संवेदनशील नारी के अंतर्द्वंद्व को बड़ी गहराई से जिया है. पैंट मास्टर की भूमिका में विशिष्टता लिये आये हैं वृजभूषण साहनी! जमना के रूप में इला अरुण भी जमकर आयी हैं और छिछोरे हावभाव से वेश्यावृत्ति करने वाली लड़की के चरित्र को हूबहू प्रस्तुत करने में सफल हुई हैं. तात्या की भूमिका में अजय मेहरा सहज हैं. □

● चित्रा मुद्गल

पत्र-पत्रिकाएं

महिला कथाकारों का संसार

कथा-साहित्य में लेखिकाओं का उल्लेखनीय योगदान रहा है. 'पुनश्च' का यह विशेषांक इसी योगदान की एक प्रस्तुति है. 'विचार खंड' में इस्मत चुगताई द्वारा उठाया गया भाषा का मसला, विमला पाटिल द्वारा नारी-अधिकारों के लिए उठायी गयी वाजिब आवाज, ममता कालिया द्वारा की गयी मानसिक व वैचारिक परिवर्तन की मांग और इन सबसे अलग मन्नू भंडारी द्वारा 'बंटी की रचना-प्रक्रिया' पर लिखित आलेख उल्लेखनीय सामग्री प्रस्तुत करते हैं.

आदमी और उसकी समझ के मुताबिक पैदा होने वाली तमाम आशाओं-निराशाओं का खुलासा करने वाली कहानी—'मैं चुप रहा' (इस्मत चुगताई), निम्न-वर्गीय बेबसी में जीते ईमानदार लोगों की दुनिया से साक्षात कराती कहानी—'केंचुल' (चित्रा मुद्गल) तथा मुक्ति की तलाश में संलग्न समूचा माहौल और तज्जन्य-मुक्तिकामी छटपटाहट प्रस्तुत करती कहानी—'तलाश' (नासिरा शर्मा) के अतिरिक्त अमानवीय स्थितियों की सहज प्रस्तुति के प्रयास में 'मंजिल पर' (प्रतिमा वर्मा) भी प्रभावपूर्ण रचनाएं हैं, जबकि शेष रचनाएं वस्तु और संप्रेषण की दृष्टि से इतनी प्रभावशाली नहीं हो सकीं. □

● महेश दर्पण

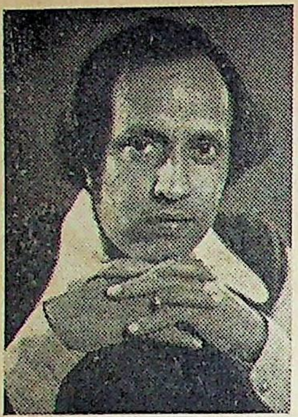

● छाया : नवल जायसवाल

"हमारी संस्कृति बहते हुए पानी की मानिंद है!"

▣ चंद्रकांत देवताले

जावरा जैसे छोटे कस्बे के लिए यह विस्मयकारी घटना ही थी कि वहां 'साहित्य और जनता' विषय पर सार्थक और विचारोत्तेजक बातचीत भी हो और आधुनिक चित्रों की प्रदर्शनी भी. प्रबुद्ध लोगों की अच्छी उपस्थिति के बीच 'अभिरुचि' संस्था का शुभारंभ इन्हीं दोनों प्रसंगों के साथ हुआ.

'साहित्य और जनता' विषय पर बोलते हुए श्री चंद्रकांत देवताले ने कहा : 'हमारी संस्कृति बहते हुए पानी की मानिंद है. जनता और साहित्य के बीच की दरार अनेक आर्थिक-सामाजिक विषमताओं का परिणाम है. इनके रिश्ते बहुत जटिल हैं. और अति सहजीकरण से इन्हें रिड्यूस नहीं किया जा सकता.

हमें उस दिन का इंतजार है—जब यह दरार कम होगी या पटेगी. वैसे जनता को अनपढ़ मानना और साहित्य पर अनाप-शनाप जिम्मेदारियां थोपना, दोनों ही चीजें गलत हैं. भूखे आदमी को भूख के बारे में बेहतरीन कविता सुनाने के बदले उसे रोटी मुहैया करना ज्यादा मानवीय कर्म है.'

बातचीत की दूसरी कड़ी में श्री निर्मल शर्मा ने मुक्तिबोध के एक प्रसंग से शुरुआत करते हुए कहा : 'मुक्तिबोध यह कहते थे कि हम जनता के लिए लिखते हैं. जनता के लिए रचना-कर्म करते हैं, लेकिन जनता कौन?'

इसी बात को आगे बढ़ाते हुए श्री शर्मा ने कहा—'एक रचनाकार को जनता के बीच जाना चाहिए. भले वे न समझें, इसका अफसोस नहीं करना चाहिए कि जनता क्या चाहती है. ऐसा नहीं कि जनता संस्कृतिहीन है.

जब-जब जनता से हम कटे हैं, तब-तब हमारा साहित्य खत्म हुआ है. आप जनता के विचार, जनता की चीजों को देखकर उन्हें अपनी रचना का कर्म बनायेंगे तो जनता आपको कहेगी कि यह हमारा राइटर है.'

कार्यक्रम के अध्यक्ष पद से श्री दिनकर सोनवलकर ने कहा कि—'रचनाकार चाहे आशावादी हो या निराशावादी, अंततः जनता व साहित्य के ज्वलंत प्रश्नों का साक्षात्कार करेगा ही. आज का पाठक या श्रोता सिर्फ कवि-सम्मेलन तक ही पहुंच पाया है. उन तमाम पत्र-पत्रिकाओं तक नजर डालने वाले आम पाठक या आम श्रोता की कमी महसूस होती है.'

इसी कार्यक्रम की अंतिम कड़ी में दो युवा चित्रकारों अमिताभ पांडेय (इंदौर) व मयंक शॉ (रतलाम) की कला प्रदर्शनी का आयोजन था, जिनमें अमिताभ पांडेय ने कला प्रदर्शनी के उद्घाटन के पूर्व अपनी कला-रचना के प्रति एक वक्तव्य दिया : **'चित्रकला ने गुफाओं से लेकर केनवास तक की यात्रा की है. चित्रकार भी आम जिंदगी में घटित घटनाओं से ही अपनी पेंटिंग का संसार पाता है. आग का पिंड ही नहीं, वह ऊर्जा का स्रोत भी है.'**

प्रदर्शनी का उद्घाटन श्री मदन नाहर ने किया. प्रदर्शनी में मयंक शॉ की पेंटिंग (मणिप्रभा) व अमिताभ पांडेय की (सूर्य-समुद्र-संगीत) पेंटिंग बेहद चर्चित रहीं. कार्यक्रमों का संयोजन किया था संस्था के सचिव श्री सुरेश उपाध्याय ने. ▣

● प्रस्तुति : ओम केलवा

भास नाट्य समारोह

मध्यप्रदेश नाटक-लोककला अका द्वारा उज्जैन में भास नाट्य समारो एक अच्छी शुरुआत है, जिसमें मूल सं में भास के 'दूतवाक्यम्' का मंचन निवास रथ के निर्देशन में किया गया

भास के ही 'उरुभंग' को नृत्य ना शैली में राजकुमुद द्वारा प्रस्तुत किया ग जिसमें कथक का सार्थक और स प्रयोग किया गया. भास के ही प्रभा कुमार भट्टाचार्य द्वारा अनूदित और ए के. रैना द्वारा निर्देशित चार नाटकों- दूतघटोत्कच, कर्णभार, मध्यम व्याय तथा स्वप्न-वासवदत्ता का मंचन समार की एक उपलब्धि रही. यह पहला अव था, जब कहीं भास के छह नाटक एक समारोह में मंचित हुए. शूद्रक के 'मृच्छ कटिकम्' पर आधारित 'गारा की गा का भी मंचन इस समारोह में हुआ, जिस निर्देशन प्रभातकुमार भट्टाचार्य ने किया

● प्रस्तुति : विनोद भटनागर

लघुपत्रिका प्रदर्शनी

"हमें यह देखकर आश्चर्य हो रहा कि हिंदी में इतनी ज्यादा संख्या पत्रिकाएं छपती हैं और परासिया जै छोटी-सी जगह में आती हैं."

"मैं तो आज तक धर्मयुग, दिनमा नवनीत और साप्ताहिक हिंदुस्तान को देश की सर्वश्रेष्ठ पत्रिकाएं मानता इस प्रदर्शनी को देखने के बाद मैं अ अल्प जानकारी पर शर्मिंदा हूं और अ धारणा बदल रहा हूं."

ये विचार हैं बैंक ऑव महार की परासिया शाखा द्वारा आयोजि लघुपत्रिका प्रदर्शनी देखने के बाद दो द और पाठकों के. 19 और 20 सित की इस प्रदर्शनी में लगभग 200 पत्रिकाएं प्रदर्शित की गयी थीं. इस प्रद की एक उपलब्धि यह भी रही कि कस्बे पाठक पहली बार लेखक, संपादक प्रकाशक में भेद जान सके. इसी पटना में भारतीय युवा साहित्य परिषद द्वारा भी एक अखिल भार लघुपत्रिका प्रदर्शनी का आयो किया गया.

● प्रस्तुति : शिवनारायण शर्मा

पुस्तकें : सबके लिए

संस्कृति, साहित्य, विज्ञान, भारतीय जन-जीवन एवं बाल-साहित्य आदि अनेक विषयों पर अंग्रेजी तथा सभी भारतीय भाषाओं की उत्कृष्ट पुस्तकें.

नेशनल बुक ट्रस्ट अपनी विभिन्न पुस्तकमालाओं (भारत––देश और लोग, राष्ट्रीय जीवन-चरित माला, लोकोपयोगी विज्ञान माला, भारतीय लोक-संस्कृति एवं साहित्य पुस्तकमाला, तरुण भारती पुस्तकमाला, नेहरू बाल पुस्तकालय, आदान-प्रदान पुस्तकमाला) के अन्तर्गत हर उम्र, रुचि एवं आय वाले लोगों के लिए पुस्तकें प्रकाशित करता है. आदान-प्रदान पुस्तक माला का उद्देश्य है प्रत्येक भारतीय भाषा की सर्वश्रेष्ठ साहित्यिक पुस्तकों के अन्य भाषाओं में अनुवाद उपलब्ध करना.

आबान-प्रदान पुस्तकमाला में प्रकाशित कुछ महत्वपूर्ण कृतियों के हिन्दी अनुवाद

मुक्ति (कन्नड़) : शांतिनाथ देसाई, रु.११.५०, **यात्रा का अंत** (तमिल) : नील पद्मनाभन, रु.७.००, **जागरी** (बंगाली) : सीतानाथ भादुड़ी, रु.९.००, **सीढ़ी के डंडे** (मलयालम) : टी.एस. पिल्लै, रु.२६.००, **आदर्श हिंदू होटल** (बंगाली) : विभूति भूषण बंद्योपाध्याय, रु. ९.००, **ग्रामायण** (कन्नड़) : आर.बी. कुलकर्णी, रु. १८.००, **दाना पानी** (ओड़िया) : एस. एन. महंति, रू.१४.७५, **गुजराती कहानियां** (सं.): यशवंत शुक्ल, अनिरुद्ध, 'ब्रह्मभट्ट', रु.९.००, **सुदामा के चावल** (मराठी) : श्रीपद कृष्ण कोल्हटकर, रु.१२.००

हमारे प्रकाशन नेशनल बुक ट्रस्ट पुस्तक केंद्र, ए-४, ग्रीन पार्क, नयी दिल्ली-११००१६, सिटी सेंट्रल लाइब्रेरी, अशोक नगर, हैदराबाद-५०००२०, ६७/२ महात्मा गांधी मार्ग, कलकत्ता-७००००९, राजकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, टाऊन हाल, अमृतसर के अतिरिक्त सभी प्रमुख पुस्तक विक्रेताओं के यहां उपलब्ध हैं.

नेशनल बुक ट्रस्ट, इन्डिया

ए-५, ग्रीन पार्क, नई दिल्ली-११००१६

र, कोलमैन ऐंड कंपनी लिमिटेड, स्वत्वाधिकारी के लिए रमेशचन्द्र द्वारा नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, 10 दरियागंज, नयी दिल्ली-110002 से मुद्रित व प्रकाशित. जनरल मैनेजर : राम तरनेजा. पंजीकृत कार्यालय : डा. दादाभाई नौरोजी रोड, बंबई-400001. शाखाएं : 7, बहादुरशाह जफर मार्ग, नयी दिल्ली-110002; 139, आ[illegible] रोड, मदाबाद-380009; 105/7ए, एस. एन. बनर्जी रोड, कलकत्ता-700014. कार्यालय : 13/1, गवर्नमेंट प्लेस ईस्ट, कलकत्ता-700069; 63, मोंटियय रोड, इग्मोर, ास-600008; 407-1, तीरथ भवन, क्वार्टर गेट, पुणे-411002; 36, स्टेशन एप्रोच, सडबरी, वेंबले मिडिलसेक्स, लंदन, यू. के., लंदन टेलीफोन : 01-903-9696.

पंजीयत सं. D-(C)-779
पूर्व शुल्क के बिना डाक में डालने
की अनुमति-लाइसेंस सं. U-89

MADRAS
Regn. No. G6/TN/MS(C)/499

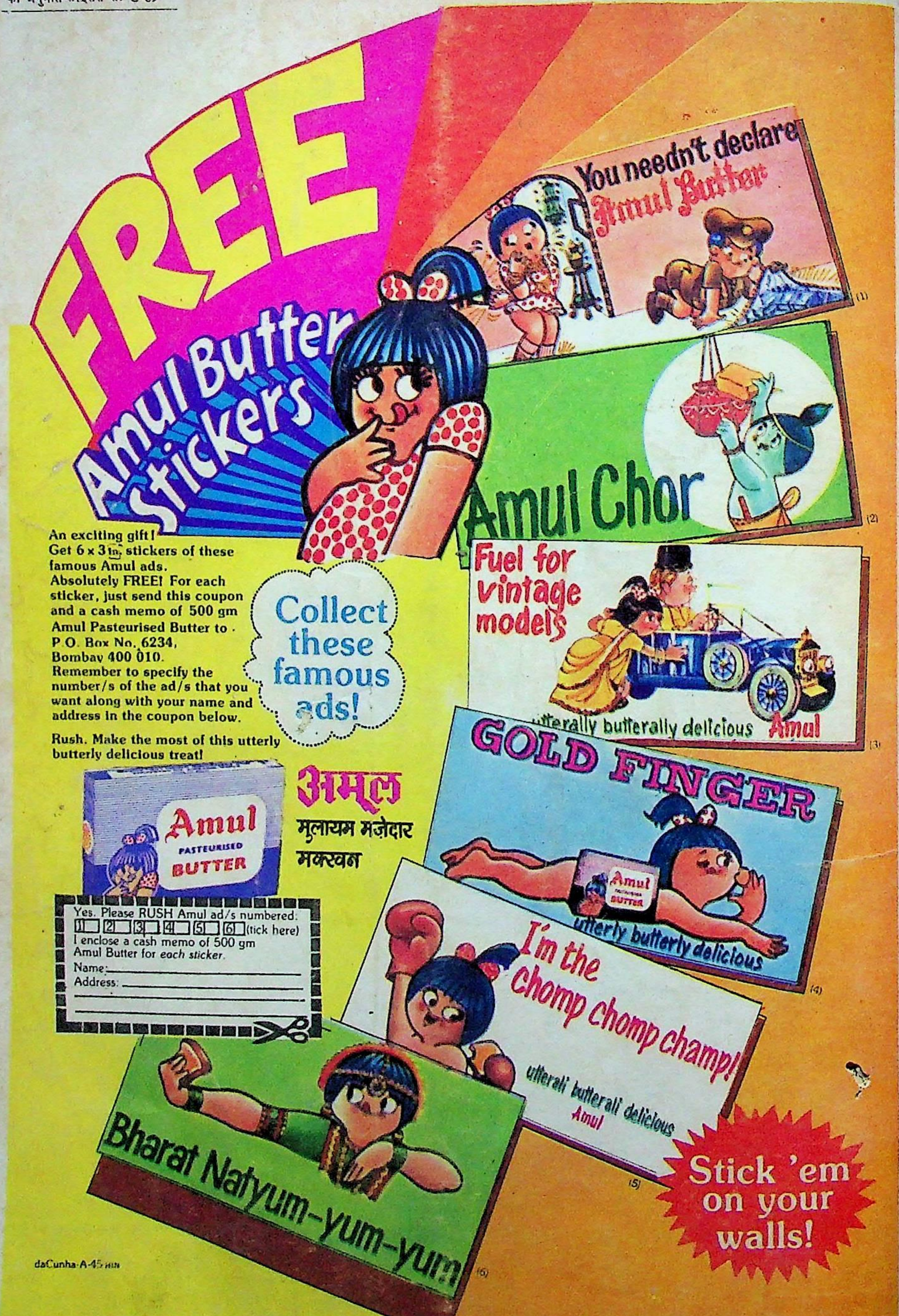
FREE
Amul Butter Stickers
You needn't declare Amul Butter
(1)
Amul Chor
(2)
Fuel for vintage models
utterally butterally delicious Amul
(3)
Collect these famous ads!
GOLD FINGER
Amul Pasteurised Butter
utterly butterly delicious
(4)
I'm the chomp chomp champ!
utterali butterali delicious Amul
(5)
Bharat Natyum-yum-yum
(6)
Amul Pasteurised Butter
अमूल
मुलायम मज़ेदार मक्खन
Stick 'em on your walls!

An exciting gift! Get 6 x 3 in. stickers of these famous Amul ads. Absolutely FREE! For each sticker, just send this coupon and a cash memo of 500 gm Amul Pasteurised Butter to · P.O. Box No. 6234, Bombay 400 010. Remember to specify the number/s of the ad/s that you want along with your name and address in the coupon below.

Rush. Make the most of this utterly butterly delicious treat!

Yes. Please RUSH Amul ad/s numbered:
☐1 ☐2 ☐3 ☐4 ☐5 ☐6 (tick here)
I enclose a cash memo of 500 gm Amul Butter for *each sticker*.
Name: ____________
Address: ____________

daCunha-A-45 HIN

पाक्षिक

सारिका

वर्ष:२०:अंक:२७१

दशहरा अंक

- मुकदमा 'राम-वध' का
- रक्ष संस्कृति का अमरीकी रूप: "द गॉडफादर"

टाइम्स ऑफ इंडिया
२-०० रुपया
प्रकाशन

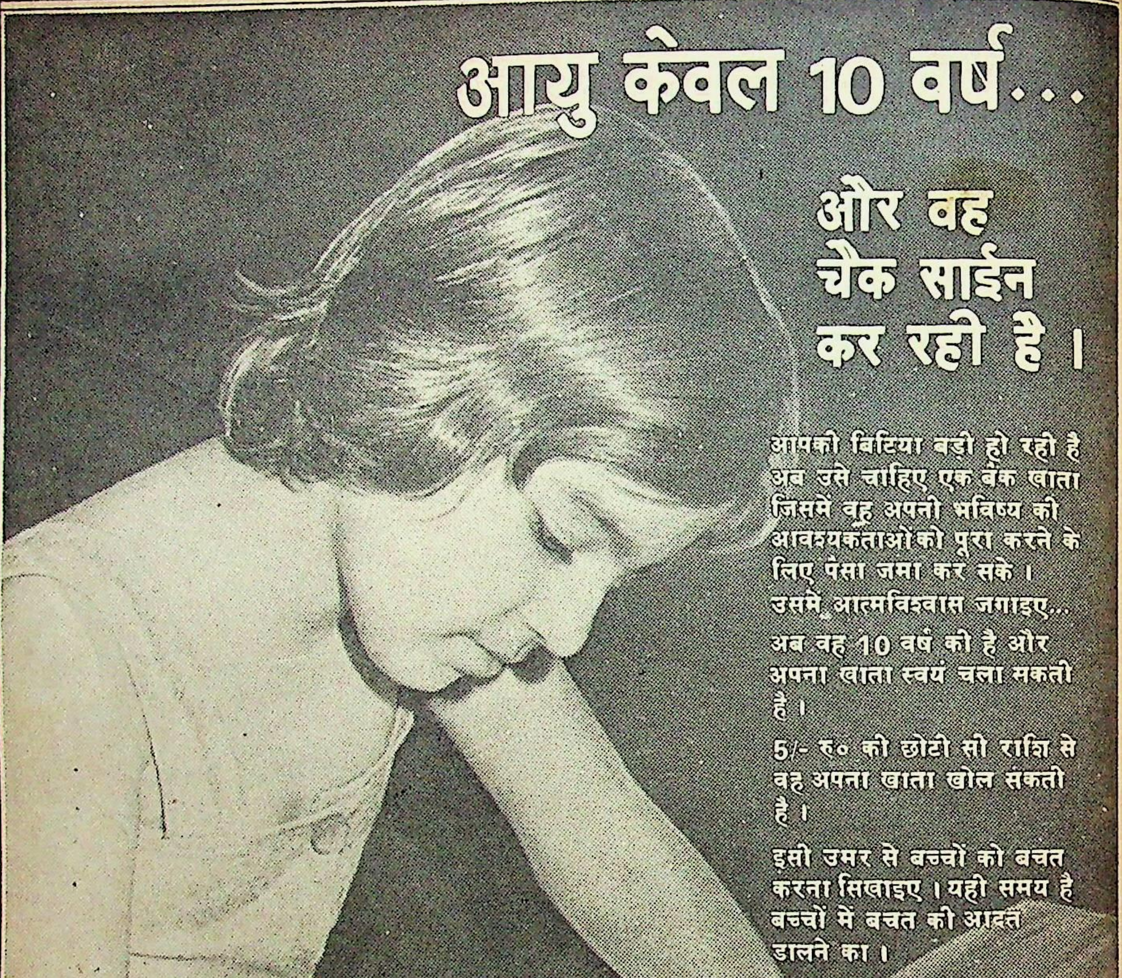

आयु केवल 10 वर्ष...

और वह चैक साईन कर रही है।

आपकी बिटिया बड़ी हो रही है अब उसे चाहिए एक बैंक खाता जिसमें वह अपनी भविष्य की आवश्यकताओंको पूरा करने के लिए पैसा जमा कर सके।
उसमें आत्मविश्वास जगाइए...

अब वह 10 वर्ष की है और अपना खाता स्वयं चला सकती है।

5/- रु० की छोटी सी राशि से वह अपना खाता खोल सकती है।

इसी उमर से बच्चों को बचत करना सिखाइए। यही समय है बच्चों में बचत की आदत डालने का।

पंजाब नैशनल बैंक

(भारत सरकार का उपक्रम)

...भरोसे का प्रतीक!

सुघड़ गृहिणी की पहचान, अच्छा खाना सजा मकान

क्या आप नहीं चाहते कि आपका ड्राइंग रूम एक आलीशान कोठी के ड्राइंग रूम जैसा ही लगे और वह भी बहुत कम खर्च में !!!

गृहसज्जा पर एक आर्किटेक्ट द्वारा भारत की प्रथम पुस्तक

होम डेकोरेशन गाइड

लेखक **अशोक गोयल**

विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के जाने-माने लेखक एवं मान्यता प्राप्त 'आर्किटेक्ट'

यदि आप नया मकान बनवाने जा रहे हैं या पुराने को ही नया निखार देना चाहते हैं तो इस पुस्तक पर २०/- खर्च करके हज़ारों रुपये की बचत कर सकते हैं

यह कहना गलत है कि गृहसज्जा एक खर्चीला काम है या केवल अमीर लोगों के लिये ही है जबकि वास्तविकता यह है कि इसकी टैक्निकल जानकारी प्राप्त करके आप भी स्वयं

- घर में मौजूद साजो-सामान में ही अपना घर सजा सकते हैं
- बेकार पड़े कोनों एवं सपाट दीवारों को आकर्षक बना सकते हैं
- परदों दीवारों एवं फर्नीचर के रंगों का तालमेल बैठा सकते हैं
- ड्राइंग डाइनिंग व बेड रूम में आकर्षक फ़र्नीचर सैटिंग कर सकते हैं
- और इनमें तथा बाथरूम व रसोई घर में उचित प्रकाश व्यवस्था कर सकते हैं
- सभी कमरों की आवश्यकताओं को देखते हुए उनमें बहुपयोगी अल्मारियां डिज़ायन कर सकते हैं
- सजावट सामग्री जैसे वाल पेपर, मार्बलेक्स व लिनोलियम के फ़र्श, क़ालीन, झाड़-फ़ानूस, फ़िश एक्वेरियम, वैनिशियन ब्लाइण्डस, म्यूरल्स हैण्डीक्राफ्टस बाटिक व आयल पेंटिग्स, विनेराटेक्स मद्रासी दाना सनमाइका व फ़ारमाइका आदि के निर्माताओं और वितरकों के पते प्राप्त करके सामान सही व किफ़ायती दरों पर ख़रीद सकते हैं

इसके अतिरिक्त अन्यान्य ढेरों जानकारियाँ आपको इस पुस्तक में मिलेंगी।

गृहसज्जा पर एक आर्किटेक्ट द्वारा भारत की प्रथम पुस्तक
होम डेकोरेशन गाइड
होम डेकोरेशन गाइड
पुस्तक महल दिल्ली

डबल क्राउन साइज़
पृष्ठ संख्या : 152
प्लास्टिक लॅमीनेटिड
बहुरंगी टाइटल
सफेद चिकना कागज

मूल्य 20/-
डाकखर्च 4/-

संकड़ों ब्लैक एण्ड व्हाइट व रंगीन फोटोग्राफ्स तथा रेखा चित्रों से सुसज्जित

VANDANA

पुस्तकें वी॰पी॰पी॰ द्वारा मंगाने का पता-

पुस्तक महल खारी बावली, दिल्ली-110006

सबसे कम क़ीमत में
सबसे ज़्यादा सफ़ाई

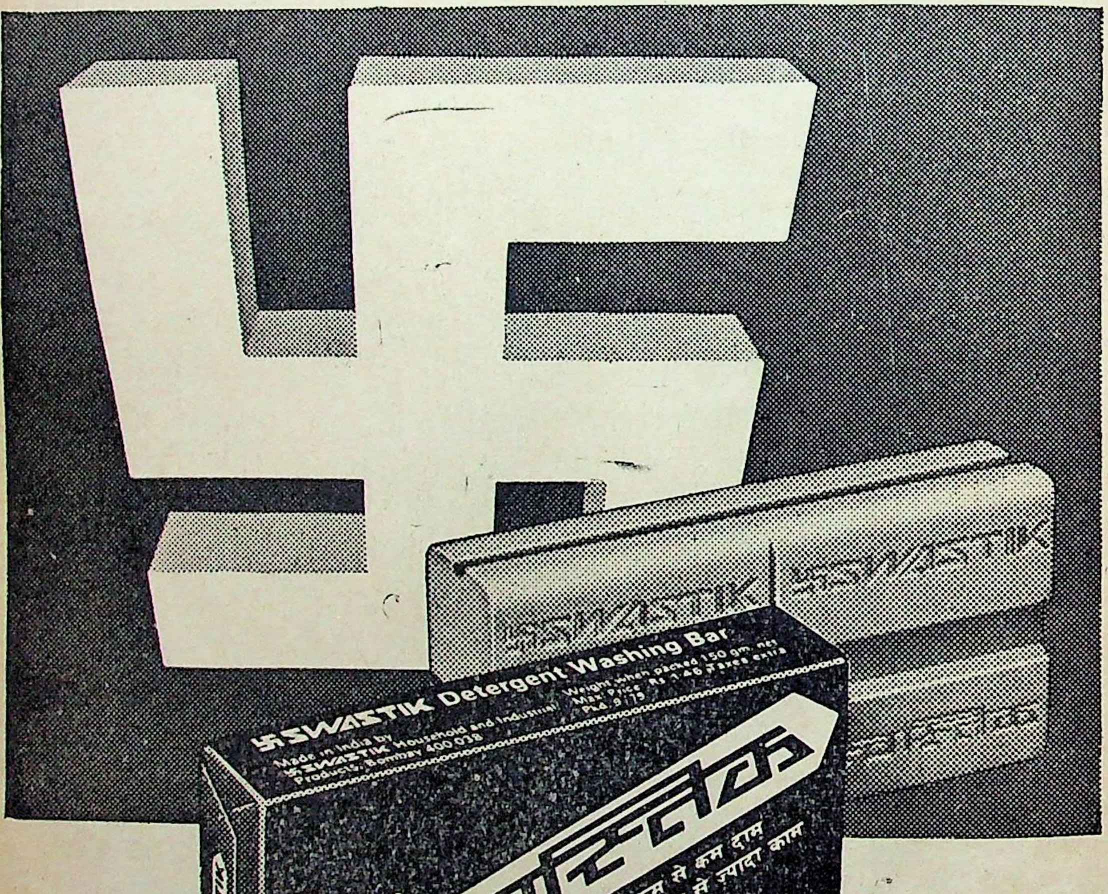
SWASTIK
SWASTIK Detergent Washing Bar
Made in India by
SWASTIK Household and Industrial
Products, Bombay 400 038
Weight when packed 150 gm. net
Max Price Rs 1.46 Taxes extra
Pkd 9/79
नीली
स्वस्तिक
डिटर्जेण्ट धुलाई की बार
कम से कम दाम
ज़्यादा से ज़्यादा काम
SWASTIK

दूसरी सब डिटर्जेण्ट बार से कहीं
ज़्यादा अच्छी, कहीं ज़्यादा किफ़ायती और
साबुनों से १½ गुना ज़्यादा शक्तिशाली!

नीली स्वस्तिक
डिटर्जेण्ट धुलाई की बार
एक बार स्वस्तिक बार...फिर हमेशा स्वस्तिक बार

Shilpi DM 9 A/80 Hin

नियमित रूप से थोड़ी-थोड़ी बचत कीजिये—और तब वह हर चीज़ आपकी होगी, जिसका आप हमेशा सपना देखते हैं।

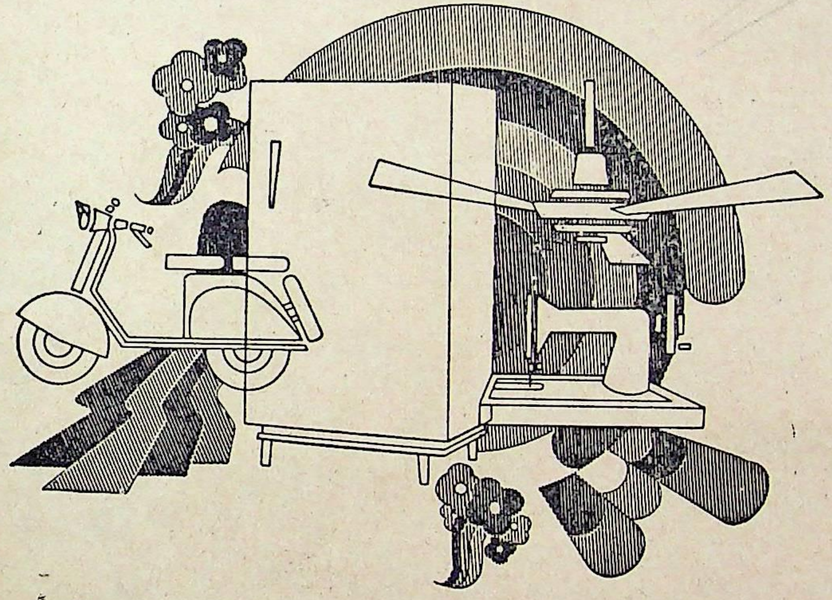

इलाहाबाद बैंक की रेकरिंग डिपॉजिट योजना आपके सपनों को सच करती है।

इस योजना की सबसे बड़ी खूबी यह है कि इसमें आप खुद तय करते हैं कि हर माह आपको कितना जमा करना है। कम से कम १० रुपये से लेकर अधिक से अधिक १,००० रुपये तक— १ से १० वर्ष तक की अवधि के लिये।

इस प्रकार आप बगैर किसी परेशानी के आसानी से बचत कर सकते हैं। और अन्त में जो आपको वापस मिलेगा, वह आपके जमा किये हुए पैसों से ५०%...या शायद उससे भी ज्यादा हो सकता है। तब आप बड़े आराम से वह सब कुछ खरीद सकेंगे, जिसका आप हमेशा सपना देखते हैं।

अधिक जानकारी के लिये अपने करीब की किसी इलाहाबाद बैंक की शाखा में पधारिये।

इलाहाबाद बैंक

आपका अपना बैंक

प्रधान कार्यालय : १४ इण्डिया एक्सचेंज प्लेस,
कलकत्ता-७०० ००१।

U-AB 3A-HIN

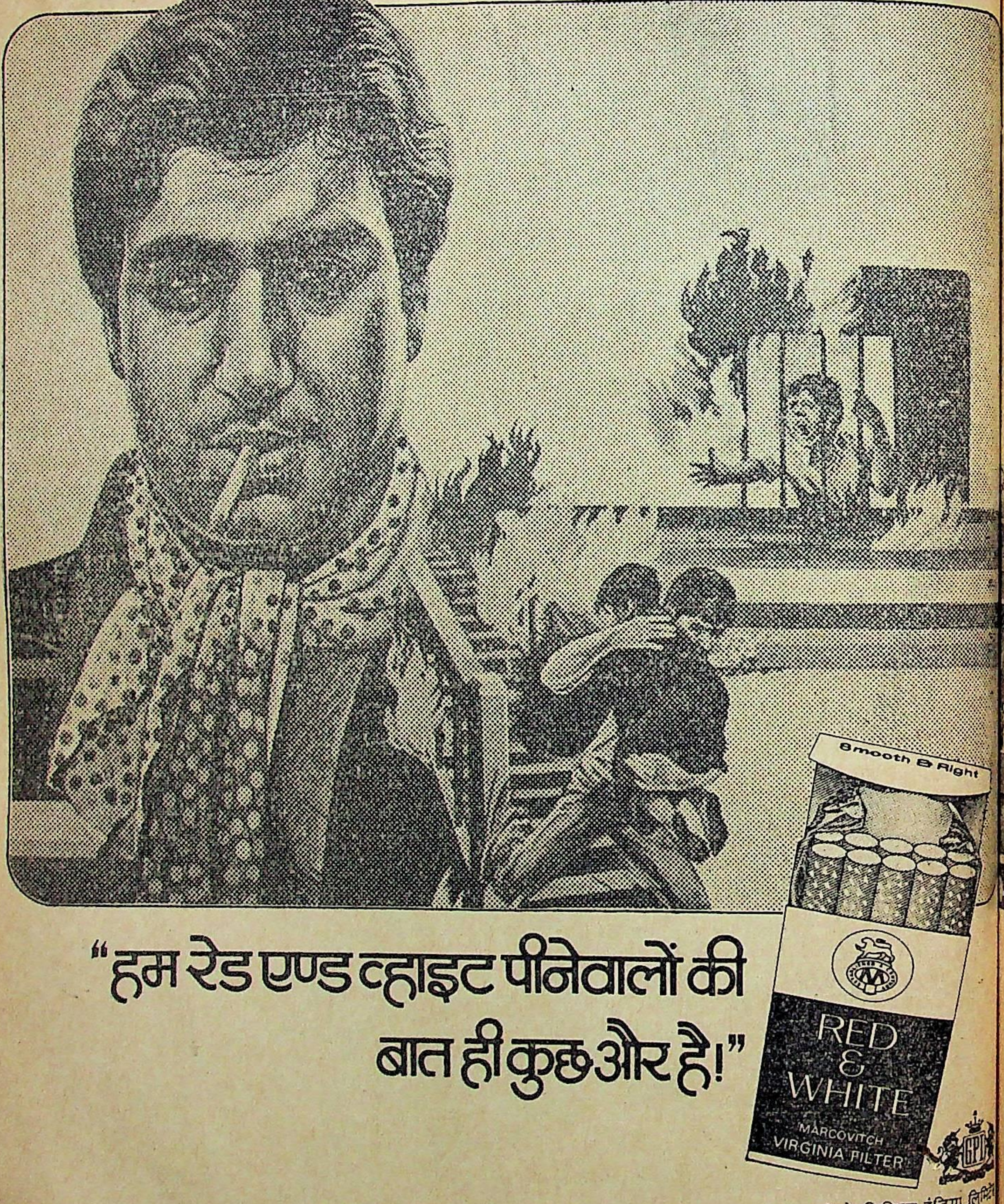
Smooth & Right
RED & WHITE
MARCOVITCH
VIRGINIA FILTER
GPI

"हम रेड एण्ड व्हाइट पीनेवालों की
बात ही कुछ और है!"

गॉडफ्रे फिलिप्स इंडिया लिमि

वैधानिक चेतावनी. सिगरेट पीना स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है।
STATUTORY WARNING: CIGARETTE SMOKING IS INJURIOUS TO HEALTH

Rediffusion/GPI/1141

कहानियों और कथा-जगत की जीवंत पाक्षिकी

वर्ष : 20; अंक : 271; 16 से 31 अक्तूबर, 1980

कहानियां

19. कथा विसरजन : लक्ष्मीनारायण लाल
24. रघुनाथ कृपा : गिरिराज किशोर
31. मेरे लिए नहीं : राजी सेठ
45. राम वध : बाला दुबे
48. कब तक : परितोष चक्रवर्ती
53. तालियां : आनंद खेमाणी
55. पगलाया हुआ : किशोर नेपाल
63. जिंदगी के हाशिए पर : रंजन

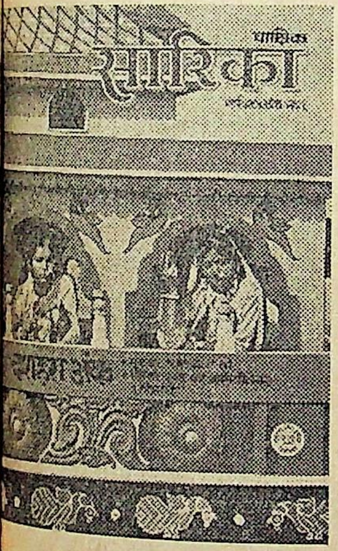

दशहरा अंक

साक्षात्कार

12. श्रीकांत वर्मा से विनोद भारद्वाज की लंबी बातचीत

विशेष

41. रक्ष संस्कृति का अमरीकी रूप—एक पूज़ो ने 'गॉडफादर' क्यों लिखा? : द्रोणवीर कोहली
61. दंगा (घटना कथाएं) संतोष तिवारी

लघुकथाएं

23. अंतरंग (बंगला) : दीपक राय
29. फांसी, खुद-ब-खुद : वीर राजा
33. रिश्तेदार : लक्ष्मीनारायण वशिष्ठ
34-35. बाबू, अफसर : सनत् मिश्र
38. वर्षा यज्ञ : पूरन मुद्गल
51. सुरक्षित स्थान : अनीस अमरोहवी
54. चमत्कार : यज्ञ शर्मा
56. अपना पहाड़ा : डा. कुंवर बेचैन
66. दो गुजराती लघुकथाएं : विनोद भट्ट

आसपास बिखरी

कहानियां

57. अपने-अपने दायरे : अरुण ओसवाल
62. समझदारी : पृथ्वीराज अरोड़ा

अन्य आकर्षण

8. ज़रिया-नज़रिया
9. पाठकों का पन्ना
39. तस्वीर बोलती है : एस. पाल
59. उनने कहा था
68. पखवारे की पुस्तकें : प्रेम जनमेजय
70. हलचल

गज़लें

44. शतदल
50. योगेंद्र दत्त शर्मा
52. देवेंद्र गौतम
60. शबाब मेरठी

संपादक
कन्हैयालाल नंदन
मुख्य उप-संपादक :
अवधनारायण मुद्गल
उप-संपादक :
रमेश बत्तरा, सुरेश उनियाल, बलराम, अरुण वर्द्धन
आवरण : **सूरज एन. शर्मा**

सारिका

मानवीय मूल्यों के मसीहा

ज़रिया-नज़रिया

हमने अक्सर अपने देश में गिरते हुए मूल्यों, नैतिक संकट और दायित्वहीनता की बात की है और अपने समय की सच्चाइयों से टकराते हुए कर्मठता के जरिये अपना रास्ता खोजने की तजवीज भी. हम सभी जानते हैं कि इतिहास के जिस दौर से हम गुजर रहे हैं, वह हमें अपने पुराने अनुभवों के सामने नये प्रश्नचिह्न खड़े करके सोचने को विवश कर रहा है. हमें प्रति माह लगभग दो-ढाई सौ कहानियां पढ़ने को मिलती हैं. जरूरी नहीं कि वे अच्छी ही हों, लेकिन एक बात तय है कि उनमें से अधिकांश हमें अपने समय की सच्चाइयों से रू-ब-रू करती हैं. मनुष्य के सपनों, आकांक्षाओं, विवशताओं, कामनाओं और उसकी चिंताओं की तस्वीर देकर एक ऐसे समाज की रचना का उत्स देती हैं जो शोषण के खिलाफ हो, समता की भूमि पर टिका हुआ हो, विघटन और मूल्यहीनता से निजात दे सकने की आशा जगाता हो, जहां आदमी सुकून से जी सकने का विश्वास पा सके... इसी बारे में सोचते-सोचते दुनिया के तमाम देशों की हालत पर नज़र गयी तो लगा कि--

> 'एक तेरी ही नहीं, सुनसान राहें और भी हैं.
> कल सुबह की इंतजारी में निगाहें और भी हैं.'

भूगोल छोटा हो गया है. इतिहास सिमट गया है. सारी दुनिया के देशों की हालत कमोबेश एक जैसी हो गयी है और हम यहां तक पाते हैं कि मूल्यहीनता के जिस संकट को हम अपने आसपास गहराते देख रहे हैं वह दूसरे मुल्कों में इससे अधिक गहरा है. जिन देशों में महाशक्तियों के राजनैतिक खिलाड़ी अपनी चौपड़ बिछा चुके हैं, वहां का आदमी और भी अधिक त्रस्त और अकेला है. और कौन नहीं जानता कि दोनों महाशक्तियों के अपने देश में आदमी का अपना निजी अस्तित्व सिर्फ एक पुर्जे की हैसियत से कुछ भी अधिक नहीं रह गया. अक्सर कह दिया जाता है कि समय सब कुछ ठीक कर देता है... समय की धारा अबाध है. जिसने समय से टकराने की कोशिश की, उसे समय ने चकनाचूर कर दिया!

लेकिन हमने अक्सर पाया है कि समय ने कुछ भी कभी ठीक नहीं किया. ऐसे नियतिवादी फिकरों ने हमारे सोच की जड़ों में सिर्फ मट्ठा डाला है, हमें अकर्मण्यता का शर्बत पिलाया है और अंधेरों में भटकते रहने का रास्ता साफ किया है. मैं यह मानता हूं कि समय ने हमारे साथ छल किया है अगर हमने उस पर भरोसा करके चलने का नुस्खा जिया है. मैं यह मानता हूं कि समय एक महानद है जो जाने कब से बह रहा है और बहता जायेगा. लेकिन हमारे लिए यह महानद बेमानी है अगर उसमें से हमने एक खंड काट कर, ठहरा कर अपने लिए अर्थवान नहीं बनाया, अपनी कौम की जरूरत के अनरूप उसे शक्ल नहीं दी और फिर उसी शक्ल में उसे बहने के लिए मजबूर नहीं किया.

वक्त को शक्ल देना या उसे मजबूर करना आसान नहीं होता, इसकी खास वजह यही है कि हममें उससे टकराने की सामर्थ्य नहीं, जो समर्थ हैं, वे न सिर्फ उससे टकराते हैं बल्कि उसे नये मोड़, नये आयाम और नये अर्थ भी दे जाते हैं. यदि टकराहट सच्ची होती है तो समय रास्ता देता है, जरूर देता है. यह बात राम और रावण के समय भी उतनी ही सच थी जितनी आज है. जब रावण का उत्कर्ष था तो वक्त ने उसे रास्ता दिया था और जब राम का उत्कर्ष शुरू हुआ तो वह उनके सामने खुली किताब की तरह बिछ गया. लेकिन आम आदमी तब भी अंधेरे में था और आज भी अंधेरे में है. हमारे सामने इतिहास ने सिर्फ राम और रावण को जिंदा रखा है, उनके समय के आम आदमी को नहीं. हम उन्हीं के जरिये उस समय के सामान्य आदमी के संघर्ष को आंकते हैं. जरूरी नहीं कि यह आकलन सही हो क्योंकि सत्ता की
स्थिति में और आम आदमी की
कभी साम्य नहीं हो पाया. स
अपने लिए कुछ 'विशिष्ट'
बटोरती रही हैं और ये सुविधा
उस वक्त के आम आदमी ने म
हैं--अपनी कीमत पर, अपनी
और श्रम की कीमत पर.

कहते हैं, इतिहास अपने
दुहराता है लेकिन हम देख रहे
इतिहास न केवल अपने आप
रहा है बल्कि ठहर गया है. आ
पीठ पर भी अनवरत संघात ह
तरह बरस रहे हैं और हम हैं कि
खड़े होने की जगह तलाशने की
में पिसे जा रहे हैं. इस जद्दो
दौड़ में... हम उन सभी के सा
इस दौड़ में पसीने-पसीने हैं, हांफ
मगर दौड़ रहे हैं, समय की धारा
खिलाफ उसकी सतह से चाहे
सही, ऊपर उठकर धारा को
हैं... उन मानवीय मूल्यों के
को शतशत नमन्, जो भले ही म
सही, आग में कूद तो रहे
जनाब शमीम फारूकी की यह ग
है जो अग्निपुत्रों की मजबूरी औ
की साक्षी है और आज के आम
तकलीफों का दस्तावेज है--

हमराह चल रहा था मगर देख
जैसे कि वह कभी का मेरा आ
सारे बदन पे आग की लपटें
दरिया में कूदने के सिवा रास्त
हम अपने गमकदे से निकलते तो
ताले पड़े हुए थे कोई दर खुला
कितना अज़ीम शख़्स है हर गम
यूं हंस रहा है जैसे कभी कुछ हु
एक दूसरे से दूर रहे हम त
वैसे हमारे बीच कोई फ़ासल
ख़ाबों के पर जले हुए बिखरे
अख़बार कह रहा है कोई घर ज
वह दिन भी याद है कि इसी

मैं खो गया था और कोई ढूंढ

कन्हैयालाल

फिराक साहब से पूछिए

'जानवर और जानवर' जैसे साहसपूर्ण स्वर के लिए आप बधाई के पात्र हैं, परंतु जनाब फिराक गोरखपुरी से उमाकांत मालवीय का साक्षात्कार काफी अरुचिकर लगा. फिराक साहब एक अच्छे शायर हो सकते हैं, मगर एक अच्छे हिंदुस्तानी नहीं. जिसकी नजरों में 'दुनिया की डर्टियेस्ट लिपि और बदबूदार ज़बान (यदि मुंह में ही बदबू भरी हो तो उस मुंह से निकलने वाली हर ज़बान बदबूदार ही होगी.) अवैज्ञानिक ज़बान नागरी लिपि और हिंदी है.' ऐसे व्यक्ति का साक्षात्कार आपने हिंदी की पत्रिका 'सारिका' में छापकर 'सारिका' का भी अपमान किया है. ज़रा, इन फिराक साहब से पूछिए तो कि संसार के सर्वश्रेष्ठ साहित्यकारों की श्रेणी में आने वाले महाकवि तुलसीदास किस विश्वविद्यालय से अंग्रेजी की शिक्षा प्राप्त करके आये थे? सूर, कबीर, फिराक साहब की तरह अंग्रेजी नहीं जानते थे फिर भी उनसे बहुत . . .बहुत ऊंचे थे.

▣ शैलेंद्र, सिभावली, गाजियाबाद.

पाठकों का पन्ना

घूंघट से मूल्यवृद्धि

आपका इस बार का संपादकीय वास्तव में एक ललकार है, जो लोग यहां पर रहकर 'पाकिस्तान जिंदाबाद' के नारे लगाते हैं, वे भारतीय नहीं, अपितु देशद्रोही हैं. उनके साथ देशद्रोहियों जैसा बर्ताव होना चाहिए.

मुखपृष्ठ एक बार फिर आकर्षण का केंद्र रहा. ऐसा प्रतीत होता है, जैसे किशोरी घूंघट में झांककर यह देख रही हो कि मूल्यवृद्धि का क्या असर पड़ा.

▣ राजेंद्र 'नीर', चौपुला, बरेली

बंधुवर,

आपके प्रतिष्ठित और उतने ही लोकप्रिय पत्र के माध्यम से मैं आपके विशाल पाठक-समाज तक अपना एक आवश्यक निवेदन पहुंचाना चाहता हूं. कृपया इसे स्थान देकर अनुगृहीत करें.

प्रेमचंद-साहित्य के एक सुलभ जन-संस्करण की आवश्यकता पर जितना बल दिया जाये, कम है. समय-समय पर इसकी मांग भी पाठकों की ओर से उठती रही है. अतः प्रेमचंद जन्मशती के इस वर्ष में, अलग-अलग छोटी बड़ी पुस्तकों के रूप में बिखरे हुए समस्त प्रेमचंद-साहित्य को एक आकार-प्रकार की रचनावली के बारह बड़े-बड़े खंडों के रूप में प्रकाशित करने की योजना है. उसका कार्यारंभ इसी वर्ष हो जायेगा.

कहने की आवश्यकता न होगी कि इन साठ वर्षों में, जब से प्रेमचंद की पुस्तकें हिंदी में प्रकाशित होना शुरू हुईं, लापरवाह कंपोजीटरों और विद्वान प्रूफरीडरों की कृपा से, उनका पाठ उत्तरोत्तर अशुद्ध होता गया. इसलिए अब जब यह साहित्य नये रूप में प्रकाशित होने जा रहा है, सबसे पहला काम उस पाठ को शुद्ध करना है, ताकि यह नया संस्करण सुलभ होने के साथ-साथ प्रामाणिक भी हो. दुर्भाग्यवश दो-एक खंडित पांडुलिपियों को छोड़कर, पुस्तकों की पांडुलिपियां नहीं हैं, जिनको आधार बनाकर पाठ को शुद्ध किया जा सके. अतः सबसे पहले प्रथम संस्करणों का ही सहारा लेना पड़ेगा. आप सभी बंधुओं से करबद्ध निवेदन है कि आपके पास या आपकी जानकारी में जहां भी प्रेमचंद की जिन पुस्तकों के प्रथम संस्करण उपलब्ध हों, उनकी सूचना मुझे देकर कृतार्थ करें.

● **अमृत राय**
18 न्यायमार्ग, इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश)

यह कौन-सी भारतीयता है?

सारिका अंक : 268 में प्रकाशित 'फिराक' साहब के साक्षत्कार पर कुछ बातें कहना जरूरी समझता हूं. साक्षात्कार में फिराक साहब ने बड़े खुले ढंग से अपने विचार रखे हैं. इंटरव्यू प्यारा है. उनकी शायरी के प्रति हमेशा से मुझे श्रद्धा रही है, लेकिन हिंदी के आधुनिक साहित्य के प्रति उनका पूर्वाग्रह बहुत पुराना है, जिसके कारण उन्होंने भारतेंदु, महावीर प्रसाद द्विवेदी और मैथिलीशरण को 'भारतीयता का दुश्मन' कहा है. वे भारतेंदु जो 'रसा' के उपनाम से उर्दू कविता भी लिखते थे. वह कौन-सी भारतीयता है, जिसके दुश्मन मैथिलीशरण भी हैं?

आज से लगभग 28–29 वर्ष पहले, गोरखपुर के एक कालेज में, अपने भाषण में उन्होंने प्रसाद, निराला, महादेवी आदि के विषय में भी कुछ अनुचित बातें कह डाली थीं, तब पूरी शालीनता, परंतु शक्ति के साथ, मुझे उनका प्रतिवाद करना पड़ा था. उनकी हिंदी भाषा के विषय में उक्त धारणाओं और मंतव्यों का कभी डा. राम विलास शर्मा ने युक्ति-युक्त ढंग से उत्तर दिया था. वह लेखमाला काफी रोचक रही थी. इस संबंध में इताना ही कहना पर्याप्त होगा.

▣ कृष्ण बिहारी, नयी दिल्ली

थाली में छेद करने वाले

सितंबर, प्रथम अंक में संपादक का 'ज़रिया नज़रिया' पढ़ा. मेरे अपने विचार से कोई भी हिंदुस्तानी चाहे वह हिंदू हो या मुसलमान, 'ज़रिया नजरिया' में व्यक्त विचारों से असहमत नहीं होगा. हां, फिरकापरस्त जरूर नाराज हो सकते हैं.

मैं गांव का रहने वाला हूं. मैंने स्वयं देखा है कि इस देश का आम हिंदुस्तानी हिंदू या मुसलमान एक दूसरे के प्रेम से बंधा भाई-चारे के साथ रहता है. उसके दिमाग में कभी भी एक दूसरे का खून बहाने का

खयाल नहीं रहता, क्योंकि वह जानता है कि 'खून, खून होता है, न हिंदू होता है, न मुसलमान होता है.' उसी तरह वह जानता है कि जानवर, जानवर होता है, इंसान नहीं और देश की तरक्की उस मुल्क के वासी इंसानों से होती है, जानवरों से नहीं.

तब प्रश्न यह उठता है कि आखिर जानवरों की खातिर इंसानों का खून क्यों बहाया जाता है? आखिर इसका जिम्मेदार कौन है? आखिर इन दंगों में बेगुनाह क्यों मारे जाते हैं? मैंने कभी भी आपस में खुदा या भगवान को लड़ते नहीं देखा, पर आज उसके बंदों को लड़ते देख रहा हूं. आखिर इस लड़ाई से. . .मुसलमान बताये कि उसका कौन-सा खुदा और हिंदू बताये कि उसका कौन-सा भगवान खुश हुआ है? हां, यदि कत्ल करना ही है तो फिरका-परस्तों के अंदर छिपे जानवरों को कत्ल करो. अतः आज प्रत्येक अमनपसंद व देश की प्रगति चाहने वाले प्रत्येक हिंदुस्तानी को ऐसे गद्दार हिंदू व मुसलमानों से सावधान रहना है, जो 'हिंदुस्तान' का खाकर हिंदुस्तान की थाली में ही छेद करना चाहते हैं. साथ ही आज प्रत्येक भारतवासी को ये विचार भी करना है कि यदि हम आपस में लड़ते रहेंगे तो फिर बाहरी खतरे से अपनी आजादी की रक्षा कैसे कर पायेंगे? और अंत में एक प्रश्न का उत्तर स्वतः सबको देना है कि 'जब भारत ही नहीं बचेगा तो हम सब कहां रहेंगे.?'

▣ **डा. करतारसिंह 'लाहोरी', जबलपुर.**

गुजराती पाठक

'सारिका' का मैं बहुत पुराना गुजराती भाषी पाठक हूं. गुजरात के एक छोटे से गांव में रहता हूं, जहां अखबार भी बड़ी मुश्किल से कभी कभी देखने को मिलता है. अमृता प्रीतम की अजीत कौर द्वारा ली गयी मुलाकात बहुत पसंद आयी.

▣ **करसनदास लोदार, राणीवाड़ा.**

अता-पता

हमारे कई पाठकों ने 'मुहब्बत के सफरनामे में जिंदगी के अक्स' के अंतर्गत प्रकाशित (अगस्त, अंक एक) हस्तरेखा विशेषज्ञ उर्मिल शर्मा का पता पूछा था, जो इस प्रकार है—ज्योतिष सदन, एन-1 राजौरी गार्डन, नयी दिल्ली

ठहरे हुए फिराक

सितंबर का पहला अंक: 'सारिका' फिर बाजी मार ले गयी. 'जानवर और जानवर' बेतरह झकझोर गया. मुरादाबादी हादसे पर इतना मार्मिक और विचारोत्तेजक संपादकीय तो किसी अखबार में भी पढ़ने को नहीं मिला. दरअसल, अखबार भी आजकल चीजों के इर्द-गिर्द रहने लगे हैं. चीजों के अंदर उतरने का जोखिम वे नहीं उठाना चाहते, ठीक आज की राजनीति की तरह. चीजों में झांकने के जोखिम भरे प्रयास से कतराकर निकल जाने की यह दुष्प्रवृत्ति मुल्क को किस ओर ले जायेगी, कुछ कहा नहीं जा सकता!

इंसानी दर्द को शिद्दत से महसूस करने वाले महान शायर फिराक गोरखपुरी से बातचीत के साथ छापे गये फिराक साहब के फोटो कुछ माफिक नहीं लगे. एक आध ही सही, उनकी जवानी का फोटो भी आप छाप सकते थे, जो उनके शायर के दमखम के रू-ब-रू होता. सच, ऐसे किसी फोटो के लिए हम तरस कर रह गये. फिराक साहब के शायर का संवेद्य एहसास आज भी वाबस्ता है, पढ़कर खुशी हुई.

लेकिन उनके इस अंतर्विरोध को क्या कहें! एक ओर तो वे तुलसीदास को संसार का महान कवि बताते हैं (जिनके पासंग में कालिदास, गालिब, टैगोर और इकबाल भी नहीं ठहर पाते) और दूसरे सिरे पर जाकर वे हिंदी को संसार की डर्टियेस्ट जबान करार देते हैं, समझ में नहीं आता कि तुलसी और हिंदी किस छोर पर जाकर अलग-अलग हो जाते हैं? सच-सच कहूं, यह सब पढ़कर फिराक हमारी नजरों में न छोटे हुए, न बड़े. बस, वे एक मुकाम पर आकर ठहर गये लगते हैं.

▣ **सवाईसिंह शेखावत, उदयपुर वाटी (राजस्थान)**

सारिका की बजाय तारिका

अपने पंद्रह पैसे इसीलिए बर्बाद क रहा हूं कि अपने मन का गुबार निकाल स कमलेश्वर के संपादनभार छोड़ने के बा 'सारिका' की जो दशा की है आपने, दु होता है. (वैसे कुछ विशेषांक इसके अपवा हैं) अधिकतर कहानियां आदमी के सं से कोई संबंध नहीं रखतीं. 'तस्वीर बोल हैं' स्तंभ बहुत अच्छा है. साक्षात्कार दिलचस्प रहते हैं.

और हां, मुखपृष्ठ पर छपी खूबसू युवतियों की रंग-बिरंगी तस्वीरों को दे सिने-पत्रिका का भ्रम हो जाता है. अ हो, पत्रिका का नाम 'सारिका' से बदल 'तारिका' रख लें.

▣ **वीरेंद्र नागर, कलकत्ता**

सबसे भारी शे

'सारिका' ने दुष्यंत के बाद जो हिं गजल या कि नयी गजल छापने का सिलसि चलाया था, स्वागत योग्य था, किंतु कु गजलों के बाद कमलेश्वर के जमाने में घटिया और बचकानी गजलें छपने ल थीं और वह सिलसिला अभी भी जारी अब कुछ सुधार हुआ है, क्योंकि आप शा गजलों को देखने का कष्ट कर रहे हैं. ह के एक अंक में बालस्वरूप राही की ती गजलें और रमेश यादव की एक गज छापी है. रमेश की गजल का तीसरा **जड़े फ्रेम में टंगे हुए हैं ब्रह्मचर्य के नियम, इसी फ्रेम के पीछे चिड़िया गर्भव हो जाती है'**, चारों गजलों में सबसे भा शेर हुआ.

▣ **ज्ञान प्रकाश, इलाहाबाद**

कुर्सी हथियाने वालों की साजिश

'सारिका' के सितंबर (प्रथम) अंक में 'जानवर और जानवर' के अंतर्गत नजरिये के जरिये जो बात आपने कही है, वह बहुत महत्व की है. इतनी बेबाकी से वह बात एक साहित्यिक पत्रिका के माध्यम से कही, यह और बड़ी बात है, क्योंकि मैं देख रहा हूं कि इस देश की पत्रकारिता इस स्थिति को भी अपनी राजनीति के नजरिये से देख रही है, अन्यथा पत्रकारों द्वारा ऐसी गुंडागर्दी और राष्ट्रविरोधी कार्यवाहियां करने वाले वर्ग के विरुद्ध प्रतिरक्षात्मक कदम के परिप्रेक्ष्य में उसके संप्रदाय को आधार बनाकर पुलिस और सेना में उसके लिए आनुपातिक आरक्षण की बात नहीं कही जाती. क्या इस धर्मनिरपेक्ष देश में विशेष सुविधाएं उसी अल्पसंख्यक वर्ग के लिए हैं, जिसके धर्म के नाम पर इंडोनेशिया से अफ्रीका तक फैले अनेक देश हैं, जो उसके लिए ज्यादा 'अपने' और 'प्रिय' हैं? बहुसंख्यकों के धर्म का देश इस संसार में कौन-सा है? मैं सांप्रदायिक बात नहीं कर रहा हूं, एक सत्य को ही उद्घाटित कर रहा हूं. मैंने किसी पत्र में नहीं पढ़ा कि किसी जिम्मेदार पत्रकार ने लिखा हो कि राष्ट्र के स्वतंत्रता दिवस पर राष्ट्र की राजधानी में राष्ट्रध्वज का अपमान करते हुए जिन लोगों ने 'पाकिस्तान जिंदाबाद' के नारे लगाये, उन्हें बिना किसी अधिक छानबीन के उसी समय इस देश से बलपूर्वक निष्कासित कर दिया जाना चाहिए था. देश के सम्मान की रक्षा निर्मम बनकर ही की जा सकती है, यह बात हमारी समझ में आनी चाहिए. इसीलिए 'सारिका' के वक्तव्य का महत्व है और इसलिए भी कि जुल्म और जहालत के खिलाफ आवाज बुलंद करने यदि साहित्य खड़ा हो जाये तो समझ लेना चाहिए कि उनका अंत निकट आ गया है.

बात इससे भी आगे जाती है. क्या यह सोचने का कारण नहीं कि संप्रदाय, भाषा, जातीयता, प्रांतीयता आदि के विविध स्तरों पर व्यापक रूप में फिरकापरस्ती चलने देने में उस देशव्यापी कुतंत्र का हाथ है, जिसने 'तंत्र' को 'लोक' के शरीर पर कोढ़ की तरह जम जाने की सुविधा दी है और नित नवीन पैदा होने वाले राजनीतिक दलों को इसी कोढ़ में खाज की तरह फूटने के अवसर प्रदान किये हैं? विदेशों से पैसा और हथियार प्राप्त कर हमारे ही हाथ-पैर काटने वालों को खुश रखने के पागलपन के कारण ही उन्हीं की कौमवालों के देशों में स्पष्टीकरण देने के लिए प्रतिनिधि भेजने की आवश्यकता अनुभव की जाती है. अजीब बात है कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हम एक धर्म विशेषवालों के राष्ट्रों को खुश करने के पीछे दीवाने हैं, जबकि वे धर्म के नाम पर हमसे कहीं भी समझौता करने को तैयार नहीं, कूटनीतिक स्तर पर हम एक अन्य देश को रिझाने में लगे हैं. जबकि उसे केवल अपने स्वार्थ से मतलब है और आदर्श के स्तर पर हम सारी दुनिया को प्रभावित करना चाहते हैं, जबकि उसके लिए आदर्श महज हाथ का रूमाल है.

हमें दुनिया को बता देना होगा कि सम्मानहीन समझौते पर हमें न तेल चाहिए, न शस्त्रास्त्र और न समर्थन. इसके बिना भी राष्ट्र जिंदा रह सकता है, फल-फूल सकता है, आंख दिखाने वाले की आंख निकाल सकता है और हाथ उठाने वाले का हाथ कलम कर सकता है. इस्राइल का उदाहरण हमारे सामने है.

विशाल जनशक्ति हमारे पीछे है, सभी प्रकार का बुद्धि-बल कौशल और साधन हमें उपलब्ध हैं और कुछ कर डालने के लिए हम कटिबद्ध हैं, परंतु. . .एक बहुत बड़ा 'परंतु' इस सब के साथ जुड़ा हुआ है. . .परंतु भारतमाता के सिंहासन को काट कर उसके टुकड़ों से अपनी कुर्सी पक्की करने वालों की साजिश पर हमारा वश नहीं है.

▣ आदर्श सक्सेना, बीकानेर.

नेताई जरिया-नजरिया

'सारिका' 1 सितंबर के 'ज़रिया-नज़रिया' में 'जानवर और जानवर' जैसे करंट टॉपिक के प्रकाशन पर साधुवाद.

एक बात परंतु उसी समय से मेरे दिमाग में 'पक' रही है. आम आदमी को आखिर कब तक अंधकार में रखा जायेगा. एक तरफ आप धर्मनिर्पेक्षता की गोहार मचाते हैं तो दूसरी तरफ आरक्षण लगा देते हैं. सर्टिफिकेटों में जाति व धर्म के खाने बांट देते हैं. अदालतों में सच्चाई उकेरवाने के लिए गीता व क़ुरान का प्रयोग करते हैं.

'जानवर और जानवर' जैसे नेताई भाषण से सांप्रदायिक दंगे कम नहीं होंगे. एक अदद कुत्ता, बिल्ली, गाय या सुअर दंगों का कारण नहीं. दरअसल, उन जानवरों के प्रति मन में बोयी गयी घृणा दंगों का कारण है.

अलगावों की इस नफरत को मिटाने के लिए मुझे इतिहास के उन पन्नों को आने वाली पीढ़ी से छिपाना होगा, जिसमें महमूद गज़नवी द्वारा सोमनाथ मंदिर के लूट विवरण अंकित हैं. उन बातों को दिमाग से निचोड़ देना होगा, जिसके कारण पाकिस्तान बना है. देश में होने वाले सभी धार्मिक पर्वों को समाप्त करना होगा, जो आदमी को अलग-अलग खानों में बांटा करते हैं.

नंदनजी, नहीं तो यह दंगे उस समय तक होते रहेंगे, जब तक मस्जिद में लाउड-स्पीकर पर हुई गोहारिया अजान से किसी हिंदू का बीमार पुत्र दहलकर मृत्यु के गले लगता रहेगा. रात भर चलने वाले कीर्तन से मुसलमान रोगी की नींद हराम होती रहेगी. धर्म के ठेकेदार मुल्ला, पंडित इस देश की घिनौनी राजनीति के हाथों बिकते रहेंगे.

उस समय तक मरने वाला इंसान 'इंसान' नहीं, सिर्फ हिंदू एवं मुसलमान बना रहेगा. इसे आप का नेताई बास लिये भावुक 'ज़रिया-नज़रिया' समाप्त नहीं कर सकता.

▣ शकील रिजवी, बलरामपुर

बधाई

'सारिका' में प्रस्तुत 'सेवामीटर' के लिए मेरी बधाई स्वीकार करें.

▣ श्रवणकुमार गोस्वामी, रांची

साक्षात्कार

श्रीकांत वर्मा से विनोद भारद्वाज की लंबी बातचीत

छठे दशक के उत्तरार्ध में कहानी और कविता के क्षेत्र में एक नाम काफी तेजी से उभरा था. यह नाम था श्रीकांत वर्मा का. एक दशक से कुछ अधिक तक साहित्य में सक्रिय रहने के बाद श्रीकांत वर्मा सक्रिय राजनीति में भी उतर आये. इसके बाद इनकी लेखनी की गति तो अवश्य धीमी हुई, पर इनकी साहित्यिक छवि धुंधलायी नहीं. श्रीकांत वर्मा से यह बातचीत की है कवि-पत्रकार विनोद भारद्वाज ने, जो इसके पूर्व निर्मल वर्मा (पूर्णांक 220), कुंवर नारायण (पूर्णांक 242) तथा रघुवीर सहाय (पूर्णांक 251) से भी 'सारिका' के लिए बातचीत कर चुके हैं. विनोद भारद्वाज के अ "सारिका के इस स्तंभ की कुछ दूसरी भेंटवार्ताओं की तरह कवि-कथाकार-आलोचक और राज्यसभा सदस्य श्रीकांत वर्मा से भी मेरी यह बातचीत एक खास फ्रेमवर्क में हुई है, जिसमें एक लेखक की दुनिया कई स्तरों पर अनौपचारिक ढंग से (बिना सनसनीखेज हुए : एक गंभीर धरातल पर) सामने आ सके. उद्देश्य यह नहीं रहा कि हर बात पर ब जाये—उद्देश्य रहा कि रचनाकार का मन अपने ढंग से खुलता चला जाये. भेंटकर्ता की मुख्य भूमिका संकेत चिह्न बनाने की रही. श्री से मैं पहली बार 1967 में मिला था—अपने कॉलेज के दिनों में. 1974 में 'दिनमान' में आने से पहले लखनऊ से जब भी दिल्ली आना हमेशा उनसे लंबी मुलाकातें होती रहीं. यह बातचीत जून-जुलाई, 198 में कुछ प्रारंभिक बैठकों के बाद टेप पर दो हिस्सों में हुई."

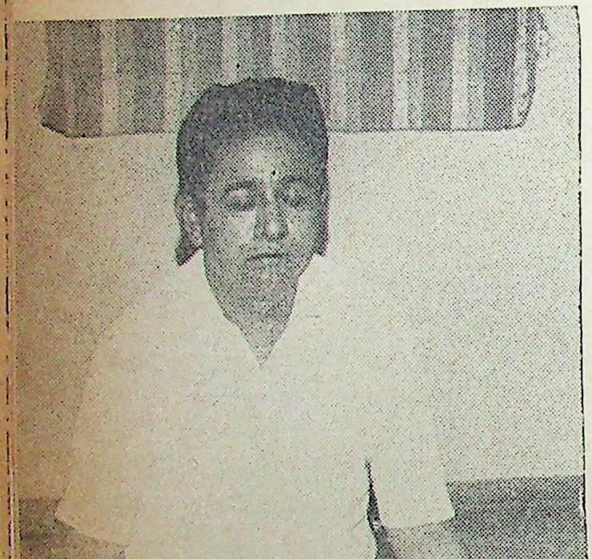

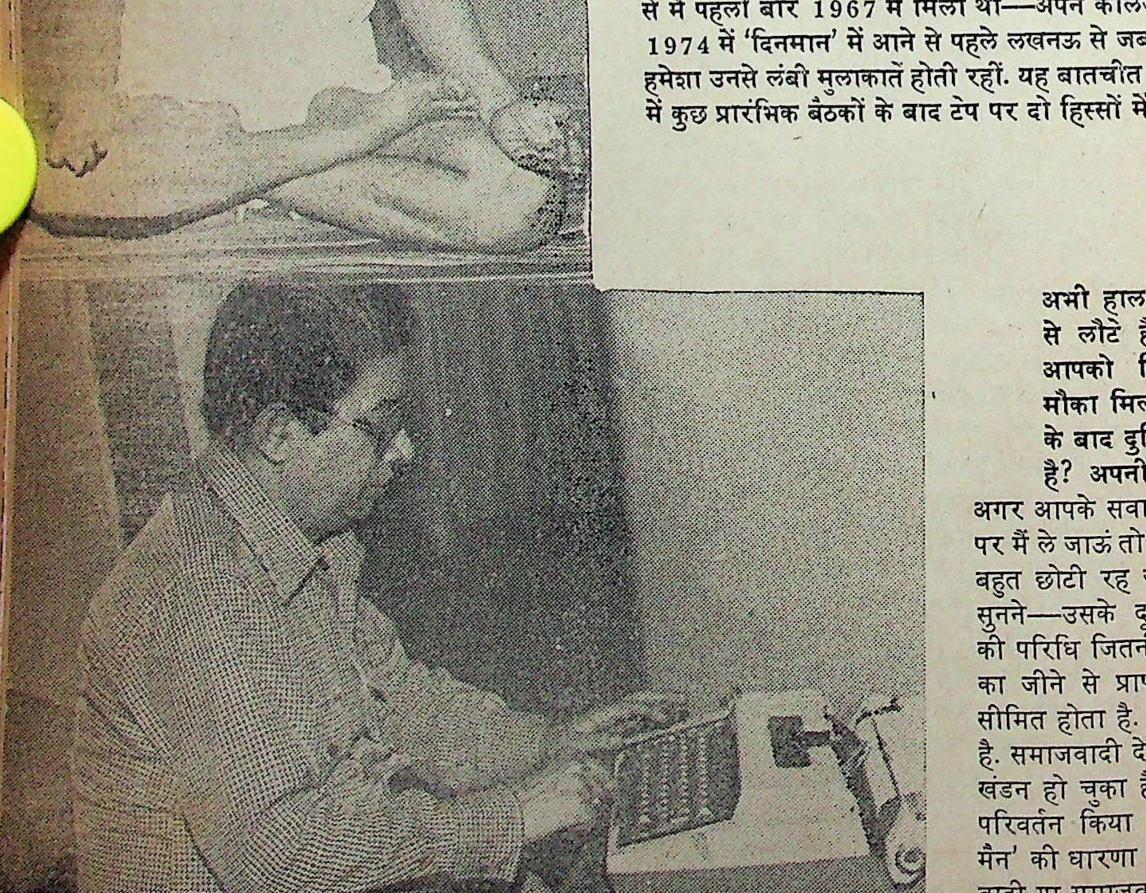

छाया : धर्मवीर जयनर

अभी हाल में आप चीन को से लौटे हैं. पिछले दस स आपको विदेश जाने का मौका मिलता रहा है. इन के बाद दुनिया आपको कैसी है? अपनी और बाहरी दोनों

अगर आपके सवाल को दर्शन के पर मैं ले जाऊं तो अंत में आदमी की बहुत छोटी रह जाती है. इंसान के सुनने—उसके दृश्यलोक और की परिधि जितनी भी व्यापक हो, का जीने से प्राप्त संतोष का सीमित होता है. हर जगह आदमी है. समाजवादी देशों में भी इस खंडन हो चुका है कि मनुष्य में परिवर्तन किया जा सकता है. मैन' की धारणा बेकार हो चुकी वादी या समाजवादी देश के मनुष्य

नियति में परिवर्तन तभी होगा, जब देश की मानसिक आबोहवा भी बदले

□ श्रीकांत वर्मा

ीने की दशा की शर्तों में परिवर्तन में ही है. भय से, आतंक से उसकी कई सामाजिक कमजोरियों पर बुराइयों का 'इलिमिनेशन' जरूर हो गया है. मैं समझता हूं, आदमी हर तरह आदमी है—उतना ही कमजोर, उतना ही महान, उतना ही दु:साहसी और उतना ही विनम्र. इंसान केवल सभ्यताओं उत्थान-पतन का गवाह या हिस्सेदार बनकर रह सकता है, लेकिन इंसान से और दुनिया से यह उम्मीद करना कि हमारे जीवन काल में कोई नया इंसान पैदा हो जायेगा, मुझे ठीक नहीं लगता. हिंदुस्तान की परिस्थितियों से कई बार मुझे बहुत चिढ़ होती है, लेकिन जब भी मैं बाहर जाता तो मुझे लगता है कि अगर हममें कुछ खास बुराइयां हैं तो दूसरे देशों में दूसरी ही बुराइयां हैं. इसलिए केवल स्थान-परिवर्तन मनुष्य में परिवर्तन की बात एक सरलीकरण करना होगा.

लेखन प्रक्रिया की 'पेरिस रिव्यू' की प्रसिद्ध भेंटवार्ताओं की शैली हालांकि काफी रूढ़ हो चुकी है—विकृत भी—फिर भी इस भेंट में आपकी लेखन प्रक्रिया के बारे में कुछ जानना चाहूंगा. क्या आप खूब लिखते हैं और उस पर काफी काम करना पसंद करते हैं? अपनी रचना—खास तौर से कविता को प्रकाशन से पहले क्या आप मित्रों को दिखाना या सुनाना पसंद करते हैं?

नियमित रूप से लिखना मेरे लिए कभी संभव नहीं हो पाया. कोशिश बहुत की—कई प्रकार के 'स्वांग' किये—कई तरह के बाहरी प्रसाधन जुटाने की कोशिश की कि नियमित लिख सकूं, पर उसके लिए आवश्यक अनुशासन कभी नहीं बना पाया. आगे के बारे में कह नहीं सकता—कोशिश जरूर कर सकता हूं. बीच-बीच में मैं लिखता रहा और यह जरूर है कि जो भी लिखता हूं, उसे कई बार लिखता हूं. कोई भी कविता जो मैं लिखता हूं, उसे मैं बार-बार लिखता हूं. तीन-चार बार लिखने के बाद अगर कोई रचना औसत दिखने लगे तो मैं उसे फेंक देता हूं. यह हो सकता है कि उस रचना के पीछे का अनुभव या आवेग फिर किसी दूसरी रचना में व्यक्त हो जाये—बेहतर रूप में. जब तक किसी रचना के बारे में उसके 'फॉर्म' के बारे में मुझे यह न लगे कि वह दूसरों को खींचेगी, मोहित करेगी, जादू उन पर असर करेगा, तब तक मैं उसे छपने नहीं देता. जहां तक रचना को सुनाने का सवाल है—अपने आरंभिक काल में—63-64 तक अपनी कविताएं दूसरों को सुनाने का बहुत चाव होता था. तब अक्सर जब मैं कोई कविता लिखता था तो तत्काल उसे किसी मित्र के पास जाकर सुनाने की इच्छा होती थी. जब मैं बिलासपुर में रहता था तो नागपुर जाकर मुक्तिबोध को अपनी रचनाएं सुनाने का लोभ संवरण नहीं कर पाता था. और जब उनसे दाद मिलती थी या जब वे संतुष्ट हो जाते थे तो संतोष मिलता था. पिछले दस-पंद्रह सालों में इस तरह से सुनाने का मोह नहीं रह गया है. शायद यह एक तरह की कुंठा है. शायद इसका कारण यह हो कि मैंने देखा कि कविताएं बहुत कम लोगों तक पहुंचती हैं. कविता एक अप्रासंगिक-सी चीज हो गयी है—खास तौर से इस बोर्ज़ुआ समाज में. जो भी कारण हो, बहरहाल यह मानसिक स्थिति अब बन गयी है. कविताएं अब मैं सुनाता नहीं.

हो सकता है, इसके पीछे इस तरह के कारण हों कि शुरू में—खास तौर पर किशोरावस्था में कवि या रचनाकार में जो उत्साह और उतावलापन होता है—अपनी रचना को सुनाने का, वह बाद में परिपक्वता आ जाने पर कुछ कम हो जाता हो....

इसके पीछे मुझे 'परिपक्वता' वगैरह नहीं दिखती, क्योंकि कविता को सुनाना एक सहज प्रवृत्ति है. बनावटीपन तो कविता न सुनाने में है, सुनाने में नहीं, क्योंकि कविता की रचना करनेवाला अक्सर एक किशोर मन ही होता है, चाहे उसके पीछे आपका आवेग कितना ही परिपक्व हो या कितनी ही उसके पीछे उम्र की सीख हो. जब कविता के पीछे का किशोर मन समाप्त हो जाता है तो समझिए कविता भी समाप्त हो जाती है. सुनाने में किसी तरह के उतावलेपन को मैं नहीं देखता, बल्कि मैं समझता हूं, जो चीजें सहज थीं, जिंदगी में वे कम होती जा रही हैं.

श्रीकांतजी, अपने बचपन और प्रारंभिक दिनों के बारे में कुछ बताइए, चूंकि इस बारे में हमारे पास कोई खास जानकारी नहीं है. वे क्या चीजें थीं, जो आपके जीवन में महत्वपूर्ण रहीं?

पहली बात तो यह कि मैं मध्यवर्ग, लेकिन सामंती संस्कारों वाले परिवार में पैदा हुआ. इससे मेरी मानसिक बनावट उसी ढंग से हुई—आज भी मेरे मन में वैसे ही भय, आशंकाएं इत्यादि हैं, जो एक तरह के सामंती परिवारों में होती हैं. मेरे पिताजी वकील थे—उससे पहले मेरे दादा वकील थे. उनकी अच्छी-खासी जमीन-जायदाद थी. नौकर-चाकर थे. आराम और सुविधा-प्रियता का वातावण था. आज भी, इतने संघर्षों के बाद भी, मुझमें उसी तरह की सुविधाप्रियता है जो कि एक सामंती संस्कारों में जन्म लेने वाले व्यक्ति में होती है. दूसरे, मैं अपने घर में सबसे बड़ा लड़का था. बहुत ज्यादा लाड़-प्यार मिला. बहुत महत्व मिला. मेरे खयाल में इसने भी ऐसी भावना पैदा की कि मैं एक विशिष्ट व्यक्ति बनूं. दूसरों का ध्यान मुझ पर केंद्रित होना चाहिए, मुझे दूसरों से अलग दिखना चाहिए. एक ऐसे व्यक्ति के रूप में मुझे होना चाहिए जिस पर सबकी निगाहें टिकी रहें. अगर मैं बड़ा लड़का न होता तो शायद यह बात न होती.

मैं बिलासपुर में पैदा हुआ था. अब तो खैर वह एक शहर-सा हो गया है, तब वह कस्बा ही था. कस्बे में आदमी की जड़ें ज्यादा गहरी होती हैं. महानगर में जन्म

• •

लेने वाले व्यक्ति का 'एलिनियेशन' जितना जल्दी होता है, उतना जल्दी गांव या कस्बे के व्यक्ति का नहीं होता. कम-से-कम हमारे देश में यह बात आज भी सही है, क्योंकि हमारा जीवन आज भी इतना औद्योगिक नहीं हुआ. इसके बावजूद कि मैं पच्चीस साल की उम्र में दिल्ली आ गया—आज भी मेरी जड़ें परिवार और उसके परिवेश में हैं—बावजूद इसके कि आधुनिकता मेरे लिए 'फेटिश' बन गयी और पश्चिमी माहौल और संस्कृति ने मुझे इतना आक्रांत कर दिया कि उससे उत्पन्न मृत्युबोध ने मुझे दबोच लिया, तब भी मेरी जड़ें अब तक उखड़ नहीं पायी हैं. उसकी वजह यही है कि मैं अत्यंत छोटे कस्बे में पैदा हुआ और उसके संस्कारों से, अच्छा ही हुआ कि मैं छुटकारा नहीं पा सका.

तीसरी बात यह है कि मेरा बचपन जंगलों में बीता. मेरे पिता जमींदार के वकील थे और मेरे ताऊ उस जमींदारी में एक दीवान थे. हमारा इलाका एक जंगली इलाका है. जंगलों से मेरा बहुत साबका पड़ा. करीब 15-16 की उम्र तक मेरा काफी वक्त जंगलों में ही बीता. जंगलों की हरीतिमा या उसके सौंदर्य ने मुझे बहुत ज्यादा अपनी तरफ खींचा. आज भी संगीत, पेंटिंग या स्त्री के सौंदर्य को देखकर मेरे अंदर एक विशाल जंगल—उसका सौंदर्य जाग उठता और बोलने लगता है. जंगलों की अनंतता और अकेलेपन ने भी मेरे अंदर गहरी और स्थायी छाप छोड़ी. जंगल में एक तरह का भय होता है—सिकुड़ता हुआ, थरथराता हुआ. उस भय या रहस्य ने मुझे आकृष्ट किया. मेरी कविताओं में—विशेषकर आरंभिक कविताओं में जंगलों और प्रकृति का असर है. मेरी कविताएं जंगलों का जैसे बयान हैं.

पहले आपने शायद कविताएं ही लिखी थीं. आपने कब लिखना शुरू किया?

1948 में कॉलेज के दिनों में शुरू में मैंने कुछ कविताएं लिखीं, पर उनमें 'मेच्योरिटी' नहीं थी. कुछ विशिष्टता दिखाने के लिए ही उन्हें लिखा, गंभीरता से मैंने 1953 से लिखना शुरू किया. उन दिनों नयी कविता के बीज अलग-अलग शहरों में पड़ रहे थे.

सृजन के क्षण में लेखक के सामने ऐसी कोई मजबूरी नहीं होती. जिस हद तक होगी, उस हद तक उसका लेखन अलेखन होगा. इसलिए प्रतिबद्धता का प्रश्न ही नाहक है.

शुरू में आपने किस कविता को पढ़ा—'तार सप्तक' के कवियों को या अन्य कवियों को?

एक लेखक बनने की चाह या ललक तो मुझमें शुरू से ही थी. सबसे पहले मुझ पर निराला और पंत ने अपनी छाप छोड़ी. हालांकि दिनकर, बच्चन जैसे कवि उन दिनों लोकप्रिय थे, लेकिन इन कवियों ने मुझे इतना प्रभावित नहीं किया कि मैं लिखने की प्रेरणा प्राप्त करूं. फिर 1950 के आसपास मैंने अंग्रेजी कवियों को पढ़ा—एलियट, एजरा पाउंड, डायलन टॉमस आदि को. बहुत ज्यादा कवियों के ग्रंथ तो एक छोटे कस्बे में मिल नहीं सकते थे, लेकिन मुझे एलियट ने बहुत प्रभावित किया. मुझे इन कवियों को पढ़कर लगा कि जैसे कविता का एक नया संसार मिल गया है. वह संसार मुझे नजदीक लगता था. इसके बाद कुछ लोगों ने 'तारसप्तक' का परिचय दिया. उसके कवियों ने मुझे प्रभावित और चकित किया. कुछ वर्षों के बाद 'दूसरा सप्तक' पढ़कर मैं और भी आकृष्ट हुआ, क्योंकि 'तार सप्तक' की तुलना में इसकी भाषा मुझे अधिक समकालीन लगी. मुझे लगा कि मेरे पास एक आत्मीय संसार है, जिसे मैं सुन सकता हूं, समझ सकता हूं.

आपका प्रथम काव्य संग्रह 'भटका मेघ' दिल्ली में आने के बाद छपा. . .

दिल्ली आने से पहले बिलासपुर से 54-55 में मैंने 'नयी दिशा' पत्रिका निकाली थी. उसमें मैंने नये प्रयोगधर्मी रचनाकारों को छापने का ही व्रत लिया था. नयी दिशा का काफी विरोध भी हुआ था. वह एक सहकारी प्रयत्न था, जिसके सिर्फ दो अंक निकले थे. फिर 56 में मैं दिल्ली आ गया. 57 में 'भटका मेघ' छपा, जिसमें कविताएं 54-55 की थीं.

हां, मुझे याद आ रहा है, लखनऊ में अपने विश्वविद्यालय के दिनों में मैंने उसे 'आचार्य नरेंद्रदेव पुस्तकालय' से लेकर पढ़ा था. उ कवर भी एक 'आर्टिस्ट' का था शायद हुसेन. . . .

नहीं, कवर उसका रामकुमार का है. मेरा परिचय दिल्ली आकर ही हुआ था जैसा कि मैंने बताया, हर चीज, जो प को तोड़ती थी, मुझे आकृष्ट करती इसीलिए रामकुमार से मैंने उनका रेखा मांगकर कवर बनवाया. शायद 'भटका पहला संग्रह था, जिस पर किसी आधु चित्रकार का कवर था.

उस वक्त के दिल्ली के साहि माहौल की क्या खासियत क्या बातें थीं, जिन्होंने आप गहरा असर डाला?

दिल्ली आकर मुझे ऐसा ही लगा, 1910-30 के बीच यूरोप-अमेरिका लेखकों-कलाकारों को पेरिस पहुं लगता होगा. यह सही है कि दिल्ली में दिनों भी (आज भी) अंग्रेजी का बोल था, फिर भी चाहे प्रकाशकों की त में, चाहे जीविका की तलाश में हिं साहित्यकार दिल्ली की ओर खिंचे आ रहे थे. सभी प्रमुख चित्रकार-ले दिल्ली या तो रहने लगे थे या फि दिल्ली की यात्रा करते रहते थे. उन मैथिलीशरण गुप्त, नवीन, दिनकर, ब अज्ञेय हिंदी के सारे मूर्धन्य कवि यहां थे. उसके अलावा नये साहित्य जिन्होंने थोड़ी-बहुत ख्याति अर्जित ली थी, वे भी यहीं थे—नरेश मेहता, वर्मा, ओंकारनाथ श्रीवास्तव, नें जैन, सुरेश अवस्थी इत्यादि. दिल्ली हिंदी वालों की छोटी-मोटी कॉलोनी गयी थी—दिल्ली जैसी वैभवशाली में जैसी भी कॉलोनी बने, आकर्षित ही. तो दिल्ली में आकर मुझे साहित्य के बीच सुख का अनुभव हुआ. बिला में आधुनिक साहित्य नहीं मिलता था न ही वह वेवलैंथ, जिसकी कि मुझे थी. नागपुर में जरूर मुक्तिबोध थे कुछ समय के लिए नरेश मेहता थे. फॉर्मेटिव पीरियड में इन मुलाकातों योगदान था, पर दिल्ली आकर मुझे कि मैं भी कुछ हूं और कुछ हो हूं और इस कुछ हो सकने के लिए जो सुविधाएं-सहायता चाहिए, वे दि मिल सकती हैं. तो जिस विशिष्ट

झे तलाश थी, जिसके लिए मैं संघर्ष कर हा था और जिस संघर्ष में मैं पहले भी केला था और आज तो बिल्कुल ही केला हो गया हूं—उस तलाश में मुझे ल्ली आते ही ज्ञान की छटा सी दिखी.

मुक्तिबोध से आपका परिचय तो नागपुर में ही हुआ था. उनसे परिचय के बारे में कुछ बताइए.

क्तिबोध से मेरा परिचय नागपुर में 954 के आसपास हुआ. उस समय वे रकारी दफ्तर, सूचना विभाग में काम रते थे और मेरे मित्र थे रामकृष्ण श्रीवास्तव, जो कवि थे, अब तो उनका सन हो गया है, वे भी मुक्तिबोध के त नजदीक थे. उनके माध्यम से मेरा क्तिबोध से परिचय हुआ. एक मेरे अन्य त्र थे, जीवनलाल वर्मा 'विद्रोही'. कवि जो अब भोपाल में हैं. मैं, विद्रोहीजी, मकृष्ण श्रीवास्तव और मुक्तिबोधजी ल-डेढ़-साल में बहुत निकट आ गये. बाद मुक्तिबोधजी की प्रेरणा से ही 'कृति' कली, जिसके वे सलाहकार भी थे. मुक्तिबोजी की कविता ने आरंभ में मुझे थोड़ा-सा आकर्षित किया, लेकिन जब मैं उनके नजदीक पहुंचा, तो उनके व्यक्तित्व ने——उनके व्यक्तित्व में इतनी गहरी काली आंच थी कि जिसको सह सकना कठिन था. एक भयानक आंच——एक तपस्वी की आंच. इस आंच ने मुझे खींचा. इसी आंच ने, बहुत संभव है, बहुत से उनके संबंधियों को, मित्रों को उनसे अलग कर दिया होगा. पर चूंकि मैं तो एक साहित्यिक था, जिसके मन में स्वाभाविक रूप में तपस्वियों, ऋषियों के प्रति एक श्रद्धा होती है, तो मैं उनकी ओर और खिंचा और फिर उसके बाद मैंने उनकी और भी कविताएं पढ़ीं और उनके अंदर जो प्रखर बौद्धिक व्यक्तित्व था, उससे मैं बंध और बिंध गया. मुक्तिबोध की जो टोटल पर्सनेलिटी है——उनकी कविता और जीवन——उसने मुझे बांधा और आज भी मुक्तिबोध से मैं मुक्त नहीं हो पाया हूं.

'कृति' निकालते वक्त आप लोगों ने किन साहित्यिक प्रतिमानों को सर्वोच्च प्रतिष्ठा दी थी?

'कृति' निकालने के पीछे दो-तीन कारण थे——कोई बहुत बड़ा कारण नहीं था. सिर्फ यही था कि साहित्यिक जरूरत को पूरा करने वाली कोई पत्रिका हम लोगों को दिखाई नहीं पड़ रही थी. पटना, लखनऊ, जबलपुर, बनारस इत्यादि कई शहरों से छोटी पत्रिकाएं निकल रही थीं, पर हमें——नरेश मेहता, निर्मल वर्मा, रामकुमार आदि को ऐसा लग रहा था कि रचनात्मक स्तर पर तो ये पत्रिकाएं ठीक हैं,पर आलोचनात्मक स्तर पर वे किसी न किसी गुरुडम को आगे बढ़ाती हैं. ऐसे समय में जब नया साहित्य बनने की प्रक्रिया में है तो इस स्थिति का साहित्य पर प्रभाव पड़ सकता है और ऐसा हुआ भी था. बहुत-सी दूषित बहसें उन दिनों हो रही थीं, जिनका साहित्य से कोई संबंध नहीं था. प्रगतिशील लोग राजनीति को साहित्य पर थोप रहे थे और दूसरे छोर पर साहित्य को बिल्कुल किताबी बनाया जा रहा था. हम एक तीसरे रास्ते की तलाश में थे. तब 'कृति' का जन्म हुआ. नरेशजी और मैं उसके संपादक थे. आज भी आप 'कृति' के अंक उठाकर देख लीजिए, हमने 'कृति' को तमाम

घर पर : जिंदगी एक, पहलू अनेक

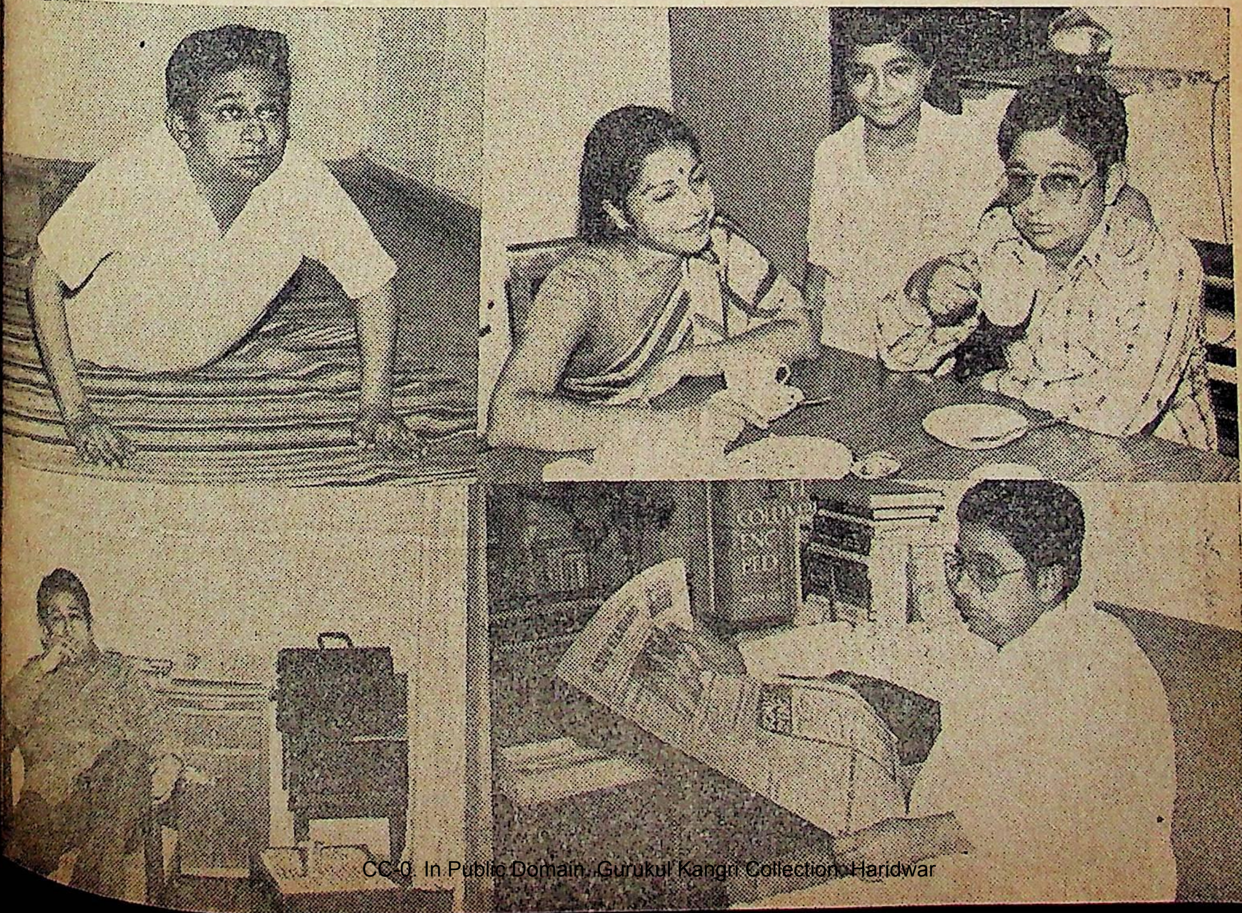

पूर्वग्रहों से मुक्त रखा, उसे केवल रचना की पत्रिका के रूप में प्रतिष्ठित किया.

अपने लेखन के तमाम वर्षों में आपको श्रीकांतजी, कौन-सा पीरियड ऐसा दिखता है, जब आपको लगा हो कि मैं अपनी बात कह रहा हूं. जो मुझे कहना है, उसे मैंने पूरी तरह नहीं, तो काफी हद तक पकड़ लिया है....

हां, यह बात आपकी सही है. हर रचना लेखक की अपनी रचना नहीं होती. हर रचना में लेखक का अपना व्यक्तित्व नहीं होता या प्रत्येक रचना-काल लेखक का अपना रचना-काल नहीं होता, लेकिन लिखते-लिखते वह एक ऐसे स्थल पर पहुंच जाता है, जब उसे लगने लगता है कि यही चीज थी, जिसकी मुझे वर्षों से तलाश थी —जिसके लिए मैं भटक रहा था. इस तरह का रचना काल मेरे यहां 1960 के बाद से शुरू हुआ और कविताओं के माध्यम से शुरू हुआ, गद्य के माध्यम से नहीं. लिख तो मैं बहुत समय से रहा था, लेकिन उस लेखन में मेरा अंतर्द्वंद्व व्यक्त नहीं था. पहले की रचनाओं में कुछ करुणा थी—कुछ पुकार थी—कुछ जैसा मैंने कहा—प्रकृति के प्रति एक तरह की ललक थी, लेकिन यह तो किसी भी कवि में हो सकती है. ऐसा क्या है, जो एक कवि को विशिष्ट बनाता है—वह है उसकी भाषा. भाषा से ही कवि स्मरण किया जाता है. मुझे अपनी भाषा 1960-61 में मिली, जब मैंने अपनी निराशाओं, पराजयों और कुंठाओं को संबोधित करना प्रारंभ किया. तब मेरी भाषा जैसे ढलकर आने लगी. यों कहा जाये भाषा भी और निराशा भी.

हां, मुझे लगता है 'माया दर्पण' में इन चीजों का कलमिनेशन हम देख सकते हैं, बल्कि कहानी-संग्रह 'झाड़ी' में भी, चूंकि दोनों को एक साथ देखा जाना चाहिए.

हां, आपने काल-निर्धारण ठीक किया है. और संवेदना के हिसाब से भी दोनों को साथ देखा जाना चाहिए. बल्कि आप पहले व्यक्ति हैं, जिसने इस नब्ज पर उंगली रखी है. वे मेरे घोर पराजय और अविश्वास के दिन थे. वे सतही नहीं थे, बल्कि बड़े गहरे थे. जैसा मैंने बताया कि मेरा आरंभ तो एक सामाजिक-संस्कारी व्यक्ति के रूप में हुआ, लेकिन आधुनिक जीवन के संक्रमण या यह कहिए कि नयी दुनिया में पैर रखने के बाद जिन संघर्षों से मुझे गुजरना पड़ा, उसने मेरे विश्वासों को हिला दिया. लेकिन मैं अपने कष्टों का बयान न तो करता हूं और न मुझे करना चाहिए, यह एक निजी चीज है. लेखक साहित्य में बयान नहीं देता—लेखक कष्टों और मानवीय पीड़ा को सिर्फ अर्थ देता है. अपनी तकलीफों में से गुजरते हुए मैं और अकेला होता गया. अपनी पराजय और निराशा की दुनिया को समझते हुए मुझे लगा कि सामाजिक परिवर्तन कठिन कार्य है—हम आदर्शों की जितनी भी बात कर लें, अंत में एक मूक पराजय और मौन समझौता ही बचा रह जाता है. जैसे-जैसे मुझमें ये धारणाएं बनने लगीं कि विचारधाराएं ढह रही हैं और मनुष्य खुद अपनी निगाह में बौना होता गया है, आधुनिक साहित्य की अपनी समझ और अपनी जीवन-प्रक्रिया से गुजरते हुए इस आशय पर पहुंचकर मैं और अकेला होता गया. 'झाड़ी' और 'माया दर्पण' दौर की रचनाएं हैं, जिनमें दर्प नहीं बल्कि वस्तुस्थिति से साक्षात्कार

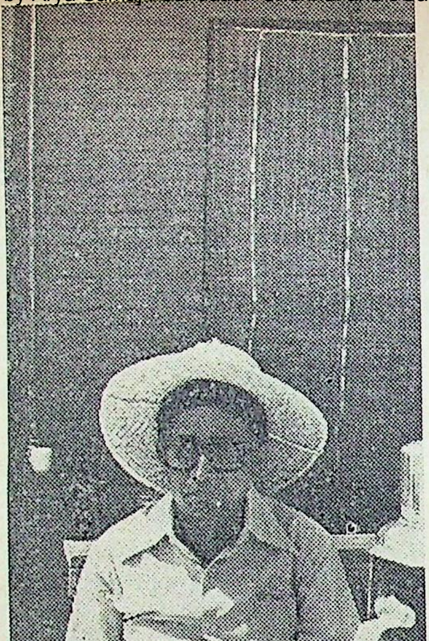

चीन के एक पुरातत्व स्थल पर

अकेलेपन के संदर्भ में ही श्रीकांत साठ के दशक के प्रारंभिक दौर हिंदी में अस्तित्ववाद और उ जुड़े साहित्य की बड़ी चर्चा हुई ऐसे रचनाकारों की बाढ़-सी गयी थी, जो सार्त्र-कामू-काफ्का नाम लेकर ही तर जाते थे. नकली माहौल में से आज चीजें छंट चुकी हैं, लेकिन आ लेखन पर भी अस्तित्ववाद उससे जुड़े विचारों की किसी न किसी तरह दिखती आज आप अस्तित्ववाद के प्रभाव को सतही मानते हैं गहरा?

अस्तित्ववाद यूरोपीय व्यक्ति का युद्धो दर्शन है. उसमें एक गहरी निराशा एक सतही आशावाद है. उसका बहुत सरल है : सिर्फ व्यक्ति ही होने का आशय ढूंढ़ सकता है और आ को अर्थ दे सकता है. एक तरह से लुभावना दर्शन है. इसीलिए यह भारत उन बहुत से लोगों के लिए अफीम बन रह गया, मगर कुछ भारतीय लेखकों इस दर्शन का गहरा असर भी 1960-70 के दौरान मुझ पर अस्तित्व का गहरा प्रभाव इसलिए पड़ा, क्‍ हमारी सामाजिक तथा मेरी निजी ही परिस्थितियां उसके अनुकूल थीं. काफ्का और सार्त्र का कृतित्व अलग-अलग कारणों से पसंद है. तीनों एक शेल्फ में नहीं रखा जा सकता.

अस्तित्ववाद के दार्शनिक पक्ष अगर हम अधिक चिंता न करें—तो भी यूरोपीय समाज बौद्धिक की भूमिका पर माध्यम से कई महत्वपूर्ण उठी थीं. जूलियन बेंदा के 'ट्रीजन ऑव द क्लर्क्स' (जीवियों का विश्वासघात) ध्यान में रखते हुए क्या आ लेखक अपनी बात अपने अनुभवों के आधार पर अधिक ईमानदार है या एक विचारधारा या पार्टी की

से अपने को आत्मसात करके ईमानदार सिद्ध होता है? वैसे तो 'जिरह' में आपकी कई टिप्पणियां हैं—इन प्रश्नों पर विचार करने वाली—पर इस विषय पर यहां संक्षेप में कुछ कहें.

क राजनीतिक पार्टी की बहुत-सी मांगें ती हैं. ढेर-सारे अंतर्विरोध होते हैं. बाहरी दबावों से समझौते करती है. ां तक कि सबसे अधिक मार्क्सवादी टियां भी प्राप्त स्थिति, सामाजिक नावट और अंतर्राष्ट्रीय हालात को र में रखते हुए समझौतों के लिए वश होती हैं और अपने बुनियादी आदर्श विरुद्ध आचरण करती हैं. पिछले तीस ों में सोवियत संघ से लेकर चीन तक ने वादी व्यवस्थाओं से समझौते किये इसकी क्या वजह है?

सृजन के क्षण में लेखक के सामने ऐसी ई मजबूरी नहीं होती. जिस हद तक गी, उस हद तक उसका लेखन अलेखन गा. इसलिए प्रतिबद्धता का प्रश्न ही रुक है. प्रतिबद्धता किससे? लेखक क अपनी रचना के क्षण और रचना निहित मूल्यों की रक्षा के लिए प्रतिबद्ध बल्कि मेरी तो यह धारणा है कि वह के लिए भी प्रतिबद्ध नहीं. वह रचना ता है, क्योंकि वह रचना से बच नहीं कता. जो बचेगा, वह कैसे रचेगा? ना एक आकस्मिक घटना है, सुचिंतित सरा नहीं.

श्रीकांतजी, यह बताइए कि बरसों पत्रकारिता से जुड़े रहने के बाद—पत्रकार होने की स्थिति ने आपके भीतर के लेखक की भाषा पर कैसा और कितना महत्वपूर्ण असर डाला?

कारिता ने—खास तौर से हिंदी की नुनिक पत्रकारिता ने वैसे तो अनेक ी लेखकों के कृतित्व पर अपना असर ा है, पर कुछ लेखकों पर यह असर ता है. कुछ पर इसका अच्छा असर कुछ पर प्रतिकूल है. जहां तक मेरा व है, मुझे लगता है, मुझ पर इसने तर ही असर डाला है, क्योंकि पत्रकारिता बहुत साफ दृष्टि दी है—कम से कम ों में अधिक से अधिक बात कहने की ति और सरल ढंग से जटिल से जटिल बात को कहने की आदत डाली है. साहित्य में भी ये चीजें कुछ हद तक जरूरतें हैं—पर उस हद तक नहीं, जितनी पत्रकारिता की आवश्यकताएं बन गयी हैं. इस हिसाब से पत्रकारिता ने मुझे खास ट्रेनिंग दी—मेरे चिंतन को अधिक तार्किक और मेरी भाषा को ज्यादा स्पष्ट और दो टूक बनाया.

पत्रकारिता में एक तरह की जो जल्दबाजी रहती है—अपनी बात को फौरन कह देने की मजबूरी, जबकि लेखक अपनी बात को रोक सकता है. वक्त ले सकता है. इन दो दुनियाओं के फर्क के तनाव को आप किस तरह से महसूस करते रहे हैं?

यह बात आपकी सही है कि लेखन में तात्कालिकता आवश्यक नहीं होती, लेकिन धीरे-धीरे एक बीच का रास्ता बन जाता है, जहां रचना की गरिमा और उसकी गुरुता-गंभीरता भी बनी रहती है, साथ ही आडंबरों को निकाल देने में भी लेखक सफल हो जाता है. अच्छा लेखक दोनों दुनियाओं की कमजोरियों से मुक्त होकर लिखता है. आडंबरों से वह मुक्त हो जाता है. पहले जो मैं रचना करता था, उसमें आडंबर रहता था. छोटी-सी बात को मैं बड़ी करके रखने की कोशिश करता था. 'इंप्रेस' करने की प्रवृत्ति रहती थी, लेकिन पत्रकारिता के असर से यह 'इंप्रेस' करने की प्रवृत्ति मुझमें नहीं रही क्योंकि वह बुनियादी रूप में संप्रेषण करना चाहती है.

यानी आपके लेखन में पत्रकारिता की भूमिका 'पॉजिटिव' किस्म की रही. . .

हां, यह कहा जा सकता है. . . .

पत्रकारिता की दुनिया से ही धीरे-धीरे आप सक्रिय राजनीति की दुनिया में आये. आप इस राजनीति की दुनिया में क्या करना चाहते हैं?

साहित्य और राजनीति के सवाल पर लंबी-लंबी बहसें की जा चुकी हैं और उसका कोई आसान जवाब भी नहीं है, लेकिन यह बात साफ है कि जब कोई चित्रकार या साहित्यकार राजनीति में आता है तो वह चित्रकला या लिखना सीखने के लिए नहीं आता. कोई कारीगर अगर राजनीति में आता है तो वह अपने माध्यम को बेहतर बनाने के लिए नहीं आता. कोई कवि-लेखक जब राजनीति में आता है तो इस दृष्टि से नहीं कि उसका शिल्प या रचना संसार बेहतर हो जायेगा. राजनीति एक दूसरे किस्म का अनुभव है. जब भी कोई लेखक-कलाकार राजनीति में आता है तो वह गहरे सामाजिक मानसिक दबाव से ऐसा करता है. जब वह यह अनुभव करता है कि साहित्य मेरे अंदर की अभिव्यक्ति को पूरा नहीं कर रहा है तो वह राजनीति में आता है. साहित्य उसे इस अर्थ में अपर्याप्त नजर आता है कि जो काम राजनीति कर सकती है, वह साहित्य नहीं कर पाता. मेरा जीवन पूरी तरह 'घरेलू' नहीं रहा—सामाजिक उथल-पुथल में मैं हमेशा रहा. मेरे घर में ही कांग्रेस का पार्टी ऑफिस था. इसलिए बहुत दिनों तक साहित्य लिखते-लिखते जब मुझमें अपराध बोध-सा जागने लगा, तो मैंने साहित्य को विकृत और दूषित करने की बजाय राजनीति में सीधे-सीधे हिस्सेदारी करना बेहतर समझा. साहित्य को मैंने बैसाखी नहीं बनाया. जो लोग साहित्य को सीधी हिस्सेदारी में बदलकर उस पर बोझ डालते हैं, वे साहित्य को भी तोड़ते हैं और इस प्रक्रिया में खुद भी टूटते हैं. ऐसे कलाकारों की संख्या इस शताब्दी में कम नहीं है, जिन्होंने इस द्वंद्व में पराजित होकर आत्महत्याएं की हैं.

क्या आप मानते हैं कि राजनीति में सक्रिय हिस्सेदारी ने आपके साहित्य की भाषा पर कोई निर्णायक असर नहीं डाला? भाषा के 'स्वभाव' पर इसका क्या कोई असर नहीं पड़ता?

मैं नहीं सोचता कि राजनीति ने मेरी भाषा को इस हद तक प्रभावित किया है कि वह मेरे लिए—मेरे पिछले साहित्य के लिए एक अपरिचय का बोध बन जाये. मैं तो अब भी यही समझता हूं. राजनीति, साहित्य पर सीमित प्रभाव ही डाल सकती है. राजनीति लेखक के विशाल अनुभव का एक छोटा-सा हिस्सा है. वह विशाल अनुभव जरूर लेखक की भाषा पर असर डालता है—उसे तोड़ता-मरोड़ता है—उसी हद तक राजनीति भी भाषा पर असर

• •

डालती है, लेकिन अगर हमने राजनीति की शर्तों को साहित्य पर नहीं लाद दिया है तो कोई कारण नहीं कि अपनी भाषा की गंभीरता और मर्यादा को सुरक्षित न रखा जा सके. मेरा खयाल है, इस शताब्दी के अनेक लेखकों ने ऐसा किया है. हमारे सामने आक्टेवियो पॉज का एक उदाहरण है, जो राजनीति में हिस्सा लेते रहे हैं, पर उनकी कविता रूमानी और अति-यथार्थवादी किस्म की है. उनकी कविता पर राजनीति का कोई ऐसा असर नहीं है, जिसकी मांग हमारे राजनीतिक कार्यकर्ता बनाम आलोचक करते रहे हैं. पिछले ढाई-तीन वर्षों की कविता में मैंने जो काल चुना है—ई. पू. 500 से ईसा के तीन सौ साल बाद का—उसमें समसामयिक राजनीति की उथल-पुथल नहीं है, बल्कि ढाई हजार वर्ष पहले के साम्राज्यों का पतन, वैभव, आकांक्षाएं मेरी रचना का विषय बनी हैं. वैसे तो किसी भी साहित्य में काल कोई भी हो, समसामयिकता आवश्यक है, लेकिन जैसा मैंने कहा, जिस तरह के संबंध की मांग हमारे मार्क्सवादी आलोचक करते हैं, उसे मैंने स्वीकार नहीं किया. उसे हमेशा रद्द किया है.

जैसा आपने बताया, एक तरह से बचपन से ही आप सक्रिय राजनीति की दुनिया से परिचित रहे—उसे सीधे शारीरिक रूप में जानते रहे. एक साधारण राजनीतिक कार्यकर्ता की जिंदगी से शुरू होकर शिखर राजनीति तक की दुनिया को ध्यान में रखते हुए आजादी के बाद की राजनीति को आप आजादी से पहले की राजनीति की तुलना में कैसे देखते और समझते हैं?

स्वाधीनता के पहले की राजनीति के सामने एक सीधा लक्ष्य था—स्वाधीनता के बाद की राजनीति का लक्ष्य क्या है? वह न तो राजनीतिक पार्टियां जानती हैं और न ही हमारा समाज जानता है. एक तरह की लक्ष्यहीनता में हम भटक रहे हैं. लक्ष्य के अभाव में कोई भी राजनीति कामचलाऊ राजनीति ही रहेगी. मेरे खयाल से गांधीजी की राजनीति को प्रमुख देन यही थी कि वे कामचलाऊ राजनीति या आंदोलन में विश्वास नहीं रखते थे. उन्होंने एक स्थायी और सतत् आंदोलन की कल्पना की, जो सिर्फ राजनीति में परिवर्तन न करे, बल्कि मनुष्य के बाहरी और भीतरी परिवेश में भी एक संपूर्ण परिवर्तन की प्रक्रिया को जारी रख सके. स्वाधीनता के बाद की राजनीति मूल्यहीन है—इसीलिए आज देश में राजनीतिक पार्टियों और राजनेताओं की तादाद बढ़ती गयी है, पर जिंदगी में कोई बुनियादी परिवर्तन नहीं हुआ है.

अपने साहित्यिक व्यक्तित्व को राजनीति की दुनिया में क्या आप छिपाने की कोशिश करते हैं? क्या आपको लगता है कि इस जानकारी से आप एक 'बौद्धिक-साहित्यिक' हैं राजनीति की दुनिया में 'ऑपरेट' करने में कोई फायदा या नुकसान है ?

मैं न तो इसको छिपाने की कोशिश करता हूं, न उसे उजागर करने की—जैसा मैंने कहा, राजनीति एक दूसरी ही तरह का कर्म है, जिसमें साहित्य की आवश्यकता नहीं पड़ती, जैसे कि मुझे साहित्य में राजनीति की सहायता की आवश्यकता नहीं पड़ी. मैं जैसा हूं, वैसा हूं.

क्या आपको नहीं लगता कि हमारे यहां राजनेता अंग्रेजी के लेखक और बुद्धिजीवी की बात पर ज्यादा गौर करते हैं? इस तरह से हिंदी के लेखक का व्यक्तित्व राजनेताओं के लिए बहुत ज्यादा मतलब नहीं रखता?

यह बात आपकी सही है कि अंग्रेजी में दीक्षित बुद्धिजीवी को अधिक मान्यता प्राप्त है, क्योंकि हमारे समाज के उच्च वर्ग की मानसिक बनावट ही ऐसी है—शासक वर्ग अंग्रेजी के बिना संसार की कल्पना नहीं कर सकता, लेकिन पिछले दस सालों में काफी कुछ बदला है. हिंदी क्षेत्र के बुद्धिजीवियों का दबाव शासन पर बढ़ता गया. आज हिंदी के बुद्धिजीवी को पहले से अधिक मान्यता प्राप्त है, लेकिन मैं राजनीति में किसी मान्यता के लिए तो गया नहीं था. बावजूद इस तथ्य के कि अंग्रेजी का बोलबाला है—अगर मेरी कही गयी बात को मान्यता मिली तो इसके पीछे कारण यही है कि अगर आपकी बात में ताकत है तो भाषा भी उतनी ही शक्तिशाली हो जाती है—चाहे कोई भी भाषा हो.

मैं शायद इस बात की तरफ आपका ध्यान खींचना चाहता कि यूरोप में लेखक-राजनेता संबंध की दूसरी ही परंपरा इतिहास है. मालरो या गुंटर के लेखन से उनके देश के राज परिचित रहे हैं. हमारे यहां प्रदेश के राजनेता भी बहुत को करने पर अधिक से अधिक निर या प्रेमचंद के नाम से अभिभू सकते हैं.

नहीं, मैं आपकी बात को इस तरह से करता हूं कि बुनियादी सवाल यह है राजनेताओं को संस्कृति में कितनी रुचि है? अधिकतर राजनेताओं को तो पश्चिमी साहित्य में दिलचस्पी है आधुनिक भारतीय साहित्य में. मैं समझता कि वे अंग्रेजी लेखकों को पढ़ते हैं. हो सकता है कि यूरोप आदि में ऐसे लेखकों की जो शोहरत है, उस आतंकित हों. मैं नहीं समझता कि ह अधिकतर राजनेताओं ने राजा राव पढ़ा होगा. हो सकता है, उन्होंने राजा का नाम ही न सुना हो—सुना भी हो उनके लेखन को पढ़ा नहीं होगा, ले अगर वे राजा राव से आतंकित हैं तो इ रहस्य यही है कि हमारे यहां के जीवियों की तरह ही हमारे राजनेता पश्चिम में मान्यता प्राप्त व्यक्ति आतंकित रहते हैं. सवाल इसलिए और अंग्रेजी का उतना नहीं है, जि मानसिक गुलामी और आजादी का इस अर्थ में, व्यापक अर्थ में—जैसे या दूसरे कलाकार-लेखक घुटन अ करते हों—उसे तो मैंने महसूस होगा, लेकिन कभी व्यक्तिगत स्तर इस सवाल ने मुझे परेशान नहीं किया जब तक देश की मानसिक आबोहवा परिवर्तन नहीं होता, मेरी या आपकी किसी की भी नियति में परिवर्तन हो सकता.

इसके साथ यह भी सच है और इस बात को बार-बार दोहराता कि सांस्कृतिक दृष्टि से हिंदी क्षेत्र बंगाल, कर्नाटक इत्यादि की तुलना विपन्न हैं.

कथा बिसरजन

लक्ष्मीनारायण लाल

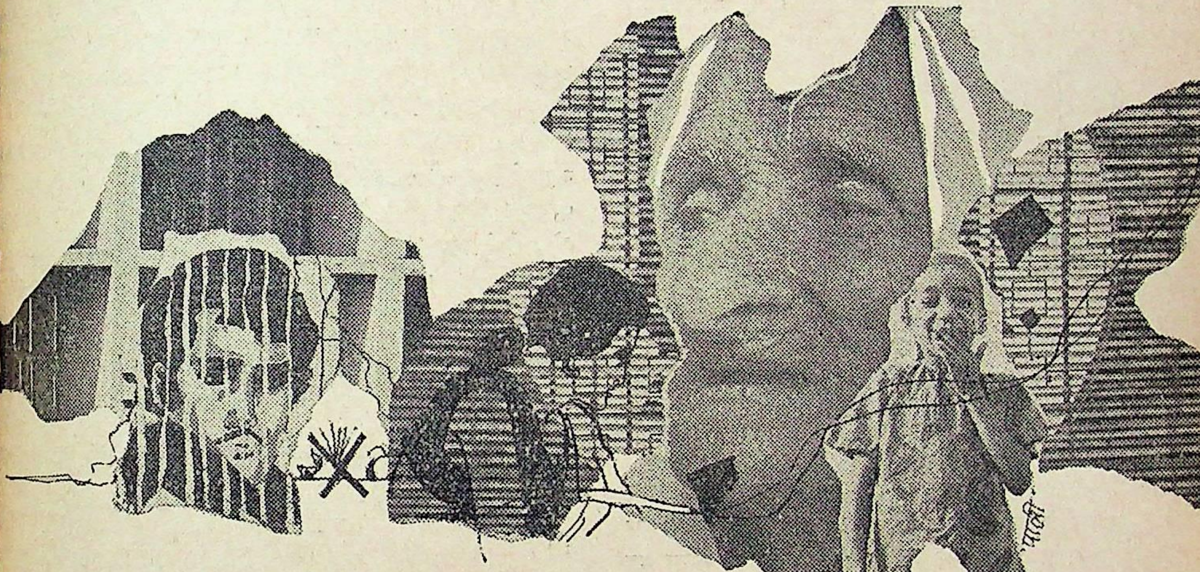

बाहर के अंधेरे और दरवाजे की ओट में पैसंठ साल की अइया दीवार के सहारे अब तक खड़ी थीं. बड़ी बहू से बेतरह डांट खाने के बाद से अइया लकड़ी की पुतली की भांति उस घर में इधर से उधर डोलती रह गयी थीं.

कुसुम आज इतनी देर से घर लौटी है. दरवाजे पर ही कुसुम को अपने अंक में लेकर अइया ने पूछना चाहा. . .'अरे नातिन बेटी, स्कूल में आज क्या हो रहा था रे? इत्ती देर क्यों की? हाय कित्ती भूखी प्यासी है रे'. . .पर आइया से आज कुछ न पूछा गया. बस, कुसुम का मुंह देखकर अइया निहाल हो गयी.

कमरे में आकर कुसुम ने रोशनी जलाकर अइया का मुंह देखा.

"यह क्या, तुम्हारे हाथ इतने ठंडे अइया!"

"मेरा हाथ अब क्या गर्म रहेगा रे?"

"क्यों?"

"इतनी बूढ़ी हूं!"

"नहीं, अइया, तुम्हें बादलों की हवा लग गयी है शायद! चलो बिस्तर पर सो जाओ!"

कुसुम अपनी बूढ़ी अइया को शाल के भीतर ढक कर और अपने शरीर के ताप से गरम करके बोली, "आज इतनी उदास क्यों हो? किसी ने फिर कुछ कहा है?"

"नहीं रे . . ."

"तो. . ."

अचानक मां की आवाज सुनायी दी, "इस लड़की से मैं तंग आ गयी. आते ही अपनी अइया की खाट में घुस गयी. न जाने कब इसे अकल आयेगी. . .! अइया को भी कुछ समझ है न बूझ. . .!"

मां को इस तरह कमरे में देखकर कुसुम डर गयी.

मां ने डांटते हुए कहा, "चल! उठती है या नहीं? चल, पहले कपड़े बदल."

अइया ने कहा, "अहा, जरा आराम करने दो न, कित्ती थकी है!"

मां नें कुसुम का हाथ पकड़कर उसे खाट से नीचे झटक दिया, खींचती हुई बाहर ले गयीं.

अइया का साहस कम नहीं था. मुंह में एक भी दांत न था. इतनी दुबली-पतली काया, पर आंखों में न जाने कहां की चमक, तेजी से बहू के पास जाकर बोलीं, "मेरी कसम तुम पर, अपना गुस्सा मुझी पर दिखाना. खबरदार, कुसुम को अगर कुछ कहा! जो कुछ कहना है मुझे कहो."

लखनऊ शहर के उस पंचबंगलिए के एक बंगले में धीमे-धीमे यह सब पिछले एक साल से हो रहा था. इसके पहले अइया अपने छोटे लड़के मदन गोपाल के परिवार के साथ कानपुर

• •

में थीं. उससे भी पहले अइया अपने गांव में रहती थी–माझेताल जिला फैजाबाद, डाकखाना, सिमरी बाजार.

आज करीब चालीस-बयालीस साल पहले की बात है... बाइस साल की उम्र में विधवा अइया ने अपने उसी गांव माझेताल में ही रहकर अपने दोनों लड़कों–मदन गोपाल मिश्र और रामगोपाल मिश्र को एम. ए. तक पढ़ाया था. अइया सिमरी बाजार की कन्या-पाठशाला में अध्यापिका थीं. कुल दस बीघे खेत थे. एक ओर खुद खेतीबारी का काम देखती थीं, दूसरी ओर रोज तीन कोस की दूरी पर पाठशाला की वह नौकरी करती थीं.

सो, बड़ा बेटा रामगोपाल हुआ डिप्टीकलक्टर, और छोटा हुआ आबकारी महकमें में इंस्पेक्टर.

▣

आज वही रामगोपाल डिप्टीकलक्टर से ज्वांइट सेक्रेट्री होकर उस पंचबंगलिए के एक बंगले में सपरिवार रह रहा है. तीन संतान हैं रामगोपाल की. बड़ा बेटा एम. ए. पास कर 'कंपीटीशन' में बैठने की तैयारी कर रहा है. मझला बी. ए. फाइनल में है और सबसे छोटी है वही कुसुम, दसवीं कक्षा में पढ़ रही है.

अइया की आदत कहें या स्वभाव, वह घर के भीतर नहीं बैठ सकतीं. बस, या तो घर के बरामदे में बैठेंगी या दरवाजे पर. वह भी किसी कुर्सी, मोढ़े पर नहीं, जमीन पर भी नंगे फर्श पर. मेज-कुर्सी, सोफा-टेबुल आदि से इन्हें कोई रुचि या लगाव नहीं. बस, सबसे प्यारी है जमीन, धम्म से बैठ जायेंगी. इन्हीं बातों पर छोटे लड़के मदन गोपाल के मझले लड़के विजय ने अइया के उपर दो बार हाथ उठा दिया था. मदनगोपाल को भी असुविधा होने लगी थी माई से. मदन गोपाल की पत्नी शांति को कष्ट होने लगा था सासुजी से. पर वाह रे अइया, कभी किसी से कोई शिकायत नहीं. कोई गिला-शिकवा नहीं. जो मिला वही स्वीकार, जो नहीं मिला वह भी स्वीकार. जैसे कहीं कोई अधिकार नहीं. केवल कर्त्तव्य. दिन भर में न जाने कितनी बार उनके मुंह से निकलता, "हानि-लाभ, जीवन-मरन, जस-अपजस विधि हाथ!"

बड़े लड़के रामगोपाल बड़े प्रेम और विश्वास से माई को कानपुर से लखनऊ ले आये थे. यूं माई का दोनों बेटों के घर आना-जाना तो लगा ही रहता था. पर जब से अइया का अपने गांव-गढ़ी से संबंध टूटा, तब से वह अपने वही दोनों बेटे, बेटों की बहुएं और उनके बच्चे, वही सारा संसार.

▣

डिनर टेबुल पर कुसुम को बिठाकर मम्मी ने कहा, "मैनर्स सीखो, चुपचाप डिनर टेबुल पर खाना खाओ."

कुसुम बोली, "अइया ने आज सुबह से कुछ नहीं खाया है."

"तुझे कैसे मालूम?"

"अइया का मुंह देखकर. . ."

"कितनी बार कहा है, अइया-फइया मत कहा करो. सीधे-से दादी कहो, मगर देहाती कहीं के. . .! सीधे-से खाती हो या नहीं?"

कुसुम चुपचाप खड़ी थी. उसकी आंखें आंसुओं से भरती जा रही थीं. अइया ने आकर कुसुम को संभाल लिया. "चल कुसुम, यहीं खा ले. मां की बात नहीं टालते. ले खाले, मेरी प्यारी कुसुम."

अइया के हाथ से अन्न का वह कौर मुंह में लेकर कुसुम का मुंह निहारने लगी. मम्मी वहां से हट गयी थीं.

कुसुम अइया के पास बैठी खाती हुई सोचने लगी. . .हाय सीधी-सादी हैं अइया! कहीं कोई विरोध नहीं. कहीं कोई नहीं. जो भी कोई कुछ कहता है, अइया कैसे चुपचाप मान हैं. कैसे सब कुछ सह लेती हैं, किसी के खिलाफ मुंह तक खोलतीं.

कुसुम के सामने जैसे कोई तस्वीर खुली हो. अइया ने के इस बंगले में आकर जब पहली बार अपने ठाकुरजी का लगाया था और सारे घर को प्रसाद बांटा था, तब मम्मी को नहीं लगा था. मम्मी ने पापा से कहा था, "यह क्या तमा खुलेआम इस तरह प्रसाद बांटा जाये. पूजा-पाठ व्यक्तिगत है, इससे दूसरों को क्यों जोड़ा जाये? देखो न ड्राइंग रूम में उस कितने लोग बैठे थे. धड़ाम से प्रसाद लिये ड्राइंग-रूम में घुस यह कोई अच्छी बात थोड़े ही है. कोई क्या कहेगा... मिश्राजी परिवार कितना देहाती है! यह कोई गांव तो है नहीं. सारा तो मुझे देखना पड़ता है."

पापा ने अइया से तब कहा था, "माई देख, ठाकुरजी भोग तो ठीक है. पर इस तरह प्रसाद बांटना ठीक नहीं है. तु बहूजी ठीक कहती हैं माई, चुपचाप ठाकुरजी का भोग अपने में ही लगा लिया करो."

"और प्रसाद?"

"अरे, प्रसाद तो प्रसाद है, जिसकी इच्छा होगी, वह खुद तु पास आकर ले लेगा."

▣

उस दिन से अइया चुपचाप अपने कमरे में ही अपने ठा को भोग चढ़ाती हैं और प्रसाद लेती हैं. कुसुम, पूरे घर में कुसुम. . .और अइया प्रसाद बांटती हैं. बंगले में आती चि को, कमरे में रेंगती चीटियों को!

फिर दूसरी समस्या घर में यह उठी कि बंगले में आने वाले लोगों, खासकर उनकी स्त्रियों के सामने अइया आये या

मम्मी और पापा दोनों इस बात पर सहमत हो गये कि मां का दूसरों के सामने आने-जाने का क्या मतलब! पर पा मम्मी समेत पूरे घर को सचेत किया कि माई को इस बात का नहीं लगना चाहिए. हां, यह सब व्यवहार बहुत होशियारी चतुराई से होना चाहिए, हां!

पर उस बंगले के घर-परिवार में सबसे बड़ी समस्या अइया के रामायण पाठ से.

सब कुछ छोड़ सकती थीं अइया पर रामायण पाठ नहीं छोड़ स थीं. इस बात को केवल कुसुम जानती है. धीरे-धीरे गाकर राम पाठ करना, फिर भावविभोर होकर अइया का यह आत्मनि कैसा हृदयग्राही था—

कथा बिसरजन होत है सुनो वीर ह
राम लखन मां जानकी सदा करहु क
जो जन जहां से आयहु कथा सुनी मन
अपने-अपने भवन को हरसि जाहु सुख पा

पहले अइया से कहा गया कि संध्या समय रामायण पाठ

सकता. साहब दफ्तर से थके-मांदे घर आते हैं. उन्हें आराम और ति चाहिए.

"हां, ठीक कहती हो बहू! मेरे बेटवा को आराम और शांति हिए!" अइया मान गयीं. संझौती समय से रामयाण पाठ का य बदलकर रात के साढ़े आठ बजे कर लिया.

कुछी दिनों चला कि बड़े भइया ने कहा कि उन्हें 'डिस्टर्ब' ता है. कंप्टीशन की पढ़ाई है, कोई मजाक नहीं है.

इस बात पर कुसुम और बड़े भइया के बीच झगड़ा हुआ था. सुम के मुंह से जैसे ही निकला कि पॉप म्युजिक से उन्हें डिस्टर्ब हीं होता, तो पापा सहित पूरे घर ने बड़े भइया का पक्ष लिया था, नी-अपनी पसंद है!. . .बड़े भइया की जिंदगी का सवाल है!. . ई गलत कहेगा!. . .क्या है रामायण पाठ में. . . वही रोज-रोज .क्या बिसरजन होत है. . .! आसपास के लोग हमारा मजाक ाते हैं.. . .!

तो सोने से पहले अइया चुपचाप पाठ कर लिया करें.

"चुपचाप?"

"हां माई, चुपचाप!"

"चुपचाप कैसे बेटवा?"

"मन में!"

"मन में. . .मन क्या चीज है रे?"

न जाने कितने दिनों, कितने वर्षों बाद मां-बेटे में उस दिन चानक संवाद छिड़ गया था.

"वड़का बेटवा, बता न मन क्या चीज है?"

बड़े बेटवा. . .ज्वाइंट सेक्रेट्री रामगोपाल मिश्र, माई का मुंह ते रह गये.

"मन कहीं चुपचाप रहता है बेटवा!"

"तो माई?"

"वही राम चाहें तो मन कटे. मन न कटे तो कुकुर-बानर की ह मनुष्य मारा-मारा फिरे!"

बड़े बेटा रामगोपाल माई के सामने ठहर नहीं पाये. अपनी नी के सामने खीस निपोरकर बोले, "बहुत बोलने लगी है माई, ता है अब ज्यादा दिन की मेहमान नहीं है."

पत्नी ने अजब ढंग से कहा, "ऐसा क्यों मुंह से निकालते हो. ो बुजुर्ग हैं, परम पूज्य हैं! तुम्हारी मां हैं तो मेरी भी मां हैं, -बूढ़ों का साया. . .!"

पतिदेव पत्नी का मुंह देखने लगे.

एक अजीब ठंडा सन्नाटा उनके बीच खिंच गया. आइने के मने खड़े होकर अपनी मूछों में सफेद बाल काटते हुए मिश्रजी कहा, "जितनी इच्छा थी, माई की सेवा नहीं कर सका. चारो म यी नहीं करा सका. . .सिर्फ बद्रीनाथ और जगन्नाथ धाम. ारी ऐसी है कि. . .! माई के साथ भी नहीं उठ-बैठ पाता. ने दिनों से घर में है. हमारे साथ है. पर माई. . .हम क्या दे ये माई को!"

पत्नी बोली, "तो किसने मना किया है?"

पति ने कहा, "यही तो समझ में नहीं आता सुधा, किसने ना किया है. हमारे बीच में वह अदृश्य बाधा कहां है, क्यों है? ाई के साथ हमारा व्यवहार. . .!" पति अचानक पत्नी के सामने हट गये.

"चुप-चाप ?"
"हां माई, चुपचाप!"
"चुपचाप कैसे बेटवा ?"
"मन में!"
"मन में...मन क्या चीज है ,रे ?"

मन कहीं चुपचाप रहता है ?——
मां-बेटे के रिश्तों में घर-परिवार,
मान-सम्मान और मानवीय आस्था
को रेखांकित करती प्रख्यात
कहानीकार की ताजा कहानी

सुधा ने कहा, "सुनो, माई ने कुछ कहा है तुमसे?"

"नहीं तो!"

"नहीं, कुछ जरूर कहा है!"

"सुधा, माई कहां कुछ कहती हैं. एक साल से ज्यादा हो गया माई को हमारे साथ रहते. बताओ, बोलो, कभी किसी को कुछ कहा है माई ने?"

"हां, सो तो है!"

"हम सबने केवल अपनी सुविधा देखी है."

सुधा को यह बात अच्छी नहीं लगी, "क्या मतलब?"

"कुछ नहीं!"

सुधा ने कहा, "तुम समझते हो, अइया सिर्फ तुम्हारी मां है?"

"इसमें समझना क्या है!"

"क्या कहा?"

"मुझे जाना है. दफ्तर के बाद एक मीटिंग भी है आज!"

मिश्रजी जाने लगे. सुधा ने पति के सामने लौंग, इलायची बढ़ाते हुए कहा, "जिसे चौबीस घंटे घर में रहना पड़ता है, जिसे सब कुछ देखना पड़ता है. . .अपने बच्चों के भविष्य से लेकर पास पड़ोस तक, उसकी मजबूरी भी तो कोई देखे."

"मैंने तो ऐसा कुछ नहीं कहा!"

"कहा नहीं, उस दिन नहीं कहा कि माई के प्रति हमारा व्यवहार ठीक नहीं है. क्या ठीक नहीं है? तुम खुद अपनी माई के साथ क्यों नहीं उठते-बैठते? माई के साथ रहो, पूरा एक दिन एक रात. क्यों नहीं रहते? किसने मना किया है? इतनी छुट्टियां तो बाकी हैं. . .माई को साथ लेकर तीर्थयात्रा पर क्यों नहीं जाते. हुअं, बड़ा आसान है फतवा देना, हमारा व्यवहार ठीक नहीं है!"

सहसा मिश्रजी ने देखा, माई आकर पीछे खड़ी है.

"माई!"

"का बात है बेटवा? . . .बहू, का बात है?"

"कुछ नहीं माई!. . .अच्छा, मैं जा रहा हूं!"

"नहीं, रुक जा बेटवा! मेरी वजह से कोई कष्ट है?"

• •

> "अइया, जब तुम मेरी उमर की थीं, कैसी थीं?"
> "तब मेरी शादी हो चुकी थी!" अइया हो-हो करके हंसने लगी थीं.

"क्यों माई?"

"अगर मेरी वजह से कोई कष्ट हो गया तो मेरा जीना बेकार है."

"और तुम्हें कष्ट हो गया माई तो हमारा जीना बेकार है." मिश्रजी हंसते हुए तेजी से बाहर निकल गये. माई के चेहरे पर प्रसन्नता छा गयी.

"क्यों बहू, बेटवा का बात कर रहा था?"

"ऐसे ही माताजी, कोई खास बात नहीं."

"मेरी बातें कर रहे थे तुम लोग. मैंने सब सुना है. बहू, तुमने बिल्कुल सही कहा. . .बड़ा आसान है फतवा देना, तुम पर कितनी जिम्मेदारी है. सब कुछ तुम्हें ही तो देखना है. सब मेरे ही बच्चे तो हैं. सब कुछ मेरा है बहू! सबको मेरा प्यार आशीष!"

कुर्सी पर बिठाकर सुधा बहू अइया के सिर पर तेल लगाने लगी.

अइया बोलीं, "कभी किसी चीज का दुख नहीं करना बहू! मुझसे कुछ छिपाना नहीं. हम तो पके फल हैं किसी दिन डाल से छूट गये."

सुधा बहू की आंखें भर आयीं. कुछ कहना चाहा पर कंठ से फूटा नहीं. तभी स्कूल से कुसुम आयी, "मम्मी, अइया की चोटी मैं करूंगी."

कुसुम ने अइया का सिर चूमते हुए कहा, "अइया, जब तुम मेरी उमर की थीं, कैसी थीं?"

"तब मेरी शादी हो चुकी थी!" अइया हो-हो करके हंसने लगी थीं.

▣

दशहरे के दिन थे. शाम का वक्त था. अइया का कमरा भीतर से बंद था. कुसुम ने आवाज दी, "अइया! ओ अइया!!"

कोई जवाब नहीं.

हल्के-से किवाड़ खोलकर कुसुम अंदर गयी. अइया के सामने रामायण खुली थी, सुंदरकांड. अइया आंखें मूंदें चुपचाप बैठी थीं.

कुसुम को अपने पास अनुभव कर अइया की आंखें खुल गयीं.

"अइया, क्या कर रही थीं?"

"पाठ कर रही थी. . ."

"चुपचाप आंखें मूंदे?"

"हां रे कुमू, चुपचाप मन ही मन रामायण पाठ. . ."

"क्यों?"

"ऐसे ही करना चाहिए, किसी को विघ्न नहीं होता."

"विघ्न?"

"हे राम!"

"मतलब, पापा ने कहा है. . .मम्मी ने कहा है. . .भइया ने . . .'

कुसुम के तप्त मुंह पर अइया ने हाथ रख दिया, "नहीं कुमू, शोर नहीं करते. बड़ा भइया पढ़ रहा है. बड़ा अफसर इम्तिहान पास करेगा. तेरी मम्मी अभी सोयी है. थक जाती कितना काम करती है. तेरे पापा ड्राइंग-रूम में दोस्तों के सा बैठे हैं. अरे, हमारा का है रे!"

ऐसा रोज होने लगा. संध्या वही साढ़े सात बजे. अइया अ बंद कमरे में चुपचाप मन ही मन रामायण पाठ करतीं. मन ही म निःशब्द कहतीं——**कथा बिसरजन होत है सुनो वीर हनुमा राम लखन सीय जानकी सदा करो कल्यान. प्रभुसन कहियो दंडव तुम्हें कहैं कर जोरि, वार-वार रघुनाथ कहि सुरत करायो मोरी!. श्रोता निज-निज धाम गये, शंभु गये कैलाश, हनुमान प्रभु पंह ग विनवत तुलसीदास. जो अक्षर जगदम्बिका भूल परे कहूं हो आदि शक्ति भूधर सुता छिमा कियो सब सोय. . .**

कुसुम को पता है अइया कब सोती हैं, कब जागती हैं. कब उ भूख लगती है. कब उन्हें चुपचाप रहना अच्छा लगता है. कब क बातें करना चाहती हैं. . .पर इधर कुसुम देख रही है, अइया का स कुछ व्यतिक्रम होने लगा है.

कुसुम अइया के साथ ही सोने लगी है. पापा और मम्मी अइया पर पूरा ध्यान देने लगे हैं.

▣

जाड़े के दिन बीत रहे थे. गहरी सोयी हुई रात में सहसा कु को लगा कि अइया कुछ गा रही हैं. उसने टेबुल-लैंप जलाकर दे अइया पलंग पर बैठीं ध्यानमग्न निहायत हल्के स्वरों से अद् सुर में गा रही हैं—**जो जन जहां से आयहू कथा सुनी मन ला अपने-अपने भवन को हरषि जाहु सुख पाय. अर्थ न धर्म न का रूचि गति न चहें निर्वान, जन्म-जन्म प्रभुपद भगति यह वरदा न आन. . .**

. . .कुसुम ने देखा अइया न जाने किस अतल गहराई में डू हुई हैं. कमरे से बाहर चारों तरफ गहरा अंधेरा था. खुली खिड़कि से निरभ्र आकाश में तारे छिटके हुए थे. पछुआ हवा चल रही अइया के सफेद केश, खूंटी पर टंगे अइया के कपड़े अनेक तरह छाया फैलाते हुए रह-रहकर कांप उठते थे. अइया कित सुंदर लग रही थीं. वृद्धापन की शीर्णता ने अइया पर एक अ आवरण चढ़ा दिया था. लगता था जैसे अइया संसार से ब दूर जैसे किसी अन्य लोक में हैं. कुसुम को अचानक लगा, अइ जैसा अकेला प्राणी संसार में और कोई नहीं है.

धीरे-धीरे अइया का स्वर टूटने लगा. अइया बिल्कुल हो गयीं.

"अइया!" कुसुम ने बढ़कर अइया को थाम लिया. उन सिर लुढ़कने लगा था.

"अइया."

अइया की आंखें न जाने किस असीम लोक में मुंदी हुई अइया का दायां हाथ कुसुम के माथे पर कांप रहा था.

अइया को अपने अंक में संभाले कुसुम निःशब्द रोने ल अइया अब अपने उस पार्थिव शरीर में नहीं गयी थीं, फिर भी कु को चिंता हुई कि अइया को कहीं किसी प्रकार का विघ्न न कुसुम के पूरे अंतर्लोक में अइया के मौन स्वर गरज रहे थे

बंगला लघुकथा

अंतरंग

□ दीपक राय

एक मकान एक लड़के से प्यार करने लगा. लड़का हर रोज उस मकान के बरामदे में जाकर खेलता था. मकान को उससे बड़ा सकून मिलता.

कुछ दिन बाद लड़का रोते-रोते मकान के पास आया. मकान ने पूछा, "तुम रो क्यों रहे हो ?" लड़के ने बताया कि उसके मां-बाप ने उसे घर से निकाल दिया है. मकान झट-से बोला, "इसमें रोने की क्या बात है, मेरे पास इतने कमरे हैं, एक कमरा तुम ले लो." लड़का उस कमरे में रहने लगा.

दो-तीन दिन बाद लड़का फिर रोने लगा. मकान ने पूछा, "अब क्या हुआ?" लड़का बोला, "भूख लगी है." मकान ने थोड़ा सोचकर कहा, "मेरा एक हिस्सा किराये पर चढ़ा दो." लड़का तुरंत मान गया.

कुछ वर्षों बाद लड़का फिर उदास हो गया . मकान को बड़ी हैरानी हुई. उसने डांटकर पूछा, "अब क्या परेशानी है ?" लड़के ने थोड़ा संकोच से कहा, "अब मैं शादी करना चाहता हूं." मकान ने कहा, एक लड़की चुन लाओ और शादी कर लो. मैं तुम्हें एक कमरा और दे सकता हूं." लड़के ने बहुत जल्द शादी कर ली.

इसके दो साल बाद मकान को बहुत तेज बुखार हुआ. उसने लड़के को बुलाया. लड़के ने किसी भी तरह की मदद देने से इंकार कर दिया. मकान उस समय बड़ा क्रुद्ध हुआ, "तू यहां नहीं रह सकता; यहां से चला जा."

कालांतर में शहर में बमबारी हुई. एक बम उस मकान पर भी गिरा. मकान दब गया और कुछ किरायेदार भी मारे गये. तब से वह अकेला रहने लगा.

चालीस साल के बाद एक दिन किसी बूढ़े आदमी ने मकान का दरवाजा खटखटाया . मकान ने उस आदमी को पहचान लिया. फिर हाल-चाल पूछा. बूढ़े ने अपने सारे किस्से सुनाने शुरू किये. फिर बहुत पहले मकान के साथ किये गये दुर्व्यवहार के लिए भी उसने क्षमा-याचना की.

मकान ने कहा, "मेरी कमर टूट चुकी है, अब तुम्हें क्या चाहिए ?" बूढ़ा बोला, "एक छत चाहिए." मकान ने इजाजत दे दी. अभी कुछ दिन पहले बूढ़ा आदमी चल बसा, तो मकान ने ही उसे अपने यहां कब्र भी दे दी. □

● रूपांतर : जितेंद्र सेठी

था बिसरजन होत है सुनो वीर हनुमान, राम लखन मां जानकी
दा करहु कल्यान. . .जो जन जहां से आयहु कथा सुनी मन लाय,
पने-अपने भवन को हरषि जाहु सुख पाय. . .!

पूरे घर-परिवार में अइया इतनी फैली हुई हैं, इतने गहरे तरी हुई हैं. यह सबको अइया के स्वर्गवास के बाद पता चला. नों बेटों और बहुओं ने बड़े धूमधाम से अइया के क्रिया-कर्म किये. व-नाड़ी, सारे नाते-रिश्तेदार अइया के कर्म में आये.

बड़े लड़के डिप्टी साहब रामगोपाल पूरे दो महीने की छुट्टी कर माई का अस्थि-विसर्जन करने कहां-कहां नहीं गये—हरिद्वार मेश्वरम, कन्या कुमारी, द्वारिका, प्रयागराज. . .

माई बिना लखनऊ का वह बंगला इतना उदास होगा, इस ह काटने दौड़ेगा, पापा-मम्मी को पता नहीं था...मम्मी और पापा तय किया कि लखनऊ से कहीं और तबादला हो जाये.

दिल्ली अच्छी जगह है, वहां सब कुछ अपने-आप भूल जाता बच्चों के भविष्य के लिए भी अच्छा रहेगा.

काफी दौड़-धूप, मेहनत-कोशिशों के बाद रामगोपाल मिश्र दिल्ली में स्थान मिल गया.

मम्मी बहुत खुश. . .दोनों बेटे सबसे ज्यादा खुश. कुसुम अपनी इया को एक क्षण भी नहीं भूल पा रही थी. वह चुप रहने लगी थी.

नयी दिल्ली के सरकारी बंगले को नये सिरे से पापा-मम्मी ने सजाया. दोनों भइया बहुत खुश थे.

नयी दिल्ली के उस नये घर में एक दिन बीता था. रात को अचानक मम्मी की आंख खुली. पति को जगाकर कहा, "सुनो, यह आवाज कहां से आ रही है, देखो तो. . !"

पति-पत्नी बगल के कमरे से ड्राइंग रूम में गये. चारों तरफ अंधेरा था. स्टोर से सटा हुआ एक छोटा-सा कमरा था. पिताजी ने रोशनी जलाकर देखा. . .कुसुम आंख मूंदे रामायण पाठ कर रही है.

"यह क्या है?" दोनों ठगे-से आश्चर्यचकित देखते रह गये.

कुसुम ने यह गाते हुए पापा और मम्मी को देखा—कथा बिसरजन होत है सुनो वीर हनुमान. . .

"यह क्या तमाशा है?" गुस्से में मम्मी ने कहा.

"कुमू यह क्या करती हो बेटी!" पापा ने बेहद ठंडे स्वरों में कहा.

कुसुम के ओठों से अबाध स्वर फूट रहे थे—श्रोता निज-निज धाम गये, शंभू गये कैलाश, हनुमान प्रभु पंह गये विनवत तुलसीदास. . ! □

● **8/17, ईस्ट पटेल नगर, नयी दिल्ली—110008.**

एक लंबी कहानी

• गिरिराज किशोर

रघुनाथ कृपा

प्रदेशों में प्रदेश उत्तर प्रदेश, शहरों में शहर बुलंदशहर और विभागों में विभाग समाज कल्याण विभाग. सोचने को सब कुछ, कहने को राम राम.

रम्मे का असली नाम रामेश्वर. काम हरिजन कल्याण! शौक सुरती ठोकना और उसे होंठ के नीचे दबाकर बलबलानाः

"यार, इस देश की खूबी यह है कि देश चलता है. करने-कराने की इसे चाह नहीं. इसे कहते हैं रघुनाथ कृपा! तुलसीदास महाराज ने जो रघुनाथ का गुन गाया है, कोई मूरख तो थे नहीं. जिस दिन यह देश करने-कराने के चक्कर में पड़ जायेगा तो रघुनाथ को क्या पागल कुत्ते ने काटा है कि वे कृपा करते घूमेंगे. अरे, उनकी तरफ से जाये सारा देश भाड़ में. कभी-कभी जब देश में पाप बढ़ता है तो वे अपने भक्तों से कहलवाते हैं——अजगर करे ना चाकरी, पंछी करे न काम. दास मलूका कह गये, सबके दाता राम! दास मलूका का कहा मानो और अपने घर जाओ. अपने करमों को रोओ और मुझे माफी दो."

रम्मे का मुंह धीरे-धीरे आध्यात्मिकता से भर जाता. सुरती जबान पर हावी हो जाती और वह मगन मन हो कभी गाली बकता और कभी चुप पड़ जाता या फिर कच्छप की तरह अपनी सब इंद्रियों को टपरी के नीचे समेटते-समेटते कुर्सी पर गठरी बन जाता. याचक और अभ्यर्थी उसकी चुप्पी के नीचे दबते-दबते इतने दब जाते कि उनकी समझ में कुछ नहीं आता. मन ही मन प्रार्थना करते कि रघुनाथ कृपा हो. जब नहीं होती तो किसी और दिन के लिए उसका आरक्षण कराने की आकांक्षा से भरकर चले जाते. जाने के बाद जमीन पर उन लोगों के बैठने की जगहें एक के बाद एक उभरती रहतीं, पर रम्मे को नजर न आतीं.

▣

रामेश्वर उर्फ रम्मे, हरिजन कल्याण विभाग के बाबू पद पर उस ऐतिहासिक क्षण में अपनी नियुक्ति कराकर आया था, जब प्रदेश सरकार ने सामाजिक एवं हरिजन कल्याण विभाग का स्वतंत्र रूप से सृजन करके अपना नाम प्रगतिशील प्रदेशों का सरगना बनाने की योजना बनायी थी. विभाग के निर्मित होने के तुरंत बाद ही उसकी नियुक्ति हुई थी. उसका नाम पहली सूची में था. उसके कुछ दिनों बाद कैबिनेट स्तर पर एक स्वतंत्र मंत्री नियुक्त हुए थे. यह बात रम्मे के लिए भी उतनी ही गर्व की थी, जितनी पंद्रह अगस्त उन्नीस सौ सैंतालिस को जन्म लेने वाले बच्चों के लिए. उस दिन जन्म लेना गर्व की बात हो सकती है, इस एहसास से वह सदा फूला रहता था.

जब वह जिला हेडक्वार्टर पर पहुंचा था तो उसे कुछ दिनों ए.डी.एम. प्लानिंग के पेशकार साहब की शागिर्दी मयस्सर हुई थी. पेशकार साहब सज्जन और पहुंचे हुए इंसान थे. सबको बेटा कहकर पुकारते थे. यहां तक कि रिटायरमेंट के नजदीक पहुंचा युसुफ जमादार तक उनके लिए बेटा था. पेशकार साहब की शागिर्दी में रहकर रम्मे को जगजीवन को समझाने वाली वह नजर मिली थी, जो अंग्रेजों के द्वारा तैयार किये जाने वाले आई. सी. एस. अफसरों तक को प्राप्त नहीं होती थी. उसे उसने सहेजकर पहना था. जब भी उस पर भीड़ पड़ती थी तो वह उन्हीं की शरण में जाता वे उसी सिद्धभाव से कहते, "कहो बेटा, कैसे आये!" उनके दिया गया समस्या का समाधान वह अमृत घट की तरह दोनों में सहेजकर घर ले आता था.

काफी दिन स्वतंत्र रहने के बाद जब हनुमान प्रसाद ने कल्याण अधिकारी के रूप में कार्यभार ग्रहण किया तो मन को आक्रोश और घृणा ने आ दबोचा. वह पीपल के पात की अंदर ही अंदर क्रोध से कांपता रहा. इतने दिनों ए. डी. एम. के कार्यकाल में बैठने और पेशकार साहब की पेशकारी

"यह तो वक्त की मार है साब, आप वहां बैठे हैं, हम यहां. उससे क्या? जो हम हैं, वो हम रहेंगे और आप जो हैं, वो आप. रघुनाथ कृपा सब पर बराबर होती है..." रम्मे बाबू की यह रघुनाथ कृपा, आइए देखें कि किस तरह दफ्तरशाही को बेनकाब करती है. 'सारिका' के मार्च 1979, अंक : दो में प्रकाशित गिरिराज किशोर की कहानी 'घोड़े का नाम घोड़ा' को पाठकों ने बेहद सराहा है. अब प्रस्तुत है इनकी ताज़ा कहानी.

अलावा हरिजन कल्याण अधिकारी का काम भी करता रहा था. अपनी जात के कई लोगों को पेशकार से कहकर हरिजनों को मिलने वाले अनुदान तक दिलवा चुका था. वैसे उसका काम प्रदेश सरकार और निदेशालय की डाक इकट्ठी करके साहब के सामने पेश करना और उनकी चिड़ियां बैठवाकर दफ्तर दाखिल कर देना मात्र था. फिर भी जो दबदबा था, वह तो था ही! दफ्तर का एक छत्र राजा, टके सेर भाजी, टके सेर खाजा. जब हनुमान प्रसाद आया और कार्यभार ग्रहण किया तो रम्मे किंकर्त्तव्यविमूढ़-सा हो गया. यह पता चलने पर कि उसकी कुछ माह पहले ही शादी हुई है, वह और भी पागल हो गया.

"अरे, अभी तो शादी की तह तक भी नहीं पहुंचा होगा, बन गया साला अफसर और यहां तीन बच्चों के बाप हैं. बड़ा बच्चा इस 'हनुमान प्रसाद' से थोड़ा ही हल्का पड़ता होगा. हमारी लटकन में से चार हनुमान प्रसाद निकल आयें हा...हा...हा..."

पेशकार साहब ने उसकी बात सुनी और बोले, "बेटा, अफसर से लड़ोगे तो जल्दी मात खा जाओगे. अफसर से कभी मत लड़ना. अफसर बालू का भी हो तो भी दांत असली ही होते हैं. अफसर के सिर में एक बिंदु होता है, उसी से वह कंट्रोल में रहता है. उसे सदा उत्तेजित रखो, बस... काम को कहे तो, "अभी किया सा'ब!" फिर राम भजो. ऊपर से डांट आये तो तुम भी ऊपर वाले को गाली दो और कागज.... फिर राम भजो. वह बिंदु...लपलप करता रहेगा तो बेटा मजे में रहोगे. अफसर पर हमला किया और वह चूहे से शेर बना. जाओ बेटा, अब हमारे भजन का समय हो गया. रघुनाथ कृपा. . ."

रम्मे पेशकार की सलाह पर चला तो जरूर, पर पूरी तरह नहीं. बीच-बीच में चूक जाता था. उसका असर दोनों पर ही खराब पड़ता था. हनुमान प्रसाद को आता देखकर रम्मे के शरीर में चुनचुनी उठने लगती थी. उसका व्यवहार पेशकार साहब द्वारा बनाये गये गुर से भटक जाता था. वह कुर्सी पर ही बैठा रहता था. नमस्ते करने की बजाय उसकी तरफ चढ़ी-चढ़ी नजरों से देखने लगता था. हनुमान प्रसाद उसके इस व्यवहार को ताड़ लेता था. उसके मन में उसकी प्रतिक्रिया भी होती थी, पर अपने घर की शांति की खातिर वह अपने अंदर होने वाली प्रतिक्रियाओं को घोट जाता था. उसने घर की शांति को सुरक्षित रखने के लिए एक तरकीब आजमायी थी कि रम्मे का पूरा नाम लेकर बड़े खुशामदाना ढंग से बात करता था. एक दो बार मामला उसकी तरकीब के बाहर हो गया था तो दफ्तर से उसके घर तक पहुंचा था. उसे लगातार अनुभव होता रहता था कि उसके और उसकी पत्नी के बीच कोई बाहरी तत्व है. तब से वह रम्मे की खुशामद करके भी अपने आप को उस तरह के अनुभव से दूर रखने का पूरा प्रयत्न करते रहने के बावजूद काफी नजदीक पाता था. कभी-कभी वह उससे कहा करता था, "रामेश्वर बाबू, आपने यह दफ्तर चालू किया, आपने ही इसे जमाया, हम तो बहुत बाद में आये. आगे भी आपको ही संभालना होगा. इसे ठीक से चलाने की जिम्मेदारी भी आप पर ही है. हम आज हैं, कल नहीं होंगे. आप को और आपके साथियों को तो यहीं रहना है. . ."

हनुमान प्रसाद ये सब बातें उसे खुश करने के लिए कहता था, पर वह खुश कम और नाराज ज्यादा हो जाता था. उसे बीता जमाना याद आ जाता, जब वह यहां सर्वेसर्वा था. पेशकार साहब की मेहरबानी थी. कई बिरादरी वालों का तंग हाथ उसने हरिजनों के खाते से खुलवाया था. वह इस दृष्टि से पिछड़े और अनुसूचित जाति के लोगों को एक-सा सताया हुआ मानता था और सरकारी सहायता का सबको समान रूप से अधिकारी समझता था. पेशकार साहब की कृपा से उसने सब नुस्खे सीख लिए थे, जिनके चलते वह रघुनाथ कृपा का उपभोग स्वजनों के पक्ष में भी करने में सक्षम हो पाया था, पर अब कठिनाई थी. पेशकार साहब का संरक्षण अब उतना अधिक और सीधे प्राप्त नहीं था. बस, परामर्श था. परामर्श और संरक्षण का फर्क अब उसे पूरी तरह स्पष्ट हो गया था. इसलिए वह हनुमान प्रसाद की बात को पूरी तरह से उल्टा समझकर ऐसा भाव मुंह पर लाता था कि तुम क्या कहते हो, हमने तो दफ्तर खोला ही, तुम तो बाद में आये. . .तुम मानोगे, तभी क्या यह बात सच्ची होगी. बस, कह नहीं पाता, क्योंकि पेशकार साहब की बात उसके ध्यान में उड़ती चिड़िया की तरह अचानक आकर फड़फड़ाने लगती थी. हनुमान प्रसाद उसके इस भाव को भी पहचान जाता था.

हनुमान प्रसाद को कई बार रम्मे को सीधे या घुमा-फिराकर कहना पड़ता था कि वह हरिजन कल्याण की योजनाओं में ज्यादा रुचि लेगा तो विभाग और दफ्तर की बात भी बनेगी और हम लोग जनता की नजरों में ऊंचे भी उठेंगे. ऐसे समय पर उसका जातिगत अभिमान जोर मार उठता था.

"यह तो वक्त की मार है साब, आप वहां बैठे हैं, हम यहां. उससे क्या? जो हम हैं, वो हम रहेंगे और जो आप हैं, वो आप. रघुनाथ कृपा सब पर बराबर होती है. करम गति तक बदल जाती है, पर जबान का काम है, साफ कहना. न कहे तो इस जबान में और जूते के अंदर वाली चमड़े की जीभ में क्या अंतर. उसे तो खींच-खींचकर ठीक जगह पर लाना पड़ता है. ये सरकार डंडे के जोर पर ऊंच-जात को नीच और नीच को ऊंच बनाना चाहती है. हम उनके दरवाजों पर हाथ जोड़ते फिरें, "चलो महाराज, चलकर दान-दखना ले लो. तुम हमारे मान. . .! कलयुग के यही चिह्न

• •

हैं. ये सब बड़े-बड़े लोग इतना नहीं समझते कि हमारा पेट भरेगा तो उनका भी भरेगा. हमारा ही नहीं भरेगा तो उनका कहां से भरेगा. शास्त्रों में कहा है—बाम्हन को भिच्छा, छत्री को लूट; बनिये को बनज और छूद्र को जूठ.

हनुमान प्रसाद हथियार डाल देता और चुप लगा जाता. अगर वह जवाब दे भी तो किसे दे. इधर से दिये जाने वाले जवाब को समझने के लिए दूसरे छोर पर भी समझने वाले की जरूरत होती है. जवाब देना, न देना बराबर. फिर भी हनुमान प्रसाद समझाने की दृष्टि से कहता जरूर, "रामेश्वर बाबू, चाकरी का मतलब ही है निकृष्ट काम. जब एक बार कर ली तो जो मालिक कहे, वो करना है, चाकरी में नाकरी क्या?"

रम्मे पर और उल्टा प्रभाव पड़ता, "वाह साब, हमने नौकरी की है, धरम और जात नहीं बेचे. . .जिसने नौकरी के लिए बेचे हों, वह यह सब करे और कहे. . ."

हनुमान प्रसाद चुप्प! कहें तो क्या कहें. ऊपर से डायरेक्ट्रेट में बैठा खन्ना रोज फर्रे पर फर्रा भेजता रहता था. उसकी शक्ल मय उसके कमरे के हनुमान प्रसाद की आंखों के सामने चलती फिरती नजर आने लगती थी. उसकी आंखें सामान्य आदमी से ज्यादा चढ़ी और बाहर को निकली हुई थीं. वह पूछता-सा लगता, "कितना रुपया बांटा हरिजनों में? भेजूं फर्रा, नानी याद आ जायेगी इस बार. वह अपने अंदर की समस्त कातरता के साथ रम्मे की ओर देखना चाहता कि भैया कुछ करो, पर रम्मे का चेहरा उसे खन्ना से भी अधिक भयानक लगने लगता था.

खन्ना की भर्ती भी उसी के साथ हुई थी. खन्ना नौकरी के शिकंजे से गुजरा हुआ आदमी था, वह ताजा, अनुभवहीन. खन्ना ने अपनी पोस्टिंग हेडक्वार्टर पर करा ली थी. करा ली थी का मतलब करा लेना. हनुमान प्रसाद को इस बात से न तो कोई शिकायत थी और न ही हो सकती थी. वह जिले में था. हेडक्वार्टर पर चाहे जो भी होता, एक ही हो सकता था, पर एक बात हनुमान प्रसाद को कचोटती थी. हरिजन कल्याण के बारे में खन्ना भी उतना ही नया है, जितना वह स्वयं. फिर वह उसके काम के बारे में इस तरह के पत्र क्यों लिखता है, बल्कि वह फील्ड में है, सारी आंच बर्दाश्त करता है. फील्ड की समस्याओं को उससे कहीं अधिक जानता है. नीचे की मंजिल में रहने वाला जमीन के ज्यादा नजदीक होता है, छब्बीसवीं मंजिल वाला हवा के. खन्ना जो बोलने पर आता है तो फील्ड में काम करने वालों को खुली गाली देता है. फील्ड में रहने वाले समझते हैं कि हेडक्वार्टर वाले मूर्ख होते हैं. यह नहीं समझते कि उनके सामने पूरा प्रदेश खुली किताब की तरह फरफराया करता है. ककहरा लेकर समझते हैं कि उनसे पढ़ा-लिखा और जानने वाला कोई दूसरा नहीं. हम जानते हैं कि कौन काम करता है, कौन नहीं करता. कौन हराम की खाता है और कौन अपनी पेंदी का खून मारता है. यहां लोग अफसर बन गये हैं. अपने बाबू की तरफ देखते हैं कि वह करे तो काम हो. वही उनको हगाये, वही सौंचाये, हालांकि खन्ना हमेशा वहीं नहीं बना रह सकता था.

इस तरह की बातें हनुमान प्रसाद को अंदर तक कचोट जातीं. जिस तरह खन्ना बोलता था, उस तरह के लोगों के बारे में उसका यह पुख्ता खयाल हो गया था कि उनकी पूरी शक्ति उनकी जबान और ऊंची आवाज में होती है. वह तभी मद्धिम पड़ती है, जब उनसे ज्यादा तेज बोलने वाला दुगुनी आवाज में ऐसे लोगों की बात जवाब देता है. हनुमान प्रसाद अपनी इस कमी को जानता बचपन में जब भी आवाज उठाना चाहता था तो घर वाले टोक थे कि बुलंद आवाज से बोलना बद्तमीजी होती है. इसलिए बुलंद आवाज में बोली जाने वाली भाषा सीख ही नहीं पाया. मिनमिनाना जानता था. उसकी मिनमिनाहट को दूसरे जोरदा जबान और रियाजी गले वाले घोलकर पी जाते थे. अब उसे शं होने लगी थी कि क्या उसकी बात कभी कोई सुनता है या सुने अंततः वह इस निष्कर्ष पर पहुंच गया था कि बोलना वर्जिश और सुनना तपस्या. और वह अपनी कमी को तपस्या में परिवर्ति करने में लग गया था. अभी तक वह तपस्या उसे रम्मे तक से जिता पायी थी.

हनुमान प्रसाद की नवविवाहिता पत्नी फिलहाल उसकी ज्या बड़ी कमजोरी थी. दफ्तर के बाद पत्नी को छोड़कर कहीं अके जाना या किसी का अनाहूत आना उसको थोड़ा परेशान कर दे था, पर ऐसा ज्यादा बार नहीं होता, क्योंकि वह अभी शहर में नया था और दफ्तर में भी. लेकिन उस दिन जब उसे पता चला मंत्रीजी की पेशी में रात को दस बजे पहुंचना है तो उसकी सम में काफी देर तक नहीं आया कि वह क्या करे? हालांकि जाने अलावा कोई दूसरा रास्ता भी नहीं था.

◆

हस्बमामूल वह समय से घर आ लगा था. घर में घुसते ही की तरह दरवाजा बंद करके वह बाहरी अला-बला से सुरक्षि हो गया था. वह दरवाजा कम दहलीज ज्यादा थी. वे लोग थे. मकान पुराने किस्म का था. फिर भी वे उसमें अधिक दबे और सुरक्षित अनुभव करते थे. घर में घुसते ही उसने अपने ढीला किया और दोनों एक दूसरे में सिमट जाने की मानसिक में लौटने लगे. लगभग वे लोग लौट ही चुके थे. किसी तरह के घान की संभावना से वे पूरी तरह मुक्त थे, लेकिन दरवाजे एक अजीब बहशीपन से खटखटाये जाने ने उनकी संपूर्ण एका को कुचल दिया. वे दोनों आहत थे, हनुमान प्रसाद कुछ ज्यादा. हनुमान प्रसाद पर दरवाजा खटखटाने का वह भय जल आ जाने के डर की तरह हावी हो गया था. वह एकदम दरवा खोलने के लिए नहीं जा सका. कुछ देर बाद उठा और बड़बड़ हुआ दरवाजे की तरफ चलता चला गया. उसका खयाल था, सकता है, रम्मे हो, कोई समस्या लेकर आया हो. वह किसी से आता है और घंटे भर तक अपने मन की गलाजत निका रहता है. वैसे तो वह कम आता है, पर जब आता है तो हरि की बस्ती से लौटता हुआ होता है. उसके पास उन लोगों के कहने के लिए कोई एक कहानी होती है, जिसे वह बढ़ा-चढ़ा कहता है और अपनी जातीय श्रेष्ठता के समक्ष उन सबको सिद्ध करता चला जाता है. हनुमान प्रसाद के पास सुनने के कोई रास्ता नहीं रहता. जब वह जाता है तो हनुमान प्रसाद और त्रस्त व्यक्ति को तरह अपने आपको समेटता हुआ सा दरवाजा बंद कर देता है.

हनुमान प्रसाद चिल्लाकर उसे घर से बाहर कर देने के से भर गया था. वह अपनी कायरताभरी चुप्पी को भंग

उस पर टूट पड़ना चाहता था. वह अपने द्वारा खींची गयी उस बाड़ को फांदकर दूसरी तरफ पहुंच जाना चाहता था, जिससे वह अपनी आवाज बुलंद कर सके.

उसने पूरी तैयारी के साथ दरवाजा खोला. रम्मे नहीं था. एक सरकारी अहलकार था. अहलकार क्या सरकारी हरकारा. अंग्रेजों के जमाने में शायद ये लोग कुछ इने-गिने लोगों के लिए रायबहादुरी, खानबहादुरी के खिताबों के फरमान लाते हों तो लाते हों, पर जबसे अपनी सरकार आयी थी, तब से इनका नाता अच्छी बातों और खबरों से करीब-करीब खत्म-सा ही हो गया था. पगड़ी के एक तरफ लटकी लाल झालर लगातार और बहुत हिल रही थी. हनुमान प्रसाद की नजर पहले उसी पर गयी थी. उसका कद और शरीर रम्मे बाबू से भी बड़े थे. उसे देखकर वह एक कदम पीछे हट गया और उसके बोलने का इंतजार करने लगा. उसने पूछा, "हनुमान प्रसाद, जिला हरिजन अधिकारी. . ."

"कहिए!"

"कहिए नहीं, यह बताइए, कहां रहते हैं."

"आप बतायें, मैं ही हूं."

उसने हनुमान प्रसाद को ऊपर से नीचे तक देखा. फिर दोहराया, "आप ही हैं. . .अच्छा, नमस्ते." रुककर बोला, "क्या आप दफ्तर हो गये हैं, पहले सिविल सर्जन होता था, कलक्टर होता था, जज होता था. . .पुलिस कप्तान होता था. डिप्टी, तहसीलदार, मुंसिफ, कोतवाल होते थे. सारे जिले का काम चलता था. अब— दफ्तरों की फौज है और कहीं कुछ नहीं होता."

हनुमान प्रसाद को उसका इस तरह बोलना बुरी तरह नागवार गुजरा. वह सोचता ही रहा कि उसकी इस बद्तमीजी का मुंहतोड़ जवाब दे, पर इसी बीच उसने बोलना शुरू कर दिया, "खैर सा'ब, सरकार जाने और जनता जाने, हमें तो काम से काम, आपको यानी हरिजन अधिकारी साहब को सर्किट हाउस में मंत्री जी ने रात के दस बजे बुलाया है. पहुंच जायें. इस पर दस्तखत कर दें." वह एक ही सांस में बोल गया.

"हमारे मंत्रीजी."

"मंत्री या तो सबके या किसी के नहीं. . ." अपनी जान में उसने बहुत बड़ी बात कही और हंस दिया.

"अच्छा सा'ब, सलाम," कहकर उसने हाथ फैला दिया. "इनाम-विनाम हुजूर, आखिर आपको तो मंत्रीजी ने याद किया है. पहले कलक्टर भी किसी को याद कर लेता था तो क्या पूछिए."

हनुमान प्रसाद ने कातर भाव से उसे देखा और एक रुपया निकालकर उसके हाथ पर रख दिया. रुपये को उसने अछूत को छूने की तरह पकड़ा और जेब में रखकर बिना नमस्ते किये लौट पड़ा. उसे लौटते देख उसे लगा कि वह ऐसा जिन था, जो आंधी-तूफान मुंह में भर कर लाया था और उसके ऊपर उलटकर लौट गया.

उसने पता नहीं क्यों आवाज देकर पूछा, "ठीक दस बजे!"

वह घूमा और बोला, "साढ़े दस बजे सही! खाना खाकर लौटेंगे, तब मिलेंगे. बड़े आदमियों को खाने में खेत कटने, खलिहान उठने और रोटी बनने जितना वक्त लगता है." वह तेज चलने वाले सांप की तरह कहीं को खिसककर लोप हो गया.

वह एक बदला हुआ चेहरा लेकर अंदर लौटा. पत्नी के चेहरे की ताजगी और कमनीयता के स्थान पर सरकारी दूत के खुरखुरे और भावहीन चेहरे का साया हनुमान प्रसाद के चेहरे पर टिक गया था. पत्नी ने हंसकर पूछा, "चेहरे पर रात के साढ़े आठ से दोपहर के बारह कैसे बज गये."

"तुम्हें मजाक सूझता है. जरा भी दया-माया नहीं. यह नौकरी है...हरिजनी ओटने से भी गयी बीती. इससे तो टोकरी ढो लेना अच्छा. यह साला मंत्री अपने आप तो मोटर पर चलता है, सर्किट हाउस में ठहरता है, दूसरों को चप्पलघसीट समझता है. . . ."

पत्नी तुरंत बोली, "मेरे भाई को गाली क्यों देते हो. धीरे से बोलो, भगवान न करे, वह कभी मंत्री हो."

हनुमान प्रसाद बात को बिना समझे उखड़ गया, "मैंने तुम्हारे भाई को भला क्या कहा. मैं तो अपने भाग्य को रो रहा था. उस बूढ़े खूसट मंत्री की बात कह रहा हूं, जो अपने आप तो मोटर पर चढ़ा घूमता है, दूसरे से कहलाता है कि रात को साढ़े दस बजे काली कोसों सर्किट हाउस मिलने पहुंचो. निकालो कपड़े, उसकी अर्थी को कंधा दे आऊं." पत्नी का चेहरा बदल गया. चुपचाप कपड़े निकाले. बिना कुछ बोले पलंग पर रख दिये. हनुमान प्रसाद फिर अपने मौन तप को लौट गया. दोनों मशीन हो गये. पत्नी अपना काम करती रही और हनुमान प्रसाद अपना. हनुमान प्रसाद को कमीज लेकर जूता चमकाकर पहनने तक में पूरा आधा घंटा लगा.

जूता पहनते हुए वह बोला, "पहली बार मिनिस्टर से मिलना होगा. सुना तो है, भला आदमी है, मुझ जैसे छोटे से अफसर का मिनिस्टर से मिलना, साली शेर की सवारी. पता नहीं खाये या छोड़े. इतना मिनिस्टर से खतरा नहीं, जितना उस खन्ना से है, क्या-क्या भरा हो. भरा हुआ तो मिट्टी का अनार भी आग उगलता है." खड़े होकर हाथ झाड़ते हुए बोला, "अंदर से दरवाजा बंद कर लेना, जब मैं आऊं, तभी खोलना. इसमें बुरा मानने की बात नहीं, नौकरी है. हमारा विभाग ही हरिजन कल्याण विभाग है. यहां सब कल्याण ही कल्याण है. गरीबी का भी कल्याण, बेरोजगारी का भी. . .और इस नौकरी का भी. धत्त तेरे कल्याण की. . .पर रोटी तो इसी कल्याण से चलनी है." वह अंदर ही अंदर कल्याण. . .कल्याण रटता रहा.

▣

हनुमान प्रसाद बोलता-बोलता बाहर की ओर चलता चला जा रहा था. दरवाजे तक पहुंचकर उसे लगा, उसका गला सूख गया है. पत्नी से एक गिलास पानी देने को कहा. पानी आने तक वह पत्नी, मंत्री, रम्मे, हरिजन, खन्ना और अपने पुराने घर की दहलीज के बोसीदा किवाड़ों के बारे में सोचता रहा. सोचने का कोई क्रम नहीं था. कभी इस पर कूद जाता था, कभी उस पर. एक-दो बार उसे वे सब-हरिजन, मिनिस्टर के पास खड़े और उसके खिलाफ शिकायत करते भी नजर आये, जो दफ्तर आते थे और रम्मे उन्हें समझा-बुझाकर या गाली-गुफ्ता करके लौटा देता था. वह सहारा लेकर खड़ा हो गया. फिर उसे दहलीज का दरवाजा तोड़कर बदमाश घर में घुसते और पत्नी के साथ. . .यानी उसे परेशान करते नजर आये. फिर खन्ना मिनिस्टर से खुसुर-फुसुर करता और उसकी ओर देखकर मुस्कराता नजर आया. . . हनुमान प्रसाद को अपने पैरों में एक तरह का कंपन महसूस हुआ. उसकी पत्नी पानी लायी. बिना कुछ बोले पानी पिया और बिना इस बात का एहसास कराये कि उसके पैरों में कंपन है, वह यथा-

• •

शक्ति तेजी के साथ चल दिया. चबूतरे की सीढ़ियों से उतरते-उतरते भी उसने दरवाजा एहतियात से बंद कर लेने और न डरने की हिदायत दी.

दरवाजा बंद हो जाने के बाद भी वह दस-मिनट तक सीढ़ियों के नीचे खड़ा दरवाजे को देखता रहा. जब दरवाजा यथावत बंद रहा और कोई चूं-चूं नहीं सुनाई पड़ी तो उसने रिक्शा की चिंता करनी शुरू की. कहां से ले. वह रिक्शा मिलने के बारे में भी थोड़ा शंकित था. इतनी रात को काली कोसों सर्किट हाउस तक जाने के लिए कोई तैयार होगा भी या नहीं? वह हल्के-हल्के कांपते पैरों से खरामा-खरामा चला. कुछ दूर चलने के बाद उसे एक खाली रिक्शा खड़ा नजर आया. रिक्शावाला नाली के मुहाने पर बैठा था. वह खड़ा रहा. हनुमान प्रसाद को लगा, वह जरूरत से कुछ ज्यादा वक्त ले रहा है. इतना वक्त साधारणतया लगता नहीं, जब तक कोई खास ही बात न हो. उठने से पहले जब वह एक-दो बार हिला तो वह थोड़ा संभलकर खड़ा हो गया और सोचने लगा कि वह उसे चलने के लिए कैसे राजी करेगा, लेकिन उसे ज्यादा जद्दोजहद नहीं करनी पड़ी. उसने कहा और वह मान गया कि बैठो. वह बैठ गया और पैसे के बारे में सोचता रहा. उस बात को लेकर वह अंधकार में था. रिक्शा वाला कुछ भी पैसे मांग लेने को स्वतंत्र था. उस हालत में उसके पास चुपचाप दे देने के सिवाय कोई रास्ता नहीं था. दरअसल वह लड़ने के मामले में कमजोर आदमी था. थोड़ी देर में वह सब कुछ भूल गया था, यहां तक कि इर्द-गिर्द क्या है, रिक्शा कहां से गुजर रहा है—उसे कुछ पता नहीं रहा. बीच-बीच में जब ध्यान आ जाता था तो गर्दन उठाकर जबरदस्ती देखता था कि वह कहां तक पहुंचा. ठीक रास्ते पर ले जाया जा रहा है या नहीं.

◆

मंत्रीजी को उसकी साढ़े दस बजे क्या जरूरत पड़ गयी. जरूर कोई ऊंची शिकायत पहुंची है. उस शिकायत ने ही मंत्रीजी को बुलाने के लिए बाध्य किया है. भला हो गांधी बाबा का... न वो पैदा होते, न यह हरिजन विभाग खुलता. उसके मुंह में रम्मे के लिए गालियां भर-भर आ रही थीं, पर वह दे नहीं पा रहा था. केवल सोच रहा था. वह काम करे, बेचारे हरिजनों को मिलनेवाला पैसा कायदे से बांटता रहे, उनकी रिपोर्टों की फाइल को ठीक-ठाक रखे तो यह साला दिन ही क्यों देखना पड़ता. इस बात से तो कोई इनकार नहीं कर सकता कि वे हजारों साल से पिसते चले आ रहे हैं, समाज का हिस्सा हैं. न हों, विभाग के नाते, इंसान के नाते भी तो कुछ जिम्मेदारी है ही. रम्मे तो स्वयं भी उनकी विपदा को समझता है, न हो उतना अनुसूचित जाति का, पर जो कुछ भी है... समझता तो है ही. कसमसाहट आती कि आव देखे, न ताव, उसके दोनों हाथ पकड़कर दो-चार धौल जमाये कि हरामखोर के बच्चे, इतनी ही बड़ी जाति का है तो इस विभाग में नौकरी करने क्यों आया, जा कहीं जात बदलकर सत्यनारायण की कथा बांच. यहां रहेगा तो सब कुछ करना होगा. इस जात को गांठ बांधकर खूंटी पर टांगकर आया कर. फिर लगता, उसके पैर पकड़ ले और कहे कि मैं हाथ जोड़ता हूं, तू काम कर...इन बेचारों को इस तरह मत जलील कर. तेरा तो कुछ बिगड़ेगा नहीं, मेरी नौकरी चली जायेगी. होते-होते वह सरकार द्वारा चलायी जा रही कल्याणकारी योजनाओं की विफलता की आशंका से घिरने लगता और उसे लगता कि वे लोग डंडे-बेलचे लिये उसे घेरे खड़े हैं. फिर खन्ना नमूद हो उठता. मंत्रीजी के पीछे उसकी परछाईं हिलती नजर आने लगती.

हनुमान प्रसाद ने जब गर्दन उठाकर देखा तो रास्ता बहुत सुनसान नजर आया. सड़क, सड़क के दोनों ओर ऊंचे-ऊंचे खंभे और बिजली. बस! रिक्शा जंगल से गुजरती रेल की तरह सट्टा-सट्ट. वह पत्नी के बारे में सोचकर एकाएक भावुक हो उठा. फिर वह रिक्शेवाले के भय से भयभीत हो गया. कहीं भी रिक्शा रोक कर कह सकता है, निकालो जो कुछ है. फिर लात मार कर कहेगा, जाओ भागो. वह सिकुड़ गया. हो सकता है, हरिजन ही हो और परेशान हो. परेशानी में सब कुछ किया जा सकता है. समझाये से भी नहीं समझेगा. कौन जाने, कपड़े ही उतरवा ले. वह नंगा कहां जायेगा? मंत्री के पास या घर. इससे तो बेरोजगार अच्छे. पत्नी क्या बेरोजगारी के आलम में भी उसी भाव से रह सकती है? बेकार की बातें सोचते-सोचते दिमाग खराब हो गया. नौकरी तो सब करते हैं, मिनिस्टर, खन्ना, रम्मे? पत्नी क्या अलग है. वह उससे पहले चाहेगी कि उसका पति नौकरी करे.

◆

रिक्शा की रफ्तार मद्धिम पड़ने लगी तो उसका खयाल पक्का होने लगा. वह अपनी कुव्वत-ए-बाजू का अंदाजा लगाने लगा. अगर वाकई रिक्शे वाले ने कुछ ऐसा-वैसा किया तो क्या वह उसका सामना कर पायेगा. यह तो निश्चित है कि वह उससे जबर पड़ेगा. हम लोग दिमागी काम करते हैं, ये जिस्मानी. जिस चीज को ज्यादा इस्तेमाल करो, वही मजबूत होती है. हमारा दिमाग है. मैं भी दंड-बैठक लगाता होता तो इसे पटक देता. पटक भी न पाता तो कम-से-कम कब्जे में तो नहीं ही आता. उन लोगों की ताकत अंदर हड्डियों में रहती है. हम लोगों की कमजोरी उजागर रहती है.

हनुमान प्रसाद ने अपने उस पूरे चिंतन से अपने आपको बाहर निकालकर पूछा, “क्यों भाई, क्या बात है?” उसने गर्दन हिलाकर “कुछ नहीं” का संकेत किया. “धीमे क्यों पड़ गये?”

वह गर्दन उसकी तरफ घुमाकर बोला, “आप लोग बैठने की नौकरी करते हैं और बैठने की ही तनख्वाह पाते हैं. फिर भी थक जाते हैं... मैं तो फिर भी घसीटे चला जा रहा हूं.”

“अच्छा, तो थक गये थे. मैं समझा, कोई और बात है. दरअसल मिनिस्टर साहब ने बुलाया है. वैसे चाहे ये मिनिस्टर ही हों, पर बिना हम लोगों के काम नहीं चलता. फोन करेंगे, आदमी भेजेंगे. जब काम नहीं कर सकते तो क्यों मिनिस्टर बन गये. कोई और काम देखते, पर कौन समझाये. मिनिस्टर बन गये तो अफलातून! खैर, उनसे ठीक दस बजे मिलना है. इन लोगों के नाक पर दिया जलता है, काम भी हमसे ही लेंगे और आंख भी हमें ही दिखायेंगे...”

रिक्शावाला थोड़ा उखड़-सा गया, “मिनिस्टर हमारा क्या करेगा? ज्यादा-से-ज्यादा सिपाही से धक्का दिलवाकर बाहर निकलवा देगा. निकलवा दे. रोज साले सिपाही धक्का देते हैं. “हट बे, यहां मत खड़ा हो. यह कोई खड़े होने की जगह है,”

ने की नहीं तो क्या तेरी अम्मा के बैठने की जगह है. सोचते हैं, न बेइज्जती होती है. धक्का-मुक्की, गाली-गलौज तो अपने लों के जमाने से सहते चले आ रहे हैं. लो, उतरो बाबू, मिल लो निस्टर से."

"यहां तक लाये हो तो अंदर तक ले चलो. रात का वक्त है."

"हमारे लिए तो दिन है ना बाबू."

अंदर सन्नाटा था. सीढ़ियों पर एक बड़ी बत्ती जल रही थी. मान प्रसाद ने रिक्शेवाले से कहा, "तुम्हें ठहरना होगा."

"कितनी देर लगेगी?"

"जितनी भी लगे . . . मिनिस्टर का मामला है."

"पैसे?"

"जो ठीक होंगे."

"खुलना ठीक है. देर का मामला है. आप तो मिनिस्टर के लाये आये हो, मैं आपका लाया हुआ हूं."

"रुपया दो रुपया और ले लेना."

"आने का डेढ़, जाने का डेढ़—तीन! रुकने के दो. कुल पांच."

हनुमान प्रसाद सीढ़ियों पर धीरे-धीरे चढ़ा. उसके पैरों में र से कंपकंपी लौट आयी थी. उसे थोड़ा-थोड़ा वहम था कि हो ता है, गिर जाये. पैरों का कांपना और गिरना अलग बातें होने वजह से वह गिरा नहीं. उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि ों आया हो और चिड़िया का बच्चा पर मारने को नहीं. मंत्री होना भीड़ और शोर से सिद्ध होता है. भीड़-शोर न हो तो मंत्री हो सकता है.

सीढ़ियों पर चढ़ने के बाद हनुमान प्रसाद रुका, इधर-उधर ा, सूंघा और जांचा. दबे-दबे पांव अंदर की तरफ बढ़ा. ड्राइंग म में सोफे पर एक लंबा आदमी सो रहा था. उसका सोना, रे के बराबर था. मुंह ढका था, पर कपड़े इतने अस्त-व्यस्त थे कि ह सोये से ज्यादा नंगा था. हनुमान प्रसाद की समझ में नहीं आया वह उस आदमी के उस नंगेपन के साथ क्या करे. पहले उसे ाये या पहले उसे ढके: या फिर उसकी तरफ पीठ करके बैठ ये, जिससे उसका नंगापन नजर न आये. नंगेपन को इतनी ानी से नजरअंदाज नहीं किया जा सकता, खासतौर से इस ार के नंगेपन को.

▪

त्रीजी के आने में विलंब का वह ज्यादा मुस्तैदी से शिकार ा जा रहा था. बारह बजे आये तो क्या वह तब तक इसी तरह ा इस नग्नता को वहन करता रहेगा? उसकी पत्नी! वह भाव ल-सा हो गया. जब वह पहुंचेगा तो वह ज्यादा जोर से उसके ने से चिपक सकती है. तब . . .! उसका ध्यान उस आदमी के पन की तरफ एकाएक चला गया. वह हल्का-सा मुस्कराया, र तुरंत गंभीर हो गया. वह नहीं चाहता था कि कोई उसकी कराहट देखे और संदर्भों को समझे.

"उसे चलना चाहिए." उसने अपने आप से बुदबुदाकर कहा. "कहीं कोई परेशानी न खड़ी हो जाये. दरवाजे कमजोर हैं. हर के दबाव को रोक नहीं पाते. वह चिंतित हो आया. इस तरह ोग जो अपने को ढककर नहीं रख सकते, कुछ भी कर सकते हैं. सकी चिंता पत्नी और आदमी के नंगेपन पर टिक गयी.

लघुकथाएं

▣ वीर राजा

फांसी

फांसी से पहले जेलर कैदी के पास गया. कैदी एक लंबे समय से कई बार जेल में आ चुका था. वह हर बार निर्दोष छूट जाता, लेकिन इस बार उसे फांसी की सजा हुई.

जेलर उसके अच्छे बर्ताव से बहुत खुश था. दूसरे कैदियों की तरह उसने कभी जेल का नियम न तोड़ा और न ही कभी किसी से झगड़ा किया.

जेलर ने कहा, "मुझे बहुत दुःख है कि तुम्हें फांसी मेरी जेल में हो रही है. तुम्हारी कोई इच्छा हो तो बताओ."

"फंदा तो गले में पड़ना ही था. अफसोस इस बात का है कि मैंने दस कत्ल किये. हर बार साफ बरी हो गया. इस बार किसी को गर्दन नहीं मरोड़ी. फिर भी तख्ते पर लटक रहा हूं. क्या फांसी मुझे पहले जुर्मों के आधार पर नहीं हो सकती?" ▣

खुद-ब-खुद

एक दरोगा का तबादला दूसरी जगह हो गया. उसका परिवार वहीं रहा.

कुछ दिन बाद उसके घर चोरी हो गयी. आकर वह दरोगा से मिला. माल बरामद कराने की ताकीद करके लौट गया. दो महीने बीत जाने पर भी माल उसके घर न पहुंचा.

इसी बीच दूसरे दरोगा की दो भैंसें चोरी हो गयीं. वह बहुत परेशान हुआ. किसी को बताने में भी शर्म महसूस हुई. वह चुपचाप मोटर साइकिल लिये तफतीश के बहाने भैंसें ढूंढ़ता रहता.

एक दिन वह उस दारोगा के पास पहुंचा, जिसके घर चोरी हुई थी. उसने अपनी भैंसें चोरी होने की बात उसे बतायी. सुनते ही वह बोला, "तुमने मेरा माल तो बरामद किया नहीं, खैर अगर तुम्हारा माल इस इलाके में हुआ तो खुद-ब-खुद तुम्हारे यहां पहुंच जायेगा."

इत्तिफाक की बात थी कि दूसरे दिन दोनों दरोगाओं के घरों में माल सही सलामत पहुंच गया था. □

लेकिन मंत्रीजी . . .! अगर चला गया और मंत्री जी ने आकर पूछा तो . . .? जरूर निकाल दिया जायेगा. नौकरी जितनी मुश्किल से देते हैं, इन लोगों के लिए निकालना उतना ही आसान होता है. न जाये तो मुश्किल, रुके तो मुश्किल. करे तो क्या करे. कुछ देर उसका हाथ माथे पर बना रहा.

क्या वह उन लोगों के हाथों में सिर्फ मिट्टी का खिलौना है, चाहे जब गिरा कर तोड़ दें? उसके दिल में अपने प्रति एक तरह की घृणा बढ़ने लगी. वह गाली देने को आतुर-सा हो उठा, लेकिन अपने आपको कहां तक गाली दे सकता था. दरअसल ऐसा करना अपने प्रति असहयोग करना होता है. उसकी नजर फिर उस नंगे आदमी पर गयी. वह और बुरी तरह से नंगा हो गया था. मात्र एक करवट लेने से ही ऐसा हो गया था. उसको किसी तरह भी नजरअंदाज नहीं किया जा सकता था. बल्कि उसके कारण देखने वाले के अंदर उस तरह का या उससे भी ज्यादा भयंकर नंगापन उभर सकता था. वह चाहकर भी उसे ढक नहीं सकता, क्योंकि उसकी धोती कमजोर और नाकाफी थी. ढकने पर और ज्यादा भदेसपन आ जाता. अब तो जो कुछ था, सामने था. ढका हुआ नंगापन कुछ ज्यादा हो जाता है.

वह उसे घुमाने-फिराने लगा था, अंदर भी, बाहर भी. मंत्री जी का होना, उनके न होते हुए भी उसकी पीठ में गड़ रहा था. इस एहसास ने रम्मे बाबू और खन्ना के अस्तित्व को भी एक नाम दे दिया था. वे भी उसके इसी तरह गड़ते रहते थे. वे हरिजन, जो उसे कुछ नहीं कहते थे, पर निराश नजरों से उसके दफ्तर को देखते हुए निकलते थे, उसके भीतर गड़े हुए तो नहीं थे, पर किसी समय भी आर-पार निकल सकते थे.

▣

इस बार हनुमान प्रसाद उस सोते हुए आदमी के प्रति और अधिक असहिष्णु हो उठा. वह उसे ढक देने के लिए आतुर हो गया. उतावलेपन से बढ़ा. ढकना शुरू भी किया, पर वह आदमी हड़बड़ा कर उठ बैठा और जोर-जोर से चिल्लाने लगा, "कौन-कौन. . .? चोर. . .चोर. . .!"

हनुमान प्रसाद ने हिलाकर जगाने की कोशिश करते हुए कहा, "चोर नहीं, मैं हूं हनुमान प्रसाद--जिला हरिजन कल्याण अधिकारी."

उसने जब उसकी तरफ देख लिया और चिल्लाना बंद कर दिया, तब बोला, "कपड़े ठीक करो."

वह इस तरह जगाये जाने से उत्तेजित था और हनुमान प्रसाद के प्रति नाराजगी और कसमसाहट अनुभव कर रहा था, "अरे साहब, हम तो सोते-सोते उघड़ गये. लोग तो यहां हर किसी के सामने उघड़े रहते हैं. ये सर्किट हाउस है जनाब! फिर आपको मुझसे मतलब. . .? बताइए आपको क्या काम था?"

हनुमान प्रसाद के मन में थोड़ी घबराहट होने लगी. वह बात को समाप्त करने के खयाल से तुरंत बोला, "मंत्रीजी ने दस बजे बुलवाया था. उनके दर्शन करने आया था, कब तक लौटेंगे?" दर्शन शब्द कहने के बाद उसने पुनः सोचा. गलत कहा या सही.

"मंत्रीजी," कहकर वह हंसा. फिर अपने आपको धोती से ढकने में लग गया. जब वह अपने को ढक चुका तो बोला, "कहां हैं मंत्री जी?" जिस तरह वह हंसा था, उससे वातावरण में थोड़ा ब जरूर आ गया था, लेकिन जब तक वह बोला नहीं, तब तक मान प्रसाद अंदाज नहीं लगा पाया कि वह क्या कहना चाह या क्या कहेगा. कुछ देर बाद उसने कहा, "यह तो दरबा ही मं का है. जानते हैं दरबा. . .? आये, गुटुरगूं. . .गुटुरगूं किया फुर्र. पहले तो मैं डरता था, अब. . .वे लोग भी मुझे सोते को देख जाते हैं. मुझे क्या कहेंगे, जब मैं उन्हें कुछ नहीं कहता. इसी बाबू ढकना है तो दूसरों को ढकने के बजाय अपने को ढको. को ढकोगे तो क्या जाने वह और नंगा हो जाये. . .मंत्री लोग बात को जानते हैं. . .वे इस चक्कर में ही नहीं पड़ते."

हनुमान प्रसाद की समझ में नहीं आया, वह क्या करे. फिर पूछा, "मैं पूछ रहा था, हरिजन कल्याण विभाग के मंत्री

"अरे हरिजन कल्याण मंत्री हो या आबकारी. सबकी लगी है." रुककर बोला, "वो रम्मे बाबू के मंत्री से मतलब है चले गये नौ ही बजे." फिर पूछा, "आप रम्मे के अफसर हैं ना

वह उठा नहीं. थोड़ी-सी कमर सीधी करके बोला, "अ तो नमस्ते." फिर बोला, "उनका काम जल्दी समाप्त हो ग ड्राइवर से बोले, चलो ग्यारह बजे तक लखनऊ पहुंच जा आपकी जगह रम्मे बाबू सलाम कर गये. हम झूठ कहें तो पाप के होंगे. . .आपके बारे में तो हम जानते नहीं, पर रम्मे बाबू एक कांटे का आदमी! गैर हरिजन को हरिजन बनाये और हरिजन गैर हरिजन. दोस्त का दोस्त, दुश्मन का दुश्मन. आप चाहे अफसर हों, अगर दुश्मन हो गया तो समुंदर के तल तक छोड़ेगा. बड़े आदमियों से बात करने का उसे बड़ा मलका हंसिया की तरह जबान चलती है."

वह पूरी तरह उलझ गया था. समझ में नहीं आ रहा था यह क्या कह रहा है. बिना सोचे-समझे पूछा, "रम्मे बाबू मंत्री से. . ." पहले हकलाया, फिर वाक्य पूरा किया, ". . .क्या हमारे में कुछ कह रहे थे?"

"बाबू साहब, वे किसी के बारे में कुछ नहीं कहते और स बारे में कहते हैं. आपके बारे में कहा या नहीं कहा, यह हमें मालूम नहीं, पर कहा ही होगा. डरते-वरते वे किसी से नहीं. दम बांह में चाहिए था, अब जबान में चाहिए. जिस आदमी दिल से डर निकल जाता है, उसी जबान में दम होता है. डर साला आदमी को मुरगा बनाता है. . .डर न हो तो साला मु शेर बन जाये." वह आदमी अब बिल्कुल नंगा नजर नहीं आ था. उसकी आंखों में नींद भी उतनी ज्यादा नजर नहीं आ रही हनुमान प्रसाद की जान पर बन रही थी. वह बोलता जा रहा "अरे, इन लोगों को वहां तो काम नहीं, घड़ी में यहां और घड़ी में उनका डर निकल गया. हम यहां से मिनट भर को जायें तो आ हो जाती है. जिस रोज हमारा डर निकल जायेगा तो हमारी त से जग परलों (प्रलय). तभी यहां सोते हैं, जब तक दिल में है. पहले ज्यादा डर था तो नींद नहीं आती थी, सोते-सोते उ की बात तो और है, अब डर कम हो गया तो खुला-ढका सब बराब

हनुमान बाबू ने अपनी बेचैनी को छिपाते हुए पूछा, आपको मालूम नहीं, वो क्या कह रहा था?"

पृष्ठ ५८ पर जा

शादी को लेकर आमतौर पर हमारी जहनियत बहुत रस्मी हुआ करती है. अनजाने हम उसमें शरीक भी हो जाते हैं––"अपने विश्वास की वजह से नहीं, जितना एक चलती आयी आदत या बन गये संस्कार से. . .दरअसल, हम सब शहादत के आदी हो गये हैं, सपनों की शहादत या इच्छाओं की शहादत."––मीनाक्षी पुरी ने अपनी कथाकृति 'सात फेरे अधूरे' (सारिका–1980, अंक–2) में शादी की सप्तपदी के अधूरे होने के कुछ आयाम दिये थे. अब प्रस्तुत है उन्हीं सवालों से जूझती हुई संवेदना लिये राजी सेठ की ताजा कहानी.

मेरे लिए नहीं

• राजी सेठ

भास्करन शीशी से उड़ेलकर दवा का कप थमाते-थमाते उसके पलंग के सिरे पर बैठ लिया.

दवा मुंह में उड़ेलकर कप खट् से उसने पास की मेज पर रखा और तमतमाते हुए बोली, "हाउ डेयर यू. . . .नाऊ प्लीज स्पेयर माय बेड. . . .आय कांट स्टैंड इट!"

उसकी आंखों से निकलती आग. ऐसी आकस्मिकता. दूसरे दोनों मित्रों का सामने बैठे होना और भास्करन पर घड़ों पानी पड़ना.

भास्करन का वहां बैठ जाना क्या मात्र अपनी इच्छा से प्रेरित था?

उस बैठने में यह भी शामिल था कि उस कमरे में केवल दो ही कुर्सियां थीं और उस पर क्रमशः जयरामन और सक्सेना बैठे थे. उसमें यह भी शामिल था कि वह उन लोगों से जरूरत से ज्यादा खुलकर व्यवहार करती थी जिससे ऐसे किसी परहेज पर ध्यान नहीं जाता था. उस सीमा का, जिससे आगे जाना निषिद्ध है, अनुमान ठीक से, नपे-तुले ढंग से नहीं हो पाता था.

उसकी बीमारी. . . परदेश. . . अकेलापन. . .के मिले-जुले एहसास से उपजे एक सहज सौहार्द से भरकर और कुर्सी के अभाव को स्वाभाविक रूप से लक्ष्य करके ही उसने ऐसा कुछ कर डाला था. ऐसा कुछ करते, अपनी समझ से, उसे कुछ अनुचित भी नहीं लगा था. एक प्रकार का संस्कार मन में ऐसी बातों को लेकर जरूर था, परंतु वह यहां, इस स्थल पर, उसके साथ नहीं जुड़ता था. वह, जो अक्सर उनके बीच बैठकर सिगरेट भी पी लेती थी और शराब को भी निषिद्ध नहीं मानती थी.

यों भी, वह ऐसा न करता तो क्या करता. उस कमरे में, जहां दो कुर्सियों पर दो व्यक्ति और पलंग पर वह स्वयं विराजमान थी, कहीं किसी दीवार या कुर्सी से टिककर खड़ा रहता परिचालक की तरह?

ऐसे मुखर तिरस्कार से उसका भीतर-बाहर तिक्त हो आया. ठेस भी लगी. सोचा भी—कि वह इस सारे कार्य-व्यापार को, मेल-जोल को, स्वतंत्रता से रातों-रात बतियाते होने को, जीप की मीलों लंबी इस शौकिया दौड़ में बांह पकड़कर घसीट लिये जाने को किस दृष्टि से देखे?

प्रशासकीय अकादमी में ट्रेनिंग पूरी करके असिस्टेंट कलेक्टर के पद पर जब वह अपनी पहली पोस्टिंग पर शहर में आयी तो जरूर एक अजूबा थी. सतत आंखों के सामने, पर पकड़ से बाहर. सड़कों पर कभी एक खतरनाक तेजी से जीप दौड़ाती. कभी कबाड़ी बाजार में जमीन पर बैठकर 'ओरिएंटल' के नाम पर बेतुकी चीजें खरीदती. कभी क्लब में धुत्त नाचती और कभी पं. रविशंकर के सितार के कार्यक्रम में सिर ढंककर, आंखें बंद करके, अपने को एक कोने में खामोशी से स्थापित करती. मित्रों के बच्चों से उसका जुड़ाव अटूट. उनके साथ शतरंज खेलती, नर्सरी राइम्स गाती, मौका पड़ने पर बराबरी से लड़ती-झगड़ती और कॉमिक्स के ढेर में खोई दीखती. . . .उस समय वह उस वयस्क दीखने वाले संसार से एकदम बेगानी हो जाती, जैसे वही उसका अपना मौलिक वास्तविक संसार है, शेष सब तो उस पर लाद दिया गया है. ऐसी पद-प्रतिष्ठा, ऐसी उन्मुक्तता और इस तरह बेमतलब छिटक देने की संकीर्णता.

सोचते-सोचते भास्करन का मन नये सिरे से कड़वा गया.

"आय टेक योर लीव," कहकर वह गेस्ट-हाउस के दरवाजे को झनझनाता हुआ बाहर निकल गया.

▣

वह बीमार थी, अतः उसके ऑफिस आने की अगले दिन कोई आशा नहीं थी. वह बीमार न होती तो वह वहां मरने ही क्यों जाता. . . .!

शायद जाता. . . .उसके व्यवहार में भास्करन के लिए एक विशिष्ट आकर्षण-आमंत्रण था. इसमें संदेह नहीं, हालांकि इसे समझने में देर जरूर लगती थी, क्योंकि अकुंठ उन्मुक्तता उसका स्वभाव था.

जो भी हो, वह वहां नहीं जायेगा. उसकी पूरी तरह अवहेलना करेगा, उसने निश्चय कर लिया था. मन में कभी कहीं उस छोटी-सी बात पर अपने इतना क्षुद्र हो जाने की स्थिति खटकती भी थी, वह भी उसकी बीमारी की अवस्था में, परंतु जो बात मूल में तेल की बूंद भर लगती थी, प्रभाव में पानी की सारी सतह को तिरमिरा देने वाला फैलाव बन जाती थी.

सक्सेना ने तीसरे दिन बताया, उसका ज्वर चेचक के हमले की भूमिका थी. वह अब पूरी तरह उस रोग के शिकंजे में है.

यह भी, कि उसने बुलवाया है भास्करन को. जयरामन ने यह भी जोड़ा कि, "वह उस बीमारी की अवस्था में तुम्हारे घर शिफ्ट करना चाहती है, क्योंकि तुम्हारा घर ही रेगुलर घर है—ड्राइंग रूम, बेड रूम वाला. . . .हम लोग तो वैसे भी. . ."

जयरामन सुपरिटेंडेंट कस्टम्स था और सक्सेना ए. एस. पी. दोनों एक प्राइवेट गेस्ट-हाउस में रह रहे थे.

घुल गया कलुष, पर उसकी जगह चिंता, आशंका ने ले ली. शहर कोई इतना बड़ा नहीं था, प्रोबेशनर्स की यह मुक्त मित्र-मंडली जानी भी जाती थी. . . .फिर भी ऐसा कदम. . .

उसका फैसला अटल था—लगभग एकतरफा, "यहां दिक्कत होती है". . . ."बैरे नहीं सुनते". . . . "अकेला लगता है". . . . "समय नहीं कटता". . . ."क्यों! घर से किसी को क्यों बुला लें . . . .आय टोल्ड देम आयम आन माय ओन. . . .सुख में, दुख में, बीमारी में, आराम में, मैं अपनी देखभाल कर सकती हूं. शहर संभालती हूं, अपने को नहीं संभाल सकती."

"संभाल सकती हैं तो यूं अपने को मुझ पर थोप क्यों रही हैं . . . .पूछा तो होता कि मैं इसके लिए तैयार भी हूं या नहीं." एक छोटी-सी लपट, उस तिरस्कार के प्रतिशोध में, मन में कहीं लपलपायी थी, पर इतना धृष्ट उससे हुआ नहीं गया.

लगा, वह उसकी दुविधा समझ रही है, फिर भी ढिठाई पर उतारू है. कहती रही, "प्लीज, यह तौलिया भी उस बास्केट में रख दो". . . ."वह नीचे के खाने में पड़े कपड़े भी. . . .यह स्लीपर भी बैग में, नीचे ठूंस देना. . . .होप, यू डोंट माइंड. . . . आयम सो हैल्पलेस." उसका चेहरा बुखार से तमतमा रहा था. . . . लाल-लाल चकत्ते सब कहीं उभर आये थे.

वह सोच रहा था आगे के दिनों का त्रास—घर में यह बीमारी की पोटली. . .शहर वालों की कानाफूसी और मित्रों की ईर्ष्या. .

चार-पांच दिन तक तो वह एकदम निढाल पड़ी रही. वह छुट्टी पर रहा, उसकी सेवासुश्रुषा में पगा. कितनी अजीब बात थी, जब वह घर में थी तो उसके साथ होना कुछ और तरह का लगता था—उत्तरदायित्व, दूरी, शिष्टता, शालीनता, औपचारिकता की अधिक जरूरत.

बुखार उतरने लगा था. दानों के रंग भी पलट गये थे. कई बार उसे ध्यान आता, अब उसकी बारी है, छूत से वह बच नहीं सकता. इस चिंता में एक बार पास वाले होमियोपैथी से 'प्रिवेंटिव डोज' भी ले आया था. छूत के डर से जरूरत से हाथ खींच लेना, या उस चिंता को प्रकट करना उसे अभद्र लग रहा था.

बुखार उतरने पर बस एक ही दिन प्रतीक्षा की थी उसने. अपनी थोड़ी-सी चीजें उसने स्वयं बटोर ली हैं, भास्करन ने ऑफिस से लौटने पर देखा. उसे बोलने का मौका दिये बिना वह बोली, "सारा घर 'डिसिन्फेक्टेंट' कराना पड़ेगा तुम्हें. . .दैट इज व्हाट आय हैव डन फॉर यू इन रिटर्न."

निरापद-सा परिहास उसके मन में मचला, पर कहा उसने मात्र इतना ही, "मैं बहुत सख्त जान हूं, तुम चिंता न करो. . . ."

चलते समय भास्करन की ओर पूरी तरह उन्मुख होकर उसका हाथ, हाथ में लेते हुए बोली, "कोई और मुझे इस तरह सह नहीं सकता था—नन एल्स, आयम ग्रेटफुल. . . .हार्टिली ग्रेटफुल फॉर एवरीथिंग यू हैव डन फॉर मी."

ऐसी संजीदगी में से उसका हो गुजरना भास्करन के लिए नया दृश्य था. आवाज के खनकते खरेपन ने उसे कहीं भीतर से छू लिया. उस क्षणांश के आवेग को छिपाने के लिए ही वह बोला, "थोड़े दिनों के लिए घर क्यों नहीं चली जाती."

"नहीं! घर में कभी इस तरह नहीं जाती हैल्पलेस होकर . . . .मैं उन लोगों से कह चुकी हूं, "आय केन लुक आफ्टर माय सेल्फ. . . .जब मैं उनकी बात नहीं मानती तो वह भी मेरी चिंता क्यों करने लगेंगे."

उनकी कौन-सी बात? वह पूछने को हुआ पर चुप रहा. न-सी बात, कब, उसके साथ सीमा का अतिक्रमण हो जाती है, ा नहीं लगता.

तब उसे समझता होता तो समझ जाता––'शादी की बात'. ब तक उसे स्वयं भी मालूम नहीं था कि वह ऐसे किसी इरादे पूर्णतया उदासीन है.

मालूम होता तो अपने आवेगों पर कुछ वैसी ही लगाम वह गाता, उन्हें शादी की प्रत्याशा से बंधने क्यों देता?

भास्करन उसे वापस गेस्ट-हाउस छोड़ने गया था. कमरे में -दो चक्कर मारकर वह धम्म से कुर्सी पर बैठ गयी थी.

"इट्स सो वैरी डिफरेंस हियर....नहीं?"

"हूंऽऽ." भास्करन खिड़की खोल रहा था. उसने पलटकर ा. आवाज में से जो कुछ भी छन रहा था, वह उदासी थी या कान या निरीक्षण?

उसका चेहरा बेहद शांत और संजीदा-सा था, पर किसी हरे आवेग की जकड़ से परे. वह दरवाजे की जाली के पार कहीं देख रही थी.

भास्करन ने मन में तय कर लिया था, वह खाना यहीं उसके थ खाकर जायेगा. इस सांवले झुटपुटे में तो हर किसी को अपना र भी बेगाना लगने लगता है.

एकदम मुक्त, सिगरेट-शराब की अभ्यस्त, क्लब में शाम ी बजती तेज धुनों पर नाचने की पहल करने वाली महिला, सके घर, इस बीमारी में एक सभ्य दूरी और आभिजात्य के पूरे पचारिक संयम और संकोच के साथ रही थी. एक निरीह बच्ची ी तरह वह दवा लेती, पथ्य लेती और जो जरूरत होता उसे हद नम्रता से मांगती. भास्करन को उस समय एक बीमार बच्चे साथ होने का एहसास होता था. तमतमाई हुई बेचैनी में उसे र-उधर करवटें बदलते देख वह ममत्व से पूछता—"क्या हुत दर्द है?"

"हां! है तो सही....इट्स इनएविटेबल....है न?" वह क क्षीण-सी हंसी हंसती जैसे उसका मन रखने के लिए हंस रही . उसके छुट्टी लेकर घर बैठने के मुआवजा स्वरूप, नहीं तो ताल पड़े रहना उसे आरामदेह लगता.

उसके घर आने के पहले ही दिन भास्करन ने पूछा था, "मैं रूम में सो गया तो कुछ पता नहीं लगेगा कि तुम्हें कुछ चाहिए ...तुम्हें क्या ठीक लगेगा?"

निर्णय उसने जानबूझकर उस पर छोड़ दिया था—इच्छा, चित्य, जरूरत को जताये बिना....उस दिन की घटना वह ी तक भूल नहीं पाया था, यह उसे तब पता लग पाता, ब ऐसे स्थलों पर, सारी मिट्टी ढाहकर वह स्मरण पूरी तेजी एक रोपी हुई कलम की तरह सिर उठाकर सामने खड़ा हो या दीखता.

"तुम्हें सोफे पर सोने में तकलीफ तो जरूर होगी, पर मेरे ए तो अच्छा ही है."

भास्करन को पहली बार यह एहसास एकाएक और पूरी तेजी हुआ कि अनिश्चय या संभ्रम उसका दुर्गुण नहीं है. ज्यादातर तों में वह स्पष्ट है. तब तक वह यह नहीं जानता था कि हमारी रह वह—अनिश्चयों, दुविधाओं की जमीन पर नहीं खड़ी—कुछ आधुनिक, कुछ परंपरागत. हर चीज के लिए उसका रवैया साफ है, भीतर-बाहर एकमत, एकरस.

"नहीं, मुझे कोई तकलीफ नहीं," कहकर वह चादर और तकिया उठा लाया. रुख की स्पष्टता की राहत उसे महसूस हुई. यह स्थिति कि उसका कहां सोना उचित है, उस जैसे व्यक्ति को घंटों सोच में उलझाये रख सकती थी.

उस क्षण उसे यह भी लगा कि उसके इतना मुक्त, इतने कुंठारहित होने का कारण भी यहीं कहीं इसी बिंदु पर है—यह सोचने और करने के तादात्म का बिंदु. यह भी कि उसका चेहरा द्वंद्वों में बंटा हुआ, टुकड़े-टुकड़े चेहरा नहीं है. भीतर की किसी न किसी हलचल को हर समय संभालते होने की बेचैन कुशल परिपक्वता उसके चेहरे को छू तक नहीं गयी है. वह था तनाव-खिचाव-विहीन, निर्दोष बालसुलभ चेहरा.

"तुम बेफिकर होकर सो जाओ," वह अचानक बोली, "मुझे अगर जरूरत होगी तो तुम्हें पुकार लूंगी."

"हां! हां!"...भास्करन ने अपने में लौटते हुए अचकचा कर कहा. नाइट बल्ब उसने जला दिया और स्वयं सोफे पर लेट गया. चादर ओढ़ने की उसकी इच्छा नहीं थी, परंतु यूं बिना चादर ओढ़े उसी कमरे में अपना लेटे होना उसे अच्छा नहीं लगा. वह अधलेटा-सा पहले उससे इधर-उधर की बातें करता रहा. दोस्तों की, अकादमी की. वह उससे तीन साल सीनियर था. उसी अकादमी से दीक्षित होकर आया था. यहां डी. डी. ओ. के पद पर था.

जरा ही देर में भास्करन को लगा कि बात करने, सजग

••

लघुकथा

रिश्तेदार

□ लक्ष्मीनारायण वशिष्ठ

इतवार का दिन था. बाजार बंद होने के कारण सेठ हीरालाल अपने साथियों के साथ ताश खेल रहा था. तभी एक अर्थी दिखाई दी, जिसमें मुश्किल से दस-बीस लोग थे.

"जाने कौन मर गया?"

"होग्गो कोई मास्टर-फास्टर. कोई बड़ो आदमी होतो, तो हजारेक की भीड़ होती," हीरालाल बुदबुदाया.

अर्थी और पास आयी. एक से न रहा गया. पूछ ही बैठा, "क्यों भाई, कौन मर गया?"

"मास्टर बिहारी."

"कौन मास्टर बिहारी! नंबर चार वालो तो नईं...?" हीरालाल ने घबराकर पूछा.

"हां! वही! नंबर चार वाला बिहारी मास्टर."

हीरालाल की आंखों से झर-झर आंसू झरने लगे.

"क्यों, कोई रिश्तेदारी थी क्या?"

"हांऽ! मेरो डेढ़ सौ रुपैया बांक्की थो जा पे. डूब गओ."

सभी के चेहरे उतर गये थे. □

लघुकथा

बाबू

□ सन्तत् मिश्र

"बाबूजी मुझे लोन मिलेगा?" कहते हुए एक गरीब किसान बैंक के बाबू के सामने खड़ाहो गया.

बाबू चुपचाप फाइलों के पन्ने पलटते रहा.

शायद उसने उस किसान का स्वर सुना ही नहीं था.

पीछे की टेबिल से आवाज उभरी, "अरे रवि, पान-वान की नई हो रही क्या?"

उसने भी उसी अंदाज में उत्तर दिया, "हां-हां-चलो."

दोनों बाबू बतोले करते हुए बाहर निकल गये.

वह किसान दोनों की वापसी का इंतजार करने लगा.

करीब पैंतीस मिनट बाद वे दोनों बाबू लौटे.

बाबू को आते देखकर गरीब की आंखों में रोशनी-सी आयी. वह फिर उसी से गिड़गिड़ाकर बोला, "बाबूजी . . . !"

उस बाबू ने दूर से ही झिड़की लगायी, "अरे अभी कुछ नहीं होगा. लंच टाइम हो रहा है."

किसान और दीन होते हुए बोला, "अच्छा बाबूजी."

उस ऑफिस का लंच चार बजे तक चलता था.

चार बजे तक वह किसान कोने में बेंच पर बैठा-बैठा बैंक के विज्ञापन पोस्टर देखता रहा. ट्रैक्टर चलाता हुआ किसान और लहलहाती फसल वाला पोस्टर उसे भा रहा था.

ऑफिस के सभी लोग धीरे-धीरे ऑफिस आने लगे.

वह बाबू भी अपनी सीट पर आकर बैठ गया और ड्रार में से कोई मैगजीन निकाल वह पन्ने पलटने लगा.

किसान फिर उस बाबू के पास गया, "बाबूजी . . . ."

उसका वाक्य पूरा भी नहीं हो पाया था कि बाबू बरस पड़ा, "तुम्हें सुबह से देख रहा हूं कि सिर पर सवार हो! हमें अपना काम तक नहीं करने देते." और फिर बाबू ने चपरासी को एक तेज आवाज लगायी "अरे हरिया . . . ."

हरिया उस किसान को ऑफिस से बाहर निकालता रहा, ऑफिस के लोग अपना-अपना काम करते रहे. □

रहने का उसे श्रम पड़ रहा है. वह चुप हो गया, सोचकर कि इच्छा होगी तो वह स्वयं बोलेगी, परंतु कोई आवाज उधर से नहीं उभरी.

नितांत असहायता की स्टेज निकल जाने पर ही वह गेस्ट-हाउस में लौट जाने के बारे में कहने लग गयी थी. शहर में अफवाह-आलोचना का पहला हंगामा झेल चुकने के बाद भास्करन स्थिर हो गया था. जैसे छह दिन वैसे आठ दिन, अतः वह उससे कुछ संभल जाने तक रुके रहने का आग्रह करता रहा.

"नहीं, बेयरर्स तो हैं. . . .दिक्कत नहीं पड़ेगी."

ऐसी ही कुछ दिक्कत बताकर वह गेस्ट-हाउस से आयी थी. भास्करन ने उस ओर संकेत किया तो वह एक ढीठ शरारती हंसी हंसते हुए बोली, "ओह नो, आय नीडेड यू. . .यू. . .यू. . .आय वाज़ श्योर. . . तुम अब ऑफिस जाना शुरू करो, जमा हो गया होगा. . ."

"नहीं, फाइलें घर मंगाकर देखता रहा हूं."

"हां, मुझे मालूम है." वह उसे सोता समझकर ही करने बैठता था.

"और हां, सिटी लाइब्रेरी से कुछ किताबें ला देना. बहुत गया. . . नाऊ आय शुड स्टार्ट लुकिंग आफ्टर मायसेल्फ."

आगे के दिन सहज हो गये थे. पहले की उन्मुक्तता आत्मी में बदलने लगी थी. कोई अनुपम मिठास, झील की सतह को पवन के स्पर्श की तरह मन पर लहराने लगी थी, एक निहा चौकन्नी चेतावनी के साथ कि उसकी इच्छा के बिना उसके कभी भी निर्द्वंद्व नहीं हुआ जा सकता और वह उसे लेकर निर्द्वंद्व होती है, यह सिरा भी उसी के हाथ में था. यों शुद्ध घुल सकने वाली मैत्री उनके बीच इतनी पुरानी बात हो गयी थी भास्करन के अब तक के संस्कार, कि ऐसी अंतरंग मैत्री विप लिंग में हो नहीं सकती —को उछालकर संदर्भ से बाहर गयी थी.

अक्सर ऑफिस में उसके कई मसले उलझ जाते थे. कई वह चपरासी से फाइलें उठवाकर लंच ऑवर्स में उसके कमरे आ धमकती—"लुक! यू हैव टू डू दिस फॉर मी."

ऐसे में दोनों भवों के बीच का हिस्सा सिकुड़कर उसके को एक एकाग्र प्रबुद्ध तेजस्विता का आभास दे देता था. उपस्थि समस्या के सरोकार से उस समय वह पूरी तरह घिरी हुई दत्तचित्त, असंपृक्त. अंत तक वह उससे बहस करती, उल बात पलटती और मानसिक फैसले पर पहुंचने तक अपनी पर उतनी ही उग्रता से डटी रहती. वह जिस रूप में, जिस स्तर भी भास्करन को मिलती, एक ही एहसास को बार-बार रेखां करती. . .निर्द्वंद्व, अखंडित, दुविधाविहीन होने का एहसा वह जहां भी होती है, पूरी की पूरी होती है.

भास्करन को प्रायः अचंभा भी होता था. शोभा, स तरु, भाभी, मां, आंटी, चाची. . .जितनी स्त्रियों को उसने तक जाना था, उन पर अपनी-अपनी तरह से ध्यान जाता वह उसे कहीं रख नहीं सकता था. किसी से उसकी तुलना हो सकती थी, किसी को समझकर उसे समझा नहीं सकता

ध्यान उधर भी जाता—विमेन लिब. . . स्त्री स्वतं वह प्रदर्शन की मानसिकता. . . .वह रुढ़ियां तोड़ने का बड़ तेवर. . .वह समानता के अधिकार के लिए उठी हुई मुट्ठि वह पुरुषों के प्रति पिच्च-सी घृणा जो अपने निहत्थे नंगेप किसी और चीज से अधिक स्त्री में आत्मविश्वास की कमी दुर्घटना को ही अधिक प्रकाशित करती थी.

नहीं, वह वहां भी नहीं जुड़ती थी. ऐसा सोचते होते ध्यान अक्सर उसके परिधान पर जाता था, जो ज्यादातर बे होता. उसमें चुनाव की वह तीखी-सावधानी नहीं दीखती जो ऊपरी मध्य-वर्ग की आत्म-सजगता की देन है. वह कभी गाढ़े रंग के कपड़े पहनते-पहनते एकदम उजले कपड़ों पर जाती. पहन लेने के बाद वह उनके बारे में पूरी तरह भूल कोई आत्म-सजगता नहीं. पल्ले को बार-बार छेड़ना, खि सरकाना, संभालना नहीं. लिपस्टिक कभी गाढ़ी, कभी हल्की

नी एकदम गायब. तब उसके सफेद चेहरे पर कुछ सांवले से होंठों अत्याचार बड़ा असंगत लगता. एक प्रकार के परिधान को पहनते-नते बिल्कुल दूसरे प्रकार के परिधान पर उतर आने का निर्णायक उसका मूड है, रुचि या चुनाव कह सकना कठिन था. अपने री रंग-रूप को केंद्र में रखकर कहने-सुनने की छूट न वह लेती थी... न ही उस रास्ते अपने तक पहुंचने की कोई राह दूसरों को देती थी.

भास्करन को बंगलौर से कई बुलावे आ चुके थे, वह उन्हें पाता रहा, क्योंकि उनमें अभी तक वह दबाव और आग्रह था जो अब दिखाई देता था.

उसे पता था वह जायेगा. पत्रों, चित्रों, संबंधियों की एक भीड़ जुड़ेगा. आई. ए. एस. हो पाने की उसकी निजी योग्यता को ने पुत्र की उपलब्धि की तरह ओढ़कर वह आसपास के समाज दो इंच ऊपर होने, बोलने, चुनने का स्व निर्वाचित अधिकार ने को दे देंगे और हर तरह से संपन्न अपने किसी चुनाव पर ियां फिराते हुए फैसले के लिए उसका मुंह देखते होने का क करेंगे.

और वह क्या करेगा फैसला?... किस आधार पर. फोटो कर? एक बार की दावती परेड में शामिल होकर? एक-दो के दिये गये एकांत में उससे जबरन मिलकर? या अपनी ति के गुणों की तालिका को सर्वोत्तम सर्वसिद्ध मानकर?

उसे स्वयं आश्चर्य हुआ. वर्षों से उसका घर से दूर होस्टलों रहते होना... इतनी आत्मनिर्भरता... इतनी परीक्षाएं... दमी की दीक्षा.... इतने पड़ावों से गुजर चुकने के बाद भी के जीवन के फैसले का सिरा उसके माता-पिता के हाथ में है!

शायद इसकी कोई आवश्यकता ही नहीं पड़ी. कुछ है जो तक इस एक बात को दो भागों में बांट देता रहा है—प्रेम ी और तथा विवाह किसी और तर्क से. जैसे प्रेम होता हो—ल जाने के लिए और विवाह—उखड़ा हुआ कोई पेंच ने के लिए.

एम. ए. के जमाने में वह तरु के लिए एकदम सीरियस था. भी संकेत फेंका करती. बुलाने पर आती. पास जाने पर ने लगती. छूने पर प्रत्युत्तर देती. मिलने पर खुश होती. समय रुआंसी हो जाती, पर शादी उसे होस्टल से घर लौट घोड़ी सजाकर, दहेज ले जाकर, रामकृष्ण छाप दूल्हे से ही नी थी.

“मेरा दुर्भाग्य . तुम्हें पाना किस्मत में नहीं था.” आखिरी बेहद रुआंसा-सा मुंह बनाकर जब वह बोली तो उसके दुखते मन को बड़े अशुभ तरीके से लगा था कि उसे इस अफेयर सा अंत पहले से ही ज्ञात था. वह उसके साथ अपना कॉलेज ‘गुड-टाइम’ काट रही थी.

पहले घर से आने वाले पत्रों से वह परेशान नहीं होता था. नी पुलक की लहर भीतर कहीं दौड़ जाती थी, पर अब? कहीं कुछ ठहर जाता था और प्रश्न की मुद्रा में प्रीति के ने जा खड़े होने का शोर भीतर पैदा करने लगता था.

इस बीच उन दोनों ने खासा फासला तय कर लिया था. शामें साथ गुजरतीं. सक्सेना और जयरामन् जो इस टोली के अभिन्न थे, दो पाटों के बीच पड़ने से बच गये गेहूं के दानों की तरह छिटक गये थे. वस्तुतः तो उन लोगों ने तभी हाथ खींच लिया था, जब वह बीमारी में उसके घर रहने गयी थी, “किसी निहित मंशा के बिना ऐसा नहीं हो सकता. आग का साथ है... बस हिम्मत चाहिए थी, जो उस दबंग कलक्टरनी में बहुत है, दूसरों का हौसला तो वहीं जाकर पस्त हो जाता है.”

वीक एंड्स पर वह आगरा, आबू, जयपुर आदि भी घूम आये हैं. भास्करन के मन में एक भय था—बिस्तर छूते ही झिड़के जाने का भय. उसे घुलते समय लगा था. कोई पहल न करने का पौरुषीय असंयम उसने बहुत दिन तक बनाये रखा था. अंततः सीमाओं के घुलने ने बहुत समय नहीं लिया था.

●●

लघुकथा

अफसर

▣ सनत् मिश्र

जबसे पुराने बड़े साहब का ट्रांसफर हुआ है और उनकी जगह नये बड़े साहब की पदस्थी हुई है, ऑफिस का माहौल एकदम शांत-सा हो गया है.

नये साहब बहुत ही स्ट्रिक्ट आदमी हैं. जरा भी शोर हुआ कि मेमो ईशू... जरा भी देर हुई कि चार्जशीट...! पर अचानक एक दिन साहब के चेंबर से तीन बार घंटी बजने के बाद भी जब चपरासी उनके पास नहीं गया, तो साहब खुद ही बाहर आ गये.

साहब को देख एकाउंटेंट पूछने लगे, “क्या बात है साब....”

साहब नाराजी के मूड में थे. ....“ये चपरासी का बच्चा कहां चला जाता है, तीन बार घंटियां बजा चुका हूं.”

एकाउंटेंट ने जवाब दिया, “पता नहीं साब.”

साहब एकाउंटेंट पर झुंझला गये. वे और तेज आवाज में बोलने लगे, “इस आफिस में क्या हो रहा, तुम्हें कुछ भी पता नहीं रहता. कौन बाबू कब आता है, कब जाता है.

इसी बीच एक बाबू ने धीरे से कहा, “शायद पान-सिगरेट लेने गया हो....”

साहब और नाराज हो उठे, “तुम लोग कुछ काम करते-न-धरते, बस चपरासियों से ऊलजलूल काम करवाते रहते हो. जिसने भी उसे पर्सनल वर्क से बाहर भेजा होगा उसे मेमो ईशू करूंगा... और चपरासी की छुट्टी भी!

ऑफिस के सभी लोग एक-दूसरे का चेहरा देख रहे थे.

हर कर्मचारी को सामने वाले पर शक हो रहा था.

इसी बीच चपरासी आ गया.

चपरासी को देखते ही साहब चीख पड़े, “कहां गये थे?”

चपरासी ने बेफिक्री से जवाब दिया, “कल बाई साहब ने कहा था. दो बजे आ जाना, आटा पिसाना है, इसीलिए घर पर चला गया था साब.”

साहब ढीठाई से हंसते हुए अपने चेंबर में सरक गये. □

सिगरेट अब वह बहुत कम पीती थी. यद्यपि हंसकर कहती, "यह तो अच्छा है कि तुम्हारे अच्छा-बुरा लगने के अधिकार को मेरा अपना मन एक्सेप्ट करता है. . . नहीं तो किसी के कुछ कहने से मैं कुछ करने या छोड़ने वाली नहीं. . . नाऊ, लुक एट माय ममा एंड पापा. . . आय फील टेरीब्ली सॉरी बट. . . ."

उसके ऐसे कथनों पर उसके ब्रिगेडियर पापा की बड़ी दयनीय-सी तस्वीर मन में उभरती थी.

भास्करन उलझा रहने लगा. एक दिन आंख के रास्ते उसके मन की पूरी थाह लेते हुए वह बोली, "क्यों खोटे सिक्के में तबदील होते जा रहे हो तुम?. . . .व्हाट इज बादरिंग यू ?"

भास्करन ने फाइलों के नीचे दबा तार खींचकर उसके हाथ में थमा दिया, फिर पेपरवेट को घुमाते हुए बोला, "कब तक टालता रहूंगा. . . महीनों से ऐसे पत्र आ रहे हैं. . . जाना तो पड़ेगा. मालूम है, बंगलौर क्यों बुलाया जा रहा है ?"

"मालूम है." वह थोड़ी संजीदगी से बोली.

चाहता वह था कि अब वही बोले. जिस बात को वह अभी तक स्थगित करती आयी है, उसका जिम्मा ले ले. सामने उपस्थित हुए दबाव को निजी समझकर झेले, उत्तर दे, अधिकार जताये, पर वह कुछ भी न बोली. सामने पड़े कागज पर टेढ़ी-मेढ़ी आकृतियां बनाती रही.

वह कुछ क्षण प्रतीक्षा करने के बाद बोला, "यह ज्यादा आसान है. . . मैं उन्हें यहीं से तुम्हारे बारे में लिख दूं ?"

"क्यों ? मेरे बारे में क्यों. . . मैं तुम्हें कह नहीं चुकी कई बार. . . क्या मेरी तरफ से यह बात साफ नहीं है. . . .शादी ? ओह नो!. . . .नो मैरिज. . . . नैवर. . . .मेरा ऐसा कोई सपना नहीं है."

"इच्छित व्यक्ति सामने हो तो फर्क नहीं पड़ता ?"

"पड़ सकता है, पर मुझे नहीं पड़ेगा. मैं अपने को अच्छी तरह जानती हूं. 'पत्नी'. . . जिसे तुम सब 'पत्नी' कहते हो, वह मैं नहीं हो सकती. . . .कभी भी नहीं. मेरे अंदर दूसरों को उस हद तक एडजस्ट करने का माद्दा नहीं है. मेरी आदतें? . . . .ओह गाड!. . . .मेरे साथ यह नहीं निभ सकता. . . खाने का सवाल सबसे बाद में. बाथरूम का इस्तेमाल सबसे बाद में. नींद की छुट्टी सबसे पीछे. . . आय टेल यू. . . दे आर ग्रेट. . .दीज वाइव्ज. . . नो हाउ टू किल देम सेलव्स फॉर अदर्स. रियल मारटर्स."

"घर का बड़ा घिसा-पिटा नक्शा खींच रही हो तुम. . . घर तो वही होगा, जो उसमें रहने वाले लोग बनायेंगे. . . उनके जो संबंध होंगे. . . संबंध घर से बाहर हो सकते हैं तो घर में क्यों नहीं. . . ?"

"नहीं ! नहीं हो सकते. . . घर में होते ही स्टैंड बदल जाते हैं. . . . घर में अपने लिए नहीं दूसरों के लिए जी सकने, घुल सकने का आर्ट चाहिए. एसीमिलेशन इज ए वैल्यू देयर.. . . और मैं ? . . .मैं जानती हूं, मैं अपने को नहीं भूल सकती. . . . आयम सो वेरी पॉजिटिव अबाउट माय नीड्स."

उसके आगे कुछ भी कहना भास्करन को मांगते होने की दयनीयता से लथपथ लगा और दयनीय उसके सामने नहीं हुआ जा सकता था. वह चुप बैठा रहा.

वह भी अछूती रही हो, ऐसा नहीं था. लाल दहकते हुए अंगारे के मुख को क्षणांश में ही जैसे एक बुझी हुई परत घेर
है, वैसा ही हो आया उसका मुख. . . एकदम अवर्ण.

आघात भास्करन को यह भी लगा था—अभी तक
के जिस कोने में वह बादलों का जमघट देख रहा था, वह
होकर किसी दूसरी जगह पर था. उसे अब तक अपने
एक बड़ा युद्ध स्थल दीखता था. . . उसके माता-पिता
पुत्रवधू को आसानी से नहीं स्वीकारेंगे. पुत्रवधू का प्रत्यय
साथ कहीं नहीं जुड़ा था, पर इस समय मां-बाप, संस्कार,
कता, जातिभेद, प्रांत—सबका एक ही नाम था. सामने
में वह ही थी, अपने जीवन-दर्शन की चौंध में खड़ी, अकेली,
हुई.

बात जीवन-दर्शन पर ही आकर अटक जाये तो
जीवन-दर्शन की ओर देखने की सजगता भी मन में कहीं
उटती है.

▣

रात पहली बार उसने क्लब में प्रीति के चेहरे पर ऐसा
आवरण देखा. . . .आछन्न संजीदा चेहरा. ताश खेलने में
कोई उत्साह नहीं दिखाया. क्लब की पिछली दीवार जिस
पर थी, उसके नीचे नदी बहती थी. अक्सर वह लोग
टहलते उधर निकल जाया करते थे.

उसने भास्करन को उधर चलने का सुझाव दिया. रात
ही नहीं, एक-दो घंटे पहले पानी पड़ चुकने के बाद गीली,
उमस से भरी हुई भी थी. इस सुझाव को मानने की कोई
भास्करन को नहीं हुई. लगा, उधर जाना उदासी बढ़ायेगा
क्लब के अंदर जाने की इच्छा भी उसने नहीं जतायी.

"कोई बीच का रास्ता भी तो हो सकता है?"
दालान से थोड़ा आगे बढ़कर उसने बाहर झांका.

"कम ऑन," भास्करन ने उसका हाथ लगभग
कहा. उसकी बांह जितनी भी ठंडी हो, हथेली वैसी ही
उष्ण.

उस हथेली को इस समय महसूसते हुए एक छोटा-सा
भीतर कहीं उसकी छाती में गड़ने लगा.

बेंत की कुर्सियां खींचकर वे लॉन में बैठ गये.
धुंधले प्रकाश में जहां चेहरा भी साफ नहीं देखा जा
वे दोनों बैठे थे—जड़, अवाक्.

अंदर कोई तेज-सी धुन बजने लगी. वह उठी तो
को लगा, वह नाचने के इरादे से उठी है, पर वह खड़ी होकर
कुर्सी को परे घसीट रही थी. उस आवाज की पहुंच से बाहर
वह सड़क और क्लब के बीच खड़ी मेंहदी की मेड़ के पास
आये थे.

कौन पहले बोले?. . . .क्या ऐसी कोई प्रतीक्षा बीच
. . . .संवाद अपने-अपने मन में चल रहा था, शायद दोनों

भास्करन ने पहली बार उसे देखा था—इतना मौन,
कारण की खोज में पीछे दौड़ते-दौड़ते उसके मन
की तरह उकसा देती थी कोई आशा. यह एहसास कि
उसको खो देने के अवसाद से भरी है,. . .उसको भी
रहा है, यह सब कुछ उतना ही. . . .

"आर यू. . . .आर यू. . . .श्योर प्रीति." भास्करन ने हिम्मत कर डाली थी.

"ओह भाश!" वह बहुत पीड़ित स्वर में बोली, "कह चुकी हूं न कि आय शैल बी ए फेलयोर इन मैरिज. . .मुझे अपनी जरूरतों का पता है पूरी तरह. . . .और घर में अपनी नहीं, दूसरों की जरूरतों का पता होना चाहिए. . . .मैं जानती हूं, इतने त्याग मैं नहीं कर सकती."

"घर में बहुत-सी बातें एक-दूसरे का प्यार-अधिकार मान कर भी तो की जाती हैं. ऐसा क्यों न सोचो, जैसे मैंने तुम्हारे सिगरेट पीने का कभी एतराज तो नहीं किया, पर तुम, स्वयं ही. . ."

"बस! बस, यही. . . .यही सबसे ज्यादा मारने वाली बात है. किसी से चाहा जाना कि वह खुद ही, सोचकर, समझकर, सामने वाले की इच्छा को ध्यान में रखकर बदल जाये, इससे बड़ी और क्रूअल अपेक्षा और क्या हो सकती है!" उसकी आवाज में थोड़ी तल्खी आ गयी थी.

◆

भास्करन अवाक् रह गया, जैसे अब यह अंतिम उत्तर हो अपने तर्क में पूर्ण. इससे आगे कुछ नहीं कहा जा सकता, कुछ नहीं हो सकता. जाने कैसी अबूझ-सी घबराहट उसके भीतर उठी, उसे छिड़कता हुआ बोला, "छोड़ो, वहां जाऊंगा तो देखा जायेगा. . ."

वह बड़ी विचित्र-सी हंसी हंसी. "नीट एस्केप! . . . .खैर. . . इतना हक तो तुम्हारा अपनी जिंदगी पर बनता है कि फैसला करने में जितना चाहो, वक्त लो. . . .नाउ कम ऑन."

डांस के लिए यह आमंत्रण उसकी तरफ से आया न होता तो वह शायद न उठता.

भास्करन से रहा नहीं गया तो उठते-उठते पूछ बैठा, "क्या कभी मां या पत्नी बनने की आकांक्षा नहीं उठती मन में?"

"अपने जैसे व्यक्ति में उस इच्छा का होना मुझे खुद इररैशनल लगता है. . . .आय नो आयम नॉट एटयून्ड टु इट. . . .हवा में तीर मारने का फायदा. हां. . . .बच्चों से मुझे बहुत प्यार है. . . जहां कहीं भी हों, जिस किसी के भी हों. . . .दे गिव मी कंपलीट रिलीज."

उसे याद आया, उसका घंटों बच्चों में खेलते होना अपने को भूलकर . . . .इस बाहरी दुनिया से बेगाना होकर. . . . .

वह शायद उसी रौ में थी. सोचते हुए बोली, "कितना कुछ है हमारे आसपास जिसे हम प्यार करते हैं. . . .वह सब कुछ हमें बिलांग ही करे या करता हो. . . .क्या जरूरी है?"

वह दोनों हाल में घुस गये और नाचने लगे. धुन उनके मन की गति से अधिक तेज थी. व्यर्थ थके, दोनों को एक-सी अनुभूति हुई.

भास्करन चाहता तो हवाई जहाज से बंगलौर जा सकता था, परंतु उसने रेलगाड़ी से जाना ही चुना. अपने वहां पहुंचने के अंतराल को वह अधिक से अधिक लंबा खींचना चाहता था.

'इतना असहायता और अवसाद क्यों', उसने सुबह शेव करते अपने को समझाया. 'और कुछ नहीं तो वह इस फैसले को फिलहाल स्थगित तो कर ही सकता है. . . .'

कुछ धीरज-सा उसके मन को हुआ और इस धीरज को उसने हौले से प्रीति की तरफ सरका देना चाहा.

"नाउ डोंट टेल मी दैट. . ." वह भड़क उठी, "मेरे कारण किसी भी फैसले को स्थगित करके तुम अपने-आप को ही तोड़ोगे . . . .मेरे मन में कुछ नहीं बदलने वाला. अधकचरे फैसले करके जिंदगी को यातना बना देने का मेरा कोई इरादा नहीं. आय टेक लाइफ ऐज समथिंग प्रेशियस. . . .वर्थ प्रिजर्विंग."

भास्करन को अपने पर क्रोध आया. जाने के समय की सघनता को उसने स्वयं ही खंडित कर दिया था. वह उखड़ गयी थी. खीझ को ढांपने के प्रयास में उसका चेहरा तमतमा गया था.

बिना बोले वह प्लेटफार्म पर कुछ दूर टहल गयी. थोड़ी देर बाद स्टाल से एकाध पत्रिका खरीदकर वापस लौटी और उसका हाथ, हाथ में लेते हुए बोली, "सॉरी. . . .तुम्हारा मन दुखाने की मंशा नहीं थी. तुम्हारी दिक्कत समझती हूं. . . .पर साफ कह देना मैं भी जरूरी समझती थी—टू हेल्प यू टू थिंक क्लियरली. . ."

उसका ऐसा पिघला हुआ, स्नेह-सहानुभूति से दीप्त चेहरा देखकर भास्करन और कातर हो आया.

बिखर पड़ने की जमीन उसे मिले, इससे पहले ही वह बोली, "चलूं? . . . .आय विश, यू डू बट रियली बिलीव इन. . .गुडबाय . . . .गुडलक!" कहती हुई वह वापस चलती चली गयी. पीठ का परायापन उसे खूब खला. परंतु ट्रेन के चलने तक उसे रोक पाता, यह साहस भास्करन में नहीं था. यह वह नहीं थी जो मोम की काया की तरह उसकी बांहों में पिघल जाती थी और उस तरलता में से हर बार आश्वासन और विश्वास के साथ नया जन्म लेती थी.

भास्करन 15 दिनों की छुट्टी लेकर गया था. जाकर एक महीने की और बढ़ा ली. जब वापस आया तो पत्नी को लेकर आया.

वहां पहुंचने के बाद उसने दो-तीन पत्र प्रीति को लिखे थे, "मां-बाप बजिद हैं. . . .यहां लगभग सब कुछ तय है. . . .बड़ी अजीब-सी अनुभूति हो रही है. . . .तुम्हारे साथ होने की चुनौती कुछ और ही अर्थ रखती. यू आर ग्रेट." आदि-आदि.

उसने उसी क्षण पत्रों के टुकड़े-टुकड़े कर दिये थे और अपने जिले के टूर पर निकल गयी थी. उन प्रदेशों के अंधेरे डाक बंगलों में उसने जमकर डायरी लिखी. . . .जी भर सोयी. . . .कई पेंटिंग्स बनायी. . . .तहसीलों के छोटे-छोटे बाजारों में घूमती फिरी.

◆

लौटने पर भास्करन की शादी का रिसेप्शन उसी क्लब में हुआ. माली से कहकर उसने एक बड़ा और खूबसूरत बुके बनवाया और उसे उस शाम दंपती को भेंट करने के बाद वह उनकी ओर से पूरी तरह निर्लिप्त हो गयी. पिछले दिनों जो बादल उसके चेहरे पर दीखते थे, वह गायब हो गये थे. . . .उसे वापस मिल गया था, वही अपना मौलिक, तनावहीन, मुक्त, निर्दोष चेहरा.

पार्टी की शाम हर समूह में वह एक प्रच्छन्न से तनाव से स्वीकृत हुई. इस थोपी गयी दया, करुणा से उसका मन इतना क्षुब्ध हुआ कि वह जी भर नाची और थक जाने पर भास्करन दंपती को इच्छित भविष्य की कामना करते हुए जीप लेकर चल निकली. .

फोन भास्करन ने ऑफिस से लंच आवर्स में किया था, "वुड य केयर फॉर ए कप आफ टी?" उसे लौटे दस-बारह दिन तो

लघुकथा

वर्षा यज्ञ

कस्बे के लोग यज्ञ मंडप में इकट्ठे हो गये थे. लोगों ने बारह हजार रुपये एकत्रित करके यज्ञ का आयोजन किया था. उन्हें विश्वास था कि यज्ञ करने से वर्षा अवश्य होगी. इस मौसम में एक बार भी वर्षा नहीं हुई थी.

पुरोहित ने मंत्रोच्चारण करते हुए कहा, "हे इंद्र देवता आप प्रसन्न हों. इस प्रदेश में व्याप्त सूखे से त्रस्त जन पर कृपा करो. अन्न ही प्राण है और वर्षा से ही अन्न की प्राप्ति होती है."

एक व्यापारी ने उठकर प्रार्थना की, "प्रभो, अन्न ही धन है. हमारी दूकानों पर फसल नहीं आयेगी तो हमारा व्यापार नष्ट हो जायेगा. हमें वर्षा की सख्त जरूरत है."

समीप के गांवों में आये कुछ किसान भी वहां उपस्थित थे. उनमें से एक ने कहा, "हमारा तो जीवन ही वर्षा पर निर्भर है. यदि पानी न बरसा तो हम क्या खायेंगे. हमारी फसलें सूख रही हैं. हम पर दया कर परभू." उसने अपने हाथ आकाश की ओर उठाये और उदास मन से बैठ गया.

वहीं बैठ एक कवि ने कहा, "हे देवाधिपति, मैं काली-घटा को देखने के लिए तरस गया हूं. मुझे मोर की मधुर आवाज और पपीहे का आकुल स्वर सुनाई नहीं देता. मेरी कविता के प्रेरणा स्रोत लुप्त हो गये हैं!"

तभी भीड़ में से एक युवक उठा. उसके कपड़े फटे-पुराने थे. लगता था, वह कोई मजदूर था. लोगों ने उसकी ओर देखा और एक दूसरे से बतियाये हुए कहने लगे, "ईश्वर गरीब की पुकार सुनता है. दीनबंधु इस मजदूर की बिनती को अवश्य सुनेंगे.

लोगों की नजरें उस मजदूर पर टिक गयीं. उसके होंठ हिल रहे थे, परंतु आवाज नहीं आ रही थी. भीड़ में से कुछ ने कहा, "बोलो भाई, बोलते क्यों नहीं."

मजदूर अपनी बात कहने के लिए साहस बटोर रहा था. परंतु शब्द थे कि उसकी जबान से निकलते ही नहीं थे. जैसे नींद में डूबा हुआ व्यक्ति लाख चाहने पर भी अपना कोई अंग हिला नहीं सकता या बोल नहीं सकता.

आखिर लोगों ने सुना, मजदूर कह रहा था, "यदि वर्षा हुई तो मेरे कच्चे मकान की छत गिर पड़ेगी और मेरे बीवी-बच्चे और बूढ़ी मां उसके नीचे दब जायेंगे. मैंने कितना यत्न किया कि छत बदलवा दूं, परंतु मैं उसकी मरम्मत के लिए भी पैसे नहीं जुटा पाया. मुझे वर्षा के नाम से ही डर लगता है. मैं नहीं चाहता कि वर्षा हो, मैं नहीं चाहता."

वह अपनी बात पूरी न कर सका. लोगों ने ऊंची आवाज में कहा, "निकालो इस स्वार्थी को. कमीना कहीं का."

यज्ञ चलता रहा. बारिश नहीं हुई. □

▣ पूरन मुद्गल

जरूर हो गये होंगे.

"तुम्हें ठीक लगेगा?" उसके प्रश्न में न व्यंग्य था न आवेग.

"मैं ही तो बुला रहा हूं."

भास्करन मिला उसे—पूरी तरह हिला हुआ, अस्थिर, अशांत. चाय का कप सामने रखकर आंखें नीची किये अपनी हथेली की रेखाओं को पोंछता-मिटाता.

यह असहजता प्रीति ने लक्ष्य की. तोड़ने की गरज से बोली, "कैसा लग रहा है?....एंजायिंग?"

भास्करन ने एक दयनीय-सी दृष्टि ऊपर उठायी.

"क्या हो गया है तुम्हें...? जिस बात में विश्वास करते हो तुम, जिस 'वे आफ लाइफ' में वह चुन लिया है तुमने..अब? ....यह बात अलग है कि तुम्हें लग रहा हो वह कुछ तुमने अपने विश्वास की वजह से उतना नहीं, जितना एक चलती आयी आदत या उससे बन गये संस्कार से.....या हो सकता है डिफर न कर सकने की मजबूरी में किया हो. एक बात कहूं, हम सब इस शहादत के आदी हो गये हैं—सपनों की शहादत, इच्छाओं की शहादत.....इवन व्हेन दे डू नाट कन्सर्न आर हर्ट अदर्स....जो कुछ भी पाना चाहते हैं, उसके बारे में हाफ हार्टेड होते हैं. मन में कहीं न कहीं सोचते रहते हैं कि उसका फैसला किसी न किसी आदत, संस्कार या समाज के हवाले है....कभी सोचा है तुमने कि किसी चीज को पाने की जो जेनुइन अर्नेस्ट कोशिश होती है, उसके कितना आड़े आती है यह बात. अल्टीमेटली हाथ में उतना ही आता है जितना वन हैज वर्क्ड फॉर....या कह लो उतना ही डिजर्व किया था."

"........."

"मैं चाहती तो चल देती तुम्हारे साथ....तुम चाहते तो रुके रहते यहीं. नहीं कह सकती थी मैं तुम्हें, यहीं, अपनी वजह से रुके रहने को. यह कहना भी एक आदेश, एक बंधन देना ही होता. मैं जब स्वयं उसे नहीं मानती तो दूसरे को...."

▣

भास्करन कुछ भी नहीं सुन रहा है. वह कहीं और किसी दूसरे छोर पर कांपता खड़ा है, इस सारी मानसिक उत्तेजना से एकदम अछूता, प्रीति ने एकाएक लक्ष्य किया.

"ऑलदो ऐम्बेरेसिंग...." वह एकाएक मुंह उठाकर बोला, "एक बात पूछूं?...अभी भी तुम्हारे लिए मेरे मन में बनी होने वाली चाह को तुम कैसे लोगी?....आय मीन कैसे....कैसे इंटरप्रेट करोगी?"

"जैसे की जाती है." वह एकदम हंस पड़ी, "नेचुरल!... पुरुषोचित!" शिद्दत का कोई क्षण होता है, तो वह अपने आपको स्वयं मनवा लेता है....तुम अपनी तरह से कह सकते हो कि उसकी कोई गवर्निंग मोरेल्टी नहीं होती....यह तो तुम्हारे सवाल का जवाब हुआ. जहां तक मेरा प्रश्न है, मैं परायी चीजों को हाथ नहीं लगाती....आय अर्न फॉर मायसेल्फ—माय पीस एंड हैपीनेस और वह किसी एक बात में ही तो नहीं मिलती...इट कम्स टू यू इन थाउजेंड अनलिमिटेड वेज...जिंदगी मेरे लिए किसी एक ही विंदु पर खत्म नहीं हो जाती...." □

● 1/12, सर्वप्रिय विहार, नयी दिल्ली

द गॉडफादर : रक्ष संस्कृति का अमरीकी रूप-एक

मारियो पूज़ो अपने घर का निकम्मा लड़का था. तिस पर तुर्रा यह कि उसने लेखक बनने की ठान ली. हमारे समाज में भी आम राय यही है कि लेखक फाके काटते हैं. परंतु मारियो पूज़ो के साथ ऐसा होकर भी नहीं हुआ. उसने एक उपन्यास लिखा––'गॉडफादर' जो इतना लोकप्रिय हुआ कि पूज़ो के वारे-न्यारे हो गये और वह दुनिया का सबसे अमीर लेखक बन गया. यह उपन्यास उसने कैसे, किन हालात में क्योंकर लिखा, यह जानना अपने-आप में बेहद दिलचस्प हो सकता है. यहां प्रस्तुत है पूज़ो की अपनी और समाज की तत्कालीन मानसिकता के संदर्भ में 'गॉडफादर' की कथायात्रा, जो बहुत-सी साहित्यिक गुंजलों को भी रेखांकित करती है––

पूज़ो ने 'गॉडफादर' क्यों लिखा?

▣ द्रोणवीर कोहली

इतालवी भाषा में एक लाक्षणिक शब्द है—'चूच', जिसका संस्कृत पर्याय 'खर' हो सकता है. परंतु इससे भी अधिक सटीक शब्द संभवत: पंजाबी में है—खोता. 'चूच' से प्राय: एक ऐसे व्यक्ति का बोध होता है, जो जड़मति, सुस्त, ढीला-ढाला एवं निकम्मा है. इटली में ऐसी किवदंती है कि प्रत्येक इतालवी परिवार में एक-न-एक 'चूच' अवश्य होता है, जो कभी खा-कमा नहीं सकता. परिवार के अन्य सदस्य कभी उसकी अवहेलना-अवमानना नहीं करते, बल्कि हर प्रकार से 'चूच' की सहायता ही करते हैं.

नदी न घटयो नीर!

आपको यह जानकर अचरज होगा कि आज 'द गॉडफादर' तथा 'फूल्स डाइ' उपन्यासों के बल पर करोड़ों डालर कमाने वाला मारियो पूज़ो, किसी समय 'चूच' ही समझा जाता था. उपर्युक्त दो उपन्यासों की सफलता से पूर्व उसके दो-दो साहित्यक उपन्यास छपकर चर्चित हो चुके थे, अनेक पत्र-पत्रिकाओं के लिए वह तोलकर लिखता भी था, परंतु कभी इतना रुपया नहीं कमा पाया कि सही तरीके से अपने परिवार का भरण-पोषण कर सकता. हमेशा कर्ज में आकंठ डूबा रहता. जब कर्ज वाले अधिक तंग करते या बच्चे जूते खरीदवाने के लिए इसरार करते, तो पूज़ो अपने भाई का द्वार खटखटाता. और भाई भी ऐसा कि हमेशा अपने 'चूच' की सहायता को तत्पर.

परंतु मारियो पूज़ो लेखक था और लेखक में स्वाभिमान न हो, तो फिर वह लेखक कैसा! एक दिन अचानक वह बीमार पड़ा और टैक्सी लेकर अस्पताल पहुंचा, पर उतरते-उतरते नाली में गिर पड़ा. उस दिन की अपनी अधोगति का स्मरण करके पूज़ो ने एक जगह लिखा है:

"नाली में गिरा मैं सोच रहा था कि मैं एक लेखक, जिसकी कई चीजें छप चुकी हैं; और हालत यह है कि मैं यहां कुत्ते की नाई मर रहा हूं. बस, तत्काल मैंने निश्चय किया कि अब मैं भी पैसा कमाऊंगा, प्रसिद्धि पाऊंगा. . . . !"

खुदी को कर बुलंद इतना कि हर तदबीर से पहले, खुदा बंदे से यह पूछे बता तेरी रज़ा क्या है! सचमुच, यही हुआ. मारियो पूज़ो के इसी संकल्प का फल है कि आज वह लेखकों में सबसे बड़ा धनकुबेर बन गया है. 'गॉडफादर' उपन्यास तथा इस पर बनी फिल्म की बदौलत उसने इतना रुपया कमाया है कि वह प्रतिदिन जुआघरों में हजारों दांव पर लगाता है और हारता भी है, फिर भी हालत यह है कि. . .चिड़ी चोंच भर ले गयी, नदी न घटयो नीर. . .

जहन्नुम की रसोई

आखिर, मारियो पूज़ो के 'गॉडफादर' उपन्यास में ऐसा है क्या, जिसने न केवल फाकामस्त लेखक के जीवन की दिशा ही बदल दी है, बल्कि प्रकाशकों एवं फिल्म-निर्माताओं की भी चांदी हो गयी है. इसके लिए मारियो पूज़ो के जीवनवृत पर विहंगम दृष्टि डालना समीचीन होगा, क्योंकि इस उपन्यास में वर्णित कथा तथा उसकी रचनात्मक पृष्ठभूमि को समझने के लिए लेखक के कष्टपूर्ण जीवन का परिचय प्राप्त करना आवश्यक है, क्योंकि दोनों अन्योन्याश्रित हैं.

मारियो पूज़ो इतालवी मूल का अमेरिकी नागरिक है. कभी उसकी दीन-हीन मां जवानी के दिनों में इटली में दक्षिणी सिसिली के एक छोटे-से गांव से भागकर अमेरिका चली आयी थी—एक अज्ञात इतालवी पुरुष से विवाह करने, ताकि दो जून रोटी उसे नसीब हो सके. पति चार बच्चे देकर इस दुनिया से किनारा कर गया. तब परिवार का भरण-पोषण करने के लिए इस स्त्री ने पुनर्विवाह किया, पर दुर्भाग्य ने पीछा नहीं छोड़ा. तीन और बच्चे देकर (इनमें एक मारियो पूज़ो भी था) दूसरा पति भी चुपचाप इस दुनिया से कूच कर गया. पिता की मृत्यु के समय पूज़ो की उम्र कुल बारह बरस की थी. ये लोग न्यूयार्क की एक अत्यंत गंदी बस्ती में रहते थे. 'गॉडफादर–दो' फिल्म में कप्पोला ने न्यूयार्क की उस गंदी बस्ती का अत्यंत जीवंत दृश्य प्रस्तुत किया है. **अचरज होता है कि दिल्ली के वर्तमान पहाड़गंज में छहटूटी जैसे बाजार और न्यूयार्क की तत्कालीन गंदी बस्ती में कितना सादृश्य है!**

न्यूयार्क की उस बस्ती का नाम भी प्रतीकात्मक था—'हैल्स किचन'. . . यानी

जहन्नुम की रसोई. इसी गंदे माहौल में पूज़ो की बाल्य एवं किशोर अवस्था बीती. इस इलाके में रहने वाले इतालवी लोगों का जीवन कितना नारकीय था, इसका विशद वर्णन पूज़ो ने अपनी एक आरंभिक कहानी में किया है.

सोलहवें साल का संकल्प

सारी बस्ती में गुंडों और निठल्लों का आतंक रहता था. मर्द दो जून रोटी कमाने के लिए 'रेलरोड' में मेहनत-मशक्कत करते, बच्चे गाड़ियों से कोयला और बर्फ चुराते फिरते, किशोर-किशोरियां सिल्क की ढुलाई करने वाली मोटर गाड़ियां उड़ाकर अपराधी जीवन का अभ्यास करते रहते. ऐसे कुत्सित वातावरण में पूज़ो जैसा संवेदनशील बालक सपने देख रहा था...कभी सोचता कि फिल्मी 'काउवाय' यानी घोसी बनकर वह भी बहादुरी के कारनामे दिखाये. फिर सोचता कि कभी विश्वयुद्ध छिड़े, तो उसमें भर्ती होकर अपने जौहर दिखाये. कभी सोचता कि बड़ा कलाकार बने या यह भी संभव न हो, तो 'क्रिमिनल' ही बन जाये. सोलहवें में कदम रखते-रखते उसने निश्चय किया कि वह एक बड़ा लेखक बनेगा, जबकि उसकी मां की अभिलाषा थी कि पूज़ो अपने स्वर्गवासी पिता की तरह रेलरोड में नौकरी करे. पूज़ो ने उन दिनों की अपनी सोच और मानसिकता का विश्लेषण करते हुए लिखा है कि आखिर उन दिनों उसके मन में लेखक बनने की उमंग क्यों उठती थी. उसने यह निष्कर्ष निकाला कि **लेखक वास्तविक संसार और वास्तविक लोगों की यंत्रणाओं और अवमाननाओं से बचने के लिए ही लेखक बनते हैं!**

ऊंट के मुंह में जीरा

बहरहाल, स्कूल से लौटकर पूज़ो तीन बजे के बाद रेलरोड में हरकारे का काम करने लगा. वास्तव में पूज़ो प्रौढ़ जीवन में कदम रखने से कतराता था. आसपास की कठोर जिंदगी उसने काफी देख ली थी. शादी-ब्याह और बच्चे पैदा करके वह उसी समाज का अंग नहीं बनना चहता था जिसमें बच्चे 'क्रिमिनल' बनने का रियाज कर रहे हों. अक्सर वह किसी सार्वजनिक पुस्तकालय में जा बैठता और घंटों किताबों में खोया रहता. प्रंद्रह-सोलह बरस की उम्र में ही उसने दोस्तोयेव्स्की के उपन्यास पढ़ डाले. पर भीतर ही भीतर वह त्रस्त था कि कहीं कोई ऐसी दुर्घटना न हो जाये कि क्रिमिनल बनने की उसकी अभिलाषा नंबर दो ही पूरी हो. परंतु दोस्तोयेव्स्की को पढ़कर से उसने जीवन को खुली आंखों से देखने का मंत्र सीखा.

पहली कहानी उसने सत्रह बरस की उम्र में लिखी. तभी विश्वयुद्ध छिड़ गया. पूज़ो भरती होकर सारा योरोप देख आया. इसी दौरान उसका परिचय एक जर्मन लड़की से हुआ, जिसके साथ बाद में उसने विवाह कर लिया. योरोप-भ्रमण से पूज़ो को अपने पहले उपन्यास की सामग्री मिली. यह उपन्यास 1955 में 'द डार्क एरीना' नाम से छपा. तब पूज़ो की उम्र अट्ठाइसेक बरस की हो चुकी थी. आलोचकों ने उसके प्रथम उपन्यास का अच्छा स्वागत किया. परंतु पूज़ो को पारिश्रमिक के रूप में मिले कुल 3,500 डालर. एक भारतीय लेखक की दृष्टि में यह रकम भारी हो सकती है—लगभग 30,000 रुपये—पर अमेरिकी लेखक के लिए तो ऊंट के मुंह में जीरा. तिस पर भी पूज़ो ने संघर्ष और साधना से मुख नहीं मोड़ा.

लंबे अंतराल के बाद उसने एक और उपन्यास लिखा, जो 1965 में 'द फारचुनेट पिलग्रिम' नाम से छपा. इसमें पूज़ो के बचपन का बहुत बड़ा अंश विद्यमान है. इस उपन्यास की भी काफी सराहना हुई, यहां तक कि एक पत्रिका ने उसे एक 'छोटा क्लासिक' की ही संज्ञा दे डाली.

कर्ज लीजिए, घी पीजिए

परंतु प्रशंसा-प्रशस्ति से पूज़ो का पेट नहीं भर सकता था. पारिश्रमिक के नाम पर उसे पहले उपन्यास से भी कम राशि मिली—कुल 3, 000 डालर. पूज़ो कर्ज के बोझ तले बुरी तरह छटपटा रहा था. दूसरे उपन्यास की अनुकूल आलोचना से उत्साहित होकर उसने तीसरा उपन्यास लिखने का निश्चय किया. काफी सामग्री भी जुटा ली. जेब में फूटी कौड़ी नहीं थी. प्रकाशकों से उसने पेशगी रकम मांगने की 'धृष्टता' की, पर प्रकाशक खैरात बांटने के लिए दूकान थोड़े खोलते हैं! तत्काल उन्होंने पूज़ो का दरवाजा दिखाया. पूज़ो ने पेशगी रकम मांगने का दुस्साहस इस भ्रम के कारण किया था कि वह एक प्रभावशाली एवं प्रतिष्ठित उपन्यासकार है. यह उन दिनों की बात है जब पूज़ो की उम्र 45 बरस की हो चुकी थी. वह स्वयं को क्लांतश्रांत महसूस करने लगा था. ऊपर से पैसे की मार! करीब बीस हजार डालर का कर्ज उसके सिर पर था. फिर इतने बड़े परिवार के भरण-पोषण का दायित्व. उसकी दुर्दशा का एक कारण संभवतः यह भी था कि वह हमेशा 'ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत' पर आचरण करता आया था. परंतु इसी मोड़ पर आकर जैसे लक्ष्मी ने उसके सिर पर अपना वरदहस्त रख दिया.

किस्सा-ए गॉडफादर

एक दिन पूज़ो के प्रकाशकों के एक संपादक ने यों‍ही जिक्र किया कि यदि पूज़ो के दूसरे उपन्यास 'द फारचुनेट' में 'माफिया' के बारे में थोड़ी अधिक सामग्री रहती तो इस उपन्यास की अच्छी बिक्री हो सकती थी. पूजो के सामने और कोई विकल्प नहीं था. वह रुपया कमाने के लिए अब कुछ भी करने को तैयार था. तत्काल उसने निश्चय किया कि वह 'माफिया' पर उपन्यास लिखकर देगा. पेशगी रकम मिलने का प्रश्न ही नहीं था. हां, प्रकाशकों ने यह जरूर कहा कि यदि वह सौ पृष्ठ लिखकर दिखाये, तो आगे के लिए पेशगी रकम प्रदान की जा सकती है. पूज़ो ने अपने प्रस्तावित उपन्यास 'द गॉडफादर' पर काम शुरू कर दिया और मात्र दस पन्नों का सार-संक्षेप लेकर प्रकाशकों के पास पहुंचा. प्रकाशकों ने एक नजर देखकर ही उसे अस्वीकृत कर दिया.

पूज़ो का दिमाग झनझना उठा. इतनी अवमानना, इतनी निर्ममता! इस दुखद घटना का वर्णन करते हुए पूज़ो ने लिखा है—**इस बात का अंदाजा नहीं लगाया जा सकता कि प्रकाशकों के इन हथकंडों से लेखक का कितना तिरस्कार होता है, कितनी अवमानना होती है, उसमें किस तरह विषाद और ग्लानि उत्पन्न होती है, किस तरह उसकी इच्छा-शक्ति का ह्रास होता है. मैं समझ बैठा था, उसने अत्यंत विषाद-**

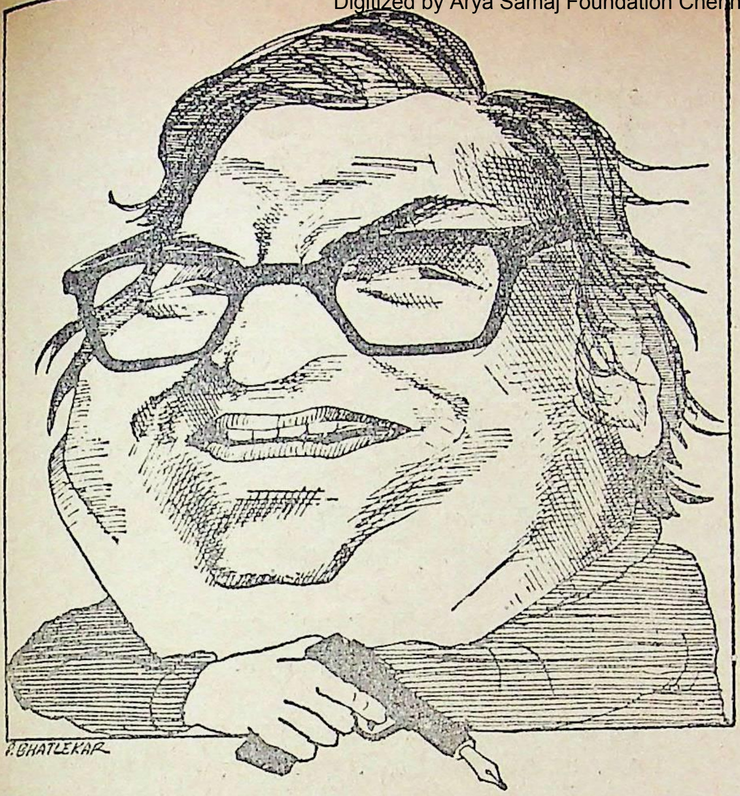

• मारियो पूज़ो

पूर्ण लहजे में लिखा है — कि प्रकाशकों को कला से कोई सरोकार था. उनका कोई सरोकार नहीं था कला-वला से. वे रुपया कमाना चाहते थे. यह उनका धंधा था. उन्होंने पूंजी लगा रखी थी और कर्मचारियों को पगार भी देनी होती थी. यदि कोई बावला किसी कलाकृति की सर्जना करना चाहता है, तो क्यों नहीं वह अपने घर बैठकर ऐसा करता!

पैसे की जरूरत का कमाल!

परंतु पूज़ो को भी पैसा चाहिए था. उसे लगने लगा था कि यदि उसकी अगली किताब सफल नहीं होती, तो जीवन में वह फिर कभी कलम नहीं पकड़ सकेगा. मनोवैज्ञानिक एवं आर्थिक दवाव उसकी कमर ही तोड़कर रख देंगे.

उसे विश्वास था कि यदि एक बार वह तय ही कर लेता है कि उसे 'बेस्टसेलर' लिखना है, यानी ऐसी किताब, जिसकी लाखों प्रतियां धड़ाधड़ बिक जायें, तो कोई ताकत उसे रोक नहीं सकती. इस पर उसके मित्र, लेखक, परिवार के लोग तथा कर्ज देने वाले भी उस पर जोर डालने लगे कि भलेमानस अगर इतनी क्षमता तेरे में है, तो फिर इंतजार किस बात की? लिख डाल ऐसा बेस्टसेलर....!

पूज़ो ने आश्चर्यजनक संकल्प-शक्ति का परिचय दिया. पूज़ो ने साहित्य-साधना और साहित्य-सेवा जैसी बेमानी और भावुकतापूर्ण ग्रंथियों से स्वयं को मुक्त किया और सामग्री जुटाने में लग गया.

दस पन्नों का मसौदा उसके पास पहले से ही तैयार था. संयोग से ये दस पन्ने एक अन्य प्रकाशक तक पहुंचे. उसे इसमें अपार संभावनाएं दिखायी दीं.

उसने पूज़ो को बुला भेजा. एक घंटे की बातचीत में सौदा पट गया. प्रकाशक ने पूज़ो को 'माफिया' पर उपन्यास लिखने के लिए पांच हजार डालर पेशगी रकम देना स्वीकार कर लिया. इस घटना ने पूज़ो के मन में प्रकाशकों के बारे में सारा रोष धो डाला.

माफिया में प्रकाशक को ऐसी क्या संभावनाएं दिखायी पड़ी थीं कि वह इतना रुपया पेशगी देने को तैयार हो गया था?

माफिया : क्या बला है?

माफिया का शाब्दिक अर्थ तो है 'पनाह की जगह, यानी शरणस्थल. पर आगे चलकर यह एक गुप्त संगठन के लिए रूढ़ हो गया, जो इटली में ऐसे शासकों के विरुद्ध जेहाद बोलता था जो सदियों से इटली और वहां की प्रजा पर दमनचक्र चला रहे थे. सबसे अधिक आतंक झेला था सिसिलीवासियों ने. त्राण पाने के लिए ये लोग भूमिगत विद्रोहियों की शरण में जाते. वास्तव में, जिस 'माफिया' का आरंभ गरीब-गुरबा को त्राण दिलाने के लिए हुआ था, आगे चलकर वही धनाढ्यों का ही नहीं, बल्कि कानून और राजनीतिक व्यवस्था की पिट्ठू पुलिस-व्यवस्था का पक्ष लेकर शोषण करने लगा था. हर छोटे-बड़े व्यवसायी या दुकानदार से ये लोग चौथ-सी वसूलते थे. माफिया सरदार से, जिसे डॉन कहा जाता था, सभी त्रस्त रहते थे. परंतु जो भी उसकी शरण में आ गया, उसकी रक्षा करना उसका धर्म हो जाता था. माफिया का इतना आतंक था कि मुसोलिनी जैसा डिक्टेटर भी समझने लगा था कि उसके लिए वे खतरा हो सकते हैं. इसलिए गरीब एक तो गरीबी और फिर माफिया के अत्याचारों से त्राण पाने के लिए वहां से भाग-भागकर अमरीका पहुंचने लगे और वहां से भी न्यूयार्क जैसे शहर में.

गॉडफादर कहां से मिला?

वहां अधिकतर लोग दक्षिणी सिसिली के निवासी थे. ऐसा अनुमान है (1960 के ही आंकड़े उपलब्ध हैं) कि अमेरिका में विदेशों में जन्मे अमरीकी-इतालवी लोगों की संख्या लगभग 11,00,000 थी तथा अमेरिका में जन्मे पहली पीढ़ी के इतालवी मूल के अमरीकियों की संख्या 3,28,000 थी. इनमें भी अधिकांश दक्षिणी सिसिली से सताये हुए लोगों की संतान थे (पूज़ो भी इसी श्रेणी का अमरीकी नागरिक है). स्वाभाविक है कि इनमें अपराधवृत्ति के लोग भी थे, जिनकी संख्या काफी बड़ी थी. कहना न होगा कि अमरीका ने अनजाने में ही अपराध के माहौल से निकले ऐसे लोगों का आयात अपने देश में कर लिया था. फिर सोने में सुहागा इस बात का कि गंदी बस्तियों में ये लोग नारकीय जीवन व्यतीत कर रहे थे. पूज़ो ने स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है कि अमेरिका में संगठित अपराधों में इतालवी मूल यानी माफिया के प्रभावांतगत लोगों का काफी बड़ा हाथ है. इसका कारण यह है कि इन

लोगों ने सदियों से कष्ट और यंत्रणाएं झेलकर अपना अस्तित्व अक्षुण्ण रखा है.

इसलिए यह बहुत दिलचस्प और अछूता विषय था, जिस पर अभी तक किसी लेखक ने गंभीरता से कलम नहीं चलायी थी. इसमें हिंसा, बलात्कार एवं गुंडागर्दी का ऐसा तानाबाना बुना जा सकता था कि किशोर-बुद्धि पाठकों के लिए वह बहुत बड़ा आकर्षण हो सकता था. इसीलिए प्रकाशकों ने पूज़ो के आगे टुकड़ा फेंका था.

भाड़ में गया साहित्य!

पर पूज़ो भी, आखिर लेखक बिरादरी का था. पेशगी रकम की पहली किस्त जेब में डालकर वह चुप बैठ गया. वास्तविकता यह थी कि पूज़ो 'द गॉडफादर' जैसा उपन्यास लिखना ही नहीं चाहता था. 'माफिया' जैसे असाहित्यिक विषय पर उपन्यास लिखकर वह अपने अंतःकरण की हत्या कैसे करता? परंतु पेशगी रकम की अगली किस्तें उपन्यास की प्रगति के साथ जुड़ी हुई थीं और पूज़ो को रुपया चाहिए था. यदि ऐसा न होता तो शायद यह उपन्यास कभी लिखा न जाता. क्योंकि पूज़ो ने एक अन्य उपन्यास की योजना बना रखी थी. परंतु एक बार जब 'द गॉडफादर' की बदौलत पूज़ो का भाग्योदय हुआ, तो साहित्य-साधना का भूत उसके सिर से उतर गया. प्रस्तावित साहित्यिक उपन्यास की सारी सामग्री धरी-धरायी रह गयी. इस संबंध में उसने लिखा है—**दूसरी चीजों की तरह उपन्यास की सामग्री भी सड़-गल जाती है!** अब अंतःकरण की आवाज उसे सुनायी नहीं पड़ी.

'द गॉडफादर' लिखने में पूज़ो को तीन बरस लगे. इस दौरान रोजी-रोटी के लिए वह और भी धंधे करता रहा. हर महीने तीन-तीन साहसिक कहानियां लिखता; एक बालपुस्तक भी लिखी; जिसकी बड़ी प्रशंसा हुई; ढेर सारी समीक्षाएं लिखीं और पत्र-पत्रिकाओं के लिए भी थोक के भाव लिखा. पूज़ो का कहना है कि इन तीन वर्षों में उसने जितना लिखा, उतना शायद सारी जिंदगी में उसने नहीं लिखा होगा. अंततः जुलाई, 1968 में उसने यह उपन्यास पूरा किया. पांडुलिपि प्रकाशकों को थमायी और पेशगी रकम के बकाया 1,200 डालर जेब में रख बीवी-बच्चों के साथ योरोप-यात्रा को निकल गया. **जाने से पहले उसने प्रकाशकों से स्पष्ट शब्दों में कह दिया था कि वह लौटकर पांडुलिपि को फिर से मांजेगा. इसके साथ ही उसने यह ताकीद भी कर दी कि उसकी अनुपस्थिति में यह पांडुलिपि किसी बाहरी आदमी को दिखायी न जाये.**

पर होनी को कुछ और ही मंजूर था. योरोप-यात्रा में 1,200 डालर फूंक और 8,000 डालर का नया कर्ज सिर पर चढ़ाये जब पूज़ो लौटा, तो आते ही उसे यह स्तंभित कर देने वाली खबर मिली कि एक प्रकाशक ने 'द गॉडफादर' का सस्ता संस्करण छापने के लिए 4,10,000 डालर यानी करीब 35 लाख रुपये की बोली लगाकर अधिकार प्राप्त कर लिये हैं. पूज़ो को विश्वास नहीं हुआ. कहीं कोई मजाक तो नहीं है. जिस लेखक को ये प्रकाशक घास नहीं डालते थे, हमेशा दुत्कारते रहे, उसी की 'द गॉडफादर' जैसी किताब पर पर इतनी ऊंची बोली! पर जब उसे पता लगा कि यह मजाक नहीं, असलियत है, तो उसने तुरंत अपनी मां को टेलीफोन करके यह शुभ संवाद सुनाया. मां को लगा कि बेटा बौरा गया है. वह अनपढ़ थी. फिर रकम इतनी बड़ी थी कि इकाई-दहाई-सैकड़ा करके गिननी पड़ती थी. उस बुढ़िया की कल्पना भी गयी तो अधिक से अधिक 40,000 डालर तक.

पूज़ो दौड़ा-दौड़ा घर पहुंचा. बीवी टी. वी. के सामने बैठी ऊंघ रही थी. आते ही पूज़ो ने उसके गाल पर एक चुम्मा जड़ा और बोला, "प्रिये! अब रुपये-पैसे की चिंता नहीं. मेरी किताब, 4,10,000 डालर में बिक गयी!" परंतु पत्नी की आंखों में न विस्मय था, न अविश्वास. पति पहले भी इस तरह के झांसे दे चुका था. वह चुपचाप उठी और जाकर सो गयी. ☐

अगले अंक में

किस्सा कोताह···

यह है गॉडफादर!

मात्र पैसा कमाने के लिए लिखे गये इस उपन्यास की रोमांचक कहानी, जिसकी केवल सस्ते संस्करणों की ही दो करोड़ प्रतियां बिक चुकी हैं और अभी बिक्री जारी हैं.

ग़ज़ल

● **शतदल**

आज तो है ख्वाब में, कल हाथ में खंजर न हो,
या तो उस बस्ती में, अब बारात-सा, मंज़र न हो!

आप कहते हैं तो कश्ती मोड़ देंगे हम मगर,
क्या जरूरी है कि तूफां अब किनारों पर न हो!

आप उसको पूजना चाहें तो पूजें शौक से,
पर यकीं कर लीजिए पहले कि वो पत्थर न हो!

क्या वजह है, रोशनी में भी नहीं सूरत दिखी?
सोचता हूं आईना हमसे कहीं बेहतर न हो!

यह नहीं मुमकिन, मुनासिब भी नहीं हम चुप रहें,
आप जब चाहें कि बस्ती में हमारा घर न हो!

ाद काफी रोषपूर्ण हो गये थे. तभी माइक की कर्कश आवाज सुनायी पड़ी, "अरे दुष्ट, सीता मेरी है ...."

यह सुनकर रावण का चेहरा फिर तमतमा उठा. रामचंद्रजी एक सरकंडे का बाण छोड़ा, जो रावण के कान को छीलता ा निकल गया. रावण ने अपनी तलवार कसकर पकड़ ली.

भीड़ तभी चिल्लायी, "बोल सियापति रामचंद्र की जय."

ापति ही कहा था भीड़ ने. रावण के चेहरे पर एक अजीब-सी ा छा गयी. उसके माथे पर सहसा पसीना छलछला उठा र फिर न जाने कौन-सा दबा हुआ लावा उसके अंतरमन से पड़ा.

वो जोर से चीखा, "ये अन्याय है. सीता मेरी है. इस दुष्ट ेरी सीता छीन ली है."

भीड़ चौंकी. कैसे उल्टे सीधे डायलाग बोल रहा है यह गधा. तक रामचंद्र और रावण द्वंद्वयुद्ध करने लगे थे. फिर लाल-ल आंखें तरेरकर रावण चिल्लाया, "छोड़ूंगा नहीं साले."

और देखते ही देखते उसने अपनी तलवार रामचंद्रजी के में घुसेड़ दी. सचमुच घुसेड़ दी. ताजे खून का फव्वारा-सा ा था उनके पेट से. भीड़ स्तब्ध. दूर खड़े लोगों ने सराहा, ा नेचुरल एक्टिंग की है."

पर तभी रावण छूट भागा. अब भीड़ की समझ में आया. नेचुरल एक्टिंग नहीं थी. रावण ने रामचंद्र को सचमुच मार ला था.

कटघरे में उस वक्त हनुमानजी गीता थामे इजलास को ान दिला रहे थे कि वो जो कुछ कहेंगे, सच कहेंगे, सच के ावा कुछ भी नहीं कहेंगे.

> "वो (रावण) जोर से चीखा, 'ये अन्याय है. सीता मेरी है. इस दुष्ट ने मेरी सीता छीन ली है.'
> और देखते ही देखते उसने अपनी तलवार रामचंद्रजी के पेट में घुसेड़ दी. सचमुच घुसेड़ दी. ताजे खून का फव्वारा-सा छूटा था उनके पेट से. भीड़ स्तब्ध. दूर खड़े लोगों ने सराहा, "क्या नेचुरल एक्टिंग की है." पर तभी रावण छूट भागा. अब भीड़ की समझ में आया. वो नेचुरल एक्टिंग नहीं थी. रावण ने रामचंद्र को सचमुच मार डाला था."

रामवध

• बाला दुबे

सरकारी वकील ने गला खंखारते हुए पूछाः

"आपका नाम क्या है?"

"होतीलाल, सरकार."

"क्या काम करते हैं आप?"

"साग-भाजी बेचता हूं हुजूर. मेरा बाप भी यही धंधा करता था."

"उस दिन दशहरे के रोज जो रावण का पार्ट करते समय दुलीचंद ने रामचंद्र बनाम केदारी का कत्ल किया था, उसके बारे में आप क्या क्या जानते हैं?"

होतीलाल सुनकर सोच में पड़ गया. क्या नहीं जानता है वो, बल्कि दुलीचंद भी, जो नहीं जानता था, वो उसी ने तो बतलाया था उसे.

प्रणय याचना में दुत्कारा मनुष्य जब विलेन का मुखौटा पहन लेता है तो कितना गिर जाता है, मानो बुर्जी पर चढ़कर कोई भारी पत्थर नीचे गिरा दे.

बड़े पशोपेश में पड़ गया है होतीलाल. बताओ, उसी से पूछा जा रहा है कि उस दिन की अनहोनी के बारे में वो क्या जानता है? ... पूरी कालोनी में बस यही चर्चा थी. गजब हो गया भैया, अबकी दशहरे पर रावण ने रामचंद्र को मार डाला. सचमुच मार डाला. केवल यह नहीं कि वो नाटक करते हुए 'हाऽऽ' करके लद्द से जमीन पर गिर गये हों. और फिर हर साल तो दुलीचंद 'हाऽऽ' करके घास पर गिरता था और लोग केदारी की जय बोलते थे, पर यह तो गजब ही हो गया भैया. सारी रामलीला ही उल्टी हो गयी. रामलीला क्या, रावणलीला हो गयी.

और अब तरह-तरह की बातें फैल रही हैं. कहते हैं, दुलीचंद की बहू सीतादेई और केदारी में कुछ गट्ट-सट्ट चल रही थी. कमाल है. आजकल जो हो जाये, सो थोड़ा है.

हर साल विभीषण बनने वाले दौलतिया काछी ने फुसफुसाया कि दुलीचंद की बैयर और केदारी में 'आसिक-मासूकी' जाने कब की चल रही थी. दुलीचंद को तो हवा तक नहीं लगने पायी, पर भुस में आग लगायी इस साले होतीलाल ने. वो खुद सीता पर डोरे डालने का चक्कर चला रहा था.

दौलतिया ने ही श्याम लाल को बतलाया, "ये साला होती, हाथ न पांव का और सूरत साले की बंदर जैसी. तभी साले को हनुमान का 'पारट' देते हैं."

"अरे हनुमान बाबा तो बिरमचारी बाबा थे. कहां ये बिड़चो कुकरमी और कहां वो जिंदगीभर कुंवारे रहने वाले बजरंग बली." श्यामलाल ने बीड़ी का बंडल दौलतिया की तरफ बढ़ाकर कहा.

बीड़ी सुलगाकर दौलतिया बोला, "दुलीचंद भी किसमत को हेठा है ससुर. सात साल बिया को हो गये और कोई आस-औलाद नहीं भयी. बड़ी मिन्नत, तावीज, गंडेबाजी भी भयी. कभी सैयद बाबा पर भागे तो कभी दुरगा बाबा की सेवा करे. अरे, अब साधू संन्यासी भी साले घासलेटी रह गये हैं यार."

श्याम लाल ने नाक से धुआं छोड़ते हुए कहा, "अब आयी समझ में सारी कहानी. बांझ बैयर जब मरजादा तोड़कर भागे है तो अगाड़ी-पिछाड़ी कुछ भी नहीं सोचे है. फिर असली तिरिया चरित्तर देखने को मिलता है प्यारे."

दौलतिया पास पड़ी तीली उठाकर कान कुरेदने लगा, " पहले इस होती ने ही जुगाड़ लगानी चाही, पर भैया दाने पर नाम लिखा होता है. उस बरस केदारी को रामचंद्रजी पारट मिला ही मिला था. फिर केदारी ल्हास लंगड़ का भी चे है और भैया अंटी में नामे की गर्मी भी है."

श्याम लाल गंभीरता से सोचने लगा. उसकी आंखों के सा कभी सीतादेई की सूरत चमक उठती तो कभी दुलीचंद दौलतिया बता रहा था. होती को सीता ने ऐसा झिड़का था फिर उसकी हिम्मत बढ़-बढ़कर बातें करने की नहीं हुई. ने ही सबसे पहले केदारी के लड़ते हुए पेंच देखे.

"हूं, तो केदारी के पौ बारह हो रहे हैं."

बड़ी ही विकृत सूरत बन गयी थी होती की. उसी दिन वो साये की तरह पीछा करता रहा.

◆

सीतादेई के पांव लड़खड़ा गये थे. वो स्वयं केदारी से मि भगतराम की बगीची में आती. भरी दुपहरिया में बड़ के पेड़ नीचे केदारी से बातें करते नहीं अघाती. होती को सबसे प सूसट सूरजभान के नाती राधे ने दी थी.

"लो गुरु, कलजुग की बहार भी देख लो. आजकल ह रामचंद्रजी सीता से रोजाना स्वयंवर रचा रहे हैं. कमाल है यार. और वो हमारा रामण बेखबरी से सो रिया है. सुबह खोमचा लेकर निकले हैं तो संझा को जीभ निकाले घर लौटे अब बिसै क्या मालूम कि उसकी ब्याहता सीता इधर अपने राम से मन हलका कर रही है."

होती के दिल पर सांप लोट गया.

"अच्छा हरामजादी, मुझसे तो सती-सावित्री बन रही और केदारी के साथ गुलछर्रे उड़ रहे हैं. रंगे हाथ नहीं पकड़वा तो मेरा नाम होती नहीं."

उस दिन बड़ी गर्म लू चल रही थी. दोपहर को अजीब सन्नाटा था. जमीन कैसी तप रही थी. ऐसे वक्त निकली सीतादेई. बगीची भी सुनसान पड़ी थी. ग्यासिया पुजारी ब के पेड़ के नीचे इधर-उधर करवट बदल रहा था.

"हे भगवान! आग बरसा रहे हो पिरभू आप तो." क कभी कराहकर बोल उठता.

कुएं के पीछे वाले बड़ के नीचे केदारी बैठा था. कटोरे में मलाई की बर्फ भरी थी. जरा-सी भी पत्तों की खड़बड़ हो तो वो चौंककर बगीची के अधटिके फाटक की ओर उत्सुकता देखने लगता.

सीता के आते ही केदारी उस झुलसने वाली लू में भी खि उठा. केदारी और वो बर्फ खाने में जुट गये थे. कुएं की ओट खड़े होती की हरेक सांस फुफकार बनती चली गयी और ने दुलीचंद को चेताया था.

दुलीचंद ने सुनकर उसका गरेबान पकड़कर इतने जोर हिलाया था कि उसकी घिग्घी बंध गयी थी.

"गंगा मैया की सौगंध खाकर कह रिया हूं दुलीचंद मैं भला मुझे बेफिजूल में कीचड़ उछालने से क्या मतलब."

दुलीचंद ने उसकी गर्दन छोड़ दी, पर सहसा वो इतना गुस्

हो गया, मानो जन्म का गूंगा हो. उसके कानों में अजीब-सी झनझनाहट होने लगी, जैसे हजारों झींगुर सहसा बोल उठे हों. मन में खामोश तूफान उमड़ पड़े थे. बड़ी देर तक वो होती को ताकता रहा. फिर न जाने क्यों उसे लगा कि उसके ढहते हुए विश्वास को सहसा कोई सहारा मिल गया है.

"कानों सुनी और आंखों-देखी में जमीन आसमान का फरक होता है."

"मैं आंखों देखी कह रहा हूं भैया, गऊ माता का मांस खाऊं, अगर इसमें रत्ती भर भी झूठ हो."

दुलीचंद को जैसे बिच्छू ने काट लिया हो. उसने झटके से होती के गरेबान को फिर पकड़ लिया, "मैं तेरी आंखों की नहीं कह रहा हूं साले, अपनी आंखों की कह रहा हूं. अगर मुझे मेरी आंखों से नहीं दिखलाया तो तेरा खून पी जाऊंगा."

होती यह सुनकर हिल गया था.

"पक्की रही भैया, जल्ली ही दिखा दूंगा. फिर तो विसवास होगा."

और उसी दिन से होती पीछे लगा रहा.

◆

दशहरा सिर पर खड़ा था. बाबू बृजकिशोर ने कालोनी वालों से चंदा लेना शुरू कर दिया था. हर हाल यही होता आया है. घर-घर जाकर चंदा लेते और फिर सामने के पार्क में रामलीला होती. फजलू मियां बीस दिन पहले आकर आदाब अर्ज करके खड़े हो जाते, "बिरजू बाबू, कागज के दाम तो आसमान छू रहे हैं बाबू साब, मैदा नापैद हो गयी है. लेई बनाने भर को मिल जाये तो गनीमत समझो."

हर साल ही फजलू मियां दाम बढ़वा लेते हैं. बीस साल से उनका खानदान रावण बना रहा है. हर साल रावण महंगा होता जाता है. इस कालोनी में सिर्फ एक ही रावण बनता है. आदर्श नगर में मालदार लोग रहते हैं तो तीन तीन पुतले बनते हैं—रावण, कुंभकर्ण और मेघनाद.

कागज के रावण के साथ-साथ चलते फिरते रावण ने भी रेट बढ़ा दिये हैं. दुलीचंद पहले पांच रुपये लेता था. अब दस की रेट लगाये है. उसकी देखा-देखी रामचंद्रजी ने भी अपना भाव बढ़ा दिया है, पर हनुमानजी आज भी पुराने रेट पर चल रहे हैं. होतीलाल ने भी अपनी चाल बदली, पर बिरजू बाबू अड़ गये.

"नहीं भैया, तुम्हारा काम भी तो ज्यादा नहीं है. एक आध रेट की उछलकूद के पांच रुपये कम नहीं होते हैं. और फिर फल-फूल भी तो खाने को मिल जाते हैं."

हनुमानजी का भाव नहीं बढ़ पाया.

◆

जब से होती ने दुलीचंद को वो बात बतलायी थी, तबसे दुलीचंद केदारी से पहले जैसी बेबाक बात नहीं करता है. इससे पहले राम और रावण संग बैठकर बीड़ी पीते, गप्पें मारते और फिर ठीक समय पर अपने-अपने मुकुट संभालते हुए उठ पड़ते.

बुध का दशहरा था. मंगल की दोपहर को होती भागा-भागा दुलीचंद के पास आया था. दुलीचंद ने अपनी टिकिया-पकौड़ी का खोमचा सम्मन दर्जी की दूकान पर ढक कर रख दिया.

"अभी आता हूं सम्मन गुरु, जरा खोमचे पर नजर रखना."

उसके सीने में दिल घन चलाने लगा था. होती उसे बगीची ले गया. उस वक्त सीता और केदारी चल पड़े थे. दुलीचंद आज भी अपनी आंखों से और कुछ तो नहीं देख पाया, पर हां, दोनों बाहर आ रहे थे, साथ-साथ. वहीं दुबककर दुलीचंद बैठ गया. होती उसकी आंखों से निकलते दहकते अंगारे देख रहा था.

तभी दुलीचंद सहसा रो पड़ा, जैसे कमजोर बच्चा रो पड़ता है. उस समय होती की सांस रुक-सी गयी. उसके अंतरमन से एक हूक उठी. उसको दुलीचंद को यह सब नहीं बतलाना था. दुलीचंद की हालत देखकर होती एकबारगी सिहर उठा. असहाय के रुदन में कितनी करुणा घुली होती है, उसे आज ज्ञात हुआ. उस रात दुलीचंद कितना गुम-सुम रहा था. सीता ने कई बार उससे हंसकर पूछा, "आज इतने उदास क्यों हो?" पर दुलीचंद जैसे बहरा हो गया हो, जैसे उसे सीता की आवाज सुनाई ही नहीं दे रही हो. एक बार तो सीता का दिल भी धक करके रह गया. कहीं शक तो नहीं हो गया इन्हें? कहीं किसी ने टोह तो नहीं दे दी?

रातभर दुलीचंद करवट बदलता रहा. न जाने नींद कौन देस चली गयी थी. सोचते-सोचते कभी दुलीचंद मुस्करा उठता और अंदर ही अंदर उसका ब्रह्म बोलने लगता.

"अरे, ये दुनिया वाले क्या जानेंगे कि कलयुग के रावण की ब्याहता 'पतनी' सीता को राम राच्छस छीने ले रहा है. रामायण कैसी उल्टी हो गयी है, तेरी जिनगी की दुलीचंद. हाथ पर हाथ रखकर बैठने से क्या फायदा. नियाव कर नियाव." पर-इस्त्री पर हाथ डालने की सजा जालिम को हमेशा से मिली है दुलीचंद, हमेशा से मिली है. दुनिया से नियाव का आसरा मत रख. अपने हाथ उठाओ संतन की सेवा. अपने हाथ उठाने पड़ेंगे भैया, वर्ना जीते जी हजार मौत मर जायेगा अभागे. कुम्हार के आवे की तरह तपता रहा दुलीचंद.

◆

दशहरे की शाम को उसने रावण के कपड़े पहने और फिर कोयले से चेहरे पर बड़ी-बड़ी मूंछें बनायी थीं. आज कई बरस बाद उसने तलवार पर धार रखी थी. तलवार तो वो उल्टी-सीधी घुमाया करता था. उस वक्त ढोल ढमढमाढमढम बजने लगता. थोड़ी देर लड़कर वो 'हा हा' करके लेट जाता और तभी फजल मियां अपने रावण में आग लगा देते.

....होती के हृदय में न जाने कहां से हनुमान का साहस जाग उठा था. कोई दो मिनट वो टूटा हुआ होती बना खड़ा रहा और फिर उसके अंदर हनुमान का सत्य बोलने लगा.

कटहरे में खड़े-खड़े उसने जज की तरफ मुड़कर कहा, "हुजूर, चाहे फांसी लगाओ, चाहे बक्स दो, पर अब बोलूंगा सच ही. केदारी को मैंने मरवाया." ...और कटघरे में खड़े हनुमानजी ने उस साल की रामलीला का कच्चा चिट्ठा सुनाना आरंभ कर दिया. □

● **एफ-48 ग्रीन पार्क, नयी दिल्ली-110016.**

कब तक

• परितोष चक्रवर्ती

आज फिर दशरथ पर शर्मा साहब उखड़ गये थे. उनके कमरे से जोर-जोर से चीखने की आवाज सुनकर हम सब कॉरिडोर में इकट्ठे हो गये. कमरे से आवाज आ रही थी, . . .“यू रास्कल, तुम अंधे हो गये थे जो तुम्हें इतना बड़ा मरा हुआ चूहा नहीं दिखाई दिया? . . .”

“साहब हमसे गलती हो गयी. चूहा दराज में है, हम नहीं जान सका. . .?”

“गधे हो तुम . . ! कोई काम सलीके से तुमसे करते नहीं बनता है. . .टेबल साफ करते वक्त ही दराज को देख लिया होता...!” इसके साथ ही अंग्रेजी-हिंदी की कुछ गालियां और उछाल दी गयीं.

यह कोई नयी बात नहीं थी. आये दिन शर्मा साहब के गुस्से का शिकार किसी न किसी को होना ही पड़ता. दशरथ उनका निजी चपरासी है. उस पर बरसने का तो जैसे शर्मा साहब को अतिरिक्त अधिकार-सा है.

दरअसल दो दिन पहले चूहों के उत्पात से तंग आकर बड़े बाबू ने पेड़े में चूहे मारने की दवा मिलाकर फाइलों वाले रैक में रख छोड़ा था. यह किस पता था कि दवा खाकर चूहा सीधे शर्मा साहब के दराज में जाकर ही शहीद होगा. चूहे की इस गलती की सजा बेचारे दशरथ को झेलनी पड़ी थी.

दफ्तर नाम की जगह ही ऐसी है जहां छोटी-छोटी-सी बातों पर शोध होने लगता है. सुबह की इस घटना से स्टाफ वालों को दिन भर का मसाला मिल गया था.

▣

चंद रोज पहले की तो बात है जब ऑफिस की सीढ़ियों पर से शर्मा साहब को गोद में उठाकर दशरथ ने उन्हें ह्वील चेयर पर रखा तो बाहर खड़े कस्टमर्स की कौतुहल भरी निगाहें साहब की ओर उठ गयी थीं. लोग बड़ी तल्लीनता से देखने लगे थे. उन्हें जब पता चला कि यह व्यक्ति इस दफ्तर के एक जिम्मेदार ऑफिसर है और बचपन से ही लकवे के कारण अपाहिज है तो उनकी जिज्ञासा और अधिक बढ़ गयी. इधर अपने कमरे में आते ही शर्मा साहब बड़-बड़ाने लगे थे, “दीज बगर्स आर रीयली जंगली. . .” अक्सर ऐसा होता है शर्मा साबह पार्टियों, जलसों में भी ह्वील चेयर पर बैठे फर्राटेदार अंग्रेजी में बतियाते हुए दर्शनीय बन जाया करते. उनका पूरा दायां अंग ही लकवे से प्रभावित है. लकवे के कारण गर्दन के आसपास की मांसपेशियों में इतनी कठोरता आ गयी है कि वे गर्दन किसी भी दिशा में नहीं मोड़ सकते. जिस ओर देखना हो, पहले ह्वील चेयर को उस दिशा में मोड़ते फिर देखते. उन्हें सुनाई भी

> “दशरथ साहब के दोहरे व्यवहार के बीच पिस रहा है. एक तरफ कंटीली झाड़ियां हैं तो दूसरी तरफ दूब की छुअन. हमारे हिस्से आयी है मात्र खुददुरी चट्टान सी रूखाई, बावजूद इन अलग-अलग स्थितियों के, दशरथ और हमारी परेशानी एक बिंदु पर आकर जुड़ती अवश्य है.”

ता. इसलिए जरूरत के अनुसार वे इयरफोन काम में लाते. ी हालत में उनका चौबिस घंटे का साथी है दशरथ—एक तरह शर्मा साहब की जिंदगी का सही साझीदार.

दशरथ और शर्मा साहब एक-दूसरे के पूरक बन गये थे, ब की चर्चा छिड़ते ही लोग अनायास दशरथ की भी चर्चा े लगते "...दशरथ की भी कोई जिंदगी है, चौबीस घंटे एक ाहिज की सेवा करते रहो बस. . ."

बड़े बाबू चार-छह दिन में एक-आध बार अवश्य ही कह लिया ते, "खाना-पीना छोड़कर दशरथ को सिर्फ डेढ़ सौ रुपया मिलता स! आज के जमाने में इससे पानी भी गरम नहीं होता. साहब ं समझते भाया कि इसी दशरथ के बल पर उनकी साहबी ती है. दशरथ को सारथी कहा करो भाया सारथी. . ."

भगवती बाबू ने बड़े बाबू से भी अधिक वजनदार शब्दों में नी बात कहनी चाही. उनके चेहरे के भाव कुछ ऐसे थे कि साहब र अक्सर जाते रहने के कारण उनके बारे में कही गयी उनकी ें ज्यादा प्रामाणिक हैं, "...अरे यहां तो शर्मा साहब ऐसे अकड़ते र घर पर तो दशरथ को इतने प्यार से बुलाते हैं कि पूछो मत, अपनी बीवी को कोई बुला रहा हो. . ."

वाक्य पूरा होने से पहले ही बड़े बाबू ने दहला फेंकने के अंदाज हा, "चलो अच्छा है भाया! इस जन्म में साहब की शादी तो र नहीं, बेचारा दशरथ बीवी जैसी सेवा व टहल तो कर ही है."

भगवती बाबू पुनः अपनी बात पर लौट आये, "मेरी समझ ह नहीं आता कि ऑफिस आते ही साहब के तेवर बदल क्यों े हैं?. . ."

बेडेकर औरों की अपेक्षा जूनियर है, उससे रहा नहीं गया. उसने , "दशरथ को छोड़ो, हमसे भी तो साहब ऐसे ही ट्रीट करते हैं . . ." बेडेकर वाक्य अधूरा छोड़ देता है. बेडेकर की इस टिप्पणी ाहौल में कुछ तबदीली से आ जाती है और सब अपने-अनुभव सुनाने में जुट जाते हैं कि कैसे साहब ने उनके साथ लकी की और उन्होंने भरपूर जवाब दिया था. (भले ही सिर झुकाये सुनते रहे हों पर ऐसी शेखी बघारने में किसका जाता है)

हम सोचते यदि शर्मा साहब ब्रिगेडियर शर्मा के बेटे न हुए तो जाने क्या हाल हुआ होता उनका. ब्रिगेडियर शर्मा को इस तीसरे बच्चे के छह मास की उम्र में लकवे के कारण हो जाने का दुख अंत तक सालता रहा. फिर भी उन्होंने भव प्रयास किया था कि शरीर न सही, बच्चे का मानसिक ठीक-ठाक हो जाये. वे स्वयं अंदर से टूटे हुए बच्चे का विश्वास बनाये रखते ताकि बच्चे पर हीनग्रंथियां हावी न ायें. ब्रिगेडियर शर्मा इस प्रख्यात फर्म के प्रतिभावान मैनेजर फर्म पर ब्रिगेडियर साहब के ढेर से एहसान थे. उनकी स्थिति हिस्सेदार से किसी माने में कम नहीं थी. इसीलिए जब अचानक डियर साहब कार दुर्घटना में चल बसे तो फर्म ने उनके पंगु कॉनवेंट में पढ़े, बेटे को सीधे अफसर के पद पर नियुक्त कर था. जबकि शर्मा साहब के अन्य दो भाई सेना में साधारण पदों पर कार्यरत हैं.

पहले-पहल सबको शर्मा साहब एक अजूबा लगते. दो-एक माह तो उनके शारीरिक ढांचे को समझने में ही लगे थे कि बायें हाथ से वे कैसे लिख लेते हैं, व्हील चेयर से उठाकर दशरथ उन्हें गाड़ी पर कैसे बिठाता है, एक ही हाथ से वे सिगरेट कैसे जला लेते हैं, टेलीफोन का रिसीवर किस अजीब अंदाज से उठाते हैं—आदि आदि.

अब सब लोग इसके अभ्यस्त हो गये थे. यह सच है कि वे सिर्फ अफसर ही हो सकते थे. कितने ऐसे पढ़े-लिखे युवक हैं जो किसी दुर्घटना या बीमारी में अपंग हुए होंगे किंतु उन्हें पूर्णतः अयोग्य करार दिया जाता है. अफसरी मिलना तो उनके लिए एक सपना ही हो सकता है.

◆

दशरथ को जब भी फुरसत मिलती वह हम लोगों के पास आकर बैठता. कभी अपने दुखों का जिक्र करता तो कभी अपनी गांव की बातें हमें बताता. इस इकतीस वर्षीय युवक के मन में पढ़ाई-लिखाई की इच्छा आज भी दबी हुई है. अपनी स्वयं की कोशिश का परिणाम है कि आज दशरथ को हिंदी-अंग्रेजी का सामान्य ज्ञान अन्य चपरासियों की तुलना में अधिक है. दशरथ अपनी परिस्थितियों से उबरना चाहता है. परिस्थितियों के आगे अपनी सीमा पर वह भी मजबूर है. हम सब दशरथ के दुःख में अपने को शरीक पाते. कहीं न कहीं हम सब भी तो शर्मा साहब के व्यवहार से त्रस्त हैं. दशरथ के साथ हमारी सहानुभूति का संभवतः यह भी एक ठोस कारण है.

उसे घर जाने की छुट्टी बड़ी मुश्किल से मिलती. जब भी वह आठ-दस दिन के लिए घर जाता, शर्मा साहब के मिजाज को बुखार चढ़ जाता. जब देखो किसी न किसी पर बरसते रहते. हम सबको उनकी कुछ न कुछ निजी सेवा करनी पड़ती. उन दिनों दशरथ हमें खूब याद आता.

दशरथ अक्सर कहा करता :

"साहब चाहें तो हमें कहीं लगवा सकते हैं पर वे चाहते नहीं हैं कि हमारा कोई भला हो. . ."

"हमें क्या जिंदगी भर इनकी सेवा करनी होगी—हम अपने लिए क्या करेंगे?"

"तंग आ गये बाबूजी! कहीं भी कोई नौकरी दिलवा दो तो इस डिप्टी को राम राम."

◆

जहां तक शर्मा साहब की शारीरिक स्थिति का सवाल है, पहली नजर में हरेक की सहानुभूति उनके साथ हो जाती थी. कोई दूसरा होता तो शायद इस संवेदना की कोमलता अपने हक में भुना सकता था. किंतु वे इसके ठीक विपरीत थे. उनके घर के हालात से हम उतने ही वाकिफ थे जितना हमें दशरथ से पता चलता था किंतु ऑफिस के रवैये से तो हम सबको ही निपटना पड़ता था. हम अच्छी तरह समझ गये थे कि ऑफिस में इन्हें शारीरिक रूप से अधूरेपन का एहसास बेहद खलता है. कस्टमर हो या स्टाफ का कोई आदमी, वे पहली ही बार में इतनी तेजी से उस पर हावी ही जाना चाहते

ग़ज़ल

▣ योगेंद्रदत्त शर्मा

अबके सावन में महतो पर जाने क्या बीता होगा,
चुप्पी साधे ओसारे में गुड़गुड़िया पीता होगा!

झोल खाट पर बूढ़ी मां की देह पड़ी होगी ठंडी,
तुलसी-दल कुम्हलाया होगा, गंगाजल रीता होगा!

भरी आंख हिरनी आ दुबकी होगी कोने में सहमी,
हर सिवान पर घात लगाये फिर कोई चीता होगा!

खेतों की सूनी आंखों से आंसू छलक पड़े होंगे,
बंटवारे के लिए गांव में फिर आया फीता होगा!

टूटी छत, ढहती दीवारें, उखड़े देहरी-दरवाजे,
जाने कैसे आंगन वाला पीपल अब जीता होगा!

सूखे में झुलसा होगा या बाढ़ों में डूबा होगा,
उस बस्ती के हर छप्पर का हर अनुभव तीता होगा!

गांव छोड़कर राह शहर की पकड़ी होगी गोबर ने,
भीतर-भीतर होरी अपने ज़ख्मों को सीता होगा!

नौटंकी में गुमसुम बैठी सोच रही हीराबाई,
कहां तीसरी कसम उठाता हीरामन मीता होगा!

थे कि सामने वाले पर उनके पूर्ण व्यक्तित्व का प्रभाव और गहरा जाये. हिंदी-भाषी क्षेत्र में साधारण जनता को अंग्रेजी से स्वाभाविक रूप से अधिक लगाव नहीं होता. स्टाफ के लोगों में काम चलाऊ अंग्रेजी ही ज्यादा सम्मानित थी. ऐसी स्थिति में शर्मा साहब की चेरीब्लाजम की पॉलिश की तरह चमचमाती अंग्रेजी से अच्छे-अच्छों की आंखें चौंधिया जातीं. एक अर्थ में उनके हाथ-पांव की बनावट को अंग्रेजी एक खोल की तरह ढक लेती. इसलिए उनके कमरे से बाहर निकलता हुआ आदमी शर्मा साहब की, अपंगता को बिल्कुल भूल चुका होता है. उसे बस याद रह जाता है कि. . आज वास्ता एक सही साहब से पड़ा था, सचमुच के साहब. . . . इसका मतलब यह कतई नहीं कि और साहबों की कीमत घट जाती है. होता यह है कि दूसरे साहबों के साथ हमारे मन में कोई सहानुभूति नहीं होती. इसीलिए अन्य साहबों का व्यक्तित्व हमारे सोच के अनुकूल होता है पर शर्मा साहब से पहली बार मिलने पर मन के किसी कोने में जरूर वह प्राथमिक सद्भावना होती है जो किसी लंगड़े, लूले, अंधे के लिए, स्वाभाविक रूप से होती रही है.

टाइपिस्ट स्वामीनाथन कई घाटों से अनुभव लेकर पिछले कुछ सालों से इसी ऑफिस में है. स्वभाव से तीखा किंतु काम में बेहद चुस्त. टाइपराइटर पर उसकी उंगलियां बड़ी तेजी से दौड़तीं इसलिए ऑफिस में उसे 'सुपरसोनिक' स्वामीनाथन कहा जाता. पता नहीं क्या बात थी कि स्वामीनाथन प्रारंभ से ही शर्मा से चिढ़-सा गया था. जबकि हमारे साथ उनसे छिटकने की काफी दिनों बाद आयी थी. स्वामीनाथन अपने उसी तीखे और दक्षिण भारतीय हिंदी में कहता, "साल्ला बड़ा आदमी बेटा है न इसलिए साहब ही पैदा हुआ था. नइं तो हम हाथ-वाला होकर क्या इसकी गुलामी करता. बताओ?" वह इस में पूछता मानो वह सीधे शर्मा साहब से ही पूछ रहा "बताओ?" अक्सर शर्मा साहब से उसकी झड़प होती और वक्त वह शर्मा साहब से कहता, "हम सब काम करेगा लेकिन प्यार से बोलिये. हम सब करेगा!" और फिर उबलते हुए पास आता, "साला हमको जानवर का माफिक ट्रीट करता देखना, एक दिन इसको उठाकर फेंक देगा." हम इस को सुनते और मुस्करा देते. मुस्कराने के पीछे दो भाव थे एक यह स्वामीनाथन ऐसा कतई नहीं कर सकता. दूसरा यह कि किसी दिन सचमुच पटक ही दिया तो हम सब मुक्त हो

शर्मा साहब—जो दशरथ और ह्वील चेयर के बिना एक भी नहीं चल सकते थे न हिल-डुल सकते थे—उन्होंने स्टाफ हिलना-डुलना ही बंद कर दिया था. बाहर वालों को ऑफिस में कड़ा अनुशासन है पर सही अर्थों में यह और था. 'कुछ' क्या था इस पर सबका नजरिया अलग-हुआ करता.

बेडेकर का असेसमेंट था :

"यह आदमी अगर अपंग है तो क्या हुआ, इसके हाथ में है. पावर मिले तो चूहे भी चंदगीराम (पहलवान) हो जाते

जबकि बड़े बाबू कुछ सहानुभूति दर्शाते हुए समीक्षा

"भाया! बचपन से इसे लोगों ने दया का पात्र समझा आज उसके पास ऐसा स्टेटस है कि इसकी दया की कइयों को है—क्यों भाया? साधारण आदमी होता तो अपनी दिखाने की उसे इतनी हड़बड़ी नहीं होती. यह पट्ठा अधूरा है इसलिए इसे अपने को पूरा आदमी बतलाने की जल्दी है समझे

बड़े बाबू का नजरिया हमेशा शर्मा साहब के प्रति ऐसा रहा जैसे साहब बड़े दीन-हीन हैं और उन्हें माफ किया जा है. किंतु स्वामीनाथन कतई इससे सहमत नहीं होता.

"बड़े बाबू, आपका सिंपैथी हमारा समझ में नहीं साल्ला दूसरा कोई डिसएबल को डायरेक्ट ऑफिसर होते है? इसका फोरफादर का पुण्य है कि आज साला खाली में साहब बन गया. मिहनत से नौकरी पाता तो आदमी डोनेशन में मिले सर्विस से इसका माथा आसमान में है."

स्वामीनाथन की तीखी टिप्पणी से अक्सर चर्चाओं को लग जाता क्योंकि स्वामीनाथन अपनी बात मनवाने के लिए तेज बोलने लगता और साहब के कमरे में सुनाई दे खतरा पैदा हो जाता.

▣

हर ऑफिस में अफसरों एवं गैर-अफसरों के बीच एक रेखा होती है. अपवाद को छोड़कर इन सरहदों को सिर्फ लिए छुआ जाता है. अन्यथा दोनों समूह एक-दूसरे से रहना ज्यादा अच्छा समझते हैं. हमारा भी चिंतन शर्मा

लघुकथा

सुरक्षित स्थान

▣ अनीस अमरोहवी

सैलाब का जोर लगातार बढ़ता ही जा रहा था और पानी का तल धीरे-धीरे ऊंचा हो रहा था. सारा गांव खाली हो गया था. बहुत से लोग तो सैलाब के समाचार सुनकर पहले ही गांव छोड़कर चले गये थे और बाकी लोग पानी का जोर बढ़ने पर चले गये थे. कितनी ही झोंपड़ियां अपना नामो-निशान छोड़े बिना ही गायब हो गयी थीं. अजीब अफरा-तफरी का वातावरण था.

वह अपने बूढ़े मां-बाप के साथ एक मजबूत मचान पर बैठी थी. ये लोग कोई प्रबंध न होने के कारण रह गये थे. मचान काफी मजबूत था वरना अब तक इन तीनों सहित किसी भयानक मंजिल की तरफ बह निकलता.

शाम का वक्त था. दूर-दूर तक मौजें मारता हुआ पानी और सिर्फ पानी ही दिखाई दे रहा था. दूर पानी के उस पार सूर्य के डूबने का दृश्य ऐसा लग रहा था जैसे सूर्य इस तबाही की खुशी में स्नान कर रहा हो.

इन क्षणों में उसने अपने बूढ़े बाप की आंखों में निराशा और बेबसी की परछाइयां लहराती हुई देखी थीं, फिर भी कोई उम्मीद और उस उम्मीद की हल्की-सी किरण उसके दिल की धड़कन बनी हुई थी. वह निराश नहीं थी.

अचानक शाम के धुंधलके में उसे दूर एक नाव दिखाई दी, जो लम्हा-लम्हा उनके मचान से करीब होती जा रही थी. शायद नाव में सवार लोगों ने उनको देख लिया था. लड़की के चेहरे पर उल्लास और खुशी की एक हल्की-सी लहर दौड़ गयी, और उसी क्षण बूढ़े मां-बाप की आंखों में जिंदगी फिर से लौट आयी.

नाव में सवार एक सहायता दल था जो सैलाब में घिरे हुए लोगों की सहायता करने निकला था. नाव जब मचान के करीब पहुंची तो एक नवयुवक ने उनसे कहा, "आप लोग नीचे उतर आइये और नाव पर आ जाइये ताकि आपको सुरक्षित स्थान पर पहुंचा दिया जाये."

न जाने क्या सोचकर लड़की कुछ झिझकी थी परंतु परिस्थिति और समय ऐसा न था कि वह इनकार कर देती. थोड़ी ही देर बाद वह मां-बाप के साथ नाव पर सवार किसी सुरक्षित स्थान की ओर जा रही थी.

नाव में वह एक तरफ को सिकुड़ी हुई बैठी थी. कई घंटे लगातार पानी में चलने के बाद नाव एक ऐसे स्थान पर रुकी जहां से खुश्की शुरू होती थी. वह भी अपने मां-बाप के साथ नाव से उतर पड़ी.

"यह रात तुम लोगों को यहीं बितानी पड़ेगी. कल सुबह होते ही तुम्हें सहायता कैंप में पहुंचा दिया जायेगा." सहायता दल में से एक नवयुवक ने उनसे कहा.

अगली सुबह जब लड़की के बाप और उसकी मां की आंख खुली तो उनकी बेटी का कहीं पता नहीं था और उस सहायता दल के वे नवयुवक भी गायब थे—बूढ़े की आंखें उस सुरक्षित स्थान से पानी के तल पर दूर तक उस सहायता दल को तलाश करने लगीं जो सैलाब में घिरे लोगों को सहायता कैंप में लाने के लिए वापस जा चुका था. □

उतना ही एकांगी था जितना उनका हमारे लिए. हमारे दशरथ भी शामिल है. फिर भी दशरथ की स्थिति हमसे है. अकेला वही है जिसकी सहानुभूति से शर्मा साहब को आपत्ति नहीं. एक तरह से दशरथ से सहानुभूति की अपेक्षा को बनी रहती है. दशरथ ने बताया था कि साहब घर पर बदल जाते हैं—कोई छोटा बच्चा जैसे अपनी मां पर निर्भर है ठीक वैसे ही साहब भी दशरथ के अधीन हो जाते हैं. ऐसा भी है जब साहब सीमा से अधिक पीने की मांग करते तो दशरथ बूंद और देने के लिए राजी नहीं होता. तब साहब बच्चों की जिद करने लगते.

ऐसा क्यों होता है, यह हमारी समझ में तो क्या स्वयं दशरथ समझ में नहीं आता. इस दोहरे व्यक्तित्व की सीधी मार से वह इतना परेशान है कि उसे भी ताव आ जाता. तब वह हमसे आकर कहता, "भाड़ में जाये ऐसी नौकरी. . .अपने गांव चला जाऊंगा. . . मिहनत-मजूरी से कुछ तो मिलेगा. . ,नईं तो पगला जाऊंगा एक दिन. . !"

दशरथ साहब के दोहरे व्यवहार के बीच पिस रहा है. एक तरफ कंटीली झाड़ियां तो दूसरी तरफ नरम दूब की छुअन. हमारे हिस्से आयी है मात्र खुरदरी चट्टान-सी रुखाई और निर्लिप्तता. बावजूद इन अलग-अलग स्थितियों के दशरथ और हमारी परेशानी एक बिंदु पर आकर जुड़ती अवश्य है, वह है साहब की अपंगता.

शायद हम सब ही हीन-ग्रंथि के शिकार हो गये हैं जो एक अपंग को इतने अधिकारों को समेटे हुए देखना पसंद नहीं कर पा रहे हैं या अपंग के प्रति दया दिखाने का हमारा जन्मसिद्ध अधि-

कार यहां बेकार साबित हो गया है. चाहे जो हो, यह सही है कि हम इस स्थिति में रहकर एक अजीब-सी बेचैनी को झेल रहे हैं. विद्रोह करने की दशा में हममें से कोई नहीं है. सबको अपनी नौकरी प्यारी है. पीठ पीछे बक-झक करते हुए हम अपनी भड़ास ही निकाल सकते हैं.

पिछले दिनों एक छोटी-सी गलती पर स्वामीनाथन को चार्जशीट दे दी गयी थी. लाख स्पष्टीकरण के बावजूद उसका एक इन्क्रीमेंट बंद कर दिया गया था. यूं देखा जाये तो स्वामीनाथन की गलती अवश्य थी किंतु वह तो अप्रत्यक्ष कही गयी बात थी जिसका कोई प्रमाण भी नहीं था. उसने तैश में आकर अपनी उसी तीखी जबान में एक दिन हमारे पास बात-बात में कह दिया था. . 'लूले लंगड़े महा उपाई'. . . तकरीबन चिल्लाने की आवाज में कही गयी ये बातें शर्मा साहब ने सुन ली थीं और स्वामीनाथन को एक इन्क्रीमेंट से हाथ धोना पड़ा. वह तो गनीमत थी कि नौकरी पर बात नहीं आयी, नहीं तो प्राइवेट फर्म में यह कोई बड़ी बात नहीं है.

■

उस दिन देर तक शर्मा साहब आये ही नहीं तो ऑफिस में उत्सव जैसा माहौल हो गया था. बहुत दिनों बाद जैसे एक साथ सबको लंबी कैद से मुक्ति मिली थी. किंतु थोड़ी देर बाद ही सबकी खुशी काफूर हो गयी जब शर्मा साहब अचानक आ गये. हम बातचीत में इतने मशगूल थे कि गाड़ी की आवाज भी सुनाई नहीं दी थी. इस हो-हल्ले के कारण एक सिरे से बड़े बाबू तक को डांट खानी पड़ी थी.

खास बात और भी थी कि शर्मा साहब का चेहरा अन्य दिनों की अपेक्षा ज्यादा तमतमाया हुआ था.

हमें तब और ज्यादा अजीब लगा जब डांटते हुए भी उनका चेहरा रोने का सा हो गया था. शायद पहली बार उन्हें हमारी सहानुभूति की आवश्यकता आ पड़ी थी. क्या दशरथ लंबी छुट्टी पर चला गया है या फिर कोई और हादसा हो गया? पहली बार हुआ कि डांट खाकर भी स्वामीनाथन चुप हो गया था.

लंच के समय एक आवाज से हम चौंक गये, "हम आज गांव जात हैं साहब लोग. ."

"क्यों . . .क्या हो गया?"

"कुछ नहीं, हमसे इनकी (साहब की) जिनगी की साझेदारी अब ना होगी. . .हमारा भी कोई भविष्य है. . .गांव ही सही, मरेंगे तो नई न. . .आप सबसे मिलने आये हैं. . ." उसकी आवाज यहीं आकर थरथरा गयी. उसके पास भी जैसे इससे अधिक कहने को कुछ नहीं बचा था और हम भी सहसा चुप हो गये थे. थोड़ी देर तक दशरथ हमारे पास बैठा रहा. हमने उसे चाय पिलायी. उसने बताया कि जाने का निर्णय उसने खुद ही लिया है. साहब से कोई गर्मागर्मी नहीं हुई. तकलीफ उसकी अपनी थी इसीलिए वह जा रहा था. आखिर कब तक वह अपने आप को समझा सकता था. जाते-जाते वह साहब से एक बार फिर मिलते हुए गया. उसके इस तरह से चले जाने से लगा कि सचमुच हम सबकी की तुलना में दशरथ ही पूरा मर्द था. एक झटके से अलग हो गया.

आज शर्मा साहब ने एक नया नौकर रख लिया. यह नौकर कुछ प्रौढ़ है. कमोबेश शर्मा साहब के नये चपरासी से संबंध ही हैं जैसे दशरथ के साथ रहे. हमारे साथ भी उनके व्यवहा कोई तब्दीली नहीं आयी.

उल्लेखनीय है तो बस इतना कि हाल ही में शर्मा साह एक प्रमोशन और मिल गया है. याने उनके रुतबे में कुछ बढ़ोत्तरी हो गयी और बड़े बाबू अब ऑफिस सुपरिंटेंडेंट हो ग

▣

ऑफिस से कुछ ही दूर चौक में आज मजदूर यूनियन की सभा हो रही है, कुछ लोग भूख हड़ताल पर बैठे हैं. का एंगल कुछ ऐसा है कि आवाज ऑफिस तक साफ-साफ दे रही है.

कोई मजदूर नेता कह रहा है, "दोस्तो, हमें अब इस के खिलाफ उठ खड़े होना है. अब और बर्दाश्त नहीं किया जा व्यवस्था उतना दबाती है जितना हम दबते हैं. किसी व्य नहीं इस व्यवस्था से हमारा विरोध है. एक पते की बात दोस्तो कि व्यवस्था अपने आप में जड़ वस्तु है, अपंग है. हाथ-पांव ही उसके हाथ-पांव हैं, तब भला हमारे ही बल पर हम पर कैसे अकड़ सकता है? अब चेत जाओ दोस्तो ताकि व्य को यह एहसास हो जाये कि हम हाथ खींच लें तो व्यवस्था हो जायेगी. . .क्या. .. . "

अचानक माइक की आवाज से भी तेज स्वर में शर्मा की चीख सुनाई देती है, "खिड़कियां बंद कर दो! रास्कल्स! हल्ला कर रहे हैं कि काम करना ही मुश्किल हो गया है. व्यवस्था जड़ होती है. . .इनके कहने से. . .बास्टर्ड. . !"

● 3/72 रेलवे गुड्स शेड कॉलोनी, रायपुर (म.प्र.)

ग़ज़ल

जिसे खोया...

देवेंद्र गौतम

▣

जिसे खोया, उसी को पा
गुज़िश्ता वक़्त को दुहरा

छुपाये दिल में अपनी तिश्नगी
समंदर की तरह लहरा

तुम्हारी बद्दुआओं का असर
हरेक रस्ते पे ठोकर खा

जहां दीवानगी फूली-फली
उन्हीं गलियों में देखा जा

उमीदों के घरौंदे फिर बना
मैं अपने आप को बहला

दरख़्तों का कहीं साया तो
बहुत लंबे सफ़र से आ

"क्या तुम चोरी कर सकते हो?"
"मुझमें इतना साहस नहीं है."
"तुम आत्महत्या भी नहीं कर सकते?"
"यह महापाप ह."
"फिर तुमने विवाह ही क्यों किया!"
"मेरे पिता ने करवाया था."

वह सचमुच किसी काम के लायक नहीं था क्योंकि बचपन में मिली शिक्षाओं पर ही वह आचरण करता रहा. अब वह सिर्फ अपने पर तालियां ही बजा सकता था.

सिंधी कहानी

तालियां

• आनंद खेमाणी

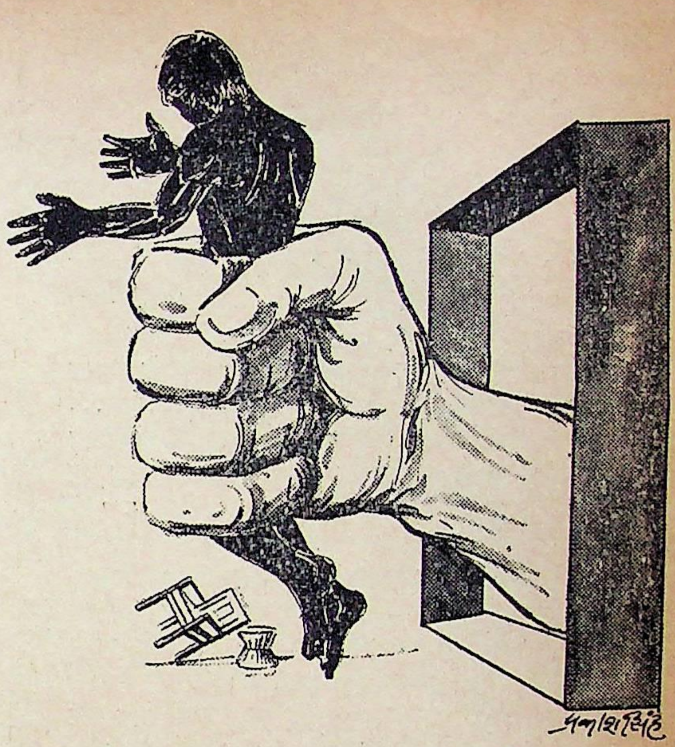

जरा आगे बढ़कर वह रुक गया. पहले सामने की ओर ताकता रहा, फिर पीछे मुड़कर देखने लगा.

जब उसकी गर्दन दुखने लगी तो वह चीख उठा और सामने की ओर देखने लगा. पर लगातार ज्यादा देर टकटकी लगाये नहीं रह सका. उसकी आंखें चुंधिया गयी थीं. अतः दिन के प्रकाश में, अधिक समय तक खुली आंखें उसे असह्य पीड़ा देती थीं.

उसकी रगों में से खून लगभग सूख चुका था. फिर भी वह चलता ही रहता है, मानों चलते रहना रक्तहीनता की स्थिति में ही संभव है. उसके कान भी कम सुनते हैं. उसे अपने नाम की पूरी जानकारी नहीं है क्योंकि एक लंबे अरसे से उसे किसी ने उसके व्यक्तिगत नाम से पुकारा ही नहीं है. 'ए' 'ओ' 'हुश' कुछ ऐसी ध्वनियां हैं, जिनके कान अभ्यस्त हो गये हैं और ऐसी आवाजें सुनने पर कतिपय संदेह से वह चौकस हो जाता है.

कभी-कभी वह हंसता भी है. केवल तब पता लगता है कि उसके कितने दांत टूट-फूट चुके हैं.

उन्नीस सौ चवालीस में उसका जन्म एक मशहूर शहर में हुआ था. पर वह अपने लिए कोई प्रसिद्धि अर्जित नहीं कर सका. इसका एक कारण यह भी है कि उसने अब तक ऐसा कोई काम नहीं किया जिससे देश का नाम रोशन हो या डूबे.

पालने में ही स्पष्ट था कि वह शिशु कुछ 'विशेष' नहीं कर पायेगा. उसने कभी रोकर खाना नहीं मांगा था और वह मां की लोरी सुनकर कभी खुश नहीं हो सका था. अगर वह जरा पहले पैदा होता तो संभवतः अलग तरह का आदमी होता. उस हालत में वह फौज में शामिल होता. उसे यह विचार इसलिए सूझा क्योंकि उसके पिता का पहला पुत्र फौज में चला गया था. वह इंग्लैंड के लिए शहीद हो गया था. उसके बलिदान पर हिंदुस्तानियों को बहुत अधिक गर्व हुआ था!

वह अधिक शिक्षा ग्रहण भी नहीं कर पाया. पर जब वह स्कूल का विद्यार्थी था तो उसे महत्वपूर्ण शिक्षाएं दी गयीं. उदाहरण के तौर पर—जीवन सत्य पर चलकर बिताना चाहिए और किसी के साथ भी धोखाधड़ी नहीं करनी चाहिए...

उसने इन शिक्षाओं को शब्दशः सही समझ लिया और वह इन पर अमल करने लगा.

बहुत बाद में, जब ऐसा करना उसकी आदत बन गयी तो समाज ने उसे इनके विरीत शिक्षाएं दीं. उदाहरणतः, आजकल सच का रास्ता अपनाना सही नहीं है.

पर अब उसकी सीखने की उम्र गुजर चुकी थी. उसने बिना प्यार के शादी की, क्योंकि उसके बाप ने भी अपने बाप की पसंद को अपनी पसंद माना था.

विवाह के बाद वह सुखमय जीवन बिता नहीं सका. उसकी एक छोटी-सी नौकरी थी, वह भी उससे छिन गयी.

उसकी पत्नी ने पूछा था, "अब मुझे खाना कौन देगा?"

उसने उत्तर दिया था, "मेरा बाप!"

"क्या तुम मर चुके हो?"

"दूसरी नौकरी की तलाश में हूं."

"तुम मजदूरी नहीं कर सकते?"

"मेरे बाप की इज्जत खराब होगी."

"तुम्हारे बाप की इज्जत ही कितनी है?"

"थोड़ी-सी."

"तो?"

"मैं नहीं चाहता कि वह भी खराब हो."

पर उसे दूसरी नौकरी मिल नहीं पायी. उसने हर जगह यह

लघुकथा

चमत्कार

□ यज्ञ शर्मा

बिजली जैसी चमक थी उसके शरीर में. तने हुए उस इस्पाती शरीर पर नजर नहीं ठहरती थी. अपने आप पर, अपनी धार पर उसे बड़ा गर्व था. वह चाकू था.

गजब की फुर्ती से वह उठता था. छपाक से नीचे गिरता था. सपासप सब कुछ काट डालता था. खप्...खप्... कटते हुए मांस व चिर्र...चिर्र...चिरती हुई खाल की ध्वनि उसे बड़ी अच्छी लगती थी. अलग-अलग तरह की चीजें काटने में उसे बड़ा आनंद आता था. लेकिन खरबूजों पर गिरना उसका प्रिय शौक था. कभी वह उनकी खाल उतार लेता था, कभी केवल नसें काटकर छोड़ देता था, कभी गोल-गोल टुकड़े ऐसे काटता था जैसे खरबूजे का नमूना देख रहा हो. किंतु उसकी सबसे प्रिय विधि वह थी जिसमें वह लंबी छलांग लगाकर खरबूजों पर गिरता था तथा बहुत से खरबूजों को एक साथ धराशायी कर देता था. इस विधि को खरबूजे खोमीनी विधि कहते थे.

एक बार उसका मन खरबूजा काटते-काटते ऊब गया तो वह सपरिवार छुट्टी मनाने कश्मीर चला गया. खरबूजों ने चैन की सांस ली और सोचा कि शायद अब वह अपना यह भयंकर शौक छोड़ दे. लेकिन कुछ दिन छुट्टी मनाने के बाद जब वह फिर एक खरबूजे पर गिरने को तैयार हुआ तो खरबूजा बोला, "यार, दुनिया बदल गयी, पर तुम नहीं बदले. निरे चाकू ही रहे. अरे तुम मुझ पर गिरो या मैं तुम पर, बात तो एक ही है. यह तुम समझ क्यों नहीं रहे हो. सदा से तुम मेरे ऊपर गिरते आ रहे हो. मनोरंजन के लिए विविधता बहुत आवश्यक है. ऐसा करो, तुम मेरे ऊपर मत गिरो, मुझे अपने ऊपर गिरने दो."

चाकू ने सोचा... हर्ज क्या है! नुकसान तो खरबूजे का ही होना है. फिर जब बहुत से खरबूजे अपने आप कटने लगेंगे तो मैं इसे धार्मिक क्रिया घोषित कर दूंगा. चाकुओं के लिए खरबूजा काटने के नये-नये आसन इजाद करूंगा. यदि ये आसन लोकप्रिय हो गये तो हो सकता है इन्हें एक नये धर्म का नाम दिया जा सके. इस नये धर्म का प्रवर्तक मैं होऊंगा.

भावी धर्म का प्रवर्तक तनकर बोला, "लोकतांत्रिक पद्धति में मेरा अटल विश्वास है. भाई खरबूजे, तुम्हारी इच्छा ही सर्वोपरि है. यदि मेरे ऊपर गिरने में तुम्हें खुशी मिलती है तो खुशी से गिरो, मुझे कोई आपत्ति नहीं है."

खरबूजा ऊपर उठा. चाकू तनकर खड़ा हो गया. खरबूजा और ऊपर उठा और बहुत ऊपर उठकर हवा में टंग गया. वह फिर कभी नीचे नहीं उतरा. चाकू नीचे तना ही रह गया. खरबूजे ने गुरुत्वाकर्षण के सिद्धांत को लात मार दी थी. □

बताया कि उसकी पहली नौकरी इसलिए छिन गयी क्योंकि
कोई भी काम ठीक तरह से कर नहीं सकता है.

उसकी पत्नी ने उससे पूछा था, "क्या तुम चोरी कर सकते हो

"मुझमें इतना साहस नहीं है."

"तुम आत्महत्या भी नहीं कर सकते?"

"यह महापाप है."

"फिर तुमने विवाह ही क्यों किया?"

"मेरे पिता ने करवाया था." तब उसकी पत्नी ने अपने क
को दोष दिया था.

उसे लगा कि काफी दिनों से उसे रोटी नहीं मिली है. या क
कभी उसे कोई एक-आध रोटी दे जाता है.

उसने धीरे-धीरे चलना शुरू किया. शहर के सब मार्गों त
गलियों में से उसका जुलूस निकला करता था. आगे-आगे
होता था, पीछे-पीछे शहर के नादान तथा शैतान छोकरे हु
करते थे.

एक अस्पताल में फौजियों के लिए रक्तदान करने का प्रस्ता
रखा. लेकिन डाक्टरों ने उसे एहसास करवाया कि रक्त की
स्वयं सख्त जरूरत थी. उसे विश्वास नहीं हुआ था. वह
कभी कोई काम ही नहीं करता है. फिर उसका रक्त कैसे सू
गया!

वह आई (आंख) बैंक मैं गया. पर उसे डाक्टरों ने बता
कि वे किसी जीवित व्यक्ति की आंखें नहीं निकाल सक
क्योंकि कानून में इसकी व्यवस्था नहीं है.

पीछे से किसी ने उसे आवाज दी, "ए!"

वह रुक गया.

अजनवी ने उसके हाथ को अपने दोनों हाथों में सस्नेह ले लि
वह अपनत्व में मुस्करा पड़ा. अजनबी ने पूछा, "चलोगे?"

"कहां?"

"दो रुपये मिलेंगे."

"किस लिए?"

"तालियां बजाने तथा नारे लगाने के लिए."

"किस खुशी में?"

"देश के साथ वफादारी की खातिर."

"देश के साथ कौन है वफादार?"

"हमारा नेता."

"आपका नेता कौन है?"

"वह जिसके नारे लगने हैं."

"रुपये कौन देगा?"

"मैं."

"तुम कहां से दोगे?"

"वही नेता देगा."

"वह कहां से लायेगा?."

"तुम्हें चलना नहीं है, बस सवाल करना है! तुम हो बेवकूफ

वह समझ नहीं पाया. उसे हर एक ने यह कहा था कि वह
मी चीज़ समझने के योग्य नहीं है. उसने इसी बात पर तालि
बजायीं. अकेले, अकेले.

● बी-ए-1/47 बी, जनकपुरी, नयी दिल्ली–58

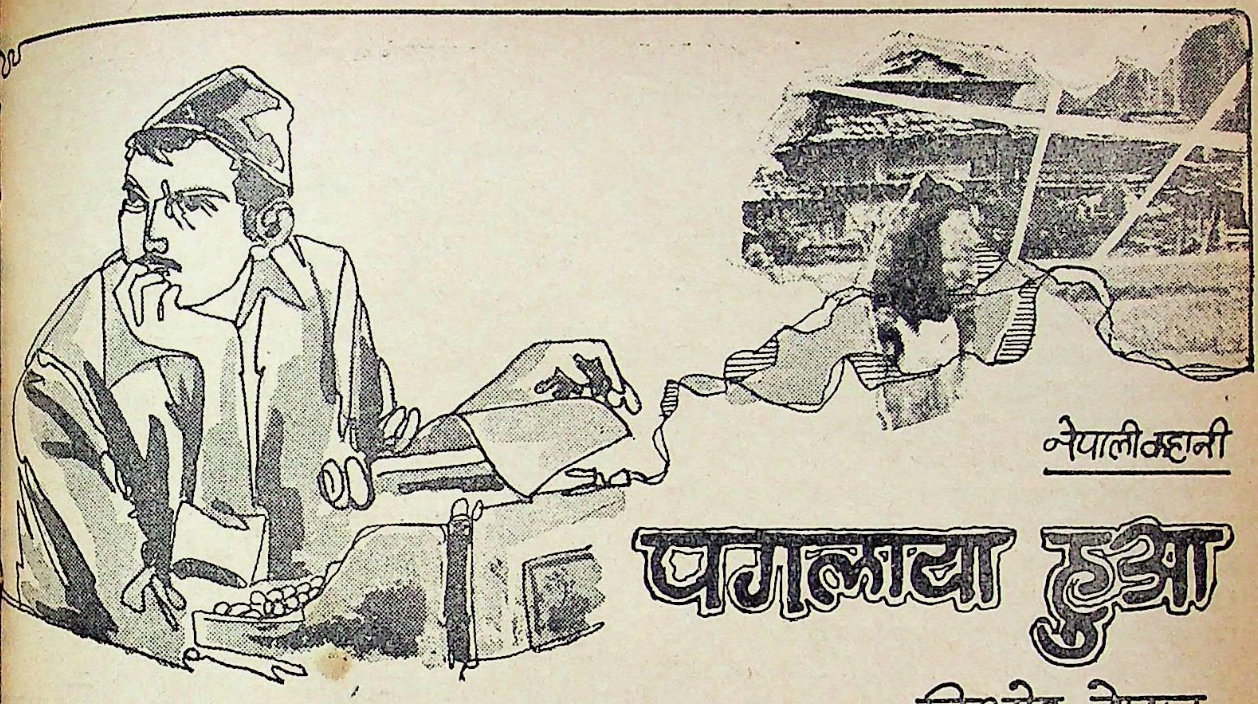

नेपाली कहानी

पगलाया हुआ

• किशोर नेपाल

अस्सी दिन निकल चुके हैं, अस्सी दिन. वह देखता है. इन अस्सी दिनों के बीत जाने पर भी कुछ नहीं हुआ है. बड़ी अम्मा की बीमारी न बढ़ी है न घटी है. हां, कराहना कुछ बढ़ा है. एक-आध गिलास हॉर्लिक्स पी लेती हैं और कभी-कभी कराहना छोड़कर कुछ फलों की भी मांग कर बैठती हैं. लेकिन अब उस पर इस मांग का कुछ असर नहीं होता है. हां, मगर जब बड़ी अम्मा पहली बार बीमार हुई थीं, उनकी सेवा में वह जुट पड़ा था. कसाई दिल अफसर से गिड़गिड़ाकर कुछ रुपये पेशगी तनख्वाह भी ले आया था. लेकिन अब उसके लिए कुछ भी करना संभव नहीं है. उधार के बोझ से वह इतना दब चुका है कि अब और ज्यादा दबना मुमकिन नहीं है. इसीलिए आज सुबह जब बीवी ने ओझा के यहां जाने के लिए पांच रुपये मांगे थे तो उसने एकदम फटकारते हुए कहा था, "मुझे न तो इन ओझाओं में ही विश्वास है, न मेरे पास रुपये ही हैं."

पड़ोस की मालती दीदी से उधार लेकर बीवी उस कथित प्रसिद्ध ओझा के यहां गयी थी, उसे यह बाद में पता चला था. ओझा के यहां से लौटकर वह बता रही थी, "बड़ी अम्मा को अभी कुछ नहीं होगा और मुझे भी भूत-प्रेत नहीं लगा है, सिर्फ कमजोरी है." उसे यह पहले ही पता था, उसकी बीवी एनीमिक है. यह उसके सूखे, रक्तहीन चेहरे को देखकर कोई भी बता सकता था.

काठमांडू में घर होना एक खुशहाली की बात है. लेकिन जब वह घर नाम मात्र का हो और उसमें गुजर-बसर अपने को किसी भट्ठी में झोंक देने-सा हो, तब उसके होने न होने का कोई अर्थ नहीं होता है. तीन कमरे के इस घर के निचले वाले कमरे में उसने अपने लिए एक खाट डाल ली थी. बड़ी अम्मा के बीमार होते ही उन्हें वहीं लिटाना पड़ा. क्योंकि उसकी हिंदू बड़ी अम्मा घर के ऊपरी मंजिल में मरना नहीं चाहतीं. उनको लेकर वह काफी तंग आ चुका है. निन्यानवे बरस की उमर में भी जीवन के प्रति जितनी आसक्ति उनमें है, वह अपने-आप में आश्चर्य की बात है. लेकिन मरती नहीं, तो इसमें बड़ी अम्मा का भी क्या दोष! बीमारी के शुरू के दिनों में वह जब बड़ी अम्मा के पास जाता था, तो वह पीड़ा से कराहते हुए अक्सर कहा करती थीं, "मुझे थोड़ा-सा विष दे दो."

इस तरह अस्सी दिन से वह स्टोर-रूम में सो रहा है. वैसे भी वह बीवी-बच्चों के साथ सो नहीं सकता. मच्छरदानी घर भर में सिर्फ दो हैं, एक बड़ी अम्मा को चाहिए और दूसरी बीवी-बच्चों को. इसलिए वह मच्छर भगाने की चीनियां धूप जलाकर सोने की कोशिश करता है. लेकिन रातभर उसे नींद नहीं आती है और सुबह होते ही बच्चों की चिल्लाहट से भी नींद उचट जाती है. फिर वह निश्चल होकर विस्तर पर पड़ा रहता है. दस बजते हैं तो दो कौर भात निगलकर ऑफिस की ओर चल देता है.

▣

"उफ् क्या गर्मी है!" ऑफिस पहुंचते ही वह पानी मांगता है. कुर्सी पर निढाल-सा होकर थोड़ी देर सुस्ताता है. अभी वह सुस्ता ही रहा होता—इंटरकॉम अपनी कर्कश आवाज में चिल्लाने लगता है. "हैलो, हां आदित्य ही बोल रहा हूं. यस सर, क्या लिखना होगा! यस सर, अंडरस्टैंड, ओ.के. सर! ओह नो सर!"

उसे हंसी आती है. ये ऊपरवाले अफसर लोग कितने दिन ऐसे ही झूठ बोलेंगे! अभी साहब ने उसे स्थिर मूल्य स्थिति और

लघुकथा

अपना पहाड़ा

◘ डॉ. कुंअर बेचैन

शहर से दूर एक छोटे-से गांव में ब्याज पर रुपया उधार देने वाला महाजन बूढ़े अनपढ़ श्यामू को हिसाब समझा रहा है, "पच्चीस चौका एक सौ पचास. और इस तरह चार महीने के एक सौ पचास ब्याज के हुए. मगर तू गरीब आदमी है. चल तुझे पच्चीस छोड़े. अब एक सौ पच्चीस रुपये ब्याज के और एक सौ असल. कुल दो सौ पच्चीस हुए. ला निकाल और मेरे बहीखाते से अपना नाम कटवा!"

श्यामू भौंचक्का-सा देख रहा है. इतने रुपये उसकी जेब में हैं ही कहां. पहले उंगलियों पर हिसाब लगाकर, फिर ईंट के टुकड़े से धरती पर लाइनें खींचकर सही-सही हिसाब का विश्वास करते हुए श्यामू बोलता है, "मगर हुजूर, पच्चीस-पच्चीस चार जगह रखकर तो पूरा सैकड़ा होता है और आपके हिसाब से पचास ऊपर सौ बैठते हैं. आपका पहाड़ा गलत है हुजूर!"

"वह तेरा पहाड़ा होगा. यह महाजनी पहाड़ा है गधे! देखा है कभी! ले देख!" और ऐसा कहते हुए महाजन ने अनपढ़ श्यामू के सामने बहीखाता रख दिया.

श्यामू की भौंहें तन जाती हैं, वह भी अपना अलग पहाड़ा बनाने के सोच में उठकर चल देता है. □

नेपाली बाजार व्यवस्था पर एक वर्किंग पेपर लिखने को कहा है. 'आंकड़ा भर दो'—बोलते हैं. लेकिन क्या यह यथार्थ होगा! न हो, उसे क्या? वैसे भी इन ऊंचे वेतनवालों को मूल्य स्थिति से क्या लेना-देना! अभी पिछले दिन एक समाचारपत्र का संवाददाता बोल रहा था कि चावल के भाव में शत-प्रतिशत वृद्धि हुई है. यह किससे छिपा है. वह खुद भी तो यह जानता है, लेकिन इस सत्य को साहब के वर्किंग पेपर में नहीं आना है. सत्य, सत्य ही होता है. इसलिए गढ़े गये इस झूठ को सत्य साबित करने के लिए सम्मेलन का आयोजन करना पड़ता है. वह कागज-कलम संभालकर लिखने बैठता है—'उपस्थित सज्जनों और महिलावृंद—हमारे यहां गत पांच वर्ष मूल्य की दृष्टि से उपभोक्ताओं के लिए...' टेलीफोन बज उठता है.

"हां, बोल रहा हूं? क्या हुआ?? बोलती बंद हुई? हां, अभी आया."

वह टेलीफोन क्रेडिल पर रखकर थोड़ा-सा मुस्कराता है. लगता है, उसके अंदर अभी-अभी एक क्षींण मुस्कान और क्षींण खुशी ने जन्म लिया है. वह साहब के कमरे में जाता है.

"सो तो ठीक है, लेकिन वर्किंग पेपर का क्या होगा मिस्टर आदित्य?"

"मैं तैयार कर लूंगा सर. कल सुबह आपके घर में दे जाऊंगा. आप चेक कर लेना."

"ओह नो आदित्य, अगर बुढ़िया मर ही गयी तो?"

"शेखर को कहूं सर?"

"ओह नो! ही कांट राइट माइ ब्वॉय."

"तो फिर सर, मेरा वहां जाना कितना जरूरी है, यह अंदाजा तो आपने लगा ही लिया होगा."

"वो तो है. पर माइ ब्वॉय, तुम ऐसा करो, किसी पियन को घर भेज दो. तुम्हें टाइम ही क्या लगेगा? आइ थिंक, यू विल कंपलीट इट विदिन टू आवर्स. इट इज अ क्वेश्चन ऑफ प्रेस्टिज आदित्य."

वह अपने स्थान पर लौटता है और लिखने लगता है—'हाल में जो मूल्य वृद्धि हुई है, इसे अगर हम पर कैपिटा इनकम के साथ मिलाकर देखें तो हमें यह पता चल जायेगा कि यह वृद्धि कुछ भी नहीं है...'

राममान आता है और कॉफी उसके आगे रखकर बोलता है, "साहब ने भेजा है." वह कॉफी पीकर फिर लिखने लगता है. लगभग एक बजे वह वर्किंग पेपर का प्रिलिम्नरी ड्राफ्ट तैयार करके टाइपिस्ट को देता है और चल पड़ता है.

घर आकर देखता है, बड़ी अम्मा स्थिर हैं. लेकिन अभी यह बुढ़िया मरेगी नहीं. उसे लगता है कि दुःख तो अब प्रारंभ ही हुआ है, खत्म नहीं. वह डॉक्टर बुलाने जाता है. स्थानीय अस्पताल का बूढ़ा डॉक्टर आकर जांचता है. बताता है—'पैरालिसिस है. अस्पताल ले जाओ.'

"लेकिन डॉक्टर साहब, अस्पताल ले जाना तो मुश्किल है. वैसे भी आप तो जानते ही हैं." उसे लगता है कि निन्यानवे बरस की इस बुढ़िया को अस्पताल क्या बचा पायेगा!

"तो फिर कुछ इंजेक्शन लिख देता हूं. यह मिक्श्चर पिला देना और सैलाइन वाटर देने की भी जरूरत है. स्टैंड मेरे यहां से ले आना."

वह डॉक्टर का प्रेस्क्रिप्शन लेकर ऑफिस की ओर चल पड़ता है. इस माह के वेतन से उसे अब पेशगी नहीं मिलेगी. वह प्राविडेंट फंड से रुपये निकालने के लिए निवेदन लिखता है. शायद साहब को वर्किंग पेपर पसंद आ गया है. इसीलिए बिना किसी रुकावट निवेदन पास हो जाता है. आर्थिक-शाखा से निकलकर वह डॉक्टर के यहां पहुंचता है.

वह सोचता है इन अस्सी दिनों में कितना टूट चुका है, वह कुछ भी करने में असमर्थ है. योगेश ने उसे कुछ काम दिया था, लेकिन जब आदमी अंदर से टूटता है तो कुछ भी न कर पाना बहुत मुश्किल है. इन अस्सी दिनों में उसकी नींद बार-बार उचटी है. कराहने की आवाज का वह अभी तक अभ्यस्त नहीं हुआ है. वह बार-बार सोचता है, बड़ी अम्मा को मर जाना चाहिए या नहीं? मृत्यु से वह डरता है, लेकिन जिस स्थिति में वह फिलहाल जी रहा है वह भी उतनी ही भयावह है. तो फिर वह क्या करे?

वह सोचता है, अगर मां आती तो उसका दुःख कम हो जाता. लेकिन मां ने खबर भेजी है, "शायद तत्काल मैं न आ पाऊं. फिर भी खबर तुम भेजते रहो. हां, एक बात ध्यान रखना. बड़ी अम्मा की वसीयत कराकर उसे रजिस्टर्ड करा लेना. उसे

है, यह तो ठीक है. लेकिन वह बड़ी अम्मा से कैसे कहे कि बड़ी अम्मा तुम मर रही हो और मरने से पहले इस वसीयत में सही कर देना.

सिर्फ कराह ही सुन रहा है वह. एक महीना तो बीत गया होगा, जबसे वह बड़ी अम्मा के पास नहीं गया है. जाये भी तो कैसे! होश में होंगी तो कहेंगी, मुझे विष दो, और बेहोश होंगी तो बाप को, दादा-परदादा को, भाइयों को गालियां देंगी. गाली भी ऐसे चुन-चुनकर देती हैं. . .इतनी भद्दी कि तत्क्षण उसे लगता है, बुढ़िया को विष देना ही होगा. लेकिन क्या बुढ़िया यह खा पायेगी? विष? इस तरह की कल्पना से भी वह डरने लगता है. वह कमजोर मनःस्थिति में फिर सोचने लगता है—बीमार है तो इसमें बड़ी का क्या दोष है? बेचारी दुःख भोग रही है. "पूर्व जन्म में मैंने ढेर-सा पाप किया था, सो उसी का फल भोग रही हूं." बड़ी कभी-कभी तुतलाकर बोलती है. अब तो उसकी आवाज भी स्पष्ट नहीं है.

सच तो यह है कि वह बड़ी अम्मा के प्रति सहानुभूतिपूर्ण है. उनकी कराह सुनकर वह कितनी ही बार रोया है. बड़ी के प्रति उसे विशेष लगाव इसलिए भी है कि बड़ी ने उसे बेटे से भी बढ़कर पाला-पोसा है. घर को छोड़कर बड़ी जो सुविधा उसे दे सकती थी, दी है. बड़ी से वह अभी भी स्नेह करता है, लेकिन उसे बस चिढ़ यही है कि बड़ी की बीमारी से वह विस्थापित हो गया है. घर बड़ी का है. जीवन के अंतिम दिनों में भी उसे कुछ सुविधा न मिले! वह तमाम असंतोष भूलकर फिर नये सिरे से बड़ी अम्मा के लिए सोचता है. सहानुभूतिपूर्वक सोचने के बावजूद वह बड़ी के लिए कुछ नहीं कर पायेगा. वह तंग हो चुका है. उधार और ऋण के दलदल में धंसता जा रहा है. पुरखों का संचित किया हुआ कुछ सोना-चांदी भी बेच चुका है. और अगर बड़ी उसे अपना उत्तराधिकारी न माने तो उसके पास इतनी संपत्ति भी नहीं है कि वह अपने को नेपाल का जन्मजात नागरिक सिद्ध कर सके.

"आदित्य साहब, बड़े साहब बुला रहे हैं."

वह बड़े साहब के कमरे की ओर बढ़ता है. साहब कॉफी के साथ इंपोर्टेड सिगरेट पी रहे हैं. वह जाकर बैठता है. बड़े साहब उसे सिगरेट देते हैं और कॉफी बनाकर पीने को कहते हैं. फिर बोलते हैं, "मिस्टर आदित्य, तुम्हें मेरा प्रतिनिधि बनकर जाना होगा!"

"लेकिन कहां सर!" कसाई-से अफसर का बदला हुआ स्वभाव देखकर आदित्य आश्चर्यचकित है.

"बंगलौर. वहां एक सम्मेलन हो रहा है. वहां तुम्हें मेरा प्रतिनिधित्व करना होगा. मैं स्वयं जाता, लेकिन कुछ दिनों से मैडम की तबीयत ठीक नहीं है."

"लेकिन मैं ही क्यों सर? दूसरे भी तो. . ."

"देखो आदित्य, मैं तुम्हें एक चांस दे रहा हूं. तुम हो कि इंकार कर रहे हो. इस तरह तो तुम कभी भी प्रगति न कर सकोगे. गो अहेड माइ ब्वाय. इट्स अ ग्रेट चांस फॉर योर कैरियर."

"आई'म ग्रेटफुल टू यू सर. बट माइ फैमिली सिचुएशन डजन्ट एलाउ मी टू गो."

"देखो आदित्य, इसे तुम मेरा आदेश समझो. बाकी रहे फैमिली मैटर्स, सो इसे तुम्हें सहजता से लेना चाहिए."

"थैंक यू सर!" आदित्य बाहर निकलता है और वह शेखर की कमरे की ओर बढ़ चलता है. शेखर चुपचाप बैठा हुआ सिगरेट पी रहा है. आदित्य उसे बताता है तो वह कहता है, "देखो आदित्य, वह स्साला फ्रॉड है. न उसकी बीवी बीमार है न वह जाना ही चाहता है. उस साले को अंग्रेजी तो बिल्कुल नहीं आती. नेपाल में दूसरों का लिखा हुआ वर्किंग पेपर पढ़ना एक बात है. लेकिन वहां इंटरनेशनल डेलीगेट्स के साथ यह खूसट क्या बात कर पायेगा! साला पढ़ा-लिखा तो है नहीं, दूसरों का फेवर पाकर विशेषज्ञ बन बैठा है!

शेखर बकता ही जा रहा है. लेकिन आदित्य इस आक्रोश में शामिल नहीं हो पाता है. वह सोच रहा होता है—'अगर उसके जाने के बाद बड़ी मर गयी तो? मौत का क्या ठिकाना! फिर उसकी बीवी क्या कर पायेगी! पास-पड़ोस भी तो नानकोआपरेटिव है. उसे लगता है, वह पागल हो जायेगा. उसे अपने सिर में हजारों कीड़े रेंगते महसूस होते हैं. कुछ ही देर में राममान लेटर ऑफ रेप्रिजेंटेशन, हवाई जहाज का टिकट और रुपये दे जाता है.

तभी टेलीफोन की घंटी बज उठती है. शेखर रिसीवर उसे देता है, "योर काल."

वह बिना सुने ही टेलीफोन क्रेडिल पर पटक देता है और बड़ी अम्मा की कराह और अंतिम धड़कन को सुनने का प्रयत्न करने लगता लगता है. ☐

● 7/37 बत्तीशपुतली, काठमांडू (नेपाल)

आसपास बिखरी कहानियां

अपने-अपने दायरे

▣ अरुण ओसवाल

"तुम मुझे कप-प्लेट में चाय क्यों नहीं देते?" ग्राहक ने चीखकर होटल के मालिक से कहा.

"मैं तुम्हें कप-प्लेट में चाय हरगिज नहीं दूंगा. मुझे अच्छी तरह मालूम है, तुम जाति के चमार हो."

"लेकिन. . . . लेकिन यह तो संविधान की धारा 17 के अनुसार अपराध है," ग्राहक ने कानूनी तर्क दिया.

"हां, मुझे मालूम है, लेकिन कुछ भी हो, मैं कप-प्लेट में तुम्हें चाय हरगिज नहीं दूंगा.

बात बढ़ने के साथ ही होटल के चारों ओर भीड़ इकट्ठी होने लगी थी, तमाशबीनों की. इतने में एक सज्जन भीड़ को चीरते हुए आगे बढ़े और ग्राहक के नजदीक पहुंचकर बोले, "मैं तुम्हें कप-प्लेट में ही चाय पिलवाऊंगा." फिर होटल वाले से कहने लगे, "भाई, एक चाय बनाकर कप-प्लेट में डालकर मुझे दो." होटल वाले ने झल्लाते हुए चाय बनायी और सज्जन के हाथों में थमा दी. उन सज्जन ने दर्शकों की भीड़ में खड़ी एक हरिजन बाला को बुलाया, "बहिन, जरा अपने हाथ का झाड़ू अलग रख हाथ धोकर इन्हें चाय का यह कप दो. हमारे ग्राहकों को कोई तकलीफ नहीं होनी चाहिए." ग्राहक ने सुना तो बोला, "हूं . . . क्या मैं भंगी की छुई हुई चाय को पिऊंगा?" वह बगैर चाय पिये चल दिया. भीड़ छंटने लगी. ▣

● द्वारा/श्री सागरमल टेलर मास्टर, वार्ड नं. 4, भवानीमंडी

रघुनाथ कृपा

पृष्ठ 30 से जारी

"पता तो होगा, मुलां याद नहीं. मैं तो वहीं खड़ा था. रम्मे बाबू अपनी रील चालू किये था. मंत्री ने बीच में दो बार पानी मांगा. दोनों बार घंटा घंटा भर गिलास पकड़े बैठे रहे. मैं खड़ा रहा. अरे भाई, पानी पियो और अलग करो. पानी भी नहीं पियेंगे और गिलास भी नहीं छोड़ेंगे. पानी पीने में तो ये लोग घंटा लगाते हैं. . .और बड़े कामों में तो महीना लगाते होंगे. किसी दिन पहले से घुसकर बैठ जाऊंगा. . .तब देखूंगा, आखिर इसके और हमारे में क्या फरक है."

"तो आपको कुछ याद नहीं?"

"अरे साहब, आप भी मजे की बात करते हैं. मुझे इस धरती पर एक आदमी का भी नाम बता दो, जो अपने काम से और अपने अफसर से खुश रहता हो. काम खराब तो साब भी खराब. हमारा एस. डी. ओ. है, हमेशा गाली से बोलता है. . .मुंह में बवासीर है. मौका मिले तो हम भी कलक्टर साब से कह दें. उसने भी कहा होगा."

"तो हमारी बुराई कर रहा था?"

"बुराई की क्या बात. अपना रोना रो रहा था. उसे तकलीफ है सा'ब. रम्मे बाबू बहुत कड़ियल है, जल्दी हिम्मत नहीं हारता. अब आप कहे होंगे कि तुम जात-कुजात का हगा मूता करो, वह तो कहेगा ही. इज्जतदार आदमी तो इज्जतदार आदमी ही होगा. वह गर्दन कटवा देगा, नीचा काम नहीं करेगा. जाना है तो अफसर खुद जाये. जाकर तेल देखे, तेल की धार देखे. अपना दुःख दर्द कह रहा था."

हनुमान प्रसाद का चेहरा मुरझाता जा रहा था. पैर कांप रहे थे. वह आदमी रम्मे से भी ज्यादा भयावना लगने लगा था. उसके मुंह से निकला, "पर मंत्रीजी ने तो दस-साढ़े दस बजे बुलाया था."

"उन्होंने बुलाया था, आप आ गये, उन्हें जाना था, वे चले गये. वे मंत्री थे." फिर बोला, "आप घर जाना चाहें, घर जायें और नहीं तो सामने वाले सोफे पर पड़कर सो जायें. मुझे भी सोने दें."

वह लेट गया. हनुमान प्रसाद बिना बोले लौट पड़ा. उसका लौटना, लौटना नहीं था, जितना कि बेइज्जत होना था. मंत्री के बारे में वह क्या सोचे और क्या न सोचे, वह समझ नहीं पा रहा था. रम्मे ने उसे मंत्रीजी की नजरों में दो कौड़ी का सिद्ध कर दिया होगा. अब इस नौकरी में रहने से कोई फायदा नहीं. वह मंत्री के बारे में कुछ भी सोचकर उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकता. मंत्री उसके खिलाफ जरा सा भी सोचकर उसको बरबाद कर सकता है. वह रम्मे की बात से संतुष्ट हो गया, इसलिए चला गया. अगर न हुआ होता तो रुककर उसकी बात भी सुनी होती. हनुमान प्रसाद रोने-रोने को हो आया. उसे सीढ़ियां ऊपर नीचे होती महसूस हुईं. वह समझ नहीं पा रहा था कि उनसे कैसे उबर पायेगा?

▣

रिक्शावाला पेड़ के नीचे खड़े रिक्शे पर सो रहा था. उसके पैर ऊपर और सिर नीचे को लटक रहा था. उसके उस तरह सोने से वह भयभीत हो उठा. नीचे की सीढ़ी पर खड़े ही उसने कां आवाज से पुकारा, "रिक्शावाले. . .रिक्शावाले. . .रिक्शाऽ वालेऽ. . ."

वह वैसे ही बिना जुंबिश के लेटा रहा. हनुमान प्रसाद रिक्शावाले को लेकर आकस्मिक मृत्यु का भय सवार होता उसका सोच उसी दिशा में चालू होने लगा. वह मर सकता क्यों नहीं मर सकता. मरने के लिए पहले से तैयारी की आवश्य नहीं होती. अगर वह मर गया होगा तो वह घर तक कैसे पहुं और पहुंच भी गया तो उसके मरने के बाद के प्रभावों से कैसे होगा. वे उसका पीछा रम्मे और खन्ना की तरह तब तक करते जब तक वह . . . .उसकी गर्दन जिस तरह लटकी है, उस तरह आदमी की नहीं लटक सकती. आदमी की गर्दन का संतुलन सा बिगड़ा, वह फौरन जग जाता है. इसकी तो लटक रही है. यानी वह जिंदा नहीं है. उसने अंतिम बार जोर लगा पुकारा. वह फिर भी नहीं बोला तो उसने चुपचाप जाने का निर्णय लिया और दबे पांव चलने लगा. मौत के चक्कर में किसी तरह भी फंसना नहीं चाहता नजदीक से निकलते हुए उसने देखा. रिक्शावाला धीरे उठता चला जा रहा था. हनुमान प्रसाद के दिमाग में सब गड्मड् हो गया. वह जिंदा है या. . .रिक्शावाला बोला, साहब, नहीं चलना?"

"मैं इतनी देर से चिल्ला रहा हूं. . .तुम बोले क्यों नहीं

वह हंसा, "आपको रिक्शा पर बैठकर चलना था या मेरा सुनना था. चलिए, बैठिए."

हनुमान प्रसाद चुपचाप बैठ गया.

▣

रिक्शेवाले ने बीड़ी सुलगायी. बीड़ी के सुलगते ही वातावरण एक बदल गया. रोशनी का गुब्बारा-सा फूलकर दरख्तों तक गया. हनुमान प्रसाद, रिक्शा और रिक्शावाले के साथ गुब्बारे में समा गया था. फिर एकाएक वह गुब्बारा पचक गुब्बारा फटने के बाद सिर्फ उसकी बीड़ी का फूल घट बढ़ रहा जब राख आ जाती थी तो वह धुंधला पड़ने लगता था. वह दम कर फिर चमकाता था.

हनुमान प्रसाद अभी तक भी नार्मल नहीं हुआ था. उसके से उसी बदहवासी में निकला, "कौन भाई हो?"

बीड़ी फेंककर, गर्दन उसकी तरफ घुमाकर रिक्शावाला कर बोला, "हम भाई-वाई नहीं. आप लोगों की नजरों में भाई मतलब मां का जाया. जात पूछो जात."

हनुमान धीरे वे सामान्य होने लगा था. उसकी बात ने थोड़ा आहत किया था. इन लोगों से बात नहीं करती फौरन औकात के बाहर चले जाते हैं. उसने अपने आपको वाले की तरफ से समेट लेना चाहा. वह अपनी पत्नी के सोचने लगा. इस संदर्भ में वह मंत्री से काफी नाराज हो इस वक्त उसको इस तरह बुलाना और फिर न मिलना ज्यादती थी. अगर कुछ हो गया तो वह किसकी मां को मां ऊपर से यह रम्मे मंत्रीजी को उलटा सीधा भर .आया होगा. साथ कितनी भलाई की, कितनी इज्जत दी. उसका यह

भलमनसाहत की भाषा कोई नहीं समझता. भलमनसाहत! वह इस शब्द पर टिक गया. उसे अंदर ही अंदर दोहराता रहा.

◆

रिक्शावाले ने एकाएक रिक्शा रोक दिया और उतरकर एक ओर को चल दिया. थोड़ी देर तक हनुमान प्रसाद समझ नहीं पाया कि यह क्या हुआ? अंधेरा इतना गहरा था कि वह न देख पा रहा था और न समझ ही पा रहा था. पेड़ चलकर अपनी ओर को ही आते दिखाई पड़ रहे थे. उसकी नजर में वे सब चलते-फिरते खूंखार आदमी बन गये थे, जो उसका गला कभी भी दबा सकते थे. रिक्शेवाले के बारे में जितना विश्वास जमा किया था, वह सब धीरे-धीरे पिघलता-सा जा रहा था. वह स्वयं भी कातिल और चोर हो सकता है, नहीं तो एकाएक इस तरह रिक्शा रोककर बिना कहे गायब होने की क्या तुक है. उसने रिक्शा की गद्दी पर हाथ रखा, फिर सोचा, अगर जरूरत पड़ी तो क्या वह रिक्शा चलाकर नहीं ले जा सकता. उसने साइकिल चलायी है. रिक्शा और साइकिल में बहुत भारी अंतर तो नहीं ही होता. कोई देख ले तो? रम्मे ही मिल जाये. शहर में गाता फिरेगा कि साब रात को रिक्शा चलाता है. न भी कोई देखे, पतलून ही चेन में आ जाये? आजकल कपड़ा बनवाना कितना मुश्किल है. नयी की नयी पतलून! हनुमान प्रसाद परेशान हो उठा. रम्मे बाबू जब जानेगा कि मिनिस्टर से मिलने गया और मिनिस्टर नहीं मिला तो तरह-तरह की कहानियां बनाकर प्रचारित करेगा. सर्किट हाउस वाला आदमी उसके बारे में किस तरह की बातें कर रहा था. जैसे रम्मे ही अकेला ऐसा आदमी हो, जिसे आदमी कहा जा सकता है. वह अपने आप में एक चलती रकम है. गुड़ खिलाकर मार सकता है. ऊंची जाति का बताकर काम से बचता है और पिछड़ी जात का कहकर उनमें मिलता है.

◆

हनुमान प्रसाद अंधेरे को और गहरा होता हुआ महसूस करने लगा. शादी हुए कितने दिन हुए, सिर्फ छः मास. कहीं छः माह में ही इस दांपत्य जीवन का अंत तो नहीं होने जा रहा? वह निराश हो उठा और उसके सामने पत्नी का चेहरा घूमने लगा. उसने कसकर आंख बंद कर ली, पर वह न तो चेहरे से मुक्ति पा सका और न उस विचार से.

पेड़ों के झुरमुट के पीछे से परछायीं की तरह रिक्शावाला निकलता दिखायी पड़ा. उसके पीछे-पीछे उसे लगा, एक-दो आदमी और भी आ रहे हैं. आगे आया तो वह अकेला था. आदमी छूट गये थे. हनुमान प्रसाद ने सोचा, हो सकता है, वे लोग इधर-उधर हट गये हों और पीछे की तरफ से आकर उसका गला दबा दें. उसने रिक्शावाले से बात करनी चाही, पर आवाज नहीं निकली. रिक्शावाला बिना बोले गद्दी पर बैठकर चल दिया. हनुमान प्रसाद को थोड़ा-सा सकून मिला, पर वह इस भय से पूरी तरह मुक्त नहीं हो पा रहा था कि वह उसे कातिलों के सुपुर्द करके उनसे पैसे वसूल कर लेगा. वह साथ ही साथ अपने-आपको समझाने की कोशिश भी करता जा रहा था कि अगर ये लोग ऐसा करेंगे तो कौन उनकी सवारी में बैठेगा. लोग तो आंख बंद करके बैठ जाते हैं कि हमें हमारी मंजिल तक पहुंचा देगा.

रिक्शावाला एकाएक बोला, "हम आपको अच्छी तरह पहचानते हैं."

पहले तो हनुमान प्रसाद की समझ में नहीं आया कि वह किससे कह रहा है. समझ में आया तो वह और ज्यादा घबरा गया. इस तरह से कहने का मतलब क्या है? अगर यही बात मंत्रीजी ने कही होती तो शायद उसके लिए उत्साहवर्धक सिद्ध हुई होती. मिनिस्टर का जानना रिक्शावाले के जानने से एकदम भिन्न है. खासतौर से जब रिक्शावाला ऐसी बात आधी रात के करीब किसी बियाबान जंगल में अचानक कह दे.

◆

उसने फिर कहा, "हम आपके रम्मे बाबू को भी जानते हैं, जो आपका मुंह है."

रम्मे बाबू को हनुमान प्रसाद काफी देर से भूला हुआ था. वह एकदम से उभर आया, लेकिन वह उसका आखिरी वाक्य नहीं समझ पाया था. वह मेरा मुंह कैसे हो सकता है, मौत भले ही हो. उसने लंबी-सी सांस लेकर दोहराया, "रम्मे बाबू."

रिक्शावाला हंसा. फिर बोला, "आपने पूछा नहीं, कैसे जानते हैं? बड़े आदमियों को छोटे आदमियों से बोलने में तकलीफ होती है. है ना?"

हनुमान प्रसाद रिक्शावाले की बातों का सिर-पैर समझ नहीं पा रहा था. उसने अपनी बात चालू रखी, "आप लोग जानते

उन ने कहा था

मैं उर्दू के लिए हिंदी लिपि (देवनागरी—सं.) चाहती हूं और इस पर उर्दू वाले मुझसे खफा हैं.

▣ इस्मत चुगताई (पुनश्च–5)

आदमी जिन छोटी-बड़ी, अच्छी-बुरी, सुंदर-कुरूप परिस्थितियों से घिरा है, उनके भीतर से गुजरने के अलावा और क्या कर सकता है.

▣ नित्यानंद तिवारी

मैं उस अर्थ में मार्क्सवादी रहा नहीं, जिस अर्थ में मेरे प्रगतिशील दोस्त रहे हैं, मसलन चौहान और राजीव सक्सेना. मुझे पार्टी के लोगों ने उस रूप में कभी गंभीरता से नहीं लिया.

▣ शमशेरबहादुर सिंह

जीवन से जड़ता निकाल फेंकना उतना ही जरूरी है, जितना रसोई से तिलचट्टे निकाल फेंकना.

▣ ममता कालिया

हैं कि इन साले गरीब आदमियों का पेट हांडी होता है, जरा-सी गर्मी मिली और अंदर का सब कुछ उबलकर बाहर. चुप हम भी रहना जानते हैं, पर इतना नहीं, जितना आप लोग. न बोलना आप लोगों को बड़ा बनाता है और बोलना हम लोगों को छोटा, पर कब तक?" हनुमान प्रसाद उसके सवाल करने के तरीके से एकाएक चौंक गये.

हनुमान प्रसाद उसकी बातों का जवाब देना चाहते थे, पर उन्हें सूझ नहीं रहा था. जिस तरह की बातें रिक्शावाला कर रहा था, वे सब उनको उथल-पुथल अधिक कर रही थीं. वे या तो उसे मुंहतोड़ जवाब देना चाहते थे, या उतर जाना. दोनों बातें उन्हें काफी देर तक संभव नजर नहीं आयीं.

रिक्शावाला फिर बोला, "एक दिन रम्मे बाबू का हमने गला पकड़ लिया तो वह बोला, "भाई, हमें तो ऊपर वालों को भी खुश करना पड़ता है. अकेले हमारा ही पेट बड़ा थोड़े ही है."

हनुमान प्रसाद बड़ी मुश्किल से पूछ पाया, "तुम उतरकर कहां चले गये थे?"

"हाजत-फराखत के लिए भी नहीं जा सकते क्या? यही तो जोर-जबरदस्ती है आप लोगों की. आप लोगों का तो हगा-मूता भी करें और अपना. . हत्त तेरी साली गुलामी की."

हनुमान प्रसाद को पछतावा होने लगा. उसने उससे बात शुरू ही क्यों की. रिक्शावाला, खन्ना, रम्मे सब के सब उसे एक तरह से मुंह बाये खड़े नजर आने लगे. रम्मे ने उसका नाम लिया . . . .क्यों लिया? क्या मैं ही 'वह' ऊपर वाला हूं. मैंने उससे कब मांगा. . .वह मेरा मुंह है! उसने गर्दन उठाकर देखा. . .घर कितनी दूर है! पैदल पच्चीस मिनट लगते. दोनों साइडों पर घरों की रोशनियां ज्यादातर बंद थीं. कांच तक अंधे पड़े थे. उसे फिर रिक्शावाले की बात का ध्यान आया. वह भनभना उठा, "क्या मैं इन लोगों का हिस्सा बाटूंगा. . . ? लानत है मुझ पर और लानत है इन सब पर."

रिक्शावाला फिर चालू हो गया, "मेरा नाम रामहरख, बाप का नाम दुक्खी. दुक्खी नाम से आप शहरवालों को क्या मतलब. जैसा रामहरख, वैसा दुक्खी." कहकर वह हंसा. फिर बोला, "मुझे तो सबका एक ही नाम लगता है बाबू. . दुक्खी! सुक्खी हमारा चाचा था. अच्छा खाता पीता. बापू उससे कहता था, अरे सुक्खू, तुझे अपना नाम गाली-सा नहीं लगता, वह चाहे कितना खाता पीता, बापू के सामने चुप लगा जाता था. वैसे कमजोर पड़ता था."

रिक्शावले ने चाल तेज कर दी. हनुमान प्रसाद को हिचकोले लगने लगे. आंतें कूं-कूं करने लगीं. आखिर यह अपना, अपने बाप का, अपने चाचा का परिचय मुझसे क्यों कराये जा रहा है. क्या वह सब सवारियों से ही इस तरह की बातें करता है या मुझसे ही कर रहा है. रम्मे बाबू का गला पकड़ने वाली बात उस पर हावी होने लगी.

रिक्शावाला बोला, "बाबू, धन की सुरच्छा के लिए दो बंदूकची खड़े कर लो, पर इज्जत की सुरच्छा खुद करनी पड़ती है. गरीब आदमी के पास इज्जत ही है. इज्जत भी क्या किसी की दी हुई थोड़ा ही, अपनी समझी हुई. ये दफ्तर वाले सरकार से आया पैसा दें या न दें, पर हमारी अपनी समझी-जानी इज्जत भी छीन लें. . . .यह बात नहीं चलेगी." वह रिक्शा चलाता-चलाता गर्दन हिलाने लगा. फिर उत्तेजित हो गया, "बंदूक से सरीर मार कर गिरा दोगे, गिरा दो? पर रिक्शावाले की इज्जत नहीं ले जा सकते! वो कहता, हम नीच हैं. . .अरे नीच होना ही हमारी इज्जत है."

हनुमान प्रसाद की नजर एकाएक उठी. वही गली थी, जहां उसका घर था और बहुत देर से वह वहां पहुंचने की कोशिश कर रहा था. वह बोला, "रुको."

रिक्शावाला रुक गया. उसकी आंख में अभी तैश बाकी था. बाकी क्या था, बहते पानी को रोक देने वाली उथल-पुथल थी. उतरकर बोला, "घर आ गया. . .हमारी बात नहीं सुनी."

हनुमान प्रसाद अपने घर की तरफ देखने लगा. बाहर अंधेरा था. वह झटपट घर में घुस जाना चाहता था. उसने जल्दी-जल्दी पैसे निकाले और रिक्शावाले को दे दिये. उसने पांच रुपये गिने और आश्चर्य से बोला, "पूरे पांच!" फिर हंस दिया.

हनुमान प्रसाद सीढ़ी चढ़ने लगा तो वह बोला, "हमारी बात अधूरी रह गयी. रामहरख और दुक्खी में कोई फरक नहीं. किसी दिन दफ्तर में ही आ के सुनायेंगे."

हनुमान प्रसाद एक मिनट को ठिठका, फिर जाकर दरवाजा खटखटाने लगा. कुछ देर खटखटाने के बाद बोला, "खोलो. . हम हैं."

रिक्शावाला सड़क पर खड़ा बीड़ी सुलगाता-सुलगाता हंसा, फिर थूक दिया और बड़बड़ाया, "धत्त तेरी रघुनाथ किरपा की ऐसी की तैसी मारूं."

● आई. आई. टी कैंपस, आई. आई. टी. कानपुर.

एक गज़ल

▣ शबाब मेरठी

दिन में पैरों को तोड़ लेते हैं,
रात आते ही जोड़ लेते हैं.

जब अंधेरों में कुछ नहीं होता,
अपने पंजे मरोड़ लेते हैं.

भूख बरदाश्त जब नहीं होती,
अपनी हड्डी चिंचोड़ लेते हैं.

ज़ुल्म होता है जब कभी हम पर,
हम मुक़द्दर से जोड़ लेते हैं.

मेरी मेहनत खरीदने वाले,
मेरे बाज़ू निचोड़ लेते हैं.

दंगा : तीन घटनाकथाएं

संतोष तिवारी

नंदनजी,

ताजा अंक में 'जानवर और जानवर' (दूसरी किस्त) पढ़ा. उसमें सांप्रदायिक हिंसा के असली कारणों की शिनाख्त करने तथा उनका स्थायी हल ढूंढ़ने पर जोर देने की 'जेनुइन' कोशिश के लिए साधुवाद. इस संदर्भ में मुझे हाल ही में इंका के एक मुस्लिम विधायक से हुई बातचीत याद आ रही है. मुरादाबाद के दंगों के बारे में मैंने उनसे सवाल किया था, जिसके जवाब में वे उल्टे मुझी से सवाल कर बैठे थे, "आप बताइए, ये दंगे गांवों में क्यों नहीं होते? आखिर वहां ऐसा क्या है, जो इन्हें वहां संपन्न नहीं होने देता? क्या वहां मुसलमान नहीं हैं? क्या वहां हिंदुओं-मुसलमानों के रीति रिवाजों में यह फर्क नहीं है?" मेरे पास इसके सिवा कोई जवाब नहीं था कि गांवों में दंगे इसलिए नहीं होते, क्योंकि वे गांव हैं, शहर नहीं हैं और शहरों में दंगे क्यों होते हैं, इस बारे में मेरी राय वही थी, जो 'ज़रिया नज़रिया' में आपकी है.

पिछले हफ्ते ही मुरादाबाद और अलीगढ़ घूमकर लौटा हूं. संवेदना के स्तर पर कुछ चीजें बेहद प्रभावित कर गयीं, उनका ब्यौरा घटनाकथाओं के रूप में आपको भेज रहा हूं ——लेखक

पहचान

दंगाइयों की भीड़ ने आठ-नौ बरस के एक भागते हुए लड़के को रोक लिया. उसके दोनों हाथों में दो नुकीले पत्थर थे और उसका चेहरा आवेश से तर-ब-तर था.

"कहां जा रहा है?" भीड़ में से एक ने कहा.

"उधर." लड़के ने एक हाथ उठाकर इशारा किया, "वहां बशीर चाचा ने मेरे पिता को मार डाला."

भीड़ में कुछ खुसुर-फुसुर हुई और एक आवाज गरजी, "हमारे साथ आ जाओ, हम भी उधर चल रहे हैं."

"पर मैं तो बशीर चाचा को मारूंगा." लड़के ने गुस्से में कहा और अपना एक हाथ मुक्के की मुद्रा में लहराया.

"...और हमें मुसलमान मारने हैं. बशीर भी तो एक मुसलमान है." भीड़ में से किसी समझदार ने कहा.

लड़का अंततः उनकी बात समझ गया और भीड़ के साथ हो लिया. उसके लक्ष्य में फर्क नहीं आया था, पर अब उसे अपने पिता के हत्यारे बशीर चाचा को नहीं, बल्कि एक मुसलमान बशीर को मारना था. ▣

वैर

पूरा शहर सांप्रदायिक हिंसा की गिरफ्त में था. दो रोज पहले ईद के दिन जिस फसाद की शुरूआत हुई थी, उसका अंत सैकड़ों लोगों की बलि के बाद भी नहीं हुआ था. रोज दस-बीस लोग मर रहे थे. पुलिस की गाड़ियां घायलों व मुर्दों को ढोने में मुस्तैदी से लगी हुई थीं.

ऐसी ही एक पुलिस गाड़ी उस रोज सदर के अहाते में आकर रुकी. तब रात के कोई साढ़े ग्यारह बजे थे और शहर के बीचोंबीच का हिस्सा होने के बावजूद वहां उस वक्त झींगुरों की आवाज गूंज रही थी. पुलिस गाड़ी के ड्राइवर वाले हिस्से से एक अधपके बालों वाला अफसरनुमा व्यक्ति कूदा. उसने लगभग चीखते हुए अपने मातहतों को कुछ हिदायत दी और भागता हुआ अस्पताल में घुस गया.

डाक्टर ओमर इमर्जेंसी वार्ड का अंतिम बार मुआयना करके अभी-अभी अपने कमरे में आकर बैठे थे. उनके सामने मेज पर मरीजों की तालिका पड़ी हुई थी. तभी वो अधपके बालों वाला पुलिस अधिकारी दाखिल हुआ.

"कुछ और घायल हैं डाक्साब." आते ही बिना किसी औपचारिकता के उसने सूचना दी.

"भई, यहां पर एकदम जगह नहीं है. आप उन्हें एल. एल. आर. ले जाइए." डाक्टर ने लगभग ऊबे हुए स्वर में कहा.

"आप उन्हें देख तो लेते. उनमें से कुछ शायद अधिक सीरियस हैं." पुलिस अधिकारी ने कहा. डाक्टर को लगा, उसकी बातचीत में पुलिसिया लहजा नहीं है. वे उसके साथ बाहर जाने को तैयार हो गये.

बाहर पहुंचकर डाक्टर ने देखा, ट्रक के पिछले हिस्से में कोई दो दर्जन से अधिक व्यक्ति किसी कबाड़ की तरह एक-दूसरे पर लदे-फंदे पड़े हुए थे. ज्यादातर बेहोश थे और तेज धारदार हथियारों के शिकार थे, पर कुछ होश में थे.

अपने मतलब के, जिन्हें तुरंत चिकित्सा की जरूरत थी, मरीज ढूंढने के दौरान ही डाक्टर ने एक दृश्य देखा. गाड़ी में दायें किनारे लेटा एक लंबा-तगड़ा आदमी, जिसके सिर व पसलियों में चाकू की गहरी चोटें थीं, नीचे की ओर बेहोश पड़े एक जनेऊधारी के सिर पर निरंतर लातें मारे जा रहा था. डाक्टर ने गौर से देखा, लातें चलाने वाला व्यक्ति पिछले कुछ घंटों में अपना काफी खून बहा चुका था और बेहद कमजोर था. उसे जल्दी ही उचित चिकित्सा की जरूरत थी, पर उसके भीतर जैसे हिंसा का लावा उफान मार रहा था. सांप्रदायिक वैमनस्य का यह उदाहरण देखकर डाक्टर सरीखे मजबूत मन के व्यक्ति भी पलभर को सहम गये. ▣

शिकार

आतंक व उलझन के मारे करीमन आपा जैसे बुत बन गयीं. बाहर दंगाइयों की टोली उनका नाम ले-लेकर चिल्ला रही थी. उस टोली की मांग थी कि अपने घर में घुसे एक हिंदू को बाहर निकालो, पर यह कैसे कर सकती थीं करीमन आपा! उनके घर में घुसा हिंदू सिर्फ हिंदू नहीं, उनका दामाद भी था. वह ईद मनाने अपनी बीवी और दो बेहद खूबसूरत बच्चों के साथ आया हुआ था. उसे क्या पता था, यहां यह कहर ढह जायेगा.

"वह मेरा दामाद है सिरफिरो!" शुरू-शुरू में तो आपा ने झरोखे से झांककर नीचे मचलती दंगायी टुकड़ी से कहा था, लेकिन उनकी बात का कोई अनुकूल असर नहीं पड़ा था, बल्कि भीड़ में से किसी लफंगे का स्वर गूंजा था, "दामाद है तो फिर उसे अपनी. . .में डाल लो."

उमर भर बुर्के की सीमाओं में रही करीमन आपा इस कड़्वी फब्ती को सह नहीं पायी थीं और झरोखे से ही लगकर ढह गयी थीं, "या खुदा!" उन्होंने लंबी-सी आह भरी थी. उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि वे क्या करें! उनकी चेतना उनका साथ छोड़ने का एलान कर रही थी, पर दामाद की फिकर वे अपने आपसे कैसे निकाल पातीं, इसलिए जबरदस्ती होश समेटे बैठी रहीं.

"बुढ़िया मानेगी नहीं, लगा दो आग!" तभी नीचे से हल्ला उठा.

करीमन आपा की तबीयत हुई, उठकर देखें, क्या वाकई आग लगा दी गयी है, पर उनके पैरों ने उनका साथ नहीं दिया. उनके शरीर ने उनका साथ नहीं दिया. कुछ ही देर में झरोखे से कुछ आंच लगने लगी तो उनकी चेतना भी उनसे जुदा हो गयी, पर होश खोते-खोते उन्होंने सामने कुछ दूरी पर तख्त पर गुमसुम बैठे अपने दामाद, बिटिया और दोनों नातियों को देखा, शायद अंतिम बार. उनका मन हुआ कि वे अपने दोनों सलोने नातियों को प्यार कर लें, लेकिन वे यह नहीं कर सकीं. . .

अब झरोखे से आंच नहीं, साक्षात आग की लपटें प्रवेश कर रही थीं, जिनमें जल रहे थे करीमन आपा के बालों की चटख एक अजीब-सी धुन पैदा कर रही थी, शायद कोई मातमी धुन! □

आसपास बिखरी कहानियां

समझदारी

□ पृथ्वीराज अरोड़ा

तीसरा आदमी भी जब उसकी प्रार्थना पर न रुका तो वह निराश होकर एक ओर खड़ा हो गया. इस शहर में किसी के पास भी उसकी बात सुनने का वक्त नहीं था. दरअसल उसे एक पेन खरीदना था और उसकी खरीदारी में वह किसी की मदद चाहता था, क्योंकि इससे पहले उसने कभी पेन नहीं खरीदा था. पेन से सीखी जाने वाली विद्या से भी उसका कभी वास्ता नहीं पड़ा था.

उसने निगाह उठाकर आसमान की ओर देखा. यह जानकर कि थोड़ी देर में अंधेरा हो जायेगा, वह उद्विग्न हो उठा, तो क्या वह बिना पेन खरीदे ही लौट जाये?

वह लौटने की बात सोचकर दो कदम ही आगे बढ़ा था कि उसके पैर रुक गये. गांव से चलते हुए उसके पोते ने कहा था, "दादा, आप शहर जा रहे हैं न?"

"हां बेटे!"

"मेरे लिए एक पेन लेते आना."

"तुम्हारे पास पेन नहीं है क्या?"

"एक था, कल टूट गया. मास्टरजी ने बहुत काम दे रखा है, वह करना है."

सोचते-सोचते उसने पेनवाले की ओर एक बार फिर देखा, जो लगातार आवाजें लगा रहा था, "पेन एकेक रुपये में. . . .पेन एकेक. . . .!"

सामने से आते एक युवक को देखकर उसे कुछ आशा बंधी. उसने आगे बढ़कर कहा, "एक अर्ज़ है!"

"कहो?"

"मुझे एक पेन खरीदना है."

"तो खरीद लो."

"आप खरीद दीजिए."

युवक ने बूढ़े को गौर से देखा. फिर पेनवाले से एक पेन लेकर निब को कागज पर चलाकर बूढ़े को देते हुए उसकी उंगलियों में फंसा एक रुपए का नोट लेकर दुकानदार की ओर बढ़ा दिया.

बूढ़ा आश्वस्त हो पेन को जेब के हवाले कर खुश होकर बोला, "यह ठीक है! शुक्रिया!"

"पर बाबा!" युवक ने पूछा, "तुम्हें यही करना था तो मुझे बीच में लेने की क्या जरूरत थी?"

"बेटा, एक तो मुझे पेन-वेन की कुछ समझ नहीं." बूढ़ा बोला, "ऊपर से ये शहरवाले दूकानदार गांववालों को भोला-भाला समझ गलत चीज देकर लूट लेते हैं!"

"पर मैं भी तो शहर वाला हूं!"

"पर तू दूकानदार नहीं है बेटे, दूकानदार नहीं है. . .!" बड़बड़ाता हुआ बूढ़ा अपनी राह चल दिया. □

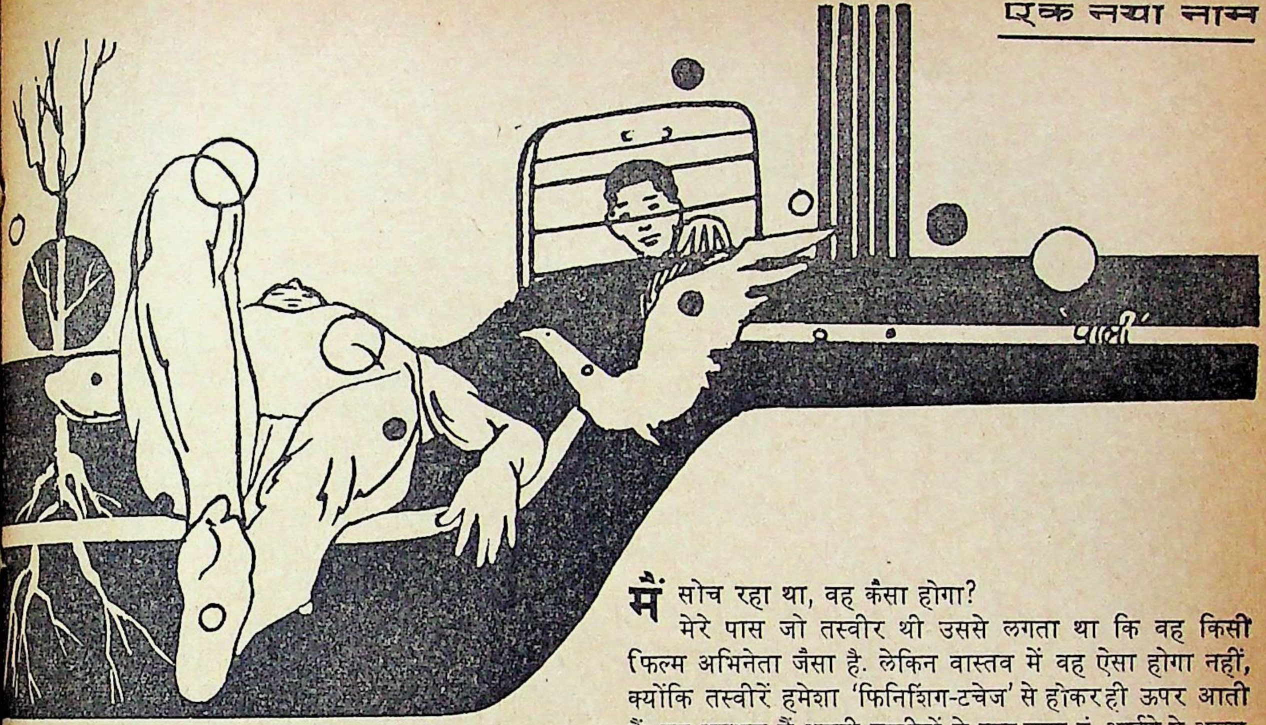

ज़िंदगी के हाशिए पर

• रंजन

> **'ऐसा लगता है जैसे जिंदगी के खूबसूरत हाशिए पर मौत आवारा खड़ी मेरा इंतजार करती रहती है--मैं उसके इस दर्शन पर बहस करता हूं--मौत कभी किसी का इंतजार नहीं करती. मौत सामने खड़ी तो दिखायी दे सकती है लेकिन इंतजार!'**

मैं सोच रहा था, वह कैसा होगा?

मेरे पास जो तस्वीर थी उससे लगता था कि वह किसी फिल्म अभिनेता जैसा है. लेकिन वास्तव में वह ऐसा होगा नहीं, क्योंकि तस्वीरें हमेशा 'फिनिशिंग-टचेज' से होकर ही ऊपर आती हैं. यह अनुभव मैं अपनी तस्वीरों से उठा चुका हूं. आईने से अलग तस्वीर के चेहरे को देखता हूं तो विश्वास नहीं होता. . . .फिर वह?

वैसे तो वह वैसा ही था जैसा कि मैं. एक-सा कद, एक-सी काठी, एक-से शौक, एक-सा चुलबुलापन, एक-सी आदतें. स्कूल-भर में पहचाने-जाने वाले दो शैतान, लेकिन दोनों क्लास के प्रथम श्रेणी के छात्र. अध्यापक भी कहें तो क्या! दोनों के बिना स्कूल की उंगलियां शहीद. खेल से लेकर सांस्कृतिक कार्यक्रमों तक, इससे लेकर रेजल्ट तक. . . .बस आगे ही आगे. हां! हिंदी के पीरियड में जाने उसे क्या हो जाता था! 'रेजल्ट' से पहले तक वह किसी रोगी की भांति लगने लगता, कहता रहता, "यार तेरी जुबान की 'पोइट्री' एकदम धामड़ है, पल्ले ही नहीं पड़ती. ऐसा लगता है जैसे जिंदगी के खूबसूरत हाशिए पर मौत आवारा खड़ी मेरा इंतजार करती रहती है." मैं उसके इस दर्शन पर बहस करता हूं, "मौत कभी किसी का इंतज़ार नहीं करती. मौत सामने खड़ी तो दिखायी दे सकती है लेकिन इंतजार!" इस पर वह हंस देता है और बहस. . . बराय-बहस होकर रह जाती है और वह स्वीकारता है कि उसने जो कुछ कहा, वह किसी शायर का विचार था, उसका नहीं. बहसें यूं ही अपरिपक्व मस्तिष्क की उठा-पटक होतीं, किंतु मार्कशीट में वह मुझसे बढ़कर हिंदी में अंक प्राप्त करता और मैं आश्चर्य-चकित रह जाता.

उसकी नानीजान उर्दू बाजार में इंपीरियल प्रेस के पास में ही रहा करती थीं. तीन कमरों का छोटा-सा मकान था, लेकिन साफ-सुथरा. एक नौकरानी थी जो नानीमां के घर का सारा काम करती थी. उस नौकरानी को नानीमां ने ही पाला था और जब वह जवान हुई तो उसकी शादी एक अफसर के ड्राइवर से कर दी थी, लेकिन शादी के एक वर्ष बाद ड्राइवर ने उसे तलाक दे

दिया था क्योंकि वह किसी दूसरी लड़की में दिलचस्पी लेने लगा था, जो कुछ पैसेवाली भी थी और उसके नाम एक मकान भी था. तलाक के बाद नौकरानी नानीमां का साया बनकर उन्हीं के घर रहने लगी थी.

मैं सलाम के साथ उसके घर लगभग रोज जाता था. दरियागंज से उर्दू बाजार दूर ही कितना था! अक्सर दोपहर का भोजन मैं सलाम के साथ ही करता. वह नौकरानी, जिसे नानीमां 'आयशा' कहकर पुकारती थीं, सलाम के साथ मुझे भी 'मीट' परोस देती और हंसकर कहती, "ले लो! नानीमां से नहीं कहूंगी." और मैं रस ले-लेकर मीट को खाने लगता. मुझे आयशा के हाथ का बना मीट बहुत पसंद आता था. वह बताया करती थी कि असलम की वाल्दा उससे भी अच्छा मीट बनाना जानती थीं और उन्होंने ही उसे सिखाया था. उनके हाथ का बना मीट खाने वाला उंगलियां ही चाटता रह जाता था.

▣

आयशा से मेरी पटती थी, क्योंकि वह मेरी कमजोरियों को छुपाती थी, लेकिन असलम लड़ने के बाद मेरी इन्हीं कमजोरियों से लाभ उठाने की सोचता रहता था. एक बार ईद में आयशा ने नये कपड़े पहन रखे थे और वह धुली-धुलाई साफ कपड़ों में मुझे अच्छी लग रही थी. उम्र में वह मुझसे काफी बड़ी थी, लेकिन इश्क में उम्र की शर्त नहीं हुआ करती. मैं असलम के कमरे में लेटा आयशा के हुस्न पर ही विचार प्रकट कर रहा था कि इतने में वह स्वयं सेवइयां लेकर आ गयी और हंसकर बोली, "इस तरह मुझे मत देखा करो, छोटे हो." मैं पानी-पानी हो गया. असलम ने अंगूठा दिखाकर कहा, "ले. . . . .और देख! साला नवाब वाजिद अलीशाह बनने के चक्कर में था." उसने कहा, "आयशा को दस रुपये दो, नहीं तो नानीमां से शिकायत कर दूंगा कि तू आयशा से क्या चाहता था और तू मीट. . . .!" घबराकर मैंने जेब से 10 रुपये का नोट दे दिया. हालांकि यह नोट मैं उस दिन एक पुस्तक खरीदने के लिए घर से लाया था. मैं नहीं जानता कि वह नोट उसने आयशा को दिया या नहीं, लेकिन इतना विश्वास है कि वह नोट हम दोनों पर ही खर्च हुआ होगा.

डर की वजह यह थी कि मेरे पिता पी. आई. बी. के बड़े अधिकारी थे. धर्म-कर्म में उनका मन काफी लगता था. मीट-मछली से वह सदैव दूर रहते. इस मामले में वह मेरी माताजी से भी दो गज आगे थे. दोनों ही पूजा-पाठ, भजन-कीर्तन के शौकीन थे, लेकिन जाने क्यों मैं इन सबसे दूर था. मुझे पूजा-पाठ में कोई दिलचस्पी नहीं थी. अक्सर मां कहतीं, "मन्नती-संतान विद्रोही हुआ करती है." पिताजी चाहे प्यार में ही कहते हों, लेकिन उसमें भी एक संकेत हुआ करता, "तुम कहो, मैं नहीं कह सकता. मेरा अशोक अगर पूजा-पाठ नहीं करता तो क्या हुआ! कोई मांस-मछली खाने तो नहीं लगा."

सलाम धमकाता, "अंकल से कह दूं कि तू मीट. . . .?" मेरा रोआं कांप उठता. फिर मैं वह सब कुछ करने लगता जो वह चाहता, लेकिन अंदर ही अंदर कुढ़ता रहता. मैं नहीं चाहता था कि अपने मम्मी-डैडी के सामने एक अपराधी के रूप में मेरी पेशी हो. मुझे दोनों से, जो बहुत बड़ा भ्रम था, वह यह कि मेरा अपराध जानकर वे मुझसे बोलना बंद कर देंगे. यही मैं नहीं चा
था. भला सोचिए. . . .

एक बार. . . .याद आ रहा है. डैडी ने उर्दू पढ़ाने के लिए मोली साहब को मुझ पर लाद दिया, कहा, "इनसे उर्दू भी
उर्दू पढ़ने से तुम्हारी बोली सुधर जायेगी और आगे च
आई. ए. एस. कंपीटीशन में कठिनाई पेश नहीं आयेगी. तब
काफी आनाकानी की थी. 'सीन', 'शीन' के उच्चारण में
बड़ी परेशानी का सामना करना पड़ा. अंग्रेजी, हिंदी. . . . उस
उर्दू. . . .तंग होकर मैंने मोली-साहब को भगाने की योजना
ली. झूठमूठ मम्मी से कह डाला, "मोली साहब से मैं
नहीं पढ़ूंगा. वह मुझसे बदमाशी की बातें करते हैं." जाने कहां
ऐसी बात मेरे मस्तिष्क में आ गयी थी. सुनकर मम्मी का चे
एकदम सुर्ख हो गया और आंखों से चिंगारियां फूटने लगीं. उ
डैडी से कहा और डैडी गंभीर हो गये. अगले दिन मोली सा
को मम्मी-डैडी दोनों ने आड़े हाथों ले लिया तो मोली सा
कांपने लगे, "खुदा गारत करे मुझको, जो इस उम्र में मुझे
सूझे! मुझे दोजख की आग जलाये और फिन्नार कर दे." वह
रुंआसे-से हो गये, बोले, "अमां क्यों इस सफेद दाढ़ी को का
से रंगना चाहते हो! क्यों साहबजादे. . . .सच कहो कि मैंने. . . .
मोली साहब की घुड़की मझे खा गयी और झूठ के
डगमगा गये. पहला झूठ, वह भी इतना कमजोर. . . .आंख
आंसू फूट पड़े. परिणाम यह हुआ कि मम्मी-डैडी कोई 7-8
तक मुंह फुलाये रहे और मेरा जीना दूभर हो गया. अंत में
ही माफी मांगकर उनसे यह वादा करना पड़ा कि मैं उर्दू भी प
और भविष्य में कभी झूठ नहीं बोलूंगा. इस घटना के बाद मो
साहब ने तो नहीं, हां एक दूसरे 'मास्साहब' ने मुझे पढ़ाना
किया और तब कहीं मैं अपने मम्मी-डैडी को राजी करने
कामयाब हो सका. आज सोचता हूं, अगर मुझे उर्दू न आती
एक प्यारी और मीठी भाषा से वंचित रह चुका होता. कभी-क
मम्मी-डैडी जैसे लोग कैसी सूझ-बूझ और दूरदर्शिता के
कर जाया करते हैं.

▣

जब मैंने पहली बार सलाम की अनुपस्थिति में पाकिस्
से आया हुआ उसके अब्बू का पत्र पढ़कर नानीमां को सुनाया
नानीमां आश्चर्यचकित रह गयीं. आश्चर्य की बात थी ही.
1947 के बाद की नस्ल, वह भी हिंदू, इतनी सरलता से उर्दू
सकती है, चौंकाने से कम वाली बात न थी. मुझे याद है कि
मां (जिन्हें उन दिनों बहुत कम दिखायी दिया करता था) ने
को आंखों के समीप लाकर धुंधलाये हुए अक्षरों को देर तक
था और उन पर गर्म-गर्म आंसू गिराये थे. बहुत देर बाद कहा
"शरीफ हिंदू घरानों की बोली में तो मैंने 'अदब' और 'तह
पायी थी, लेकिन 'नयी हिंदू-नस्ल' में इसकी बानगी देखकर
मैं दावा करने पर मजबूर हूं कि उर्दू आगे भी जिंदा रहे
हालांकि नानी मां के वैचारिक स्तर को देखते हुए उर्दू की उ
'उर्दू पत्र-व्यवहार' तक ही सीमित रहनी चाहिए, कुछ ऐसा
उनका मापदंड था, जबकि मैं उर्दू विषय के अंतर्गत मीर,
इकबाल, गालिब, फैज और फिराक को थोड़ा-थोड़ा पढ़कर

▣ **रंजन**
जन्म : 2 जनवरी, 1952
'आज की कहानी की यात्रा घटनाओं, संयोगों, कल्पनाओं से होकर जीवन की प्रक्रिया के बीच होती है. उसमें व्यक्ति का मूल्यांकन भी उसकी सामाजिक समग्रता के आधार पर किया जाता है...'
संप्रति : शोध

नया मापदंड खोज रहा था.

सलाम की उर्दू मुझसे अच्छी थी और वह उर्दू में गजलें भी कहने लगा था. हालांकि उसकी अटपटी गजलों की मैंने कभी भी प्रशंसा नहीं की. नानीमां ने एक बार उसकी किसी गजल को सुनकर उदास लहजे में कहा था, "सलाम की मां ताहिरा बड़ी अच्छी-अच्छी गजलें कहा करती थी. उसकी गजलों को पढ़-पढ़कर ही सलाम के अब्बू ने ताहिरा से मुतास्सिर होकर शादी का पैगाम भिजवाया था." कहते-कहते अनायास नानीमां का कंठ भर आया, बोली, "मुआ पाकिस्तान क्या बना कि दिलों के टुकड़े हो गये. इधर सलाम के वालिद की जुदाई में ताहिरा का दिन-रात रोना, उधर सलाम का पैदा होना. ज़चगी में बेचारी मर गयी, लेकिन चमन (सलाम के अब्बू) की सूरत को न देख सकी. तब से घुट्टियां पिला-पिलाकर असलम को जिलाती आ रही हूं. चमन हर बार सलाम को पाकिस्तान बुलाता है, लेकिन यह ऐसा बेमुरव्वत है कि वहां जाता ही नहीं. मेरी रीढ़ से चिपका हुआ है. . . ." मुझे याद है, नानीमां किसी आंतरिक पीड़ा से व्यथित हो रो पड़ी.

घुट्टियों वाली बात भी खूब ही थी. जब भी मैं सलाम को छेड़ता और वह क्रोधित होकर मुझे पीटने की धमकी देता तो मैं चलकर उससे यह जरूर कहता, "अबे तू क्या करेगा. . . . पहले घुट्टी पीना तो छोड़." अगर संयोगवश ऐसी बात सलाम के घर में होती तो आयशा काफी आनंद लेती. वह सचमुच मिट्टी की देहरी में कपड़े की बत्ती डालकर और उसे दूध से भिगोकर मेरे सामने बढ़ा देती, कहती, 'लो मिस्रा बाबू. . . .तुम भी घुट्टी पीना शुरू कर दो, क्योंकि तुम भी सलाम भैया की ही तरह घुड़क रहे हो.' इस पर न जाने कैसे हम दोनों एकाएक हंस पड़ते और फिर समझौते के बाद लड़ाने का कंपीटीशन शुरू हो जाता. इस तरह के कंपीटीशन में मैं कभी नहीं हारा, बल्कि सलाम को हराया ही है. हां! एक बार जरूर हार खायी, जब आयशा ने कहा, "मुझसे आंख लड़ाओगे मिस्रा बाबू ? मुझे हराओ तो जाने." तब अहं था कि पलक झुक ही नहीं सकती. कंपीटीशन शुरू हो गया और मैं उसकी गहरी झील जैसी आंखों में डूबता चला गया. कहां तक पहुंचा हूंगा, याद नहीं. कितनी बार उछलकर डूबा हूंगा, यह भी याद नहीं. कानों में से आती हुई आयशा की आवाज याद है, "ऐसे तो आंख नहीं लड़ायी जाती मिस्रा बाबू. . ..पलक मार-मारकर मुझे उन नजरों से देख रहे हो जैसे इन रास्तों से दिल में ही उतर लोगे". . . .फिर उसका खनकता हुआ अट्टहास सुनाई दिया था, फिर पीठ पर जोर से सलाम की 'धप्प' और झील से मेरी छलांग . . . .ओह!

"अरे माई गॉड!" मैं एकदम घबरा जाता हूं, "डैडी को जल्दी से फोन कर. . .लेकिन दौड़कर सलाम के बजाय मैं ही नंबर डायल करने लगता हूं, "डैडी! सलाम आया है. . .उसकी नानी पर फिर दिल का दौरा पड़ा है. . .प्लीज डैडी! किसी अच्छे डॉक्टर को फोन कर दीजिए. . ." डैडी, मम्मी से बातें करते हैं. मम्मी हम दोनों को कार में बिठाकर डॉ. खुराना के यहां पहुंचती हैं. डॉ. खुराना मेरे डैडी के बहुत गहरे मित्रों में से थे और मम्मी का बहुत आदर करते थे, तुरंत तैयार हो गये. लेकिन सलाम के मकान की चौखट को पार करते ही हम लोग ठिठक जाते हैं.

नानीमां पर यह तीसरा हार्ट-अटैक था. कहते हैं, दिल के रोगियों पर तीसरा हमला जानलेवा होता है और नानीमां को देखकर मैं यह बात मानने पर मजबूर हो जाता हूं. सलाम तो दहाड़ मारकर मूर्छित हो गया और आयशा बाल छिटकाये करुण विलाप कर-करके सीना कूट रही थी. दृश्य देखा नहीं जा रहा था. मेरी मम्मी के नेत्र भी सजल हो जाते हैं और मैं स्वयं के बारे में क्या कहूं कि मेरी क्या स्थिति थी, बस ऐसा समझिए कि सकता-सा हो गया था. विश्वास नहीं हो रहा था कि नानी मां की मृत्यु हो गयी है.

आसपास के रहने वाले लोग मकान में एकत्र होने लगे थे और सलाम को सांत्वना देने लगे थे. लेकिन सलाम कैसे अपने को शांत करता, उसका तो सब कुछ समाप्त हो चुका था! भारत में नानी मां के अतिरिक्त तो उसका कोई दूसरा था भी नहीं. सब पाकिस्तान जा चुके थे. नानीमां अपने स्वर्गीय पति की देहलीज को छोड़कर नहीं जा सकी थीं. छोड़कर गयीं भी तो सांस तोड़कर. . .

▣

एक मकान, कुछ दूकानें. . .कुछ पोटली में सलाम की बहू को देने के लिए रखे गहने और कुछ शादी के जोड़े, थोड़ी नकदी, बस! यही कुछ छोड़ा था नानीमां ने. आयशा के भविष्य का घोर अंधेरा तो कब्रिस्तान के अंधेरे जैसा होकर मुंह बाये खड़ा था. क्या होगा इसका! कहां बेचारी जायेगी! कैसे जीवन बसर करेगी यह अबला! मम्मी के सोचने के लिए ये प्रश्न बाकी थे. मुसलमान थी, वरना तो वही उसे अपने यहां काम-काज के लिए रख लेतीं. वह तो इस हालत में भी रखने को तैयार हो जायेंगी. लेकिन वे सभ्य हिंदू स्त्रियां क्या कहेंगी, जो अपने धर्म के प्रति आस्था रखती हैं और जिनका उनके यहां बराबर आना-जाना रहता है. समाज में रहकर समाज से पृथक तो नहीं रहा जा सकता! समाज से विद्रोह करने के लिए साहस चाहिए, वह उनमें नाममात्र भी नहीं. जो सच्चे दिल से ईश्वर के आगे झुक जाये, वह हरेक के आगे झुक जाता है, वह कभी विद्रोह नहीं कर सकता, कभी रीढ़ की हड्डी को सीधा नहीं कर सकता. . .भय! भय का भूत गारों से निकलकर आज तक मनुष्य का पीछा करता चला आ रहा है. मम्मी एक धार्मिक स्त्री होते हुए भी अंदर से कुछ कमजोर दिखायी देने लगती हैं.

डैडी इसका इलाज खोजते हैं. उन्हें विभाग का एक मुस्लिम चपरासी मिलता है, जिसके दो बच्चों को छोड़कर उनकी मां संसार से बिछुड़ चुकी होती है और वह आयशा को अपनाने के लिए तैयार भी हो जाता है, लेकिन आयशा सलाम भैया को छोड़ने के लिए बिल्कुल भी तैयार नहीं है. वह उसके साथ पाकिस्तान

जाना चाहती है. जीवनपर्यंत सलाम भैया की नौकरानी बनकर जिंदगी गुजार देना चाहती है. उसे सलाम से बेपनाह प्यार है, और सलाम की ही तरह वह उसके बच्चों को भी गोदियों में खिलाने की इच्छा रखती है. बस! उसे सलाम के अब्बू के पाकिस्तान से आने का इंतजार है, जिन्होंने हवाई डाक से सूचना दी है कि वह शीघ्र ही सलाम को लेने आ रहे हैं.

बड़ी दौड़-धूप और प्रयत्नों के बाद डैडी ने दोनों के पासपोर्ट बनवा दिये और वीसों की भी कोशिश कर दी, लेकिन मेरा दिल बैठा जा रहा है. नानीमां की मृत्यु के बाद से डैडी के परामर्श से सलाम मेरे पास ही रहता है, लेकिन आयशा सलाम के घर में ही रहती है. हम दोनों रात गये तक अपलक एक-दूसरे को देखते रहते हैं. फिर वही पलक मारकर मुझे जीते रहने देना चाहता है. मुझसे नजर टूटती है तो वह छत को तकने लगता है. लंबी और गहरी-गहरी सांसें लेकर सलाम मुझे अंदर से और भी व्याकुल कर देता है. बहुत कम बातें हो पाती हैं, लेकिन मूक नेत्रों से दोनों काफी कुछ कह-सुन लेते हैं, काफी कुछ समझ लेते हैं.

हायर सेकेंडरी का परीक्षा-फल आ गया है. डैडी फोन पर सलाम को पहले, बाद में मुझे बधाई देते हैं. इस बार सलाम ने टॉप किया था. मेरी चौथी पोजीशन थी, लेकिन मैं खुश था कि सलाम ने टॉप किया है और उसे 'टॉप' करना ही था. . .इतना ब्रिलिएंट और जीनियस स्टुडेंट और था ही कौन! डैडी कहते हैं, "भारत में रहो सलाम! तुम्हारा फ्युचर ब्राइट है. तुम्हें बहुत आगे तक मैं पढ़ा सकता हूं. इस तरह तुम्हें एक गार्जियन और अशोक को उसका अपना दोस्त मिल जायेगा. क्यों अशोक?" मैं प्रश्नसूचक दृष्टि से सलाम को देखता हूं जो मुंह लटकाये अपने में ही डूबा प्रतीत होता है, मौन. . .भावरहित. गहरी सांस भरना, भरकर छोड़ना, मानों उसकी आदत बन गयी हो. कहता, "नहीं! मैं अब्बू के साथ पाकिस्तान जाऊंगा. मैंने आज तक अब्बू को देखा भी तो नहीं है. फोटो देखने से क्या पता कि वह कैसे हैं." सुनकर मुझे दुःख हुआ था, लेकिन कोई बहुत ज्यादा नहीं. मैं जानता था कि पिता के बिना पुत्र अपने को कितना असहाय और दीन समझने लगता है. सलाम की तो अब नानी भी जीवित नहीं रही थीं.

चमन चाचा पाकिस्तानी गृह-सचिवालय में किसी अच्छी पोस्ट पर थे. नहीं मालूम, पाकिस्तान सरकार उन्हें भारत क्यों नहीं आने देती थी, जबकि उनका इकलौता बेटा भारत में था. वह तो सलाम की मां की मृत्यु पर भी न आ सके. लेकिन इस बार उन्हें वहां की सरकार ने भारत जाने की आज्ञा दे दी थी. वह विमान द्वारा दिल्ली पहुंचे और डैडी ने उनका स्वागत किया. मुझे आश्चर्य था कि दोनों एक-दूसरे से भलीभांति परिचित थे और रह-रहकर गले मिल रहे थे. चमन चाचा ने सलाम को ऊपर से नीचे तक देखा, जैसे फौजी पारखिए देखते हैं, फिर देखकर वह मुस्कराये और खरखराती फौजी जुबान में बोले, "ओये! तू है मेरा सींकिया पहलवान?" सुनकर सलाम ने गर्दन झुका ली और मैं डैडी के पीछे दुबक लिया. सोचा, अगर सलाम जो अच्छा-खासा है, उसे सींकिया कह दिया तो मुझे देखकर जाने क्या कहें. . .! लेकिन चमन चाचा ने मुझे कुछ नहीं कहा, बल्कि खूब प्यार किया, बोले, "अशोक भी अपने बाप पर गया है. . .लवली!"

दो गुजराती लघुकथाएं

□ विनोद भट्ट

लोक कथा—१९७९

भ्रष्टाचार के राक्षस को सरे-आम जलाने का एक कार्यक्रम तय किया गया था. घास-फूस, पटाखे आदि भरकर हम लोगों ने एक महाकाय राक्षस तैयार किया. बाद में उसे खुले मैदान में खड़ा किया गया. उसे जलता हुआ देखने के लिए बड़ी खासी भीड़ जमा हो गयी थी.

हममें से एक ने भ्रष्टाचारी राक्षस पर मिट्टी का तेल छिड़का. बस, अब दियासलाई लगाने भर की देर थी, इतने में रासूचाचा ने एक टेक्निकल मुद्दा उठाया, इस भ्रष्टाचारी राक्षस को आग कौन लगायेगा? फिर तो आपस में जोरदार चर्चा शुरू हो गयी.

आखिर सर्वसम्मति से तय किया गया कि, "जिसने अपने जीवन में एक भी भ्रष्टाचार न किया हो, वही इस राक्षस को आग लगा सकेगा. . ." हम सभी आधे घंटे तक एक-दूसरे के सामने देखते हुए खड़े रहे. इतने में वहां से गुजरते हुए एक ठेले वाले पर सबका ध्यान गया. वह ठेले वाला भ्रष्टाचार शब्द के शुद्ध हिज्जे भी नहीं बोल पाता था, अतः उसके हाथ में माचिस थमाते हुए उस भ्रष्टाचारी राक्षस को अग्नि देने के लिए हमने समझाया.

ठेलेवाला एक के बाद एक दियासलाई सुलगाकर राक्षस को दागता जा रहा था, पर राक्षस तो जलने का नाम ही नहीं लेता था. हम सब आश्चर्य से उसकी ओर ताक रहे थे. इतने में अट्टहास के साथ वह बुत बोल उठा, "आप लोग मुझे किसी भी हालत में जला नहीं सकते, क्योंकि घास-फूस, मिट्टी का तेल सब कुछ मिलावटी है"

और हम वापस लौट गये. □

हैरत थी कि रात गये तक डैडी के कमरे में बड़े-बड़े सरका अफसर, जो पहले कभी नहीं आये और जो डैडी से पोस्ट में बड़े चमन चाचा से मिलने आते और न जाने किस तरह की अंग्रे में बातें होतीं, मम्मी भी नहीं समझ पा रही थीं. सलाम और दोनों बहुत खुश थे और नानीमां को लगभग भूल चुके थे. आय नानीमां की मृत्यु के बाद से ही गिरने लगी थी, रक्त सूखता जा र था और आंखें फैलती चली जा रही थीं. वह चमन चाचा से मिल कोई बहुत प्रसन्न नहीं हुई और न ही इस खबर को सुनकर उ प्रसन्नता हुई कि चमन चाचा उसे पाकिस्तान ले चलने के लि राजी हो गये हैं. वह तो गुमसुम नानीमां की याद में खोयी रहती थी.

जब तक चमन चाचा रहे, घर भर में बड़ी चहल-पहल र

सीताहरण

बिल्कुल ऐन मौके पर रावण का फोन आया कि ब्लडप्रेशर बढ़ जाने की वजह से वह इस शो में काम नहीं कर सकेगा.

सभी पशोपेश में पड़ गये. खुद राम भी चिंतित हो उठे कि बिना रावण के रामायण कैसे आगे बढ़ेगी?

इतने में दरवाजे के पास खड़े हुए लंबे-चौड़े बदन वाले गोरखे पर दिग्दर्शक की नजर थम गयी और वह भागते हुए उसके पास पहुंचा.

गिड़गिड़ाते हुए उसने गोरखे से कहा, "प्लीज, तुम्हीं रावण बन जाओ..."

"क्याऽऽ?" गोरखे ने घबराते हुए पूछा. दूसरे दो-तीन आदमी भी दिग्दर्शक की मदद में आ गये और गोरखे को समझाने लगे.

"लेकिन मुझे करना क्या होगा?" उलझे हुए गोरखे ने पूछा.

"तुम सीता को उठाकर ले जाओगे..."

"औरत को?....नहीं साब, औरत जात नुकसान जात है, हम औरत को हाथ नहीं लगायेगा...."

सभी ने मिलकर खूब समझाया. सीता को भगा ले जाने का इतना आग्रह उसकी समझ में नहीं आ रहा था. उस पर भी जब वे लोग सीता को उठा ले जाने के लिए खूब विनती करने लगे तो उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा.

सीता को ले जाने के लिए राम ने हौले से गोरखे की जेब में दस का नोट सरका दिया. आखिर राम के आग्रह को मानकर वह सीता को भगाने के लिए तैयार हुआ.

....और फिर रावण सीता को उठाकर ले गया.

बस, वह गया सो गया. आज तक न रावण का पता है न सीता का. केवल राम ही नहीं, पुलिस भी सीता की खोज कर रही है... ☐

अनुवाद : सुशीला जोशी

ढके-छुपे अच्छा स्वादिष्ट मुर्ग, मछली, हरियल का मीट को मिलता रहा. बड़े-बड़े अफसर ये सब दिल्ली के मोती- से मंगावाकर चमन चाचा को खुश कर रहे थे और सलाम से चुराकर मुझे देता जाता था. लेकिन यह सिलसिला साबित हुआ. सब जैसे एक स्वप्न-सा बनकर रह गया. के जाते ही लगा कि मैं अकेला हो गया हूं. अकेलापन को दौड़ने लगा...अजीब-सी स्थिति हो गयी थी. न भूख थी न प्यास, न घूमना था न फिरना...बस तकिये में मुंह मुकुर-मुकुर रोते रहना रात-दिन का मानों नियम-सा बन था. मम्मी-डैडी चिंतित हो उठे थे, लेकिन वे भी क्या कर सकते जानते थे कि मैं सलाम को कितना चाहता था, चाहता हूं. नयी दिल्ली के स्टेशन पर देखा था कि हम दोनों लिपटकर कितना रोये थे. उस उम्र की भावुकता को दबाया भी कैसे जा सकता था!

रेंगती हुई ट्रेन की खिड़की से सिर निकालकर सलाम ने हाथ का हरा रूमाल हिलाया और ताकीद की, "भूलना नहीं...खत जरूर लिखना...मैं पहुंचकर खत लिखूंगा...समझे!" अपलक उसकी नजरें मेरे चेहरे पर टिकी रहीं और मैं डिब्बे के साथ-साथ चलता रहा, कुछ-कुछ फासला देकर मेरे पांव खिड़की की ओर लपकते रहे. मैं भी असलम के चेहरे पर नजरें जमाये हुए था ...अचानक भावावेश में मेरी आंखें भर आयीं तो वह चीख पड़ा, "यह क्या अशोक, आखिरी वक्त में तू हार गया....?"

"हां!" मेरा कंठ अवरुद्ध हो चुका था, "आज मैं अपने दोस्त को विजयी देखना चाहता हूं और मेरे आंसू फूट पड़े. ट्रेन ने गति पकड़ ली और मेरे पांव प्लेटफार्म के फर्श पर जमकर रह गये. हरा रूमाल धीरे-धीरे एक नुक्ते में सिकुड़ता चला गया और फिर सब कुछ शांत! डैडी ने कहा, "चलो भई...हो चुकी दोस्ती." तब खयाल आया कि मैं प्लेटफार्म पर अकेला नहीं, साथ में डैडी भी थे. चमन चाचा भी और आयशा भी. लेकिन यह कैसा अनुराग या दोस्ती थी कि बस सलाम ही सामने रहा. रास्ते में डैडी ने बताया कि आयशा का स्वास्थ्य सही नहीं है, वह कंपार्टमेंट में ट्रेन छूटते ही मूर्छित हो गयी थी.

बर्षों बाद आज उसका पत्र आया है, साथ ही एक नये सलाम का फोटो भी. फोटो को देखकर विश्वास नहीं हो रहा है कि यही मेरा दोस्त सलाम है. इतना सुंदर, आकर्षक...वहां की वायु सेना में वह कैप्टेन हो चुका है और मैं संयोगवश यहां. डैडी मुझे आई. ए.एस. में ही बिठाते रह गये और मैं कभी न हारने के कारण सदैव विजयी बने रहने के लिए वायुसेना में कैप्टन बन गया (लेकिन यह कैसी जीत थी...! कैसी हार...! आयशा से मैं हारा नहीं, बल्कि उसमें डूबकर स्वयं को भटकने के लिए छोड़ दिया था...पहले आनंद की अनुभूति हुई थी. दूसरी बार भी नहीं हारा, जानकर सलाम को जिताया, ताकि जिक्र छिड़ने पर वह इस जीत के सहारे ही मुझे याद कर लिया करे...उसने पत्र में मुझे पाकिस्तान आने की दावत दी है और यह इसलिए कि दो माह बाद उसकी शादी होने जा रही है. उसने लिखा है कि, "अगर तुम शादी से एक हफ्ते पहले पाकिस्तान नहीं आये तो यह शादी नहीं हो सकेगी..." मैं इस वाक्य को बहुत बार पढ़ता हूं, लेकिन मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि मैं कैसे उसकी शादी में सम्मिलित होने के लिए स्वयं को तैयार करूं? ऐसी हालत में जब कि मैं उड़कर कुछ ही घंटों में कराची पहुंच सकता हूं, पंख भी हैं और हौसला भी...लेकिन यह सब व्यर्थ...न पंख ही अपने हैं और न ही शक्ति.

अंदर ही अंदर लगता है, विजयी अशोक मिश्र अब तक की जीती सारी बाजियां एक-एक कर हारता जा रहा है और सलाम के पत्र पर लिखे अक्षर आंसुओं से भीग-भीगकर धुंधले होते जा रहे हैं और कोई नेट विमान 'जूंऽऽऽ' की आवाज के साथ उड़ता हुआ नीले आकाश की ऊंचाइयों की ओर आजादी के साथ बढ़ा जा रहा है, लेकिन क्या यह नेट सचमुच आजाद है? ☐

● मुरव्वत मंजिल, रूम नं. 1, बदरबाग, ए. एम. यू., अलीगढ़ (उ.प्र.)

पखवारे की पुस्तकें

नये-पुराने : चावल के दाने

■ प्रेस जन

सुरेश कांत युवा व्यंग्यकार हैं तथा 'ब से बैंक' उनका पहला उपन्यास है. और नये होने के कारण न तो वह स्वयं को कथ्य तथा शिल्प के आधार पर दोहराते दृष्टिगत होते हैं और न ही पहली रचना की कमजोरियों का अत्यधिक शिकार हुए हैं. हिंदी में व्यंग्य-उपन्यासों की बेहद कमी है. अधिकांश व्यंग्य-साहित्य कहानियों एवं ललित निबंधों में ही बिखरा हुआ है. 'रानी नागफनी की कहानी', 'रागदरबारी', 'हीरक जयंती', 'पांच एब्सर्ड उपन्यास', 'आश्रितों का विद्रोह', 'एक चूहे की मौत', 'प्रोफेसर पुराण', 'एक मंत्री स्वर्गलोक में' आदि उपन्यासों को उंगलियों पर गिना जा सकता है. ऐसे में युवा व्यंग्यकार द्वारा पहली पुस्तक-रचना के रूप में 'व्यंग्य-उपन्यास' को प्रस्तुत करना प्रशंसनीय ही है.

'ब से बैंक' में सुरेशकांत ने बैंक की परिवेशगत विसंगतियों का सूक्ष्मता से अध्ययन कर उनका विश्लेषण किया है. जिसका भी बैंक से वास्ता पड़ता है, वह प्रायः उसके बाहरी ढांचे से ही परिचित होता है. जब तक हम किसी परिवेश को निकट से नहीं देखते, उसकी विसंगतियों को नहीं जान पाते हैं. यही कारण है कि 'ब से बैंक' में वर्णित बैंक संदर्भित विसंगतियों का चित्रण पढ़कर, जहां मन में वर्णित व्यवस्था के विरुद्ध आक्रोश संचित होता है, वहीं नयी जानकारी के संदर्भ में आश्चर्यजनक प्रसन्नता का भाव भी जागृत होता है.

बैंक में—अफसर-क्लर्कों के संबंध, लेजरों की व्यवस्था, यूनियन के क्रिया-कलाप, बैंकीय अव्यवस्था, बैंकीय भ्रष्टाचार, खातों एवं खातेदारों की स्थिति आदि का सुरेश कांत ने विश्वसनीय चित्रण किया है. प्रोबेशन के समय संबंधित व्यक्ति को जिस प्रकार से तंग किया जाता है, वह उसके लिए असहनीय है. मैनेजमेंट द्वारा उसे गुलाम समझकर काम लिया जाता है, जिसके कारण उसकी कार्य के विरुद्ध तीव्र प्रतिक्रिया होती है. बैंकों में कार्य-शिथिलता का यही कारण है कि प्रोबेशन के समय हुए कार्य-आधिक्य के कारण संबंधित व्यक्ति में कार्य के विरुद्ध अरुचि उत्पन्न हो जाती है. सुरेश कांत ने प्रोबेशन के समय और उसके बाद कर्मचारी की 'कार्य- कुशलता' का उल्लेख करते हुए लिखा है—**"और स्थिति यह थी कि प्रोबेशन को मैनेजमेंट ने एक कैद की तरह बनाया हुआ था. इस दौरान क्लर्क या अफसर से गधे के समान काम लिया जाता था और शायद इसलिए, प्रोबेशन के बाद क्लर्क लोग दुलत्तियां झाड़कर बदला चुका लिया करते थे."**

बैंकीय अव्यवस्था एवं भ्रष्टाचार के लिए सुरेश कांत ने 'मैनेजमेंट' को दोषी माना है. भाई-भतीजावाद की सौहार्दपूर्ण भावना से प्रेरित होकर यह व्यवस्था अपने आदमियों को महत्वपूर्ण स्थानों पर बैठाने का प्रयत्न करती है. ऊपर से भय न होने के कारण महत्वपूर्ण स्थानों पर बैठे ये व्यक्ति भ्रष्टाचार के प्रचार एवं प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं. 'ब से बैंक' में सुरेश ने ऐसी ही स्थिति मैनेजर की बतायी है. ऋण देने की स्थिति में होने के कारण मैनेजर नामक यह व्यक्ति अपने पद का 'सदुपयोग' करने में हिचकिचाता नहीं है. किसी को ओवरड्राफ्ट दिया जा सकता है और किसी को ऋण. अपने पद का लाभ बैंकों के यह मैनेजर भरपूर उठाते हैं. इनकी पाचनशक्ति बहुत तेज होती है—**"वह हर छोटे-बड़े आदमी से खाता-पीता रहता था. चालू-खाते की असामियों से वह चीनी, चावल आदि की बोरियां खा जाता. सिगरेट के लिए पांच-दस रुपये झटक लेता."** ऐसे में होता वही है जो इस अव्यवस्था में होना चाहिए—रिश्वतखोर को सुविधाएं मिलती हैं और जरूरतमंद को अंगूठा. यही नहीं, बैंक कर्मचारी ब्याज-मुक्त ऋण की सुविधा का जिस प्र दुरुपयोग करते हैं, अपने नाम पर दारों को अधिक ब्याज दिलवाते है सबकी व्यंग्यात्मक चर्चा सुरेश ने उ में की है.

कर्मचारी कामचोर क्यों होते

कामचोर क्लर्कों की ही नहीं, का अफसरों एवं चपरासियों की च 'ब से बैंक' में मिलती है. इसका सुरेश ने अव्यवस्था को ही माना है की व्यवस्था ही ऐसी है कि वह खासे सक्रिय कर्मचारी को निष्क्रि देती है. एक मशीनी ढंग से चलने व्यवस्था में कर्मचारी अपने का उपयोगी नहीं मानता है, वह तो इ मानता है, जिसे उतारकर दूसरे के डालना है. इस स्तर पर उपन्यास के सीमा से हटकर देश की संपूर्ण स व्यवस्था से जुड़ जाता है. घुटनपूर्ण में घुटते ये कर्मचारी कामचोरी के कारण अंततः अनुपयोगी और नि होकर संपूर्ण समाज की गति को ज देते हैं. इसी व्यापक दृष्टिकोण के सुरेश की कलम बैंक के परिवेश में ह बंधती अपितु प्रत्यक्ष एवं अप्रत्य से शिक्षा, पुलिस, शासन-तंत्र, धर्म की विसंगतियों की चर्चा भी करती

हमारे पारिवारिक संबंधों में अ कितना बड़ा योगदान है, इसका सुरेश ने एक छोटे से प्रसंग में कि बेरोजगार युवक मध्यवर्गीय परि लिए भार होता है, परंतु नौकरी वही आंखों का तारा हो जाता **"उस दिन घर में मेरा महत्व ए बढ़ गया. बहनों को अपने भाई प हुआ. . . .बाप की नजरों में भी, मुझे अब तक निकम्मा मानता आ मैं मान्यता पा गया. उस दिन मुझे भी अच्छा खाने को मिला."**

आर्थिक रूप से पिछड़े कामगार मजदूर वर्ग की कारुणिक अवस्था, सुंदर बनाने के नाम पर हो रहे अ

की झलक भी इस उपन्यास में मिलती है. निर्धन लोगों की अवस्था का वर्णन करने में सुरेश ने जिस व्यंग्य शैली का प्रयोग किया है, वह लेखक के वर्तमान व्यवस्था के विरुद्ध संचित आक्रोश को अभिव्यक्ति देती है—**“मैदान, पहले मैदान नहीं था. तब वहां निर्धन लोग झुग्गियां डालकर रहते थे. यह उनका सौभाग्य ही था कि उनके जीवन का स्तर कोई नहीं था, अन्यथा यदि वह होता, तो बहुत नीचा होता. कारण, वे इतने कंजूस थे कि कभी भरपेट नहीं खाते थे और इतने टुच्चे थे कि हमेशा फटे-पुराने कपड़े पहनते थे. कुल मिलाकर वे उस दीन-हीन दशा में रहते थे कि बड़े मजे से एक सभ्य आदमी की घृणा का पात्र हो सकते थे. सभ्य आदमियों को घृणा का शौक होता है.”**

सुरेश ने इस वर्ग को उनकी कमजोरियों के साथ प्यार किया है. वह उनकी कमजोरियों को नजरअंदाज न करते हुए उनका चित्रण करते हैं और उनके विरुद्ध हो रहे हर शोषण और अत्याचार के विरुद्ध उनके मन में आक्रोश है.

यूनियन क्या होती है?

कथ्य की दृष्टि से इन सब खूबियों के बावजूद इस उपन्यास में एक बहुत बड़ी कमी दिखायी देती है. सुरेश ने यूनियन और हड़ताल का नेगेटिव पक्ष ही प्रस्तुत किया है. उन्होंने इन संदर्भों को गंभीरता से न लेते हुए, इसे हास्यास्पद बनाने का प्रयत्न किया है. उसके गलत रूप को चित्रित करना सही नहीं है. ‘ब से बैंक’ में हड़ताल का रूप इस प्रकार चित्रित है—**“वह केवल हड़ताल के लिए हड़ताल करवा रहा था, उसके पीछे अच्छा-बुरा कोई उद्देश्य उसका नहीं था. उसकी कोई मांग नहीं थीं, जिन्हें कि मानकर ही हड़ताल बंद करवायी जा सकती.”** और **“किसी भी दफ्तर में यूनियन इसलिए होती है कि जब कोई कर्मचारी मैनेजमेंट को गालियां सुना आये, तो उसे मैनेजमेंट के षड्यंत्रों से बचाया जा सके.”**

—चर्चित पुस्तक—

ब से बैंक

▣ सुरेश कांत

प्रकाशक : पराग प्रकाशन, कर्ण गली,
शाहदरा, दिल्ली-32
मूल्य : 12 रुपये.

सुरेश ने यूनियन का सहयोग उपन्यास में टुच्चे कामों के लिए ही लिया है. ऐसा लगता है कि यूनियन गलत काम कराने का माध्यम है. हो सकता है सुरेश कांत को ऐसी ही किसी यूनियन का अनुभव हो, परंतु लेखक की दृष्टि संकुचित नहीं होनी चाहिए. गधे-घोड़े को व्यंग्य की एक छड़ी से हांकना जायज नहीं है. इसके लिए दिशायुक्त दृष्टि की आवश्यकता है. सुरेश के इस उपन्यास में इसका अभाव दिखायी दिया है. लगता है लेखक का उद्देश्य मात्र जैसे व्यंग्य करना ही है. किस पर करना है, यह दृष्टि अभी उसके पास नहीं है.

‘ब से बैंक’ ने उपन्यास के शिल्प को कई जगह पर तोड़ा है. वस्तुतः उपन्यास किसी एक कथासूत्र को लेकर आगे नहीं चला—वह जैसे सूत्रों को पकड़ता है, सूत्र रूप में उनकी रचना करता है और फिर उसके इर्द-गिर्द घटना का निर्माण करता है. इन सभी सूत्रों में एकसूत्रता यह मानी जा सकती है कि लगभग सभी सूत्र बैंक के परिवेश से संदर्भित हैं.

हास्य और व्यंग्य का साथ

उपन्यास की भाषा, चरित्र-चित्रण की पद्धति, वाक्यों का विन्यास, उपन्यास का कथ्य आदि इस बात की आवश्यकता महसूस कराते हैं कि इस उपन्यास की आलोचना करने के लिए, इसे समझने के लिए नयी आलोचना दृष्टि की जरूरत है. सुरेश ने उपन्यास में डायरी शैली, पत्र शैली, पौराणिक कथा-रूढ़ियों आदि का प्रयोग किया है.

कथा वर्णन में सुरेश ने हास्य को व्यंग्य से विच्छिन्न नहीं किया है और न ही हास्य, व्यंग्य की गंभीरता को कम करता दृष्टिगत होता है. उपन्यास पढ़ते समय विसंगतियों के विरुद्ध आक्रोश संचित तो होता ही है, साथ ही अनेक स्थलों पर बरबस हंसी भी आ जाती है. हास्य यदि व्यंग्य को कुंद न करे तो वह स्वीकार्य है. ‘ब से बैंक’ में हास्य अपने-आप में व्यंग्य का सहायक होकर आया है. ☐

बिना रीढ़ का आदमी

‘बिना रीढ़ का आदमी’ (हंसराज रहबर, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली : 6, मूल्य 12 रुपये) उपन्यास लेखक के अनुसार एक रूपक कथा है, जिसमें स्वतंत्रता संग्राम के दौरान के दो महत्वपूर्ण राजनेताओं के चरित्रों का विश्लेषण करते हुए और उनके चरित्रों का विरोधाभास प्रकट किया गया है. गड़बड़ लेखक के यहां यह हो गयी है कि उसने उन दोनों को एक ही घर में, एक ही तरह की सुविधाओं में पैदा और बढ़ा होते दिखाया है, जबकि वास्तविक जीवन में उन दोनों नेताओं के परिवारों में हर दृष्टि से बहुत अंतर मिलता है. यह कमी तभी रह जाती है जब रूपक को ठीक तरह से ग्रहण न किया गया हो. कहानी के विकास के साथ भी लेखकीय पूर्वाग्रह समानांतर चलता है, जिसके कारण पाठक के सामने एक पक्षीय चित्र ही आ पाता है. जहां तक पठनीयता का प्रश्न है, एक खास तरह का पाठक वर्ग, जो ऐतिहासिक व्यक्तित्वों की कमजोरियों को मजे लेकर पढ़ता है, इसमें अभीष्ट मजा पा सकता है. ☐

अन्य प्रकाशन

- **फिल्मी दुनिया की झलकियां—दो खंड (उपेंद्रनाथ अश्क), नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, मूल्यः प्रत्येक खंड—20 रुपये.**
- **हर्षवर्धन (चंद्रकांत भारद्वाज), राजेश प्रकाशन, कृष्ण नगर, दिल्ली-51, मूल्य : 20 रुपये.**
- **अपराजेय (आदित्य दिवारत्नम्), राजेश प्रकाशन, कृष्ण नगर, दिल्ली-51, मूल्य : 35 रुपये.**
- **नीम चढ़ी गुरबेल (श्रीराम मीना), मिलिंद प्रकाशन, बरारीपुर, छिंदवाड़ा (म.प्र.), मूल्य : 8 रुपये.**

हलचल

एक समुद्र प्रश्नों का

पिछले दिनों, साहित्य के सवालों पर बातचीत के लिए, हिंदी के तकरीबन चलीस रचनाकार रतलाम में इकट्ठा थे. 'प्रश्न जो समुद्र हैं' नाम से मध्यप्रदेश साहित्य परिषद ने संजीदगी से एक रचना-संगोष्ठी आयोजित की.

पहले दिन, सुबह का सत्र **'कविता का नया सौंदर्यशास्त्र'** पर कर्णसिंह चौहान के पर्चे से शुरू हुआ. उन्होंने पर्चे में कविता के लिए एक नये वैज्ञानिक सौंदर्यशास्त्र की जरूरत पर बल दिया. बहस के दौरान पर्चे के आधारभूत तथ्यों से कोई बड़ी असहमति नहीं उभरी. जगदंबा प्रसाद दीक्षित ने सौंदर्यशास्त्र से पहले नये सौंदर्यबोध को परिभाषित कर लेने का आग्रह किया. रमेश देव ने कविता के 'लिंग्विस्टिकली ओरिएंटेड' होने पर जोर दिया. चंद्रकांत देवताले ने कहा कि कविता की भाषा, उसके शब्द एक जादू के बिना जिंदा नहीं रहते. प्रमोद वर्मा ने कहा कि जब हम कविता को जादू कहते हैं तब हम अपने आसपास की जिंदगी और समाज से कटकर उसे जादू नहीं कहते.

साजिशों के खिलाफ!

दूसरे सत्र में दो पर्चे पढ़े गये . **'रचना और पाठक : बदलते रिश्तों में संप्रेषण की समस्या'** विषय पर अपने पर्चे में प्रमोद वर्मा ने रचनाकार के नाते रचना और पाठक के बीच की जमीन की पड़ताल की. 'साहित्य और परिवेश' विषय पर ओमप्रकाश मेहरा का पर्चा भी पढ़ा गया. बहस शुरू करते हुए विष्णुकुमार ने शिकायत की कि हर बार पाठक से लेखक के झरोखे तक आने का दुराग्रह क्यों किया जाता है? राजेंद्र शर्मा ने रचना की बाबत पाठकों के विज़न और खुद रचनाकार के विज़न के टकराव में संप्रेषण की गुंजाइशें खोजीं. कर्णसिंह चौहान ने सामान्यजन को अपनी सही सांस्कृतिक निधि तक न पहुंचने देने के लिए देश में चल रही सजिशों के खिलाफ एक सांस्कृतिक लड़ाई की जरूरत पर जोर दिया. श्याम व्यास ने मास-मिडिया के उपयोग की स्वस्थ संभावनाओं की तरफ इशारा किया.

लेखक कब बनें?

तीसरे सत्र में नवल किशोर के निबंध **'कविकर्म और जीवनकर्म'** पर बहस हुई. नवल किशोर मौजूदा हालातों में जीवनकर्म और रचनाकर्म को एकदम साथ जोड़कर देखने के विरुद्ध थे. बहस की शुरूआत में श्यामसुंदर निगम ने कहा कि रचना, रचनाकार के व्यक्तित्व और उसकी आंतरिक सक्रियता के बगैर सक्षम हो ही नहीं सकती. राजेश जोशी भी एकमत थे कि रचना और जीवन में विरोधाभासों के चलते, रचना कभी क्लासिक नहीं हो सकती. रमेश बख्शी का कहना था कि कि जब तक हम दुनिया की पूरी जद्दोजहद से नहीं गुजर लेते तब तक लेखक वगैरह होना सब फिजूल है.

आखिरी सत्र में **'कविता-साहित्य में आधुनिकता और उसकी अवधारणा'** को लेकर बातचीत हुई. चंद्रकांत देवताले ने अपने पर्चे में छद्म आधुनिकता के प्रति आगाह किया और उन संदर्भों का हवाला दिया, जिनके ज़रिये हमारे साहित्य में तथाकथित आधुनिकता का प्रवेश हुआ. अपने पर्चे में राजेश जोशी का कहना था कि आज की कविता में और उससे बाहर भी आधुनिक होने का अर्थ सामाजिक सच्चाई के निकटतर होते जाना है. बहस में शरीक रचनाकार आधुनिक संदर्भ में इन सवालों के इन विचारों पर प्रायः सहमत थे. नवल किशोर का सवाल था —समाजशास्त्रीय संदर्भों में वांछित होते हुए भी लेखन में आधुनिकता एक फोर्स के रूप में क्यों नहीं आयी? प्रत्युत्तर में चंद्रकांत देवताले ने कहा कि कहीं भी आधुनिकता से इंकार करने का मतलब एक अंधेरी गुफा में भाग जाना होगा.

बहसों में राजेंद्र अवस्थी, रमाकांत श्रीवास्तव, विलास गुप्ते, मालती परूलकर अशोक झा, नर्मदा प्रसाद त्रिपाठी, प्रमोद त्रिवेदी, दिनकर सोनवलकर, प्रहलाद अग्रवाल व कई प्रखर युवा लेखक शामिल हुए. साहित्य के सवाल आसानी से हल नहीं होते. इतने रचनाकारों का एक साथ इतने गंभीर सवालों पर सोच-विचार में मुब्तिला होना भी कम महत्वपूर्ण नहीं है. ☐

● **संजीव क्षितिज**

● प्रश्नों के समुद्र में विचार-विमर्श

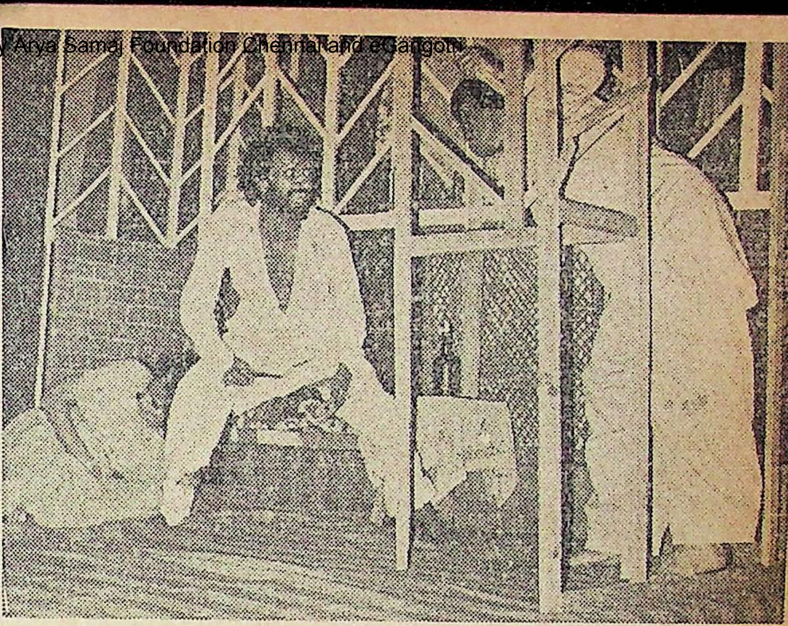

कानपुर में 'श्रृंगार संध्या' के सहयोग से 'संध्या' द्वारा खेले गये विजय तेंदुलकर के नाटक 'बेबी' का एक दृश्य--बायें से (रश्मि अरोड़ा) राघव (एस. एम. अतीक) और शिवाप्पा (ज़फर इकबाल)

प्रेमचंद तो सबके थे, जनाब!

'राष्ट्रीय प्रगतिशील लेखक महासंघ' की सागर (म. प्र.) शाखा द्वारा 'प्रेमचंद : साहित्य और विचारधारा' विषय पर एक दो दिवसीय सम्मेलन किया गया.

"प्रेमचंद ने प्रकृतवाद के बजाय आलोचनात्मक यथार्थवाद को अपनी कृतियों का विषय बनाया" डा. नंदकिशोर नवल ने उद्घाटन भाषण में कहा.

अध्यक्ष श्री ज्वाला प्रसाद ज्योतिषि ने प्रेमचंद को श्रेष्ठ लेखक के अतिरिक्त महान स्वतंत्रता सेनानी भी बताया. विशेष वक्तव्य में श्री धनंजय वर्मा ने कहा, "जिनकी आवाज कोई नहीं सुनता, प्रेमचंद उनकी आवाज है." केवल गोस्वामी का कहना था, "प्रेमचंद पहले लेखक थे जिन्होंने समृद्ध लोक साहित्य परंपरा में समकालीन समस्याओं को उसके माध्यम से व्यक्त किया!" श्याम कश्यप का विचार था, "प्रेमचंद का यथार्थवाद, पूंजीवादी आलोचनात्मक यथार्थवाद की सीमाओं को तोड़कर यथार्थवाद के उस आयाम पर पहुंच जाता है, जहां से समाजवादी यथार्थवाद की यात्रा शुरू होती है.

प्रथम सत्र का विषय था--'प्रेमचंद का कथा साहित्य : परंपरा और प्रगति'. श्रीमती दिवाकर ने प्रेमचंद के उपन्यासों से अनेक उद्धरण देकर उनके मानवीय पक्ष को उजागर किया. परिचर्चा का आरंभ करते हुए श्याम कश्यप ने रचनाओं तथा लेखक के विश्वदृष्टिकोण और कलाकृति के संबंधों पर प्रकाश डाला. **प्रवीण अटलूरी, बलभद्र तिवारी, वीरेंद्र मोहन** तथा **कपिल तिवारी** ने प्रेमचंद की कृतियों पर प्रकाश डालते हुए कहा, "महान कला वही है जो देर तक पाठक को झकझोरती रहे तथा सामाजिक परिवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करे और प्रेमचंद का साहित्य इस कसौटी पर खरा उतरता है." केवल गोस्वामी (अध्यक्ष) ने कहा, "प्रेमचंद की विषय वस्तु विविध और विस्तृत है! उन्होंने अपने समय के लगभग सभी आर्थिक, सामाजिक, राजनितिक और नैतिक प्रश्नों को अपने अमर पात्रों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है! दूसरे अध्यक्ष डा. प्रतापचंद्र ने कहा, "रोग और निदान दोनों ही प्रतिवद्ध लेखक में मौजूद रहते हैं." गोष्ठी का संचालन श्री धनंजय वर्मा ने किया.

बायें से : डा. प्रतापचंद्र, कपिल तिवारी

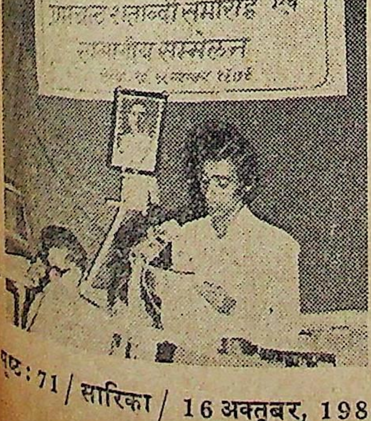

क्या प्रेमचंद का पतन हुआ ?

"प्रेमचंद की विचारधारा और आस्था की खोज' दूसरी गोष्ठी का विषय था.

महेंद्र फुसकेने, प्रमोद पांडेय, राजेश्वर सक्सेना ने प्रेमचंद को भारतीय नवजागरण का महत्वपूर्ण कार्यकर्त्ता माना. डा. विजय बहादुर सिंह ने कहा, 'विचारधारा उतनी महत्वपूर्ण नहीं है, जितनी कि रचना. प्रेमचंद का निरंतर ह्रास होता गया और 'पूस की रात', 'कफन' और 'गोदान' जिन्हें प्रेमचंद की श्रेष्ठ कृतियां सिद्ध करने की कोशिश की जा रही है. दरअसल, यह घोर निराशावादी और बुढ़ापे के कारण अंधकारमय दिमाग की उपज हैं." सर्वश्री केवल गोस्वामी, देवीशरण, विनोद कुमार, चंद्रभूषण ने श्री सिंह की टिप्पणी का विश्लेषण करते हुए, इसे न केवल प्रेमचंद के विरुद्ध एक कुत्सित प्रचार मात्र माना अपितु प्ररिवर्तनकारी साहित्य के विरुद्ध एक षड्यंत्र माना. डा. कमला प्रसाद ने संपूर्ण विषय को समेटते हुए कहा, "प्रेमचंद को जबरन किसी खेमे में ढकेलने या स्थापित-विस्थापित करने से पूर्व उनकी रचनाओं को गंभीरतापूर्वक पढ़ना और उस आधार पर निष्पक्ष विचार व्यक्त करना ही श्रेयस्कर है. दयानारायण निगम को 6 जुलाई, 1918 को लिखे पत्र में उन्होंने लिखा था-"मैं अब बोल्शेविक उसूलों का कायल हो गया हूं. आपका क्या ख्याल है?" इन पत्रों, टिप्पणियों तथा प्रेमचंद के साहित्य की ओर से यदि कोई आंख मूंद ले तो उसके साथ किस भाषा में संवाद संभव हो सकता है?"

अंत में जबलपुर की नाट्य संस्था 'विवेचना' द्वारा प्रसिद्ध व्यंग्य नाटक 'दरिंदे' (हमीदुल्ला) प्रदर्शित किया गया. ☐

● दिमल शर्मा.

अगला अंक

आइए सारिका के साथ दीवाली मनाइए

इस बार भी दीवाली में हमेशा की तरह हम मिठाई खायेंगे, पटाखे छुटायेंगे, बम फोड़ेंगे, फुलझड़ियां उड़ायेंगे, अनार बिखरायेंगे, बर्तन खरीदेंगे, कपड़े सिलवायेंगे, जुआ खेलेंगे, पूजन करेंगे! . . . हम करें, कुछ भी करें, मगर जरूरी है कि हालात को देखते हुए पहले एक सवाल खुद से ही करें——

छाया : ज्ञान दीक्षित

क्या यह सच है कि पहले हम त्यौहार मनाते थे परंतु अब सिर्फ निभाते हैं?

त्योहार की उन मौजिया बातों और अब आकर खर्च के नाम पर लक्ष्मी की घातों के मीजान में वक्त की सही पहचान का दिलचस्प जायजा देने वाला '**सारिका**' का

दीपावली विशेषांक

जिसमें देश भर के प्रख्यात कथा-लेखकों की रचनाएं एक साथ आपको पढ़ने को मिलेंगी——

- **"जब तक चीनी पांच रुपये किलो मिली, वह लश्टम-पश्टम सपने देखता रहा. फिर चीनी साढ़े पांच रुपये किलो हुई. सात रुपये किलो हुई. पंद्रह रुपये किलो हो गयी . . . नींद उड़ गयी और जब नींद ही उड़ गयी तो कोई सपना क्या देखे, ठेंगा!"** मिठाई के जगमगाते त्योहार पर जिंदगी की हकीकतों से साक्षात्कार करवाती——**राही मासूम रज़ा** की कहानी——**सपनों की रोटी.**
- **ऊं श्रीं ह्लीं** अर्थात् तंत्र मंत्र का अंदरूनी किस्सा : राकेश वत्स **ले चल रहे हैं उन अघोरियों और तंत्र साधकों की रहस्यमय दुनिया की तरफ जो दीवाली की रात सिद्धि की होड़ में लगी हुई** होती है.
- **काकभुशुंडि गरुड़ से बोले . . .** लेकिन तब बोले जब उनसे गरुड़ ने पूछा कि प्रभु, गैलीलियो को अपना कथन वापस क्यों लेना पड़ा, और सुकरात को विषपान क्यों करना पड़ा था? उत्तर में काकभुशुंडि ने सुनाया : **तम तोम का नारा उर्फ भीड़ का सत्य——काकभुशुंडि-गरुड़ संवाद** का एक अधुनातन अध्याय जिसे प्रस्तुत कर रहे हैं—**उमाकांत मालवीय**
- दीवाली की इन शुभकामनाओं के साथ कि . . . भगवान किसी को बेरोजगारी न दिखाये और **रवींद्रनाथ त्यागी** जैसे किसी तानेबाज को कहीं भरती के सिलसिले में इंटरव्यू लेने न भेजे!—प्रस्तुत है उनकी ताजा व्यंग्य रचना—**भरती : मेरा पहला अनुभव**
- व्यंग्यकारों की निगाह से न विष्णु बचते हैं न लक्ष्मी. खासतौर से तब जब 'कुर्सी' का चक्कर हो क्योंकि "कुर्सी कभी सुहागिन नहीं बन पाती. वेश्या की तरह उसे थोड़ी-थोड़ी देर में नये-नये चेहरों के सम्मुख समर्पित होना पड़ता है!" . . . विष्णु और लक्ष्मी को नये अर्थों में रूपायित करती **विनोद शंकर शुक्ल** की व्यंग्य कथा—**कुर्सी महाठगिनी हम जानी . . .**

धारावाही आकर्षण

शिवलाल को मलाई से वहुत इश्क था. वह शाम को खाना खाने के वाद सड़क तक आता और दो सौ ग्राम मलाई के ऊपर सौ ग्राम चीनी मिलाकर अम्मा के पास बैठकर ही मलाई खाता. अम्मा के बंधे-बंधाये ग्राहक थे. एक मरता तो दो पैदा हो जाते! **अजीबो-गरीब चरित्रों की सलामती का दस्तावेज--रवींद्र कालिया का नया उपन्यास 'खुदा सही सलामत है!' जिसकी हुस्नाबाई से आप १६ अगस्त, ८० के अंक में मिल चुके हैं. अब मिलिए--शिवलाल से.**

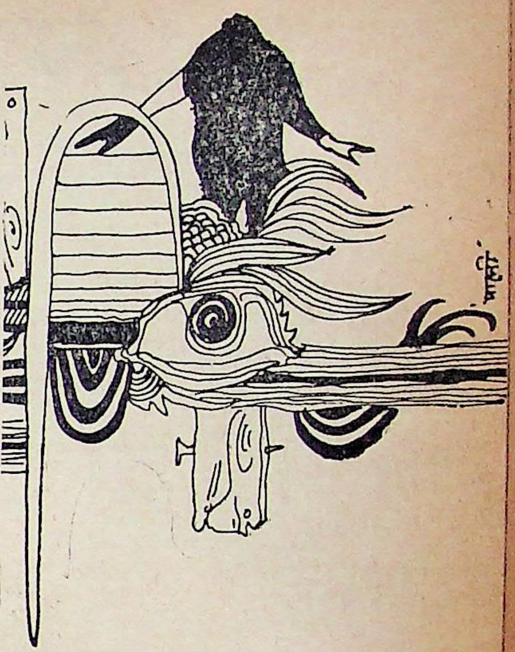

रिका की कथा-प्रतियोगिता में नंदिनी' को तृतीय पुरस्कार मिला था. ी युवा रचनाकार **प्रियंवद** की ताजा ना--**"मेरा नौकर कहता है, जो ों का खून पीता है, उसके होंठ कुल लाल हो जाते हैं, तुम्हारी !"** यम और यमी की रोमांचक कहानी की आधुनिक गाथा--**ों के नीले फूल!'**

ुलो सोचती :

क्या धान इसीलिए कटते हैं?

क्या सरसों इसीलिए फूलती है?

क्या मर्दों के पास कोई नदी नहीं होती?

सोचती लेकिन सोचा हुआ हमेशा कहां पाता है?" अंधेरे में ठहरे नारी की अंतर्व्यथा--**अक्षय उपाध्याय** कहानी--**सुलो और उसकी नदी**

तने भी भूखे और अतृप्त ब्राह्मण ते हैं, सब पिशाच बनते हैं!"... अतृप्त क्यों रहने लगी. मरने से पहले तुम्हें ब्राह्मणी रहने ही नहीं दूंगा!" ... "क्या करोगे?" ... "देवी बना दूंगा"--गांव के भोले-भाले नाजुक एहसासों से लबरेज प्रेम और सामाजिक आतंक की कहानी--**फांसी--मधुकर गंगाधर की कलम से.**

किस्सा कोताह...
तो यह है गॉडफादर!

वह राम बनना चाहता था लेकिन 'रक्ष संस्कृति' का सबसे बड़ा पंडित बनकर रह गया. आखिर क्या कारण था कि पूजो ने गॉडफादर के रूप में एक नये रक्ष-संसार की सृष्टि की? चाहे पौराणिक पातालपुरी का अहिरावण हो या आधुनिक पातालपुरी कहे जाने वाले अमरीका का रावणी संस्करण गॉडफादर, दोनों में फर्क क्या है? आइए, देखें, द्रोणवीर कोहली की जानकारी का लाभ उठाते हुए कि... गॉडफादर के अंदर है क्या?

कुरु कुरु स्वाहा उर्फ पूजा और पलीता

ु कुरु स्वाहा' लिखा **मनोहर श्याम जोशी** ने, और पढ़ा **अजितकुमार** ने और मन में सवाल उठे तो उन्होंने पटक दिये जोशीजी के सामने, हरे और दिलचस्प सवाल, लेकिन उतने ही गहरे और दिलचस्प ाव दिये जोशीजी ने. साथ में **नेत्रसिंह रावत** की समीक्षा और न्यास पर **व्यंग्यकार किट्टू** का चुलबुला और ठेठ खत!

- **अनजानी इतिहास कथाएं**

अवध के चमन का दीदावर

'अवध के चमन का दीदावर' मौलवी अहमद सलीम, जो ब्रितानी खौफ के मातमी अंधेरों के बीच अपनी बहादुरी और हिम्मत के सहारे नयी रोशनी का मसीहा बन गया--**एक खौफनाक तवारीखी हादसे की कहानी--बाला दुबे की जबानी.**

सारिका

घर-परिवार और पुस्तकालय की पहली जरूरत

नवंबर--80

अंक--एक

सैंकड़ों पत्रिकाओं में बेहतर, बेजोड़, सुरुचिपूर्ण, ज्ञानवर्धक, रोचक और मनोरंजक

केवल दो रूपये में एक किताब, जिसे आप कभी भी पढ़ सकते हैं

अपने एजेंट को आज ही याद करवाना न भूलें

अपने स्टेशन को साफ-सुथरा रखें

इस बात से कोई इनकार नहीं कर सकता कि साफ-सुथरा वातावरण व्यक्ति के चरित्र की अभिव्यक्ति करता है और हमारी प्रवृति को बनाता है. ऐसे वातावरण से आनंद-ही-आनंद मिलता है.

हम अपने घरों को खुला और हवादार रखते हैं. तब इस बात को सार्वजनिक स्थानों के लिए क्यों न लागू किया जाए ?

रेलवे प्लेटफार्मों, प्रतीक्षालयों, सवारी डिब्बों और वास्तव में किसी भी स्थान, जहां लोग अधिकांशतया इकट्ठे होते हैं, यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है, कि इनके आस-पास के वातावरण को साफ-सुथरा रखा जाए.

हमने रेलों पर स्वच्छता अभियान चलाया है, जिसके बहुत ही अच्छे परिणाम निकले हैं. रेलें अब अधिक आकर्षक लगने लगी हैं. फिर भी, इस दिशा में और अधिक सुधार किए जाने की गुंजाइश है. हम इसमें सुधार लाने के लिए भरपूर प्रयास करते रहेंगे.

आप भी रेलवे की सहायता कर सकते हैं. इस बात को ध्यान में रखते हुए कि आपके आस-पास के क्षेत्र में कोई गंदगी नहीं है, आप स्टेशन और निकटवर्ती स्थान को साफ-सुथरा रखें. इस प्रयोजन के लिए रेलवे के सफाई कर्मचारियों की सेवाएं प्राप्त की जा सकती हैं. वे आपकी सेवा के लिए हमेशा तैयार रहेंगे.

आपको सिवाय कूड़ादान के, कूड़ा आदि इधर-उधर नहीं फेंकना चाहिए. आप की ओर से दिए गए थोड़े-से सहयोग से भी हम आप को बेहतर सेवा प्रदान कर सकते हैं.

रेलवे आप ही की सम्पत्ति है

इसे साफ रखिए

उत्तर रेलवे

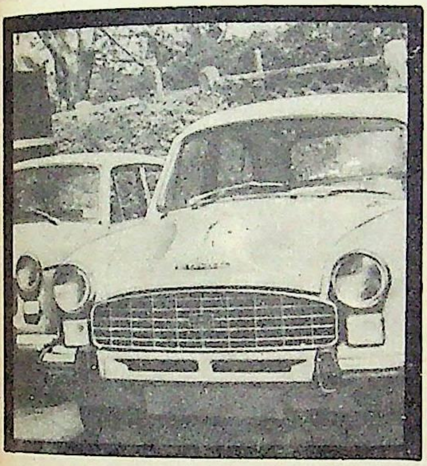

आप और कौन-कौन से खर्चों के लिए योजना बना रहे हैं?

केनरा बैंक आपकी योजनाएँ सफल बनाता है.

भविष्य के लिए योजनाएँ बनाकर और बचत कर आप जो चाहें खरीद सकते हैं. केनरा बैंक की **कामधेनु जमा योजना** की मदद से आप भविष्य के खर्चों की योजना बना सकते हैं.

आप कार, स्कूटर या अपना घर लेना चाहते हैं ?
बच्चों की शिक्षा या उनके विवाह के लिए चिन्तित हैं ?
तो **कामधेनु योजना** आपके काम आयेगी... आपका धन बढ़ाकर ज्यादा रकम दिलायेगी.

इसमें आपको अपनी ज़रूरत की रकम का छोटा-सा हिस्सा ही जमा करना होगा. बस **कामधेनु** में जमा की जानेवाली रकम और अवधि का फैसला आपको करना है. आपको ब्याज पर ब्याज मिलेगा... हर महीने अच्छी कमाई होगी और रकम दूनी से भी ज्यादा हो जायेगी.

अधिक जानकारी के लिए केनरा बैंक की नज़दीकी शाखा में आइए. हमारी अन्य विशेष जमा योजनाएँ हैं :
विद्यानिधि, निरंतर और बालक्षेम

कामधेनु जमा योजना

केनरा बैंक
(एक राष्ट्रीयकृत बैंक)
देश भर में १२०० से भी अधिक शाखाएँ

maa CB 5 Hin B 80

कोलमैन ऐंड कंपनी लिमिटेड, स्वत्वाधिकारी के लिए रमेशचन्द्र द्वारा नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, 10 दरियागंज, नयी दिल्ली-110002 से मुद्रित व प्रकाशित. जनरल मैनेजर : राम तरनेजा. पंजीकृत कार्यालय : डा. दादाभाई नौरोजी रोड, बंबई-400001. शाखाएँ : 7, बहादुरशाह जफर मार्ग, नयी दिल्ली-110002; 139, आश्रम रोड, दाबाद-380009; 105/7ए, एस. एन. बनर्जी रोड, कलकत्ता-700014. कार्यालय : 13/1, गवर्नमेंट प्लेस ईस्ट, कलकत्ता-700069; 63, मोंटियथ रोड, इग्मोर, 600008; 407-1, तीरथ भवन, क्वार्टर गेट, पुणे-411002; 26, स्टेशन एप्रोच, सडबरी, वेंबले, मिडिलसेक्स, लंदन, यू. के., लंदन टेलीफोन : 01-903-9696.

पंजीयत सं-D-(C)-779
पूर्व शुल्क के बिना डाक में डालने
की अनुमति-लाइसेंस सं. U-89

सही रंग-छटा पाना है जितनी बड़ी बात, सही रंग-योजना बनाना उतनी ही बड़ी बात.

आइए, नेरोलॅक पेण्ट्स से रंगों की अदा जानिए.

रंगों की असीम शक्ति होती है. अगर आप उनका मूलभूत स्वभाव समझ लें, उनका मनोवैज्ञानिक प्रभाव जान लें और उनका आपसी संबंध पहचान लें, तो आप अपने घर के लिए एक प्रभावशाली रंग-योजना बना सकेंगे.

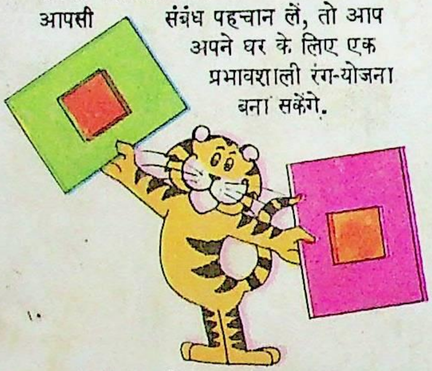

रंगों के बारे में कुछ जरूरी बातें :

1. कुछ रंग गर्म होते हैं (जैसे लाल, पीला, नारंगी) तो कुछ ठंडे (जैसे नीला, हरा, बैंगनी).

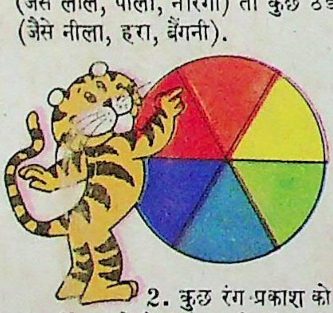

2. कुछ रंग प्रकाश को परावर्तित करते हैं (सफेद और पेस्टल) तो कुछ अपना लेते हैं (गहरे रंग).

3. जैसी रोशनी वैसे रंग ! बड़ी रोशनीदार जगहों में गहरे रंग ज्यादा चमकते हैं जब कि पेस्टल रंग कृत्रिम रोशनी में फीके लगते हैं.

4. हल्के रंगों से कमरे बड़े लगते हैं और गहरे रंगों से छोटे.

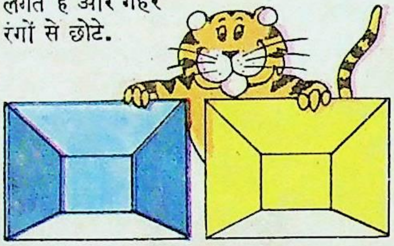

रंगों का मजा लीजिए ! अनगिनत चुनाव ! यह होगा आपका बनाया, आपका मनपसंद प्रभाव. बस इतना याद रखिए कि रंगों का ताल-मेल केवल दीवारों, लकड़ी व धातु की सतहों तक ही सीमित नहीं. रंगों के प्रभाव में फ़र्निशिंग का भी हाथ रहता है.

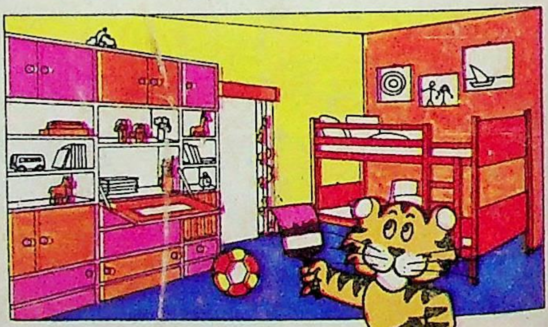

हमारी **नेरोलॅक पेण्ट्स** पुस्तिका **'सही पेण्ट कैसे चुनें और करें'** की मुफ्त प्रति के लिए लिखिए. इसमें दिखाया गया है कि रंगों के चुनाव से कमरे को सही निखार कैसे मिलता है. नीचे दिए कूपन को भरकर फौरन डाक से भेज दीजिए.

ULKA-GNP-168 HIN

कृपया मुझे नेरोलॅक पेण्ट्स पुस्तिका 'सही पेण्ट कैसे चुनें और करें' की एक हिंदी प्रति भेज दीजिए.

नाम ---

पता ---

------------------------------------ पिन कोड --------

गुडलॅस नेरोलॅक पेण्ट्स लिमिटेड
बिक्री विभाग, पी. ओ. बॉक्स नं. 16322, बम्बई-400 013.

168 (P)

NEROLAC
SOLDIER
NEROLAC

नेरोलॅक पेण्ट्स

नेरोलॅक लगाइए ! रंग में आइए !!

पावली विशेषांक

११:८०; ३११.८५८

-(C)-779
बिना डाक में डालने
ाइसेंस सं. U-89

भारत के सांस्कृतिक केंद्र

संपादक

कृष्णदत्त वाजपेयी

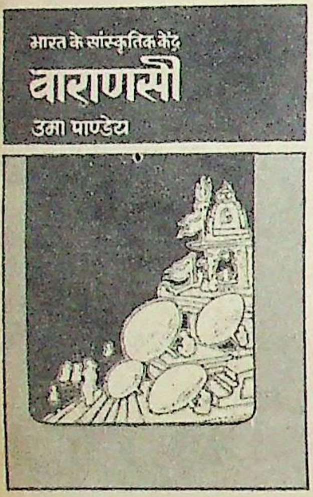
भारत के सांस्कृतिक केंद्र
वाराणसी
उमा पाण्डेय

मूल्य : 38.00

भारत के सांस्कृतिक केंद्र
अजंता
अजयमित्र शास्त्री

मूल्य : 50.00

भारतीय संस्कृति सामंती संस्कृति का पर्याय नहीं है न इसके विकास का पूर्ण श्रेय किसी एक काल और स्थान को दिया जा सकता है. यह एक विकासशील परंपरा का अंग रही है, जिसका आंतरिक चरित्र समाहार-मूलक है. विभिन्न कालों तथा स्थानों में इसका विकास हुआ है. इसके विकास में विभिन्न केंद्रों के आर्थिक राजनीतिक उत्थान-पतन की महत्वपूर्ण भूमिका रही है. इन केंद्रों के सांस्कृतिक इतिहास को जानने के बाद भारतीय संस्कृति के विकास को समझने में काफी मदद मिलती है.

भारत के प्राचीन सांस्कृतिक केंद्रों पर इस पुस्तकमाला को प्रकाशित करने का उद्देश्य यह है कि इसके द्वारा विश्वविद्यालयों के छात्रों तथा अन्य ज्ञानपिपासु जनों को भारतीय इतिहास तथा संस्कृति की सम्यक जानकारी हो सके और वे उन कारणों को समझ सकें जिन्होंने समय-समय पर भारतीय इतिहास को प्रभावित किया है. इन पुस्तकों को जटिल या अति विस्तृत बनाने का प्रयत्न नहीं किया गया है. पादटिप्पणियों के रूप में संदर्भ एवं संकेत इसलिए दिए गए हैं कि संबद्ध विषयों में विशेष अन्वेषण करने वाले पाठकों को उनसे सहायता मिल सके. पुरातत्व, साहित्य एवं अनुश्रुति विषयक सामग्री का यथोचित उपयोग करने का प्रयत्न किया गया है. ऐतिहासिक विवरण क्रमबद्ध रूप से दिए गए है.

इस प्रकार प्रस्तुत पुस्तकों में अजंता, खजुराहो, वाराणसी और मथुरा के सांस्कृतिक केंद्रों के रूप में विकसित होने की रूपरेखा प्रस्तुत की गई है.

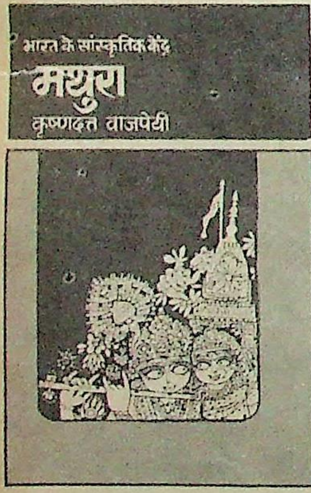
भारत के सांस्कृतिक केंद्र
मथुरा
कृष्णदत्त वाजपेयी

मूल्य : 40.00

भारत के सांस्कृतिक केंद्र
खजुराहो
कन्हैयालाल अग्रवाल

मूल्य : 50.00

M

दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटेड

4 कम्युनिटी सेंटर, नारायणा इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-I
नई दिल्ली-110 028

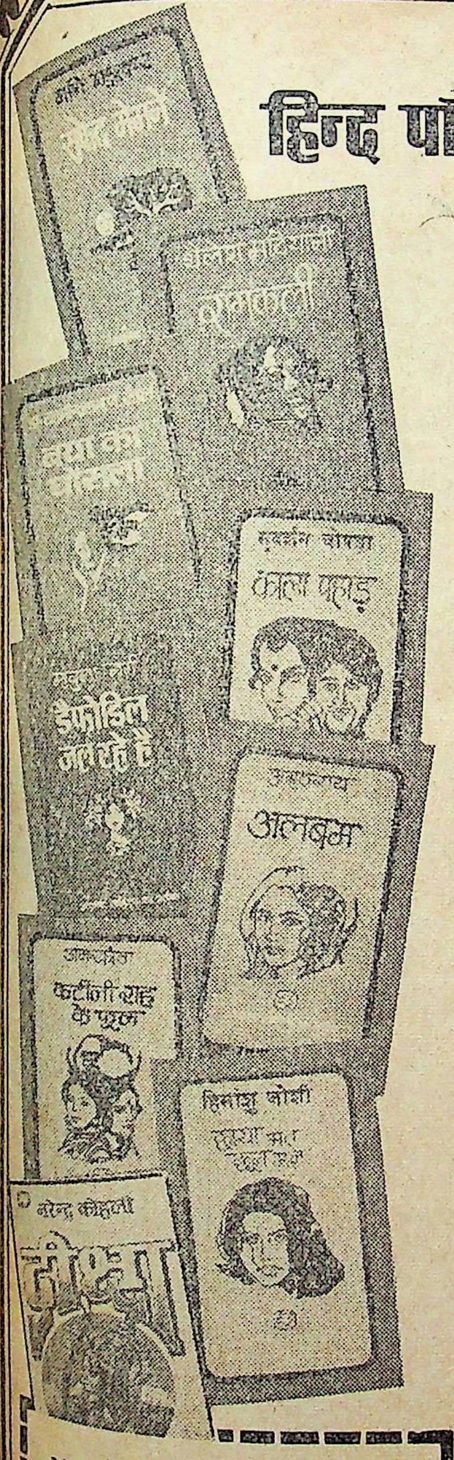

अपनी गौरवशाली परम्परा में
हिन्द पॉकेट बुक्स का एक और कदम
हिन्दी के उत्कृष्ट साहित्य का प्रकाशन

अब आपके लिए उपलब्ध हैं हिन्दी के वे
श्रेष्ठ उपन्यास जिन्हें आप अवश्य पढ़ना चाहेंगें

महासागर : हिमांशु जोशी ४.००
कटीली राह के फूल : अमरकात ४.००
मेरा अपना संसार : नरेन्द्र कोहली ३.००
पिता दर पिता : रमेश बक्षी ३.००
वापसी : बदीउज्जमा ४.००
अलबम : अमृत राय ४.००
यह भी नहीं : महीप सिंह ४.००
सफेद मेमने : मणि मधुकर ४.००
रामकली : शैलेश मटियानी ४.००
बेघर : ममता कालिया ४.००
दीक्षा : नरेन्द्र कोहली ४.००
अवसर : नरेन्द्र कोहली ४.००
निशांत : विजय तेंदुलकर ४.००
उसके हिस्से की धूप : मृदुला गर्ग ४.००
डेफोडिल जल रहे हैं : मृदुला गर्ग ५.००
एक खाली जगह : अमृता प्रीतम ३.००
काला पहाड : सुदर्शन चोपड़ा ३.००
परिन्दे : निर्मल वर्मा ३.००
छाया मत छूना मन : हिमांशु जोशी ३.००
बया का घोंसला : लक्ष्मी नारायण लाल ४.००
सोमा : सत्यकाम विद्यालंकार ४.००

20 रुपये की पुस्तकों पर पोस्ट फ्री
मगाएं

हिन्द पॉकेट बुक्स
जी०टी० रोड, शाहदरा, दिल्ली-११००३२.

देखिए...
सर्वोत्तम सफ़ेदी के लिए रानीपाल®

Ranipal®
whitener for cottons
Ranipal®-S
whitener for synthetics and blends

वस्त्रों को आखरी बार खंगालने से पहले पानी में थोड़ा सा रानीपाल मिलाइए और फिर देखिए...वस्त्रों पर चमकती सफ़ेदी! रानीपाल की सफ़ेदी! सफ़ेद वस्त्र कैसे भी हों—सूती, सिन्थेटिक और ब्लैंडिड— रानीपाल से चमक उठते हैं.

नियमित रानीपाल लगाइए... और सफ़ेदी देखिए, दिखाइए!

सूती वस्त्रों के लिए **रानीपाल**®
सिन्थेटिक और ब्लैंडिड वस्त्रों के लिए **रानीपाल**®**-एस**

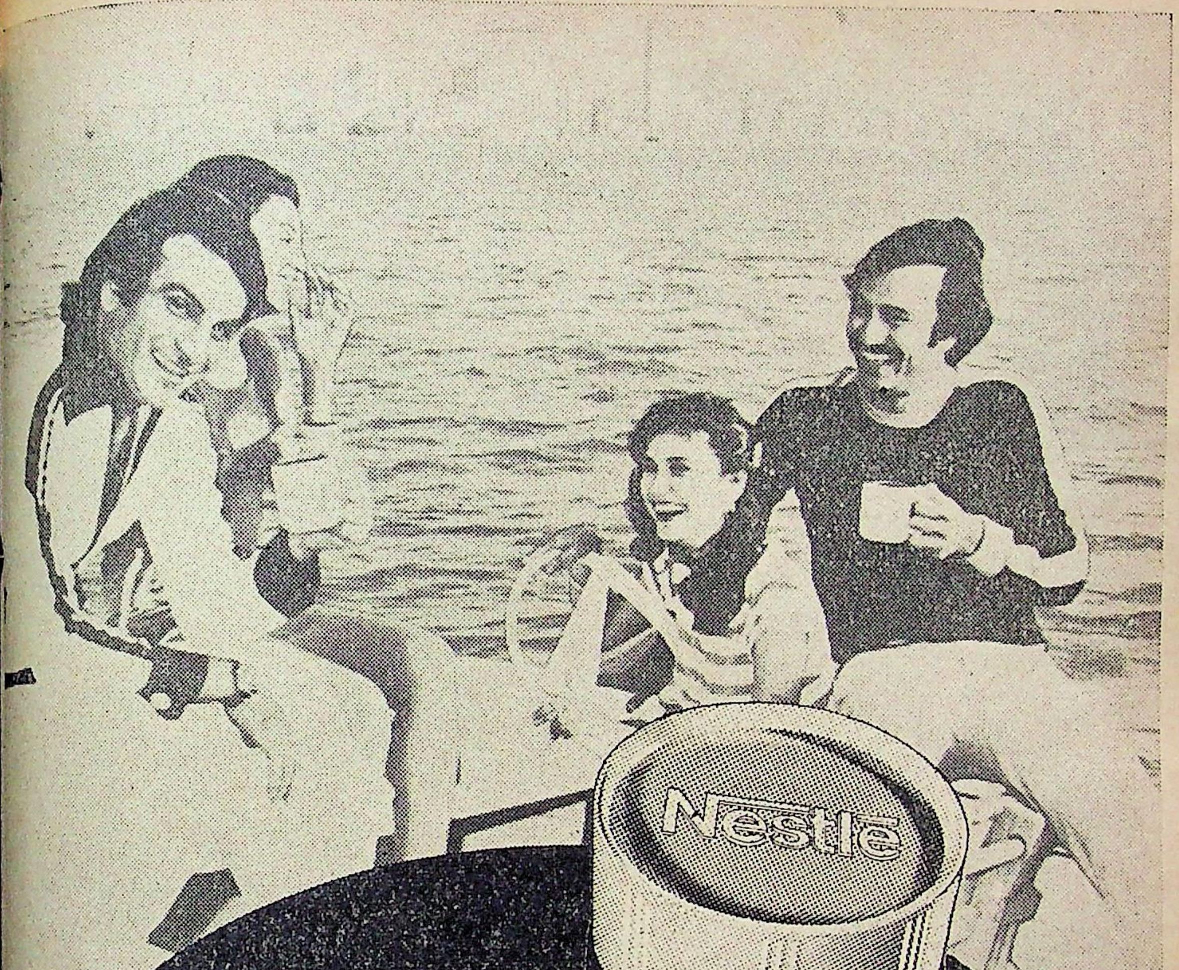
उत्साह भरे जीवन
के लिये
नेस्कैफे®
Nestle
NESCAFE
instant coffee
दुनिया भर में सबसे
ज़्यादा बिकने वाली
इन्स्टैन्ट कॉफी
एकमात्र इन्स्टैन्ट कॉफी
जो १०० % शुद्ध कॉफी से बनी है
CAS-FSL-291 HIN

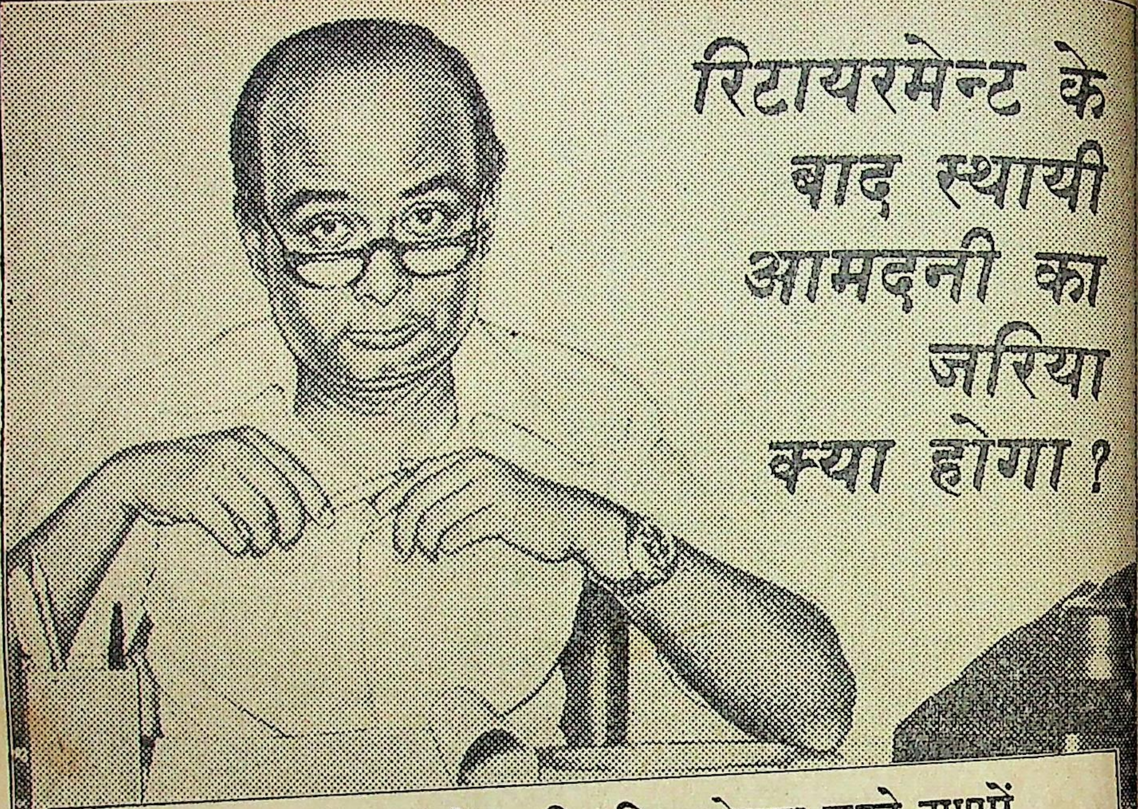

इलाहाबाद बैंक की पेंशन डिपाजिट योजना अपने आपमें इन समस्याओं का सरल और स्थायी समाधान है।

नियमित आमदनी के दृष्टिकोण से यह पेंशन डिपाजिट योजना आपके रिटायरमेन्ट के बाद वाले जीवन के लिए एक सुनिश्चित भरोसा है। इसके लिये आपको १० रुपये अथवा इसके गुणितों में सिर्फ ६३ से लेकर १२० माह तक योजना की अवधि के अनुसार पैसे जमा करने हैं। आपकी जमा की पूरी रकम ब्याज सहित ज्यों की त्यों तो रहेगी ही, इसका एक महत्वपूर्ण फायदा यह होगा कि आप प्रति माह अथवा हर तीसरे माह अपनी इच्छानुसार जबतक चाहें एक नियमित रकम ले सकते हैं। आप शीघ्र ही जमा की अवधि चुन लेवें ताकि रिटायरमेन्ट तक वह पूरी हो सके।

उदाहरणस्वरूप निम्न तालिका देखें।

जमा की अवधि (महीना)	मासिक जमा	मासिक आय	त्रैमासिक आय	खाते के समापन पर प्रतिदेय एक मुश्त राशि (बैंक के नियमों के अनुसार)
६३	रु. १००/-	रु. ६८.५० (६५वें माह से)	रु. २०७.५० (६७वें माह से)	रु. ८,२६१/-
८४	रु. १००/-	रु. १००.०० (८६वें माह से)	रु. ३०४.०० (८८वें माह से)	रु. १२,१५७/-

इस योजना के अन्तर्गत आप अपने प्रियजन के साथ भी खाते खोल सकते हैं।

विस्तृत जानकारी के लिये हमारी किसी भी निकटतम शाखा में पधारें।

इलाहाबाद बैंक
आपका अपना बैंक
(भारत सरकार का एक प्रतिष्ठान)

ULKA-AB-6 HIN

सारिका

दीपावली विशेषांक

कहानियों और कथा-जगत की जीवंत पाक्षिकी

वर्ष : 20; अंक : 272; 1 से 15 नवंबर, 1980

कहानियां

12. कमलिनी (मराठी) : बालकृष्ण वी. प्रभुदेसाई
20. सपनों की रोटी : राही मासूम रजा
27. ॐ श्री हीं : राकेश वत्स
30. भरती : मेरा पहला अनुभव : रवींद्रनाथ त्यागी
36. तम तोम का नारा उर्फ भीड़ का सत्य : उमाकांत मालवीय
47. होंठों के नीले फूल : प्रियंवद
50. सुलो और उसकी नदी : अक्षय उपाध्याय
56. फांसी : मधुकर गंगाधर
62. कुर्सी महाठगिनी हम जानी : विनोद शंकर शुक्ल
64. आटा : हरभगवान चावला

विशेष आकर्षण

23. खुदा सही सलामत है (धारावाही उपन्यास) : रवींद्र कालिया
34. अवध के चमन का दीदावर (अनजानी इतिहास कथाएं) : बाला दुबे
41. कुरु-कुरु स्वाहा उर्फ पूजा और पलीता : अजित कुमार
52. किस्सा कोताह . . . तो यह है—गॉडफादर : द्रोणवीर कोहली

अन्य आकर्षण

8. पाठकों का पन्ना
11. जरिया-नज़रिया
38. तस्वीर बोलती है
55. आपबीती
66. पखवारे की पुस्तकें
68. पढ़ते-पढ़ते

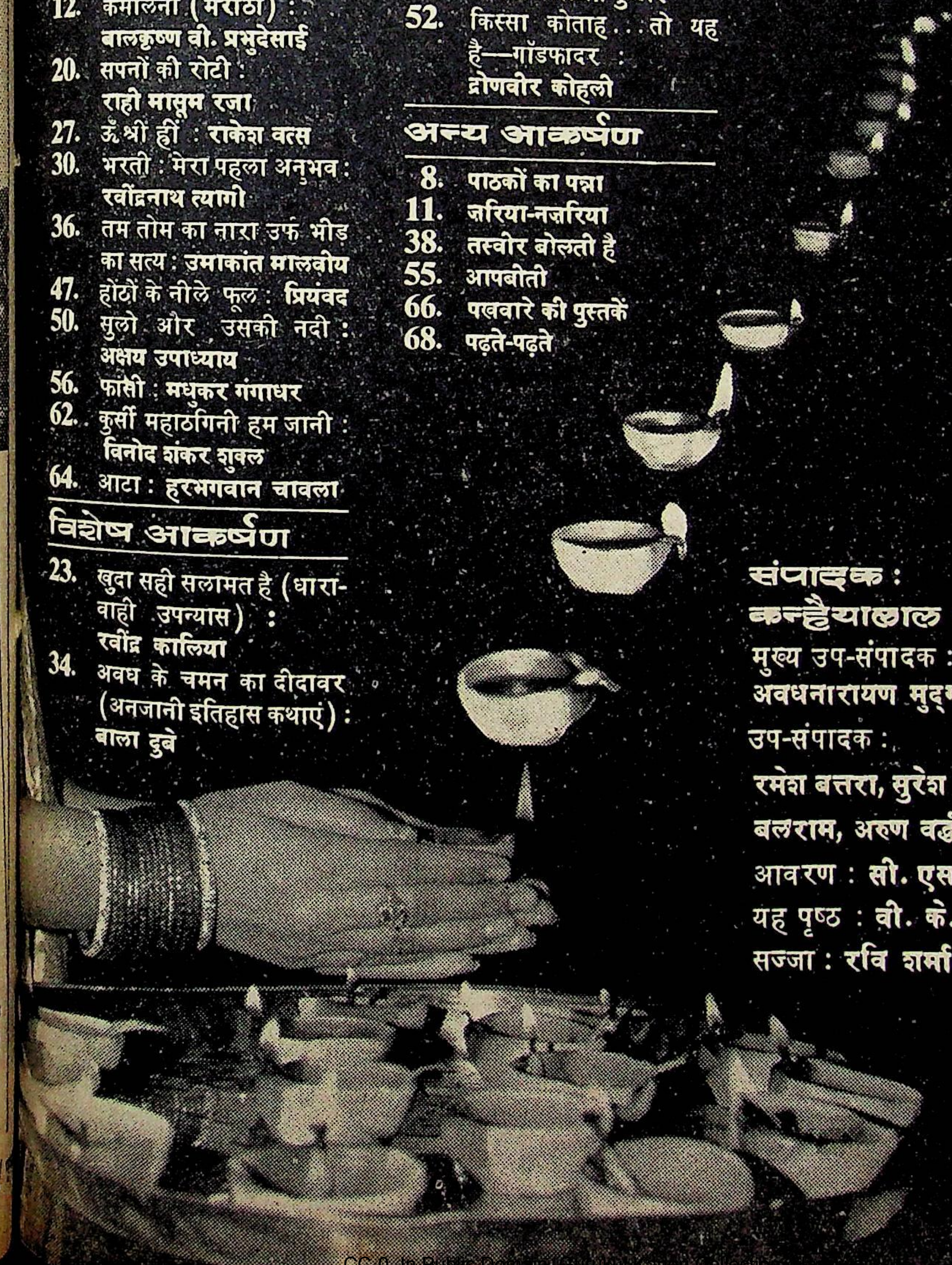

संपादक :
कन्हैयालाल नंदन
मुख्य उप-संपादक :
अवधनारायण मुद्गल
उप-संपादक :
रमेश बत्तरा, सुरेश उनियाल,
बलराम, अरुण वर्द्धन
आवरण : सी. एस. सावंत
यह पृष्ठ : वी. के. जैन
सज्जा : रवि शर्मा

पाठकों का पन्ना

जनाब फिराक साहब को एक शिकायती सलाम

सारिका के 268 वें अंक में जनाब फिराक साहब के हिंदी के प्रति उद्‌गार पढ़े. फिर अंक 270 में श्री के. पी. सक्सेना का इन उद्‌गारों के प्रति आक्रोश पढ़ा, मजा आया. वैसे श्री सक्सेना की दुआ कि दूसरा फिराक कभी भी पैदा न हो, पर तो मैं भी तथास्तु कह सकता हूं. ये सच है कि दूसरा फिराक पैदा नहीं होगा. मेरे पिता जी भी आदत से ऐसे ही थे—आधे मिर्ची, आधे नीम. चिड़ियों को, कुत्तों को, मक्खी-मच्छरों तक को गालियां बका करते थे. क्या किया जाये, आदमी आदत से लाचार है. चमार, मोची, माली जैसे स्तर के सभी लोग बहुत गालियां बकते हैं. इनके आसपास का कोई व्यक्ति यदि वैसी ही गालियां नहीं बकता तो ही आश्चर्य होता. हिंदी को हो या हिंदी वालों को, ये बाबाई गालियां दुआ ही हैं.

मुझे तो अब फिराक साहब पर केवल दया आती है. एक ममता-सी उमड़ती है. कितना तोड़ दिया है रोग और बुढ़ापे ने! अभी पिछले दिनों श्री बच्चनजी से मिलना हुआ था. आंखों में कैटरैक्ट बढ़ रहा है. तब भी मन में वैसी ही ममता की हिलोर उठी थी. पिताजी के प्रति भी यही ममता भाव रहा अंत तक. लगता है, जैसे ये सब बालक हो गये हैं और हम बूढ़े. इन गालियों का उत्तर केवल स्नेहभरी मुस्कराहट ही है. ये बात स्व. पंतजी भी जानते थे. फिराक साहब की पंतजी के प्रति श्रद्धांजलि का वाक्य याद है—'मैं जिंदगी भर तुम्हें गालियां देता रहा और तुम सिर्फ मुस्कराते रहे.' एक बात सुनी थी, कभी किसी व्यक्ति ने नेहरूजी के पांव छुए तो उन्होंने कहा था, "आदमी होकर आदमी के पांव छूते शर्म नहीं आती?" बात अपनी जगह जवाहरी थी. उसी व्यक्ति ने जब रवींद्रनाथ टैगोर के पांव छुए तो उन्होंने आशीर्वाद दे दिया. टिप्पणी थी कि नेहरूजी आशीर्वाद देने की ऊंचाई तक शायद नहीं पहुंच पाये थे. कौन क्या दे रहा है, ये उसकी ऊंचाइयों की ही उपलब्धि है.

जब तक जनाब जिगर साहब रहे, एक मुहावरा उर्दू अदीबों में चल निकला था, "जिगर जिगर है, दिगर दिगर है." जिगर साहब अंग्रेजी नहीं जानते थे, पता नहीं इतने महान कैसे हो सके. ग़ज़ल का अर्थ यदि माशूक से गुफ्तगू ही है तो निश्चित ही जिगर और भी बड़े हैं. जिगर की शायरी प्रेम की शायरी है, प्रेम की पीड़ा की शायरी है, प्रसाद का मूल भी यही है. फिराक साहब की शायरी ज्ञान की शायरी है, तर्क और चमत्कार की शायरी है. बिहारी को पढ़ते समय भी जगह-जगह चकित रह जाना पड़ता है. कहते हैं, चमत्कार की शायरी दूसरे नंबर की होती है. ज्ञान ने हमेशा प्रेम और भक्ति को गालियां दी ही हैं. लोग बेकार बुरा मानते हैं.

फिराक साहब तुलसी और सूर को हिंदी का कवि नहीं मानते. उनके लिए अवधी और ब्रज हिंदी नहीं हैं. उनकी गालियों का लक्ष्य केवल खड़ी बोली और उससे संबंधित रचनाकार हैं, जो लगभग सारे समकालीन हैं. किसी भी समकालीन को अपने से श्रेष्ठ मानना फिराक जैसे व्यक्ति के लिए संभव नहीं हो सकता. पंत और निराला में ही सारी उम्र इसी भावना से एक मनोवैज्ञानिक तनाव रहा है. फिराक साहब का अहंकार ज्ञान का अहंकार है, कवि का नहीं.

शंकर और दयानंद जिस रसमयता से महरूम हुए थे, उससे हर ज्ञानी महरूम होगा ही. फिराक भी काफी महरूम हुए हैं. ये गालियां ही इसका प्रमाण हैं. पत्नी से सहवास जिसके लिए खुदकशी की सी भावना रही हो और इसी भावक्षण में गर्भ में आये बेटे ने आत्महत्या की हो. मुसलमान जिसे इसलिए महान नहीं मानें कि वो हिंदू शायर है और हिंदू इसलिए महान नहीं कहें कि वह उर्दू शायर है. मन के हर कोने में सुलगती ऐसी दाहक स्थितियों में जीकर कौन, कैसे और कितनी रसमयता बचा पायेगा. गनीमत है कि ऐसा व्यक्ति गालियां ही देता है.

ये सच है कि हिंदी अर्थात् खड़ी बोली के हिंदी जगत और डर्टियेस्ट ने ही फिराक साहब को पुरस्कार पुस्तकों की बिक्री से पर्याप्त धन दिया किंतु यह सब उनकी मान्यताओं को बढ़ के लिए रिश्वत तो नहीं थी. फिर को लाखों रुपये एक बोरा आलू के बरा नहीं होते. ये मान लेने में क्या हर्ज है फिराक साहब की सारी महानता अंग्रेजी देन है. श्री गंगानाथ झा के अनुसार फिराक साहब ने स्वयं भी माना है कि भा ने पिछले तीन-चार सौ वर्षों में स्वयं और संसार को कुछ नहीं दिया, उससे दिया होगा. उस समय कितनी इस देश में थी?

फल के पकने की शर्त उसका होता जाना है. अगर वह मीठा नहीं रहा है तो समझो, सड़ रहा है. अंत डर्टियेस्ट लिपि और बदबूदार जबान बात भाषाविदों के लिए छोड़कर मैं अस्तंगत भाषा और विधा के महान को अपना आदाब अर्ज करता हूं.

▣ **भारत भूषण, मेरठ**

यूं कोई बेवफा नहीं होता

सारिका (अंक-268) मेरे हाथ में आ साथ में 50 पैसे का अतिरिक्त भार ला

'कुछ तो मजबूरियां रही होंगी,
यूं कोई बेवफा नहीं होता.

इस बार, विशेषकर आपका **नज़रिया** गजब का रहा. क्या सच जानवर ही कसूरवार हैं? या इन बे जानवरों के पीछे हम अक्लमंद इंसा जानवर हैं.

▣ **शकील बलोचकी, समस्तीपुर, बिहा**

दूसरा बेकन

फिराक साहब को मैं जानता हूं. उनके व्यक्तित्व और कृतित्व को परखा है. साहित्यकार के रूप में फि 'जीनियस' हैं, किंतु व्यक्ति के रूप में निहायत घटिया किस्म के इगोइस्ट भाई के. पी. सक्सेनाजी का रोष स्वाभा है, लेकिन हम बेकन के व्यक्तिगत जीव हरकतों को देखकर यह तो नहीं कह कि 'भगवान करे कोई दूसरा बेकन न हो'. हां, हम ईश्वर से प्रार्थना कर हैं कि गंदी आदतों वाला हठी, दंभी दूसरा बेकन या फिराक न पैदा हो.

▣ **प्रहलाद राजवेदी 'राकेश,' नयी दि**

रिहास-उपहास की बू

'सारिका' के संपादक के रूप में आपने कमलेश्वरजी के अभाव की पूर्ति है, अपितु अपना मौलिक योगदान जरिया-नजरिया जैसे स्तंभ तथा नियों के चयन में विशिष्ट सूझबूझ का देकर आपने पत्रिका की गरिमा में चांद लगा दिये हैं. अंक : 269 में खां कहानी बड़ी मार्मिक है. कहीं में गहराई से स्पर्श कर जाती है. करण-बुनावट एक प्रसंग को छोड़ प्रशंसनीय है.

प्रसंग जिसमें 'साई' और 'वड़ी' जैसे शब्दों का लेखक ने प्रयोग किया है. समुदाय में 'साई' शब्द 'श्रीमान,' 'जनाब' के रूप में लिया जाता है. का अर्थ 'ईश्वर' के रूप में संत कवियों काव्य रचनाओं, भक्ति गीतों में है.

कोई शब्द ही नहीं, वस्तुतः है, जिसका अर्थ है 'फिर' या 'तक'. कार इसमें परिहास उपहास की बू है.

हलराम आजाद, बंबई

यह चाहिए कि...

है, सितंबर द्वितीय अंक में आपने राष्ट्रवादिता' के लांछन से बचने के हिंदुओं की त्रुटि 'अछूत भाव' को दोषी ठहरा दिया. अगर आम हिंदू वैमनस्य के कारणों को पढ़ा तो एक हद तक इस अलगाव को जा सकता है. सांप्रदायिक दंगों में उनके प्रति सहानुभूति व जो नहीं उन्हीं को दोष देना उचित तो नहीं. यह चाहिए कि यह चिंगारी फूंकी आज एक हिंदू पीड़ित है मुसल- 'कट्टर' धार्मिक भावना व हिंदू प्रति उनके घृणित विचारों से, जब की धार्मिक सहिष्णुता को कोई कार सकता. क्यों नहीं हिंदू की तरह मुसलमान नेता मुसलमानों हिंदुओं के साथ प्रेम-भाव बढ़ाने को करते, बजाय अपने लिए अधिक मांगने के? यह काम तो हिंदू बढ़-चढ़कर कर रहे हैं, भले राज- काम के लिए ही सही.

जैन, चिकमंगलूर

एक गैरजिम्मेदार व्यक्ति का नाम है--फिराक

सितंबर 80 'सारिका' में प्रकाशित गोरखपुर के एक उपेक्षित अंचल में जन्मे (सिकरी गंज कस्बे के पास का एक छोटा-सा गांव) श्री रघुपति सहाय 'फिराक' का साक्षात्कार पढ़ा. फिराक की दुनिया से परिचित होने के कारण इस साक्षात्कार के लिए जो आशंकाएं उठ रही थीं, वह पढ़कर सही पाया. वह यह कि फिराक एक बेहतरीन और ईमानदार शायर के साथ-साथ एक गैरजिम्मेदार व्यक्ति का नाम है. फिराक का पूरा जीवन और लेखन इस तरह के विरोध और विसंगति से अंतर्ग्रस्त रहा है, जैसे इसी साक्षात्कार में उनका यह कहना कि 'मैं एक अच्छा शायर नहीं, एक अच्छा गृहस्थ होना चाहता हूं, था.' अभी इसी तरह का वक्तव्य एक अन्य पत्रिका में देते हुए कहा कि "मैंने आई. सी. एस. नौकरी इसलिए ठुकरा दी, क्योंकि मैं यह बर्दाश्त नहीं कर सकता था कि मेरी बीवी को यह सुख मिले कि वह अपने को एक आई. सी. एस. की बीवी कह सके." क्योंकि उन्हीं के अनुसार उनकी जवानी में एक निहायत बदसूरत और अनपढ़ औरत से उनके पिता ने जबरिया शादी कर दी थी. लिहाजा उन्होंने जीवन भर पत्नी से इसका बदला लिया.

अपने व्यक्तित्व की विरोधी स्थितियों की तरह फिराक का लेखन साहित्य जगत की हलचल में विरोध और टकराव की स्थितियों को बरकरार रखे है. अपने इसी साक्षात्कार में उनका एक जगह यह कहना कि, 'मैं उस आदमी को बुरा नहीं कहूंगा जो हत्यारा है, चोर है. . ." फिराक की दृष्टि में अपराधी वह है जो इस विराट आकाश को देखकर 'अनयूजली थ्रिल्ड फील' नहीं करता, जो गंगा की मौज को देखकर उसके साथ थिरक नहीं उठता. ऐसे साहित्यकार की साहित्यिक उपयोगिता अशोक वाजपेयी के शब्दों में कहा जाये तो 'जीभ और जांघ का चालू भूगोल' है. जिससे प्रेमचंद, इकबाल या निराला की तरह अपेक्षा नहीं की जा सकती.

▣ अरविंदकुमार त्रिपाठी, गोरखपुर

नाम बताया तो थप्पड़ खाया

'जानवर और जानवर--दो' पढ़ा. वास्तव में आपने एक जानदार विषय उठाया है. उसी के तहत मैं कह सकता हूं हम हिंदुस्तानी मुसलमानों की स्थिति धोबी के कुत्ते के समान है, जो घर का है न घाट का. जो धार्मिक फिरकापरस्तों के दोनों पाटों के बीच पिसता है. एक ओर उसका अपना संप्रदाय उसे हेय दृष्टि से देखता है तथा काफिर की उपाधि से विभूषित करता है. दूसरी ओर आपके पड़ोसी गांव, जिसका आपने जिक्र किया है, जैसी स्थिति होती है कि कितना भी आत्मीय बनने पर 'अछूत' बना रह जाता है. कुछ इन्हीं आपबीतियों के बाद अब मेरा साहस चुक गया है कि किसी 'हिंदू' का निमंत्रण स्वीकारूं. दूसरी ओर कितना भी वैचारिक एवं सहृदय की आस्था से भारतीय हूं, लेकिन सांप्रदायिक दंगों आदि के समय कुछ निकट मित्रों की आंखों में भी घृणा झलकती है. सिर्फ नाम से मैं हमेशा मुसलमान ही घोषित हुआ, हिंदुस्तानी नहीं.

एक बार बचपन में दुर्भाग्य से एक दंगाग्रस्त क्षेत्र में फंस गया. एक सज्जन ने जानबूझ कर मेरी साइकिल में टक्कर मार दी. बाद में नाम पूछा और मेरे 'साबिर हुसेन' कहते ही एक थप्पड़ गाल पर पड़ा. वह चोट सीधी दिल में उतर गयी है, जो अभी तक नहीं भुला सका हूं. कितने ही प्रयत्नों के बावजूद मैं हिंदुस्तानी नहीं बन सका, क्या कभी बन सकूंगा, इसका मुझ जैसे लोगों को इंतजार रहेगा, जब हम बेधड़क किसी का निमंत्रण स्वीकार कर सम्मान से हंसते-खिलखिलाते दोस्तों का कौर छीनकर खा सकेंगे या हिंदू मोहल्ले में पंडितजी का मकान किराये पर लेने में मेरा नाम बाधक नहीं बनेगा.

▣ साबिर हुसेन, पलियाकलां (खीरी)

सरहद पार से

'सारिका' सितंबर-2 अंक पढ़ा. मुद्राराक्षस के साथ विनयदास और बीर राजा की बातचीत काफी रोचक लगी तथा मुद्राराक्षस के बहुआयामी साहित्यिक व्यक्तित्व को जानने का भी मौका मिला, पर जिस चीज की ओर मैं सबसे ज्यादा आकृष्ट हुआ, वह थी ऋता शुक्ल की कहानी 'बेनकाब'. सचमुच लेखिका ने इस कहानी के द्वारा परिवार की परिधि में फैली विकृतियों का बड़ा ही सशक्त चित्रण किया है. यह कितना बड़ा व्यंग्य है कि एक ही मां की कोख से जन्मा भाई अपनी बहन के प्रति ऐसी उपेक्षापूर्ण गलत दृष्टि रखता है? एक भाई के दूसरे भाई के साथ इस तरह के व्यवहार की बात तो समझ में आ सकती है, लेकिन एक बहन, जो पारिवारिक स्तर पर किसी भी तरह उसकी प्रतिद्वंद्वी नहीं हो सकती, के साथ ऐसा उपेक्षापूर्ण व्यवहार बिल्कुल अमानवीय है. और इस उपेक्षापूर्ण दृष्टि का शिकार अक्सर अनपढ़ या कम पढ़ी-लिखी बहनें ही होती हैं. अतः आज जरूरत इस बात की है कि बहनें ज्यादा से ज्यादा अपने आपको शिक्षित बनाने की कोशिश करें. तभी वे इस तरह के उपेक्षापूर्ण व्यवहार का सामना करने में समर्थ हो सकती हैं.

लेखिका ऋता शुक्ल को ऐसी सशक्त तथा साथ ही रोचक कहानी लिखने के लिए मेरी ओर से बधाई.

▣ **परदेशी, काठमांडू (नेपाल)**

दिल की भड़ास

श्री गोपालदास ने मुझे निराश किया. मुद्राराक्षस के लेखन से ज्यादा पुराना परिचय नहीं है. दो वर्ष आकाशवाणी में नौकरी कर, घुटन से बेहाल हो, हाल ही में त्यागपत्र दिया है. आकाशवाणी में रहते, पहले भी मुद्रा के कुछ रेडियो नाटक सुने थे, जो बेहद प्रभावशाली थे. दिल्ली आकाशवाणी के रंग-ढंग, अतीत में खोयी मुद्रा की तरंग मैंने भी तलाशनी चाही थी और छटपटा कर रह गया. 'भगोड़ा' पर प्रतिक्रिया पढ़ते ही लगा—आलोचक की कोई ग्रंथि उसे सच कहने से रोक रही है. वह उसी व्यवस्था की खिसियाई बिल्ली तो नहीं? एकाएक मैं किसी को दोष देना नहीं चाहता था. भगोड़ा खरीदा और दो बार पढ़ डाला. लगा, आलोचक चालाक आदमी है, एक तीर से दो शिकार करना चाहता है. आलोचना का तरीका बनाता है— उपन्यास के उन स्थलों को, जिन्हें खुद लेखक ने ही स्पष्ट कर देना चाहा है. उसके दिल को तसल्ली होती है उपन्यास के ये शब्द पाठकों के सामने रखकर, 'बेतरतीब हो गया बिखर गया है.'

प्रतिक्रिया का अधिकार दिल की भड़ास निकालने के लिए आजकल प्रयोग हो रहा है. इसी जंजीर में एक कड़ी जोड़ी है—श्री गोपालदास ने, लेकिन 'कटे हुए हाथ सड़ते नहीं, फिर से उग आते हैं.' ये अलग बात है, वे हाथ अपने दुश्मनों की गिरेबान नहीं पकड़ते. राजी सेठ की प्रतिक्रिया ठीक-ठाक है.

विनयदास और बीर राजा ने साक्षात्कार में जो पकड़ और चुस्ती दिखायी है, उससे मुद्रा को पहचानने में सरलता आयी है.

▣ **राजेश्वर, जयपुर (राज.)**

आचार्य शुक्ल उवाच

मैं हिंदी का ज्ञाता नहीं हूं. मेरे पास न उपयुक्त शब्दकोष है और न मैंने भाषा-विज्ञान का अध्ययन किया है. इतना ही कह सकता हूं कि आप लोगों के पत्रों में 'दशहरा' शब्द का गलत प्रयोग होता है.

सन् 39-40 में जब मैं बी. ए. की कक्षा में पढ़ रहा था और आचार्य पं. रामचंद्र शुक्ल कक्षा को पढ़ा रहे थे—तब एक विद्यार्थी ने कहा, "दशहरे की छुट्टियों में. . . . ." आचार्य ने टोक दिया और कहा कि 'दशहरा' शब्द गलत है. यह 'दसराहा' है. इस दिन से दसों रास्ते खुल जाते हैं. "दशहरा जेष्ठ मास में होता है, जिसे गंगा दशहरा भी कहते हैं. उस दिन वर्षा ऋतु का आगमन शीघ्र मानकर यह माना जाता है कि दसों रास्ते हर लिये गये अर्थात् बंद हो गये."

आपकी कृपा होगी, यदि आप इस महान त्योहार के शुद्ध रूप को पाठकों, लेखकों और जनता तक पहुंचा दें.

▣ **गोविंदनारायण सिंह, नयी दिल्ली**

उपेक्षा से हिंसा तक

सुश्री चित्रा मुद्गल की कहानी 'मा आगे बढ़ेगा अभी' एक प्रभावी रचना एक ओर मेम साहब लड़के मोट्या अडॉप्ट करने की सोचती हैं और वह कभी-कभी उन्हें मम्मी कह देता है, दूसरी ओर पति द्वारा उसका घ अपमानित करके निकाला जाना खड़ी हुई देखती रहती हैं. यह मोट्या सहन नहीं कर पाता और वह हो उठता है. बंबई के आंचलिक प में बुनी हुई इस कथाकृति की हृदयस्प और करुणा मन को भिगो जाती है.

▣ **विनोद कौशिक, बिजनौर**

बाजारू साहित्य और कलात साहित्य

'सारिका' के अक्तूबर 80 अंक कमलादास की चर्चित कृति मेरी क पर रवींद्र कालिया का लेखकीय न पढ़ा. '**मेरी कहानी**' में नैतिक साहस के पर सेक्स का नितांत सतही चित्रण गया है, जिसे कमलादास जैसी लेखिका शब्दों के स्पर्श से अश्लीलता को छुए भी बखूबी कह सकती थीं. भले ही इ लोग यह समझें कि इस कृति ने पर रूढ़िवादी पाठकों एवं समीक्षकों के भरपूर तमाचा मारा है, परंतु यदि से अधिक सेक्स-खेल उजागर करने शब्दों का प्रयोग और 'अनकही' बा खुले आम कहना ही पैनी अभिव्यक्ति परिचायक है तो मैं समझता हूं कि बा साहित्य और कलात्मक साहित्य में भेद नहीं है.

अंत में, दांपत्य संबंधों में हिंसा जंगलीपन के अलावा और कुछ अनु होने का जो आरोप कमलादास ने है, वह निःसंदेह भ्रामक है. ज्यादा न केवल इतना ही कहूंगा कि स्त्री और के बीच मनःसमागम संभोग एक सेतु अंतरंग तन्मयता के क्षणों में एक-दू बाहर और भीतर से जोड़ता है. इसमें संप्रेषण मात्र होता है, अभीष्ट नहीं. द जो इस कला की साधना करते हैं जानते हैं कि इस पृथ्वी पर स्व उतारा जा सकता है.

▣ **विजयप्रकाश श्रीवास्तव,**

मानवीय मूल्यों के मसीहा—दो

पिछले अंक में हमने भूगोल के छोटे होने और इतिहास के सिमट जाने की बात की थी. यह बात दुनिया के हालात देखकर और स्पष्ट हो जाती है. आज दुनिया के किसी भी हिस्से में किसी भी तरह की घटना-दुर्घटना या कोई वारदात हो जाती है तो उसका असर कमोबेश पूरी दुनिया पर पड़ता है. आज हम एक दूसरे से इतने जुड़े हैं या एक दूसरे पर इतने निर्भर हैं कि एक जगह की तकलीफें दूसरी जगह अपना रंग दिखाये बगैर नहीं रहतीं. इन हादसों का असर केवल छोटी शक्तियों पर नहीं पड़ता, महाशक्तियों पर भी पड़ता है. इनसे कभी महाशक्तियों की चौधराहट खतरे में पड़ती है तो कभी उनकी अर्थ व्यवस्था——किस्सा कोताह यह कि अंतर्राष्ट्रीय मंडियों का संतुलन बिगड़ जाता है और छोटी-मोटी मंडियां तो शुरुआत से ही लड़खड़ा जाती हैं. इन मंडियों की लड़खड़ाहट हर घर में महसूस की जाने लगती है. आज युद्ध इराक और ईरान में हो रहा है और उसके झटके हमें झेलने पड़ रहे हैं. कभी पेट्रोल की तथा दूसरे पेट्रोलियम पदार्थों की कमी है और दीगर चीजें दहशत में ही छुप गयी हैं और तकलीफों के बवंडर में घिर गया है पूरी दुनिया का कमजोर आम आदमी. आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग को पेट्रोल की जरूरत भले ही न हो लेकिन मिट्टी के तेल की जरूरत तो पड़ती ही है. सामान्य जन, चाहे वह किसी भी देश का हो, एक सी तकलीफों के दौर से गुजरता है. उसके एहसास, उसकी लड़ाई, उसकी जरूरतें और उसके हालात कमोबेश एक जैसे और साझे के होते हैं. इन युद्धों और वारदातों का लाभ सिर्फ राजनीतिक और आर्थिक शक्तियों को ही मिलता है, नुकसान उठाना तो सर्वसाधारण की नियति है.

नुकसान और तकलीफें झेलते जाने का सिलसिला आदमी की लाचारी और गिरावट का सिलसिला है, आम जिंदगी के लगातार सस्ते होते जाने का सिलसिला है. जिंदगी का और कीमतों का सीधा संबंध है——जब कीमतें बढ़ती हैं तो आम लोगों की जिंदगी सस्ती हो जाती है और जब जिंदगी सस्ती होती है तो अव्यवस्था और डंडे की व्यवस्था या डंडे की राजनीति फलने-फूलने लगती है. संवेदना, सहानुभूति, आपसी सहयोग और सद्भाव जैसी चीजें खोखली और बेमानी हो जाती हैं और हमें मानवीय मूल्यहीनता से दो-चार होना पड़ता है. आज हम ऐसी ही मूल्यहीनता के दौर से गुजर रहे हैं. हमें अनिश्चय और अनिर्णय की दिशाहीनता का शिकार होना पड़ रहा है. रास्ते या तो बंद हैं या अंधेरों में डूबे हुए. दीवाली के करोड़ों दीये भी इन अंधेरों को दूर कर पाने में असमर्थ हैं. आज के हालात देखकर यही लगता है कि अब दीवाली के दीये रोशनी नहीं देते——धुआं उगलते हैं और घुटन फैलाते हैं.

चीजों की कीमतें जिस तरह बढ़ी हैं और बढ़ती जा रही हैं उन्हें देखते हुए कोई भी मौसम त्योहार का मौसम नहीं लगता. इन हालात में हम त्योहार की रस्मअदायी भले ही कर लें लेकिन मना नहीं सकते.

आज जिंदगी की हर बात दो ही चीजें तय करती हैं——एक सियासत और दूसरे हालात. हालात को बनाने-बिगाड़ने का दारोमदार सियासत के ही जिम्मे है और सियासत हालात को बनाती कम है, बिगाड़ती ज्यादा है. इस तरह आप यह भी कह सकते हैं कि हम हालात के मारे कम और सियासत के मारे ज्यादा हैं. गम-खुशी, युद्ध-सुलह, तेजी-मंदी, रोशनी-अंधेरा, व्यवस्था-अव्यवस्था, सभी कुछ सियासती भ्रूभंग के मुंतजिर हैं. सियासत जादू है और सत्ता जादुई चिराग, जिनके सहारे क्रूर और खुदगर्ज अलादीन गरीब जनता की कीमत पर अपने हितों की हिफाजत कर रहे हैं. ऐसा नहीं कि सियासत यकबयक क्रूर और हत्यारी हो गयी है, यह तो उसकी पैदाइशी फितरत है. इतिहास गवाह है कि सियासत कभी पाक-साफ नहीं रही. इतिहास इस बात का भी गवाह है कि हर युग का सामान्य जन तकलीफों भरी गुमनामी जीता रहा है. सारी तरक्की, सारा ज्ञान-विज्ञान शक्तियों और शक्तिकेंद्रों को ही मुफीद रहा है, आम जिंदगी से कुछ खास सरोकार नहीं जोड़ पाया. यही वजह है कि सियासत जिंदगी के हर क्षेत्र पर जरूरत से ज्यादा हावी है और सामान्य जन उससे उतना ही कटा हुआ. ऊपरी तौर पर यह बात विरोधाभासी लग सकती है लेकिन है एक बहुत बड़ी हकीकत.

कुछ लोग इस हकीकत से कतराते हैं, भाग खड़े होते हैं और कुछ इसके रू-ब-रू हो जाते हैं, इससे जूझते हैं. हम हर जूझने वाले के साथ हैं. जूझने से हौसला तो बढ़ता ही है, सही दिशा की पहचान भी होती है. मैं सही दिशा की पहचान कराने वाले इन जुझारू मसीहाओं को एक बार फिर नमन करता हूं.

▣

आदमी और हकीकत की सही दशा-दिशा की पहचान से जुड़ा 'सारिका' का यह विशेषांक इन्हीं मसीहाओं को समर्पित है. यह अंक महंगाई के मारे दीपों को रोशनी भले न दे सके लेकिन मेरा विश्वास है कि आज के हालात को रोशनी में अवश्य खड़ा कर देगा. बिगड़े हुए हालात के बावजूद यह अंक आपको थोड़ी-सी राहत, थोड़ा-सा सुकून और हालात से जूझने की थोड़ी-सी ताकत दे सके, इसी आशा और विश्वास के साथ मैं 'सारिका परिवार' की ओर से आप सबको दीपावली की शुभकामनाएं अर्पित कर रहा हूं.

कन्हैयालाल नंदन

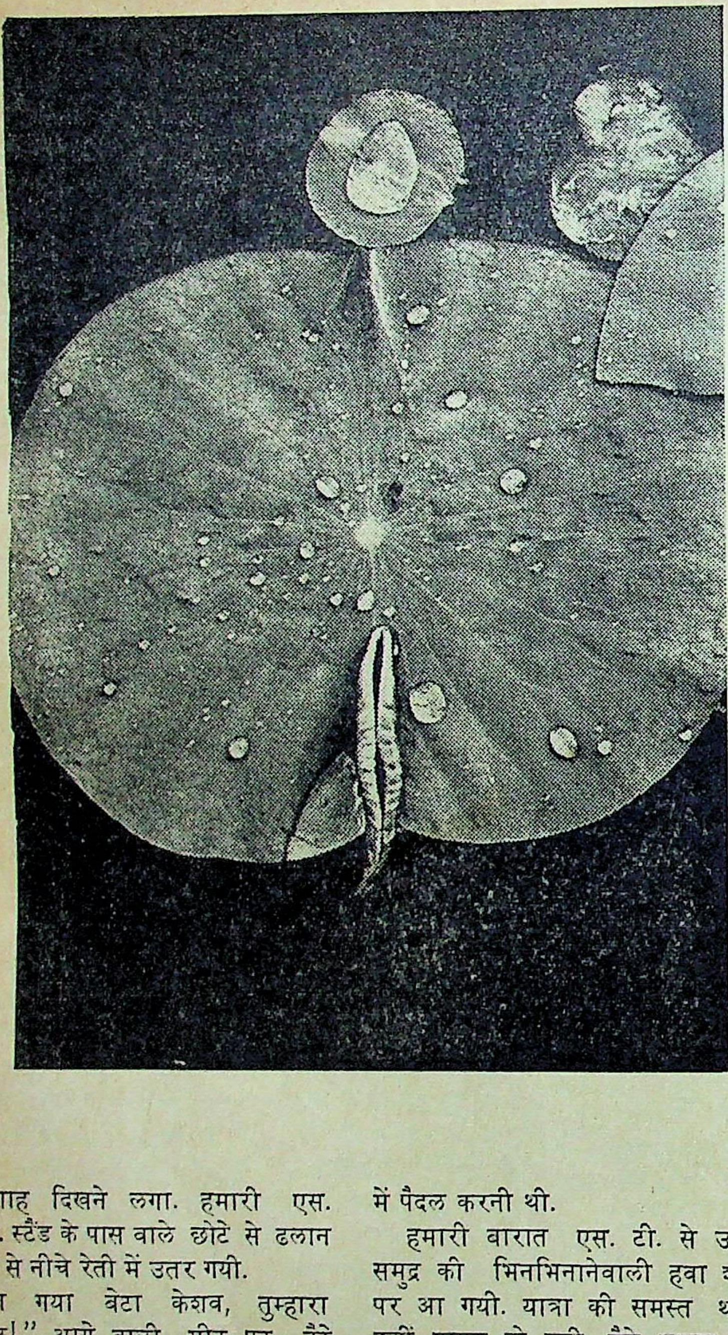

छाया : रघुराय

मराठी कहानी

[illegible]

बालकृष्ण वि· प्रभुदेसाई

बंदरगाह दिखने लगा. हमारी एस. टी. स्टैंड के पास वाले छोटे से ढलान से हौले से नीचे रेती में उतर गयी.

"आ गया बेटा केशव, तुम्हारा ससुराल!" आगे वाली सीट पर बैठे मेरे दादा मेरा कंधा कौतुक से थपथपाते हुए बोले तो इतनी देर तक चल रही औरतों की बकवास बंद हो गयी. सबकी नजरें खिड़की के बाहर मुड़ गयीं.

आक्षितिज असीम सागर उफन रहा था. बायीं ओर नारियल के पेड़ों की घनी पंक्तियां हिल-डुल रही थीं और सामने शुभ्र बालू का पट्टा लंबा ही लंबा फैल गया था और डेढ़-दो मील की यात्रा रेत में पैदल करनी थी.

हमारी बारात एस. टी. से उतरी. समुद्र की भिनभिनानेवाली हवा शरीर पर आ गयी. यात्रा की समस्त थकान कहीं गायब हो गयी. वैसे थकान जैसी चीज कोई थी भी नहीं. राजापुर में बस में बैठने के तुरंत बाद हमारे हंसी-मजाक में काफी उफान आया था. कितने ही वर्षों के बाद घर में पूरा खानदान जमा हो गया था. चचेरा भाई महादेव तो करीब करीब चार-पांच वर्षों के बाद मिल रहा था. आठ-दस दिन हमारी गपबाजी कुछ ऐसे उभार पर थी कि कुछ पूछा ही नहीं जाये. परमेश्वर ही जानता होगा कि हम इतना क्या बोल रहे थे. . .हमारी वाली भाभी बहुत मुंहफट थी. वह थी, "निगोड़ो, यह महादेव जब यहां था, बिना लाठी-काठी के आपस में बात होती थी. और अब क्या ऐसी गाढ़ी रही है? कम-से-कम कल ब्याह के पर तो दूर रहना एक दूसरे से! माधव? नहीं तो यह केशव उसका लेकर कौर डालेगा तुम्हारे मुंह

इस पर प्रचंड हंसी का विस्फोट-सा गया और महादेव ने तुरंत एक में नाम भी गूंथा—"इमली के पेड़ बैठा भौंर और महादेव के मुंह में. . .जले का कौर."

फिर क्या था? पहले भी हंसने के किसी कारण की आवश्यकता नहीं थी और अब. . .हमारे हास्यविनोद में और पिताजी भी शामिल हो गये. वाली सीट पर बैठा सदा चाचा भी में मुस्कराने लगा. तुरंत गंभीर बनाकर उसने हुक्म दिया, "ये जो अभी हीः हीः करके हंस रहे हैं उन्हें भोजन की पांत में पांच-पांच श्लोक होंगे. उसमें महादेव का नंबर सर्वप्र देखें प्रोफेसर बनकर इसकी विद्वत्ता बढ़ गयी है!"

सदा चाचा के मुस्कराने का लिए बहुत बड़ा अर्थ था. बंबईवाली उसे 'जगन्नियंता' 'सूत्रसंचालक' कहा करती थी. सदा चाचा के हिसाब कोई बड़ा था न छोटा. कभी किसी वह दादाजी को भी चार बातें सुना बाज नहीं आता था, फिर हमारी बिसात थी?

हमारा हो-हल्ला खूब बढ़ जाता तो सदा चाचा इस तरह डपट ता था, "महादेव, केशव, अब अगर आपका यह हुआं-हुआं नहीं गा तो सीधे कान के नीचे आवाज निकलेगी, हां!"

हमारे चेहरों पर जरा-सी मुर्दनी छा जाती थी तो सदा चाचा ने जोर से कहता, "खीसें क्या निपोर रहे हो हीः हीः करके? तने बड़े हो गये घोड़ों की तरह और यह सब तुम्हें सिखाना ता है? केशो, अरे कल तुम्हारी शादी है. . .कम-से-कम आज तो गुस्सा न दिलाओ. . .और यह म्हादबा. . . इसे क्या प्रोफेसर गे, कालिजवाला?"

इस पर दादाजी सदा चाचा पर गुस्सा होकर कहा करते, रे भाई, तुम जरा आज चार मीठे बोल बोलोगे तो क्या आसमान आ जायेगा? चार दिन ये लड़के इकट्ठा हो गये हैं—चलेगा जरा हो हल्ला! तुम्हारी हिटलरशाही क्यों आठों पहर!

दादाजी हमारी ओर से बोलते तो हमारे हंसी-खेल में फिर आ जाता.

ऐसे ही चलता रहा था पूरी यात्रा के दौरान.

एस. टी. से हम नीचे उतरे ही थे कि सदा चाचा ने डपटकर से कहा, "पराये गांव में आये हो. बिलावजह हीः हीः हीः हीः करो. और केशव, तुम्हें खासकर बताये देता हूं, बच्चों के बैठकर हीः हीः करना अच्छा नहीं होता. हम लोगों के बैठो. जरा अपनी शान के साथ रहो. यह मत भूलो कि बाराती हैं."

इतने में सदा चाचा को किसी ने पुकारा, इसलिए हम उनकी रफ्त से बच गये.

बंदरगाह पर हमारे स्वागत के लिए साधले मामा आये थे. याद हो आया—महीने भर पहले लड़की को दिखाने साधले मामा आये थे, साधले मामा ने दादाजी, पिताजी चाचा—सबको नम्रतापूर्वक झुककर नमस्कार किया. फिर मुझे किया. मैं एकदम झेंप गया और इसका भान नहीं रहा कि भी जवाब में नमस्कार करना चाहिए था. इतने में सदा चाचा आंखें तरेरकर संकेत किया और मैंने झट से नमस्कार कर दिया. नहीं यह सब साधले मामा के ध्यान में आया या नहीं. उन्होंने से मेरे कंधों को थपथपाते हुए कहा, "रहने दीजिए. . .यात्रा ठीक न?" साधले मामा ने सबकी कुशल-क्षेम पूछी.

"हां, हां. बहुत ठीक!" दादाजी ने गर्दन हिलायी. "स्पेशल बस इसीलिए बड़े मजे में आ गये."

साधले मामा की पोशाक पुराने ढंग की थी. महादेव ने मेरे से लगकर पूछा, "कौन हैं ये?"

मैंने धीमी आवाज में बताया, "मामा. . .उसके. . ."

"बिलकुल न. चि. केलकर जैसे लगते हैं—हैं न?" महादेव पुनः कान के पास फुसफुसाया.

बहुत मुश्किल से हम दोनों ने हंसी को रोका. साधले मामा ने "अब एक-डेढ़ घंटे में पहुंच जायेंगे. खाड़ी पर नावें तैयार हैं अब ज्वार का समय है. पंद्रह-बीस मिनट की नाव की यात्रा है."

नाव की यात्रा की कल्पना से हमें बहुत ही खुशी हुई. औरतों रा भय की तरंग-सी फैल गयी.

"कुछ देर विश्राम कर लीजिए." साधले मामा ने कहा, सामान आगे कहारों के साथ जायेगा."

"ना! ना! अब चलेंगे ही.' सदा चाचा ने कहा, "एक बार घर पहुंचकर तो विश्राम ही करना है, दूसरा काम ही क्या है! भई, इस चाल से इस रेती में आपको उस खाड़ी तक पहुंचने के लिए दो घंटे चाहिए." सदा चाचा सबको, खासकर औरतों को सुनाने के लिए खनखनाती आवाज में बोला.

अब तक रेती में औरतों की बैठक जम गयी थी. सदा चाचा का फर्मान निकला तो धीरे-धीरे निकलने की तैयारी शुरू हो गयी.

फिर सामान लेकर कहार आगे बढ़ गये. हमारी बारात पीछे से चल पड़ी.

महादेव और मैं, दोनों सबके पीछे रहे. सूर्यास्त में अभी बहुत देर थी. उफनती लहरों पर मानो हजारों-लाखों शीशे चमक रहे थे. हवा भिनभिना रही थी.

पता नहीं कब, इतने दिनों तक स्मरण से निकल गया, वह लज्जानत मुस्कराता चेहरा क्षणभर के लिए फिर मेरी आंखों के सामने झलक गया.

दूर तक फैला हुआ वह निर्जन रेतीला रास्ता! मानो अभी-अभी उस निर्जन किनारे पर रेती में चरण चिह्न अंकित करती हुई वह अकेली आगे निकल गयी है.

समुद्र का अनवरत मंत्रघोष चल रहा है. महादेव जोर से मेरे

छाया : बी. एल. मोदी

कानों में चीखा, "अरे तुमसे ही कह रहा हूं मैं!"

"क्या?" चौंककर मैंने पूछा.

"गधे हो. ऐसी कौन सी तंद्रा में हो? या याद आ रही है उस छोकरी की!"

"ना!"—चेहरे को निर्विकार रखने का मैं पूरा प्रयत्न कर रहा था

"मैं कह रहा था कि हम लोग लहरों को पैरों पर लेते हुए समुद्र के किनारे-किनारे चले चलें."

महादेव पर मुझे दया आयी. बेचारे को ऐसी कोई खुशी नहीं.

चप्पलें निकालकर हम टखने तक के पानी में चलने लगे. बीच में एकाध फेनयुक्त लहर शरीर पर आती थी और पैरों तले की रेती गुदगुदाकर सरक जाती थी. हमने पैंट घुटनों तक ऊपर कर ली. फिर भी वे भीगीं ही. फिर भी कपड़ों को भिगोते मस्ती से चल पड़े.

बीच में ही महादेव ने पूछा, "नाम क्या है रे उस लेलेजी की छोकरी का?"

"मालिनी!"

अब तक करीब दस बार मैंने महादेव को उसका नाम बताया होगा.

"दिखने में कैसी है?"

"कितनी बार कहा कि अच्छी है!"

"अरे भई, अच्छी, याने कैसी? ऐक्जेक्टली कैसी!"

"फोटो नहीं देखा?"

"फोटो से क्या पता चलता है? . . . फोटो पर विश्वास नहीं करना चाहिए."

"लेकिन मैंने प्रत्यक्ष देखा है न?" खीजकर मैंने कहा.

"होगी भी." महादेव ने ऐसे कहा जैसे लाइलाज हो गया हो.

एक बड़ी-सी लहर फेन उछालती आयी. हम एक ओर हट गये. फिर भी थोड़ा सा अभिषेक हमारे सिर पर हुआ ही.

अब तक मंडली बहुत आगे जा चुकी थी. कपड़े बहुत गीले हो गये थे. महादेव के बालों से पानी चू रहा था.

"सदा चाचा ने देख लिया तो बड़ी मुसीबत होगी." महादेव का रूप देखकर मैंने कहा.

बालों के गुच्छे को छिटककर महादेव ने कहा, "सदा चाचा क्या देखेगा इस हड़बड़ी में? अभी पांच मिनट में कपड़े सूख जायेंगे इस हवा में."

गीली रेती पर हम कूदते-छलांगते चले. फिर भी हममें बहुत अंतर हो गया था. दौड़ते-दौड़ते हम हांफ गये.

हमें आते देखकर बंबई वाली भाभी ने कहा, "यह आ गयी, चकवे-चकवी की जोड़ी."

"आज के दिन इस चकवी का कौतुक चलेगा?" गंगा चाची गर्दन हिलाती हुई बोलीं, "कल उसकी चकवी आने दो, तब देखो!"

मैंने कहा, "ना!"

"ना क्या?" गंगा चाची आंखें तरेरकर बोलीं, "विश्वामित्र बन गये हो क्या! ठहरो, तुम्हें सीधा करती हूं. कल वह घर में आ जायेगी तो चौकी में ही कैद कर दूंगी बिलकुल, पौ फटने से लेकर रात को सोने के समय तक, फिर रात को चक्की पर बिठा दूंगी पौ फटने तक!"

सब हंसते-हंसते लोटपोट हो गये.

गंगा चाची आठों पहर चौके में व्यस्त रहती थी. घर के इतना हंसते-बोलते उसे मैं पहली बार देख रहा था.

"नाम क्या रखोगे पत्नी का?" मामी ने पूछा.

"रखेंगे कुछ!"

"हां, वह अभी थोड़े ही पता लगने देगा!" गंगा चा कहा, "रखा होगा कुछ तय करके."

"ना. उसमें क्या तय करना है?"

"मैं बताऊं?" गंगा चाची बोली, "भागीरथी रखना."

"छि:."

"हमारा भैया पुराने ढंग का . . .तुम क्या रखने वाले हो तो अब बताओ—" यह चाची की पेट में घुसने की तरकीब

मैंने सिर खुजलाया.

"हां, वैसे कुछ भी हो—" गंगा चाची संतोषपूर्वक "केशव की पत्नी है नक्षत्र जैसी सुंदर!"

मैंने महादेव की चुटकी ली.

इतने में खाड़ी निकट आयी और नामकरण का विषय गया.

समुद्र अब पीछे बहुत ही गरज रहा था. खाड़ी का पाट दूर तक उसमें जा मिला था.

किनारे पर दो-चार नावें लंगर डाले खड़ी थीं.

सावले मामा ने कहारों की मदद से सामान नाव में भर फिर दो बड़ी नावों में बैठकर हम निकले.

सब ठीक हो गया.

◆

हम विवाह-गृह में पहुंचे.

अब भी समुद्र की गरज कानों में गूंज रही थी.

लेलेजी का घर बहुत बड़ा था. आंगन में बड़ा मंडप गया था और द्वार पर केले के खंभों का बंदनवार.

बूढ़े लेलजी हड़बड़ी में आगे आये. फिर नमस्कारादि. ने पैरों पर पानी डाल दिया, दही और भात न्योछावर कर दि

सावले मामा ने कहा, "कुएं पर हाथ-पैर धो आयें. तब चाय का प्रबंध हो ही जायेगा." हम सब पिछवाड़े कुएं पर नीचे तक नारियल और सुपारी के पेड़ों का प्रदीर्घ हरा-भरा फैला था. कुएं पर रहट चल रहा था.

हम कुएं पर उतरे ही थे कि पिछवाड़े बरामदे में बैठी चार लड़कियां भर्रऽऽ से अंदर भाग गयीं. मेरी नजर भटक रही थी. जमघट में 'वह' थी?

अंदर कोई महिला बड़ी आवाज में सुर को लंबा खीं बोल रही थी. बोल क्या रही थी. . .गरज ही रही थी:

"अब नहीं भेजा जायेगा ऽ ऽ हां ऽ ऽ तुम्हारे कमल-समल जाने दो! ये कौतुक ही करने थे तो दुपहर को क्यों नहीं कभी की कह रही हूं. . .लेकिन गपशप और बकवास खत्म तब न?. . .अब क्यों धीरे बोलूं. . .तुम मत जाओ और उसको कहीं नहीं भेजना है. . .यह क्या समय है जाने का?. . .अभी जी आ जायेंगे. ."

पिछवाड़े आंगन में बीच में एक कटहल का आलवाल था.

क्षणभर के लिए वहां उलझ गये. . .प्राय: उसी के बारे में हो रही होगी. . .फिर वह अभी कहां जाना चाहती थी?. . . यह कि जब हम आये तब वह यहीं पर बाल संवार रही थी. धीरे-से महादेव की ओर देखा. एक आंख दबाकर कर वह सिर्फ राया. इतने में सदा चाचा की पुकार कानों से टकरा गयी, देवऽऽ"

झट से हम वहां से चलते बने.

हाथ-पैर धोकर हम अगले द्वारा पर मंडप में आये. तब तक में एक ओर तकिये इत्यादि रखवाकर बौक का इंतजाम हो था. चाय-वाय होने के बाद लोग वहीं पर विश्राम के लिए गये.

मंडप में अब बहुत भीड़ इकट्ठा हो गयी थी. सब काम जल्दी-निपटाये जा रहे थे. कोई दरियां बिछा रहा था, कोई केले के पोंछ रहा था. कहीं गैस की बत्तियां साफ की जा रही थीं. बच्चे हुड़दंग मचा रहे थे. समूचा घर ही गरज-बज रहा था. इतनी भीड़ में भी मुझे अकेलापन महसूस हो रहा था. एक थान पर बैठा नहीं जा सकता था. मंडप में एक चक्कर लगा सब मेरी ओर बड़े आदर के साथ देख रहे थे. अनमना-सा फिर वापस लौटा. महादेव अखबार देख रहा था, उसके पास र बैठा.

कुछ देर बाद ऊबकर महादेव ने अखबार फेंक दिया. और लंबी ई ली. और वह धीमी आवाज में बोला, "यहां बैठकर क्या जरा बाहर घूम आयें?"

"मैं भी यही सोच रहा था, लेकिन कहां जायेंगे. गांव की कुछ जानकारी अपने को है नहीं."

"धत् तेरे की! इसमें क्या है? जिस रास्ते जायेंगे, उसी रास्ते वापस आयेंगे. अंधेरा होने से पहले ही आ जायेंगे—बस?"

हमने इधर-उधर देखा. सदा चाचा कहीं नहीं दिख रहा था. सांवले मामा के साथ कहीं गया था. दादाजी और पिताजी लेलेजी से गप्पें हांक रहे थे.

हम धीरे से उठकर पीछे वाले आंगन में आ गये.

मेरी नजर फिर घूमने लगी. यों ही लगा कि वह अब दिख आंगन में, कुएं पर. . .कहीं पर. . .दिखना ही चाहिए, र तो. . .क्या हर्ज है!

पीछे शांति थी. ओसरे में दो-तीन कहारिनें बैठी थीं. कटहल वाल पर वह रहट खींचनेवाला कहार बैठा था. हमें देखते उठकर सामने चला आया. अरे बाप रे बाप! अब क्या बोलेंगे. महादेव बोला, "जरा बगीचे में घूम आते हैं."

कहार बोला. . ."हां हां!"

हम बगीचे में उतरे और पीछे न देखते हुए सीधे चल पड़े— उतर गयी थी. वृक्षों में हवा भरकर भिनभिना रही थी. ही हल्का और ताजा-ताजा सा लग रहा था.

बगीचे के बीच से बहुत आगे निकलने पर बड़ा खेत था. आकर हम रुके. पता नहीं चल रहा था कि किधर जायें. पगडंडी नहीं दिख रही थी. चारों ओर घनी झाड़ियां थीं. कोई नहीं फिर खेत के बीच से आगे चलने लगे. कुछ बाद झाड़ी में से मंदिर का शिखर सिर उठाता हुआ पड़ा.

महादेव ने कहा, "मंदिर है, अत: कहीं रास्ता भी होगा ही."

मुक्ति की सांस छोड़कर हम शिखर की ओर उन्मुख होकर चलने लगे. पता नहीं, कितनी देर तक हम चलते रहे, लेकिन रास्ता तो अलग, छोटी पगडंडी भी कहीं नहीं दिखाई दी. आखिर खेत खत्म हुआ और सिर्फ ऊंची-नीची बंजर भूमि दिखने लगी.

"कमाल है!" महादेव ने आश्चर्य से कहा, "इतने बड़े गांव में एक पगडंडी भी नहीं?"

"गधे हो," मैंने चिढ़कर कहा, "गलत जगह पगडंडी होगी ही कैसे? मुझे लग ही रहा था कि हम गलती से कहीं और जगह ही चले जा रहे हैं!"

"फिर उसमें बिगड़ा क्या? जिस रास्ते से आये, उसी से वापस चले चलेंगे!"

हमने यों ही पीछे मुड़कर देखा. दूर तक वह निर्जन खेत निर्विकार-सा फैला था. लेलेजी का बगीचा उसके किनारे की झाड़ी में पता नहीं कहां लुप्त हो गया था. . .

इतने में प्रचंड आश्चर्य से महादेव ने कहा, "अरे. . .यह क्या भूत-जाल है? अपना वह मंदिर का शिखर कहां गया?"

अब तो हद हो गयी! आंखें फाड़-फाड़कर हमने सामने देखा.

अब तक झाड़ी के बीच से सिर उठाकर झांकने वाला वह मंदिर का शिखर, वह झाड़ी, सब कहीं लुप्त हो गये थे और सामने आक्षितिज सिर्फ सूखी बंजर भूमि फैली हुई थी.

ग़ज़ल

आपके दिल अगर नहीं होते,
हम फकीरों के घर नहीं होते.

जिनको चांदी चुगायी जाती है,
उन परिंदों के पर नहीं होते.

काश, दुनिया में ऐसा हो जाता,
गांव होते शहर नहीं होते.

जिनको सुन-सुनके नींद आ जाये,
ऐसे किस्से इधर नहीं होते.

उनकी आंखों की कसम खा लेते,
वेद-कुरआन गर नहीं होते.

▣ **कैलाश सेंगर**

योगक्षेमं वहाम्यहम्

दीपावली के दीप
जगमग जलें
अंधियारा भागे
प्रकाश फैले।
जीवन बीमा के
जब दीप जलें
आंगन आंगन
सुरक्षा फैले॥

भारतीय जीवन बीमा निगम

PRATIBHA-LIC-408/80-HIN-B

बीच में हवा सरसरा रही थी. दूर कहीं समुद्र-घोष हो रहा और कुछ समय के उपरांत वह समस्त प्रदेश अंधकार में डूबने ा था.

सिर हिलाता हुआ महादेव बोला, "कुछ न कुछ गड़बड़ अवश्य मुझे लगता है, हम मंदिर छोड़कर बहुत आगे आ गये हैं. अगर हम ऐसा करें. . . ."

"माफ करो भैया. जिस रास्ते से आये, अगर उसी से वापस सके तो गनीमत समझो.

"लेकिन केवल उस झाड़ी तक हो आने में क्या हर्ज है?" देव बोला, "जब हम आ रहे थे, तब दाहिने हाथ को वह मंदिर शिखर दिख रहा था. अब हम दाहिने हाथ मुड़कर कुछ आगे र देखें!"

"...हां. . .हां. मतलब यह कि जो खेत अभी दिख रहा है, वह न दिखे! !"

"खेत कहां जायेगा?" जिद में आकर महादेव बोला, "हम में उतरकर ही उस दिशा में चलेंगे. . ."

महादेव का तर्क ठीक था. यह भी एक पहेली ही थी कि इतना मंदिर कहां गुम हो गया था—

मन में कुछ भय हो रहा था, लेकिन अब वापस जाने को भी नहीं कर रहा था. फिर उसी तरह झटपट कदम बढ़ाने लगे. अब समुद्र का शोर निकट से आने लगा. महादेव ने कहा, देवालय की कथा बड़ी मनोरंजक है."

भय से पैर भी उल्टे-तिरछे पड़ रहे थे. एक ओर सदा चाचा का चेहरा सामने आ रहा था—मैंने महादेव से कहा, "तुममें हृदय नाम की वस्तु भी है या नहीं? यह क्या कथा बताने का है?" हांफने के कारण मैं बोल नहीं पा रहा था.

महादेव ने कहा, "लेकिन कथा सचमुच सुनने लायक है- बोलने की धुन में रास्ता भी जल्दी-जल्दी कट जाता है."

मैं केवल हांफ रहा था. फिर महादेव बताने लगा.

दादाजी ने यह कथा कभी मुझे बचपन में बतायी. बहुत वर्ष पहले बात है. शायद एक शतक उलट गया होगा. उस समय यह मंदिर था. स्वयंभू शिवलिंग पर सिर्फ एक छोटा गुंबद था. एक दिन में बहुत बड़ा तूफान आया. पर्वताकार लहरें उठने लगीं. जहाज, नावें, किश्तियां—सबको समुद्र निगलता चला से में एक वृद्ध व्यापारी का जहाज मृत्यु से जूझता हुआ किनारे के पास से गुजर रहा था. जहाज पर लोग भयानक में थे. सौभाग्य से यह गुंबद उस वृद्ध व्यापारी को नजर या. उस समय उस वृद्ध ने व्याकुल होकर शिवशंकर की की. . .'हे भक्तवत्सल, दीनों के उद्धारक, विघ्नविनाशक. . . . .इस संकट से मेरे जहाज को उबारो. . .मैं जन्मभर माई खर्च कर इस सागर तीर तुम्हारा एक भव्य मंदिर गा. . .! शंकरजी ने उस वृद्ध की पुकार सुनी और एक पर्वता- हर ने उस जहाज को हौले से इस किनारे पर उतार दिया... उस व्यापारी ने आठ-दस लाख रुपये खर्च कर यह भव्य का शिवालय बनवाया. . ."

महादेव रुका. . .मेरी आंखों के सामने वे अजस्त्र लहरें और शांत हो गयीं.

"यह कथा तुमको बताने का उद्देश्य इतना ही था कि वह मंदिर समुद्र किनारे पर है और चूंकि समुद्र की आवाज इतनी निकट से आ रही है, वह यहीं कहीं है."

महादेव की यह बात मुझे बहुत पसंद आयी और इतनी देर के बाद पहली बार मुझे लगा कि खूब जोर से हंसूं.

बातें करते हुए हम आगे चल पड़े तो एक तालाब का घाट दिखाई देने लगा, पहले लगा कि यह कुआं ही होगा, लेकिन अब वह खूब बड़ा तालाब था. चारों ओर से अंदर उतरने के लिए काले पत्थर की सीढ़ियां थीं.

हम तालाब की ओर दौड़ पड़े फिर अवाक होकर सामने देखते रह गये! इतनी देर तक लुप्त हुआ वह मंदिर का शिखर हमारे सामने ही शांत खड़ा था. मंदिर विशाल था और उसके चारों ओर ऊंची दीवारों से घिरा काले पत्थरों का प्रशस्त आंगन था. दीवारों के परे कलश को छूने वाले ऊंचे घने पेड़ थे.

तालाब के पास से ही सीढ़ीदार रास्ता नीचे आंगन में उतर रहा था.

इतनी देर तक की गयी भाग-दौड़ सार्थक हो गयी. हम तालाब के किनारे पैर लटकाकर बैठ गये और इतनी देर तक पता नहीं हमारा ध्यान कैसे नहीं गया. . .

उस काले घुप पानी में असंख्य लाल कमल खिले थे.

झट से सीढ़ियां उतरकर हम नीचे गये. क्षण भर के लिए लगा, अपनी घनी ललौही पंखुड़ियों को अलग-अलग कर वे सब मानो हमारी ही तरफ टकटकी लगाकर देख रहे हैं!

■

पानी शांत था. उस पर जरा सी भी रेखा नहीं थी, धूप की मंद किरणों का एक गुच्छा दीवार पर उतर गया था और अब डंठलों के नीचे हरे पत्ते दिख रहे थे.

नीचे बैठकर मैंने हौले से पानी पर हाथ फेरा.

ठंडी गीली गंध फैल गयी थी.

इतने में महादेव ने डंठल के नीचे हाथ डालकर एक कमल तोड़ लिया.

महादेव बोला, "केशव, देखो तो यह कमल कितना सुंदर है!"

मैंने हाथ आगे बढ़ाया. महादेव बोला, "हां, सूंघो मत. चलो मंदिर में जाकर हम इसे पिंडी पर अर्पित करेंगे."

हम कमल से भरे तालाब के किनारे पर आ गये. सिर पर ऊंचे पेड़ों के पत्तों में हवा सरसरा रही थी.

मंदिर का वह गाढ़े रंग का काला पथरीला आंगन शांत था. दीवारों के परे समुद्र गरज रहा था. सीढ़ियां उतरकर हम आंगन में आये तो एक ओर बड़ी झील दिखाई दी.

महादेव ने कहा, "हम आंगन की प्रदक्षिणा कर सभा मंडप में जायेंगे."

हम आंगन से आगे चले गये तो एक ओर तालाब दिखने लगा और बाद में देखते क्या हैं कि सभा मंडप के दोनों ओर उस विस्तृत आंगन में तालाब ही तालाब थे.

फिर हम धीरे से रमते-रमते चलने लगे. एक तालाब के किनारे एक विशाल बकुल वृक्ष था. आंगन में फूलों की राशि बिखर रही थी और बकुल महक रहा था. हम उस तालाब की ओर चलने लगे तो आवाज कानों से आ टकरायी. आंगन में तो कोई नहीं था.

फिर कोई बोला? हमने अचकचाकर इधर-उधर देखा.

फिर बहुत देर तक नीरवता छायी रही.

कुछ देर बाद आवाज पुनः सुनाई दी और फिर वही हंसी की मंद खनखनाहट! हमारे पैर जड़ हो गये. हंसने की आवाज लड़कियों की थी.

शायद तालाब में ही कोई बोल रहा था. हम धीरे से उस बबूल के वृक्ष के पास वाले तालाब के पास गये और किनारे पर से अंदर उझककर देखा.

क्षण भर के लिए—केवल क्षण भर के लिए—किसी संवेदन से समस्त शरीर नख से शिख तक थरथरा गया.

"अरे यह तो 'वह' दिख रही है!" मैं महादेव के कान में फुसफुसाया.

"कौन वह?" कुछ समझकर महादेव ने पूछा.

"वह!.."

महादेव आश्चर्य से मेरी ओर देखता ही रह गया. उन दोनों की पीठ हमारी ओर थी. क्षणभर को लगा, हमारी आंखें धोखा तो नहीं खा रही हैं? इस समय 'वह' यहां आयेगी ही कैसे?

लेकिन शंका के लिए गुंजाइश ही नहीं थी. वह वही थी.

खूब हाथ बढ़ाकर भी वह कमल उसके हाथ में नहीं आ रहा था. लाल-लाल मेंहदी लगा वह गोरा-गोरा हाथ कमल के बिलकुल डंठल तक पहुंचा और पानी की छोटी सी लहर उस कमल को और दूर ले गयी. फिर हताश-सी होकर वह खड़ी रह गयी. . . वह केवल उसी कमल को क्यों चाह रही थी! आगे बढ़कर उसे ला दूं क्या?

मैंने महादेव की ओर देखा. उसके भी मन में वही बात मचल रही होगी. हम धीरे से सीढ़ियां उतरने लगे.

इतने में साड़ी को किंचित ऊपर उठाकर वह और घुटने तक पानी में उतर गयी. और आगे झुककर झट से उसने उस कमल को तोड़ लिया.

हम वहीं पर रुक गये.

"ऐं, अब बस हो गया री." उसके साथ वाली दूसरी लड़की बोली, "तुम्हारा होगा वहां सीमांत पूजन और हमारी होगी पिटाई. पता है कितना समय बीत गया है?"

"कमल तो जमा होने दो न!" उसने कहा. "एऽ ऽ हार कितने सुंदर दिखेंगे, नहीं?"

"हांऽ ऽ ऽ! दिखेंगे क्यों नहीं?"

फिर शाम को वह महिला इन दोनों को ही डांट रही थी, फिर भी ये दोनों कमल तोड़ने आ गयी थीं?

"तुम्हारे उन राजापुर वालों ने जीवन में कभी कमल देखे होंगे या नहीं, कौन जाने?" वह लड़की सुरों को खींचकर बोल रही थी. "हां, हैं सब नमूने कुल मिलाकर. बिलकुल राजापुरी अंगोछे!"

"ऐं ऽ ऽ नाहक उंगली मत उठाना. कहे देती हूं." कुल बहुत ही तीखा प्रकरण था . . . हम राजापुरी अंगोछे थे! ऐंऽ ऽ ऽ

"हाय दैया. गुस्सा भी आने लगा अभी से?" वह गर्दन मोड़कर बोलने लगी.

मैंने महादेव की ओर देखा. उसकी नजर में गुस्से का लेशमात्र भी नहीं था, बल्कि उसकी आंखें अभूतपूर्व रूप से क्षमाशील और दयार्द्र दिख रही थीं.

महादेव के हृदय में कहीं अंदर ही अंदर निश्चय ही कम खिल रहा था.

उसने कमलों की डाली उठायी और उन दोनों ने एकद पीछे मुड़कर देखा.

▣

आंखों के सामने यकायक लाखों कमल खिल गये—थरथरा वे दोनों वहीं पर जड़ होकर खड़ी रह गयीं.

एक-एक पल युग समान. झट से कुछ बोलना चाहिए था लेकिन ना . . . कुछ भी सूझ नहीं रहा था.

वे दोनों पाषाण की भांति स्तब्ध. क्या वे भगवान को गुहा रही थीं? . . . . "हे भक्तवत्सल भगवान, दीनदयाल, हम दो को दो कमल बनाकर इस तालाब में छोड़ दे. हम फिर तुम्हें ह दिन आठ-आठ लाख दुआएं अर्पित करेंगी?"

इतने में उस भक्तवत्सल ने उस महादेव को बोलने की प्रेरणा दी.

"आइए न ऊपर!" हंसकर महादेव ने कहा.

. . . . वाह! यह ऐसा बोलना तो बहुत ही आसान था, लेकि हमें कैसे नहीं सूझा?

उन दोनों ने हमारी ओर देखा. फिर उनके चेहरों पर अनजा ही हास्य फूट पड़ा. फिर हम भी हंसने लगे.

वे दोनों शर्माती हुई सीढ़ियां चढ़कर ऊपर आ गयीं :

"हम रास्ता भूलकर इधर आ गये." महादेव बोला. "व मंदिर के ऊपर वह खेत हैं न . . . . वहां आये थे घूमने-घामने वहां से यह मंदिर दिखाई पड़ा."

उन दोनों ने एक-दूसरे की ओर देखा, लेकिन यह न पूछा कि और क्या बोलना चाहिए. वैसी ही खामोश खड़ी रहीं.

"यह आपका मंदिर तो बहुत ही सुंदर है. कमलों के ये ताला देखने पर लगा कि यहां से हिलना ही नहीं चाहिए."

वे सिर्फ मुस्करायीं.

"इन तालाबों के कमल कभी खत्म ही नहीं होंगे." उसके साथ वाली वह दूसरी लड़की कुछ साहस के साथ बोली.

"सच, आश्चर्य है!" अत्यधिक आश्चर्य दिखाता महादेव बोला.

"नये-नये खिलते होंगे." मैंने कहा.

फिर हम सब खामोश हो गये.

"बैठिए न!" महादेव बोला.

"ना. बैठेंगे कैसे?" वह लड़की बोली. "देर हो रही है! अ और भी बहुत से कमल तोड़ने हैं."

"इतने काहे के लिए?" महादेव ने संवाद जारी रखा.

"सीमांतपूजन है न . . . ."

अब तक 'वह' भी नहीं बोली थी. नीचे गर्दन झुकाकर खड़ी थी.

"इसने कहा, सीमांतपूजन के लिए कमल के ही हार हों चाहिए. फिर क्या करते? कहा, चलिए ऽ ऽ!"

"ऐं ऽ! मैंने कहा था?"—वह नतमस्तक शर्माती-सी कि तरह बोल गयी.

". . . ओह! बस? इतनी सी बात है? हम तोड़ देते

कमल—जितने चाहिए आपको?" मैंने कहा.

"ना-ना!" वे डरकर बोलीं.

"हूं! इसमें डरने की क्या बात है?" महादेव बोला. उनके कुछ उत्तर देने से पहले ही सीढ़ियां उतरकर हम नीचे पहुंच गये. फिर वे भी हमारे पीछे नीचे चली आयीं.

हमने फटाफट जो भी कमल हाथ में आये, तोड़ दिये! कमल हाथ में नहीं आ रहे थे. हाथ आगे बढ़ाने पर वे धीरे दूर चले जाते थे.

"हम वहां परले वाले बड़े तालाब के पास जायेंगे?" वह लड़की बोली. "वहां बहुत कमल हैं."

आंगन को चक्कर देकर हम उस बड़े तालाब के पास आये. बहुत बड़ा तालाब था वह. उस तालाब का पानी भी पारदर्शी, स्वच्छ था. किनारे पर से ही उसका अपार हरा और आर्द्र तल दिख रहा था. और उस गूढ़ हरे प्रकाश में जहां देखा जाये, वहां असंख्य, अनंत कमल खिल गये दिख रहे थे.

सीढ़ियां उतरकर हम नीचे गये.

"सीमांतपूजन में हार आवश्यक होते हैं?" महादेव ने पूछा.

"धत्त्!" वे दोनों खूब जोर से हंसने लगीं.

"बारह वर्ष रामायण....और सीता राम की कौन? वह लड़की पहले की तरह सुरों को खींचती-सी बोली.

मैंने धीरे से 'उस' की ओर देखा. वह भी चोरी-चोरी मेरी ओर देख रही थी.

"हमारा कहां हुआ है सीमांतपूजन?" महादेव ने पूछा.

"हाय री. ऐसे ही सीमांतपूजन कहीं होता है? वह तो विवाह होता है."

"शादी में हम सब कुछ थोड़े ही देखते हैं?"

"अब सब कुछ देख रखिए." वह हंसती हुई बोली. अंतिम पर उतरकर हम झटझट कमल तोड़ रहे थे. मेरे हाथ में कमल अंटते थे, तब वह डाली को आगे बढ़ाती थी....

बोलते-बतियाते हम लोगों के बीच खूब अंतर पड़ गया. महादेव और वह एक ओर और हम दोनों एक ओर. वे दोनों बकवास कर रहे थे. हम चुप थे. सूझ ही नहीं रहा था कि बोला जाये.

बीच में एक बार उसने यह कहा, "धीरे...हूं...पैर फिसलेगा." पर खूब विचार करने पर भी मुझे कोई जवाब नहीं सूझा. मैं हंस पड़ा, फिर वह भी हंस दी.

फिर बहुत देर के बाद वह लड़की सुन ले, इतनी ऊंची आवाज मैंने कहा, "वह कौन है आपकी?"

"चचेरी बहन." इतना उत्तर देते समय भी उसका सीना धड़क रहा था अर्थात् वह उसको सुनाई पड़ा भी. वह जोर बोली. "मेरा नाम वासंती है...! और वह क्या? आप उसे 'आप' कहकर क्यों बुला रहे हैं?"

मैं कुछ नहीं बोला. तब वह वासंती को डांटकर बोली, अब हो गयी तुम्हारी मजाक शुरू?"

"हाय दैया! गुस्सा भी आ गया?" वह हमेशा की तरह सुरों खींचती सी बोली, "कल का दिन! फिर कौन आ रहा है मजाक करने?"

उसका चेहरा लाल हो गया.

मैंने अंजुली के फूल उसकी डाली में डाल दिये.

"मैं इसका चचेरा भाई हूं—समझी!" उधर महादेव जोर से बोला.

"ओह! सच?" वह फिर हंसने लगी.

फिर हम भी जोर से हंसने लगे. अब हम कुछ दूर हो गये थे. डाली नीचे रखकर वह सीढ़ी पर बैठ गयी.

वहां दूर महादेव की बकवास चल ही रही थी और बीच-बीच में वासंती का खिलखिलाकर हंसना....

बीच में उसने मेरी ओर चोर नजर से देखा. फिर बहुत देर तक हम एक-दूसरे की ओर देखते रहे.

मेंहदी लगी उसकी लंबी उंगलियां वेणी पर फिर रही थीं और चारों ओर अनंत कमल निःशब्द खिल रहे थे.

फिर हम उस तालाब से ऊपर आये. दूसरे तालाब में उतरे... फिर तीसरे... फिर चौथे... फिर उस कमल से भरे प्रचंड अहाते में बहुत बहुत घूमे और अंत में थककर पक्षियों की भांति एक तालाब के किनारे बैठ गये.

अब धूप पूरी तरह उतर गयी थी. गर्भगृह का सुनहरा कलश ऊंचे आसमान में झिलमिला रहा था. उस प्रकाश के गर्भ की किसी झिलमिली में असंख्य कमल मानो पानी पर हौले से खिल रहे थे.

पता नहीं कितना समय बीत गया.

▣

मंदिर में शाम की नौबत बज गयी. हम हड़बड़ाकर होश में आ गये.

कभी का अंधेरा छा गया था.

काले घुप ठंडे अहाते में नगाड़ा बज रहा था.

"अब चाची गुस्सा होंगी! ...वासंती सहमकर बोली, "क्या किया जाये अब? उधर सीमांतपूजन के लिए पंडितजी भी आ गये होंगे."

सदा चाचा का गुस्सैल चेहरा आंखों के सामने दिखने लगा.

अहाते के बाहर आकर हम सरपट चलने लगे. डाली लिये उसका हाथ थरथरा रहा था. मैंने पूछा, "मैं लूं डाली?" वह कुछ नहीं बोली. उसके मुंह से शब्द ही नहीं फूट रहा था. सीना धड़क रहा था.

फिर मैंने डाली उसके हाथ से ले ली.

अंधेरे में समुद्र गरज रहा था. धीरे-धीरे उसकी आवाज दूर होती गयी.

हम बागान में आये तो उसने डाली मुझसे ली और वे चटपट आगे चली गयीं.

औचक से हम क्षणभर रुके और अकेले-से उस खिन्न अंधेरे में चलने लगे.

शहनाई बज रही थी.

मंडप में जगमगाहट थी. भीड़ हो गयी थी.

और किसी की निःशब्द पुकार की भांति आकुल करने वाले उन सुरों पर लाखों कमल-पंखुड़ियां थरथरा रही थीं. □

(अनुवाद : चंद्रकांत बांदिवडेकर)

सपनों की रोटी

• राही मासूम रजा

वह इधर कई दिनों से, लगातार, अपने-आप को खोज रहा था. पर खोने वाला कुछ ऐसा खोया था कि खोजते-खोजते उसकी आंखें दुख गयीं, पर उसे अपना पता न चला.

आखिर मैं कहां जा सकता हूं? वह दिन-रात अपने-आप से कई सवाल करता. शायद मुझे कोई सरकारी नौकरी मिल गयी हो! और क्या, इस दुनिया में कुछ भी हो सकता है. अगर जनता पार्टी की सरकार बन सकती है और फिर वह पार्टी अंग्रेजी के तमाम अक्षरों में तकसीम हो सकती है और श्रीमती इंदिरा गांधी फिर वापस आ सकती है और चीनी 15 रुपये किलो मिल सकती है और अगर भद्दी फिल्मों पर सरकार एंटरटेनमेंट टैक्स ले सकती है और अगर मुसलमान अपना घर जलवाने, और अपने आपको कत्ल करवाने के लिए दंगे शुरू कर सकते हैं, तो वह सरकारी नौकरी क्यों नहीं कर सकता. तो उसने अपने आपको सरकारी ऑफिसों में ढूंढ़ने का फैसला किया.

परंतु चूंकि वह एक पढ़ा-लिखा जहीन आदमी भी था और किसी बड़े आदमी का रिश्तेदार भी नहीं था, इसलिए उसे कोई

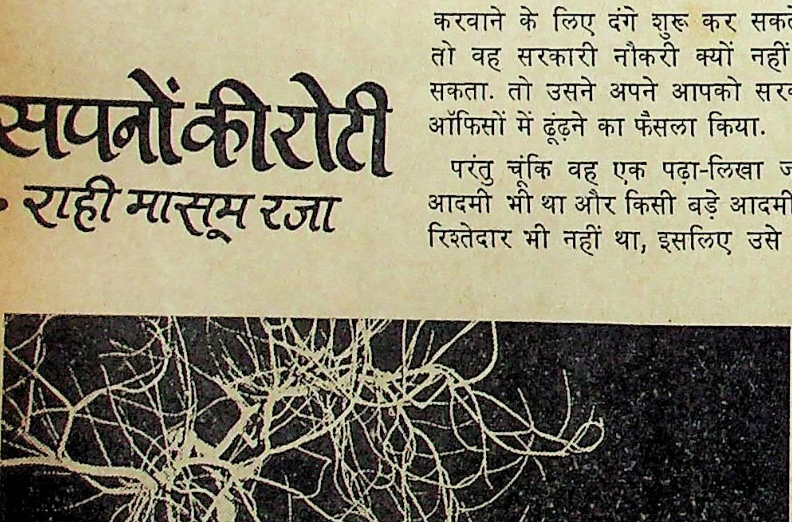
●सुधीर कुमार सक्सेना

> "जब तक चीनी पांच रुप किलो तक मिली, वह लश्टम-पश्टम सपने देखता रहा. फि चीनी साढ़े पांच रुपये किलो हुई. सात रुपये किलो हुई. पंद्रह रुपये किलो हो गयी, और नींद उड़ गयी. और जब नींद ही उड़ गयी तो कोई सपना क्या देखे, ठेंगा! नींद तो सपने की रोटी है ना."

अच्छी नौकरी तो मिली नहीं होगी. उसे भी मालूम था कि जिन नौकरियों में तन चाहे भले ही कम हो, पर ऊपर की आम के रास्ते हों, वह नौकरियां सरकारी आदमियों को मिलती हैं. . . .तो फि कहां हूंगा. इनकम टैक्स? सेल्ज टै पुलिस? मिनिस्टरों का चपरासी? रे में पार्सल क्लर्क? टिकट चेकर? रा ऑफिस? म्युनिसिपल बोर्ड में पैदा और मौत लिखने वाला क्लर्क? सर अस्पताल में कंपाउंडर?. . . ऐसी तो नौकरी ही नहीं, जिसमें ऊपर की आम न हो. किसी में कम है किसी में ज्या पर हर सरकारी नौकरी में ऊपर आमदनी की कोई टिप्पस भिड़ ही जाती इसी लिए तो सरकार तनख्वाह कम है. अगर ऊपर की आमदनी को तन में मिला दिया जाये तो इनकम टै देने में सरकारी नौकर का भुरकुस नि जायेगा और बेचारा भूखा मर जाये इसे कहते हैं सोशलिस्टिक पैटर्न! सर का पैसा भी कम जाता है और सर नौकर अल्लाह के फज्ल से साथ खैरि के जी रहे हैं. उसने तो अब तक यह सुना था कि किसी सरकारी नौकर जीने से तंग आकर आत्महत्या कर हो. तो साहब सरकारी नौकरी में न कोई बात तो होगी ही, नहीं तो तनख्वाह वाली सरकारी नौकरियों तरफ लोग भागें क्यों. . .

लेकिन अगर हर सरकारी नौकरी ऊपर की आमदनी का फुंदना टंका है तो फिर यह नौकरी उसे तो मिल सकती, क्योंकि मिनिस्ट्रियां अब ज्यादा हो गयी हैं कि मंत्रियों के रिश्ते

और उनकी सहायता करने वाले एमपियों और एम. एल. एयों और उनकी मदद करने वाले कारखानेदारों, दूकानदारों और टचपूंजिये मुकामी नेताओं ही के लिए नौकरियां कम पड़ने लगी हैं तो उस बिचारे को सरकारी नौकरी कैसे मिल सकती है!

वैसे उसमें एक और बहुत बड़ी खराबी भी थी जो सरकारी नौकरी के रास्ते में आड़े आती थी. उसका कोई धर्म नहीं था, उसकी कोई जात नहीं थी और हमारी सोशलिस्टिक सरकार धर्म और जाति को ठोंक-बजाकर देखे बिना किसी को नौकरी देती नहीं. क्योंकि मंत्री तो अलग-अलग जातियों के हैं. उनके सहायक एम. पी. और एम. एल. ए. भी अलग-अलग जातियों के हैं और उनके सहायक कारखानेदार, दूकानदार और टचपूंजिये मुकामी नेता भी अलग-अलग जातियों के हैं. तो सरकार अगर आंकड़े बराबर न रक्खे तो इन लोगों को यह बताये कैसे कि नौकरियों के सिलसिले में उनकी जाति के साथ कोई अन्याय नहीं हुआ! क्योंकि सरकार अगर उन्हें यह आंकड़े नहीं दिखायेगी तो आने वाले चुनाव में वोट कैसे पायेगी? क्योंकि सेकुलरिज्म हमारा सरकारी नारा अवश्य है. यह नारा बड़ा खूबसूरत और बड़ा रसीला और बड़ा मनभावन भी है, पर चुनाव के दिन में हम इस नारे को जरा गोल कर जाते हैं, टाले जाते हैं. हमारा सेकुलरिज्म हद से हद तैंतीस बरस नहीं तो तिरसठ बरस पुराना है. पर जातिवाद तो साहब हजारों बरस पुराना है. पुरानी शराब है और साहब छूटती नहीं है मुंह से ये कफिर लगी हुई. अब उस उल्लू की दुम फाख्ता को यह कैसे समझाता कि अरे भैया, जीना है तो किसी न किसी धर्म और न किसी न किसी जाति की उंगली पकड़ ले! निधर्मा मारा गया तो किसी पत्र-पत्रिका में खबर भी नहीं छपेगी!....

यकायक, अपने आपको खोजते-खोजते, उसे वह मास्टर साहब याद आ गये जो दर्जा चार के लड़कों को यह पढ़ा रहे थे कि धरती चिपटी है. किसी ने कहा, "मास्टर साहब यह क्या?" तो बोले, "जी, यह तो मैं भी जानता हूं कि जमीन गोल है. पर जितनी तनख्वाह मिलती है उसमें यही पढ़ाऊंगा कि चिपटी है."

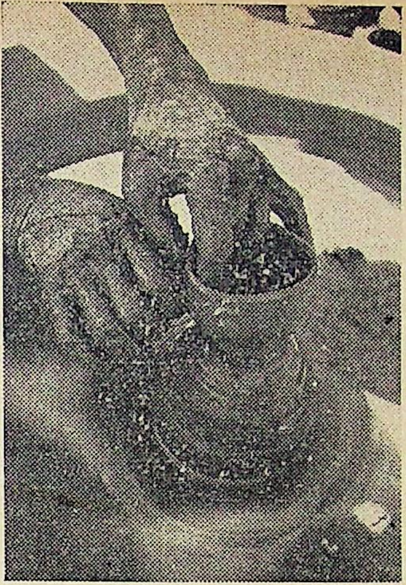

● **सुभाष परिहार**

पर वह उन मास्टर साहब जैसा तो था नहीं. उसे तनख्वाह न भी मिले, तब भी वह यही पढ़ाता रहेगा कि जमीन गोल है. और सरकार बच्चों को इस तरह की खतरनाक चेतना देने से डरती है. यदि उन्हें यह पता चल गया कि चिपटी दिखाई देने वाली यह धरती वास्तव में गोल है तो कल बहुत-सी टेढ़ी बातें भी उनकी समझ में आ सकती हैं और वह जवान होकर टेढ़े-सीधे सवाल कर सकते हैं, अर्थात सरकार की भलाई इसी में है कि लोग यह न जान पायें कि धरती गोल है? इसलिए वह टीचरों की तनख्वाह कम रखती है! लेकिन वह चूंकि यही पढ़ायेगा कि जमीन गोल है, इसलिए पढ़ाने की नौकरी उसे तो मिल ही नहीं सकती. पढ़ाने की नौकरी तो उन्हें मिलेगी जो ब्लैकबोर्ड पर श्री ऊँ या बिसमिल्लाह लिखकर फिजिक्स पढ़ाना शुरू करें! यानी वह पढ़ाने के काम का भी नहीं.

तो फिर मैं आखिर हूं कहां? वह अबकी इस प्रश्न से जरा डर-सा गया. क्या टेलिविजन पर तस्वीर दिखलायी जाये कि बावन-साढ़े बावन साल का यह आदमी गुम हो गया है. गुम होते वक्त उसकी एक जेब में पीएच. डी. की डिग्री थी, दूसरी जेब में नये उपन्यास के कुछ पन्ने थे. मुंह में नकली दांत थे. आंखों पर चश्मा था. घर से रोशनाई लेने निकला था. जिन साहब को मिले वह करीब के थाने में सूचना दे दें!

तो क्या उसकी सूरत अब भी वैसी होगी जैसी तब थी, जब वह रोशनाई खरीदने के लिए घर से निकला था? क्यों, सूरत क्यों बदली होगी? क्या पता उसने कोई चेहरे पर कोई और चेहरा लगा लिया हो, ताकि कोई जानने वाला पहचान न सके. हमारी फिल्मों में तो बराबर यही होता है. गाल पर एक मस्सा लगा लो तो कोई नहीं पहचानता.अगर वाकई ऐसा हो सके तो कैसा मजा आये! मालिक मकान किराया मांगने आये और हम गाल पर एक मस्सा जड़ के उसके सामने से मुस्कुराते निकल गये. अब तमाम लोग अपने बिल लिए हमें खोज रहे हैं और हम हैं कि गाल पर एक मस्सा चिपकाये मस्ती छांट रहे हैं, पर जीवन में मस्से का यह महत्त्व नहीं है. यह सोचकर वह उदास हो गया और उसे वह तमाम बिल याद आ गये जो तलवार की तरह उसके सर पर लटक रहे थे. और वह पल भर के लिए यह भूल गया कि वह तो अपने आपको तलाश कर रहा है. यदि वह जासूसी उपन्यासों का कोई प्राइवेट (और शायद लिमिटेड भी!) डिटेक्टिव होता तो कब का अपने आपको तलाश करके ठिकाने लगा चुका होता. क्योंकि उसकी सारी परेशानियों की जड़ यह थी कि वह कोई और या कुछ और नहीं था कि वह, वह था. सिर्फ वह! वही!

▣

शुरू-शुरू में, यदि उसने चाहा होता तो कुछ और भी हो सकता था, पर वह कुछ और नहीं हुआ. बात यह है कि तब वह जवान था. आंखें मजबूत थीं. सपने देख सकती थीं, तो उसने अपनी आंखों को कोई और काम सिखलाया ही नहीं. और फिर ऐसा हुआ कि सपनों का बाजार मंदा हो गया और जिंदगी बाजार का उतार-चढ़ाव होकर रह गयी. जब तक चीनी पांच रुपये किलो तक मिली, वह लश्टम-पश्टम सपने देखता रहा. फिर चीनी साढ़े पांच रुपये किलो हुई. सात रुपये किलो हुई. पंद्रह रुपये किलो हो गयी, और नींद उड़ गयी. और जब नींद ही उड़ गयी तो कोई सपना क्या देखे, ठेंगा! नींद तो सपने की रोटी है न! सपने आदमी की तरह सख्त जान नहीं होते. आदमी तो रोटी बिना कुछ

दिन जी सकता है. हिंदुस्तानी आदमी ने तो रोटी बिना जीने का विश्व रिकार्ड कायम किया है. दो-सवा दो सौ साल से रोटी बिना जी रहा है. पर सपने तो नींद बिना एक रात नहीं जी सकते. . .तो क्या वह भी अपने सपनों के साथ किसी श्मशान-घाट पर जला दिया गया होगा या किसी कब्रिस्तान में दफना दिया गया होगा?

इस सवाल ने उसे झिंझोड़ दिया. क्या यह भी हो सकता है कि मैं मर चुका हूं और मुझे अपने मरने की खबर न मिली हो? हां, हो क्यों नहीं सकता. इस दुनिया में सब कुछ हो सकता है भई! आदमी चांद पर जा सकता है, आदमी न्यूट्रॉन बम बना सकता है. आदमी, आदमी से नफरत कर सकता है, उसे कत्ल कर सकता है. उसके हाथों कत्ल हो सकता है. आदमी पंद्रह रुपये किलो चीनी बेच सकता है. आदमी श्रीमती गांधी को कुर्सी से हटा सकता है. आदमी उन्हें फिर कुर्सी पर बिठा सकता है. आदमी तो निहायत गड़बड़ चीज है. कुछ भी कर सकता है. कुछ भी हो सकता है. अगर मुझे अपने मरने की सूचना न मिली हो तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है! यह सोचकर उसने यह तय किया कि अपनी तलाश फिजूल है. घर लौट चलना चाहिए, तो वह घर लौट आया. और घर आकर उसने देखा कि वह तो गहरी नींद सो रहा है. अपने-आपको सोया हुआ पाकर उसने इत्मीनान का एक लंबा सांस लिया. . . .क्योंकि सोने का मतलब यह था कि वह कोई सपना देख रहा था. पंद्रह रुपये किलो चीनी के भाव के युग में भी वह सपना देख रहा था.

वह लेट गया. थोड़ी देर जागता रहा, फिर खुद अपने-आप में समा गया. ☐

● **10, देवदूत, बैंड स्टैंड, बांद्रा, बंबई-50**

● **राही मासूम रजा**

लघुकथा

चश्मदीद गवाह

▣ मनीषराय

रास्ते में खून बिखरा पड़ा है. किसी कार वाले ने किसी पैदल चलने वाले को ठोकर मार दी है और फर्राटे से धूल उड़ाता चला गया है. देखते-देखते काफी भीड़ इकट्ठी हो गयी है.

तभी थानेदार आ जाते हैं. रोबदार चेहरा, अधिकार मद में चूर लाल डोरे वाली आंखें. . . . .कलफ लगी तीन स्टारों वाली वर्दी. कुल मिलाकर रोबीला व्यक्तित्व.

घटना स्थल पर पहुंचते ही गरजते हैं, "किस हरामखोर की यह मजाल, मैं उसकी खाल खींच लूंगा."

"हुजूर लगता है वह किसी मंत्री की कार थी, उसका कुछ अजीब-सा नंबर था और सामने झंडे जैसा कुछ लहरा रहा था." किसी चश्मदीद गवाह ने जानकारी दी है.

थानेदार कुछ नरम पड़े, "ये पैदल चलने वालों को भी तो कोई तमीज नहीं है. न दायें देखते हैं न बायें. . . . .बस आंख मूंदकर चलते हैं, जैसे सड़क इनके बाप-दादों की हो. भला बताइए इसकी गलती के लिए. . . . (उनका इशारा घायल की ओर था, जो दर्द से बेहोश-सा हो रहा था.) एक शरीफ आदमी को बेकार परेशान होना पड़ेगा."

"नहीं हुजूर, वह मंत्रीजी की कार हो ही नहीं सकती. वह तो आयातित 'इंपाला' में चलते हैं. यह तो छोटी गाड़ी थी 'फियेट' जैसी. जरूर किसी सेठ-साहूकार की होगी." दूसरा चश्मदीद गवाह बोला है.

थानेदार के चेहरे पर रंगत आ गयी. वे मुस्कराये हैं, "मैं जानता था, मंत्रीजी या उनके सरकारी ड्राइवर ऐसी रेस ड्राइविंग करते ही नहीं, उनकी कार में तो स्पीड कंट्रोल मीटर भी लगा रहता है. जरूर यह किसी हरामखोर सेठ की कार होगी. साले सेठ का पता चल जाये, आखिर जायेगा कहां! उसने हजारों को चूसा है, मैं उसे चूस डालूंगा!"

"वह डी. एम. की कार हो सकती है साब! उसमें रेड लाइट लगी थी. सामने लाल तख्ती भी, जिसमें कुछ लिखा था. मैं जल्दी में नहीं पढ़ पाया." तीसरा गवाह बोला है.

"झूठ. . .सफेद झूठ!" थानेदार गरजे, "वह डी. एम. साब की कार हो ही नहीं सकती. हमारे डी. एम. तो कार रेस चैंपियन रह चुके हैं, वे ऐसी गलती कर ही नहीं सकते."

थानेदार अपना वाक्य पूरा कर ही नहीं पाये थे, उसी समय एक कांस्टेबिल दौड़ता हुआ आया. थानेदार को लंबा सेल्यूट देकर सूचना दी है, "हुजूर, वह कार एस. पी. साब की है. एस. पी. साब ने थाने में आपको अभी याद किया है."

थानेदार थाने भाग गये हैं. . . और घायल पड़ा तड़प रहा है. ☐

धारावाही उपन्यास : पहली किस्त

• रवींद्र कालिया

खुदा सही सलामत है

सुबह का समय था. शिवलाल नीम के पेड़ से दातौन तोड़कर गली के मुहाने पर लगे नल के पास बैठा दातौन कर रहा था. ज्यों ही नल खाली मिलता, वह कुल्ला करने लगता. अक्सर नल पर खूब भीड़ रहती थी. वह पानी का एक लोटा भरकर नल के पास ही बैठ जाता और घंटों दातौन करते हुए मलाईवाली या रुईवाली से बातें करता. मलाईवाली अस्सी से भी ऊपर थी. शाम को पाव भर मलाई एक थाली में रखकर बैठ जाती. वह अपना वैधव्य शांतिपूर्वक मलाई बेचते हुए काट रही थी. उसकी एक लड़की थी, जो अपने पति से झगड़ा करके महीने भर से लौट आयी थी. दिन भर दूर-दराज के रिश्तेदारों के यहां अपने पति की बुराई करना ही उसके जीवन का उद्देश्य हो गया था. वह शाम को थकी-हारी लौटती और अपनी मां को कोठरी के बाहर मलाई की थाली के साथ जिंदा पाकर बहुत खुश हो जाती.

शिवलाल को मलाई से बहुत इश्क था. वह शाम को खाना खाने के बाद सड़क तक आता और दो सौ ग्राम मलाई के ऊपर सौ ग्राम चीनी मिलाकर अम्मा के पास बैठकर ही मलाई खाता. अम्मा के बंधे-बंधाये ग्राहक थे. एक मरता तो दो पैदा हो जाते.

अम्मा सुबह पूजा-पाठ करके शाम के लिए अपनी थाली देर तक चमकातीं. शिवलाल अम्मा के चौतरे पर बैठा दातौन कर रहा था कि पुलिस का एक दीवान उसके पास आकर खड़ा हो गया, "यहां शिवलाल वल्द छोटेलाल कहां रहता है?"

"शिवलाल वल्द छोटेलाल या शिवलाल वल्द श्यामलाल?"

दीवान ने फाइल देखते हुए कहा, "शिवलाल वल्द छोटेलाल."

शिवलाल के चेहरे पर हवाइयां उड़ने लगीं. उसके हाथ कांपने लगे. दातौन हाथ से गिर पड़ा. उसने जल्दी से कुल्ला किया और बोला, "जरूर कोई गल्ती भई है सरकार. शिवलाल तो मेरा नाम भी है."

"वल्द छोटेलाल?"

"जी."

"तुम्हारे नाम सम्मन है." दीवानजी ने कहा. "तुम्हें मेरे साथ थाने चलना होगा."

शिवलाल ने सोचा, यह जरूर हरामजादी गुलाबदेई की ही कोई काली करतूत सामने आने वाली है.

"मगर हुजूर, मैं तो एक शरीफ इंसान हूं. आप मुहल्ले में किसी भी मर्द से दरियाफ्त कर लीजिए, मुझसे किसी को कोई शिकायत न होगी."

"तुम्हारे ऊपर चोरी का माल खरीदने का जुर्म है. उसी की तफतीश होगी."

"चोरी का माल?" शिवलाल भौचक्का रह गया, "हुजूर, मेरे पास कोई माल ही नहीं है, चोरी के माल की बात तो दूर रही. एक छोटी-सी चक्की है, जिसकी रसीद मेरे पास मौजूद है."

"फिजूल की बातें करके मेरा और अपना वक्त जाया मत करो. जल्दी से तैयार हो जाओ."

पुलिस को देखकर अम्मा की कोठरी के सामने भीड़ इकट्ठा होने लगी. गुलाबदेई भी दौड़ती हुई आयी, "का भवा?"

"शिवलाल पर चोरी का माल खरीदने का इल्जाम है." भीड़ में से किसी ने कहा.

"सुनो दीवानजी," गुलाबदेई ने आगे बढ़कर ललकारा, इनको आपने हाथ लगाया तो अभी मुहल्ले में फसाद हो जायेगा."

"यह मुंहजोर औरत कौन है?" दीवानजी ने पूछा और दिलचस्पी से उसकी तरफ देखने लगा.

"मेरी घरवाली है हुजूर."

"लगता है, इसे भी चोरी करके ही लाये हो." दीवानजी ने कहा. भीड़ में से कुछ लोग मुस्कराये, मगर दीवानजी की बात सुनकर अम्मा भड़क गयीं, "आपको सरम नहीं दीवानजी, ब्याहता औरत के बारे में गलत-सलत बातें करते!"

अम्मा की बात का भीड़ पर जादुई असर हुआ. पीछे से कोई लौंडा भीड़ में झुकते हुए चिल्लया, "मारो साले को!"

"इसने औरत की बेइज्जती की है."

"मारो . . .मारो. . .!" भीड़ में से कई लोग चिल्लाये.

दीवानजी ने भीड़ को अपने खिलाफ होते देख अम्मा के पैर थाम लिये, "अम्मा, शिवलाल को मेरे साथ जाना होगा."

"इसने गुलाबदेई की बेइज्जती की है मुहल्लेवालो! यह पूरे मुहल्ले की इज्जत का सवाल है." बुढ़िया अपनी झीनी साड़ी संभालती हुई खड़ी हो गयी. गुस्से से उसका चेहरा तमतमा रहा था.

तभी भीड़ में सुगबुगाहट हुई और पीछे से एक पत्थर उछला. पत्थर दीवानजी के कान को छूता हुआ दीवार पर जा लगा. दीवार से प्लास्तर झड़ गया और अंदर से लखौरी ईंटें चमकने लगीं.

सब लोग जान गये कि नफीस के अलावा कोई यह जुर्रत नहीं कर सकता.

दीवानजी ने फिलहाल वहां से खिसक जाना ही मुनासिब समझा. मगर वह व्यूह में घिरा हुआ था. भीड़ धीरे-धीरे मोटी होती जा रही थी.

"यह वही पुलिसिया है, जो एक दिन रात को गुलाबदेई को नोचकर भागा था." भीड़ में से किसी ने कहा.

"मारो साले को! घुसने न दो मुहल्ले में!" बशीर बोला. कट्टे बनाने में बशीर का कोई सानी न था.

इतने में मुहल्ले के युवा नेता सिद्दीकी साहब मजमे में आगे बढ़ गये, "देखिए दीवान साहब! आप किसी इंसान की बेइज्जती नहीं कर सकते. मैं अभी डी. एस. पी. साहब को फोन करता हूं. आप जबसे इस थाने में आये हैं, मुहल्ले वालों का जीना हराम कर रखा है. आप चोरों, डकैतों, जुआरियों से सरेआम पैसा लेते हैं और शरीफ लोगों को फंसाते हैं. देखता हूं, आप कैसे शिवलाल को हाथ लगाते हैं!"

'खुदा सही सलामत है!' यह कोई खबर नहीं है, क्योंकि खुदा तो जहां का भी होगा, आसमान का या धरती का, सही-सलामत ही होगा. सवाल तो सिर्फ बंदों की सलामती का है. बंदों की सलामती की तलाश करते रवींद्र कालिया ने इन्हें अपने उपन्यास के पात्रों में ढाला है. ये पात्र किसी एक गली के होते हुए भी एक गली, एक शहर या एक युग तक सीमित नहीं रहते, बल्कि पूरी इंसानियत का प्रतिनिधित्व करते हैं. ये आपके सामने आते हैं और अपनी छोटी-सी भूमिका निभाकर चले जाते हैं और पीछे छोड़ जाते हैं एक सवाल, बंदों की सलामती का सवाल.

अगस्त, अंक-2: 1980 में प्रकाशित 'हुस्नाबाई का भाषण' इस उपन्यास की शुरुआत थी. उस अंक में की गयी घोषणा के अनुसार रवींद्र कालिया के इस अप्रकाशित उपन्यास के पात्रों से 'सारिका' पाठकों का सबसे पहले परिचय कराने के लिए हम इस अंक से इस उपन्यास के चुनींदा अंश धारावाहिक रूप से प्रकाशित करने का सिलसिला प्रारंभ कर रहे हैं.

"सिद्दीकी साहब!"

"जिंदाबाद!"

सिद्दीकी साहब का भाषण सुनकर भीड़ में नयी चेतना आ गयी.

"दीवान की गुंडई. . ."

"नहीं चलेगी, नहीं चलेगी!" बच्चा लोग चिल्लाये.

सिद्दीकी साहब दीवानजी से चिढ़े हुए थे. पिछले माह उन्होंने ए. जी. ऑफिस के एक क्लर्क काजिम की साइकिल छुड़वाने का वादा करके उसके यहां कई अंडों का नाश्ता किया था, मगर दीवान ने साथ नहीं दिया, बोला, "साइकिल कचहरी से ही मिलेगी." वे भीड़ के आगे-आगे धोबी घुले कुर्ते-पाजामे में दपदप करते तेज कदमों से चल रहे थे.

दीवानजी ने मौके का फायदा उठाकर पास से गुजरती हुई एक मोटर साइकिल को रोका और उस पर मक्खी-की सी तत्परता से सवार हो गये. उस कठिन परिस्थिति में भी वह गुलाबदेई की तरफ देखना न भूले. किसी-न-किसी बहाने गुलाबदेई को थाने में बुलाकर साहब को वह खुश कर देना चाहते थे.

सिद्दीकी साहब हुजूम का नेतृत्व करते हुए कोतवाली की तरफ चल दिये.

▣

शिवलाल बेहद डर गया था. उसका दिल बेतरह धड़क रहा था और वह बार-बार अपने खुश्क होंठों को अपनी खुश्क जुबान से तर करने का प्रयत्न कर रहा था.

“ऐसा क्यों घबरा रहे हो. किसी का खून तो नहीं कर दिया.”

बदेई बोली, ‘‘पैसा देकर पट्टा खरीदा था, मुफ्त में तो नहीं.”

“चुप रह हरामजादी!” वह बोला, “अब तेरे मन की मुराद हुई. अब मैं तो जेल में चक्की पीसूंगा और तू बेधड़क अपना पिसवाना.”

गुलाबदेई को अब तक विश्वास नहीं आ रहा था कि चोरी का खरीदने पर शिवलाल को जेल हो सकती है.

शिवलाल के पास एक लोहे की खानदानी टूटी कुर्सी थी. वह के अंदर एक कोने में दुबककर बैठ गया. अपमान की आग धू-धू जल रहा था. चारों दिशाओं में उसकी बदनामी हो गी. हर कोई उसके नाम पर थू-थू करेगा और गुलाबदेई को लियां मनाने का अच्छा मौका मिल जायेगा. मौलाना शफी दिख जाता तो वह उसकी दाढ़ी नोच लेता. उसी ने एक ड़िये से परिचय करवाया था. किस गुंडे-मुस्टंडे से परिचय दिया!

अचानक शिवलाल ने चक्की पर से पट्टा उतारा और कुएं क दिया. उसके पास एक पुराना पट्टा था. वह उसे जोड़ने कि तभी खयाल आया कि यह भी कबाड़ी से ही खरीदा था. भागकर वह पट्टा भी कुएं की नजर कर दिया. उसकी समझ कुछ भी नहीं आ रहा था कि वह अपने प्राण कैसे बचाये. सौ रुपये का नोट उसने बहुत दिनों से बचा रखा हुआ था. उसने एक लौंडे घूमते हुए देखा तो बोला, “जा जरा चार इंची का बारह फुट पट्टा पैंतालिस नंबर का कांटा लेते आओ. रसीद भी बनवा लाना.”

सिद्दीकी साहब भीड़ के आगे-आगे मुस्कराते हुए आते दिखाई

“साले को ट्रांसफर कराके ही दम लूंगा.” नेताजी ने कहा, र तुमने चोरी का पट्टा खरीदा ही क्यों?”

“क्या बताऊं सिद्दीकी साब, मति ही मारी गयी थी. उस शफी ने मुझे गलत आदमी से मिला दिया.”

“बहरहाल घबराओ नहीं,” सिद्दीकी साहब ने पास खड़ी बदेई की तरफ देखते हुए कहा, “दारोगाजी तफतीश करेंगे. मेरे दोस्त हैं. मगर मुझे लगता है कि साला कबाड़िया खुद तो -पिलाकर बरी हो जायेगा, तुम्हारी ही तरह चार गरीब जायेंगे.”

रवींद्र कालिया

“अब आप ही हमारी रक्षा कर सकते हैं,” गुलाबदेई ने पल्लू से सिर ढांपते हुए कहा, “यह तो जेल पहुंचने के पहले ही प्रान तियाग देगा.”

“मैं भरपूर कोशिश करूंगा कि शिवलाल को सजा न हो. कुछ खर्च जरूर हो सकता है. हो सकता है, मुझे लखनऊ तक जाना पड़े. आई. जी. साहब से कहलवाना पड़ सकता है.”

“खर्च की आप परवाह न करें.” गुलाबदेई ने अपना पाजंब खोलते हुए कहा, “मैं अपने पूरे जेवर गिरो रख दूंगी.”

“नहीं, नहीं, ऐसा मत करें.” सिद्दीकी साहब ने कहा, “मैं सस्ते में ही निपटा लूंगा.”

“थाने से कोई आये तो मुझे बुलवा लीजिएगा.”

“अच्छा सरकार.” शिवलाल ने कहा.

शिवलाल भूखे पेट ही पुलिस की प्रतीक्षा कर रहा था. गुलाबदेई ने लाख कोशिश की, मगर शिवलाल ने अन्न नहीं छुआ.

▣

तीसरे दिन एक सिपाही आया और शिवलाल को अपने साथ थाने लिवा ले गया. गुलाबदेई सिद्दीकी साहब के घर की तरफ भागी. सिद्दीकी साहब घर पर नहीं थे. वह चक्की पर लौट आयी और बाहर खटिया पर बैठकर रोने लगी. गुलाबदेई को रोते देख उसका दो बरस का बच्चा भी उसके साथ-साथ रोने लगा.

घर में एक भी पैसा नहीं था. आटा जरूर था, मगर गुलाबदेई बिना खाये-पकाये ही पड़ी रही.

दूसरे दिन शिवलाल की जमानत का सवाल उठा. गुलाबदेई का कहीं कोई परिचय नहीं था. शिवलाल की मां सुबह-सुबह चली आयी थी. गुलाबदेई ने जब जमानत की बात की तो वह भड़क गयी :

“तू कुलच्छिनी कहां से चली आयी मेरे घर में. मेरे लड़के को ऐसा चूस लिया कि बेचारे का हाड़ ही बचा था. अब तेरे कुकर्मों से वह जेल में जा बसा.” शिवलाल की मां छाती पीटने लगी. “तू पैदा होते ही क्यों न मर गयी. खुद तो टिमाटर की तरह ललिया रही है, वह बेचारा अपने कर्मों को रो रहा है. इस छोटी-सी उमर में उसके दांत गिरने लगे, बाल सफेद हो गये, इस कलमुंही ने उसके खून में न जाने कैसी चीनी घोल दी.”

“अम्मा सिद्दीकी साहब बता रहे थे, कोई ऐसा आदमी तैयार करो, जो एक हजार की जमानत ले ले.”

“तुझे मौत क्यों न आयी. मेरी पहली बहू तो साक्षात देवी थी.”

“अम्मा यह सब बाद में हो जाई. पहले जमानत का परबंध कर लो.” गुलाबदेई बोली, “बाद में चाहे मुझे जो सजा दिवाई देव.”

गुलाबदेई ने बुढ़िया की बातों में समय नष्ट करना उचित न समझा. वह गली-मुहल्ले वालों से परामर्श कर लेना चाहती थी.

दिन भर की दौड़-धूप के बाद गलाबदेई के हाथ निराशा ही लगी थी, सिर्फ एक हजार रुपये की जमानत का इंतजाम न कर पा रही थी. हर आदमी अपनी असमर्थता प्रकट कर चुका था. मुहल्ले में जितने भी सम्मानित लोग रहते थे, सबने कोई-न-कोई बहाना बना लिया था. फारूकी साहब ने कहा कि वे सरकारी नौकर हैं, जमानत नहीं दे सकते. रुई वाली ने कहा कि वे लोग आज तक कचहरी नहीं गये. मलाईवाली ने कहा कि वह टैक्स नहीं

देती. सरकार उसे भी धर लेगी. एक प्रेसवाला था. बोला, मेरा तो सब कुछ कज का है. कर्ज देने से पहले बैंक ने लिखवा लिया था कि वह किसी की जमानत नहीं देगा.

गुलाबदेई को अपनी असली हैसियत का भास हो गया. उसे लगा, समाज में उसकी कोई स्थितिनहीं. शिवलाल के प्रति उसका मन बहुत आर्द्र हो आया.

आखिर गुलाबदेई को मास्टरजी का खयाल आया. मास्टर लक्ष्मीशंकर श्रीवास्तव जब भी चक्की पर आते थे, हमेशा आदर्शों की बातें करते थे. शिवलाल भी उनका बहुत आदर करता था.

शिवलाल बताया करता था—"मैंने मास्टरजी को अपनी आंखों से बूढ़े होते देखा है. डी. एम. साहब की गाड़ी उनके यहां खड़ी रहती थी. ट्यूशन करते थे उनके यहां, मगर शर्त रख दी थी कि आपकी गाड़ी ले आयेगी और छोड़ जायेगी. संतान भी ईश्वर ने बहुत समझदार दी. बड़ा लड़का फैक्ट्री में मैनेजर है और छोटे का अपना व्यापार है."

गुलाबदेई ने सोचा, क्यों न मास्टर साहब के सामने अपनी बिथा कहे. वह अंतिम ठौर मानकर मास्टर साहब के यहां गयी. मास्टर साहब बाहर चौंतरे पर बैठे एक किताब पढ़ रहे थे. गुलाबदेई को देखकर अपनी भवें नाक के केंद्र में लाते हुए बोले, "क्यों बहू, कैसे आयी हो?"

"एक तकलीफ देने आयी हूं. आशा है, आप निराश न करेंगे."

मास्टरजी कुर्सी से उठ गये. बोले, "अंदर आकर इत्मीनान से अपनी तकलीफ बताओ."

गुलाबदेई अंदर की तरफ चल दी. मास्टरजी अपनी छड़ी उठाये उसके पीछे-पीछे. उन्होंने गुलाबदेई की पीठ थपथपाते हुए कहा, "यहीं दालान में बैठते हैं. बैठक का तो ताला भी मुझसे न खुलेगा."

गुलाबदेई एक कुर्सी के पास नीचे ही जमीन पर बैठ गयी. मास्टरजी जिद करने लगे कि उसे मोढ़े पर ही बैठना चाहिए. उन्होंने गुलाबदेई को बांह से पकड़ा और उसे उठाने लगे, "हमारे यहां कोई भेद-भाव नहीं. सुहागिनें यों जमीन पर नहीं बैठतीं."

गुलाबदेई को लगा, जैसे लकड़ी के हाथ उसे छू रहे हैं. उसकी बांह पर झुरझुरी-सी हुई. मास्टरजी के अनुरोध को वहीं समाप्त करने के इरादे से वह तुरंत मोढ़े पर बैठ गयी. घबराहट में उसका पल्लू नीचे गिर गया.

मास्टरजी की निगाहों से ही उसे लगा कि पल्लू खास जगह पर नहीं है.

"देखो बेटे, हमेशा संभलकर बैठना चाहिए. अब ऐसा जमाना नहीं रहा कि आप अपने बदन के प्रति लापरवाह रहें." पकड़े जाने पर मास्टरजी ने कहा, "मैंने अपनी बहुओं को सख्त हिदायत कर रखी है कि वे बिना बाहों का ब्लाउज न पहनें. हमेशा सिर पर पल्लू रखें."

गुलाबदेई ने तुरंत सिर पल्लू से ढंक लिया.

"अब बताओ, क्या बात है." मास्टरजी ने छड़ी टांगों के बीच कर ली और उसकी मूंठ पर मुंह टिकाकर बोले, "शिवलाल के बारे में मालूम हुआ था. मैंने कभी नहीं सोचा था, वह चोरी-चमारी भी करता होगा. जो आदमी चोरी करेगा या चोरी का सामान खरीदेगा, उसे फिर उसके परिणाम भी भुगतने होंगे. मैं अक्सर देखा था कि कोल्हू के बैल की तरह काम पर तो वह तुम्हें लगाये था और खुद खटिया पर पड़ा रहता था. सच पूछो तो मैंने उसे खटिया पर ही देखा. हो सकता है, उसे कोई रोग हो. महज आलसी भी हो सकता है. इस आलस ने हमारे पूरे को खोखला कर दिया, नहीं तो हमारा प्रदेश कितना विश्व के अनेक देश, जनसंख्या, आकार व प्राकृतिक साधनों में प्रदेश से छोटे हैं, मगर हमारे प्रदेश की आर्थिक दुर्दशा तुम रही हो. . . . ."

मास्टरजी बोले जा रहे थे और गुलाबदेई ठगी-सी उन्हें जा रही थी. वह मास्टरजी से प्रार्थना करना चाहती थी, पर संबोधन उसे नहीं मिल रहा था. आखिर वह बोली, "बाबूजी, गलती करते हैं और बड़े उन्हें मुआफ करते हैं और अब रक्षा आप ही करेंगे."

"कौन किसकी रक्षा करता है!" मास्टरजी ने अपने हाथ आसमान की तरफ उठाते हुए कहा, "कोई किसी की रक्षा कर सकता. सब पूरब जन्मों का लेखा है."

गुलाबदेई को आशा नहीं थी कि मास्टरजी इस तरह पर बात डालकर मुक्त हो जायेंगे. वह अनुनय करती हुई "बाबूजी, नेताजी बता रहे थे, कोई जमानत ले ले तो वे बाहर जायेंगे."

"मेरी मानो तो उसे कुछ रोज जेल की हवा खाने मास्टरजी ने कहा, "तुम्हारा भी कितना अपमान करता चार दिन अंदर रहेगा, होश ठिकाने आ जायेंगे. मैंने उसे खुद है तुम्हें डंडे से पीटते हुए. ऐसे राक्षस के लिए जेल ही ठीक जगह है

गुलाबदेई रुंआसी हो गयी, बोली, "बाबूजी, है तो अपना मर्द. औरत की तो हर तरफ दुर्दशा है. वह घर में नहीं हैं तो पूरा काटने दौड़ता है. अपनी ही सांस से डर लगता है."

"तू नादान औरत है. बदतमीजी की सजा तुम तो उसे दे सकतीं और जब सरकार दे रही है तो तुम उसमें बाधा पहुंचा हो!"

गुलाबदेई ने देखा कि यहां दाल न गलेगी. वह निराश-हता उठी तो मास्टर लक्ष्मीशंकर श्रीवास्तव भी उठ खड़े हुए. उठते वे गिरते-गिरते बचे. गुलाबदेई का कंधा थामकर किसी तरह से बचे.

"यह बुढ़ापा भी नरक है." वे गुलाबदेई के कंधे पर अपना डालते हुए बोले, "दस मिनट भी नहीं बैठा कि टांग सो गयी

मास्टरजी लंगड़ाते-लंगड़ाते गुलाबदेई के साथ चलने दरवाजे तक पहुंचते-पहुंचते उनकी टांग ठीक हो गयी. गुलाबदेई कमर के नीचे थपथपाते हुए बोले, "तुम घबराओ नहीं, जरूरत तो मैं खुद जाकर शिवलाल को छुड़ा लाऊंगा."

गलाबदेई ने पीछे मुड़कर भी न देखा. मास्टरजी को नमस्कार किये उदास कदमों से चक्की की तरफ चल दी.

क्रमश:

~~~ अगले अंक में ~~~

मिलिये हैदरी बी से. . .एक
विद्रोही चरित्र. . .एक अनूठा विद्रोह
~~~

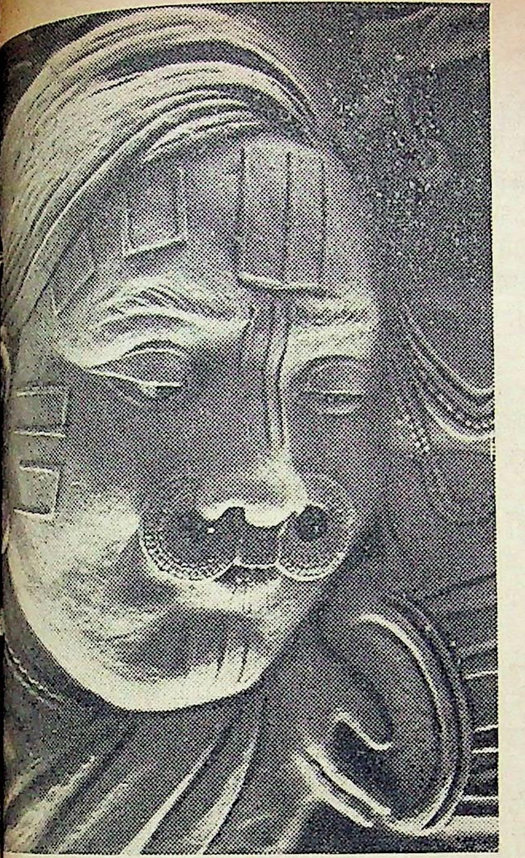

● आर. के. गोयल

झा का गांव डबरू, दमकड़ी गांव के पिछवाड़े की गहरी ाई के पार वाली ऊंची चोटी की दूसरी तरफ, एक खुले छोटे मैदान में स्थित है. इस गांव में केवल तीन घर हैं. ही ओझा खानदान के. हर घर के पास अपनी जमीन है और के लिए अपना-अपना इलाका. दमकड़ी, पहरुआ और सुमेरू ओझाओं के अधिकार में हैं. ऊँ श्रीं ओझा का तांत्रिक नाम सली नाम है हनुमान स्वामी, लेकिन असली नाम की जान- बहुत कम लोगों को है.”

ोटी को पार करते ही जब दिनेश, डॉ. दादा और मंगत के ड़ों को पार करके खुले में दाखिल हुआ तो सामने का दृष्य र स्तंभित रह गया. तीन घरों में से पहले घर के आंगन में र्दन-कटी भेड़, पिछले पैरों से पेड़ के तने के साथ लटक रही सकी गर्दन से, नीचे पड़े बर्तन में टप-टप खून टपक रहा था. और बकरियों की कुछ खालें, आंगन को चहारदीवारी की घेरने के लिए गाड़ी गयी आदमकद बल्लियों पर सूख रही थीं. दादा जो आगे-आगे चल रहे थे, एक क्षण के लिए ठिठके और “अभी-अभी कुछ मिनट पहले ही देवता को बलि दी गयी है.”

“दिनेश को लगा जैसे उसका गला खुश्क हो गया है. फिर भी पूछ ही लिया, “बलि. . .? कैसी बलि?”

डॉ. दादा को दिनेश की नासमझी पर गुस्सा आ गया. वाज में तल्खी भरकर उबले, “बलि कैसी होती है!”

दिनेश, डॉ. दादा की परेशानी को ताड़ गया और चुप्पी लगा

डॉ. दादा भी उसकी चुप्पी से निरामिष हो गये.

जब ओझा के घर का दृश्य कुछ कदमों पर रह गया तो दादा थोड़े-थोड़े शब्दों में दिनेश को समझाने लगे, “सामने देख रहे हो ना? इन तीन घरों में तीन तांत्रिक निवास करते हैं. महीने की पहली अमावस्या को इन तीनों घरों में देवता को अलग-अलग बलि समर्पित की जाती है और रात को सितारे जगमगाने के बाद विशेष पूजा होती है.

दिनेश ने दादा का कथन ‘सत्य वचन है!’ की तरह बिना किसी तर्क के शिरोधार्य कर लिया. दरअसल दिनेश के पास अब कुछ पूछकर उसका उत्तर पाने की स्थिति ही नहीं रही थी. बल्लियों को बीच से फाड़कर बनाया गया फाटक बिल्कुल सामने था, जिसकी बिरलों में से अंदर का दृश्य साफ नजर आ रहा था.

अभी वे तीनों कुछ क्षण ही खड़े हुए होंगे कि ओझा का एक अंगरक्षक बंदूक हाथ में लिये मकान के अंदर से बाहर आया और फाटक की तरफ बढ़ने लगा. शायद उन तीनों को उतराई उतरते देख वह बंदूक लेने अंदर चला गया था.

अंगरक्षक को प्रणाम करके डॉ. दादा ने पूछा, “ऊँ श्रीं जी हैं?”

अंगरक्षक ने पहचान की-सी मुस्कान चेहरे पर लाकर स्वीकारात्मक सिर हिला दिया.

“कहां हैं?” डॉ. दादा ने इधर-उधर झांककर दूसरा सवाल किया.

“पूजा में बैठे हैं!” बोलकर अंगरक्षक ने फाटक खोल दिया और आश्वस्त होकर अंदर लौट गया.

थोड़ी देर बाद, मरझाये सफेद फूल-सा चेहरा लिये एक बुढ़िया बाहर निकली. बुढ़िया को देखते ही डॉ. दादा और मंगत ने कमर से झुककर सलाम किया. दिनेश ने भी हाथ जोड़ दिये. बुढ़िया ने दादा को पहचानकर आशीर्वाद का हाथ उठाया और बांस के मोढ़ों पर बैठने का इशारा करके वापस लौट गयी.

ऊँ श्रीं ह्रीं

• राकेश वत्स

तराई के जंगल, जंगल के आसपास बसे गांव, गांवों में आतंक और आतंक के पीछे का अंधविश्वास. अंधविश्वास का इलाज तंत्र–मंत्र और तांत्रिक ओझा. क्या आदमखोर सिर्फ जंगली जानवर ही होते हैं? फिर ये रायसाहब, सरपंच महाजन और तांत्रिक ओझा ऊँ श्रीं क्या हैं? प्रस्तुत है दीवाली की रात के अंधेरे में सिद्धि की होड़ में लगी हुई अघोरियों और तंत्रसाधकों की रहस्यमय दुनिया.

ग़ज़ल

▣ आलम 'खुरशीद'

मुट्ठी में धूल भर के हवा में उछाल दो.
तुम अपने इंतशार[1] की कोई मिसाल दो.

तनहाइयों में सांप न बनकर तुम्हें डसे,
दिल में छुपा है जो उसे बाहर निकाल दो.

ऐसा न हो खुद अपना गला घोंटना पड़े,
बदनाम ख्वाहिशों को न इतना उबाल दो.

मौजों की ताब लाओ गहराइयों में जाओ,
मोती जो चाहते हो समंदर खंगाल दो.

लहरों के इज़तराब[2] से सुनना कहानियां,
खामोश झील की तरफ पत्थर उछाल दो.

गोशे में इक ज़ेहन के हमेशा रहेगा वह,
ये और बात है, उसे बातों में टाल दो.

[1] इंतशार–तितर-बितर होना
[2] इज़तराब–बेचैनी, बेकरारी

दिनेश जब मोढ़े पर बैठा तो उसकी नजर मकान की बगल के एक और दृश्य पर जा पड़ी. काले पत्थरों की शिलाओं से बनी छत के नीचे लाल पत्थरों का एक मंदिर-सा बना था. मंदिर की दिखाई दे रही बगल की दीवार पर बहुत ही डरावने रंग-बिरंगे चित्रों के चेहरे चमक रहे थे. अपने अंगों को कई किस्म के गाढ़े रंगों से सजाये उन चेहरों के सामने ओझा समाधिस्थ बैठा था. मंदिर से थोड़ा हटकर, बंदूक को दोनों हाथों में मजबूती से पकड़े, बड़ी ही चौकस और समर्पित मुद्रा में दूसरा अंगरक्षक खड़ा था.

"पूजा की हालत में ओझा की जान को बड़ा खतरा होता है!" डॉ. दादा फुसफुसाती आवाज में दिनेश को समझाने लगे, "सुना है, अगर कोई आदमी पूजा करते हुए किसी ओझा की हत्या कर दे तो ओझा की सारी शक्ति और तमाम सिद्धियां हत्या करने वाले के हाथ में आ जाती हैं. इसलिए पूजा के वक्त ओझा की रक्षा के कड़े प्रबंध किये जाते हैं. देखा नहीं था, ओझा की पत्नी ओझन हमें पहचानने आयी थी. हमारे साथ तुम हो ना. परदेसियों पर ये लोग बिल्कुल भी विश्वास नहीं करते. इसीलिए थोड़ी घबराहट हुई होगी. समझ गये ना?"

दिनेश का ध्यान भंग हो गया, जब दो आदमी टंगी हुई भेड़ को खोलकर उतारने लगे. उताकर वे भेड़ को आंगन के कोने में बनी छोटी-सी झोंपड़ी में ले गये. फिर एक आदमी लौट आया और जिस कड़ाही में खून इकट्ठा किया गया था, उसे उठाकर मकान के बगल वाले कमरे में ले गये.

मंगत को पता नहीं क्या हुआ कि वह मुंह में आधी लार को गटककर बोला, "अब देउता का परसाद लोखरू बनेगा!"

सचमुच थोड़ी देर के बाद ही कमरे के अंदर से मादक उठने लगी और मंगत उस गंध को नाक के जरिये ज्यादा से ज्या पेट में खींचने की कोशिश करने लगा, लेकिन इस बात का रखकर कि सांस खींचने से कोई अभद्र आवाज न निकले.

इसी बीच ओझा समाधि तोड़कर आम हालत में आ उसने सामने जल रही धूनी से धुआं छोड़ती लकड़ी उठायी, सुलगते हुए सिरे से धरती पर एक षटकोण-सा बनाया और हुआ चेहरा लिये उन तीनों की तरफ मुड़ा.

ओझा को अपनी ओर आता देख डॉ. दादा और मंगत हो गये. ओझा के निकट आते ही उन्होंने ओझा का वि आशीर्वाद लिया. दिनेश ने भी कर्त्तव्य पूरा किया. ओझा आशी देकर बैठने का इशारा करके अंदर चला गया.

थोड़ी देर बाद एक सेवक ओझा के लिए बांस की बनी आ कुर्सी रख गया. जब ओझा आया, तो उसके चेहरे के रंग घुल थे और उसने लाल चोगा पहन रखा था. सिर के बाल सु जाने के लिए इधर-उधर बिखर गये थे.

ओझा ने बैठते ही, अपनी शायद नशे के कारण लाल आंखें पूरी खोलकर दादा की ओर देखा. दादा उस देखने अभिप्राय समझ गये और सिर झुकाकर बोले, "मास्टरजी आ दर्शन करना चाहते थे, इसलिए आपको बेवक्त जहमत दी है

दिनेश का खयाल था कि डॉ. दादा ही पूरी बात समझा दें लेकिन जब उनकी टिप्पणी सुनकर ओझा की आंखें दिनेश की त मुड़ीं तो दिनेश को ही बात साफ करनी पड़ी. वह निर्विलंब की हबड़ा-दबड़ी में खड़ा हो गया और बोला, "हम लोग इलाके की समस्याओं के बारे में विचार-विमर्श करने के लि एक जगह इकट्ठे हो रहे हैं, आपसे निवेदन करने आये हैं. आप हमारी इस मीटिंग में दर्शन दें."

सुनते ही ओझा की आंखें और भी चौड़ी हो गयीं. इस इला में रायसाहब की इजाजत लिये बिना इस तरह का साहस करने घटना उसके लिए बिल्कुल नयी थी. वे छूटते ही बोले, "कै समस्याएं?"

"यही, जंगल के आसपास के इलाके के लोगों के आम जीव की समस्याएं!" दिनेश ने उतनी ही तेजी से जवाब दिया.

"हम लोग से मतलब?" ओझा ने दूसरा सवाल किया.

"सरपंच रामदासजी की पंचायत और इस संरक्षित जंग के आसपास बसने वाले प्रायः सभी गांवों के लोग."

▣

सुनकर ओझा के माथे की त्योरियों की संख्या बढ़ गयी. उन दिनेश को बैठ जाने का इशारा किया और सिर के बालों को र की तरह बटा देकर जूड़े के रूप में समेटता हुआ कुछ सोचने निमग्न हो गया. फिर सहसा मुंह में जो कुछ चबा रहा था, उस थूक दायीं तरफ थूककर बोला, "रायसाहब से मिले?"

"जी नहीं, उनसे तो अभी नहीं मिल सके." दिनेश ने तम से जवाब दिया.

"क्यों नहीं मिले?. . .इतना बड़ा कदम उनको मिले बिना ही! ओझा मंदिर की दीवार पर बने चेहरों की तरफ घूरता हुआ का लगा.

दिनेश के मन में आया कि कहे कि जिस दरिंदे के शोषण के खिलाफ राय तैयार करनी है, उससे मिलने और उसकी राय लेने का मतलब? लेकिन डॉ. दादा ने उसके चेहरे का भाव समझकर इशारा करके उसे चुप करा दिया. दादा ने बीच में पड़कर बिगड़ती बात संभाली, "अजी आपकी इजाजत के बिना उनसे कैसे मिल सकते थे?"

डॉ. दादा की बात सुनकर ओझा थोड़ा शांत हुआ. वह बांधे बालों को खोलकर उंगलियों से सुलझाने लगा. जैसे-जैसे बाल सुलझते जा रहे थे, ओझा का चेहरा और भी भयावना होता जा रहा था और वह जुगाली करने की तरह मुंह में रखी कोई सुगंधित चीज चबाये जा रहा था.

इसी समय रसोई के अंदर से पहले वाले आदमियों में से एक निकला और बांस की बनी एक तिपाई चारों के बीच रखकर लौट गया. थोड़ी देर बाद दूसरा आदमी आया और पत्तों के दोनों में खीर की तरह जमा हुआ, कत्थई रंग का लुखारू सबके सामने परोस गया. लुखारू को देखते ही मंगत के मुंह में फिर पानी भर आया. दिनेश को लगा जैसे लुखारू में से झुलसे हुए खून की बू आ रही है. वह समझ गया कि अभी-अभी जो भेड़ का खून इकट्ठा किया गया था, यह उसी का बना हुआ पदार्थ है.

ओझा ने पदार्थ परस जाने पर आसमान की तरफ मुंह करके, दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम किया और हाथ से सबको चालू हो जाने का इशारा करके खुद पदार्थ पर भूखे भेड़िये की तरह टूट पड़ा. उसने तीन-चार ग्रास में ही दोना खाली कर दिया. मंगतराम ने भी ओझा की तरह ही पदार्थ निगल लिया. पर डॉ. दादा उसे धीरे-धीरे खाते रहे. दिनेश ने उसे बिल्कुल भी नहीं छुआ.

ओझा ने भौंहें टेढ़ी करके दिनेश की तरफ देखा, जैसे पूछ रहा हो, देवता के इस प्रसाद का अनादर क्यों? दादा ने, 'मास्टरजी शुद्ध शाकाहारी हैं!' कहकर ओझा की भौंहें सीधी कर दीं.

ओझा का इशारा पाकर पास खड़ा परोसने वाला आदमी अंदर गया और पतले कागज जैसी दो चौड़ी-चौड़ी रोटियां और लाल रंग का प्रसाद लाकर दिनेश के सामने रखकर फिर पहले की तरह बाजू छाती पर समेटकर खड़ा हो गया.

डॉ. दादा ने दिनेश को समझाया, "चावल के आटे से बने पटांडे हैं और मकई के आटे से बना मीठा हलुआ. तुम इसे शुद्ध आहार समझकर बेझिझक खा सकते हो.

दिनेश ने पटांडे का टुकड़ा सब्जी की तरह प्रसाद के साथ मिलाकर मुंह में रखा तो वह उसे बुरा नहीं लगा. उसने बाकी के पटांडे भी खुशी से खा लिये.

आदमी ने वह कत्थई पदार्थ एक बार फिर ओझा, डॉ. दादा और मंगत को परोसा. तीसरी बार डॉ. दादा ने हाथ जोड़कर मना कर दिया. चौथी बार वह सिर्फ ओझा को ही परोसा गया. ओझा ने वह पदार्थ पांचवीं बार भी लिया. इसके बाद सबको बिना दूध की अदरक वाली चाय परोसी गयी. चाय के साथ एक-एक गुड़ का टुकड़ा भी.

चाय खत्म होते ही ओझा ने हुक्म सुनाया, "पहले रायसाहब से मिलो और जो वे हुक्म दें, मुझे बताओ. इसके बाद सोचेंगे कि समस्याएं क्या हैं." हुक्म सुनाते ही वह खड़ा हो गया और बिना किसी उत्तर की प्रतीक्षा किये अंदर चला गया.

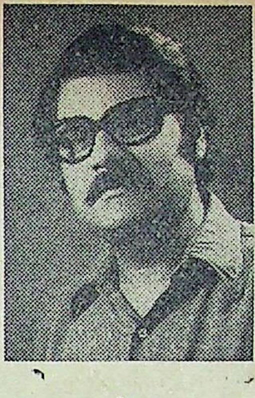

● राकेश वत्स

"आओ अब चलें!" बोलकर डॉ. दादा आगे-आगे हो लिये. अंगरक्षक की नजरें उनका काफी दूर तक पीछा करती रहीं. फिर पेड़ों का झुरमुट पार करते ही डबरू गांव आंखों से ओझल हो गया. लेकिन उसका सम्मोहन सब पर कायम रहा. ऐसा सम्मोहन जो दादा के शब्दों में सिर्फ जादू-टोने का ही हो सकता है, किसी दूसरी चीज का नहीं.

गहरी खाई की उतराई उतरते वक्त दिनेश को लगा जैसे पहाड़ की चोटियां और पेड़-पौधे उसके इर्द-गिर्द घूम रहे हैं. डॉ. दादा की भी आंखें चढ़ने लगीं और मंगत के भी पांव झूमने लगे.

डॉ. दादा समझ गये कि इस बार प्रसाद का प्रभाव बहुत जल्द शुरू हो गया है. उन्होंने सबको एक पेड़ की जड़ों पे रुक जाने के लिए कहा. रुकते ही मंगतराम खिलखिलाकर हंसने लगा. डॉ. दादा भी उसे हंसता देख आपे से बाहर होकर ठहाके मारने लगे. लेकिन दिनेश उनकी हरकतें देखकर गंभीर हो गया.

दिनेश को गंभीर देखकर डॉ. दादा ने हंसी ही हंसी में उसे समझाया, "इस बार देवता के प्रसाद में भांग बहुत ज्यादा तेज है. तुम्हारे प्रसाद में तो नाममात्र की होगी. थोड़ी देर यहीं विश्राम करना होगा. नशा थोड़ा कम होगा तब चलेंगे."

दिनेश समझ गया कि उसका उत्तरदायित्व बढ़ गया है. सचमुच में नशा अजीब था. डॉ. दादा और मंगत तो पहाड़ी बोली में चीख-चीखकर किसी को गालियां भी बकने लगे थे. दिनेश को लग रहा था जैसे पहाड़ों के घूमने के साथ-साथ पास ही कोई पनचक्की भी चल रही है, जिसकी आवाज ट्रैक्टर की आवाज की तरह सारी घाटी में गूंज रही है.

इसके बाद तीनों को गहरी नींद आ गयी. वह नींद तब जाकर टूटी जब सरपंच रामदास ने उन्हें जगाया. जागने के बाद सबने देखा—सूरज ढलने की तैयारी कर रहा था.

अब सब सरपंच के संरक्षण में गांव लौट रहे थे. सरपंच दिनेश को समझा रहा था, "ओझा का प्रसाद तो चखना चाहिए, क्योंकि उसमें परियां स्वर्ग से लाकर सोमरस डाल जाती हैं और इसका सेवन करने वाला आदमी इंद्र महाराज की सेवा में सीधा स्वर्ग पहुंचता है. □

● सरस्वती कॉलेज, अंबाला छावनी (हरियाणा)

यह रचना 'राजपाल एंड संस,' कश्मीरी गेट, दिल्ली—से राकेश वत्स के शीघ्र प्रकाश्य उपन्यास 'जंगल के आसपास' में समाहित है.

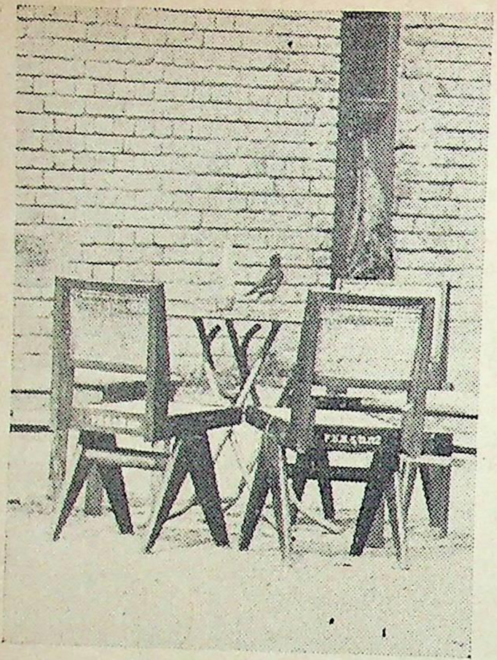

उस दिन बड़े साहब ने मुझे सहसा बुलाया और कहा कि नौ बाबू लोगों की भर्ती के लिए तुम तुरंत जबलपुर चले जाओ. हमारा क्या था—हम तो जामवंत और हनुमान की किस्म के प्राणी हैं; जैसे ही सुग्रीव नामक राजा ने कहा कि लंका नाम की नगरी की दिशा में प्रस्थान करना है, वैसे ही लगे अटैची लगाने और बिस्तर बांधने. वैसे भी अपने इस जीवन काल में हम कभी जबलपुर नहीं गये थे और उस नगरी को देखने की उत्कट इच्छा थी जहां एक ओर भेड़ाघाट है और दूसरी ओर हरिशंकर परसाई, प्रकृति और पुरुष—दोनों साथ साथ. हम तैयार हो गये और निश्चित तिथि को निश्चित समय पर निश्चित रेलगाड़ी को पकड़ने के लिए खड़े हो गये.

अपनी पुश्तैनी आदत के मुताबिक रेलगाड़ी जो थी, वह चलने के समय से कोई पांच मिनट पूर्व प्लेटफार्म पर लगायी गयी, हालांकि असलियत यह थी कि सारा दिन वह इसी स्टेशन पर यार्ड में खड़ी रहती थी. रेलवे के कर्मचारी शायद इतनी लंबी यात्रा पर निकलने वाली गाड़ी को ज्यादा से ज्यादा विश्राम देना चाहते थे. रेल पकड़ने की प्रक्रिया में खाकसार को सहसा महसूस हुआ कि खाकसार की पत्नी जो है, वह आज जरूरत से कुछ ज्यादा ही भावुक होती जा रही है. बात यह है कि इधर जब से रेल में दुर्घटनाओं की संख्या बढ़ी है,

भरती: मेरा पहला अनुभव

· रवींद्रनाथ त्यागी

त्नियां अपने पतियों को रेल से विदा करते समय काफी होती हैं. यह दुख उन पत्नियों को और भी अधिक होता है, की दूसरी शादी की तो उम्र नहीं रही और बच्चे जो हो गये सो अलग. खाकसार की प्रियपत्नी इसी श्रेणी में आती थी. मैंने का हौसला बुलंद किया, पारिवारिक पेंशन, ग्रेचुटी और इंशो- की याद दिलायी और अंत में चलकर यह भी कहा कि अगर हो भी गया तो क्या——कोई वह अकेली थोड़ी ही होगी, जो वैधव्य का परम सुख लूटेगी; इस गाड़ी में बैठे जितने भी विभिन्न के पति हैं, उन सभी की विभिन्न किस्म की पत्नियां भी वैसा सुख लूटेंगी. इस तर्क से पत्नी का मनोबल अचानक बढ़ गया. तनया सीता की परंपरा को ध्यान में रखते हुए जब उसने साथ चलने का आग्रह किया तो खाकसार ने जवाब दिया कि यपुत्री, जैसा कि तू भलीभांति जानती है, सर्दी की ऋतु में पति है, जो पत्नी के साथ नहीं रहना चाहता? मुझे तो आश्चर्य है कि रामचंद्रजी को सीता के विरह में वर्षाऋतु में डर था, (घन घमंड गरजत घन घोरा, प्रियाहीन डरपत मन) क्योंकि प्रियाहीन होने पर डर लगने की जो ऋतु है, वह तो की है, न कि वर्षा की. मगर इल्लत तो यह है कि हालांकि के बाद हम कभी के एक हो चुके हैं, मगर रेलवे का यह नसी महकमा हमें अभी भी दो प्राणी ही गिनेगा और तुम्हारे पर बिना बात मुद्रा खर्च करनी पड़ेगी. सरकार के दौरे तो बचाने के लिए होते हैं, न कि खर्च करने के लिए. उसने मेरी मान ली और पत्नीरूपी उस मेरी पत्नी ने मुझे इस तरह विदा से कि कभी राजपूताने की क्षत्राणियां जौहर पर प्रस्थान करते अपने पतिरूपी पतियों को दिया करती थीं. मैंने भी कुछ इस विदा ली कि 'खुश रहो अहले वतन, हम तो सफर करते हैं.'

मैं डिब्बे में बैठ गया और रेल की दुर्घटनाओं पर विचार करने सरकार की कितनी बड़ी कृपा है कि दुघटना का जो जोखिम वायुयान से यात्रा करने वाले बड़े लोगों को ही होता था, अब रेल से चलने वाली देश की साधारण जनता को भी प्राप्त लगा. अब तो रेल की यात्रा वास्तव में रोमांचकारी हो गयी. की चिंता क्या करनी, शाम तक का भी पता नहीं कि यह डाक कहां अपनी पटरी से उतर जाये या कहां किसी दूसरी गाड़ी इस प्रकार आलिंगन करने लगे, जैसे अरसे से बिछड़ी दो सखियां ी हैं. बहुत संभव है कि कल हमारे नाम सारे अखबारों के पृष्ठ पर छपें, हमारे परिवारों को राष्ट्र के नेता सांत्वना और हम जो हैं, वे बगैर कुछ और किये मुफ्त में ही शहीद लिये जायें. और जब यह सोचा कि यह सारी सुविधा जो सर- दे रही है, वह टिकट की दर बढ़ाये बिना ही दे रही है, तब मेरा मस्तक सरकार के प्रति श्रद्धा के कारण और भी झुक गया. जानकर भी संतोष हुआ कि लोग जो हैं, वे सरकार की कितनी करते हैं. जैसे ही एक वरिष्ठ मंत्री ने कहा कि रेल की प्लेट नहीं उखाड़नी चाहिए, वैसे ही लोगों ने फिशप्लेट उखा- तुरंत बंद कर दीं. फिशप्लेट उखाड़ने के बजाय वे लोग अब की पटरियां ही काटने लगे.

मेरे साथ सदा से यह होता आया कि जब तक रेल प्लेटफार्म खड़ी रहती है, तब तक मैं व्यंग्यकार के रूप में जीवित रहता और जैसे ही रेल खुल जाती है, मैं धीरे-धीरे कवि होने लगता हूं. मेरा कवि जब चुक जाता है तब मैं या तो चिंतक बन जाता हूं, या दार्शनिक——ठीक वही स्थिति, जो पंडित सुमित्रानंदन पंत के साथ रही थी. जब तक गाड़ी प्लेटफार्म पर रहती है, मैं भी भीड़ से भरी गाड़ी में खिड़की के रास्ते घुसने वालों का संकल्प और पराक्रम और उसी मार्ग से बाहर निकलने वाले बूढ़ों और अपाहिजों की बेसब्री और डर पर दृष्टिपात करता हूं, कुली और यात्री के चिरंतन वाद-विवाद को सुनता हूं और अपने चारों ओर के परिवेश पर दो-चार अदद निगाहें डालता हूं, जहां व्यंग्यकार के लिए कच्चा माल क्या, जरूरत से ज्यादा पका माल चारों ओर बिखरा दिखाई देता है. टिकटचेकर का तृप्त, पर संशयपूर्ण चेहरा, भिखारियों और गंवई औरतों की लाचारी और तीसरे दर्जे के यात्रियों की बदहवासी——ये ऐसी चीजें हैं कि इन्हें अगर आप फर्स्ट क्लास के डिब्बे में से सिगार पीते हुए देखें तो कुछ और ही मजा देती हैं. इसके बाद गाड़ी जैसे ही विद्यापति की किसी गजगामिनी नायिका की भांति सीटी देती है और गार्ड साहब जैसे ही बांस के एक टुकड़े पर हरे रंग का एक कपड़ा बांधकर हिलाते हैं, रेल चलने लगती है और मेरा व्यंग्यकार जो होता है, वह बिना कोई नोटिस दिये कवि होने लगता है. ऐसा परिवर्तन होने में मुझे कोई विशेष कष्ट नहीं होता; यदि मैथिलीशरण गुप्त और दिनकर को कवि स्वीकार किया जा सकता है तो मेरे विचार से हिंदी का कवि बनने से ज्यादा सरल तो कोई काम हो ही नहीं सकता. आउटर सिगनल के पार होते ही चारों ओर फैली धरती, धरती पर खड़े हुए कच्चे या पके खेत, खेतों के ऊपर उड़ते रंग बिरंगे पक्षी और पक्षियों के ऊपर तना नंगा या बादलों से घिरा आकाश——ये वे चीजें हैं, जिनके कारण मैं रेलवे की समय सारणी बंद कर देता हूं और मेघदूत की मंदाक्रांता में फिर खो जाता हूं. जब तक सांझ घिरती है, तब तक मेघदूत चलता है और जैसे ही सांझ घिरने लगती है, वैसे ही मैं जयदेव, विद्यापति और चंडीदास पर उतर आता हूं. इन कवियों ने सांझ की बेला में राधा और कृष्ण की प्रेमलीलाओं को लेकर जो कुछ लिखा है, उसे देखकर यह निःसंकोच होकर कहा जा सकता है कि इन सारे कवियों को रेल के प्रथम श्रेणी के डिब्बे में चलने का काफी अनुभव था. हां, अलबत्ता डिब्बे में यदि कोई खूबसूरत लड़की हो तो मैं भी विद्यापति को याद कर लेता हूं. भारतीय रेलों की भांति हमारे क्लासिकल कवियों का भी कोई जवाब नहीं. एक ओर डाकगाड़ी वाली गति और दूसरी ओर जहां चाहो, वहां उतनी देर रुक जाने की प्रतिभा. मेरे इस काव्यप्रेम में बाधा तब पड़ती है, जबकि रात को कपड़े बदलने पड़ते हैं. सरकस के जोकर की भांति ऊपर

एक लड़की आयी, जिसे हिंदी साहित्य में बड़ी सच्ची रुचि थी. उसने बड़े आत्मविश्वास से सूचना दी कि अठारह सौ सत्तावन की क्रांति के नेता दो सगे भाई थे, जिनमें से एक का नाम था राममोहन राय और दूसरे का था लाजपत राय. . . और समाज सुधारक जो थे, वे दो और सगे भाई थे, जिनमें से एक का नाम था स्वामी दयानंद और दूसरे का था स्वामी विवेकानंद.

की सीट पर सोने के लिए चढ़ना पड़ता है और चलती गाड़ी में हजामत बनानी पड़ती है. ऊपर की सीट पर चढ़ने की प्रक्रिया में नीचे बैठी युवतियों के ऊपर गिरने की मुझमें इतनी प्रतिभा है कि थोड़ी देर बाद नीचे वाले लोग अपनी बर्थ मुझे काफी संतोष के साथ खुद ही दे देते हैं. हां, अलबत्ता इस हजामत का कोई इलाज नहीं. और मेरी दाढ़ी है कि इतनी तेजी से प्रगति करती है कि यदि उतनी तेजी से यह देश प्रगति करता तो पता नहीं कहां का कहां पहुंच जाता. हालत यह है कि यदि आज हजामत न बनाऊं तो कल जब जबलपुर में उतरूंगा तो भगवान रजनीश लगूंगा. अगर ऐसा हादसा हो गया तो बाबू लोगों की भर्ती कैसे होगी?

▣

खैर, डाकगाड़ी जो थी, वह नहीं उलटी और मैं जबलपुर पहुंच ही गया. अनुसूचित जातियों और पिछड़े वर्गों के नवयुवकों में से ही भर्ती करनी थी, हालांकि बेकार लोग उस क्षेत्र में और भी रहे होंगे. मध्यप्रदेश में प्रकृति ने इतनी संपदा दी है, सौंदर्य का इतना ऐश्वर्य बिखेरा है कि यदि वैसा पंजाब या हरियाणा में किया होता तो एक एक घर में दो-दो टेलीविजन सेट होते. मगर मध्यप्रदेश का पुरुष इतना निःसंग है कि प्रकृति के साथ कोई बलात्कार नहीं करना चाहता. चारों ओर छोटी-छोटी पहाड़ियां, बीहड़ जंगल, कलकल करती नदियां, बीड़ी बनाते हुए मजदूर और इन सब के ऊपर हुआ अनंत आकाश. आकाश जितनी मात्रा में मैंने मध्यप्रदेश पाया, इतना किसी और क्षेत्र में नहीं. तुम्हारी आंखों का आ खो गया मन का खग अनजान—वाली पंक्ति कविवर पं निश्चयपूर्वक मध्यप्रदेश देखकर ही लिखी होगी.

भर्ती के लिए आये प्रत्याशियों की पहले लिखित परी हुई और फिर मौखिक. हालांकि पर्चे मैंने काफी सरल रखे थे, फिर भी काफी युवक और युवतियां उन्हें ठीक उसी हालत में वा छोड़ गये, जिस हालत में वे उन्हें दिये गये थे. कापी का शो करना उन्होंने कदाचित उचित नहीं समझा. वैसे कुछ लोग भी थे, जिन्होंने इतना लिखा था और इतने जोरदार ढंग से लि था कि भविष्य में उनके जैनेंद्र कुमार या अज्ञेय बनने की प्र संभावना प्रकट होती थी. मूल प्रश्नों को छोड़कर बाकी सारी ची को इतना कसकर पकड़ा था जैसे कि कोई सांड किसी गाय पकड़ता है. स्पेलिंग की गलतियां इतनी मौलिक थीं कि क कहीं तो मुझे अपने ज्ञान पर ही संदेह होने लगा. कुछ लोगों ने अ लिपि को ब्राह्मी या पाली लिपि में लिखा था, जिसे केवल राहु सांस्कृत्यायन ही पढ़ सकते थे. खैर, उत्तर देना उनका काम फेल करना मेरा. लिखित परीक्षा में जो लोग दुर्भाग्यवश उ हो गये, उन्हें अगले दिन इंटरव्यू के लिए बुलाया गया.

दांत निकलने के दिनों में यह बच्चे की सहायता करता है...

नौनिहाल ग्राइप सीरप

नौनिहाल ग्राइप सीरप दांत निकलने के दिनों के लिए विशेष रूप से बनाया गया है जो इन कठिन दिनों मे आप के बच्चे की सहायता करता है। यह मसूड़ों की तकलीफ़, पेट दर्द, कब्ज़ और दस्तों की शिकायतों में आराम देता है, हाज़मा ठीक रखता है और भूख लगाता है। दांत निकलने के दिनों में बच्चे को सदा नौनिहाल ग्राइप सीरप दीजिए।

हमदर्द

नौनिहाल बेबी टॉनिक

बच्चों की भरपूर तन्दुरुस्ती और शक्ति के लिए नौनिहाल बेबी टॉनिक जिसमें विटामिन ए, सी, डी, बी कॉम्पलैक्स और चार खनिज पदार्थ सम्मिलित हैं जिन पर आपके बच्चे की शारीरिक बढ़ोतरी और शक्ति निर्भर हैं। नौनिहाल बेबी टॉनिक से बच्चा मज़बूत और तन्दुरुस्त बनता है, चुस्त और हंसता खेलता रहता है।

...और यह बच्चे की बढ़ोतरी के लिये.

HD-4974 H

इंटरव्यू में मेरे अतिरिक्त दो अधिकारी और थे. प्रत्याशियों ी अंग्रेजी बोलने की क्षमता का पता लगाने के लिए हमें उनसे हिंदी ें ही बातचीत करनी पड़ी. कुछ लोग तो साधारण प्रतिभा के ही कले और पास हो गये, पर बाकी लोग तो इतने मौलिक व तिमान साबित हुए कि उन्हें देखकर वाणी के पास नयन और नों के पास वाणी नहीं रही. भारतीय इतिहास के कई स्नातकों मुगलवंश की चर्चा करते हुए यही बताया कि जहांगीर जो था, शाहजहां का बेटा था और मुमताज महल जो थीं, वह चिरंजीव हजहां की अम्मीजान थीं. और हां, गरीब हुमायूं को तो कोई नता ही नहीं था; सब ने एकमत से यही घोषित किया कि बाबर जो लड़का था, वह अकबर था. हां, अलबत्ता एक साहब ने जरूर प्रसंग को एक नयी दिशा दी और सूचित किया कि बाबर के के का नाम शेरशाह था. एक लड़की आयी, जिसे हिंदी साहित्य बड़ी सच्ची रुचि थी. गुलशन नंदा के सारे उपन्यासों के नाम उसे नी याद थे. इतिहास में भी उसकी गति थी और उसने बड़े ही त्मविश्वास से हमें सूचना दी कि अठारह सौ सत्तावन की क्रांति नेता दो सगे भाई थे, जिनमें से एक का नाम था राममोहन और दूसरे भाई का नाम था लाजपतराय. जब मैंने कुछ दबी न में कहा कि राममोहन राय तो संभवत: एक समाज सुधारक जिन्होंने सती प्रथा को बंद करने में तत्कालीन वायसराय की द की थी तो उसने तपाक से उत्तर दिया कि मैं गलती कर रहा और समाज सुधारक जो थे, वे दो और सगे भाई थे, जिनमें से का नाम था स्वामी दयानंद और दूसरे का था स्वामी विवेकानंद. के उत्तर के सामने हम लोग निरुत्तर हो गये. उस बालिका के होने का मुझे हार्दिक अफसोस रहा, क्योंकि वैसे वह काफी शोख हसीन थी—ठीक उस किस्म की लड़की, जिसके कारण कभी कारी दफ्तरों में ओवरटाइम काम करने की प्रथा का सूत्रपात होगा. मगर हम लोग क्या करते, हम ऐसा कोई प्रश्न पूछ नहीं सके, जिसका वह सही उत्तर दे सकती. इसके बाद एक नों के विशेषज्ञ आये, जो कवि ईलियट को ईडियट पुकारते थे. उन्होंने शेक्सपीयर को सेक्सपीयर कहकर पुकारा और यह भी ाया कि वे सैक्सी उपन्यास लिखने में लाजवाब थे. इन सज्जन अनुसार सर वाल्टर स्कॉट ने दक्षिणी ध्रुव की यात्रा की थी और बर्नार्ड शॉ जो थे, वे जार्ज पंचम के छोटे भाई थे. मैंने किसी में गलती से ओलिवर गोल्डस्मिथ का नाम ले लिया तो इन्होंने सूचित किया कि वे जाति से स्वर्णकार थे, जैसा कि उनके म से भी जाहिर है. इन महान आत्माओं के उत्तर सुनकर साथियों में से एक हत्या करने की सोचने लगा और दूसरा महत्या करने की. मैंने इंटरव्यू वहीं समाप्त कर दिया. एक न के ग्रेजुएट चलते-चलते इतना और बता गये कि ग्रेविटेशन बहुत बड़ा वैज्ञानिक था और उसने न्यूटन नामक सिद्धांत खोज की थी.

सफल प्रत्याशियों की सूची बनाने और उसे सील बंद करने के हम लोगों ने चाय पी और पान खाये. बातचीत के दौरान पता कि इस क्षेत्र में आधा वर्ष अध्यापक हड़ताल पर रहते हैं और वर्ष छात्र लोग. शिक्षा का माध्यम हिंदी है और अंग्रेजी साहित्य इसी माध्यम से पढ़ाया जाता है. हिंदी का लेखक होने के नाते यह सुनकर हर्ष हुआ, मगर मैं इस केंद्रीय सरकार का क्या करूं, जो अभी भी अपने काम-काज के लिए अंग्रेजी ही जरूरी समझती है? और वह भी इन अनुसूचित जातियों से, जिन्हें सदियों तक सारे देश ने दबाये रखा? और फिर इनमें से काफी लड़के ऐसे थे, जिनके बाप कुलीगिरी करते थे या जो खुद दिन भर बोझा ढोते थे और रात का कालेज अटेंड करके किसी तरह हम तक पहुंचे थे. उनके पता नहीं क्या क्या अरमान रहे होंगे, मगर मैं उनके लिए कुछ नहीं कर सका. मैं मजबूर था और उस लड़की के साथ क्या करता, जो हजार बार बाबर को शेरशाह का सगा बाप बताती रही? वह तो अच्छा रहा कि सर जदुनाथ सरकार वहां नहीं थे. वे होते तो उन्हें दिल का दौरा पड़ जाता और इंटरव्यू छोड़कर पहले उन्हें अस्पताल ले जाना पड़ता.

● रवींद्रनाथ त्यागी

मैं उदास हो गया. पहले कवि होने की स्थिति रही और फिर चिंतक और दार्शनिक होने की. कायर लोग हमेशा कवि या दार्शनिक ही होते आये हैं. 'वियोगी होगा पहला कवि' वाली बात में मैं यकीन नहीं करता. मेरे विचार में पहला कवि वह कायर था, जो न तो मुसम्मात को ही भगा सकता था और न उसके बाप के साथ फौजदारी ही कर सकता था. बहरहाल, उदासी दूर करने के लिए हम भेड़ाघाट और धुंआधार देखने गये. पानी जो था, वह काफी ऊंचाई से और काफी तबीयत के साथ पतित हो रहा था, जिसे देखकर मेरा दुख और भी बढ़ गया. मैं किसी को पतित होते नहीं देख सकता, चाहे वह पानी ही क्यों न हों. मैं अभी तक ऐसे झरने की तलाश में हूं, जिसमें गिरने की बजाय पानी ऊपर जाता हो. खैर, उसके बाद मैं परसाईजी के पास गया, मगर वहां भी उदासी जो थी, वह और गहरी हो गयी. इतने बड़े कलाकार ने इस बार अपनी टांग बिना किसी बाहरी सहायता के खुद ही तोड़ रखी थी और हालत यह थी कि बेचारे छड़ी के सहारे चलते थे. मैं यहां भी कुछ नहीं कर सकता था. टूटी टांग, टूटे दिल से कहीं ज्यादा तकलीफ देती है. परसाईजी शायद मुझसे सहमत होंगे. उन्हें टूटी टांग का अनुभव है तो मुझे टूटे हुए दिल का.

संध्या समय नगर के साहित्य प्रेमियों ने मेरे सम्मान में एक आयोजन किया. टूटी हुई टांग के बावजूद परसाईजी सभा का सभापतित्व करने का लोभ संवरण नहीं कर सके. अपने भाषण में उन्होंने कुछ मामलों में मुझे अपने से बेहतर कलाकार बताया. ईमानदार आदमी हैं, सच ही कह रहे होंगे. मेरे कंठ में फूलमालाएं पड़ीं, फोटो खिंचे, मेरी कविताएं सुनी गयीं और अगले दिन रेडियो पर मेरा एक लंबा इंटरव्यू भी टेप हुआ. नतीजा यह रहा कि मेरी सारी उदासी एकदम दूर हो गयी. यश:प्रार्थी कवि जो था, वह उन सारे गरीब बेसहारा लोगों को भूल गया, जो हजार मुसीबतों के बाद भी नौकरी में नहीं लिये जा सके थे. ☐

● सी. डी. ए. (वायुसेना) 107 राजपुर रोड, देहरादून.

अवध के चमन का दीदावर

▣ बाला दु

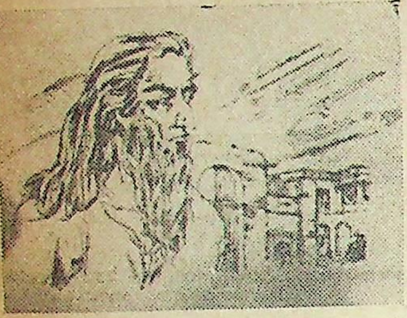

● मौलवी अहमदुल्लाह

“डंका शाह! दि मौलवी!”. . . फैजाबाद के इस मौलवी का नाम सुनते ही अंग्रेज कांप उठते थे. मौलवी अहमदुल्लाह जब चलते तो लगता मानो किसी दैवी शक्ति से कोई मुर्दा अति गंभीर मुद्रा में चल पड़ा हो. एक अजीब ठंडापन-सा उनके व्यक्तित्व से टपकता.

1857 के स्वाधीनता संग्राम से पहले वे लखनऊ की गलियों से अपने शिष्यों के झुंड के साथ गुजरते. आगे डंका बजता चलता. तभी से वह 'डंका शाह' हो गये.

जब आयोध्या की हनुमानगढ़ी के पास दंगों में मौलवी अमीर अली मारे गये थे, तब मौलवी अहमदुल्लाह लखनऊ से फैजाबाद आये थे. उन्हें धर्मोन्मत्त समझकर ही फैजाबाद के जिला अधिकारी ने गिरफ्तार किया था. वैसे वह आसानी से गिरफ्तार नहीं हुए थे. स्वयं घायल हो गये थे और दो साथी मारे गये थे.

जब 1857 की हवा चली तो उनके नारे बदल गये. फरवरी, 1857 में मौलवी अहमदुल्लाह अब हिंदू और मुसलमानों को संगठित करके अंग्रेजों के विरुद्ध व्याख्यान देते फिरते. और फिर एक दिन वह घेर लिये गये.

भैरव के कुछ गणों की भांति 8 जून को फैजाबाद के सिपाही अंग्रेजों का संहार करने में जुट गये. उसी रात कारागार पर भी आक्रमण किया और मौलवी साहब को फिर से खुले वातावरण में ले आये.

मौलवी अहमदुल्लाह ने किसी से युद्ध की दीक्षा नहीं ली थी. युद्ध में वे केवल निर्देशक का अभिनय ही नहीं करते थे वरन सबसे आगे की पंक्ति में तलवार निकाले दिखाई पड़ते. वे कदाचित जानते थे कि अंग्रेजों की फैक्टरी में उनके लिए गोली बन नहीं पायी थी.

अपने स्वतंत्रता संग्रामी दल को लेकर वे लखनऊ की ओर चल पड़े थे. चिनहट पर आकर उनकी तलवार का पानी अंग्रेजों ने सबसे पहले देखा था. चिनहट विजय करके मौलवी साहब ने वहां पर पुलिस चौकियां बना दीं, और वे रेजीडेंसी पर टूट पड़े. कई भीषण आक्रमण उन्होंने अपने नेतृत्व में किये थे. एक बार तो वे 'बेली गारद' के फाटक तक भी पहुंच गये थे, पर घायल होने पर उन्हें वापस लाना पड़ा.

युद्धशास्त्र का एक उसूल है कि वीर वही है, जिसकी शत्रु भी मुक्तकंठ से प्रशंसा कर उठे! मौलवी अहमदुल्लाह की रणभूमि की शतरंज-क्षमता देख-देख अंग्रेज थर्रा उठे थे. गवर्नर जनर ने उनके सिर की कीमत पचास ह रुपये रखी थी--जिंदा या मुर्दा!

जब वे लखनऊ पहुंचे तो वहां बेग हज़रत महल के नेतृत्व में घिसा-पि क्रांति-नाटक हो रहा था. दूरदर्शी मौल साहब ने लखनऊ के उन बांके योद्धा को उनकी कमजोरियां बतलायीं.

उनके मशविरे को अधकचरे लखन नेताओं ने 'टांग अड़ाना' समझा. परिण यह हुआ कि पहले-पहल तो बेगम हज़ महल ने उन्हें अपना विश्वसनीय हितैषी मित्र माना. फिर उन्हें मौल साहब की बढ़ती लोकप्रियता खटकने ल तभी शायद मम्मू खां और शर्फुद्दौला उनका प्रतिद्वंद्वी बनाकर खड़ा किया ग यहां तक कि मौलवी साहब और बे के सिपाहियों में युद्ध भी हुआ.

जब लखनऊ का रक्षा-संग्राम हुआ त आलमबाग के युद्ध में मौलवी अहमदुल्ल ने आउटरम के दांत खट्टे कर दिये नवंबर, 1857 से लेकर फरवरी, 185 तक उन्होंने अंग्रेजों को आगे नहीं ब दिया. जब लखनऊ अंग्रेजों के हाथ आ तब भी मौलवी साहब अपनी सेना सहि लखनऊ में ही डटे रहे. उनका यह 'अद हठ' देखकर अंग्रेज वाह-वाह कर तीन महीने पश्चात उन्होंने महोना की लखनऊ से 25 मील दूर स्थित बारी अपना हैडक्वार्टर बना लिया. होम ने 3000 सिपाहियों और 18 लेकर बारी की गढ़ी पर आक्रमण कि था. मौलवी साहब ने देखते ही अपनी सेना हटाकर ग्रांट के बगली हि को दबोचना चाहा किंतु तभी अं की '7 वीं हुसर्स' पल्टन ने आकर उन आक्रमण कर दिया. तब मौलवी साहब वे बारी छोड़कर सर कालिज कैंबल से ट लेने रोहिखंड की तरफ बढ़ चले.

अनजानी इतिहास कथाएं

इतिहास को किसी ने 'अनुमोदित कल्पना' कहा है और किसी ने 'मानव जाति के अपराध, मूर्खता एवं दुर्भाग्य की पंजिका', लेकिन हमें लगता है कि इतिहास अतीत के हादसों की कब्रगाह है. किसी भी कब्र को कुरेदिए, आपको चीखते, कराहते, पैशाचिक अट्टहास लगाते हादसे नजर आयेंगे--वे हादसे, जिन्हें आम पाठक नहीं जानते. अगस्त : 80, अंक 2 से प्रारंभ इस श्रृंखला में इस बार प्रस्तुत है--मौलवी अहमदुल्लाह की कथा, जिसने अंग्रेजों को छटी का दूध याद दिलवा दिया--

र कालिन कैंबल का ध्येय बरेली था—ा सरदार खान बहादुर खां की मांद! वी साहब ने कैंबल की चाल को फौरन लिया और वे बिठूर के नाना साहब ना और अपनी सेना को लेकर शाह- ुर आ डटे. उनका ध्येय कैंबल की के कारवां और रसद की दुम ाट देना था. वे शाहजहांपुर से हटते वहां के मकान और अतिरिक्त के ऊपर छतों का विनाश करते गये, कैंबल के थके-मांदे योद्धा आराम टिक पायें. टूटे-फूटे शाहजहांपुर िगेडियर हेल के नेतृत्व में छोटी-सी छोड़कर सर कोलिन कैंबल फतहगढ़ पर स्थित तिलहोर की ओर लपका.

रदस्त दुश्मन!

शाहजहांपुर को उजड़ा देख, वहां के जेलखाने पर काबू कर लिया, से ही कैंबल अपनी बाकी की बड़ी लेकर शाहजहांपुर से निकला कि अहमदुल्लाह अपनी तोपें, रिसाला पैदल योद्धा लेकर मधु-मक्खियों ाति हेल पर टूट पड़े. सर कालिन को आखिर अपने इस अद्भुत शत्रु शंसा करनी ही पड़ी—"ये दुष्ट ी! बहुत ही कांइया. . .कितना ुगल है यह!" हेल को शाहजहांपुर ा बड़ा महंगा पड़ा.

ब सर कालिन कैंबल मई, 1857 ेली की मुठभेड़ में उलझ गया तो ी अहमदुल्लाह ने शाहजहांपुर पर ाकर आक्रमण कर दिया. उन्होंने किला छीन लिया और नगर के ूर्ण स्थान हथिया लिये. उनकी तोपें ी चारों ओर मुंह खोले डकराने ह तो अंग्रेजों के भाग्य से ब्रिगेडियर ना लेकर शाहजहांपुर आ गया. वरना की समाधि शाहजहांपुर में बन ाती. ब्रिगेडियर जोंस से युद्ध हारने मौलवी अहमदुल्लाह अपने 5000 ार और आठ-नौ तोपों को लेकर हांपुर के इर्द-गिर्द चील की तरह रहे. स्थिति को देखकर सर कालिन और ब्रिगेडियर जोंस ने मौलवी साहब की सेना पर दोतरफा आक्रमण कर दिया. मौलवी अहमदुल्लाह अपनी सेना को चक्रव्यूह से बाहर निकालकर मुहम्मदी आ जमे. मुहम्मदी के ईंटों के किले में वे 15 तोपें जमाकर बैठ गये और फिर बाहर के क्षेत्र में उनका आतंक फैल गया. जिन्होंने अंग्रेजों की सहायता की थी उनसे निबटते रहे. बिजली की भांति बढ़कर उन्होंने पाली नामक स्थान पर अधिकार कर लिया और विजयपुरा से आठ मील दूर मूरिया नामक स्थान पर डट गये.

मौलवी की सधी चालों ने अंग्रेजों को विचलित कर दिया. होम्स ने 'हिस्ट्री ऑफ दि इंडियन म्यूटिनी' में मौलवी अहमदुल्लाह को 'उत्तर भारत में अंग्रेजों का सबसे जबरदस्त शत्रु' बतलाया है. मैलेसन का अनुमान है कि कारतूस पर चर्बी लगाने का भेद मौलवी अहमदुल्लाह को पता लगा तो उन्होंने पहले से ही भड़के सिपाहियों को इतने जोशीले भाषण दिये कि वे खून के प्यासे बन बैठे. मैलेसन का विचार है कि चपाती बांटने का सिलसिला भी मौलवी साहब की सूझ-बूझ थी.

मौलवी किसी भी तरह से अंग्रेजों के चुंगल में नहीं फंस सके. शाहजहांपुर से निकलकर वे रुहेलखंड में जा घुसे और वहीं से घूमकर वापस अवध में तहलका मचाने लगे. युद्ध पद्धति के अनुसार उन्होंने दो बार सर कालिन कैंबल जैसे युद्ध शास्त्री को करारी हार दी थी.

मौलवी अहमदुल्लाह जब अवध में लौटकर घुस रहे थे तब वे मार्ग में स्थित पवन नामक छोटी-सी हिंदू रियासत की ओर बढ़े. पवन राजा जगन्नाथ सिंह अंग्रेजों के खैरख्वाह थे. मौलवी के पास बेगम हज़रतमहल की मोहर लगा परवाना भी था, जिसमें राजा साहब को उनकी सहायता करने को आदेश दिये थे. मौलवी साहब दो सौ सवारों के साथ हाथी पर बैठकर राजा साहब की गढ़ी की ओर चल दिये. जब उनकी बात राजा साहब ने नहीं सुनी, तो उन्होंने हाथी को किले के फाटक तोड़ने को आगे बढ़ाया.

"भारत में अंग्रेजी राज' में सुंदरलाल लिखते हैं कि राजा जगन्नाथ सिंह जिस समय मौलवी साहब से बातें कर रहे थे उस समय उनके भाई बलदेव सिंह ने धोखे से उन पर गोली चला दी.

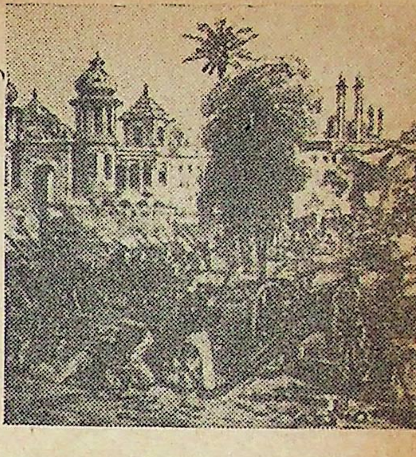

लखनऊ : 1857

इसके विपरीत श्री एस. एन. चंदा लिखते हैं कि मौलवी साहब ने राजा जगन्नाथ सिंह से थानेदार और तहसीलदार को उनके हवाले करने को कहा, जिसको राजा साहब ने अस्वीकार कर दिया. जब मौलवी साहब ने किले का दरवाजा तोड़ने को हाथी बढ़ाया तो राजा साहब ने 'भरो मारो' चलवा दी जिसके फलस्वरूप मौलवी साहब और उनके दो आदमी वहीं मर गये. बलदेव सिंह ने आगे बढ़कर मौलवी साहब का सिर काट लिया और खून टपकता सिर कपड़े में लपेटकर जिला अधिकारी के यहां ले गये. बलदेव सिंह को पचास हजार रुपये का पुरस्कार दिया गया.

5 जून, 1858 को अवध के सबसे योग्य युद्ध शास्त्री मौलवी अहमदुल्लाह शाह का अंत हो गया. उनके कटे सिर को कोतवाली पर लटकाया गया और शरीर जनता के सम्मुख जलाया गया और उनकी राख नदी में फेंक दी गयी. एक अंग्रेज लेखक ने सहानुभूति प्रकट करते हुए दुख प्रकट किया है. . .**'यह कर्मगति का अभिशाप नहीं तो क्या है कि बजाय अपने शत्रु द्वारा मारे जाने के वह भारत का वीर देश भक्त... अपने ही देशवासियों के हाथों मारा गया, जिनकी उसने कितनी सेवा की थी!'** ☐

अगले अंक में

पर नारी पैनी छुरी

शाहजहाँ और उसकी बेटी
जहांआरा की मिलीभगत की
एय्याशियों का कच्चा चिट्ठा!

नेत्रहीन होना कोई दुर्भाग्य नहीं, लेकिन दृष्टिहीन होना दुर्भाग्य है!...काकभुशुंडि गरुड़-संवाद का एक अधुनातन अध्याय

तम तोम का नाश उर्फ भीड़ का सत्य

• उमाकांत मालवीय

"इस प्रकार मैंने तुम्हें महात्मा सुकरात और महामति गैलीलियो की कथा सुनायी. अब मैं तुम्हें और क्या बतलाऊं, निःसंकोच पूछ सकते हो." वैनतेय से काकभुशुंडि बोले.

"प्रभु, आपकी बड़ी कृपा, यदि आप मुझ पर प्रसन्न हों तो हम यह जानना चाहेंगे कि पूर्वजन्म के किस कर्म के कारण महान सत्यवादी महात्मा सुकरात को विषपान करना पड़ा और महामति महान वैज्ञानिक गैलीलियो को अपना कथन वापस लेना पड़ा, जो कि काल कूट पान से भी अधिक त्रासद, दुखद और अपमानजनक है. हमें यही बतलाया गया है कि आज हमें जो कुछ भी मिलता है, वह हमारे पूर्वजन्म में किये गये कर्मों का फल ही होता है." हाथ जोड़कर वैनतेय ने पूछा.

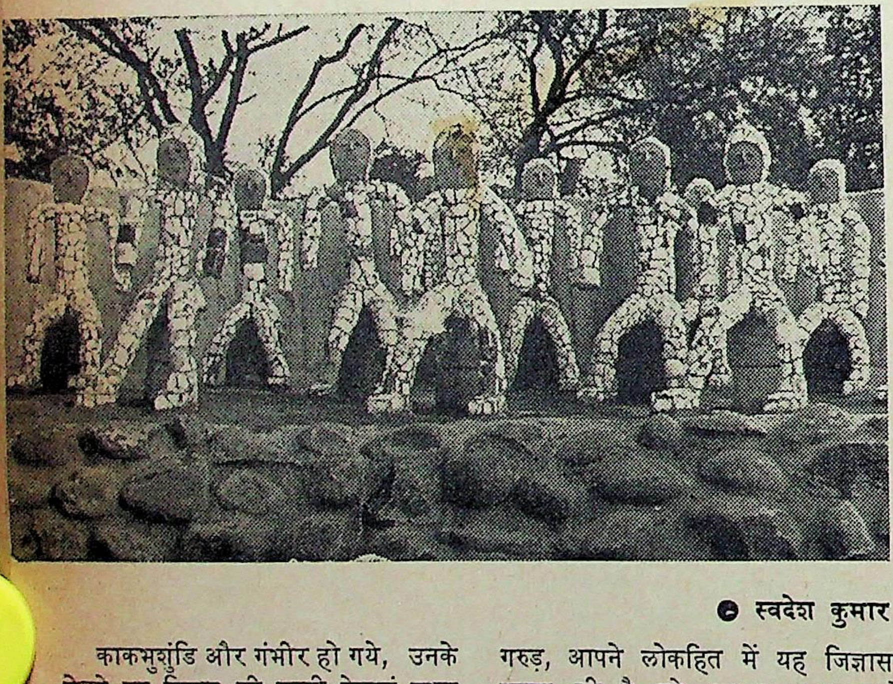

• स्वदेश कुमार

काकभुशुंडि और गंभीर हो गये, उनके चेहरे पर विषाद की गहरी रेखाएं उभर आयीं, एक क्षण को लगा जैसे उनका सारा स्याह चेहरा एकबारगी सफेद पड़ गया, "पन्नगारि, सत्य के ध्वजावाहियों को यह मूल्य देना ही पड़ता है, यही उनकी शाश्वत परिणति है." गरुड़ से काकभुशुंडि ने कहा और उनकी दृष्टि क्षितिज में कुछ खोजने के प्रयास में दूर कहीं खो गयी, वह अपनी सहज काक-चेष्टा भी भूल गये.

काकभुशुंडि बोले, "आप धन्य हैं गरुड़, आपने लोकहित में यह जिज्ञासा व्यक्त की है. जो नर इस कथा को ध्यानपूर्वक सुनेंगे, गुनेंगे, चिंतन और मनन करेंगे, उनका आत्मानुभूत सत्य भीड़ के ढिंढोरची सत्य में कभी पराभूत नहीं होगा. एक बार इसी तरह पार्वती ने देवाधिदेव महादेव से यही प्रश्न किया था. भगवान शिव ने उनके प्रश्न का जो उत्तर दिया था, जो पुनीत कथा सुनायी थी, वही इस समय मैं तुम्हें सुनाऊंगा—भगवान आशुतोष की समाधि तनिक शिथिल हुई, निमीलित नेत्रों के समक्ष अर्चना अर्घ्य को प्रस्तुत देवी पार्वती की छवि उपस्थित थी. भगवान ने मगन मन अर्घ्य स्वीकार किया. मंद-मंद बयार डोल रही थी, त्रिविध-ताप नसावनी भगवान शिव की उस परम प्रसन्न मूर्ति को माता ने वारम्वार अपनी विनम्र प्रणति दी. अवढरदानी किंचित् मुसकराये, "देवि, तुम्हारे नेत्रों में कोई पूत जिज्ञासा झिलमिला रही है. कहो, क्या जानना चाहती हो? निःसंकोच होकर पूछो."

"प्रभो! महात्मा सुकरात और महामति गैलीलियो की कथा सुनाने के उपरांत ही आप समाधिस्थ हो गये थे, आप यदि प्रसन्न हों तो कृपापूर्वक यह बतलायें कि पूर्वजन्म के किस कर्म के कारण उन्हें यह दारुण परिणति झेलनी पड़ी?" माता पार्वती ने हाथ जोड़कर पूछा.

"शोभने! महात्मा सुकरात और महामति गैलीलियो की आत्मा एक ही है. इन्हें मुक्ति मिलनी थी तथापि इन्होंने जनम जनम के लिए ऐसी ही परिणतियां स्वेच्छा से मांग ली हैं. देवि, तुम धन्य हो, तुम सर्वज्ञ हो, तुम्हारे लिए कुछ भी अज्ञेय नहीं है तथापि लोकहित में तुम लोकमंगलकारी जिज्ञासाएं प्रस्तुत करती रहती हो. जो प्राणी महात्मा सुकरात और महामति गैलीलियो के पूर्वजन्म के वृत्तांत को ध्यान पूर्वक सुनेंगे तथा अपने इष्ट मित्रों, आत्मीय स्वजनों को श्रद्धापूर्वक सुनायेंगे वे भीड़ की मानसिकता से कभी आक्रांत नहीं होंगे वे स्वयं अपने विवेक से परिचालित होंगे. इन दोनों के पूर्वजन्म का उपाख्यान तुम्हें सुना रहा हूं. ध्यान से सुनना. इस कथा का सुनने वाला अपने आत्मानुभूत सत्य को भीड़तंत्र के सामने आत्मसमर्पण नहीं करेगा.

कृत-युग की बात है, लंबी उड़ान की यात्रा से श्लथ-शिथिल विवेकगिरि नामक एक हंस, एक अश्वत्थ वृक्ष की एक शाखा पर विश्राम करने के लिए उतरा. वह अश्वत्थ वृक्ष, जिसे वासुदेव भी कहा जाता है, जिस वन में था, दंडकारण्य कहलाता था. इसका विस्तार चौबीस योजन था.

ज्येष्ठ कृष्णपक्ष का मध्यान्ह; पंचमी सूर्य तप रहा था. मानसरोवर निवासी आतप से विकल होकर बोला, "उफ! तना तेज प्रकाश है? सूर्य पूरी पराकाष्ठा चमक रहा है, चकाचौंध कर देने वाला उजलापन, पारदी धवलिमा, यह ना असह्य है."

सी अश्वत्थ पर, एक टहनी से तिमिर नाम का एक चमगादड़ शीर्षासन की में लटका हुआ था, हंस विवेकगिरि बात सुनकर वह बड़बड़ाया, "कौन हो ! स्याह को सफेद कर रहे हो."

"महाभाग, आप कौन हैं? आपका शुभ चय?" विवेकगिरि ने पूछा.

"तुम मुझको नहीं जानते? यह तुम्हारा ग्य है. मुझे तिमिर तनय कहते हैं, मैं तपस्वी हूं, देखते नहीं हो, शीर्षासन में लटका मैं तपश्चर्या में रत हूं. यह ी, जिससे मैं लटका हुआ हूं, यही मेरा तीर्थ है. हां, तो तुम किस सूरज की कर रहे हो?"

"अरे वही, जो चतुर्दिक फैला है."

"हमारे चतुर्दिक तो सांवला-सलोना कार फैला हुआ है."

"अरे भाई, यह सूर्य निकला हुआ है. दम मध्यान्ह, इसकी ऊष्मा, इसका श, क्या कुछ तुम्हें समझ में नहीं ता?" विवेकगिरि ने कहा.

"हाः हाः हाः! यह हमें मूर्ख समझता है. भाई विरूपाक्ष, सुनयन, कहां हो तुम ? अरे भाई सुनो, यह सूर्य नामक किसी भाजी का नाम ले रहा है." तिमिर चमगादड़ ने अपने भाई-बिरादर चमगादड़ों को आवाज दी, सभी एकत्र गये. चमगादड़ों ने उलूकों को आवाज उनकी चहल-पहल से उलूकजन भी होने लगे.

"क्यों भई सूरज है?" तनय ने पूछा.

"नहीं है, नहीं है." भीड़ उत्तर.

"क्यों भाई, उजाला है?"

"नहीं, कतई नहीं." भीड़ का उत्तर

"क्यों भाई सूरज है?" तिमिर तनय विवेकगिरि से पूछा.

"हाथ कंगन को आरसी क्या? सूरज ," विवेकगिरि के उत्तर पर भीड़ का हिक ठहाका उभरा.

"क्यों भाई, उजाला है?" तिमिर तनय प्रश्न.

"हां भाई, उजाला तो है, प्रकाश की ऊष्मा भी है. नेत्रहीन होना कोई दुर्भाग्य नहीं है, परंतु दृष्टिहीन होना दुर्भाग्य है." भीड़ से फिर सामूहिक ठहाका उभरा, परंतु इस बार ठहाकों में अमर्ष भी था.

"यह ऊष्मा तो तिमिर देवता की है." तिमिर तनय ने कहा.

"मैं कैसे मान लूं? स्वानुभूत सत्य को क्यों झुठला दूं?"

"इसलिए, क्योंकि हम कहते हैं."

उलूकों और चमगादड़ों की भीड़ में एक अकेला हंस. उसने उजलेपन से भ्रमित होकर उजले-उजले बक को टेरा. धवल नामक वह बक भी कन्नी काट गया. विवेकगिरि बेचारे को क्या पता था कि हर उजला जीव हंस नहीं होता.

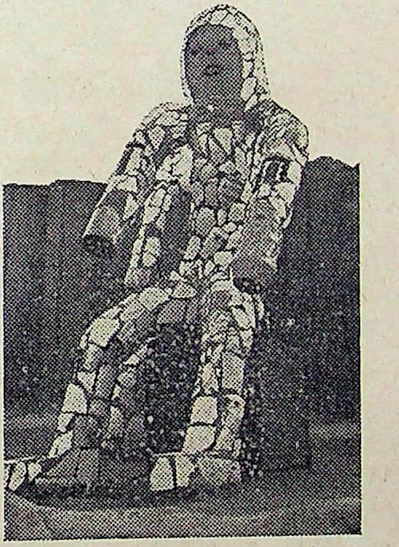

● **स्वदेश कुमार**

"अपनी बात का एक-एक शब्द तुम्हें वापस लेना होगा. हमारे साथ कहो... यह अंधेरा है, सूरज कहीं नहीं है, उजलापन कहीं नहीं होता, प्रकाश प्रवंचना है, यह ऊष्मा तिमिर की ऊष्मा है." तिमिर तनय ने आदेश दिया और उसके आदेश को एक हिंस्र शोर ने समर्थन दिया.

"मगर यह तो सरासर गलत है, मुझ पर स्याह को सफेद करने का आरोप लगाते हो और स्वयं सफेद को स्याह कर रहे हो, यह तो अंधेर है!" विवेकगिरि के स्वर में एक उदात्त अस्वीकार था.

"अच्छा! हम सब अंधे हैं, गलत हैं? तुम्हारे पास ही दृष्टि है. बड़े आये सूरज और उजाले की बात करने वाले. यह कोई सरफिरा है, या फिर दुश्मन का दलाल है. बोलो, हमारी हां में हां मिलाते हो या नहीं?" तम तोम नामक उलूक गरजा. उसके स्वर में स्वर मिला सभी चमगादड़ों और उलूकों ने भी गर्जना की. विवेकगिरि ने देखा, उसके चारों ओर चमगादड़ और उलूक अपने नाखून और चोंच तेज कर रहे थे. नाखून और चोंच की यह भाषा उसने पहली बार देखी थी, प्राणों पर बन आयी देख विवेकगिरि बोला, "सूर्य एक भ्रम है, प्रकाश अथवा उजाला उससे भी बड़ा भ्रम है, यह तपिश तिमिर की है. मेरी धारणा शत-प्रतिशत गलत थी. मैं आपकी धारणा को स्वीकारता हूं और पहले कहे गये अपने प्रत्याय का हर अक्षर वापस लेता हूं." एक करुण आत्समर्पण.

"यह हुई न बात!" तिमिर-तनय मगन होकर बोला, "तुरंत इस तरह हमारा मत स्वीकारना भी दुश्मन की कोई चाल हो सकती है. हमें अपने बीच गद्दारों को पनपने नहीं देना चाहिए. जो हमसे टकरायेगा...!" तम तोम ने नारा उछाला.

"चूर-चूर हो जायेगा!" चमगादड़ों और उलूकों ने नारे का जवाब दिया और विवेकगिरि पर टूट पड़े! ...और पहले ही आत्मसमर्पण से उद्भूत आत्मघात से मरे हुए विवेकगिरि को चीथ डाला.

इसके बाद उसकी उजली देह को अमन के परचम के रूप में लहराते हुए चमगादड़ों और उलूकों की संयुक्त विज्ञप्ति आयी—हम शांति के हिमायती हैं, हमारी किसी से तकरार नहीं है. हम 'जीओ और जीने दो' में विश्वास करते हैं.

◆

"विवेकगिरि ही बार-बार कभी महात्मा सुकरात, कभी महामति गैलीलियो के रूप में जनमता आ रहा है. उसने विधाता द्वारा प्रस्तावित आवागमन से मुक्ति को अस्वीकार कर दिया है." भगवान शंकर ने कथा पूरी की.

"माता पार्वती भी तुम्हारी ही तरह उदास हो गयी थीं." काकभुशुंडि ने निःश्वास छोड़ते हुए वैनतेय को प्रबोध दिया. ☐

● **23, महावीरन गली, इलाहाबाद-3**

इंतजार और अभी . . . और अभी . . . और अभी!

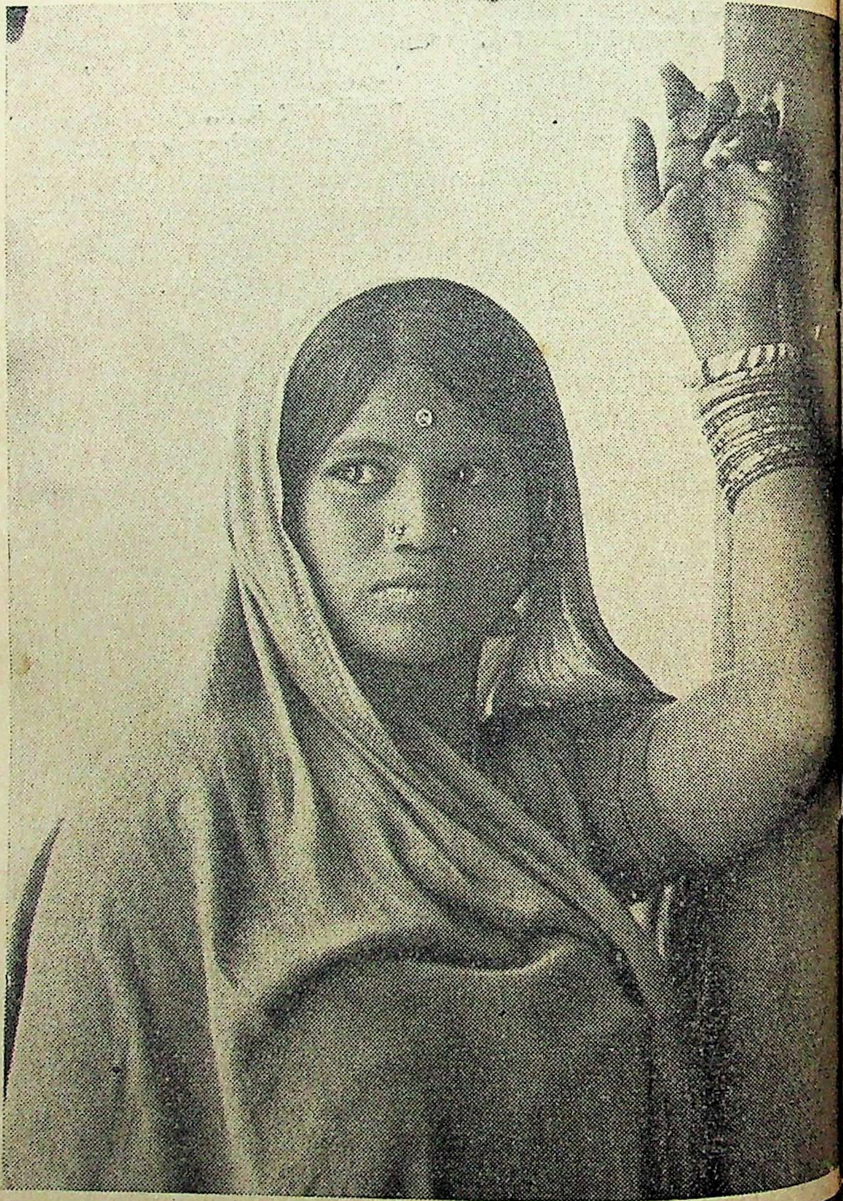

तस्वीर बोलती है

▣ **सतीश खन्ना**
वी. बी. 44, वीरेंद्र नगर,
नयी दिल्ली-18

▣ **संतोष कुमार**
3/171, छोटा ठाकुरबाड़ा,
शाहदरा, दिल्ली-32

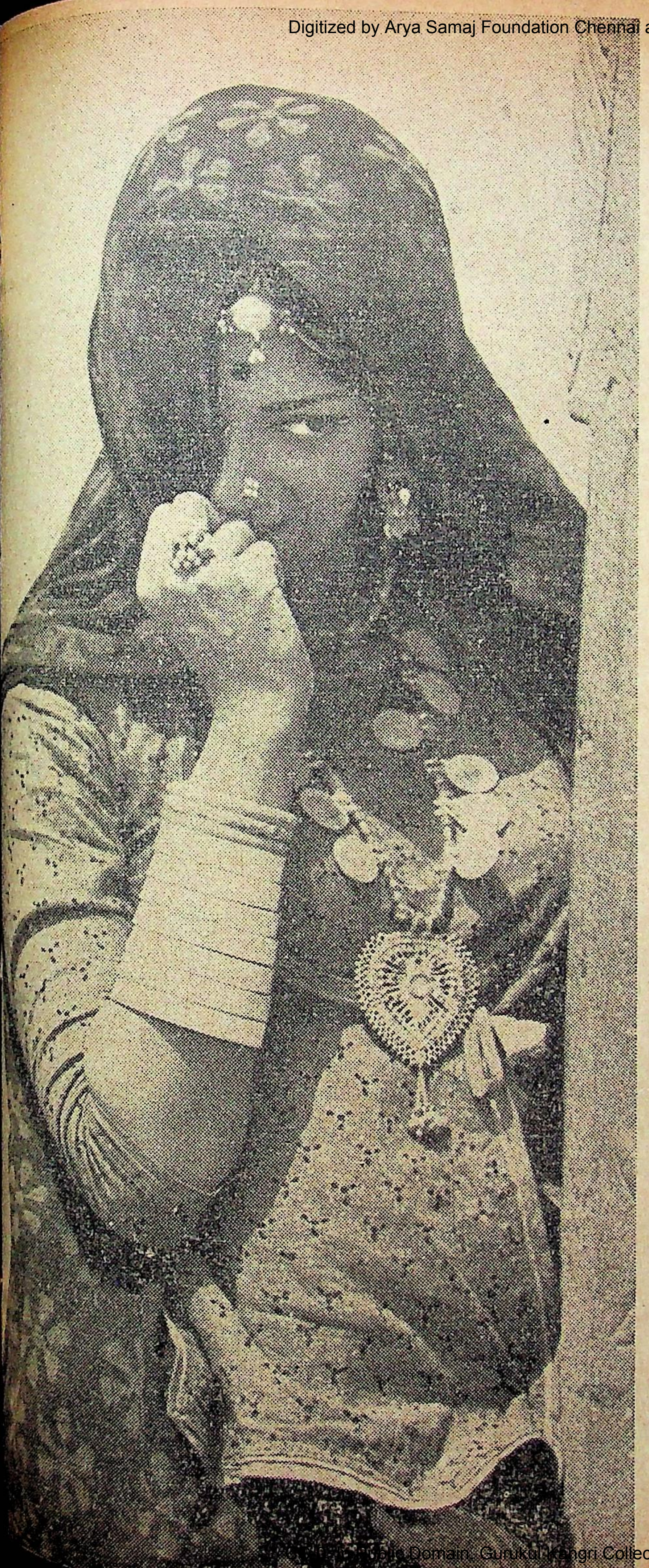

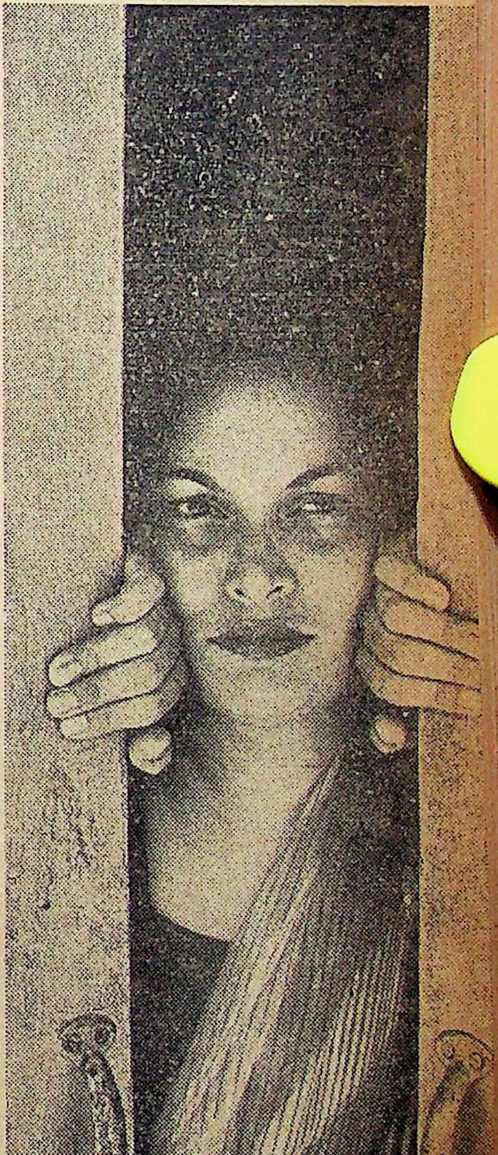

▣ शिव कुमार
1445, वजीर नगर,
नयी दिल्ली-3

खूबसूरत की रानी!
खुशबू की बेगम!!
MEDIMIX
AYURVEDIC TOILET SOAP
mod

मेडिमेक्स आपके चर्म की
रक्षा व सौंदर्य को बढ़ाता है
मेडिमेक्स आपको
सुन्दरता की रानी बनाती है
मेडिमेक्स सफेद
गुलाब की महक को फैलाती है
मेडिमेक्स - सुन्दरता - रानी

मेडिमिक्स
आयुर्वेदिक टॉयलेट सोप

- रंग परिवर्तन
- फुन्सी
- बालों की रूसी
- गरमी के फ़ोड़े
- खुजली
- काले धब्बे
- नाई फेन
- छाला
- धोबी फेन

CHOLAYIL PHARMACEUTICALS
22, THIRUVALLUVAR STREET, MADRAS-600011

Subhodaya

● सर्वश्रेष्ठ लेखक ● बहुचर्चित पुस्तकें
● असंक्षिप्त पेपरबैक संस्करण
● सजिल्द संस्करण से ठीक आधा मूल्य
● सदस्यता-शुल्क मात्र 3 रुपये

आलोचना पुस्तक परिवार

आलोचना पुस्तक परिवार के सदस्य बनकर
उच्च कोटि का साहित्य आधे मूल्य पर प्राप्त करें।

नवम्बर मास में आधे मूल्य पर सुलभ हैं

दो व्यंग्य नाटक
शरद जोशी
पृष्ठ : 130; मूल्य : 15.00

दोनों ही नाटक राजनीति के तहत सतत घट रही मूल्यहन्ता त्रासदी से साक्षात कराते हैं।

उत्कृष्ट विज्ञान कथा-लेखन की परम्परा में मनोरंजक ही नहीं, विचारोत्तेजक कथाकृति।

मृत्युंजयी
कैलाश साह
पृष्ठ : 149; मूल्य : 10.00

प्रस्तुत सूची से भी मनचाही पुस्तकें चुनिए :

उपन्यास		
चारुचन्द्रलेख	हजारीप्रसाद द्विवेदी	35.00
सुहाग के नूपुर	अमृतलाल नागर	14.00
सीमाएँ टूटती हैं	श्रीलाल शुक्ल	15.00
दिल एक सादा कागज	राही मासूम रज़ा	15.00
वापसी	विलियम सोरायाँ	10.00
कहानी-संग्रह		
चिलमन	बलवन्तसिंह	9.00
खामोशी के चीत्कार	अभिमन्यु अनत	10.00
कविताएँ		
कविताएँ-1	सर्वेश्वरदयाल सक्सेना	24.00
कविताएँ-2	,, ,, ,,	16.00

यहाँ सजिल्द संस्करण के मूल्य अंकित हैं। पेपरबैक संस्करण इसके ठीक आधे मूल्य पर उपलब्ध है।

राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.
8, नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-110002

अजितकुमार और मनोहरश्याम जोशी

कुरु-कुरु स्वाहा उर्फ पूजा और पलीता

लेखक मनोहरश्याम जोशी और अजितकुमार के बीच लिखा-पढ़ी

गुब्बारा फुलाने में फट जाये तो सभी को अफसोस होता है, लेकिन कुछ ऐसे शौकीन हैं कि पहले गुब्बारा फुलाते हैं, फिर उसमें पिन चुभो देते हैं. . . .पहले वे जुटाते हैं, महानगर, किशोर-आकांक्षा, रहस्यमयी नारी, बुद्धि-विलास, रूमान-रोमांच. . .ढेर सी सामग्री, फिर बारी-बारी या एक साथ सब कुछ 'स्वाहा' कर देते हैं—यहां तक कि हवन-कुंड और यज्ञ को भी.

उदात्त से लेकर हास्यास्पद तक—सबके प्रति 'कुरु-कुरु स्वाहा' का यह रवैया खासा दिलचस्प है. इसे पढ़कर मुझे याद आया, बहुत पहले बच्चनजी ने अपने एक संग्रह का नाम सोचा था—'पूजा और पलीता', बाद में वह 'प्रणय-पत्रिका' नाम से छपा. 'कुरु' पर मेरी टिप्पणियों के उत्तर में जोशी ने जो टिप्पणियां लिखीं, उनसे मुझे लगा, यह पूजा और पलीता ही नहीं, 'प्रणय-पत्रिका' भी है.

दरअसल, 'युवक-युवती मिलन' या 'गांव-शहर के बीच पलायन' या 'प्राचीन-नवीन के बीच संचरण' के सुपरिचित कथानकों को ताश की गड्डी-सा फेंट-फेंटकर इस उपन्यास में जो 'इंद्रजाल' खड़ा किया गया है, उसे मुमकिन है, कुछ लोग 'हाथ-सफाई' समझें. मेरी वह धारणा पुष्ट हुई है, जो जोशी की 'कूर्मांचली' नाम से लिखी गयी कविताओं और 'उसका बिस्तर' जैसी कहानियों से बनी थी कि उसमें नवोन्मेष, कल्पनाशीलता,

स्वत:स्फूर्ति जैसे गुण प्रचुर मात्रा में हैं, वह किसी जकड़बंदी में घिरा हुआ नहीं है, बल्कि जहां भी 'घेराबंदी' पाता है, उसे झकझोरने को बेचैन हो जाता है.

अ.कु.: कुरु-कुरु स्वाहा' कई आशाएं पूरी करता है, उसके लिए पहले तो धन्यवाद स्वीकारो, फिर बधाई लो कि सन् पचास से अस्सी की अवधि का तुमने बहुत सर्जनात्मक उपयोग किया है. संपादन, पत्रकारिता, फिल्म, अनुवाद, अध्ययन आदि तुम्हारे अनेक जीवन-कर्मों की स्पष्ट छाप इस उपन्यास पर पड़ी है. मेरे लिए तो यह उसके प्रति आकर्षण का अतिरिक्त कारण है. फिर भी, मान लो, कोई कहे कि 'सत्य क्या है? इस प्रश्न को बार-बार उठाकर अनुत्तरित छोड़ देने की तरकीब तुमने प्रसिद्ध जापानी फिल्म 'रोशोमोन' से हासिल की है या कि उपन्यास को 'भानुमती का पिटारा' बना देना लोकप्रिय साप्ताहिक की 'संपादकी' का प्रसाद है....तो तुम्हारी प्रतिक्रिया क्या होगी?

जोशी: बधाई के लिए धन्यवाद, धन्यवाद के लिए भी धन्यवाद. 'कुरु-कुरु स्वाहा' एक स्तर पर घोरतम रूप से एक व्यक्ति-विशेष का अंतरंग उपन्यास है, जिसमें यहां से वहां तक वह अपने मानस को अपने परीक्षण के लिए प्रस्तुत कर रहा है. जैसा कि मेरे एक रिश्तेदार ने कहा, "तुम 'मनोहर : एक जीवनी' लिखने बैठे और 'मनोहर : एक मन:स्थिति' लिख गये." इसलिए अगर उपन्यास में मेरे अनुभव-अध्ययन-कार्यकलाप की छाप आ गयी हो तो कोई ताज्जुब नहीं, लेकिन यह आत्मचरित नहीं है, इसका ब्यौरा मेरी अपनी जिंदगी का ब्यौरा नहीं. वस्तुत: इतने वर्षों बाद जब मैंने पुन: सृजनात्मक लेखन के क्षेत्र में लौटना चाहा तो जरूरी था कि बहुत सी चीजों और बातों को संक्षेप में लिखकर मुक्ति पा जाऊं, जो मेरे मन में उठी थीं, मगर मैं लिख नहीं पाया था. तुम अनुभव करोगे कि इस उपन्यास में कई ऐसे थीम हैं, जिन पर शायद मैं स्वतंत्र रूप से कहानियां या उपन्यास लिख सकता था. यह गोया 'शुद्धि' का सिलसिला था मेरे लिए.

'रोशोमोन' की तरह यह जताना कि एक ही घटना के चश्मदीद गवाह अपने-अपने दुराग्रह के कारण उसका वर्णन अलग-अलग तरह से करते हैं, मेरा लक्ष्य नहीं है. 'सत्य क्या है?' वाला सवाल इस उपन्यास में नायिका 'पहुंचेली' को लेकर शायद उठाया जा सकता है, लेकिन 'वह कौन थी?' के बहाने भी यहां 'मैं कौन हूं?' का ही सवाल उठा है और 'मैं' से मुराद केवल लेखक-नायक से नहीं, मानव-मात्र से भी हो सकती है, कम-से-कम औसत बुद्धिजीवी से तो हो ही सकती है. कौन-सी दृष्टि? कौन-सा जीवन-दर्शन? ऐसे सवाल जो भले ही बतर्ज बकवास, मजाहिया माहौल में उठाये गये हैं, 'मैं कौन हूं?' के सवाल से जुड़े हुए हैं. इसलिए नायक की परेशानी औसत आधुनिक बुद्धिजीवी की परेशानी मानी जा सकती है और यह परेशानी अगर 'भानुमती का पिटारा' छाप मानस से पैदा हुई हो तो भानुमती के पिटारे से कैसे बचिएगा?

यह बड़े कौशल से लिखा और उतनी ही कुशलता से संपादित उपन्यास है. नायक को 'तिमंजिला' तो खैर तुम्हीं ने बताया है, मुझे इसका कथ्य और उद्देश्य भी दोहरा-तिहरा मालूम हुआ. सरसरी निगाह से इसको पढ़ने वाले शायद अंत और तह तक पहुंच ही न पायेंगे. मजा लेते, समझते-बूझते और सूत्रों को जोड़ते-गूंथते हुए यह उपन्यास पढ़ा जाना चाहिए. 'क्लेडियोस्कोप' घुमाने पर चूड़ी के टुकड़ों के जो नये-नये पैटर्न उभरते हैं, कुछ वैसा ही प्रभाव इस उपन्यास का भी है. शैक्षिक आलोचना के छह तत्त्वों की खोज इसमें की जाये तो भी मेरा खयाल है, दिलचस्प नतीजे हाथ लगेंगे. कविता की तरह भी इसे पढ़ा जा सकता है, मानो कोई फिल्म बनायी जा रही हो और उसके तमाम ब्यौरे साथ-साथ दिये जायें, कुछ इस तरह की पद्धति है उपन्यास की. कथ्य में भी निरर्थक को अर्थयुक्त और अर्थयुक्त को निरर्थक या परिचित को अपरिचित और अपरिचित को परिचित बनाने की कोशिश है. इसीलिए यह उपन्यास एक साथ लेखन, शास्त्रीय गायन और चलचित्र का मजा देता है....लेकिन क्या तुम मुझसे सहमत हो कि इस लेखन-शैली को बार-बार दोहराया नहीं जा सकता. जिसे 'गिमिक' या 'तरकीब' कहते हैं, वह उपन्यास-लेखन को बहुत दूर तक नहीं ले जाती.

किसी भी लेखन-शैली को दोहराने पर कोई पाबंदी नहीं. लोग-बाग तो शैली क्या, कथ्य भी दोहराते चले जाते हैं. अगर तुम यह चाहते हो कि मैं वादा करूं कि कभी इस शैली में लिखने की गलती न स्वयं करूंगा, न औरों को करने दूंगा तो वह जरा मुश्किल वाली बात होगी. रही 'गिमिक' की बात. तुम यह शब्द इसलिए इस्तेमाल कर रहे हो कि इससे चतुराई और खोखलापन भी ध्वनित होते हैं, लेकिन यही स्थिति 'क्राफ्ट' की भी है, आज भी 'क्राफ्टी' किसी भले आदमी का विशेषण नहीं. 'बनावट' की जब हम चर्चा करते हैं तो यह भी जानते हैं कि 'बनावटी' होना बहुत बुरी चीज है. शैलीगत किसी भी प्रयोग विशेष के विषय में दो रायें हो सकती हैं—कुछ उसकी बनावट सराह सकते हैं तो कुछ उसके बनावटीपन को लानत भेज सकते हैं. बनावट एक माने में 'कुरु' का मूल विषय है. शिल्प भी यहां कथ्य का ही एक अंग है.

प्रसंगवश, इतना और कह दूं कि व्यक्तिगत रूप में मैं शिल्प को बहुत महत्त्वपूर्ण शैली मानता हूं. 'फॉर्मेलिज्म' का साहित्यिक गाली के रूप में हमारे समीक्षकों ने इतना इस्तेमाल किया है कि अच्छा लिखना, रोचक लिखना, मेहनत से लिखना, साहित्यिक घासलेटीपन का नमूना समझा जाने लगा है. अगर तुम यह कहना चाहते हो कि मेरा यह उपन्यास 'बन नहीं पड़ा है', मेहनत-मशक्कत से 'बनाया-संवारा' गया है तो मैं 'घासलेटीपन' को बहुत फख्र के साथ स्वीकार करता हूं. अगर तुम यह कहना चाहते हो कि 'गप्प-बायस्कोप' गोया किस्सागोई और सिनेमा से समान रूप से उधार ली गयी जो शैली मैंने इस उपन्यास में अपनायी है, वह प्रस्तुत कथ्य के लिए गलत थी, याकि उसमें उपन्यास लिखे ही नहीं जाने चाहिए तो मैं तुमसे सहमत नहीं हो सकता. यह जरूर है कि हर तरह का कथानक इसमें नहीं समेटा जा सकता. यह भी कि शैलीगत किसी भी प्रयोग का नयापन, पुराना और परिचित पड़ जाने के लिए सर्वथा अभिशप्त है. यह भी पुराना पड़ जायेगा.

तुमने जगह-जगह साहित्यिक संदर्भ दिये हैं कि माल कहां से मारा जा रहा है. इसने उपन्यास को खासा चटपटा

बना दिया है, पर यह बताओ कि बर्न, पेनफील्ड, हैरिस आदि मनोविश्लेषकों के पेरेंट, एडल्ट, चाइल्ड (पी. ए. सी.) वाले नुस्खे पर अपना नायक गढ़ने पर भी तुमने इनका जिक्र तक क्यों नहीं किया? 'ट्रांजैक्शनल अनालिसिसि' (टी. ए.) आज इतना प्रचलित है कि कोई भी जान सकता है: 'मनोहर' चाइल्ड है, 'जोशीजी' पेरेंट और 'मैं' एडल्ट. इन तीनों 'अहं स्थितियों के पाठ्यपुस्तकीय ब्यौरों की झलक उपन्यास में लगातार मिलती है.

इस 'आभार' को तुम स्वीकारते तो यह खतरा जरूर था कि नायक को तिमंजिला बताकर/बनाकर जो चमत्कार तुमने दिखाया है, वह थोड़ा कम हो जाता. पढ़नेवाले कह सकते थे: अरे, सभी होते हैं तिमंजिले, सब में 'पितृ' 'वयस्क' और 'शिशु' बोधों के बीच टकराहट/तालमेल की स्थिति रहती है... फिर भी, तुम्हारे चरित्र 'किताबी' नहीं, सजीव हैं, तुम्हारा वृत्तांत 'तकनीकी' नहीं, रोचक है--यह उन्हें मानना पड़ता. टी. ए. से उपन्यास का सीधा रिश्ता पहचान लिया जायेगा, यह तुम्हें नहीं सूझा?

अव्वल तो कथावाचक उपन्यास में मनोहर और जोशी के ही विचारों के संदर्भ देता है, अपने नहीं, फिर उपन्यास में व्यक्तित्व का जो तिमंजिला विभाजन किया गया है, वह टी. ए. वाले विभाजन से भिन्न है. 'मनोहर' सहज आस्था का यानी हृदय का प्रतीक है, 'जोशीजी' संदेह-जिज्ञासा के यानी मेधा के और तीसरे कथावाचक 'मैं' काया का, अस्तित्व-रक्षा उर्फ चमड़ी बचाने के लिए आवश्यक काइयांपन का.

'ट्रांजैक्शनल अनालिसिस' जैसा नाम से ही स्पष्ट है, आपसी संवाद और व्यापार से संबंध रखता है. उसमें बताया जाता है कि आपसी बातचीत और लेन-देन में गड़बड़ तब होती है, जब दोनों पक्ष व्यक्तित्व की एक ही या एक-दूसरे की पूरक मंजिल पर स्थित न हों. मैंने व्यक्तित्व का जो विभाजन किया है, वह उस आंतरिक संवाद से ताल्लुक रखता है, जिससे हमारा जीवन-दर्शन भी तय होता है. यह एक विचित्र संयोग है कि मेरे साहित्य-गुरू अमृतलाल नागर इन दिनों सूरदास पर जो उपन्यास लिख रहे हैं, उसमें भी नायक के व्यक्तित्व का तीन हिस्सों में विभाजन किया गया है. यह सूचना स्वयं नागरजी ने मझे 'कुरु' पढ़ने के बाद दी, लेकिन उन्होंने 'तल, अतल, सुतल' में व्यक्तित्व का जो विभाजन किया है वह भिन्न प्रकार का है और 'तल-अतल-सुतल' जिस बिंदु पर एक-दूसरे में लीन हो जाते हैं, उसकी खबर न टी. ए. वालों को है, न 'कुरु' के लेखक को.

मैं कहना यह चाहता हूं कि व्यक्तित्व के विभाजन की तरकीबें कई हो सकती हैं और जरूरी नहीं कि जहां तिमंजिला नायक दिखाई दे, टी. ए. की दुहाई दी जाये.

यह कृति एक साथ बहुत-कुछ कहना करना चाहती है: भाषा की क्षमता का प्रदर्शन, अनेक चरित्रों का निरूपण, नारी की रहस्यमयता का विवेचन और हमारी उलझी हुई जटिल पहचानों का कथन. हिंदी आलोचना की शब्दावली में कहूं तो पूरा उपन्यास 'अस्मिता की खोज' का एक प्रयास है, पर इसे हलके-फुलके, सनक भरे चतुर ढंग से रचा गया है. आखिर क्यों, वह हास्य की फुलझड़ी बन गया है, जबकि उसमें पीड़ा-करुणा-गंभीरता की स्पष्ट अंतर्धारा लगातार मौजूद है?

तुमने सुना ही होगा कि मजाक हमेशा नादान, गंभीर और खतरनाक होते हैं. वे जिन्होंने मजाक को मजाक समझ रखा है. अगर तुम्हें ऐसा महसूस होता है कि उपन्यास में पीड़ा-करुणा-गंभीरता की स्पष्ट अंतर्धारा है, लेकिन कुल मिलाकर यह हास्य की फुलझड़ी बन गया है तो इसके तीन ही कारण हो सकते हैं--या तो यह कि उपन्यास है ही हास्य-फुलझड़ी, लेकिन तुम समीक्षकों ने परसाई-शरद-श्रीलाल की जो दुर्गति कर रखी है, उसे ध्यान में रखते हुए चतुर मनोहर ने गंभीरतावाला आयाम भी डाल दिया है कि तुम लोग व्यायाम कर सको, थोड़ा-बहुत. या वह कि ओर्तेगा गास्से पढ़ने के बाद लेखक ने तय पाया कि आधुनिक उपन्यासकार को ऐसा प्रपंच रचना पड़ता है कि पाठक इस आश्वासन और आत्मविश्वास के साथ उसकी कृति के संसार में घुस जाये कि सब देखा-समझा है और फिर चकराये कि यह देखा-समझा हुआ भी कुछ अजीब-अनचीन्हा क्यों कर मालूम हो रहा है? और तीसरा कारण, वही जो शुरू में कहा कि मजाक होते ही गंभीर हैं.

अगर तुम्हें ऐसा लगता हो कि 'कुरु' में गंभीरता वाला आयाम जबर्दस्ती घुसा दिया गया है, गोया वह एक अतिरिक्त मजाक है तो कारण नंबर एक को सही जानो. ऐसा न लगता हो तो दूसरे-तीसरे कारण में से कोई एक या दोनों चुन लो.

मैं समझता हूं कि अलग-अलग पाठकों को यह उपन्यास अपने-अपने ढंगों तथा कारणों से सार्थक निरर्थक प्रतीत होगा. किसी को वाक्यपटुता आकर्षित करेगी तो कोई तांत्रिक-सांस्कृतिक संदर्भ में रस लेगा. किसी को 'पहुंचेली' की तलाश में भारतीय अस्मिता की खोज दिखाई देगी तो कोई साहित्य और साहित्यकारों के हवाले दिलचस्प मानेगा. मुमकिन है, ऐयारी-तिलिस्मी उपन्यासों का मजा भी कुछ को मिले, कुछ को शायद भदेस और भावविह्वलता की यह अनूठी जुगलबंदी 'काबिले दाद' लगे, कुछ शायद इससे हैरान हों कि इसमें 'मिथक' को समकालीन और समकालीन को 'मिथक' बनाने का चक्कर है, लेकिन हिंदी में लेखक और पाठक जैसे कठघरों में बंटे हुए हैं, उसे जानते हुए, अब उपन्यास के बाजार में पहुंच जाने के बाद--तुम्हारा अनुभव क्या है? कहीं ऐसा तो नहीं कि 'हाई ब्रांड और लो-ब्रांड' दोनों ही वर्ग इसको संदेह की दृष्टि से देखने लगे हों?

मैं कह नहीं सकता कि बाजार में इस उपन्यास का भाव क्या है? लेकिन मैं इतना जरूर जानता हूं कि निहायत ही अलग-अलग किस्म के लोगों ने 'कुरु' पूरा पढ़ा है और उसे अपने-अपने ढंग से कोसा-सराहा है. इस उपन्यास को लिखते-सुधारते हुए मेरी बराबर यह कोशिश रही है कि अधिक-से-अधिक पाठक इसमें रस ले सकें. जिस मानस का इस उपन्यास में खाका खींचा गया है, वह कुशवाहा कांत से लेकर अज्ञेय तक सब में रमा है और इसकी यह इच्छा हो सकती है कि कुशवाहा कांत से लेकर अज्ञेय तक इस के पाठक हों. यह खतरा भी है कि लो-ब्रांड और हाई-ब्रांड की जुगलबंदी

से कुछ मिडिल ब्रांड उखड़ जायें. बाकी लो ब्रांड और हाई ब्रांड को इससे तुष्टि मिलेगी, ऐसा मुझे विश्वास है.

कुछ-कुछ 'लैंपुलिंग' (टांग-खिंचाई) जैसा है यह उपन्यास, लेकिन 'राग दरबारी' से थोड़ा भिन्न. वह है मुख्यतः राजनीतिक सामाजिक भ्रष्टाचार का खुलासा, जबकि 'कुरु' के प्रहार का मुख्य लक्ष्य हैं—वे तरह-तरह के भ्रम, गलतफहमियां, जो सदाशय लोगों को भी जकड़े-बांधे हैं. तभी तो इस उपन्यास में 'विलेन' कोई नहीं, सब मानो भूलभुलैया में खोये से हैं. एक ओर तो है—वस्तुस्थिति के प्रति यह पॉजिटिव, संपन्न दृष्टि...दूसरी ओर उपन्यास के पात्र—जिस तरह कि पाठक भी—अंततः छूछे, खिसियाये-खोखले से रह जाते हैं. मान भी लूं कि 'सदन' या 'आश्रम' में पहुंचकर, 'अंत भला तो सब भला' दोहराना सरलीकरण होगा, पर तुमने जिन पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी को उपन्यास समर्पित किया है, उनकी कृतियां निश्चय ही दृष्टिसंपन्न हैं. तो फिर 'ढोल में पोल' वाले एक अन्य सरलीकरण की ओर तुम क्यों आकर्षित हुए?

तुम्हारा यह कहना बिल्कुल सही है कि उपन्यास में कोई खलनायक नहीं है. मैं समझता हूं कि किसी का अपने को 'हीरो' समझना ही किसी अन्य के लिए 'विलेन' होना है.

जिन्हें तुम 'भ्रम' कह रहे हो, वही हमें 'हीरो' बनाते हैं. आधुनिकता की शुरुआत वहीं से होती है, जहां से यह भ्रमजाल पारलौकिक न होकर, इहलौकिक हो जाता है. मानव-केंद्रित संस्कृति में जब 'व्यक्ति' मानव का प्रतीक बनने लगता है, तब वह स्थिति आती है, जिसमें हर व्यक्ति 'हीरो' होता है, लेकिन अगर हर व्यक्ति 'हीरो' हो तो या तो समस्त मानव जाति अपने हीरो युग में अब प्रवेश किया चाहती है या फिर हर व्यक्ति के लिए हर व्यक्ति 'नरक' है, विलेन है.

ढोल में पोल है, कह देना निश्चय ही सरलीकरण है और खतरनाक सरलीकरण है, क्योंकि इससे अनास्था पैदा होती है, लेकिन इससे घबराकर सरलीकरण नहीं है?

मैं हर्गिज यह नहीं कह रहा हूं कि फसलफे की यह चुनाचुनी मैंने 'कुरु' में लिखी है. मैं इतना ही कहना चाहता हूं कि जिस मानस, जिस वातावरण का अंकन यहां किया गया है, वह इस चुनाचुनी से आक्रांत है.

उपन्यास में तुमने आडंबर की बखिया कुछ इस तरह उधेड़ी है कि कहा जा सकता है कि इस रचना में प्रदर्शन का उपहास बड़ी प्रदर्शनात्मक भंगिमा के साथ हुआ है. जब तुम्हारे लिए सभी कुछ संदिग्ध और अविश्वसनीय है तो फिर इस 'भंगिमा' पर इतनी निर्भरता क्यों? नकारवाद को तुम 'अंधे की लाठी' की तरह इतनी मजबूती से क्यों पकड़े हुए हो कि लगे, मूर्ति-भंजन की मूर्ति बनायी जा रही है.

मूर्तिभंजक की भी मूर्ति बनती है, प्रदर्शन का उपहास भी प्रदर्शनात्मक होता है, यही शायद मैं जताना चाह रहा हूं. मैं तुमसे जानना चाहूंगा कि उपन्यास के तिमंजिले कथानायक की किस मंजिल से तुम यह प्रश्न कर रहे हो? मनोहर आस्थावान है, जोशीजी विवेक आवश्यक मानते हैं. उपन्यास को छोटा करने और 'बौद्धिकता की मात्रा घटाने की दृष्टि से जब मैंने पाडुलिपि का संपादन किया, तब जोशीजी के कुछ संवाद काट दिये, मिसाल के लिए "टू डाउट इज टू बी ए डिमोक्रेट" या "मैं विश्वास का संवाद कर रहा हूं, अंध विश्वास का नहीं." जोशीजी उदार हैं, बुद्धिजीवी हैं और उनमें रचनात्मक व्यक्ति का अहम् पूरी तरह मौजूद है. कथावाचक 'मैं' अवश्य ही दुनियादार व्यक्ति की तरह यह कह रहा है कि संभव है, कोई बहुत ऊंची किस्म की बातें-चीजें होती हों, लेकिन कामकाजी दुनिया में उन्हें भूल ही जाना अच्छा है, वरना कहीं गलती से मारे जाओगे. ये तीन मंजिलें गोया जीवन दर्शन हैं. अगर इनमें से किसी एक को भी अंधे की लाठी की तरह पकड़े होता तो सीधा-सादा उपन्यास लिख पाता, मुझे गप्प-वायस्कोप लिखने की जरूरत नहीं पड़ती.

अगर तुम्हें सचमुच यही महसूस होता है कि उपन्यास में नकारवाद की पैरवी की गयी है तो तुम्हारी प्रतिक्रिया क्या होती है? यह कि इस उपन्यासकार को पीटो, हम आस्थावानों को बिगाड़ने की कोशिश कर रहा है, कमीना! या यह कि सहज आस्था बीसवी सदी के इस अंतिम दौर में असंभवप्राय हो गयी है और लोकतंत्र, विज्ञान आदि के लिए जरूरी है कि एक हद तक वह असंभवप्राय रहे, अनावश्यक मान ली जाये या यह कि अगर संदेह करना ही लोकतंत्रात्मक होना है तो मूल्यहीनता और अनास्था से भी कोई बचत नहीं, क्योंकि 'विवेक' और 'चतुराई' में तमीज कर पाना हर किसी के लिए आसान नहीं. नकारवाद से परेशानी कुछ और लोगों को भी हुई है. मेरे लिए यह तथ्य बहुत दिलचस्प है कि इन लोगों ने कथावाचक 'मैं' के जीवन-दर्शन से लेखक को जुड़ा हुआ पाया है. व्यक्तिगत रूप से मेरे लिए यह बहुत खुशी की बात है कि मेरे साथ लेखक 'नकारवाद' और 'रूपवाद' से चिढ़ते हैं. इतने अधिक छिपे रुस्तम, क्रांतिविश्वासी और मार्क्सवादी इस प्रदेश और भाषा में मौजूद हैं, इसकी मुझे कोई जानकारी नहीं थी. हमें विश्वास करना चाहिए कि भले ही बासठ से लेकर अब तक इस देश में कुछ न हुआ हो, आइंदा बीस वर्षों में इन लोगों की अदम्य आस्था क्रांति कर दिखायेगी. उपन्यास की जो कथावस्तु है, वह संक्षेप में यों है कि लेखक-बुद्धिजीवी जोशीजी, अपने को कच्चा माल सप्लाई करने वाले मनोहर से परम संतुष्ट हैं, गो कि वह उसकी सहज आस्था और अबोघता को खासे संशय से देखते हैं. उन्हें इतने 'सरलीकरण' पर एतराज है. यही जोशीजी, 'मैं' की काइयां-कमीनी-सिनिकल चमड़ी बचा-दमड़ी-बना दृष्टि से खफा हैं और 'मैं' की तरह 'शैलो' नहीं होना चाहते. पहुंचेली इस तिमंजिले नायक के सामने प्रतिबद्धता का सवाल पेश करती है, मनोहर प्रतिबद्ध होने के लिए तैयार है, जोशीजी गोया अपने 'कमेंट रिजर्व' किये हुए हैं और 'मैं' कह रहा है कि प्रतिबद्धता, साहस, आदर्श ये तमाम आउट-ऑफ कोर्स बातें हैं, क्यों व्यर्थ में शहीद होना चाहते हो. 'मैं' के इस 'कॉमनसेंस' से जोशी जी की 'इंटेलेक्चुअलटी' पट जाती है और मनोहर की सहज आस्था अकेली पड़ जाती है. तुम चाहो तो इसे 'सिनिसिज्म' का नमूना मान लो, कोई और चाहेगा तो इसे 'अतिवाद' का मान लेगा कि आस्था सहज और साहसी ही हो सकती है, जहां अगर-मगर है वहां 'सिनिसिज्म' आकर रहेगा.

मनोविषाद और अति गंभीरता से पीड़ित हिंदी पाठक को यह जो विनोदपूर्ण रचना तुमने दी है, उसका समा

एक तरह के महाशून्य में क्यों कर डाला है? क्या एक कामेडी को ट्रैजेडी की 'हाईसीरियसनेस' प्रदान करना शैलीगत विभ्रम नहीं? लुकाछिपी, शको-सुबहा, रोना-रूठना, नाज-नखरा——जो इस उपन्यास में आदि से ही है—अंत में 'जैसे उनके दिन बहुरे, वैसे सबके फिरें' वाला आश्वासन क्यों नहीं दे सका? लोकप्रिय, उपयोगितावादी, बिकाऊ मनोविज्ञान तो यही समाधान देता है——'आई एम ओ. के., यू आर ओ. के.'——'मैं तेरा चांद, तू मेरी चांदनी.' उसकी जगह, 'भ्रांतिरूप में स्थित देवी' पर कैमरे का आखिरी शॉट तुमने क्यों फोकस किया?

करो, मैं एक सीधा-सपाट उपन्यास लिखूं—जिसमें सी पात्र को, इसी जिंदगी को एक ट्रैजेडी के रूप में प्रस्तुत करूं —क्या तुम उसे भी एक स्तर पर हास्यास्पद नहीं मानोगे? हजार ये माहवार वाली नौकरी की तलाश, गंवार देश में बौद्धिक हौल का संधान, तंत्र और क्रांति से दूर ही दूर से छेड़छाड़, ध्यवर्गीय मूल्यों के प्रति 'विद्रोह' और अंत में उनकी स्वीकृति—— ह ट्रैजेडी है!! इसमें कौन-सा 'हाईड्रामा' है? कौन सी तपस्या, सा त्याग निहित है? लेकिन पता नहीं, हममें से कितनों के लिए ह नितांत अपनी ट्रैजेडी है. इसे हम उसी रूप में प्रस्तुत भी रते हैं, सराहे भी जाते हैं. जब इसी कहानी को कामेडी के रूप प्रस्तुत किया जाता है, तब क्या इसके 'ट्रैजिक' आयाम को सर्वथा कारा जा सकता है?

तर्क-विवेक और 'हाईड्रामा' में बैर है. 'हाईड्रामा' एक र पर हमेशा तर्क-विरुद्ध और इसलिए हास्यास्पद भी ठहरेगा. में एक औसत भारतीय बुद्धिजीवी के जीवन के 'हाईड्रामा' कहानी उसके हास्यास्पद पक्ष को रेखांकित करके सुनायी गयी लेकिन 'हाईड्रामा' वह है, ट्रैजेडी वह है, इससे कैसा इनकार? ब्रेकडाउन' का वर्णन हास्य-व्यंग्य के तेवर से किया गया लेकिन है तो वह त्रासद नर्वस ब्रेकडाउन. एक प्रकार से, यह न्यास—'नार्मल' होने की खातिर अबोध 'मनोहर' की हत्या जाने का उपन्यास है. वही हीरो है, यथार्थ जीरो है.

जिस माहौल में परंपरागत 'नायक' और 'मूरख' पर्यायवाची चुके हों, उसमें यों भी ट्रैजेडी और कामेडी में तमीज कर पाना किल है. यदि तुम्हारे पास कोई सताया हुआ आदमी आता है र कहता है कि मैं इस दुनिया को आग लगा दूंगा, नहीं तो ने आग लगा लूंगा—तुम उसे 'महा' कहने के बाद मूरख भी कह देना चाहते? क्या तुम उसे पागलपन से बाज आने की नहीं देते?

'भ्रांति रूप में स्थित देवी' की प्रतीकात्मकता इतनी स्पष्ट कि उसकी व्याख्या करने की जरूरत नहीं. 'डिस-इल्यूजन' अधुनातन संस्कृति की विशिष्ट भंगिमा है, लेकिन 'इल्यूजन' रहने पर 'शक्ति' भी नहीं रहती, क्योंकि शक्ति को सांसारिकता 'माया' के रूप में ही जानते हैं.

वैसे 'उपसंहार' "आई एम ओ. के. यू आर ओ.के." ही है. किसी भी चीज में आस्था न रहे तो जिंदगी के नाम पर डाटा' ही बचता है कि कौन भकुआ क्या बन गया?

जिसे परिनिष्ठित या मानक हिंदी कहते हैं, उसकी जड़ों तक पहुंचने की कोशिश हमने आंचलिक कथा-साहित्य में देखी है. उसी पड़ताल का एक और आयाम तुम्हारे उपन्यास में है. 'वृक्ष' के ही रूपक को लें तो कहेंगे कि शाखा-प्रशाखाओं, पल्लवों-पुष्पों के विस्तार में पहुंच गये हिंदी के सार्वजनिक, राष्ट्रीय चरित्र को पहचानने/उभारने का प्रयास तुमने किया है. जो खड़ी बोली बहुत अरसे तक सिर्फ——'किताबी भाषा' थी/मानी गयी थी, वह आधी सदी के दौरान, किस तरह, एक ओर 'पुस्तक' के दूसरी ओर 'देवभाषा' के आतंक से मुक्त हो, जीवन की भाषा बनती गयी है, इसका अच्छा नमूना तुम्हारा उपन्यास पेश करता है.

इस कृति में हिंदी की अनेक परंपराएं एक साथ समेटी और बढ़ायी गयी हैं. पंडिताऊ हिंदी, विभिन्न क्षेत्रों में प्रयुक्त हो रही बोलचाल की हिंदी और मानक हिंदी ——ये तीनों भाषा-रूप आरम्भ से ही हिंदी में लक्षित रहे हैं. लल्लूलाल, इंशा, सदासुखलाल के समय से लेकर अब तक ये धारायें अलग-अलग दिखती थीं, अब 'कुरु' जैसे उपन्यासों में ये समन्वित और एकजुट मालूम होती हैं. जैसे तिमंजिला नायक, वैसे ही हाई-ब्रांड, मिडिलब्रांड, लो-ब्रांड तेवर, और उसी तरह थ्री-टियर भाषा. व्यक्ति, प्रदेश, हरकत, चरित्र, वर्ग, संस्कार और मनोदशा को उद्घाटित करने में यह भाषा समर्थ हुई है. लेखक-विशेष या व्यक्ति-विशेष की भाषा से आगे बढ़कर वह 'फिक्शन' की भाषा बन सकी है. ऐसी भाषा के उबाऊ हो जाने या 'क्लीशे' बन जाने का खतरा तो हमेशा रहेगा ही, क्योंकि वह किन्हीं चरित्रों-भावनाओं-संकल्पनाओं की क्रमबद्ध रचना तुम्हारे उपन्यास में नहीं कर रही, 'विट' या 'रिपार्टी' के स्तरों पर वाग्विलास में व्यस्त रहती है.

संसार का काम तब चलता है, जब हर व्यक्ति, हर वस्तु वही हो, जो उसका नाम हो. जहां 'संज्ञाओं में यह अंधविश्वास' चुकने लगता है, वहां सारी वस्तुओं-व्यक्तियों और स्वयं अपने से विश्वास उठने लगता है, 'कुरु' में इसी स्थिति में डूबे हुए मन का अंकन है, इसलिए भाषा के मायावी पक्ष पर उसमें खास जोर दिया गया है. भाषा ही पात्र है. गोया जिस हद तक भाषा मात्र परिपाटी है और परिपाटियों में से आपकी आस्था उठ चुकी है, उस हद तक वह यहां से वहां तक और कुछ नहीं, छलना है.

इस उपन्यास में मैंने भाषा के कई तेवर (और तेवर ही क्लीशे है एक माने में) साथ-साथ चलने दिये हैं, पात्र और परिस्थिति के अनुरूप. प्रश्न यह है कि 'क्लीशे' रेखांकित करने के बावजूद क्या भाषा में उद्वेलित करने की शक्ति बच रहती है? दक्षिणा देते हुए "तत्सत नमम्" (उसकी है, मेरी नहीं) कहने से अधिक पिटा हुआ, चुका हुआ क्लीशे क्या हो सकता है? लेकिन क्या इस पंक्ति को लगभग कॉमिक, सर्वथा ऊलजलूल पूजा के दृश्य तक में एक विशिष्ट संदर्भ में दुहरा देने से वह पाठक उद्वेलित नहीं होता, जिसके लिए यह क्लीशे पुरखों की विरासत हो? क्या क्लीशे मानकर अनादर कर दिये जाने पर ही हमें यह बोध होता है कि यह समादृत भाषा है और जो वाग्विलास वाली बात तुम कह रहे हो तो उपन्यास के ज्यादातर पात्र बुद्धिजीवी हैं और वाग्विलास की नहले पर दहले जमाने की कुटेव इस

जमात में कसरत से पायी जाती है. हिंदी के लेखकों में भी तुमने देखा होगा कि या तो कानों में कान डाल काम की बातें करते हैं या खुले में एक-दूसरे पर फब्तियां कसकर हंसते-हंसाते हैं. उपन्यास में कथावाचक तो एलानिया 'शैलो' बुद्धिजीवी है, उसके रहते वाग्विलास ही होगा, मरसिया नहीं, बल्कि यों कहना चाहिए, मरसिया भी वाग्विलास की तरह प्रस्तुत किया जायेगा. क्रमबद्ध विकास की बात तो वहां आती, जहां चरित्रों का पारंपरिक ढंग से निरूपण किया जा रहा होता. यहां तो केवल गप्पें हैं, दृश्य हैं, संवाद हैं और 'डायलाग' का महज 'डायलाग' होना रेखांकित किया गया है.

> **देखता हूं कि तुम्हारा समापन वक्तव्य पुस्तक के अंतिम आवरण पर मुद्रित है: "कमीनो! जो भी तुम लिये हो, हाथ में अपने—अतीत की अक्षय आचमनी, वर्तमान की विदग्ध वर्तिका, अनागत का अमोघ अस्त्र या और कोई झूठ, झूठ, झूठ, जो भी तुम लिये हो हाथ में अपने! और इस हथियार के चमत्कार का आश्वासन देनेवाली सौगंध खाने के लिए जो भी रचा हो नाम तुमने अपनी जननी का, क्रांति, विज्ञान, संस्कृति, जो भी, जैसा भी जब-जब रचा हो नाम तुमने. कमीनो! विधवा है तुम्हारी जननी, विधवा है तुम्हारी शक्ति और वह तुमसे सुहागन हो नहीं सकती."**
>
> **आधुनिक व्यक्ति अपनी विधवा मां को सुहागन बनाने की 'ईडिपस ग्रंथि' से पीड़ित है, ऐसा कहना न केवल सनकवाद से बढ़ते हुए नकारवाद और फिर ध्वंसवाद तक पहुंचना है, बल्कि पूरी बहस को अतीतकालीन 'मिथकता' में धकेल देना है.**

पता नहीं, मुझसे क्या टिप्पणी तुम्हें अपेक्षित है. मैं यह ही कहना चाहूंगा कि भारतीयता की सुबह-शाम दुहाई देने के बावजूद हमारे दिमाग पश्चिमी सांचे में ढले हुए हैं. जहां जननी की, शक्ति के रूप में भी चर्चा हो रही हो, वहां भी केवल फ्रायड का ईडिपस कांप्लेक्स ही हमें-तुम्हें क्यों सूझता है? हम 'एब्सर्ड' की बात कहते हैं, 'माया' की नहीं. ब्रेश्ट ने 'एलिनियेशन' हमसे उधार लिया, लेकिन हम अपनी कृतियों में भी 'ब्रेश्टियन एलिनियेशन' की ही खोज करते हैं.

जिस प्रसंग मेंयह संवाद आया है, उसमें शक्ति के विधवारूप (घूमावती) की चर्चा है. शाक्त-परंपरा में शक्ति को विधवा, सदा सुहागन और कुंवारी तीनों रूपों में देखा गया है और इसके पीछे यह दृष्टि काम कर रही है कि जो किसी के भी वश की न हो, उस नारी-विशेष को आप चाहे जिस रूप में देखें, कोई फर्क नहीं.

शक्ति की इस रूप-त्रयी को अतिरिक्त प्रतीकात्मकता भी दी जा सकती है—जहां भी शक्ति के इन तीनों रूपों को दर्शानेवाले तिमंजिले मंदिर हैं—मिसाल के लिए सराहन (हि. प्र.) में. वहां सबसे निचली मंजिल पर विधवा-रूप की झांकी होती है और कोई भी गृहस्थ, यहां तक कि पुजारी भी, उसके दर्शन नहीं करता. बीच की मंजिल में कुमारी-रूप की झांकी होती है—रोजमर्रा इसी की पूजा की जाती है, गृहस्थ भी इसी के दर्शन करने आते हैं. सबसे ऊपर की मंजिल पर सदा सुहागन देवी होती है. उसके दर्शन विशिष्ट अवसरों पर ही किये जाते हैं.

दूसरे शब्दों में, साधारण गृहस्थ के लिए 'संभावना' ही पूज्य मानी गयी है, 'नकार' अथवा 'चरितार्थता' नहीं. यद्यपि वह शक्ति किसी की हो नहीं सकती, उसके 'अपनी' हो सकने की कल्पना भी 'माया' का ही अंग है, तथापि इस संभावना की कामना करने से, उसकी साधना करने से, उस शक्ति की वह छवि अपनी हो सकती है, जो प्राणिमात्र में प्रतिबिंबित है.

यह फलसफा मैं महज इसलिए सुना रहा हूं कि तुमने फ्रायड के फलसफे की चर्चा की, अगर फ्रायडधर्मी व्याख्या से तुम इसे ईडिपस कांप्लैक्स का नमूना मान सकते हो तो तांत्रिक व्याख्या से कोई व्यक्ति इसे नकार को पूजने और चरितार्थता की गारंटी देने वालों के नाम फटकार भी मान सकता है.

या फिर, यह भी शब्द-समूहों की निरर्थक माया का एक नमूना हो सकता है—शुद्ध डायलागवाजी, जैसा तुम चाहो.

▣

इस सादगीभरे डायलाग 'जैसा तुम चाहो!' के बाद लखनवी तकाजा तो यह है कि मैं भी दोहराऊं, 'जैसा तुम चाहो', फिर काफी देर यही डायलाग चलता रहे. . . .लेकिन कई मुद्दों पर हम दोनों कुछ इस तरह सहमत-असहमत हैं कि अंत में पाठकीय परमाधिकार का उपयोग करते हुए, कहना चाहूंगा कि मेरे लिए, किन्हीं अर्थों में, यह नये भारत का एक उपन्यास है.

सदियों की परंपरा के बोझ को उतार फेंकने के लि व्याकुल इस भारत में आगे बढ़ने की छटपटाहट है, दि कोई भी हो. प्रश्नों से भरा, लगभग सब कुछ पर विश्वा अविश्वास करता, अनुभव की आवृत्ति के प्रति अधीर तथापि बहुत कुछ को परिचित अथवा नाममात्र को परिवर्ति रूप में अपनाने के लिए विवश है यह भारत. निय दासता से वह टकराना चाहता है और उपनिवे वाद-पूंजीवाद-उपभोगवाद-हिंदुत्व-सत्तासंघर्ष जैसे संदर्भ उस सामने हैं? किसे अपनाये, किये त्यागे? वर्तमान में रहने व्याख्या अपने लिए किस तरह करे?

नये भारत के ये तमाम सवाल इस रचना में बार-बा उठाये गये हैं. हजार की नौकरी, 'तंत्रा-योगा' के प्रति उत्सुक एक-ठो 'वेस्टलैंड' या 'वार एंड पीस' जैसी किसी कृति रचना, संस्कारी ब्राह्मण किशोर की महानगर में हकबकाह किसी और के धोखे में किसी अन्य का मारा जाना—आज भारत की ये ठोस स्थितियां हैं. इनके बीच से गुजरा यह उपन्या मुझे 'भंगिमा' से कहीं अधिक 'वास्तविकता' के निकट लगता 'मैं क्या हूं?' के बुनियादी सवाल के साथ-साथ, यह 'मैं क्या क का भी जरूरी सवाल उठाता है.

उपन्यासकार के साथ अजितकुमार की इस पाठकीय लिखा-पढ़ी के साथ ही 'पखवारे की पुस्तकें' स्तंभ में नेत्रसिंह रावत की लिखी इस उपन्यास की समीक्षा और व्यंग्यकार किट्टू का एक चुलबुला खत भी हम पृष्ठ 66, 67 पर प्रकाशित कर रहे हैं ताकि उपन्यास के कुछ और पहलू उजागर हो सकें.

सारिका की कथा प्रतियोगिता (जनवरी अंक-1, 1980) में बोसीदनी को तृतीय पुरस्कार मिला था. उसी युवा रचनाकार प्रियंवद की ताजा रचना—“ओ आनामा अद्रष्टा मंत्रकर्ता, तुम्हारी कथा अधूरी थी. आगे क्या हुआ, यह मैं बताता हूं. शाश्वत सत्य की अन्वेषिका यमी देह-सत्य को अपने जीवन के स्तर पर जी नहीं पायी और उसके होंठ नीले पड़ गये. मेरी बूबा की तरह जहर में डूबे दो नीले फूलों जैसे होंठ.” यम और यमी के अवैध करार संबंधों में सत्य-असत्य के अन्वेषण और मानसिक द्वंद्व की शाश्वत गाथा——

होंठों के नीले फूल

प्रियंवद

के होंठ बिल्कुल लाल थे और बूवा को मौत बहुत अच्छी लगती थी. बूवा हमेशा बहुत धीरे-धीरे मरना चाहती थी. की कुनमुनी धूप जैसे पूरे वदन पर रेंगती है, बिल्कुल उसी तरह मौत को छूना चाहती थी.

“तुम मेरा गला दवा सकते हो?” बूवा मुस्कराकर पूछती.

“दवा सकता हूं.” मैं अपनी हथेली में बूवा की सफेद नर्म दवा लेता. बूवा चुपचाप दीवार से सर टेके आंख बंद किये रहती. मेरी उंगलियों का कसाव बढ़ता जाता, लेकिन बूवा हरे पर कोई सिकुड़न नहीं आती. बूवा के गले की नसें उभरने और बूवा का गले का वह हिस्सा नीला पड़ जाता. मैं अपना हटा लेता और बूवा के गले का वह नीला हिस्सा चूम लेता.

“तुम मेरी मां हो बूवा.” मैं फुसफुसाया.

और फिर बूवा मेरा सिर अपने सीने में दुबका लेती. “डरपोक,” हंसी देती और मेरी गरदन में उसके दांत धंस जाते.

बहुत पहले एक तपती दोपहर में एक पतंग के पीछे भागता मैं बूवा के घर में घुस गया था और बूवा ने मुझे रोक लिया रे हाथों में चप्पल, धूल से सना चेहरा, पसीने और मिट्टी में पूरा बदन.

“कौन हो तुम?” बूवा ने मेरा हाथ पकड़ लिया था.

“वो पतंग”. . .मैं बिल्कुल सन्न रह गया था तब बूवा को कहानी-किस्सों के पन्नों से फड़फड़ाती जैसे कोई राजकुमारी आयी है. गोरा मुंह, लाल होंठ और लंबे बाल. हंसती है फूल झरते हैं. रोती है तो मोती. आंखें उदासी से कढ़ी हुई.

“इतने गंदे-संदे घूमते हो, मां नहीं डांटती?”

● श्याम दीक्षित

“मां नहीं है.”

“इतने छोटे हो और मां नहीं है!”

बूबा की आवाज भीग गयी थी और बूबा ने मुझे अपने बिल्कुल पास खींच लिया था.

“तुम रोज आओगे मेरे पास?”

“क्यों?”

“क्योंकि तुम्हारी आंखें बहुत अच्छी हैं, बिल्कुल सेटेनिक ब्राउन.”

“तुम बिल्कुल राजकुमारी जैसी लगती हो.” मेरा डर खत्म हो गया था.

“ओ बाबा. . . .” बूबा खिलखिलाकर हंस पड़ी थी.

“तुम क्या किसी का खून पीती हो?”

“ओ मां. . .” बूबा हंसते-हंसते गिर पड़ी थी.

“मेरा नौकर कहता है जो किसी का खून पीता है, उसके होंठ बिल्कुल लाल हो जाते हैं, तुम्हारी तरह.”

बूबा फिर मेरा हाथ पकड़कर खींचती हुई मुझे अंदर ले गयी थी. मेरे हाथ-पैर धोकर उसने मुझे न जाने क्या-क्या खिलाया. सीने से लगाये न जाने कितनी देर दुलराती रही और मैं उस तपती दोपहर में अपने अकेले बचपन को हथेली में बंद किये धीरे-धीरे पिघलकर बूबा के अंदर सिमट गया था.

उसके बाद मैं रोज आता रहा. शाम होती और मैं भागता हुआ बूबा के घर पहुंच जाता. बूबा तभी नौकरी से वापस आती हांफती हुई. बाबा की दवा के पैसे बचाने के लिए एक-दो मील पैदल चलकर आती वह. बूबा अपना काम करती रहती और मैं कमरे की दहलीज पर चुपचाप बैठा बूबा को देखा करता. बूबा खाना बनाती, कपड़े धोती, बिस्तर लगाती, बाबा को खिलाती, दवा देती और फिर सुलाती भी. न जाने कितनी देर हो जाती. कभी-कभी मैं ऊंघने लगता. चौंकता तब, जब बूबा हिलाती.

“सो गया क्या?” बूबा वहीं बैठ जाती.

मैं जाग जाता. “इतनी देर कर देती हो कल से नहीं आऊंगा.”

"नहीं बाबा. . ." बूवा मेरा चेहरा अपने हाथों में भरकर अपने लाल होंठ मेरे माथे पर रख देती, "कल से देर नहीं करूंगी बस . . ." और फिर मेरा सिर खींचकर अपनी गोद में रख लेती. थोड़ी देर में बूवा की उंगलियां मेरे बालों में, गले में, सीने पर एक बेचैनी के साथ घूमने लगतीं. साथ ही साथ बूवा हमेशा, चुपचाप कोई किताब भी पढ़ती रहती. अक्सर खलील जिब्रान की कविता—'दि ब्यूटी ऑफ डेथ'. मेरे गाल पर जब कोई बूंद गिरती तब मैं चौंकता.

"तुम रो रही हो बूवा?" मैं उठ बैठता.

बूवा अपने आंसू पोंछ लेती.

"ऐसा क्यों होता है. सुख आदमी को छूता हुआ क्यों निकल जाता है. उसे अपने में समेटकर जम क्यों नहीं जाता, बर्फ की सिल्ली की तरह. . ."

मैं कुछ नहीं समझ पाता. बूवा को टुकुर-टुकुर देखा करता. बूवा फिर मुझे अपने सीने में दुबकाकर बड़बड़ाते हुए वहशियों की तरह चूमने लगती, "सुख केवल कोई क्षण होता है रे. मेरा वह क्षण तू है?" मेरा दम घुटने लगता और मैं फिर उसी तरह पूरे का पूरा पिघलने लग जाता.

"तुम मेरी मां हो बूवा. . ."

"हां, मैं तेरी मां हूं!" बूवा फफककर रो पड़ती. मैं वैसे ही बूवा के सीने पर सर रक्खे लेटा रहता और मेरा चेहरा बूवा के आंसुओं से भीगता रहता.

और तब मैं सोचा करता अपने नौकर की बात. वह राजकुमारी जितना रोती थी उतने ही उसके बाल लंबे होते जाते थे. बूवा के बाल इसलिए लंबे हैं, क्योंकि बूवा हमेशा रोती है.

◆

जमीन का वह टुकड़ा बिल्कुल लाल हो जाता था. गुलमोहर सारी रात बरसते और उसकी पंखुरी-पंखुरी से जैसे वह टुकड़ा खून से भीग जाता, बिल्कुल बूवा के होंठों की तरह.

जमीन के उसी सुर्ख टुकड़े के ऊपर हम बड़े होते रहे थे. मैं, बूवा, मेरे अंदर का आदमी और बूवा के अंदर की औरत.

"जानते हो, मुझे और तुमको किस चीज ने जोड़ा है." बूवा पूछती.

"नहीं."

"अपने होने के बेमानीपन ने. अपने अस्तित्व की निरर्थकता ने." न जाने तब कितनी रात बीत चुकी होती. बूवा हमेशा तब ऐसी ही बातें करती.

"हम दोनों एक-दूसरे के कंधों पर सर रखकर रोते हैं रे. एक-दूसरे के अकेलेपन को चुपचाप कुतरते हुए. यही वह जमीन है, जिस पर हम दोनों मिलते हैं."

मैं बूवा का हाथ अपने हाथों में ले लेता. बिल्कुल सूखी झुर्रियों वाला हाथ. बूवा के पूरे बदन से उसका हाथ बिल्कुल अलग था. जैसे किसी बूढ़ी औरत की हथेली काटकर बूवा के हाथों में जोड़ दी गयी है.

"तुम्हारा हाथ ऐसा क्यों है?" मैं बूवा के हाथ की उभरी नीली नसों पर उंगली फेरता रहता.

"हाथ हमेशा दिल की तरह होता है." बूवा हंस पड़ती, "तूने कभी ऋग्वेद का गीत सुना है?" बूवा मुझे अपने पास खींच ले

"कौन सा?. . ."

"यम और यमी का गीत?"

"नहीं. . . ?"

"जानता है तू. . .यम और यमी भाई-बहन थे. एक दिन य ने यम से पूछा, "तू मेरा कौन है?" "भाई", यम बोला. "तेरा क्या है?" यमी ने पूछा. "तुझे सुख देना. . ." यम बोला. "मुझे सुख दे," यमी ने याचना की.

"बूवा. . ." मेरा हाथ कांप गया.

"डरपोक. . .! " खिलखिलाकर हंस पड़ी बूवा, "देहातीत हो सोच एक बार यमी की इस बात को. फिर जीवन दर्शन बना अपने जीवन के सारे मूल्यों का आधार."

"बूवा. . . ."

"हां रे, यमी की इस बात से अचानक उसका जीवन कि बड़ा हो गया है. कितना उन्मुक्त, व्यापक और स्पष्ट. ऐसा न क्या? यह दृष्टांत तो स्वयं में एक दर्शन है. यमी की दृष्टि कि निर्भीक और विस्तृत है. जीवन के छोटे-छोटे टुकड़ों में उ तुझको इसलिए बता रही हूं कि केवल तुझसे ही तो बोल पाती फिर तुझे तो अभी बहुत बड़ा होना है. सत्य की अन्वेषी, त दृष्टि अभी से सीख ले. . ."

"लेकिन पाप?. . ."

"धत्. अगर पाप और पुण्य सत्य हैं तो सुख कुछ भी होता रे. और अगर सुख सत्य है तो पाप-पुण्य का कोई अ नहीं है. सुख की नित्यता तो हम निश्चित ही जानते हैं, इ पाप-पुण्य कुछ नहीं हैं.

"तो यमी की स्थिति. . ."

"हां, यमी की स्थिति मान्य है. यमी के जीवन की स मेरा आदर्श है."

"और रिश्तों का धर्म?"

"रिश्तों के नाम जीवन को बहुत छोटे-छोटे घेरों में देते हैं. आंखों में कपड़ा बांधे बैल की तरह आदमी उन्हीं घे घूमता रहता है. यह गलत है. एक बार में आदमी क्या सब नहीं भोग सकता? क्या मेरे और तेरे रिश्ते का कोई नाम है मैं तेरी सब कुछ नहीं हूं, मां, दोस्त, बहन. . .बोल. . .?"

"हां बूवा." मैं बूवा की हथेली की नीली नसें चूम "तुम मेरी इकलौती आस्था हो, मेरी रक्षिता हो मेरी कल्या मेरी आवाज कांपने लगती. बूवा मेरी निगाहों में तब न जाने ऊपर उठ जाती. ज्ञानी, गंभीर, ममत्वमयी बूवा.

"आ चलें. . ." बूवा उठ जाती.

गुलमोहर की सुर्ख पंखुरियां बूवा के बालों में उलझी होतीं

"एक बात पूछूं बूवा?" मैं ठहर जाता. "फिर यम ने किया?"

"उसका कोई महत्त्व नहीं है रे. देह का अस्तित्व तो कुछ का होता है बस. . ."

"अच्छा बूवा, तुम जो कुछ कहती हो, क्या सचमुच उन्मुक्त होकर कर सकती हो."

"शायद," बूवा हंस देती, "अपनी बूवा को समझा नहीं

"समझा तो बिल्कुल नहीं. रोज नयी बूवा को देखता

बूबा खिलखिला पड़ती, "यू सेटेनिक ब्राउन!" और फिर मेरी गरदन में बूबा के दांत धंस जाते.

कभी-कभी मैं सोचता कि बूबा इतनी चुप क्यों रहती है, क्यों सी बातें करती है, तो मुझे समझ में नहीं आता. एक दिन बूबा ने मुझे बताया था, "मेरी पूरी देह मुर्दा ख्वाबों से गुंथी है रे, और ब कभी उन ख्वाबों में से कोई ख्वाब करवट लेता है तो मैं बिल्कुल र हो जाती हूं. कहीं वह ख्वाब जाग न जाये. . ."

3

ा रो पड़ी थी फिर, और तब मुझे बूबा के पूरे बदन पर रे हुए सपने फैले दिखायी पड़े थे. मुझे लगा था कि बूबा की देह का ना-कोना हर वक्त कोई न कोई लड़ाई लड़ता रहता है और हीं मरे हुए सपनों के बीच, कोने-कोने की लड़ाई के बीच मेरी ा बड़ी होती रही है. उसके बाद मैंने कभी कुछ नहीं पूछा. मैं नता था. बूबा किसी जमीन का कोई ऐसा टुकड़ा चाहती है, पर बूबा अपने पांव रख सके. थकी हुई हांफती बूबा अब और हीं लड़ना चाहती और इसलिए जमीन का वह टुकड़ा कभी यमी स्थिति होती, कभी खलील जिब्रान की 'दि ब्यूटी आफ डैथ', र कभी मैं.

बूबा उस रात सर्दी से कांप रही थी.

"अंदर चलें?" मैंने कहा

"नहीं. . ." बूबा ने अपना शाल और कसकर लपेट लिया. थकी लग रही थी बूबा. न जाने उंगली से क्या-क्या खींचती फर्श पर. मैं चुपचाप बैठा देख रहा था. मैं जानता था यही वह है जब अपने अस्तित्व की निरर्थकता के बोझ से बूबा का घुटने लगता है और बूबा सिर्फ मरना चाहती है. बिल्कुल रे-धीरे. मैं सोच रहा था कि बूबा मुझसे पूछेगी कि क्या मैं उसका दबा सकता हूं और मैं बूबा के गले पर अपना हाथ धर दूंगा.

"सुनो. . ." बूबा बहुत देर बाद बोली. बूबा की आवाज धीमी थी, "मैं महसूस करना चाहती हूं कि मैं हूं." बूबा सीधे आंखों में देख रही थी.

"बूबा. . .," मैंने बूबा के चेहरे पर ऐसी तनाव और थकान नहीं देखी थी. बूबा का चेहरा इस सर्दी में भी भीग रहा था. के साथ हमेशा से चलता हुआ मीलों लंबा अकेलापन और टा भरती हुई शाम की ललछौंहीं, कुछ ऐसा ही बूबा के पूरे रे पर फैला था.

"मैं अपने होने को पूरा, पर जीना चाहती हूं."

"मैं समझा नहीं बूबा. . ."

"तू मेरे लिए क्या कर सकता है?"

"कुछ भी."

"कुछ भी? सत्य-असत्य से परे, सुख-दुख के बिना?"

"हां बूबा."

"मुझे चूमो." बूबा ने मेरा हाथ पकड़ लिया. बूबा की हथेली रही थी. बूबा की आंखें धीरे-धीरे बलने लगीं.

"बूबा. . ." मैं डर रहा था बूबा की सूरत से. उदासी से कढ़ी की आंखें सिर्फ एक औरत की आंखें रह गयी थीं.

एक ऐसी औरत जो हमेशा से बूबा के अंदर थी, बूबा के साथ होती रही, लेकिन बूबा ने उसे अभी अपने से बाहर झांकने नहीं दिया. वह औरत धीरे-धीरे बूबा के जिस्म की एक-एक नस में फैल गयी थी और आज वही औरत जब बाहर निकलना चाह रही थी तो बूबा की एक-एक पर्त एक-एक नस चटक रही थी.

मैं उठा और धीरे से मैंने बूबा का गला चूम लिया. बिल्कुल वही हिस्सा जो मेरे दबाने से नीला पड़ जाता था.

"मेरे होंठ." बूबा फुसफुसायी. बूबा ने अपनी आंखें बंद कर लीं. मैंने झुककर बूबा के होंठ चूम लिये. सुर्ख लाल होंठ. एक घूंट भरा हो जैसे मैंने खून का.

"और. . ." बूबा की बेचैन उंगलियां मेरी गरदन मेरे सीने पर रेंग रही थीं.

मैं फिर झुका और फिर एक घूंट भरा.

"और. . ."

"बूबा. . ." मैं हांफने लगा. मेरे चेहरे पर पसीना छलछला आया. मेरा बदन कांप रहा था. मुझे लग रहा था कि मैं अपने-आप से छिटककर अलग हो गया हूं और सिर्फ एक आदमी मेरे अंदर शेष रह गया है.

बहुत पहले मैंने पूछा था बूबा से कि यम ने क्या किया. . .! बूबा ने कहा था, उसका कोई महत्त्व नहीं है. महत्त्व है जीवन दृष्टि का, मूल्यों का और मैंने फिर पूछा था बूबा से कि मूल्यों के लिए तुम जिस तरह सोचती हो, उतना मुक्त होकर उनको जी सकती हो?

"शायद. . ." बूबा ने कहा था. मेरी वही बूबा मेरी इकलौती आस्था मेरे सामने बैठी थी. यमी की जीवन दृष्टि को आदर्श मानने वाली, शाश्वत सत्य की अन्वेषिका, पाप-पुण्य के अनास्तित्व और रिश्तों के धर्म की अध्येत्री, मेरी रक्षिता मेरी कल्याणी, मेरी मां.

"मझे सुख दे रे. .. मुझे विस्तार दे. . ." बूबा ने खींच लिया.

"बूबा. . ." मैं कुछ कहना चाहता था. लेकिन अचानक बूबा की आंखों में, होंठों पर, सकड़ों मरे सपने करवट बदलने लगे. बूबा की हांफती सांसों को किसी जमीन का एक टुकड़ा चाहिए था. जिस पर रुककर बूबा कुछ गहरी सांसें ले सके. मैं सिर्फ बुदबुदाकर रह गया. और मैं, सिर्फ एक आदमी, बूबा के, सिर्फ एक औरत के सीने पर हांफता हुआ गिर पड़ा.

सुबह जब मैं गया तो बहुत सन्नाटा था. बाबा कमरे में सो रहे थे. कमरे की दहलीज पर धूप का एक टुकड़ा रेंग रहा था. बूबा कहीं नहीं दिखी. मैं वहीं एक कोने में बैठ गया. कुछ देर में बूबा बाथरूम से निकली. वही पुरानी उदासी से कढ़ी आंखें. सूजी हुई. सारी रात रोयी थी शायद बूबा. होंठ भी कुछ छिले हुए और सूज रहे थे. मुझे देखते ही बूबा चौंक गयी. मेरी आंखें झुक गयीं.

"तू आ गया रे. देख तो मेरे होंठ कैसे नीले हो गये हैं. बिल्कुल जहर में डूबे. सारी रात तो धोया है मैंने इन्हें, लेकिन यह रंग छूटता ही नहीं." बड़बड़ाती हुई बूबा फिर नल पर चली गयी.

मैं फूट-फूटकर रो पड़ा.

"ओ अनामा अद्रष्टा मंत्रकर्त्ता, तुम्हारी कथा अधूरी थी. आगे क्या हुआ, यह मैं बताता हूं. शाश्वत सत्य की अन्वेषिका यमी देह-सत्य को अपने जीवन के स्तर पर जी नहीं पायी और उसके होंठ नीले पड़ गये. मेरी बूबा की तरह जहर में डूबे दो नीले फूलों जैसे होंठ. □

● **15/269 सिविल लाइंस, कानपुर.**

सुलो और उसकी नदी

• अक्षय उपाध्याय

छाया : विद्याव्रत

घंटी हो गयी. थमा हुआ प्लेटफार्म बांध की तरह फूट गया. सामानों की गिनती करते, कुली खोजते लोग आवाजें देने लगे. मैंने मुड़कर देखा तो वह सुलो थी, सफेद और नीले छापे वाली साड़ी में सिकुड़ी, बेहद गुम और भरी हुई. विदा के लिए भीतर से अपने को तैयार करती. बार बार दूर पुल की ओर ताकती. शायद पुल का अंधेरा इंजन को कुछ देर और रोक सके. अंधेरा कुछ भी नहीं रोक पाता. लोग केवल अंधेरे में रुकते हैं. वह सोचती है. सचमुच वह सोचती है...

एक छोटी पतली-सी नदी बहती थी, उसके घर से सटी हुई. बच्चे तक खेल-खेल में उसे पार कर जाते, इतनी शांत और प्रेम से भरी नदी थी वह. कभी-कभार कोई छोटी डोंगी उसमें से होकर गुजरती तो नदी के लिए वह दिन उत्सव का होता और नदी के किनारे खड़ी सुलो के लिए भी, स्वप्न की तरह. लगता,जैसे नदी अकेली और उदास नहीं है.

नदी का कोई नाम न था. लोग अपने-अपने प्रेम से जोड़कर अलग-अलग नामों से उसे बुलाते.

बुलाते तो नदी भी बहकी बहकी सभी नामों से उनके पैरों के पास चढ़ी चली आती. सुलो ने भी एक नाम दिया था नदी को. कितनी बार मां ने, कितनी बार सहेलियों ने सुलो से पूछा था उसके दिये नाम को. सुलो थी कि बार-बार पूछने पर भी हर बार केवल खिलखिलाती, 'नहीं बताती मैं, मेरे नाम से तुम लोगों को क्या!" ठीक ही तो है, किसी के नाम से किसी दूसरे को क्या? नदी भी यही कहती. नदी और सुलो में खूब गाढ़ी छनती. घंटों वह वहां बैठी बतियाती. नदी के गांव के बारे में, मां और परिवार के बारे में, अपने बचपन के एक-एक पल को वह नाव बनाकर नदी में बहाती, अपने स्वप्न रचाती और नदी से उसके स्वप्न पूछती. उसके भीतर छिपे रत्नों के बारे में एक बार पूछा था उसने, "नानी तुम्हारे भीतर भी मोती हैं न!"

उस दिन पहली बार नदी ने अपने भीतर से एक सुनहरे रंगवाली छोटी मछली निकालकर सुलो के नन्हें हाथों में थमा दी थी.

वह समझ नहीं सकी थी कि इस सुनहरी मछली का क्या करे. इतनी खूबसूरत मछली को पकाया भी तो नहीं जा सकता और घर पहुंचते ही लोग इस नन्हीं जान के पीछे हाथ धोकर पड़ जायेंगे. उसने घबराकर नीम के नीचे खड़ी हो उस छटपटाती

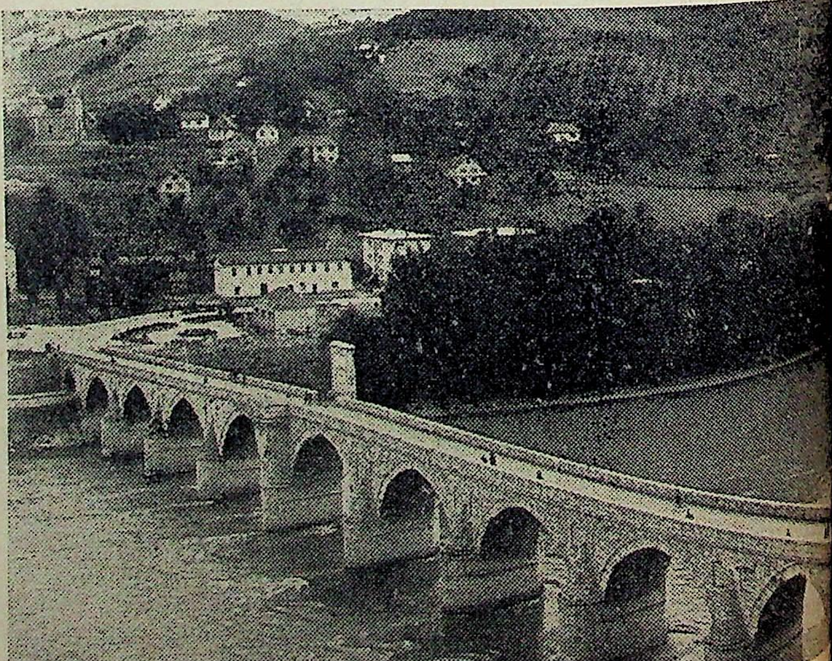

सुनहरी मछली को वहीं अपने सीने में छिपा लिया. बस. . . .

बस, धीरे-धीरे सुलो बड़ी हुई. छोटी-छोटी दो चोटियां अब एक में बदल गयीं और साथ-साथ बड़ी होती रही सीने में छटपटाती नदी की दी हुई सुनहरी मछली. नदी ने सुलो को उसके सुनहरे बचपन के बदले सिर्फ पानी से निकालकर छटपटाती सुनहरी मछली ही दी और अब सुलो छटपटाती है. . .पानी. . .पानी. . . सुलो की नदी में आज तक कभी बाढ़ नहीं आयी. शायद इसी वजह से पूरा गांव उसे बिटिया की तरह प्यार करता और सुलो

उस दिन छप छप करते उसने नदी के कान में कहा था, "ए, धान कट गये." नदी ने कहा, "अच्छा."

उसने कहा, "सारी लड़कियां गीत गाने लगी हैं. . . ." नदी ने कहा, "तो!"

"अरे! सरसों फूल गयी है." नदी ने फिर कहा, "तो!"

सुलो को पहली बार नदी की अकल पर गुस्सा आया था. उसने नदी के कान ऐंठते हुए पूछा था, "अरी पगली, क्या तेरा गौना नहीं होगा?"

"नहीं!"

और नदी के पहले खुद सुलो चौंक गयी. देर तक दूर डूबते सूरज को देखती रही. एक छोटी चिड़िया बहुत ऊपर पंख रोककर नीचे उतर रही है. सुलो की चोटी का रिबन खुल गया और नीचे उतर रही उस चिड़िया को बांधने की कोशिश करने लगा. "छोड़ न, मेरे कान छोड़." कलकलाती नदी ने जब पुकारा तो वह वापस लौटी. "क्या हुआ?" नदी हंसने लगी. सुलो नहीं हंस सकी. हंसना चाहती थी, पर पता नहीं क्यों नहीं हंसी.

"सुन री." नदी ने पास बुलाया, "जब तेरा गौना हो तो मुझे याद करते हुए नये घर जाना. तब एक गीत सुनाऊंगी मैं तुझे, गांव, सपने और गौने का गीत. सच."

"ठीक, मैं गौने पर नदी पार जरूर करूंगी," सुलो ने ताली बजायी और खो गयी. सुलो का गौना नहीं हुआ. नहीं हुआ तो एक दिन यूं ही बप्पा से पूछे बिना वह नदी से विदा हो ली. गौना करने लायक बप्पा की हैसियत नहीं थी. गौने के लिए सुलो का बचपन छटपटाता, मगर वह चुप थी. खुद सुलो नहीं समझ सकी कि यह क्या हो रहा है. सपने में देखे गये दृश्य केवल याद आते रहे, याद आती रही नदी, सुलो की नदी. वह केवल एक बार वापस अपनी नदी के पास जाना चाहती थी. गांव लौटना चाहती थी, पर बप्पा की आंख से जो नदी बही तो सब कुछ बह गया. . . खेल, गीत, खिलौने, छोटे-बड़े सभी सपने और सुलो भी.

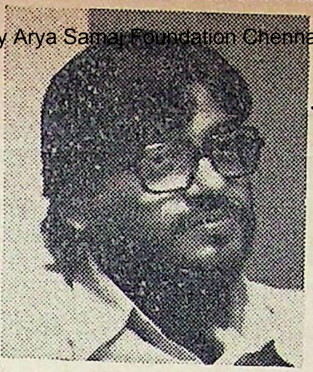

● अक्षय उपाध्याय

यहां इतनी दूर पहाड़ के पास कोई नहीं है. अकेली दोपहर की तरह तपती सुलो इंतजार करती रही लौटने की. उसकी नदी में जो डोंगी आयी भी तो वह पूरी तरह खाली थी. उसे गीत गानेवाला वह माझी याद आता रहा, बचपन में जिसके सपने देखे थे. माझी का चमकता बदन और चमकती आंखें, पूरी पृथ्वी को घेरनेवाली उसकी आवाज, उसकी घनी दाढ़ी, उसकी सारी इच्छाएं. सब याद आतीं. सुलो रोती तो 'वह' चिढ़ता. उसके सपनों से सिगरेट सुलगाता वह, तमतमाता, गरियाता. जिस सुनहरी मछली को बचाने के लोभ में सुलो ने सीने में छिपा लिया था, वह उस सुनहरी मछली को सिर्फ पकते हुए देखना चाहता. उसके लिए भूख भगवान है. सुलो की आत्मा नहीं, शरीर चाहिए उसे. नदी की बात पर चीर देने की धमकी देता. वह ताने देता कि अभी भी गांव को गठरी की तरह लिये फिरती है. गौना तक नहीं करा सका बाप. गौना न होने का दुख सुलो को भी है, लेकिन वह आत्मा का दुख है, जीभ का नहीं. गौने के बाद इतना दुख बाट जोहता है, उसे नहीं पता. नदी ने भी तो कभी नहीं बताया उसे. फिर सोचती, नदी पार किये बिना वह नये घर को चली आयी, शायद इसी कारण वह जल रही है. बचपन की सुनहरी मछली भयंकर छटपटाती है. . . .

दोनों बच्चियों को कलेजे से लगाये सुलो सोचती रहती. सोचती, क्या धान इसीलिए कटते हैं? क्या सरसों इसीलिए फूलती हैं? बच्चियों को कौन-सी कहानी सुनाये? पूछती है सुलो. "तुम अपनी नदी के बारे में कहो न इनसे."

"मगर नदी का गीत अगर ये भी न सुन सकीं तो फिर? तुम मर्दों के पास कोई नदी नहीं होती क्या?" "क्या बोलूं." "कुछ भी, सच या शायद झूठ ही."

"कुछ दिन और रुकते तो अच्छा रहता."

"जो अच्छा होता, वह हमेशा हो कहां पाता है, तुम्हारी लाख कोशिश के बाद भी मैं क्या अच्छी हो पायी?"

"ऐसा क्यों सोचती हो?"

"सोचने की आदत जो है. अब देखो न, सारा कुछ पता नहीं एक अनदेखी परीक्षा पर टिका है, पर वह तो कभी भी मैं पास नहीं कर सकी."

"उससे बड़ा मजाक मुझे दूसरा नहीं लगता."

"सब ठीक हो लेगा सुलो."

"तुम भी सांत्वना भर ही दोगे? आज भर रुक जाते तो अच्छा रहता. सारी नदियां बढ़ गयी हैं, खतरा हो सकता है."

"नहीं, ठीक है. इससे कोई फर्क नहीं पड़ता."

कभी कभी लगता, सुलो नहीं, नदी की दी हुई वह सुनहरी मछली बढ़ी हुई है, जिसे तमाम उम्र नदी से बिछुड़ने के गम में छटपटाना है, केवल छटपटाना.

उसकी ओर देखने पर लगा, चारों ओर सिर्फ पानी है, पानी. सुलो कुछ नहीं बोल सकी. धीरे-धीरे नमस्कार किया और हाथ हिलाती रही. फिर उसके रिबन खुल गये. इस बार पंख फैलाये ऊपर उड़ती उस नन्हीं चिड़िया को बांधने की कोशिश में थे वे.

दूर तक केवल विदा में हिलते दो हाथ थे. खिड़की के बाहर बरसात हो रही थी. सुलो की नदी का पानी वापस उसकी आंखों से होता हुआ नदी में मिल रहा था. ☐

● खादी भवन, 145 महात्मा गांधी रोड, कलकत्ता-700007.

द गॉडफादर : रक्ष संस्कृति का अमरीकी रूप-दो

मारियो पूजो अपने घर का निकम्मा लड़का था. तिस पर तुर्रा यह कि उसने लेखक बनने की ठान ली. इस तरह वह 'राम' बनना चाहता था किंतु रक्ष-संस्कृति का सबसे बड़ा पंडित 'रावण' बनकर रह गया. आखिर क्या कारण था कि पूजो ने 'गॉडफादर' के रूप में एक नये रक्ष-संसार की सृष्टि की? चाहे पौराणिक पातालपुरी का अहिरावण हो या आधुनिक पातालपुरी कहे जाने वाले अमरीका का रावणी संस्करण 'गॉडफादर'—दोनों में फर्क क्या है?. . . पिछले अंक में आपने पढ़ा कि केवल सस्ते संस्करणों में ही दो करोड़ से अधिक से प्रतियों के बिक्री वाले 'गॉडफादर' की रचना कैसे और किन हालात में हुई. इस बार **द्रोणवीर कोहली** बता रहे हैं—'गॉडफादर' के अंदर की कहानी और उसकी बुनावट का पाठकीय किस्सा—

किस्सा कोताह...तो यह है—गॉडफादर

'द गॉडफादर' की कथा में अधिक उलझाव-भटकाव नहीं है. इसमें कुछ ऐसे माफिया घरानों के फलने-फूलने का आख्यान है, जिन्होंने अमरीका जैसे देश में भी लगभग सामानांतर सरकारें बना रखी हैं. इनमें भी डॉन वीतो कॉरलियोनी के घराने का आतंक सबसे अधिक है. डॉन वीतो कॉरलियोनी गॉडफादर अथवा धर्मपिता कहलाता है. संगठित अपराधवृति करने वालों का वह अधिष्ठाता है. उसके प्रति लोगों में इतनी श्रद्धा है कि मृत्युशैया पर पड़ा कैंसर-पीड़ित रोगी भी उससे प्रार्थना करता है : **"गॉडफादर! यहां मेरे पास खड़े रहो. . .अगर यमराज भी आयेगा, तो तुम्हें देखकर भाग जायेगा. . .!"**

परंतु ऐसे श्रद्धास्पद डॉन का जीवन भी अपने-आप में कम विषादपूर्ण नहीं था. बचपन में वह इटली से भागकर अमरीका आया था, क्योंकि वहां के माफिया सरदार ने उसके पिता और भाई को मरवा डाला था. फिर इस बालक की आंखों के सामने ही उसकी मां की हत्या की गयी थी. वीतो उन्हें चकमा देकर भाग न आता, तो अवश्यमेव मारा जाता, क्योंकि माफिया सरदार को भय था कि यदि वह बड़ा हो गया, तो अपने परिवार की मृत्यु का बदला लेगा.

वीतो अमेरिका आकर न्यूयार्क शहर की गंदी वस्तियों में बड़ा होता है. अपने विगत जीवन को भुलाकर शांतिपूर्वक रहना चाहता है, किंतु फानूची जैसा गुंडा उसे अपराधवृत्ति की ओर अग्रसर करता है, और आखिर, वीतो के ही हाथों मारा जाता है. इस घटना से सारी वस्ती में वीतो का दबदबा इतना बढ़ जाता है कि सब उसके मुरीद बन जाते हैं. फिर वीतो को दौलत और दादीगरी का ऐसा चस्का लगता है कि वह सारी दुनिया की धन-दौलत और ताकत बटोर लेने को आतुर हो उठता है. तरह-तरह के धंधे करके वह बड़ी-बड़ी कंपनियां और ऊंची-ऊंची इमारतें खड़ी करता है. जैतून के तेल के आयात पर उसका एकाधिकार है. सट्टा बाजार में भी उसकी धाक है. गैर-कानूनी तौर पर चलने वाले जुआघरों एवं नकली रिकार्ड बेचने वाली कंपनियों का वह संरक्षक है. 'लांग आइलैंड' जैसी जगह पर उसकी बड़ी भारी कोठी है (आज कल मारियो पूजो भी इसी स्थान पर रहता है). वीतो इतना दानशील और हितेच्छु है कि कोई उसके दर से निराश नहीं लौटता. यदि अमेरिगो बॉनसेरा की बेटी का शीलभंग करने वाले दो अमरीकी युवकों को अमरीकी न्यायधीश दंडित करने में पक्षपात करता है—क्योंकि वे प्रभावशाली राजनीतिकों के बेटे हैं—तो उन्हें दंडित करने का बीड़ा डॉन उठाता है और सरकार या कानून उसका कुछ भी बिगाड़ नहीं सकते. यदि नैज़ोरिने जैसे नानबाई की बेटी किसी लड़के से प्रेम करती है और उससे विवाह करना चाहती है, तो उसके प्रेमी को अमरीकी नागरिकता दिलवाना डॉन के बायें हाथ का खेल है. यदि डॉन की छत्रछाया में रहने वाला प्रसिद्ध अभिनेता और गवैया एक प्रतिष्ठित फिल्म-निर्माता की बड़ी फिल्म में रोल लेने का अभिलाषी है, तो इस काम में भी डॉन उसकी मदद करता है. निर्माता अनिच्छुक है और इतना रसूख है उसका कि अमरीकी राष्ट्रपति तक उसकी पहुंच है. पर डॉन उसके छक्के छुड़ाने का रास्ता ढूंढ़ निकालता है. यह फिल्म-निर्माता प्रातः आंख खोलता है, तो

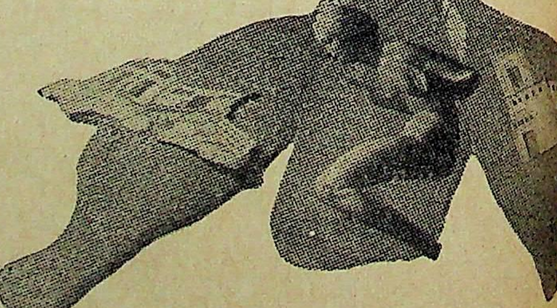

● महबूब

● कपोल-कल्पित रक्ष-संसार का बेतुका घर-परिवार

बेडरूम के फर्श पर उसके लाखों रुपये मूल्य के प्रिय घोड़े का कटा हुआ सिर रखा होता है.

इस तरह, डॉन पिस्तौल-बंदूक के साथ-साथ त्रास के मनो- से भी अपने विरोधियों को पस्त करता है. सब उसकी मुट्ठी —पुलिस, जज, राज्यों के विधायक, सीनेट-सदस्य, मजदूर नेता, डॉन तथा अन्य अपराधजीवी घरानों का इतना है कि लगता ही नहीं कि न्यूयार्क जैसी जगह पर पुलिस- नाम की कोई चीज है भी. कानून को ये लोग नपुंसक और का समझते हैं. अपने कानून ये लोग आप बनाते हैं. डॉन का बेटा माइकेल—जो आगे चलकर गॉडफादर बनता है, है: **"जिस समाज में हम रहते हैं, उसके रीति-रिवाजों को स्वीकार नहीं कर सकता, क्योंकि ये रीति-रिवाज उस क्ति के लिए बंधन समान हैं. . .वह स्वयं को उन महापुरुषों मानता है जिनमें राष्ट्रपति, प्रधान मंत्री, सर्वोच्च के न्यायाधीश आदि सम्मिलित हैं. फिर भी, उसका अंतिम —इस समाज में शक्ति सामर्थ्य प्राप्त करके प्रवेश करना, यह समाज वास्तव में उन लोगों को संरक्षण प्रदान नहीं जिनमें अपनी शक्ति नहीं होती."**

वीतो को सबसे बड़ा खतरा तातागिलया जैसे घराने से तुर्की मूल के खूंखार सोलोजो का समर्थन मिला हुआ है. वीतो का संघर्ष चलता रहता है. तातागिलया घराने क्लब हैं, जो वास्तव में वेश्यालय और नशीले पदार्थों हैं. आपसी संघर्ष में डॉन वीतो बुरी तरह घायल हो जाता है नाक्रम ऐसा मोड़ लेता है कि डॉन वीतो अपने घराने को बचाने बाकी सब घरानों से समझौता करता है.

न आदमी, न औरत, सिर्फ शरीर!

यही इस उपन्यास का ताना-बाना है. इसमें आपको से विलक्षण पात्र और घटनाएं मिलेंगी. उपन्यास के च्छेद में ही आपको पूज़ो एक ऐसे पात्र से परिचित कर- जिसमें अतिमानव जैसी सेक्स-शक्ति है. और यह शख्स नहीं, डॉन वीतो कॉरलियोनी का सबसे बड़ा बेटा है. यह लंबा-तड़ंगा, छहफुटा जवान बेहद पौरुषपूर्ण दिखाया गया है. उसकी इस सामर्थ्य का नमूना के लिए लेखक ने अवसर भी अद्भुत चुना है. . . .सांतीनो हन का विवाहोत्सव है. स्वागत-समारोह के लिए मेहमान हैं. दुल्हन सजी-संवरी बैठी है. सांतीनो एकाएक आता है की बगल में बैठी उसकी सहेली को हाथ से पकड़कर कमरे में ले जाता है. . .और खजुराहो की युगल मूर्तियां शरमाने लग जाती हैं. यहां तक कि उसकी पत्नी इतनी त्रस्त रहती है कि उसके साथ हम- से कतराती है. ऐसा नहीं कि सांतीनो शारीरिक ही पुष्ट है, उसका हृदय भी बड़ा है. और लेखक उसके का बखान भी यौन प्रतीकों के माध्यम से ही करता है. ने हॉलीवुड के घिनौने संसार का चित्रण करते हुए भी ही प्रवृत्ति का परिचय दिया है. हॉलीवुड के धनकुबेरी का जो चित्रण पूज़ो ने किया है, उसे पढ़कर लगता सभ्यता-संस्कृति नाम की कोई चीज है. पूज़ो

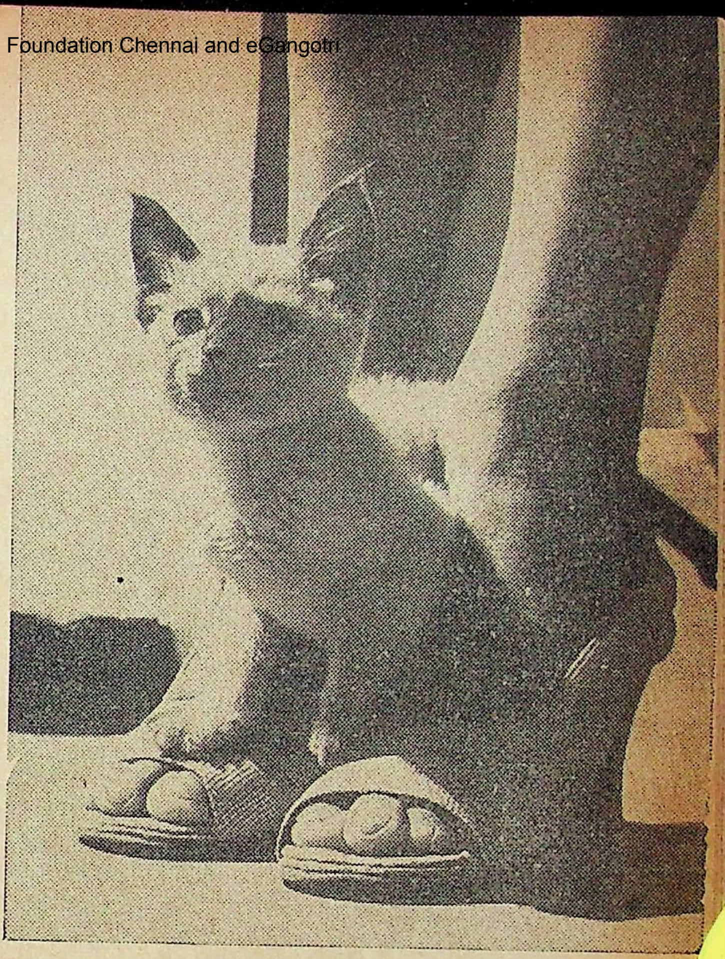

● **गॉडफादर : सेक्स और हिंसा की शतरंज पर खेलता मनमाना मोहरा** छाया : ज्ञान दीक्षित

बताता है कि फिल्म-जगत के कलाकार हतशक्ति हो गये हैं—मानसिक और शारीरिक, दोनों रूपों में. इसलिए हर जुम्मे के रोज वे एक ऐसी पार्टी करते हैं, जिनमें सब कलाकार मन-माफिक साथी चुनकर हम-बिस्तर होते हैं. ऐसी पार्टी में होने वाली गुफ्तगू की बानगी कुल जमा यही बताती है कि वहां आने वाले लोग न आदमी हैं, न औरत, बस केवल शरीर हैं और कुछ भी नहीं.

परंतु इससे भी कुरुचिपूर्ण स्थल है—अकादमी पुरस्कार वितरण समारोह. वहां पर अचानक कोई साहब दूर की कौड़ी लाते हैं और सुझाव देते हैं कि पुरस्कार पाने वाले मर्द और औरत सार्वजनिक संभोग करें. तत्काल उस औरत को विवस्त्र कर दिया जाता है. दूसरी औरतें जाह्नी फोंटेन को भी निर्वस्त्र कर देती हैं. गनीमत है कि लेखक यहीं तक आता है और बताता है कि इतने में ही जाह्नी का कज़िन, आगे बढ़कर जाह्नी को कंधे पर उठाकर वहां से भाग लेता है. पूछा जा सकता है कि क्या ये दृश्य मात्र उत्तेजित एवं पुलकित करने की गर्ज से ही नहीं जोड़े गये?

एक प्रसंग है—इसी जाह्नी फोंटेन और एक महत्वाकांक्षी लड़की शेरोनमर का एकांत डिनर. जाह्नी के हाथ में पेग है. खाली हाथ लड़की की गोद में है. . .! इसके बाद उस हाथ की उत्तेजक क्रियाओं का जिक्र है और इस जिक्र की इंतहा पर आकर वह

लड़की टिपिकल नारी की तरह बिदक जाती है : "नहीं, नहीं, मैं उस किस्म की लड़की नहीं हूं. . .!"

एक स्थल पर डॉन का साथी लूका ब्रासी नामक नर-पिशाच अपने दो विपक्षियों को बांधकर उनकी हत्या करने जा रहा है. दोनों के मुंह में उसने तौलिए डाल दिये हैं. लूका ब्रासी कुल्हाड़ा लेकर पहले एक आदमी के पैर काटता है, फिर घुटनों से टांगों को और फिर धड़ के निकट से जांघों को. निकट पड़ा दूसरा आदमी दहशत के मारे ही तौलिया निगल जाता है और दम घुटने से उसकी मृत्यु हो जाती है.

कैसे-कैसे घिनौने संस्कार!

इन वीभत्स चरित्रों के साथ-साथ कुछ विचित्र चरित्र भी हैं. जैसे आपको नैज़ोरिनि जैसा बाप मिलेगा जो अपनी बेटी और उसके प्रेमी एंजों की निकटता को देखकर अपने मुंह से यह बात कहता है : 'द यंग रास्कल्स हॉट लोफ वुड बी इन हर अवन!" बेशक अमरीकी स्लैंग में 'बास्टर्ड', 'एस. ओ. बी.' (सन आफ ए बिच) तथा चतुराक्षरी शब्दों का प्राचुर्य है और उनका आम इस्तेमाल होता है, पर हमारे संस्कार ऐसे नहीं कि कोई बेटा अपनी मां की डांट खाकर उसे ऐसे बेहूदे शब्दों में झिड़के या कोई छोटा भाई अपने बड़े भाई को 'लाउज़ी बास्टर्ड' या 'सन आफ ए बिच' कहे. क्या यह सब वातावरणजन्य संस्कार नहीं हैं?

"द गॉडफादर के पात्रों और घटनाओं का विश्लेषण करने से एक खतरनाक बात उभरकर आती है. वह यह है कि इसमें हिंसा करने वाले कुमार्गगामी पात्र फलते-फूलते ही नजर आते हैं. जैसा कि अपराध-प्रधान उपन्यासों में होता है, बुराई का अंत बुराई में नहीं होता. डॉन वीतो कॉरलियोनी को ही लीजिए—अपने जीवन में उसने कितनी हत्याएं करवायी होंगी, पर कोई उसकी मूंछ का बाल नीचा नहीं कर सका. अपराधवृत्ति करके वह करोड़ों की संपत्ति बटोरता है और सुख भोगता है. अंत में उसकी मृत्यु भी होती है, तो स्वाभाविक. अपनी कोठी में बागबानी करते हुए वह दिल के दौरे से मरता है. उसके बाद उसका उत्तराधिकारी बेटा माइकेल भी पापमय जीवन के सुख भोगता है, हालांकि कभी उसने अपनी अमरीकी प्रेमिका से कहा था कि वह अपने बच्चों पर वैसा असर नहीं पड़ने देगा जैसा असर उसके ऊपर उसके पिता का पड़ा है. लगता है कि डॉन की मृत्यु के बाद वह इस जीवन का त्याग कर देगा. पर इस पंकिल जीवन में वह इतना लिप्त है कि नरसंहार किये बिना उसका अस्तित्व ही अक्षुण्ण नहीं रह सकता. इस तरह वह अपने घराने की खोई हुई प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित करता है.

आखिर ऐसा क्यों ? मारियों पूज़ों ने किस उद्देश्य से अपने उपन्यास का ऐसा ताना-बाना बुना ?

घूस लेने के फायदे !

इसका उत्तर आपको स्वयं मारियो पूज़ो के लेखन से ही मिल जायेगा. मारियो पूज़ो की यह अद्भुत दलील है कि अपराधवृत्ति एवं भ्रष्टाचार ने अमरीकी समाज को न केवल भौतिक दृष्टि से बल्कि मानसिक दृष्टि से भी सबल बनाया है. भ्रष्टाचार से अमरीकी अर्थव्यवस्था स्वस्थ हुई है. यह न समझिए कि यह मजाक में कहीं गयी बात है. इसका स्पष्टीकरण करते हुए पूज़ो ने बताया है कि सुखी जीवन का रास्ता भ्रष्टाचार होकर जाता है. यदि सारे कर्मचारी अपने भाग्य सहारे बैठे रहें, तो सारी अर्थव्यवस्था सड़-गल नहीं जाये पूज़ो ने यह अंदाजा लगाया है कि अमरीका में केंद्र सरकार के प्रतिशत कर्मचारी और राज्यों तथा निगमों के बीस प्रति कर्मचारी घूसखोर एवं भ्रष्ट हैं. पुलिस के कर्मचारी भी घूस हैं. और पूज़ो की नजर में यह अनुचित नहीं है, क्योंकि वे अपना जी जोखिम में डालते हैं. फिर उसका कहना है कि घूस और भ्रष्टा से कमाया हुआ 'काला धन' अकारथ नहीं जाता. भ्रष्ट कर्मचारी धन सुरा-सुंदरी आदि पर ही व्यय नहीं करता, बल्कि उपनगरों खुली हवा में नये मकान बनवाता है. इसका फायदा यह होता है उसके बच्चे गंदी बस्तियों के घिनौने वातावरण से निकलकर स्व वातावरण में पलते हैं और कॉलेजों में जाकर उच्च शिक्षा प्र करते हैं. फिर वे डॉक्टर, इंजीनियर आदि बनकर समाज की सम में योग देते हैं. भ्रष्टाचार से कार्यक्षमता भी बढ़ती है. इसके लि पूज़ों ने उदाहरण देते हुए लिखा है—**मान लो, एक कर्मचारी तीन बच्चे हैं. कम वेतन के कारण उसका जीवन दूभर हो गया उसका तबादला एक ऐसे विभाग में हो जाता है जहां घूस मिलने गुंजाइश है. बस, वह धीरे-धीरे उच्च मध्यमवर्ग में जा पहुंचता नया मकान बनवाता है. नयी ब्यूक गाड़ी खरीदता है. इ अमरीकी अर्थव्यवस्था को प्रोत्साहन मिलता है. यही नहीं, घूसखोर आदमी का व्यक्तित्व भी निखर जाता है. वह अ सौम्य, सौहार्दपूर्ण हो जाता है! दफ्तर में फाइलें दबाकर नहीं रख घूस लेकर तुरत-फुरत काम निबटाता है. इससे उसका भी भ और काम कराने वाले का भी भला, जो महीनों तक लटका रहता. इसी सिलसिले में पूज़ो यह सवाल भी पूछता है कि यदि ऐसे शख्स को भ्रष्ट कहते हैं, तो उस एडमिरल या युद्ध में वी पदक पाने वाले सैनिक को क्या कहेंगे जो सेवामुक्त होने के येन-केन-प्रकारेण बड़े-बड़े औद्योगिक कारखानों में लाख डालर की पगार पर बहाल किये जाते हैं?**

किसी भी घटना प्रधान एवं सनसनीखेज कथा की एक क यह है कि वह पाठक को कितना कायल करती है, कहां तक साथ लेकर जाती है, कहां तक विश्वसनीय है. कहना न होगा यह गुण 'द गॉडफादर' में विद्यमान है. यदि यह न होता लोग इस उपन्यास को पढ़कर इस निष्कर्ष पर क्यों पहुंचते मारियो पूज़ो इसी कारण इस उपन्यास में विश्वसनीयता ला है, क्योंकि पूज़ो को माफिया की दुनिया का निकट से परिचय कुछ लेखकों का तो यह भी आरोप है कि पूज़ो भी किसी ऐसे का एक सक्रिय सदस्य था. यही नहीं, यह भी कहा जा रहा है माफिया ने उसे दस लाख डालर यानी लगभग एक करोड़ की रकम देकर उससे यह उपन्यास लिखवाया. परंतु ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि है उसका माफिया वालों से कोई नहीं और यह सारा उपन्यास मात्र अनुसंधान करके लिखा है

लगता है, बात वही है, जो एक वेश्यगामी लेखक के होती है. वह वेश्यावृत्ति के बारे में प्रामाणिक सामग्री देता है लोकभय से स्वीकार नहीं कर सकता. . .और कहता है कि तो सुन-सुनाकर ये किस्से गढ़े हैं!

● ई-163, ग्रेटर कैलाश-II, नयी दिल्ली—110048

आपबीती

हर आदमी की जिंदगी में कुछ ऐसे हादसे गुजरते हैं जो वर्षों तक दिलो-दिमाग पर हावी रहते हैं. कभी-कभी तो वे पूरे सोच को प्रभावित करते हैं. ये हादसे सुख-दुख, भय-अभय, घृणा-प्रेम, वीभत्स-जुगुप्सा, रोमांस-रोमांच, किसी भी तरह के हो सकते हैं. इन हादसों को रेखांकित करेगी लेखकों-पाठकों की 'आपबीती', जिसकी शुरूआत इस अंक से की जा रही है.

कफन और मौत

▫ शंकर दयाल सिंह

बात 1954-55 की है. 'काशी हिंदू विश्वविद्यालय' का छात्र था और हर काम के लिए मन में जोश रहता था. एक दिन सवेरे पहर जब मैं दातून कर रहा था कि एक भोला-भाला आदमी रोता हुआ आया. पूछने पर उसने बताया कि उसके पिता का निधन हो गया है तथा उसके पास कफन के लिए भी पैसा नहीं है. कहकर वह और भी रोने लगा. मैंने उसे धीरज दिया तथा पांच-सात लड़कों की टोली लेकर हॉस्टल के हर कमरे में कफन के लिए पैसा

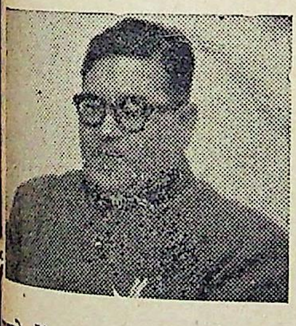

● शंकर दयाल सिंह

जुटाने में लग गया. थोड़ी ही देर में पचासेक रुपये हो गये.

उस निरीह आदमी ने यह भी बताया था कि लाश ढोने के लिए चार आदमी भी नहीं हैं. हमने सोचा कि जब इतना किया तो यह भी क्यों न कर दूं कि चलकर लाश को भी दफना दूं. जब तीन-चार साथियों को हमने इस काम के लिए तैयार किया तो वह बोला, "इतना मदद हमार होई गवा, आप पढ़ाई हर्ज न करें. हमका इ पइसा दे दें, कउनो तरह हम लहास फूंक लेब." लेकिन हमें तो समाज सेवा की धुन सवार थी, अतः हमने कहा, "नहीं, चलो, इस काम का बीड़ा लिया है तो उसे अंतिम दम तक पूरा करेंगे." और हम सभी तांगे से पांडे धर्मशाला के पास पहुंचे, जहां उसने बताया था कि लाश पड़ी है. वह आदमी भी साथ था. हम तांगे से उतरकर पैसा देने लगे, तब तक वह अंदर गया और हम जब अंदर जाकर उसे खोजने लगे, तो न वह मिला न कोई लाश मिली.

किसी के मरने अथवा लाश के बारे में पूछने पर धर्मशाला का मैनेजर बोला, "आप लोग सब भोले हैं. यह काशी है, काशी. कितने हरामखोरों का बस यही काम है. कितना पैसा उसने लिया?"

जब हमने मैनेजर को पूरी बात बतायी तो वह कुछ आश्वस्त हुआ, "चलिए, साले को एक पैसा भी हाथ नहीं लगा."

आज बीस-तीस साल बीत जाने पर भी उस घटना की स्मृति ऐसे भयावह रूप में मन पर है कि आज यदि कोई सही व्यक्ति भी कफन के लिए मदद मांगता है, तो वही घटना याद हो आती है तथा सोचने लगता हूं कि सही मांग रहा है या गलत.

किसी की ठगी या धोखाधड़ी कितने गरीबों का नुकसान कर जाती है. ☐

एक कमरे की कीमत

▪ निर्मल कुमार मिश्र

एम्सटर्डम (हालैंड) की याद से एक दिलचस्प वाक्या याद आता है.

मैं पेरिस से एम्सटर्डम पहुंचता हूं. अब रहने की व्यवस्था करनी है. मैं एक होटल को फोन करता हूं, "क्या आपके पास ठहरने के लिए कमरा होगा?"

"ऊं. . .ऊं. . .कोशिश करूंगा, आप आ जाइए." उधर से बुझी-बुझी आवाज आयी.

मैं होटल की ओर चल पड़ता हूं. काउंटर पर एक गंजा-सा घनी मूंछों वाला आदमी मोटे फ्रेम का चश्मा चढ़ाये अपनी नजर नीचे किये किसी वस्तु पर यूं गड़ाये बैठा है मानो उसे किसी चीज की सुध ही न हो.

मैंने अपना गला साफ करते हुए कहा, "मुझे एक कमरा चाहिए."

"तो यही आपकी समस्या है? मगर मेरी भी एक समस्या है. . .आप मेरी मदद करें तो मैं भी आपकी मदद कर दूंगा."

काउंटर के नीचे झुका और शतरंज का एक बोर्ड उठाकर मेरे सामने रख दिया. मोहरे खास-खास जगह पर पड़े थे. उसने मुझे उन मोहरों की ओर इशारा करते हुए कहा, "शह पड़ी हुई है, मात होने से बचाना है आपको. . . .यही मेरी समस्या है. . . .आप इसे सुलझाइए, मैं आपके लिए कमरे का बंदोबस्त करता

● निर्मल कुमार मिश्र

हूं." यह कहकर वह अंदर चला गया. लौटकर आया तो उसके हाथ में चाबी थी.

"क्या बात बन गयी?" उसने पूछा.

"जनाब, बात कैसे बनेगी. मुझे तो शतरंज खेलना ही नहीं आता."

वह मेरी ओर देखकर मुस्कुराया और चाबी थमाते हुए बोला, "जब आपने फोन किया, उस वक्त मेरा ध्यान भंग हो गया और मैंने गलत चाल चल दी, जिसकी वजह से शह पड़ गया. शह आपके द्वारा पड़ी है तो आपको ही इसका हल निकालना होगा." यह कहते हुए वह ठठाकर हंस पड़ा.

मुझे समझ नहीं आ रहा था कि अपने ऊपर पड़ी इस शह से मुक्ति कैसे पाऊं! ▣

फांसी

पके धान की मीठी गंध खेतों में फैलने लगी. सुनहरी बालियों की आवाज वंदना की घंटियों से भी अधिक पवित्र और प्रिय बनकर घर-घर गूंजने लगी. जाड़ा भी जरा तेज हो गया. रात में गिरने वाली ओस की बूंदें जोर होते-होते चादर-भीगी वर्षा का आभास देने लगीं. अब गांव से उठने वाला धुआं हवा में मिलकर लुप्त नहीं होता है, बांस की फुनगियों के निकट जाकर कुछ देर बादलों की तरह अटक जाता है और तब तक अटका रहता है, जब तक अंधेरा खूब घना नहीं हो जाता.

यह सब धीरे-धीरे होता है. किसी को कुछ पता नहीं चलता और यह सब हो जाता है. आषाढ़-सावन तक धान रोपा जाता है और देखते-देखते एक दिन फूल निकल आते हैं और फिर बालियां. गीता ऐसी ही बातें सोचती गांव की ओर आ रही थी. दूर के खेत देखकर लौट रही थी. प्रकृति के पांव की आहट किसी को भी नहीं होती. देखते-देखते धान कट जायेगा, बीच-बीच में जौ-गेहूं के खेत हंस उठेंगे और चारों ओर कुहासा छाने लगेगा और लोग शाम सवेरे अंगीठी तापने में सुख पायेंगे.

दूर से किसी ने टोका, "सूझता नहीं, खेत बोया हुआ है." गीता को अपनी गलती का एहसास हुआ. वह मेंड़ छोड़कर सीध में निकल जाना चाहती थी. लौटकर मेंड़ पर आयी. मन ही मन खेत वाले को बुरा कहा. आगे धूल भरी सड़क थी. शंकर सिंह का आम का बगीचा था. बगीचे से लगा जगेसर मंडल का पटसन का. ये बीज वाले पटसन थे, ड़ेढ़ मर्द ऊंचे, फलों से लदे, माघ तक पकने के इंतजार में खड़े रहने वाले. गीता ने जैसे ही बगीचे को पार किया, पीछे से पैरों की धप-धप आवाज आयी. पलटकर देखा, बिजली.

छाया : ज्ञान दीक्षित

"तुमको ही देखकर दौड़ा आ रहा हूं. आज चार दिन बा घर से निकली हो न!"

"अब तो शायद वह भी संभव नहीं है. मेरा घर से निकल अब मां पसंद नहीं करती."

"तुमसे कुछ जरूरी बातें करनी हैं. इधर चलो."

"नहीं."

"नहीं."

"अच्छा, चलो."

और, दोनों तेजी से पटसन के खेत के भीतर हो गये. बी खेत में पीपल का एक बड़ा-सा पेड़ था. दोनों वहीं पहुंचे. पेड़ आस-पास काफी परती जमीन थी. दोनों वहीं बैठ गये.

"बिजली!"

"मैंने तुम्हें मना किया है न! मेरा नाम बिजेंदर है, बिज नहीं. यह जनाना नाम क्यों बोलती है?"

"पूरा गांव बोलता है."

"गांव साला तो बहुत बात बोलता है."

"तो झूठ बोलता है?"

"अभी तो नहीं, लेकिन आज न सही, कल यह झूठ..."

"बोलने दो."

"यह पीपल का पेड़ बहुत पुराना है."

"तुम इसके पत्ते गिनो."

"और तुम?"

"मैं जमीन पर रेंगतीं चींटियां."

किंतु इन्हें गणित का ज्ञान बहुत ही कम था. अंधेरा घिर आ

लेकिन गिनती में कोई वृद्धि नहीं हुई. पीपल के दरख्त पर रैन- के लिए परिंदों की टोलियां आने लगीं.

"गीता, हमें इस गांव को छोड़ देना चाहिए."

"बिजली!"

"तुमने फिर बिजली कहा."

"तुम मर्द हो?"

"संदेह है?"

"तो फिर मर्द की तरह ले चलो."

"अ . . .च्छा. . .. आ. . .ले चलूंगा."

"आओ, हम लोग कसम खायें पीपल के पेड़ को छू अगर हमारे पास कोई लोहे की कील होती तो हम पे ठोंक देते, कसम के तौर पर."

"और पेड़ पर रहने वाला ब्रह्मपिशाच लोहे के डर से छोड़कर भाग जाता."

"इस पेड़ पर ब्रह्मपिशाच रहता है?"

"हर पीपल के पेड़ पर रहता है."

"बाप रे, इतने ब्रह्मपिशाच आते कहां से हैं?"

"आते कहां से, जितना भी भूखा और अतृप्त ब्राह्मण मरता है, ह्म पिशाच बनता है."

"और ब्राह्मणी?"

"मैं तुम्हें ब्राह्मणी रहने ही नहीं दूंगा."

"क्या करोगे?"

"देवी बना दूंगा."

"सच."

"देखो, पीपल में लोहा ठोंककर कसम खाता हूं और छुरी भोकर तोड़ता हूं?"

छुरी की नोंक पीपल के खुरदुरे चाम और सख्त हड्डी में सी. बिजेंदर ने झटका देकर तोड़ दिया. खट् की हल्की-सी वाज हुई. ऊपर परिंदों के पंख फड़फड़ा रहे थे और पीपल के ते हिल रहे थे, अविराम.

और, पीपल के पत्ते जैसे कांपते कलेजे से गीता सन के खेत से बाहर निकली. तेजी से घर ओर भागी. अंधेरा लगभग घिर चुका था. और धुआं की परतों के बीच घिरा हुआ गांव धीरे-धीरे याम की ओर बढ़ रहा था.

गीता सीधे घर पहुंची. मां ने रोज की तरह आज भी ज्यादा तक बाहर घूमने से परहेज करते हुए डांटा. दूसरे दिनों गीता के उपदेश का प्रतिवाद या व्यंग्य करती थी, किंतु आज उसने भी नहीं कहा. वह गंभीर बनी रही.

• मधुकर गंगाधर

हाथ-पांव धोकर चिराग जलाया. तुलसी चौरा पर चिराग कर मस्तक टेके, ईश्वर से प्रार्थना करने लगी. प्रार्थना के लिए मुख से कोई शब्द नहीं निकला. मन की आंखों के आगे ंदर की आकृति उभर आयी.

उस रात उसने बार-बार अपने को पीपल के दरख्त के निकट —कई रूपों में. . .कई मनोभावों में.

दूसरे दिन, बड़े सवेरे, घर से पूरब तरफ बहुत तेज हल्ला हुआ. भी घर से बाहर आयी. गीता मां के निकट पहुंची. मां ने से बेटी की ओर देखा. गीता ने कहा, "मैं अभी देखकर ती."

गीता बाहर आयी. उसके दरवाजे की बगल में महतो का बड़ा-दरवाजा है, उसी के आखिरी छोर पर हल्ला हो रहा था. का दृश्य देखकर वह कांप उठी. गांव का सबसे धनी व्यक्ति महतो, हाथ में बंदूक लिए खड़ा था. उसके आस-पास तीन-चार आदमी खाली हाथ थे. सामने लगभग सौ आदमी थे. कुछ खाली हाथ, कुछ के हाथ में भाला और गड़ासा आदि. सबसे आगे बिजेंदर था—खाली हाथ. उसके अलग-बगल के लोगों के हाथों में हथियार थे.

बिलोचन महतो ने बंदूक को और ज्यादा मजबूती से पकड़ते हुए कड़ककर कहा, "गिदर-भभकी से मुझे मत डराओ. गांव को नक्सलवाड़ी बनाने चले हो. यहां से भागो, वर्ना गोली चला दूंगा."

बिजेंदर थोड़ा और तन गया. महतो से भी कड़क-आवाज में कहा, "तो मारते क्यों नहीं गोली. हम लोग किसी नक्सलवाड़ी को नहीं जानते. तुम्हारे जैसे जालिम जमींदार हिंदुस्तान के हर गांव को नक्सलवाड़ी बना देंगे. तीस रुपये में गाय नहीं ली जाती है. रुपये वसूल करने के लिए कोर्ट कचहरी है. तुम और तुम्हारे मुंशी मिलकर सारी बातों का फैसला कर लेंगे तो कचहरी के हाकिम क्या तुम्हारी भैंसों के वास्ते घास काटेंगे? राम रतन की गाय खोल दो, वर्ना जबर्दस्ती ले जायेंगे. बंदूक तानने का जमाना चला गया."

किसी ने पीछे से आवाज लगायी, "ओय बंदूक वाले, इस एक पिटपिटियन से कितने को मारोगे?"

गीता के मन में आया कि वह दौड़कर उनके बीच जाये और बिजेंदर को अलग खींच ले जाये और उसे समझाये कि ऐसा नहीं कहना चाहिए—महतो बड़ा जालिम आदमी है, वह आसानी से गोली मार सकता है, लेकिन उसे लगा कि बिजेंदर ने जो कुछ भी कहा, वह तो ठीक ही है—किसी न किसी को तो कभी न कभी महतो से ऐसी बातें कहनी ही चाहिए. उसने बिजेंदर के फूले हुए सीने को देखा. उसके मन में आया कि उसे भी बिजेंदर की बगल

छाया : विद्याव्रत

में जाकर खड़ा होना चाहिए, लेकिन वह ऐसा नहीं कर पायी. बिलोचन महतो दो कदम आगे बढ़े, "कहता हूं, तुम लोग भाग जाओ. . ."

बिजेंदर भी दो कदम आगे आ गया, "अंतिम बार कह रहा हूं, भले आदमी की तरह गाय वापस कर दीजिए, वर्ना हम लोग खोल लेंगे." पीछे से कई लोग चीखे, "चलो, हम लोग खोल लें."

बतकही समाप्त हो गयी. भीड़ में थोड़ी सी हलचल हुई. बिलोचन महतो ने फायर कर दिया. निशाना बिजेंदर ही था. महतो का हाथ उत्तेजना में कांप गया और गोली बिजेंदर की दायीं ओर खड़े व्यक्ति को लगी. वह चीखकर गिर पड़ा. भीड़ में बिजली सी कौंध गयी. बिजेंदर की बगल से महेसर ने भाला खींचकर महतो पर फेंका. भाला महतो की बायीं आंख में लगा. बंदूक हाथ से छूट गयी. महतो तड़फ उठे. बंदूक का छूटना था कि कई भाले और गड़ासे एक साथ महतो पर बरस पड़े. यह सब पलकों में हो गया. देखते-देखते महतो का शरीर मांस का लोथड़ा बन गया.

इसके साथ ही एक घटना और घटी. गीता बहुत जोरों से चीख पड़ी और बेहोश हो गयी. तमाशबीनों ने उसे हाथों हाथ उठाया और घर पहुंचा दिया. मां ने सिर पीट लिया, "हाय री अभागी! काहे खातिर गयी थी. लड़ाई-झगड़ा भी कहीं भले आदमियों के देखने की चीज है?"

कहते हैं, धमनी में बहते लहू में एक किस्म का अनजाना स्नेह होता है और धमनी के बाहर बहते लहू में आतंक. जिस महतो की गोली ने लोगों को पागल बना दिया था, उसके बहते लहू ने लोगों को सिर पर पैर रखकर भागने के लिए विवश कर दिया. जिसका जिधर सिर समाया, उधर भाग गया. गांव सूना हो गया. आधा मील पर थाना था. पुलिस को गांव पहुंचने में देर नहीं लगी.

गांव में जो लोग थे, वे काफी डरे हुए थे. पुलिस वालों ने पूछ-जांच शुरू की. गांव में हर लड़ाई-झगड़े के समय बिना बुलाये ही काफी लोग जमा हो जाते हैं. कुछ पेशेवर गवाह आगे बढ़कर गवाही भी देते हैं और अपने सात पुश्त का बैर वसूलते हैं, लेकिन जहां दो-दो खून हो गये हों, वहां किसकी हिम्मत कि गवाह बने. दारोगाजी जिससे भी पूछते, वह हाथ जोड़कर खड़ा हो जाता, "हजूर, मैं नहीं था." वहां दो-चार लोगों ने थोड़ा कुछ कहा भी तो महतो के पक्ष में. दारोगा था काइयां, बातों से बातें निकालने वाला. उसे सूचना मिली कि कुछ दूर खड़ी एक लड़की चीखकर गिर पड़ी थी. सो, दारोगा उसके दरवाजे पर जा धमका.

☐

गांव में खलबली मच गयी. खून के केस में गांव की लड़की गवाही देगी. कोर्ट-कचहरी जायेगी. बाप रे, वकील तो जिरह के समय फजीहत कर देगा. कैसे-कैसे प्रश्न पूछता है वकील.

गांव में जिसकी मूछें लंबी होती हैं, वह पूरे गांव की इज्जत का ठेकेदार हुआ करता है. ऐसे समय में अनायास आकर इज्जत बचाया करता है. ऐसे ही कुछ लोग आ गये. मसोमात की जवान बेटी कचहरी जायेगी. इससे तो खानदान की इज्जत चली जायेगी. नहीं, नहीं, ऐसा कैसे हो सकता है. मसोमात गांव में अकेली थोड़े हैं. दारोगा जी की खातिर तवज्जो शुरू हुई. मसोमात ने गले की हंसुली गिरवी रखी और सौ रुपयों का इंतजाम किया और अपनी जवान को खून वाले मुकद्दमे की गवाह बनने से बचाया.

मां को दारोगा अथवा गीता पर गुस्सा नहीं आया. गांव में पीट होती ही है, लोग तमाशा देखते ही हैं और दारोगाजी काम ही है मुकद्दमे की तहकीकात करना. दुख तो यह है कि गांव ही किसी ने दारोगा से गीता का नाम कहा. हे राम, यह गांव गांव रह गया कि चांडालों की बस्ती हो गया. इज्जत के लिए की हंसुली, तो क्या, लोग मौरूसी जमीन तक बेच डालते हैं. गीता दो दिन तक जैसे नशे की हालत में रही. उसने जिंदगी कभी लोगों को गाजर-मूली की तरह कटते नहीं देखा था. दिमाग पर घायल और तड़पते इंसानों की भयावनी छाप गयी थी. लहू से लथपथ चेहरे उसकी आंखों में बार-बार नाच कई बार उन चेहरों में विजेंदर का चेहरा भी नाच उठता. शरीर में सुरसुरी-सी दौड़ जाती. वह एकांत में बैठ रहती, शरीर को सारी शक्ति किसी ने बिल्कुल निचोड़ ली हो. बीमार-सी हो गयी.

◘

तीसरे सवेरे, जब गीता बिस्तर में ही थी, उसकी मां अपने वाहे मुसहरु से आंगन में जोर-जोर से बातें कर रही थी. बिजेंदर नाम सुनकर गीता चौंककर उठ बैठी और कान पास कर सुन लगी. गीता ने जितनी बातें सुनी, उसका मतलब था कि मह के भाई-भतीजों ने मिलकर बिजेंदर को औव्वल असामी बनाया पुलिस ने बिजेंदर को पकड़ लिया है. वह हवालात में है. वह बड़ाकर आंगन में आ गयी और मां से पूछा, "औव्वल असा क्या होता है....?"

"औव्वल असामी का मतलब...मतलब..."

शायद मां भी इससे ज्यादा नहीं जानती थी. मुसहरु मां को संभाला, "औव्वल असामी माने एक लंबर मुद्दाले... गीता दोनों का मुंह देखने लगी. फिर पूछा, "विजेंदर को क्या हुआ?

"पुलिस पकड़कर ले गयी."

"कहां?"

"जेहल'!'

"जेहल."

"हां, विजेंदर ही औव्वल असामी है. महतो के भाई और नौकरों ने कहा है कि उसने ही भाला भोंककर महतो को मारा.

गीता जैसे कालातीत, स्थानातीत हो गयी. फिर वह जोरों चीख पड़ी, "यह झूठ है. एकदम झूठ.. मैंने आंखों से देखा है

मुसहरु बाल्टी लेकर आंगन से बाहर चला गया. मां एकट गीता को देखती रही और गीता धीरे-धीरे चलकर ओसारे पर बैठी और अपलक आंखों से पूरब के आसमान को देखने लगी, कुछ भी नहीं था, स्याह नीलापन, अथाह गहरायी, विराट खोखलापन

"मां...." गीता ने आहिस्ता से कहा. मां अगर संपूर्ण चेत से गीता के प्रति सजग नहीं रहती तो शायद सुन भी नहीं पाती मां ने सुना, लेकिन कोई उत्तर नहीं दिया.

"मां, मैंने अपनी आंखों से देखा है, विजेंदर ने नहीं, महेसर भाला मारा था. हमें साफ बात कहनी चाहिए."

मां ने तब भी कोई उत्तर नहीं दिया. वह एकटक अपनी बेटी

लघुकथा

निबटान

▣ बलराम

कलुवा की बीवी दिनभर लापता रही. शाम घिरे घर आयी तो बताया, "चौधरी ने अपने फार्म की कोठरी में बंद कर लिया था और. . . ." कलुवा का खून खौल उठा, "मैं रिपोर्ट करूंगा, डाक्टरी करवाऊंगा, एक एक को भूसा कर दूंगा." शाम को ही बीवी को लेकर वह कस्बे चल दिया. गांव के बाहर निकला ही था कि चार-पांच लठैतों ने आ घेरा और. . . .वह बेहोश होकर गिर पड़ा.

होश आया तो चारपाई पर था. ठाकुर उसे अस्पताल ले आये थे, लेकिन यह वह अस्पताल नहीं था, जहां उसे तथा उसकी बीवी को पहुंचना चाहिए था. ठाकुर उसे उसके गांव से काफी दूर इंटीरियर के एक अस्पताल में ले आये थे, जहां से सरकारी अस्पताल और थाना बहुत दूर थे. तीसरे दिन वह काफी ठीक था और ठाकुर उसे गांव ले आये. गांव में सनसनी फैल गयी थी और चौधरी के साथ तीन-चार लोग नदारद थे.

ठाकुर ने उसे समझाया कि होने वाला कुछ नहीं है. तुम चाहो तो सौ-पचास रुपये दिलवा दूं. तुम पुलिस-थाने मत जाओ, लेकिन उसने ठाकुर की बात नहीं मानी और अगले दिन थाने जाकर रिपोर्ट करने की घोषणा कर दी.

दूसरे दिन सुबह दस बजे वह थाने जाने ही वाला था कि पुलिस आ गयी. चौधरी ने अपने घर चोरी हो जाने की नामजद रिपोर्ट करवायी थी और पुलिस कलुवा के घर तलाशी लेने आ धमकी थी. कलुवा के घर से एक लोटा, एक थाली और एक गिलास बरामद हुआ, जिन पर चौधरी तथा चौधरी के बाप का नाम खुदा हुआ था. कलुवा चमार चोरी के इल्जाम में पकड़ लिया गया. उसने कुछ कहना चाहा तो पुलिस के डंडों ने उसे खामोश कर दिया. उसे याद आया––ये लोटे, थाली और गिलास तो चौधरी के घर हुए कामकाजों में ली गयी बेगार के इनाम के रूप में मिले थे. वह समझ गया कि अस्पताल ले जाने की हमदर्दी ठाकुर ने क्यों दिखायी थी. बीवी ने बताया था कि चौधरी के साथ ठाकुर और. . ." कलुवा कैदी बनकर गांव से जा रहा था और पीछे चौधरी तथा ठाकुर हंस रहे थे कि चलो, तीन सौ रुपये में ही मामला निबट गया. ☐

रही—जहां उदासी, बेबसी और करुणा भरी हुई थी.

"मैं गवाही दूंगी मां."

"क्यों, किसके लिए?"

गीता चुप हो गयी. वह बोलना चाहती थी, बहुत जोर से कुछ ना चाहती थी, किंतु गांव के पूरब जो बांस का बगीचा है जिसमें दिन-रात अंधेरा छाया रहता है, वह सारा अंधेरा की आंखों में आ धंसा और गांव के प्रत्येक दरवाजे पर बंधी की सारी डोरियां इकट्ठी होकर उसके होंठों को सी गयीं. आंगन से बाहर चली गयी. घंटे-भर बाद आयी. गीता के निकट उन्होंने सूखे हुए स्वरों में कहा, "बेटी, मामा के गांव चलने तैयारी करो."

फिर गली की बाढ़ का कोई गंदला, बदबूदार पानी घर-आंगन गया, जिसके थपेड़ों पर दो मुर्दा औरतें चक्कर काटती रहीं एक टप्परदार बैलगाड़ी ने आकर दबोच लिया और गांव से की ओर चल पड़ी. गांव से बाहर निकलने पर दोनों मुर्दों दूसरे से गले मिलकर विदा लिया. एक पुनः गांव लौट आयी दूसरी औरत बैलगाड़ी की करुण चर्र-चों और दर्द-भरे कोलों के बीच दुख-स्वप्नों की भांति अनेक दृश्यों पर नजर अपने मामा के घर पहुंचा दी गयी.

महतो का मुकद्दमा बड़े जोर-शोर से चला. विजेंदर सहित बत्तीस असामी बनाये गये. बड़ी संख्या में असामी होना उनके में अच्छा हुआ. समूह की भावना बनी रही और मुकद्दमे के के लिए चंदा जमा करने में सुविधा हुई. बाद में कुछ राजदलों ने भी उन्हें साथ देना शुरू किया.

लगभग बारह महीनों की दौड़-धूप, परेशानी और कच्च-किच्च जिला कचहरी में मुकद्दमे का फैसला हुआ और इन बारह महीनों के दरम्यान गीता सिर्फ दो बातों पर विचार करती रही कि विजेंदर का मुकद्दमे में फंसना सिर्फ उसी के कारण हुआ. मार-पीट होने के कुछ घंटों पहले ही तो उसने गीता से कहा था कि वह गांव छोड़कर उसके साथ भाग चले. मगर उसने विजेंदर को ताना मारा था—मर्द होने का. वह तो ठीक में मर्द है—गीता को साथ लेकर गांव-घर छोड़ने को तैयार था, मगर गीता ने क्या किया, परिवार और समाज के डर से पुलिसवालों के सामने तक नहीं जा सकी, सच कहने के लिए. वह डरपोक है, स्वार्थी है, झूठी है. मां ने उसे मामा के घर भेजकर छुट्टी पा ली है. कोई खोज-खबर नहीं. मामा सभा-गाछी जाकर उसके लिए वर की तलाश कर रहे हैं. उसकी शादी ननिहाल से ही कर दी जायेगी क्या? सवालों का अंत नहीं, जितना सोचती है, सवालों की संख्या में उतनी ही वृद्धि होती जाती है.

तभी एक दिन सुबह मुसहरु आता है, नये धान का चिउरा लेकर. एक डली चिउरा, एक बर्तन दही, एक घोर केला. मामा के बच्चे बड़े खुश हुए. दोपहर में, जब मुसहरु खाना खाकर आराम करने बैठा और इत्मीनान से खैनी मलना शुरू किया तो धीरे-धीरे गीता वहां पहुंची. मां की खबर. . .चंपा बहन की खबर . . . मीता की खबर . . .और जिस असली खबर के लिए वह आयी थी, उसके बारे में पूछा, "मुसहरु चा, महतो वाले मुकद्दमे का क्या हुआ?"

"होना क्या था, खून का बदला फांसी. तीन आदमी को सात-सात साल जेहल और औव्वल असामी को. . . मालूम है न औव्वल असामी विजेंदर था. . . उसे फांसी. अब उन लोगों ने पटना हाईकोर्ट में अपील की है. कुछ नुक्ता मिल गया तो बचेगा, नहीं तो खून के बदले फांसी . . ."

मुसहरु ने खैनी मलकर होठों में रक्खा और अज्ञान-भरी

दुनिया पर पिच्च-थू किया. गीता ने ऊपर की ओर देखा और गहरी सांस छोड़ी. ऊपर नीम के पत्ते हिल रहे थे. गीता को लगा कि पूरे नीम के पत्तों का तीतापन उसकी जिह्वा पर आ गया है.

कान में उच्चाटन-मंत्र डालकर, दूसरे दिन, मुसहरु गांव लौट गया. गीता की रातों की नींद उजड़ गयी. विजेंदर को सजा दिलाने वाली वही तो है . . . सच बात भी नहीं बोल पा रही है . . . मुंह-अंधेरे उठकर आंगन में आयी. पल भर सोचने के बाद आंगन से बाहर निकली. मामा के दरवाजे के आगे लगभग दो सौ गज का खाली मैदान था, उसके बाद फूस का बना एक छोटा घर था, जो गांव की प्राथमिक पाठशाला थी. दिनभर गांव के बच्चे यहां पढ़ते और रात में स्कूल के एकमात्र शिक्षित छब्बू गुरुजी उसी मकान में मेजों को जोड़कर बिस्तर लगाते. गीता स्कूल के निकट पहुंची, देखा गुरुजी, बरामदे के आगे टहलते हुए दातून कर रहे हैं. वह निकट गयी. गुरुजी के कुछ पूछने के पहले ही वह बोल उठी, "गुरुजी, इस गांव में सिर्फ आप ही ऐसे आदमी हैं, जो दूसरों के दुख-दर्द को समझते हैं. आपसे एक मदद लेने आयी हूं."

"मुझसे जो बन पड़ेगा, जरूर करूंगा." गुरुजी ने कहा. गीता ने पूरी कहानी सुनायी, सिर्फ अपने संबंध की गोपनीयता को बचाती हुई. अंत में उसने कहा कि वह इस मुकद्दमें में गवाह बनकर सच बात कहना चाहती है, लेकिन कैसे गवाही दे, समझ में नहीं आता. मां या मामा ऐसा करने नहीं देंगे. गांव-घर के लोग भी खिलाफ हो जायेंगे. गुरुजी को मामले-मुकद्दमें का कोई अनुभव नहीं था. उन्होंने कोई राय नहीं दी. गीता की तरह वह भी माथे पर हाथ रख सोचने लगे. अंत में गीता ने ही कहा, "क्यों न थानेदार को एक चिट्ठी लिखी जाये, जिसमें कहा जाये कि मैंने महतो का खून होते देखा है और मैं सही आदमी का नाम बतला सकती हूं. मेरी गवाही ली जाये. गुरुजी ने हां-में-हां मिलायी, क्योंकि इससे ज्यादा वह भी नहीं सोच सके. आखिर गीता ने पैसे दिये और गुरुजी ने लिफाफा लाकर उसके अनुसार मजमून बनाया. गीता ने अंगूठे का निशान लगाया. चिटठी थानेदार को भेज दी गयी.

◆

उस रात गीता बिना दुख-स्वप्नों की नींद सोयी. मन के किसी कोने से बार-बार आवाज आती रही कि अब वह विजेंदर को बचा लेगी. मन कुछ हल्का हुआ. अब वह प्रत्येक सुबह नयी आशाओं से जगने लगी. रोज सोचती, शायद आज कचहरी से बुलाहट आ जाये. वह कचहरी जाकर सच को उजागर करेगी और विजेंदर बच जायेगा. कभी-कभी वह घंटों कचहरी की कल्पना किया करती. कैसी होती है कचहरी. कैसे होते हैं जज? उसे कठघरे में खड़ा होना पड़ेगा. पांव कांपने लगेगा तो वह जोर लगाकर काठ को पकड़ लेगी. कचहरी में तिल धरने की जगह नहीं होगी. सामने ही विजेंदर होगा, आंखें फाड़-फाड़कर उसे देखता हुआ. इन्हीं कल्पनाओं के बीच एक दिन मुसहरु और गांव के रिश्ते का चचेरा भाई आ गये, विदाकर गांव ले जाने के वास्ते. वह मन ही मन खुश हुई. वह गांव जाकर गवाही देने का इंतजाम करेगी, चाहे मां या और लोग कुछ भी कहें.

दूसरे दिन, काफी सवेरे, बैलगाड़ी की टप्पर चादर डाली गयी और वह गांव की ओर चल पड़ी. रास्ते-भर खयालों में डूबी रही. दो-तीन बार मुसहरु ने खाने-पीने के लिए पूछा, लेकिन उसने टाल दिया. वह जल्द से जल्द गांव पहुंचना चाहती थी.

शाम को गांव पहुंची. मां और दो-तीन महिलाएं उसे बैलगाड़ी से उतारकर आंगन में लायीं. पांव धुलाया. यह सब देखकर ही वह समझ गयी कि मामला नाजुक है. जल्द ही उसे पता चल गया कि मामा ने सभा-गाछी से चुपचाप लड़का तय कर विवाह का दिन निश्चित कर दिया था—याने ठीक तीसरे दिन. यह सब बिल्कुल खुफिया ढंग से किया गया, ताकि रंग में कोई भंग न हो.

रात में भोजन के बाद पास-पड़ोस की औरतें उसके आंगन में जमा होने लगीं. बरामदे पर मां ने चटाई बिछा दी, जहां औरतें आकर बैठती गयीं और काफी औरतों के जमा होने के बाद विवाह का गाना शुरू हुआ. ऐसे मौके पर जिस लड़की का व्याह होता है, वह गीत गानेवालियों के बीच नहीं बैठती, बल्कि वह अपनी हमजोलियों से दिन-रात घिरी रहती है और चुहलबाजियों का शिकार बनी रहती है. वह अपनी सहेलियों से बहुत ज्यादा थकी होने और सिर-दर्द का बहाना कर घर के भीतर चली गयी. उसका सिर चक्कर काटने लगा. समझ में नहीं आ रहा था, क्या करे. मां ने अचानक बुलाकर शादी तय कर दी. विजेंदर जेल में है. अगर वह व्याह अस्वीकारे भी तो किसके बल पर और कौन-सा बहाना बनाकर. घर में रहकर व्याह से बचना असंभव है. उसका विजेंदर जेल के अंदर चक्की पीस रहा होगा, आधा पेट खिचड़ी खा रहा होगा और वह व्याह रचाकर ससुराल जायेगी . . . . .नहीं. . . .यह असंभव है. . . .

उसका मन हुआ कि वह खूब जोर से चीख पड़े और गीत गानेवाली औरतों को धक्के मारकर आंगन से बाहर निकाल दे, किंतु उसे चीखने के लिए शब्द नहीं मिले और उसमें उठने की शक्ति नहीं रही. गहरे अंधेरे में उसकी आंखों से बेबसी के आंसू बह चले. उस निर्वाक् रात में उसके व्याह के गीत देवताओं के नाम पर, पितरों के नाम पर दूर-दूर तक मंगल और आनंद की भावना बिखेरते रहे और उसके मन पर कालिमा की परत-दर-परत घिरती रही. उसने तकिया से कान ढंक लिये.

अलसायी रात में गांव की औरतें गीत गाकर अपने-अपने घर चली गयीं. मां उसके कमरे में कोने वाली खाट पर आकर सो रही. थोड़ी देर में मां के खर्राटे गूंजने लगे.

◆

गीता काफी देर तक करवटें बदलती रही. धीरे-धीरे उसने महसूस किया कि लेटे रहना उसके लिए असंभव है. वह बरामदे में आ गयी. फागुन की हवा में सर्दी की खुनकी थी. वह बरामदे में बैठ गयी. सूने आंगन के एक ओर आंवले का पेड़ था. चारों ओर निस्तब्धता थी. कुछ देर बाद, गांव के किसी दूर कोने में एक कुत्ता रो उठा. गीता का मन कुहर-सा उठा. खाली आकाश की तरह ही उसका मन भी खाली था. सितारों की तरह ही अनगिनत घाव उसके मन पर हैं. सूनी रात में कुत्ते का रोना निर्गुणिया उदासी भर देता है. गीता के मन में उच्चाटन का सर्द तूफान दौड़ गया. आखिर इस जिंदगी का क्या होगा? वह अपने मन के मीत को पा नहीं सकी, पा सकना तो दूर, वह उसे बचाने के लिए सब

नहीं बोल पा रही है. वह कुछ हल्ला-गुल्ला मचायेगी तो फिर रिश्तेदार के घर भेज दी जायगी. उच्चकुल में पैदा होने यही मर्यादा है. यही उसकी सीमा है. वह लक्ष्मण-लकीर के र कैद है.

लेकिन मन ने नहीं माना. जिस कुल और संस्कार में मन का ण हो, उसकी प्रत्येक भंगिमा को बुद्धि स्वीकार करे, यह संभव . उसकी अपनी ही विवशता ने उसकी रीढ़ की हड्डियों में ह की निरंतर उठनेवाली लहरों का सृजन कर दिया. उसके पर बार-बार धक्का लगने लगा, नहीं. . .नहीं. . .यह संभव है. आखें बंद कर सब कुछ बर्दाश्त कर लेना संभव नहीं.

वह धीरे-धीरे बरामदे से उठकर आंगन में आ गयी. एक बार कर घर की ओर देखा, जहां मां सोयी थी. वह झटके के साथ र निकलने का दरवाजा खोलकर अंधकार में विलीन हो गयी. नहीं, कैसे क्या हुआ. वह किसी जादुई सम्मोहन में दौड़ती ाने के बरामदे तक पहुंच गयी. वहां पहरे पर खड़े सिपाही ने डांटा तो होश हुआ. वह रुककर हांफने लगी. उसने कई सवाल , लेकिन हर सवाल का उत्तर वह इतना ही देती रही कि उसे गाजी से मिलवाया जाये, वह एक भेद की बात बताना चाहती सने अपना परिचय तक देना कबूल नहीं किया.

दारोगाजी अपने क्वार्टर में सोये थे. पहरे वाले सिपाही ने खबर भिजवायी. वे अलसायी आंखों से उठकर आये. लैंप शनी में गीता को देखा तो आंखों की नींद उड़ गयी. देखते ह गये. दारोगा को भी गीता ने इतना ही कहा, "एकांत में एक जरूरी सूचना देना चाहती है."

"बिल्कुल एकांत में." दारोगा ने पूछा.

"हां." उसने कहा.

"तुम्हारा नाम."

"आपको नाम-वाम से क्या लेना है. आप जल्दी करिए."

"अच्छा. . .जल्दी करता हूं."

दारोगाजी ने पहरे वाले सिपाही को आंख मारी और गीता ते हुए भीतर वाले कमरे की ओर बढ़े, "चलो, तुम्हारा न ले लूं."

गीता को जिस कमरे में ले जाया गया, वहां रोशनी नहीं थी. वहशी दरिंदा था और एक मासूस गीता थी.

"विजेंदर ने खून नहीं किया. तुम कहती हो तो मैं मान लेता हूं, ून तो हुआ. . .तो फिर किसने किया खून. . .छोड़ो इस बात किसी ने किया हो खून. . .पहले तो यह बताओ, विजेंदर से रा क्या रिश्ता है?"

". . . . ."

"समझ गया, विजेंदर तेरा यार है."

". . . ."

गीता की चुप्पी ने दारोगाजी के चेहरे पर मुस्कान बिखेर िर तो शांति और सुरक्षा के रूप में प्रतिष्ठापित 'थाना' के धेरे कमरे में एक सशक्त अधिकारी-पुरूष की गर्म उसांसें री हुई दयनीय लड़की की सिसकियां भर गयीं.

लगभग घंटे भर बाद दारोगाजी अपने क्वार्टर की ओर चले और जाते समय 'पहरा' को कहते गये—लड़की को ले जाकर के साथ हाजत में रक्खे, कल सबेरे बयान लिया जायेगा.

सिपाही ने मुस्कराते हुए कमरे में पैर रक्खा तो गीता लश्त बनी फर्श पर फैली हुई थी और करुण स्वर में पानी मांग रही थी. सिपाही पानी लाने चला गया. पानी लेकर जब आया तो कमरा खाली था. सिपाही ने इधर-उधर देखा . लड़की कहीं नहीं थी. सिपाही मुस्कराने लगा, "स्साली, चालू थी."

दूसरे दिन घर में गीता की खोज सूरज उगने के पहले से ही होने लगी. पहले तो मां ने खुफिया तौर पर खोज की, लेकिन जब कहीं पता नहीं चला तो बात लोगों में फैल गयी. तरह तरह की चर्चा की जाने लगी, लेकिन यह चर्चा ज्यादा देर तक नहीं की जा सकी. लगभग दस बजे गीता का पता लग गया. बनवारी लाल ने सूचना दी कि गांव के दक्षिण वाले पीपल की डाल से गीता गले में फंदा डाले झूल रही है. गांव में कुहराम मच गया. पूरा गाव पीपल के इर्द-गिर्द जमा हो गया. थाना खबर दी गयी. दारोगाजी आये. लाश को देखते ही दारोगाजी स्तंभित रह गये. गांव वालों से मालूम हुआ, फिर तो उनकी आंखों में चमक आ गयी. उन्होंने गांव वालों को बतलाया, "इस लड़की को महतो के असली खूनी का पता था और इसने थाने पर चिठ्ठी भेजी थी कि इसका बयान लिया जाये, लेकिन हमारे पहुंचने के पहले ही इस बेचारी को 'नक्सलियों' ने फांसी पर लटका दिया. अब हमें पता करना होगा कि इस गांव में कौन ऐसा नक्सलिया है, जिसने. . ."

महतो-हत्या की चश्मदीद गवाह एक सुकुमारी सत्य को अपने भीतर समेटे सदा-सर्वदा के लिए खामोश लेटी थी, जिसकी मृत्यु का गवाह पीपल का दरख्त था, जो छुरी की नोंक जैसे सत्य को अपने भीतर आत्मसात कर हिलते हुए पत्तों की भाषा में जो बयान दे रहा था, उसे समझने वाला कोई नहीं था. दारोगा के सामने पूरा गांव पीपल के पत्ते की तरह ही कांप रहा था. . . ☐

● 38/276, राजेंद्र नगर, पटना-800016

ग़ज़ल

आदमी एक जीवित हवन है यहां,
सत्य मुर्दा पड़ा बेकफन है यहां.

फूल की गंध तक को तरसते हैं हम,
आपके नाम सारा चमन है यहां.

चांद, सूरज, सितारे सभी कैद हैं,
चंद महलों में गिरवी गगन है यहां.

यों तो लगती शरीफों की बस्ती है ये,
एक ईमान ही बदलचन है यहां.

मन धनुष से यहां टूटते हर घड़ी,
जिंदगी एक लंका-दहन है यहां.

दोस्तो! दूर हमको कहीं ले चलो,
हर तरफ बस जलन ही जलन है यहां.

▣ हनुमंत नायडू

कुर्सी महाठगिनी हम जाणी

• विनोद शंकर शुक्ल

व्यंग्यकारों की निगाह से न विष्णु बचते हैं न लक्ष्मी. खासतौर से तब जब 'कुर्सी' का चक्कर हो, क्योंकि "कुर्सी कभी सुहागिन नहीं बन पाती. वेश्या की तरह उसे थोड़ी-थोड़ी देर में नये-नये चेहरों के सम्मुख समर्पित होना पड़ता है!"... विष्णु और लक्ष्मी को नये अर्थों में रूपायित करती विनोद शंकर शुक्ल की एक नयी व्यंग्य कथा. इसके पूर्व 'एक और मेघदूत' व्यंग्य कथा आप अगस्त : 80; अंक : 2 में पढ़ चुके हैं.

कबीर साहब साधुओं से घिरे बैठे हैं. संगति चल रही है. साधू चिलम का दम लगा रहे हैं. चिलम और धर्म का गहरा संबंध है. चिलम का धुआं अंदर जाता है और गोता लगाकर साधुओं के धर्म को बाहर निकाल लाता है. लोग समझते हैं, साधू नशा कर रहे हैं. साधू नशा नहीं कर रहे, वे मन के कुएं में चिलम की रस्सी-बाल्टी डालकर धर्म का जल निकाल रहे हैं. कबीर साहब चूंकि अपने युग के 'एन्साक्लोपीडिया' थे, इसलिए साधू अपनी हर जिज्ञासा का समाधान उन्हीं से कराते थे. साधू जैसे ही चिलम का दम मारते, कोई न कोई जिज्ञासा निकलकर बाहर आ जाती. इसी प्रक्रिया से एक साधू ने जिज्ञासा बाहर निकाली और कबीर साहब से पूछा—"सद गुरु! मैंने एक चित्र देखा है. क्षीर-सागर में देवताओं के हाई-कमान भगवान विष्णु शेष-शय्या पर शयन कर रहे हैं. लक्ष्मी चरण दबा रही हैं. विष्णु की नाभि से निकले कमल में ब्रह्मा विराजमान हैं. समीप दोनों हाथ जोड़े देवर्षि नारद खड़े हैं. जिनके मुख से विष्णु की स्तुति बिना टोंटी के नल के जल की तरह बह रही है. इस चित्र का अर्थ क्या है?

कबीर मुस्कराये. हर ज्ञानी, अज्ञानी की नादानी पर मुस्कराता है. फिर प्रश्नकर्ता की ओर करुणा से देखा. हर ज्ञानी का मन अज्ञानी के प्रति करुणा से भर उठता है. फिर किंचित समाधिस्थ हुए. हर ज्ञानी प्रश्न का उत्तर खोजने के लिए समाधि में उतरता है. इन सब क्रियाओं को पूर्ण करने के बाद कबीर साहब की वाणी प्रकट हुई, बोले, "साधो, बड़ा उत्तम प्रश्न है. तुम जिस चित्र की बात कर रहे हो, वह सत्ता की राजनीति का सनातन चित्र है. सत्तासीन अनादि काल में क्षीर-सागर में सुख-शय्या पर लेटते चले आ रहे हैं. सत्ता पर आने के बाद वे अपने लिए दूध का समुद्र चुन लेते हैं और उस पर आसन बिछाकर लेट जाते हैं. दूध पर वे अपना अधिकार समझते हैं और छाछ पर जनता का. शेष-शय्या वे जान-बूझकर चुनते हैं, ताकि जनता यह मुहावरा गढ़ सके कि सत्ता फूलों की सेज नहीं है, सांपों की सेज है. ये सत्ता को पंथ कराल महा, शेषनाग की सेज पे सोवनो है. भोली जनता नहीं जानती कि सत्ता और सर्प में समझौता हो गया है. सर्प कहते हैं, तुमने हमारे समर्थन से सिंहासन पाया है. हम समर्थन बेचते हैं. हमारे समर्थन की कीमत अदा करो. सत्ता भी एक सहकारी उद्योग है. हमें लाभांश का सत्तर प्रतिशत चाहिए. सत्ता कहती है, चालिस प्रतिशत से ज्यादा देना संभव नहीं है. सर्प सत्ता की शतरंज के बादशाह को शह देते हुए कहते हैं, तब ठीक, हमारा समर्थन वापस, तुम्हारी सत्ता खलास! सत्ता बादशाह को बचाने के लिए 'फिफ्टी-फिफ्टी' पर समझौता कर लेती है. इस प्रकार सत्ता के सिंहासन को सर्पों का टेका मिल जाता है. साधो, आज की सारी व्यवस्थाएं सर्पों पर टिकी हैं. राजनीति, अर्थनीति, साहित्य, कला, संस्कृति सभी को स्वार्थ के शेष-नागों ने अपने सिर पर थाम रखा है. भोली जनता जब सत्ता को सर्प के सिंहासन पर विराजित देखती है तो उसका हृदय कृतज्ञता से भर जाता है. सत्ता कितनी महान है. जनकल्याण के लिए कांटों का ताज धारण करती है. सत्ता तेरी जय हो, सत्ता तू जिंदाबाद! साधो, चित्र के प्रत्येक प्रतीक को तुम ठीक से समझ लो. विष्णु अर्थात् सत्तासीन, क्षीर-सागर यानि सत्ता से प्राप्त असीम सुख और शेष-नाग याने निहित स्वार्थी तत्व, जिनसे समझौता किये बिना सत्ता की स्थिरता

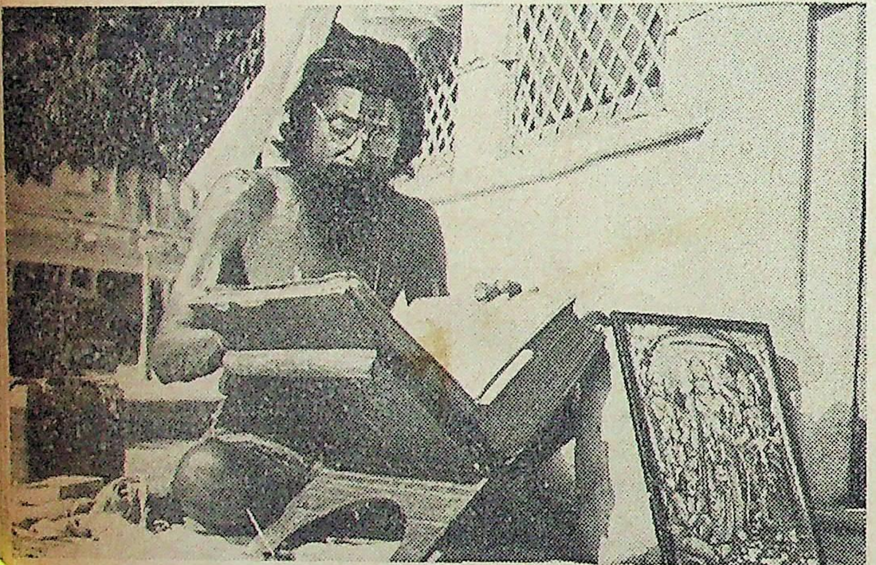

● जयतग सिंह

नहीं. संतो, तुम समझ गये होगे कि सत्ता का सुख और सुख का समझौते से कितना गहरा रिश्ता है.

साधो, लक्ष्मी द्वारा विष्णु के चरण दबाने की क्रिया भी बहुत अर्थपूर्ण है. सत्ता चुंबक होता है. वह लक्ष्मी को आकर्षित करती है. लक्ष्मी सत्ता के आकर्षण से उसी ओर खिची चली आती है, जैसे नाद के आकर्षण से मृग. लक्ष्मी कहती है, 'प्रभो, तुम मेरे ठाकुर, मैं तोरी दासी.' सत्ता उत्तर देती है, 'तुम बिन कल न परत दिन-राति.' दोनों में पलक झपकते प्रेम हो जाता है. दोनों परिणय-सूत्र में बंध जाते हैं. साधो, सत्ता और लक्ष्मी का गठबंधन अनादि है. लक्ष्मी स्थिर होकर सत्ता के पैरों के निकट बैठ जाती है. वह चरण दबा-दबाकर सत्ता को लाइसेंस, परमिट, ठेके, पदवियां आदि दिलाती रहती है. सत्ता लक्ष्मी की चरण-सेवा से प्रसन्न हो जाती है. वह जाग्रत अवस्था में हो अथवा सुप्त, लक्ष्मी की हर मांग पर 'तथास्तु' की मोहर लगा देती है. इधर लक्ष्मी की समर्पणशीलता से सत्ता का भंडार सदा भरा-पूरा रहता है. साधो, सत्ता बिना लक्ष्मी शून्य है और लक्ष्मी सत्ता बिना अनाथ है.

संतो, विष्णु की नाभि से निकले कमल पर ब्रह्मा विराजमान हैं. ब्रह्मा स्रष्टा हैं, निर्माण के प्रतीक. हर निर्माणकर्ता को खरीद लेना सत्ता का स्वभाव है. निर्माताओं की स्वतंत्रता सत्ता के स्वार्थ में बाधक है. वह अपने स्वार्थ के अनुकूल निर्माण चाहती है. यही कारण है कि लोकतंत्र, धर्मतंत्र, साहित्य और संस्कृतितंत्र—सभी तंत्रों के नियामकों को सत्ता खरीद लेती है. ये नियामक भी पक्के व्यापारी होते हैं. क्रय-विक्रय के लिए बाजार में खड़े रहते हैं. ये खुद अपनी बोली लगाते हैं और धन्नासेठों अथवा सत्ता के हाथों बिक जाते हैं. इनका काम दरबार सजाना हो जाता है. ये परोपजीवी पौधे बन जाते हैं. सत्ता इनका पोषण करती है. इन्हें दुम हिलाता देख सत्ता बहुत प्रसन्न होती है और इनकी स्वामीभक्ति को विभिन्न अलंकरणों से अलंकृत करती है.

साधो, नारद की स्तुति का आशय तुम्हें बताने की आवश्यकता नहीं है. तुम जानते हो. सत्ता बड़ी स्तुतिप्रिय होती है. स्तुति सत्ता के लिए आक्सीजन है. अत: सत्ता तोतों की तरह चापलूस पाल लेती है. ये चापलूस सत्ता की धाराप्रवाह स्तुति करते हैं. सत्ता का अखंड-कीर्तन ही इनका एकमेव कार्य है. ये चापलूस ऊंचे दर्जे के कलाकार होते हैं. 'महान. . . .महान' की सतत रट द्वारा ये सत्ता के हृदय में महान होने का भ्रम पैदा कर देते हैं. आरोपित महानता से सत्ता को मदांध कर ये अपना उल्लू सीधा करते रहते हैं. साधो, सत्ता यदि गुड़ है, तो चापलूस चींटे. सत्ता और चापलूसों का हर युग में साथ रहा है. युग के अनुरूप केवल नाम में ही परिवर्तन हुआ है. कभी ये चरणदास रहे तो कभी चारण और वर्तमान युग में इन्हें 'चमचे' के नाम से जाना जाता है.

साधो, तुम्हारी जिज्ञासा का समाधान हो गया होगा. दरअसल, ये चित्र सत्ता की माया का बड़ा सार्थक प्रतीक है. यत्र-तत्र-सर्वत्र आज सत्ता की माया का ही प्रसार दिखाई पड़ता है. सत्ता की माया याने राजनीति. इस भूखे-नंगे देश में लोग राजनीति खा रहे हैं, राजनीति पहन रहे हैं, राजनीति को ही ओढ़ते-बिछाते हैं. राजनीति में ही इन्हें मोक्ष दिखाई देता है. साधो, तुम पूछोगे—राजनीति क्या है? राजनीति एक खेल है—सत्ता की कुर्सी-दौड़! कुर्सी बीच में रखी है और लोग उसके चारों ओर बदहवास दौड़ रहे हैं. कोई कुर्सी पर बैठ जाता है तो बाकी लोग बलपूर्वक उसे उठाकर बाहर फेंक देते हैं. यह क्रम सतत जारी रहता है. कुर्सी कभी सुहागिन नहीं बन पाती. वेश्या की तरह उसे थोड़ी-थोड़ी देर में नये-नये चेहरों के सम्मुख समर्पित होना पड़ता है. साधो, कुर्सी के संस्कार भी अब बदल गये हैं. वह कठपुतली की तरह सत्ताकर्मियों को नचाती है. लोग उसके चरणों में अपना धर्म, ईमान, नैतिकता, मानवता आदि खुशी-खुशी गिरवी रख देते हैं. साधो, मैंने पहले ही कहा है—माया महाठगिनी हम जानी! अब यही माया कुर्सी बनकर जान-सुजान सबको ठग रही है. आओ, हम सब मिलकर इस तरह गायें—कुर्सी महाठगिनी हम जानी. . .!

. . .और वे सब खंजड़ी-खड़ताल बजा-बजाकर गाने और नाचने लगे—कुर्सी महाठगिनी हम जानी. . . .कुर्सी महाठगिनी हम जानी. . . .! ☐

● विनोद शंकर शुक्ल

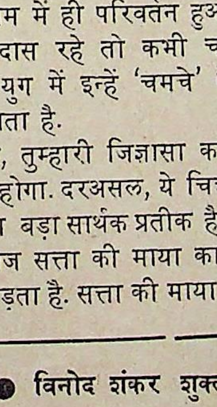

● सी. जे. रात्रि महाविद्यालय, रायपुर.

आसपास बिखरी कहानियां

संतुष्टि

▣ संतोष वर्मा

टिकट खिड़की से टिकट और बाकी पैसे उठाकर वह तेजी से प्लेटफॉर्म की ओर भागी. चर्चगेट लोकल प्लेटफॉर्म पर आ चुकी थी. भीड़ में चढ़ते हुए उसने हथेली में दबी अठन्नी पर उचटती निगाह डाली तो बुदबुदा उठी, "खोटी दे दी, बेईमानी की भी हद है."

कोने की सीट उसे मिल गयी. तभी हाथ में चार-पांच अमरूद लिये लड़की की आवाज गूंजी, "पेरू ऽ ऽ रूपिये में चार."

उसने झट चारों अमरूद ले लिये और खोटी अठन्नी मिलाकर दो अठन्नियां उसे थमा दीं. लड़की ने बिना देखे पैसे जेब में डाल लिये.

"इसे काटकर मसाला लगा दे." एक बड़ा-सा हरा अमरूद उसने लड़की की ओर बढ़ाया. लड़की अमरूद काटने चार-पांच सीटों के बाद रखी अपनी डलिया की ओर बढ़ गयी. लौटी तो उसे लड़की के हाथ की फांकें कुछ छोटी लगीं, जो दिया था वही काट न! बेईमानी करती है."

और लड़की से मनपसंद अमरूद कटवाकर वह खाने लगी. ☐

आटा

• हर भगवान चावला

• टी. कासीनाथ

"चलो बच्चू! भीतर चलें, मां बुला रही है." जीतो ने कहा.

"ठहर, एक खेल और करके दिखाऊं." इतना कहकर उसने सिर धरती पर टिकाया और कलाबाजी खा गया. जीतो हंस पड़ी.

भीतर बैठी मां को यह हंसी चुभ गयी. उसे गुस्सा आ गया, उसने फिर पुकारा, "जीतो, बच्चू, अंदर आओ!"

"बच्चू! मां बुला रही है." जीतो ने फिर कहा.

"बस, एक खेल और." यह कहकर उसने सिर नीचे और टांगें ऊपर उठाकर शीर्षासन लगा लिया.

"आहा. . .आहा!" जीतो ने तालियां बजायीं और हंस पड़ी

मां को फिर क्रोध आ गया. उसे यह हंसी असह्य हो उठी. "हंस क्यों रही है कंबख्त!" वह बड़बड़ायी. उसे स्वयं कभी हंसने का अवसर नहीं मिलता था और वह मन ही मन जैसे समझने लगी थी कि किसी को भी हंसने का अधिकार नहीं है, कम से कम उसके घर के सदस्यों को तो बिल्कुल नहीं.

वह तेज-तेज कदमों से बाहर आ गयी और जीतो के गालों पर दो-तीन थप्पड़ मार दिये. फिर शीर्षासन लगाये बच्चू की ऊपर उठी टांगों को पकड़कर झटके से जमीन पर गिरा दिया, "जान तो है नहीं और करता है उलटी-सीधी हरकतें, कहीं कोई ह पसली टूट गयी तो जोड़ेगा कौन! तेरा बाप!"

बच्चू जमीन पर पड़ा कराह रहा था. एकदम नीचे गिरने उसकी पीठ जैसे दर्द से सुन्न हो गयी थी. भाई को कराहते जीतो अपना दर्द भूल गयी और दनादन मां की टांगों को पी लगी. फिर काट लिया. मां ने उसकी पीठ पर दो खुले हाथ जमाये और उसे बांह से पकड़कर घसीटती हुई भीतर चल बच्चू को भी चेतावनी दे दी, "चल तू भी अंदर."

बच्चू तब तक कुछ सामान्य हो गया था. वह भी घसीटता हुआ धीरे-धीरे मां के पीछे-पीछे चल दिया.

"बैठो यहां!" मां ने कमरे के भीतर जाकर आदेश दि

वे दोनों जमीन पर बैठ गये. मां भी खामोश-सी रेत की दी का सहारा लेकर अधलेटी हो गयी और अपना सिर दीवार तरफ कर लिया. उसकी आंखें डबडबा आयीं. और फिर ही बच्चों की ओर उठ गयीं. दोनों सहमे-से सिर झुकाये बैठे कभी-कभी भरी-भरी आंखों से एक-दूसरे की ओर ताक लेते वातावरण में भयानक नीरवता थी. केवल कुछ मक्खियां भिनभि कर खामोशी को भंग कर रही थीं. मां सिर घुमाकर दीवार मिट्टी कुरेदने लगी.

"मैं बापू से कहूंगी." जीतो ने बच्चू से कहा.

"क्या?" बच्चू अपने में खोया था.

"मां ने मारा था. क्यों मारा था?"

"तू हंसी क्यों थी?"

"हंसते तो सारे लोग हैं."

मां को रुलाई आ गयी. उसे ग्लानि हो आयी. हंसना भी क्या गुनाह है? उसने बच्चों की ओर देखा और चाहा कि सीने लगाकर उन्हें प्यार कर ले. परंतु वह ऐसा नहीं कर पायी. ऐ सदा ही होता था. चाहकर भी वह उन्हें प्यार नहीं कर पाती मन में झूठे स्वाभिमान से युक्त भय था.

मां को अपनी ओर ताकते पाकर बच्चे सहमकर हो गये. वे तो मां को सोया जानकर बातें कर रहे थे. फिर नीरवता व्याप्त हो गयी. मां ने मुंह फिर दूसरी ओर फेर लि

"भूख लगी है बच्चू, तुम्हें भी लगी है न?" जीतो फुसफुसा

"हां." उसने पेट पर हाथ फेरा.

"मैं रसोई में रोटी देखकर आती हूं, अच्छा!"

मां का ध्यान उनकी फुसफुसाहट पर था. यह सुनकर वह फट पड़ी, "कहां से आयेंगी रोटियां, क्या मैं अपने सिर की बना आटा तो तुम्हारा बापू लाकर देता नहीं और ये मांगते हैं रोटि नहीं है रोटी-वोटी, दफा हो जाओ यहां से."

दोनों बच्चे खड़े होकर बाहर जाने का उपक्रम करने

"कहां जा रहे हो?" मां दहाड़ी.

"बापू को देखने, उनका आने का टाइम हो गया है." जीतो कहकर दरवाजे से बाहर हो गयी.

"और तू कहां जा रहा हैं?"

वह चुप रहा.

"बैठ यहां, बापू कोई नेता नहीं जो स्वागत बिना नहीं आयेगा."

बच्चू बैठ गया. उस वातावरण में उसका दम घुट रहा था. जीतो बाहरी दरवाजे पर आकर खड़ी हो गयी. वह बार-बार पर देखती. कभी-कभी अनायास उसकी नजरें पास ही खड़े बबूल के वृक्ष की ओर उठ जातीं. लगभग दस मिनट उसे बापू आते दिखाई दिये. वह दौड़कर उनसे लिपट उसने उसे गोद में उठाकर पूछा, "तू रो क्यों रही है री?"

"मां ने मारा था, बच्चू को भी मारा था." जीतो ने कहा, उसका पारा चढ़ गया. भीतर घुसते ही उसने अपनी पत्नी से "क्यों मारा तुमने बच्चों को? तुझ पर भूत तो नहीं चढ़ा है?"

"भूत इन पर चढ़ा है या मुझ पर? क्यों हंसते हैं सारा दिन ये?"

"डायन! तुझे बच्चों का हंसना भी नहीं भाता." और फिर उस पर लातों, घूंसों की बौछार शुरू कर दी.

"बापू, मां को कुछ मत कहो, मां को छोड़ दो बापू!" बच्चू जीतो लगातार गिड़गिड़ाये जा रहे थे. जीतो स्वयं को अपराधी रही थी. क्यों बताया उसने बापू को?

वह उसे मारते हुए कहता जा रहा था, "हमेशा रोते हैं, पल हंस भी लिये तो गुनाह हो गया इसके लिए."

"रोयेंगे नहीं तो और क्या करेंगे," वह पिटती हुई बोली, का एक दाना भी नहीं खाया इन्होंने."

उसके हाथ रुक गये. उसने वीरो को छोड़ दिया और जीतो आदेश दिया, "जाओ, किशन की दूकान से एक किलो आटा लाओ."

जीतो चली गयी. मां उठ बैठी.

"तुम्हारी तनखा का क्या हुआ?" उसका स्वर ऐसा था जैसे अभी कुछ हुआ ही न हो.

"इस महीने की तनखा नहीं मिलेगी. ओवरसीयर सारे मजदूरों तनखा लेकर भाग गया है." उसका स्वर तटस्थ था.

दोनों खामोश बैठ गये. इतने में जीतो खाली हाथ लौट आयी, "उसकी दूकान पर आटा खत्म हो गया है."

"खत्म कैसे हो गया है? कल ही तो वह एक बोरी आटा लाया मैंने देखा था." बच्चू बोला.

"घर के लिए पिसवाकर लाया होगा!" बापू ने बच्चू को दिया, जबकि वह जानता था कि बच्चू झूठ नहीं बोल रहा है, उसे और उधार नहीं देना चाहता.

बच्चू ने अपने बस्ते में से लोहे की स्लेट और दूसरी कक्षा की और गणित की पुस्तकें निकालकर जमीन पर पटकीं और बस्ता लिये बाहर निकल गया. बापू बीड़ी फूंकने लगा.

लगभग आधे घंटे के बाद जब बच्चू वापस आया तो उसका आटे से भरा हुआ था. उसने वह मां के सामने रख दिया.

"कहां से लाया आटा?" बापू ने पूछा.

"सूरज की चक्की से." उसका सपाट उत्तर था.

"पैसे कहां से लिये थे?"

"पैसों से नहीं लाया."

"तो?" बापू के तेवर बदल गये.

"मैं चक्की के पास खड़ा था. सूरज घर के भीतर रोटी खाने गया तो मैंने एक कनस्तर से थैला भर लिया."

"साला! हरामी! चोरी करके लाया है, तुझे शर्म नहीं आयी. चोरी करता है, यही सिखाते हैं तुम्हें स्कूल में?" बापू के मुक्के लगातार उसकी पीठ पर बरसने लगे. जब वह थक गया तो हांफते हुए उसने उसे छोड़ दिया. बच्चू के मुख से रुलाई नहीं फूटी. उसने बस्ता वापस कंधे पर लटका लिया.

"कहां जा रहा है?" उसके बापू ने पूछा.

"आटा वापस करने." बच्चू बोला.

"क्यों? क्या बेइज्जती करवाना चाहता है हमारी? और फिर आटा दे आयेगा तो खायेगा क्या, मेरा सिर? रख दे चुपचाप!"

उसने बस्ता उतारकर नीचे रख दिया. उसे लग रहा था कि उसका अपमान हुआ है. यदि बापू को उसकी चोरी पसंद नहीं थी तो आटा वापस क्यों नहीं करने दिया? वह सूरज से माफी मांग लेता. उसकी आंखों से गुस्सा और आंसू छलकने लगे.

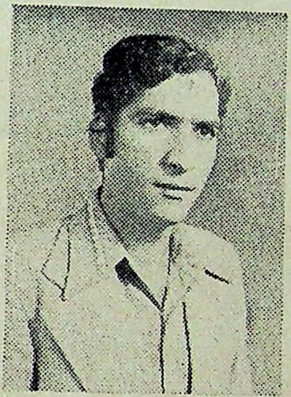

जन्म : 10 मार्च, 1958.
"विसंगति यों के घुटते माहौल में हर सच्चा इंसान अपनी अस्मिता की तलाश में छटपटा रहा है. इसी छटपटाहट भरे संघर्ष को वाणी देने की कोशिश अपने लेखन में करता हूं." संप्रति : शोध.

"आ बच्चू! रोटी खा ले." मां ने उसे पुकारा.

"मैं नहीं खाऊंगा, मुझे भूख नहीं है."

"भूख कैसे नहीं है, खाता है कि नहीं?" इस बार बापू ने कहा.

"मैं नहीं खाऊंगा." उसका स्वर निर्णयात्मक था.

"नहीं खायेगा?"

"नहीं खाऊंगा!"

"तू तो क्या, तेरे पुरखे भी खायेंगे." यह कहकर बापू ने तीन-चार तमाचे और जड़े, "चल चुपचाप बैठकर खा."

वह चुपचाप बैठ गया. उसके हाथ में मां ने रोटियां दे दीं, जिन पर मिर्चें कूटकर रखी हुई थीं. उसकी आंखों से पानी गिरकर लाल-लाल मिर्चों पर तिर गया. एक ग्रास उसने मुंह में डाला. उसे बहुत कड़वा लगा. बापू भीतर बीड़ी ढूंढ़ने चला गया था.

"मैं रोटी नहीं खाऊंगा." उसने रोटी वापस थूक दी.

"खायेगा कैसे नहीं! बुलाऊं तेरे बापू को?" मां ने कहा.

"बुला ले, बापू क्या करेगा मेरा!"

वह गुस्से में भरा हुआ उठा और हाथ की रोटियां दीवार पर पटककर भागता हुआ घर से बाहर निकल गया. ☐

● **हिंदी विभाग, महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)**

पखवारे की पुस्तक

▣ नेत्र सिंह रावत

हमारी संस्कृति ही हमें जमीन देगी

यह जरूरी नहीं है कि रचना में कोई वास्तविक व्यक्ति आये तो वैसे ही आ जाये, जैसा वह था या है. लेकिन 'कुरु-कुरु स्वाहा' (जिसमें सभी पात्र सर्वथा कपोल-कल्पित हैं) के 'एटार्नल मिस्ट्री बोर्न इन बैंगॉल' नामक अध्याय में ऋत्विक घटक के व्यक्तित्व का खाका इतना भ्रष्ट और भ्रामक है कि पढ़ते समय गुस्सा आ गया था. उसमें रथिजित भट्टाचार्य पर यह टिप्पणी की गयी है, "विफलता गोया दादा को कुछ उतनी ही रास आती थी, जितनी भैंस को दलदल. . .पिटे हुए लोगों के लिए उनके मन में स्नेह ही स्नेह था, पहुंचे हुए लोगों के लिए अपमान ही अपमान. एक विवशता-सी थी उनमें हारने की, हारे हुओं की बिरादरी में ही रह जाने की. जहां भी भगत जुटते, चर्चा का विषय यही होता कि दादा क्या हो सकते थे, अब भी चाहें तो क्या नहीं हो सकते!" मुझे लगा था कि जोशीजी शायद कोई पुराना हिसाब चुका रहे हैं. कारण यह हो सकता है कि बंबई में जोशीजी लंबे अर्से तक रहे होंगे, हिंदी फिल्म बनाने के फेर में पड़े हुए दादा के आसपास, और जब कुछ हो न सका तो जोशीजी ने तय पाया कि दादा कुल मिलाकर बकवास हैं. एक 'आलवेज़ एप्रोचेबल जीनियस' को तमाशा समझने वाले कई लोग थे, जो जाते थे खस्ताहाल दादा के पास अपनी मोटर-गाड़ी मार्का सफलता दिखलाने के लिए, उन्हें कोंचने और जली-कटी सुनाने के लिए. जोशीजी भी उनमें से एक होंगे, इसीलिए अब कसर पूरी कर रहे हैं अपने एक ठो उपन्यास में. हालांकि दादा की एक ही लघु फिल्म 'रांदेभू' उन तमाम 'पहुंचे हुए लोगों' की सफलता को नाप सकती है, जिन्हें जोशीजी सफल मानते हैं.

'कुरु-कुरु स्वाहा' ऋत्विक घटक के अलावा आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी को भी समर्पित है. अतः द्विवेदीजी की याद से जुड़ा हुआ एक प्रसंग भी यहां आ रहा है: **एक पत्रिका नयी-नयी निकली थी, ठोस विचारों का ठाठ दिखाने की मुद्रा बनाये हुए, जिसे बीच से खोलकर मैं पढ़ गया एक पैरे को. लगा कि वह आचार्य द्विवेदी के किसी लेख का ही अंश हो सकता है. उस पैरे को दुबारा पढ़ने पर लगा कि नहीं; शैली तो है प्रभावित द्विवेदीजी के पांडित्य से, लेकिन एक पंक्ति भी सार्थक नहीं है. ऐसा चौपट कैसे हो गया द्विवेदीजी का लेखन? दो-तीन पृष्ठ पलटकर देखा शीर्षक की तरफ, जिसके निकट नाम छपा था एक ऐसे लेखक का, जिसे मैं कहानीकार के रूप में ही जानता था. भेद तुरंत समझ में आ गया कि बेचारा कहानीकार से विचारक बनने के फेर में पड़ गया है—एक और दुर्घटना हो रही है जैनेंद्रजी के बाद!**

'कुरु-कुरु स्वाहा' में भी प्रभाव नहीं, अनुकरण-सा है द्विवेदीजी की शैली का, लेकिन वह कहीं रेले की तरह और कहीं बूंदाबांदी की तरह आया है. विचारक बनने का चक्कर नहीं है इसमें, कोई और ही चक्कर है.

उपन्यास के उत्तरार्ध में पहुंचने तक यही लगता रहा कि जोशीजी साहित्य का सार वक्रोक्ति में देखते हैं—कहना चाहिए कि वक्रोक्तिवादी हैं. एक से एक बढ़कर चटखारेदार शब्दावली गढ़ने में ही सारी मेधा खर्च हुई जा रही है, हिंदी को एक ठो 'वार एंड पीस' देने की तन्मना रखने वाले की और वह मुग्ध हुआ जा रहा है अपनी इस मति पर—**"क्या तुम भी उनमें से हो जो हर चीज में ढोल की पोल देख चुके हैं और अब पोल का ढोल बजाये जा रहे हैं."** या **"ध्यान दें, कितना ध्यान रखा था प्रॉपर्टीज वालों ने ध्यान रखने लायक हर बात का."**

ऐसे लेसदार-लच्छेदार जुमलों की कमी नहीं है उपन्यास में, जिनका औ उपन्यास को 'एब्सर्ड' और 'गण्- स्कोप' कह देने भर से स्वीकार्य नहीं जाता. मैं निष्कर्ष निकालता रहा कि को मूल्यों पर आस्था नहीं है उसके अ कार का कोई अंत नहीं होता. उस लिए सारी विचारधाराएं ढकोसले सारी पार्टियां, प्रतिबद्धता, मित्रता निर है. लिखने का सिवाय नाम और ना कमाने के और कोई उद्देश्य नहीं. मां भाई-बहन, पत्नी-प्रेमिका में ऐसा नहीं है कि उनसे मतलब गांठने के अल और कोई संबंध बनाया जाये.

शेष रह जाती है आत्मरति, जो न्यास के प्रधान चरित्र 'जोशीजी' में नहीं है और जिसकी स्तुति में उपन्यास एक और चरित्र मनोहर कोई कसर न रहने देता. यदि शब्दचातुर्य के सहारे लेखक बना फिरता हो ऐसा व्यक्ति

फेर अगर 244 पृष्ठ के उपन्यास का तो कुछ तो चाहिए पाठक को उल रखने के लिए चटखारों के साथ-साथ 'सस्पेंस ही सही, जो उससे थोड़ा लगता रहे देर तक, जैसा जासूसी उप में होता है कि खजाना खोजने या ह का रहस्य जानने का चक्कर चल रहा अंत तक.

'कुरु-कुरु स्वाहा' के अधिकांश नायिका 'पहुंचेली पतुरिया' का आ अंत जानने की इच्छा को चकमा देने वा 'सस्पेंस' है, जिसे पांडित्यपूर्ण, पांडित चलताऊ सहित भांति-भांति की भा शैली आगे खिसकाती रहती है. भेद खुलने देने की विधि का हाल यह है ऋत्विक घटक को तमाशा बना देने उपन्यासकार किसी और संदर्भ में जगह यह भी कहे दे रहा है, "जीनि मैडनेस, डिविनिटी-डिप्रेविटी इन डिवाइडिंग लाइनां बहुत ही थिन हो हैं कदी-कदी." लक्षार्थ-व्यंग्यार्थ वहां स्पष्ट नहीं होता, जहां फकत एक तौ पहने पुरखों से सीखी-अधसीखी पुरो का नमूना पेश करने के साथ ही खुल-खुल जाते तौलिये का चक्कर

ता है, "कर भाई, हो जा शुरू. हुआ. अथ स्वस्तिवाचन. 'ॐ स्वस्तिनो ीताग-श्विनाभग: स्वस्ति', झटके दे-कर, 'विश्वेदेवा नो अद्या स्वस्तवे', झटके देकर! यद्यपि झटकों से खिसकता जा रहा था तौलिया. . . .'' 'चीप!'—मुंह से निकला था पढ़ते समय दो-एक बार. हां, पहुंचेली पतुरिया के पेट पर तिल की ओर मनोहर का आकर्षित होना यानी यह चाहना कि वह एक बच्चे की तरह उस तिल पर उंगली रखकर सो जाये, चौंका रहा था बार-बार कि यह आया कहां से है और इस का है सूक्ष्मार्थ. कहीं यह उस 'मातृग्रंथि' की विकृति तो नहीं है, जिससे घटक पीड़ित रहे थे जीवन भर!

जिंदगी का बुरादा !

यह आदमी, जो मनोहर भी है और 'जोशीजी' भी है उपन्यास में, और इन दोनों को अलग करते रहने के गोरखधंधे में भोक्ता और दृष्टा की मुद्रा भी बनाये हुए है. आखिर फंस कहां गया है? शायद 'दुःस्वप्न नगरी' बंबई में उसने कटी-फटी, सपाट और सड़ी हुई जिंदगी इस तरह और इतनी देख ली है कि उसके और उस विद्रूप के चित्रण में ही उसने लेखकीय दायित्व मान लिया है. मूल्य तपे न हों कायदे से और यदि उपन्यासकार को मूल्यों की चिंता रही हो कभी तो यही जाता है—**"मैं बच गया, मैं बचा रह गया और अब मैं देख रहा हूं उन सबकी तरफ 'बोध के सर्वोच्च शिखर से' (पंतजी से साभार) जो चिपके हुए हैं अपनी-अपनी सड़ी हुई जिंदगी से. मैं उनके ढोल की पोल भी देख चुका हूं, जो बदलने की बात करते हैं जनचेतना या बंदूक के बल पर समाज को. मैं बच गया हूं और आज मेरे पास एक ठो एडीटरी है सुनहरे फ्रेम का चश्मा सहित, गाड़ी है, टेलीविजन, फ्रिज आदि-आदि हैं. कांइयापन में किसी से पीछे नहीं हूं. . . .यानी यह आदमी जिंदगी के बुरादे को पहचानने के मुगालते में धंस गया है जिंदगी के बुरादे में ही.**

लेकिन उस मुकाम के नजदीक आते-आते, जहां मनोहर अपनी (?) विधवा मां को पहचान लेता है, कुछेक अंश ऐसे दिखने लगते हैं, जो सद्बुद्धि के ही अंश होते हैं—"इन लौंडों (मनोहर और जोशीजी) की सोहबत में मुझे तो जी ऐसा लगने लगा जैसे किसी ने मुझे घर जाने वाली गाड़ी से जबरदस्ती किसी छोटे-से अनजान स्टेशन पर उतार दिया है. यहां न अमराई, न कच्ची सड़क, न कोई मकान. एक दूसरे से मिलती, एक-दूसरे को काटती, चक्करदार सड़कों का एक चक्कर और उसमें एक अजीब-सा ट्रैफिक साहब! शिऊं एक गाड़ी जाती है यहां से वहां, और शिऊं दूसरी गाड़ी आ जाती है वहां से यहां. छोटी-नीची गाड़ियां. हेल्मेट, गॉगल पहने सवार. न आजू देखें न बाजू. कोई रीले-रेस सी हो रही. शिऊं-शिऊं ऐसी निकल जा गाड़ी. कद चले, कहां से चले, कोई ठिकाना नहीं. . . .'' इस शिऊं-शिऊं में बचे रहना हममें से किसके लिए कठिनतर होता नहीं जा रहा है और कितनों में बची हुई है इस शिऊं-शिऊं के जानलेवा फैलाव को पलट देने की ठनकदार इच्छा? यहां तक आते-आते यह महसूस करने लायक सूत्र भी 'फोकस' में आने लगते हैं कि संस्कृति से अलग हुई बंदूक को अनाड़ी की बंदूक समझने लायक समझ के अंश भी कहीं-कहीं छूट गये थे पीछे.

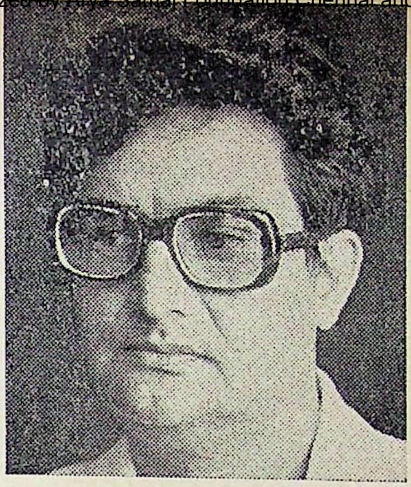

● मनोहर श्याम जोशी

अपनी विधवा मां को पहचान लेने के बाद एक मनोहर मर जाता है और दूसरा मनोहर उस परिवेश से बाहर निकल आता है. चेतना के स्तर पर चोखा, जो उपन्यास का तब तक का परिवेश है. वहां शॉट लेने के लिए घटक भी लगभग अपने असली रूप में प्रकट हो जाता है और मूल्यहीनता के मलवे में धंस रहे इस समाज में सात रुपया किलो चीनी के मूल्य-सूची के विरुद्ध जीवन बीमा एजेंसियों में अपना भविष्य सुरक्षित रखने वालों का क्लोज़िंग शॉट लिवाते हैं—**"एइसा करो, ओ जे सामना ऊपर में लाइफ इंश्योरेंस वालों का विज्ञापन करता है जगमग-जगमग लाल-नीला रोशनी में, तुम कट करके कैमरा इस पर ले जाओ—अच्छा अभी तोमारा दर्शक का आंख ले जाओ विज्ञापन का उस नन्हा-सा दीया और दो हाथ पर. अभी ले जाओ वह जे उद्धरण दिया है 'योग क्षेम वहाम्य हैं,' गीता में कि तोमारा लोग का योग-क्षेम रक्षा करेगा अभी शे एल. आई.सी. फिन पूरा विज्ञापन दिखाओ. . . . फिन घूमा दो कैमरा, फिरकी का माफिक. पर्दे पर अब घूमता है शे विज्ञापन, इस का दीया, इस का उद्धरण, तेज-तेज-तेज, आखिर में कुछ नहीं, बस लाल-नीला रंग का सुदर्शन चक्र जइसा. . . .''**

अंश का संपूर्ण से संबंध ?

घटक की फिल्मों के अंत में किसी न किसी रूप में एक बच्चा आता है, जो चखेगा कभी चेखव के चेरी के बगीचे के फल. 'कुरु-कुरु स्वाहा' के उस 'योग क्षेम वहाम्यहं' दृश्यक्रम को फिल्माने के बाद भी दादा कहते हैं—'आउर जोसी, अगर अभी आडियेंस उठता है आउर सीट का नीचे से बच्चा का लांगोट ढूंढ़ता है तो ओ भी ठीक!'' उपन्यास में घटक के अन्य प्रभाव भी ऐसे ही अजीबो-गरीब होकर आये हैं—पहुंचेली पतुरिया के पेट पर तिल के प्रति आकर्षण सहित—शायद इसलिए कि उपन्यासकार घटक से ज्यादा चिढ़ा हुआ है वर्तमान से या ध्वंस ही ध्वंस दीख रहा है उसे सब तरफ या शायद इसलिए कि उसका आशावाद वैसा अपराजेय नहीं है, जैसा घटक का है. लेकिन उपन्यास में आया हुआ धिक्कार घटक के धिक्कार जैसा ही है.

पिछले डेढ़-दो साल से इस चिंता से ग्रस्त रहा हूं कि मैं रचना में अंश का संपूर्ण से क्या संबंध है? 'कुरु-कुरु स्वाहा' का वह अंश, जो उलट देता है उपन्यास के लक्षार्थ-व्यंग्यार्थ को—इस तरह नहीं आया है कि ध्वनित कर दे संपूर्ण को कई-कई स्तरों पर, लेकिन उस अंश के आते ही ऐसी दरारें पड़ जाती हैं संपूर्ण पर कि उनके भीतर से झांकने लगें बहुतेरे अंश अपनी तद्रूपता, अपनी इयत्ता का

आग्रह लिये कि देखो, खुल-खुल जाते तौलिये में संस्कृति के चिथड़ों का एहसास भी है, लेकिन आप (पाठक) मजा ले रहे थे घटियापन का या घटिया मान रहे थे उसे; पहुंचेली पतुरिया का "अगवाड़ा पिछवाड़ा सब. . . .अपने ही ढंग का था, यूनीक!" जैसा विवरण पढ़ते समय भी आप पर वैसी ही प्रतिक्रिया हो रही थी क्या? और यह कि उन लोगों की तरफ उपन्यासकार नहीं है, जो हर चीज में ढोल की पोल देख चुके हैं और अब पोल का ही ढोल बजाये जा रहे हैं. सक्रिय रही एक ऐसी शैली जो भेद छिपाये जा रही थी चकमा दे-देकर. उस में सधा हुआ अलगाव था और एक खास तरह की मासूमियत भी कि 'सीरिसली' मुझे कुछ नहीं कहना है, 'सीरियसली' कहने लायक है क्या, या 'सीरियसली' ही तो कह रहा हूं यह सब! लेकिन इस तरह एक उलट देने वाला आयाम आने के बावजूद ध्वनित नहीं हुआ संपूर्ण—शायद इसलिए कि कथानक का अभिप्राय एक सिरे से दूसरे सिरे तक कायदे से अमूर्तित नहीं हो पाया, या इसलिए कि चमत्कार का आग्रह हावी हो गया है अक्सर रचना की अंतरधारा पर. एक और कारण शायद यह भी है कि वैचारिकता की चाल-ढाल से मजाकिया लहजा जरा ज्यादा ही लिपट गया है और 'एब्सर्डिटी' पकी नहीं पूरी तरह से और पलायन को साथ लिये चलने का अभिप्राय बंधा नहीं कायदे से, या जरा ज्यादा ही गोपनीय हो गया, या लुप्त हो गया है बीच-बीच में.

एक ठो वार एंड पीस?

संपूर्ण को कई-कई स्तरों पर ध्वनित कर देने वाले अंश का एक उदाहरण देने के लिए उस उद्धरण का ही फिल्मांकित स्वरूप मैं नीचे दे रहा हूं, जो शायद छप जायेगा कहीं इस समीक्षा के छपने तक और जो संदर्भित उपन्यास के समर्पण-पृष्ठ के अगले पृष्ठ में है—**"पता नहीं क्यों, किंतु ऐसी प्रतीति होती है मुझे कि आधुनिक सभ्यता एक अबोध बच्ची है, जिसका चंडिका की मिथक आदिछवि से हठात् सामना हो गया है. अब समूची सभ्यता का अस्तित्व और भविष्य इसी भयंकर साक्षात् के परिणाम पर निर्भर है. अपनी इस बात को ब्यौरेवार समझा सकना मेरे लिए कठिन है."** घटक ने कहा है यह और उनकी फिल्म 'सुवर्ण रेखा' में एक दृश्यक्रम आता है—

सीता है—यानी उस का वर्तमान नाम सीता है—करीब आठ-दस साल की बच्ची. और एक त्यागा हुआ-सा हवाई अड्डा है —रिक्त, यहां से वहां तक. लगता है बीस-पच्चीस सालों से उस पर किसी ने हवाई जहाज नहीं चलाया. उसकी जमीन, जो फिल्म का 'टेक्सचर' भी है, बहुत सख्त है, लगता है जैसे उस पर कोलतार बिछाया गया था कभी. उस सीता के लिए सख्त धरती सिर्फ सख्त धरती नहीं है. संबंध जुड़ता है वहां जनक की बेटी सीता तक से. उसमें (हवाई अड्डे पर) आठ-दस साल की लड़की जा रही है—कोमल, शायद कहीं खेलने जा रही है. उसका नाम सीता भी है जो वैसी धरती पर चल रही है. एकाएक एक बहुरूपिया आता है वहां महाकाली का भेष बनाकर. अचानक लड़की उसे देखती है तो एक भयानक आवाज आती है संगीत के स्तर पर—ऐसी कि देखने वाला (फिल्म देखने वाला) भी दहल जाये. मैं तो समझा था कि वह लड़की बेसुध होकर गिर पड़ेगी. इतना डरावना भेष था उस बहुरूपिये का. लेकिन इससे पहले कि वह बेहोश होकर गिर पड़े, एक बूढ़ा उसके कंधे पर हाथ रखता है, विश्वास दिलाने के लिए कि वह अकेली नहीं है. फिर बहुरूपिये को डांटता है—तू जा, चल! वह बूढ़ा और लड़की आगे बढ़ते हैं और दोनों में हल्की-हल्की बातचीत सुनायी देती है—बेटी, जनक की बेटी थी सीता. ऐसा-ऐसा हुआ. . . .महा-काव्य की तरफ चले गये थे वे दोनों—. एक महान गहराई में उतर गये. वह लड़की उस सीता में समा गयी! . . .सख्त धरती पर चल रही उस कोमल काया के सामने उस बहुरूपिये का आ जाना—यह जो संयोग है—इसने पूरी फिल्म को एक स्त पर नहीं, कई स्तरों पर अमूर्तित कर दिय क्योंकि तब का कलकत्ता है वह, ज शरणार्थी आये थे वहां—फिल्म के सा चरित्र शरणार्थी हैं. आज वहां से हटा गये—उखाड़े गये टब्लर ताले—कुंडी झोंपड़ियां तोड़ी गयीं, मकान ढाये गये भागे, उस सीमा को पार करके यहां आ कि जमेंगे. फिर कोई आया और कहा— उठाओ अपना बोरिया-बिस्तर, भागो! उखड़े वहां से भी—खाने का ठिकाना नहीं, रहने का ठिकाना नहीं! पता न

चर्चित पुस्तक

कुरु-कुरु स्वाहा

● मनोहरश्याम जोशी;

प्रकाशकः राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 8, नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-110002; मूल्य : 30 रुपये.

एक : एक

'कुरु-कुरु स्वाह' पढ़ने
के बाद एक व्यंग्यकार का
चुलबुला पत्र लेखक के नाम—

मनोहर भाई,

आगे चर्चित घटना या दुर्घटना आपसे किसी तरह का प्रत्य संबंध नहीं है. यह महज संयोग की बात कि आपके दो एक परिचित पात्र, जो आप तरह सर्वथा काल्पनिक हैं, उस संज्ञाहां सर्वनाम के जीवन में दो घड़ी के लिए च आये, जिसके साथ यह दुर्घटना घट नतीजतन लेखक का कापीराइट मारा ग और एक एब्सर्ड सत्य उजागर हो गया ऐसा न हुआ होता तो अच्छा होता.

उस रोज पढ़ते-पढ़ते सर्वनामजी अपने को अचानक अंधेरे में पाया, क्यों बिजली गुल हो गयी थी. वैसे पावर-क से पहले भी वह उतने ही अंधेरे में यह लोड शेडिंग बड़ी सुविधाजनक स्थि पैदा कर देती है इस देश के असं सर्वनामों के लिए. अपने को सांत्वना लेते हैं, यह सोचकर कि अंधेरा न र होता तो हम उजाले में होते! बड़ा कार है यह गर्भनिरोधक खयाल, सोचने पहले इसका सेवन करें, काहे को किसी तर की लज्जा या ग्लानि पैदा होगी!

तो साहब अंधेरा होते ही अपने सर्व नामजी सड़क पर उतर आये और अप

इंटेलेक्चुअल अंदाज में...यानी में चूतड़ों को उठाये चलने लगे. अच्छा है यों अंधेरे में चलना. सुरक्षाप्रद आप भटकते हुए भी भटकते-से नहीं आते. कुछ प्रगति-व्रगति कर हैं जैसे तेवर, समझे न. मूर्ख साथियो, में ढूंढ़ रहा हूं प्रकाश को और ढूंढने देता है प्रकाश तुम्हें क्योंकि मैं ही हूं प्रकाशस्तंभ!

सर्वनामजी टकराये नुक्कड़ पर खड़े बाबू से, जो आंखों से मक्कारी और बीड़ी का धुआं उगल रहा था. जब सर्वनामजी छोटे थे, बाबू स्कूल के सामने से लाठी टिकाये बंबइया-मिठाई करता था. पता नहीं, आपकी बंबई क्या कहते हैं. और कुछ नहीं, यह का रंगीन पाक होता है, जो लाठी सिरे पर लिपटा होता है. चूंकि सर्वनाम जेब में पैसे नहीं होते थे, वह अच्छे की तरह बाजारू चीज़ों से परहेज हुए और भविष्य में प्रकाश्य 'गर्दिश दिन' के लिए सामग्री जुटाते हुए नजरों से बाबू की ओर देखते जिसके हाथों में आकर चीनी का तरह-तरह की शक्ल लेने लगता... घड़ी, हवाई जहाज वगैरह-वगैरह की जैसी भी फरमाइश होती बच्चों

बाबू इन दिनों रंडियों की दलाली है, क्योंकि उसके ग्राहक-बच्चे हो गये हैं. वह शाम के नीम अंधेरे किसी नुक्कड़ पर देखा जा सकता है. कंधे से टिकी लाठी के सिरे पर मांस का रंगीन पाक लिपटा होता है, जिसे वह अपने सधे हाथों से तरह-तरह की शक्लें देता रहता है. . . पंजाबिन, मराठिन, एंग्लो इंडियन. . .जैसी फरमाइश हो ग्राहकों की.

"माल चाहिए साब?" सर्वनामजी की ओर मुखातिब होकर बाबू ने पूछा. सर्वनामजी ठहरे इंटेलेक्चुअल यानी भारतीय संदर्भ में कलमजीवी. अपने यहां इस नस्ल का हर औसत आदमी ओनामासी के साथ-साथ 'उत्तर में गिरिराज हिमालय, दक्षिण में लहराता सागर' जैसी चीज लिखकर अपने मूलतः कवि होने का प्रमाण देता है और वयस्कता प्राप्त होते ही वेश्याओं के जीवन का अध्ययन करने को तड़प उठता है. अनुकूल अवसर देखकर सर्वनामजी का हृदय इस तड़प से गुजरने को तड़प उठता. ठस्से के साथ बोले, "अपन जरा बचपन से अच्छे बच्चे हैं, बाजारू माल नहीं चलेगा, घरेलू किस्म की ऊंची चीज हो तो बताओ."

मक्कारी और बीड़ी का धुआं उगलते हुए बाबू ने एक मकान का नंबर दिया, "इदर जाव साब, नवां-नवां माल है, लाइन में नहीं उतरा पर उतर जायेंगा, जवानी का जोश है, टराई मारकर देखो."

नंबर मिलाकर पहुंचे तो सर्वनामजी ने देखा, वह अपने मकान के सामने खड़े हैं. सज-संवरकर दरवाजे पर जो घरेलू चीज खड़ी थी, वह अपनी ही बेटी तारा झावेरी थी. वह जिस व्यक्ति को ओर देखकर मुस्करा रही थी, वह अपने ही मुहल्ले का दादा टाइप छोकरा शीवा चंद्रा था.

दरवाजे पर सर्वनामजी को देख तारा मुस्करायी और भीतर ले गयी. उन्हें कुर्सी पर बिठाया और खुद सामने पलंग पर बैठ गयी. हंसते हुए पूछा, "बाबू ने भेजा है?" सर्वनामजी ने जोर का एक थप्पड़ लगाया. तारा हंसती रही. सर्वनामजी ने तारा के घुटनों पर सिर रख दिया और रोने लगे. तारा ने झोंटा पकड़कर उनका सिर उठाया और बड़े प्यार से कहा, "कमीने, तू मेरे पांवों पर माथा टेक मर जाना चाहता है ताकि मैं देवी बन जाऊं? क्या तूने मेरे साथ अनंत बलात्कार करने का वचन नहीं दिया था?"

"दिया था. मैंने अपनी विधवा मां को ऐसा वचन दिया था और तेरी मां से शादी कर उसे निभाया."

"तो फिर निभा अपने वचन." तारा ने हाथ से ताली बजायी और दादा टाइप छोकरा आकर हाथ बांध खड़ा हो गया. सर्वनामजी ने उसके हाथ पकड़कर कहा, "शीवा, मैंने इसके साथ अनंत बलात्कार करने का वचन दिया है. क्या मेरी मदद करोगे?"

शीवा ने अदब के साथ कहा, "करूंगा, अगर तुम इसका मेहनताना दो. एक स्कूटर, एक टी. वी. और एक फ्रिज."

"ज्यादा मांग रहे हो!"

"संज्ञा से सर्वनाम हो जाने का यह मुआवजा ज्यादा लग रहा है तुम्हें?"

किट्टू

कहां रहेंगे, कहां क्या बीतेगी. कल है और नहीं भी है. राजनैतिक गड़बड़ —यह हटाओ, वह हटाओ, हिंदू करो, मुसलमान को अलग करो, कुचल दो! उन शरणार्थियों के हुआ जो उस लड़की के साथ —एकाएक कोई भयानक दृश्य सामने गया. इतनी बड़ी सामाजिक-राज-आर्थिक भयावहता का एक महा- में मिलाने वाले दृश्य में विस्फोट और सारी फिल्म ध्वनित हो गयी वहीं, हुए भी कि जब-जब हम उखड़ेंगे तब-तब हमारी संस्कृति ही फिर हमें जमीन देगी पैर जमाने के लिए!

'कुरु-कुरु स्वाहा' इस तरह ध्वनित न हो पाने के बावजूद जाता है अतीत की तरफ, संस्कृति की तरफ संस्कृति के मलबे में धंसकर, पूर्व-पश्चिम की तरफ, बढ़ाता है अपना फलक व्यक्ति से समाज तथा देश की तरफ और ले जाता है वह सामूहिक संदर्भ के ऐसे कटाव की तरफ ही कि नीचे पाताल नजर आ जाये हठात्. होश दुरुस्त कर देने वाला चंडिका-दर्शन भी वह करवाता है. उपन्यासकार ने सामूहिक संदर्भ से न जुड़ पाने और जुड़ने की बात कहकर भी, कुछ उखाड़ न पाने की अपनी और उपन्यास के अन्य चरित्रों की परिसीमित दशा को दर्शाया है. और ये सब अंतत वैसे ही सामने आते हैं अपने-अपने अतीत सहित, जैसे मद्रासी फिल्मों के अंत में आता है सारा कुनबा आखरी 'पोज़' खिंचवाने के लिए. रही हिंदी को एक ठो 'वार एंड पीस' देने की बात तो यहां जनरल कुतुज़ोव उतरा नहीं है भाई, समरभूमि में. यहां 'कुरु-कुरु स्वाहा' के लायक ही हो गये हैं हम. ☐

सारिका

दीवाली के बाद, जरा सोचें एक साथ...

रावण मरा : दशहरा मना

राम अयोध्या आये : दुनिया ने दीप जलाये
मगर बीच का वह नाजुक दिन बिसार दिया,
जब सीता ने अग्नि-परीक्षा दी! ... जबकि–

अगला अंक

सीता आज भी अग्नि-परीक्षा से ही जूझ रही है!

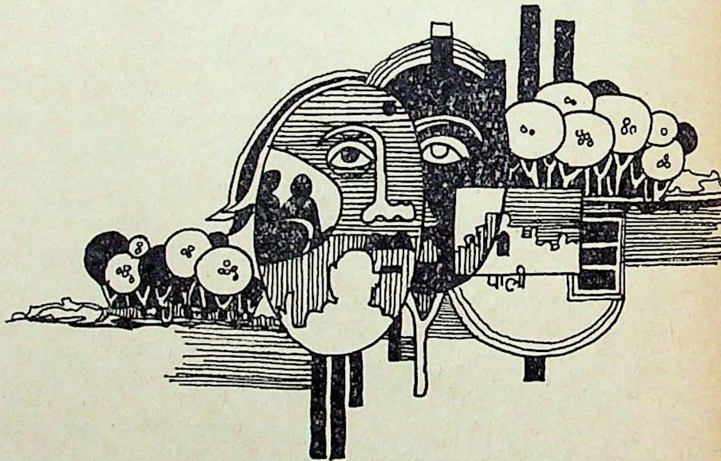

इस बार पढ़िए–पुरुष के परिप्रेक्ष्य में नारी के सामाजिक संसार को रेखांकित करती नारी-संघर्ष की जीवंत रचनाएं––

▣ मेहरुन्निसा परवेज़, राबिन शा पुष्प, अब्दुल बिस्मिल्लाह, मृणाल पांडे, भगवान अटलानी, रज्जन त्रिवेदी, शैवाल (मैथिली) आलोक मेहता, हरिमोहन की कहानियां

▣ **कोई तो : विष्णु प्रभाकर**

प्रख्यात कथाकार के शीघ्र प्रकाश्य उपन्यास का मार्मिक अंश

▣ **खुदा सही सलामत है : रवींद्र कालिया**

अजीबो-गरीब चरित्रों की सलामती के दस्तावेजी उपन्यास की अगली किस्त.

▣ **परनारी पैनी छुरी : बाला दुबे**

अनजानी इतिहास कथाएं के अंतर्गत शाहजहां और उसकी बेटी जहांआरा की मिलीभगत से होती रही एय्याशियों का किस्सा.

▣ **गांव की कहानी : अजित कुमार**

समकालीन कथा-साहित्य में प्रस्तुत की जा रही 'भारतीय गाँव' की तस्वीर का समीक्षात्मक लेखा-जोखा.

▣ **कुछ लेखक मिलकर शुरू करें.... पर लेखक मिलें कैसे?.... साक्षात्कार के अंतर्गत––**

कथाकार, संपादक तथा प्रकाशक डा. महीप सिंह से कन्हैयालाल नंदन और डा. हरदयाल की साहित्य, संपादक और प्रकाशन जगत के बारे में बेबाक लंबी बातचीत.

पाठकों का पन्ना, ज़रिया-नज़रिया, तस्वीर बोलती है, लघुकथाएं ग़ज़लें, पखवारे की पुस्तकें, हलचल, पत्र-पत्रिकाएं, पढ़ते-पढ़ते आदि सभी स्थायी स्तंभों सहित––

सारिका

नवंबर : ८०, अंक : २
घर-परिवार और पुस्तकालय
का स्थायी महत्त्व

केवल दो रुपये में एक पूरी किताब

जीवन की छोटी-छोटी खुशियों के लिए बचत कैसे की जायें.

केनरा बैंक की बदौलत आप जीवन में छोटी-छोटी खुशियाँ हासिल कर सकते हैं; जिनका अपना अलग महत्त्व है. केनरा बैंक में **निरन्तर जमा खाता** खोलिए तथा हर महीने एक निश्चित रक़म भरिए या एक साथ बड़ी रक़म जमा कर दीजिए. बैंक आपको जल्द ही महीने दर महीने, साल दर साल आजीवन रक़म लौटायेगा और आप निश्चिंत होकर सेवा-निवृत्त हो सकेंगे. आपकी मूल पूँजी वैसी ही रहेगी. आप जब चाहें अपनी सारी रक़म एक साथ भी निकाल सकते हैं.

अधिक जानकारी के लिए केनरा बैंक की नज़दीकी शाखा में आइए. हमारी अन्य विशेष जमा योजनाएँ हैं : **कामधेनु, विद्यानिधि** और **बालक्षेम.**

निरन्तर जमा खाता

केनरा बैंक

(एक राष्ट्रीयकृत बैंक)
देश भर में 1,200 से
भी अधिक शाखाएँ.

GROWING TO SERVE
SERVING TO GROW
CANARA BANK

maa CB 2 Hin C 80

सुवैचारिकता की एक मात्र पत्रिका

'योजना'

जिसका हर अंक पठनीय और संग्रहणीय होता है

योजना आयोग की ओर से प्रकाशित सचित्र पाक्षिक पत्रिका, जिसमें आज के सामाजिक-आर्थिक मुद्दों का आकलन-विश्लेषण रहता है, सामाजिक रूढ़ियों और अंध-विश्वासों पर करारी चोट होती है और समस्याओं पर नयी दृष्टि से सोचने-विचारने की उत्प्रेरणा होती है। देश में चल रही विकास गतिविधियों की रोचक और ताजा-से-ताजा जानकारी सरल और सहज भाषा में देने वाली पत्रिका 'योजना' विद्यार्थियों, अर्थशास्त्रियों और अध्यापकों के लिए विचारों के आदान-प्रदान का एक अनूठा मंच प्रस्तुत करती है।

योजना के नियमित पाठक बनिए और वैचारिक स्तर पर देश के विकास कार्यों में शरीक होइए।

'योजना'

की चंदे की दरें

देश में :		विदेश में :	
एक प्रति	: 60 पैसे	एक प्रति	: 0.09 पौंड
वार्षिक	: 13 रुपये	वार्षिक	: 1.95 पौंड
दो वर्ष	: 22 रुपये	दो वर्ष	: 3.30 पौंड
तीन वर्ष	: 31 रुपये	तीन वर्ष	: 4.65 पौंड

विशेष छूट

- विद्यार्थियों, अध्यापकों (विद्यालय से प्रमाण-पत्र देने पर) एवं पुस्तकालयों को पत्रिकाओं के चन्दे पर 10 प्रतिशत की विशेष छूट।
- हमारी पत्रिकाओं के ग्राहकों को हमारी पाँच रुपये या अधिक मूल्य की पुस्तकें क्रय करने पर 20 प्रतिशत की छूट। परन्तु यह छूट गांधी वाङ्मय के सैट पर उपलब्ध नहीं है।

आज ही लिखें
व्यापार व्यवस्थापक
प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय
पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001

davp 80/2 16

बाथरूम की शान बढ़ायें
उसमें पैरीवेयर लगायें

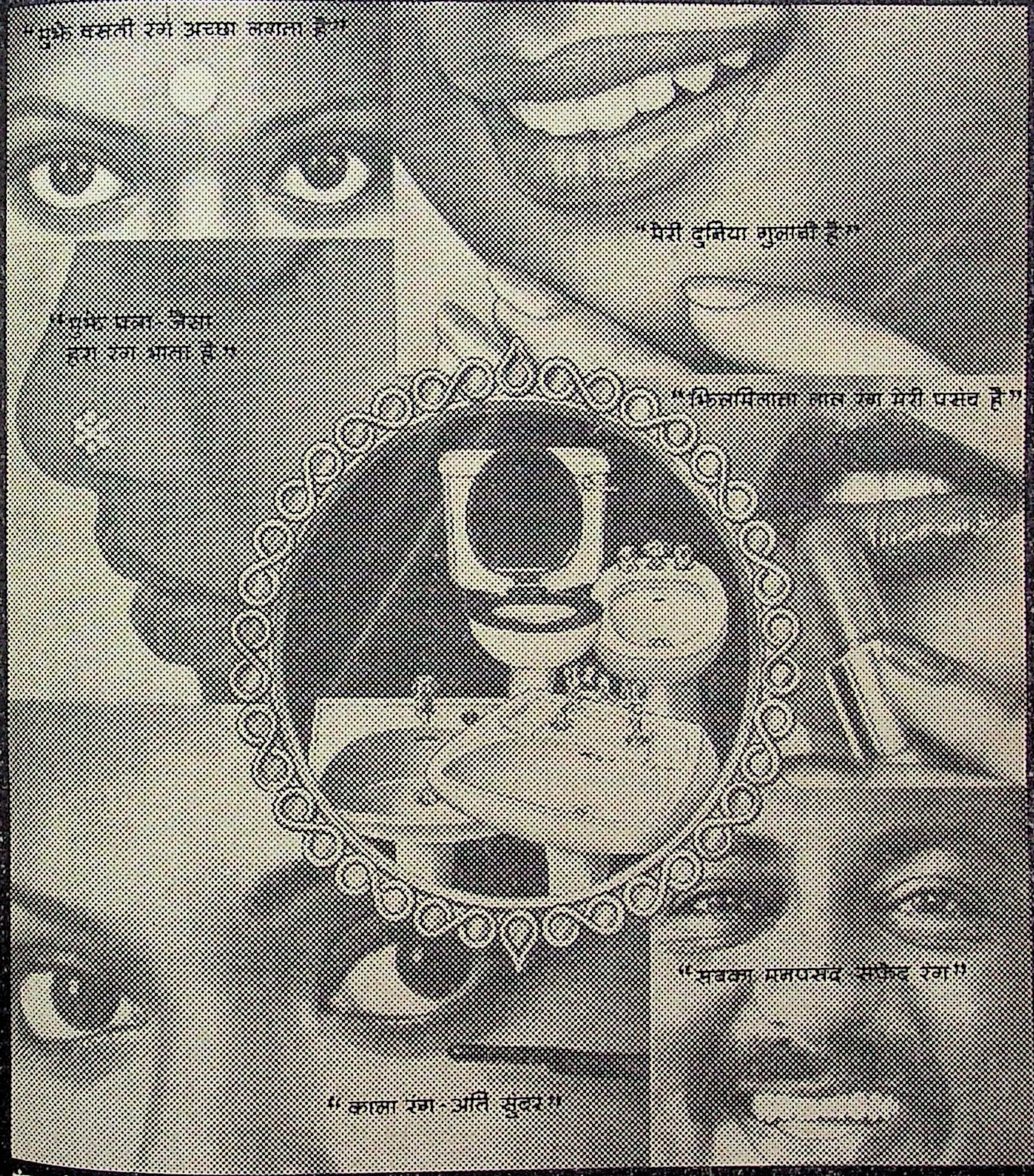
"मुझे बसंती रंग अच्छा लगता है"
"मेरी दुनिया गुलाबी है"
"मुझे पन्ना-जैसा हरा रंग भाता है"
"झिलमिलाता लाल रंग मेरी पसंद है"
"सबका मनपसंद सफेद रंग"
"काला रंग-अति सुंदर"

EID PW 3137 HIN

रंग चाहे झिलमिलाता लाल पसंद हो या पन्ना-जैसा हरा, आस्मानी नीला हो या चमचमाता सफेद – हर रंग में पैरीवेयर भारत और विदेशों में लाखों लोगों के मनपसंद हैं। सैनीटरीवेयर की पैरीवेयर श्रेणी अपने प्रकार की विशिष्ट श्रेणी है। शैली-साज, अति उत्कृष्ट, जीवनभर स्थायी और शान-अनुपम। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि सेनिटरीवेयर का अर्थ पैरीवेयर ही है।

Parryware
VITREOUS
सैरेमिक्स डिवीजन
ई.आई.डी.-पैरी (इंडिया) लि.
डेर हाउस, मद्रास ६००००१.

नव साक्षरों के लिए

किताबें

बाइसवीं राष्ट्रीय पुरस्कार प्रतियोगिता

इस प्रतियोगिता के लिए विभिन्न भाषाओं के लेखकों की रचनाएं आमंत्रित की जाती हैं. ये हैं:--आसामी, बंगाली, गुजराती, हिन्दी, कन्नड़, कश्मीरी, मलयालम, मराठी, उड़िया, पंजाबी, सिंधी, तमिल, तेलुगु और उर्दू. इस राष्ट्रीय प्रतियोगिता का उद्देश्य कम पढ़े लिखे लोगों के लिए मौलिक रचनाएं लिखवाकर लेखकों को प्रोत्साहन देना है. केवल ५० पृष्ठ तक की रचनाएं फुलस्केप पेपर पर डबल स्पेस में एक तरफ टाइप करके भेजी जाये.

पुरस्कार:--प्रत्येक भाषा के सर्वोत्तम लेखक को एक एक हजार रुपये के पुरस्कार दिये जायेंगे, जिनकी सं. ६५ होगी.

अर्हताएं :--केन्द्र/राज्य सरकार द्वारा प्रेषित रचनाएं जो पिछली प्रतियोगिताओं में भाग ले चुकी हैं स्वीकार नहीं की जायेगी. प्रविष्टि पत्र तथा नियमावली के लिए निम्नलिखित पते पर लिखें साथ ही अपना पता लिखे लिफाफे पर "नव साक्षरों के लिए साहित्य के लिए वाइसवीं राष्ट्रीय पुरस्कार प्रतियोगिता (हिन्दी/अंग्रेजी में) का शीर्षक" लिखकर भेजें. लिफाफा (२४ सेंमी × १० सेंमी.) का होना चाहिए . प्रविष्टियां हाथ वदस्ती या रजिस्टर्ड डाक द्वारा प्राप्त करने की अंतिम तिथि ३०, नवम्वर, १९८० है. प्रति प्रविष्टि का शुल्क ५ रु. है जो कि रेखांकित पोस्टल आर्डर के रूप में भेजा जाए और निदेशक, प्रौढ़ शिक्षा निदेशालय, नई दिल्ली डाकघर के नाम हो.

प्रौढ़ शिक्षा निदेशालय

पश्चिमी ब्लाक सं. ८, खंड सं. ७ दूसरी मंजिल
आर.के.पुरम्, नई दिल्ली-११००२२.

डीएवीपी ८०/२१२

ज़्यादा किफ़ायत और सफ़ेदी चाहिए
तो साबुनों को भूल जाइए, लाइए
सुपर ७७७ डिटर्जेण्ट बार
• साबुन से १½ गुना ज़्यादा शक्तिशाली, ज़्यादा किफ़ायती!
• ऑप्टिकल व्हाइटनर युक्त!!

दुनिया की नं. १
डिटर्जेण्ट
धुलाई की बार
सुपर ७७७

मैल की शामत,
सफ़ेदी की
ताक़त

सुपर 777
SWASTIK
SUPER 777
detergent washing bar

Shilpi DM 13A/80 Hin

कोलमैन ऐंड कंपनी लिमिटेड, स्वत्वाधिकारी के लिए रमेशचन्द्र द्वारा नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, 10 दरियागंज, नयी दिल्ली-110002 से मुद्रित व प्रकाशित. जनरल मैनेजर :
म तनेजा. पंजीकृत कार्यालय : डा. दादाभाई नौरोजी रोड, बंबई-400001. शाखाएँ : 7, बहादुरशाह जफर मार्ग, नयी दिल्ली-110002; 139, आश्रम रोड,
बाद-380009; 105/7ए, एस. एन. बनर्जी रोड, कलकत्ता-700014. कार्यालय : 13/1, गवर्नमेंट प्लेस ईस्ट, कलकत्ता-700069; 63, मोंटियथ रोड, इग्मोर,
00008; 407-1, तीरथ भवन, क्वार्टर गेट, पुणे-411002; 26, स्टेशन एप्रोच, सडबरी, वेंबले, मिडिलसेक्स, लंदन, यू. के., लंदन टेलीफोन : 01-903-9696.

पंजीयत सं. D-(C)-779.
पूर्व शुल्क के बिना डाक में डालने
की अनुमति-लाइसेंस सं. U-89

everest/80/PP/333-hn

पारले

नन्हे मुन्नों की
मुस्कान से आबाद है जहान

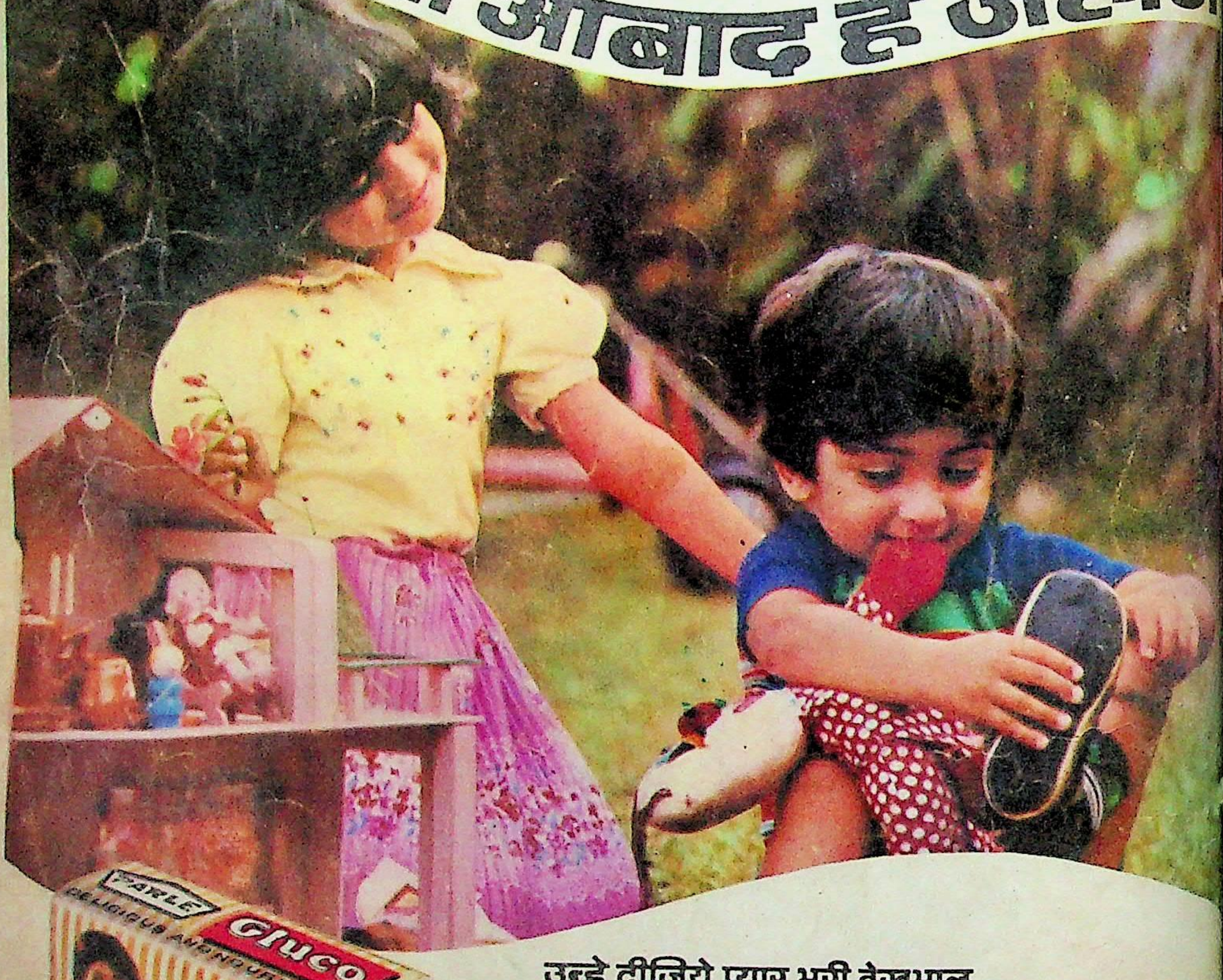
PARLE
DELICIOUS AND NOURISHING
Gluco
PARLE
Gluco
BISCUITS

उन्हे दीजिये प्यार भरी देखभाल

पारले ग्लुको– स्वाद में
निराले, शक्ति से भरपूर

दूध, गेहूँ, शक्कर और ग्लूकोज़ के
स्वाद और पौष्टिक गुणों से भरपूर.

WORLD SELECTION
वर्ल्ड सिलेक्शन
पारितोषिक विजेता

पारले ग्लुको भारत के सबसे ज़्यादा बिकनेवाले बिस्किट

पाक्षिक

सारिका

वर्ष:२०
अंक:२७३

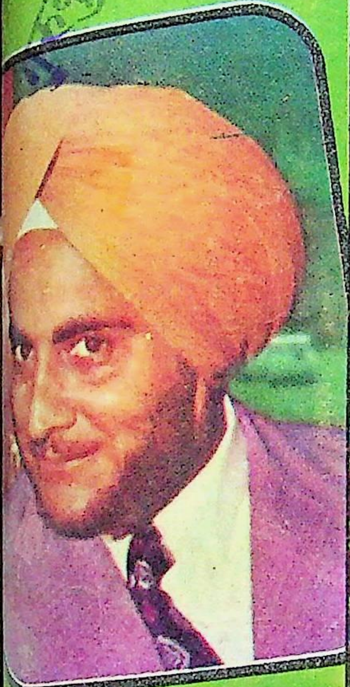

स अंक में

आधुनिक संदर्भों
पर डा॰ महीप सिंह
से लंबी बातचीत

दस कहानियां
और सभी स्तंभ

टाइम्स ऑफ इंडिया प्रकाशन
२·००

सबसे सफेद पेण्ट खरीदना है जितनी बड़ी बात, बरसों तक सफेद रहे, यह भी उतनी ही बड़ी बात.

आइए, नेरोलॅक पेण्ट्स की मदद से सही सफेद चुनिए.

अगर आप सफेद पेण्ट खरीदना चाहते हैं तो क्या चाहेंगे– सबसे सफेद, सबसे निर्मल सफेद या बरसों तक निभनेवाला सफेद?

असल में यह सब एक साथ.

इसलिए खरीदने से पहले बस इतना याद रखिए कि कुछ सफेद, डिब्बे में तो ज्यादा सफेद लगते हैं पर होते नहीं. कुछ लगाने पर सफेद दिखते हैं पर बहुत जल्दी पीले पड़ जाते हैं.

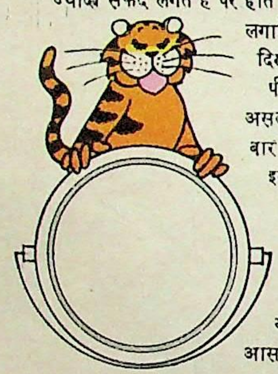

असल में, एक बार सब को इस्तेमाल किए बिना, उनमें से एक चुन पाना काफी मुश्किल है. **नेरोलॅक पेण्ट्स** यह मुश्किल आसन कर देते हैं.

1. सफेद का परीक्षण

नेरोलॅक पेण्ट्स, अपने सफेद पेण्टों को दूसरे सफेदों के मुकाबले अलग-अलग मौसमी परिस्थितियों में लगातार जांचते रहते हैं. यह सिद्ध हुआ है कि **नेरोलॅक** के सफेदों की तुलना में दूसरे सफेद जल्दी पीले पड़ने लगते हैं. सच पूछें तो **नेरोलॅक** के सफेदों के मुकाबले, दूसरे उतने सफेद हैं भी नहीं. कोई भी सफेद, उतने समय तक सफेद रहते ही नहीं.

2. उज्ज्वल रंग-छटाओं के लिए निर्मल सफेद

बहुत बार, आपकी पसंद का कोई विशेष पेस्टल शेड पाने के लिए पेण्टर, सफेद पेण्ट को उपयुक्त 'स्टेनर' से मिलाते हैं. स्पष्ट है कि प्राप्त रंग-छटा की निर्मलता, सफेद की निर्मलता पर निर्भर करती है. इसलिए विश्वास कर लीजिए कि आपने सबसे निर्मल सफेद ही खरीदा. **नेरोलॅक** के सफेदों से आपको सबसे ज्यादा निर्मल और उज्ज्वल रंग-छटाएं मिलती हैं.

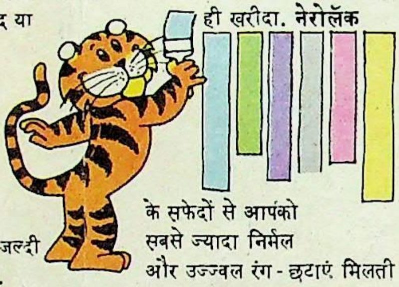

3. सफेद की श्रेणी

नेरोलॅक पेण्ट्स पेश करते हैं इन तीन वर्गों में, ऊंचे दर्जे के, सफेदों में सबसे सफेद पेण्ट.

अपनी पसंद के सफेद का नाम कहिए और मांग कर लीजिए.

- **नेरोलॅक अल्ट्रा वाइट सिंथेटिक एनॅमल**
- **नेरोलॅक वंडर वाइट एक्रिलिक इमल्शन सिलिकोन के साथ**
- **नेरोलॅक का सुपर वाइट सोल्जर ब्रॅण्ड ऑइल बाउंड डिस्टेंपर**

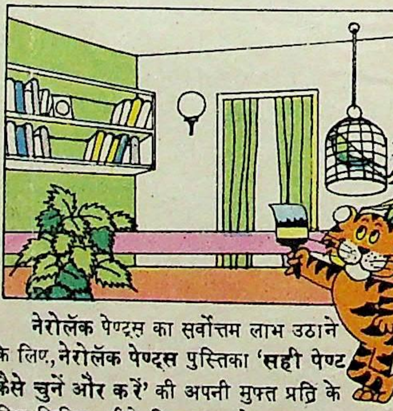

नेरोलॅक पेण्ट्स का सर्वोत्तम लाभ उठाने के लिए, **नेरोलॅक पेण्ट्स** पुस्तिका **'सही पेण्ट कैसे चुनें और करें'** की अपनी मुफ्त प्रति के लिए लिखिए. नीचे दिए कूपन को भरकर फौरन डाक से भेज दीजिए.

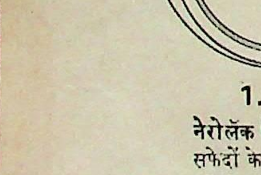

नेरोलॅक पेण्ट्स

नेरोलॅक लगाइए! रंग में आइए!!

रुपया मुझे नेरोलॅक पेण्ट्स पुस्तिका की एक हिंदी प्रति भेज दीजिए.

नाम :..
पता :..
....पिन कोड :....................

गुडलॅस नेरोलॅक पेण्ट्स लिमिटेड
बिक्री विभाग, पी. ओ. बॉक्स नं. 16322
बम्बई-400 013.

ULKA-GNP-169 HN

160-P

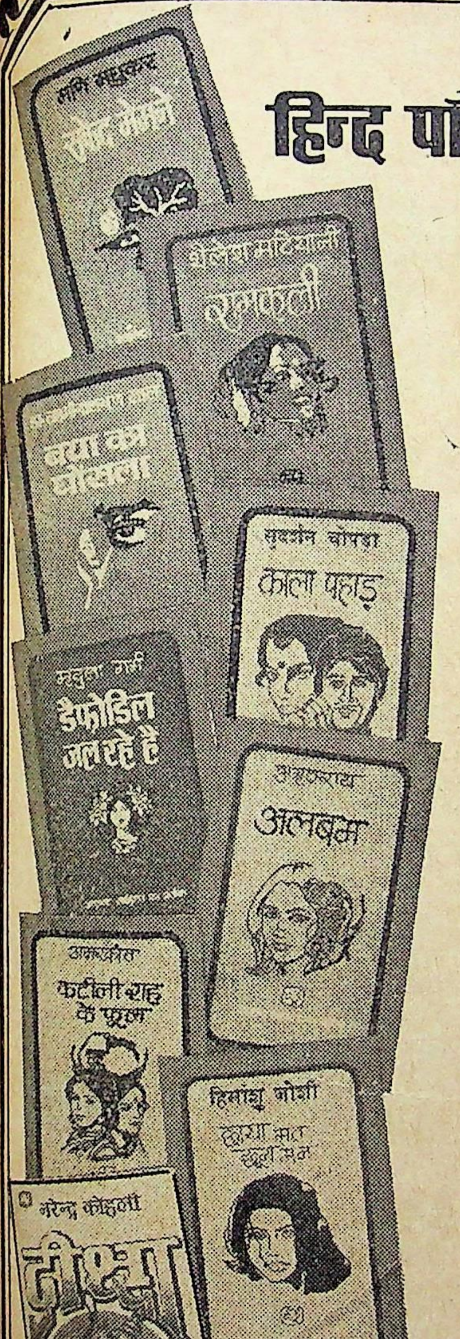
मणि मधुकर
सफ़ेद मेमने
शैलेश मटियानी
रामकली
बया का घोंसला
सुदर्शन चोपड़ा
काला पहाड़
मृदुला गर्ग
डेफोडिल जल रहे हैं
अमृत राय
अलबम
अमरकांत
कटीली राह के फूल
हिमांशु जोशी
छाया मत छूना मन
नरेन्द्र कोहली
दीक्षा

अपनी गौरवशाली परम्परा में

हिन्द पॉकेट बुक्स का एक और कदम

हिन्दी के उत्कृष्ट साहित्य का प्रकाशन

अब आपके लिए उपलब्ध हैं हिन्दी के वे श्रेष्ठ उपन्यास जिन्हें आप अवश्य पढ़ना चाहेंगे

महासागर : **हिमांशु जोशी** ४.००
कटीली राह के फूल : **अमरकांत** ४.००
मेरा अपना संसार : **नरेन्द्र कोहली** ३.००
पिता दर पिता : **रमेश बक्षी** ३.००
वापसी : **बदीउज्जमा** ४.००
अलबम : **अमृत राय** ४.००
यह भी नहीं : **महीप सिंह** ४.००
सफ़ेद मेमने : **मणि मधुकर** ४.००
रामकली : **शैलेश मटियानी** ४.००
बेघर : **ममता कालिया** ४.००
दीक्षा : **नरेन्द्र कोहली** ४.००
अवसर : **नरेन्द्र कोहली** ४.००
निशांत : **विजय तेंदुलकर** ४.००
उसके हिस्से की धूप : **मृदुला गर्ग** ४.००
डेफोडिल जल रहे हैं : **मृदुला गर्ग** ५.००
एक खाली जगह : **अमृता प्रीतम** ३.००
काला पहाड : **सुदर्शन चोपड़ा** ३.००
परिन्दे : **निर्मल वर्मा** ३.००
छाया मत छूना मन : **हिमांशु जोशी** ३.००
बया का घोंसला : **लक्ष्मी नारायण लाल** ४.००
सोमा : **सत्यकाम विद्यालंकार** ४.००

20 रुपये की पुस्तकों पर **पोस्ट फ्री** मंगाएं

हिन्द पॉकेट बुक्स

जी०टी० रोड, शाहदरा, दिल्ली-११००३२.

आप हमारे यहाँ
काम न भी करते हों
तब भी हम आपको हर माह
एक निश्चित राशि दे सकते हैं।

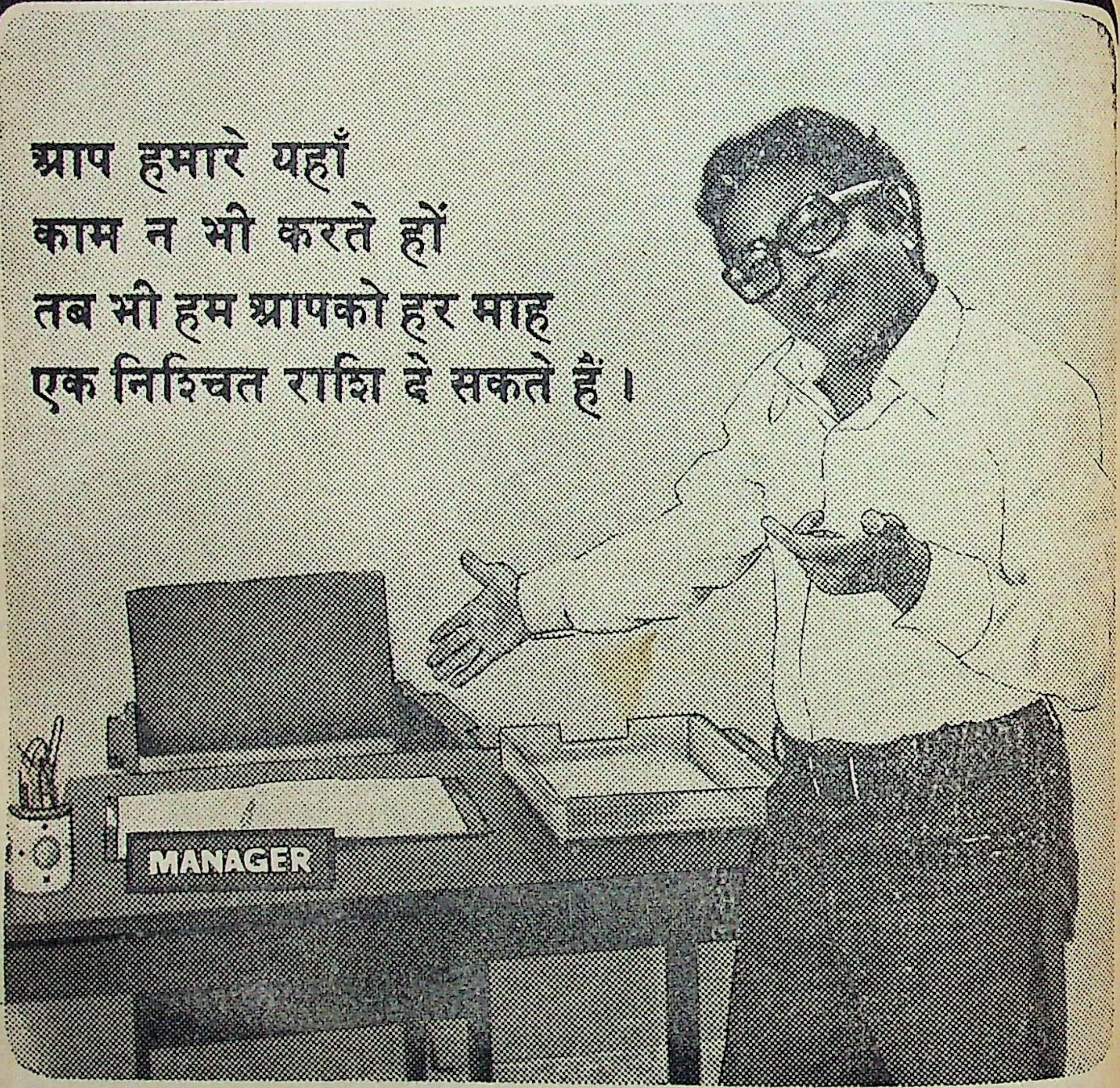

बड़ी बात !

जी नहीं ! पी एन बी की विशेष सावधि जमा योजना में खाता खोल कर आप हर माह अतिरिक्त राशि प्राप्त कर सकते हैं।

यदि आप 63 महीने के लिए 30,000 रु. जमा कराते हैं तो आपको हर माह 247.92 रु. ब्याज के रूप में मिलेंगे।

एक वर्ष में बैंक जमा तथा अन्य निवेशों पर मिलने वाले 3,000 रु. तक के ब्याज पर आयकर की छूट है।

आज ही अपना खाता खोल कर हर माह ब्याज लीजिए।

पंजाब
नैशनल
बैंक
(भारत सरकार का उपक्रम)
...भरोसे का प्रतीक!

आधुनिक दृष्टि और प्रासंगिकता ही "अक्षर" की अद्वितीयता है

'अक्षर' को ओर से रंगमंच पर बार-बार सफल और समर्थ नौ मानक नाटक

१. **खड़िया का घेरा—बार्टोल्ट** ब्रेख्ट, अनुवादक, कमलेश्वर (दूसरा संस्करण) मूल्य २० रु.
२. **आला अफ़सर** (नाटकी शैली में, गोगोल के नाटक इंस्पैक्टर-जनरल से प्रेरित) मुद्राराक्षस १२ रु.
३. **बिना दीवारों के घर :** (संपूर्ण नाटक) मन्नू भंडारी ८ रु.
४. **उत्तर प्रियदर्शी** (गीत-नाटक) अज्ञेय ४ रु.
५. **बाकी इतिहास :** बादल सरकार, अनुवादक नेमिचंद्र जैन ८ रु.
६. **कथा एक कंस की :** दया प्रकाश सिन्हा १० रु.
७. **इतिहास चक्र और ओह अमेरिका** (दो नाटक) दया प्रकाश सिन्हा ७ रु.
८. **एक कम्युनिस्ट का जन्म :** तोप्पिल भासी, अनु. लक्ष्मण शास्त्री ६ रु.
९. **मूलधन**—तोप्पिल भासी, अनुवाद : लक्ष्मण शास्त्री ६ रु.

नाट्य-समीक्षा पर दो विलक्षण पुस्तकें

१. **एब्सर्ड नाट्य परंपरा :** डा. रामसेवक सिंह, आधुनिक नाट्य आंदोलन का विशद परिचय ८ रु.
२. **हिंदी नाट्यकारों के नाट्य सिद्धांत :** डा. निर्मला हेमंत
हिंदी नाटककारों की वृहद परिचयात्मक समीक्षाएं और नाट्य-सिद्धांतों का विश्लेषण ५५ रु.

'अक्षर' को ओर से कथा-समीक्षा पर प्रस्तुत हैं दस अपरिहार्य पुस्तकें

१ **औरों के बहाने** (व्यक्तित्व संश्लेषण) राजेंद्र यादव ३५ रु.
२. **18 उपन्यास** (महत्त्वपूर्ण उपन्यासों पर समीक्षाएं) राजेंद्र यादव ३५ रु.
३. **उपन्यास : स्वरूप और संवेदना** (औपन्यासिक प्रवृत्तियों का विश्लेषण) राजेंद्र यादव ३५ रु.
४. **प्रेमचंद की विरासत** (चिंतन और निबंध) राजेंद्र यादव २५ रु.
५. **एक दुनिया : समानान्तर** (स्वतंत्रता के बाद की कहानियां) राजेंद्र यादव ४० रु.
६. **भारतीय-अंग्रेजी कथा-साहित्य** (भारत में लिखे जा रहे अंग्रेजी कथा-साहित्य की समीक्षा) डा. सेवक सिंह ३० रु.
७. **कहानी : रचना प्रक्रिया और स्वरूप :** (नितांत मौलिक दृष्टि से हिंदी कहानी की पड़ताल) बटरोही १० रु.
८. **आंचलिकता और हिंदी उपन्यास :** डा. नगीना जैन ३५ रु.
९. **आधुनिक हिंदी-कहानी : समाजशास्त्रीय दृष्टि** (पहली बार समाजशास्त्रीय दृष्टि से हिंदी कहानी की विस्तृत जांच) डा. रघुवीर सिन्हा १० रु.
१०. **हिंदी कहानी : अलगाव का दर्शन :** डा. चार्ल्स गॉर्डन रोडरमल
अनुवाद : अर्चना सिन्हा
भूमिका : डा. बच्चन सिंह ३० रु.

अक्षर प्रकाशन प्रा० लि०
२/३६, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-११०००२

सरदर्द
ग़ायब

सिर्फ़ एक
सेरिडॉन से
ट्रेडमार्क 'रोश'

शक्तिशाली
सुरक्षित
सिर्फ़ एक काफ़ी है.

RP 5977

आवरण : फाल एस. गिरोटा

ारिका

कहानियों और कथा-जगत की जीवंत पाक्षिकी

वर्ष : 20; अंक : 273; 16 से 30 नवंबर, 1980

कहानियां

31. अपनी जमीन : **मेहरुन्निसा परवेज़**

34. आखिरी सांस का किराया : **राबिन शॉ पुष्प**

44. कच्ची सड़क : **अब्दुल बिस्मिल्लाह**

48. कुत्ते की मौत : **मृणाल पांडे**

51. सजा : **भगवान अटलानी**

54. बीच रात में (मैथिली) : **शैवाल**

57. सभ्य लोगों का दर्द : **रज्जन त्रिवेदी**

62. मुरली : **आलोक मेहता**

66. घायल घोड़ा : **हरि मोहन**

उपन्यास

20. कोई तो (अंश) : **विष्णु प्रभाकर**

27. खुदा सही सलामत है (धारावाही) : **रवींद्र कालिया**

साक्षात्कार

12. "आज के पाठक की रुचि बहुत प्रयोगधर्मा कहानी पढ़ने में नहीं है!"

15. "सांप्रदायिकता से जुड़ना ही होता तो मैं अकाली न बन जाता!" डा. हरदयाल और कन्हैयालाल नंदन की डा. महीप सिंह से लंबी बातचीतें

ग़ज़ल

53. लालजी 'आलम' हथगांवी

विशेष

24. अनजानी इतिहास कथाएं—पर नारी पैनी छुरी : **बाला दुबे**

41. गांव की कहानी : परिचर्चा-परीचर्चा : **अजित कुमार**

लघु रचनाएं

23. तीस रुपये : **छाया वर्मा**

33. धरम की बात : **विमल किशोर**

36. सौ रुपये (रूसी) : **ईवान बुनिन**

37. सामाजिक-असामाजिक: **कुलदीप जैन**

43. सीढ़ियां : **प्रियंवद**

60. स्थायी : **सुरेश अवस्थी**

64. भगवान के नाम पर : **मार्टिन जॉन 'अजनबी'**

अन्य आकर्षण

8. पाठकों का पन्ना

11. ज़रिया-नज़रिया

26. पढ़ते-पढ़ते : किट्टू

38. तस्वीर बोलती है : **लवलीन**

65. गपशप : आॅस्कर वाइल्ड

68. पखवारे की पुस्तकें

70. हलचल

71. पत्र-पत्रिकाएं

71. उनने कहा था

पादक
न्हैयालाल नंदन
उप-संपादक :
नारायण मुद्गल
संपादक :
वतरा, सुरेश उनियाल,
राम, अरुण वर्द्धन
: रवि शर्मा

पाठकों का पत्र

ऐसा कई बार हुआ है

सितंबर के प्रथम अंक में फिराक़ साहब का मायूस कर देने वाला गैररस्मी 'इंटरव्यू' पढ़ने को मिला. इसी प्रकार का, इलाहाबाद के एक पत्र में बातचीत के दौरान सन् 44–45 के आसपास भी, उन्होंने अंतर्विरोधों से भरा इंटरव्यू दिया था. वहां भी उन्होंने भारतेंदु से लेकर निराला तक के साहित्य को 'घटिया और बचकाना' करार दिया था. 'हिंदी के बेकन' आ. शुक्ल सरीखे निबंधकार के लिए इन्होंने कहा था कि "उनसे अच्छा निबंध कालेज के विद्यार्थी लिख लेते हैं." साथ-साथ यह भी कि "कोई नयी चीज देना तो दूर, शुक्लजी जैसे आलोचकों में यह तमीज भी न थी कि ग्रियर्सन वगैरह की लिखी आलोचना समझ भी सकें." ठीक उसी प्रकार के बयान से हिंदी के आद्याचार्यों, भारतेंदु हरिश्चंद्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा भारत-भारती के प्रणेता, मैथिलीशरण गुप्त को 'भारतीयता का दुश्मन' कहकर पुनः उसी 'हिंदी विरोधी मानसिकता' को फिराक़ ने दुहराया है. हिंदी से ईर्ष्या और रंजिश की बानगियां फिराक़ साहब अपनी जिंदगी में कई बार गोष्ठियों, परिचर्चाओं, पूज्य निराला सरीखे संदर्भ में, अभद्र गाली-गलौजों के रूप में भी दे चुके हैं.

▣ **शिवदत्त चतुर्वेदी, वाराणसी.**

पाये का बदल

फिराक़ साहब शायद यह भूल गये कि उन्होंने हिंदी की बदबू न केवल स्वयं सूंघी है, वरन उसे उर्दू की ग़ज़ल को भी सुंघवाया है. फिराक़ साहब की शायरी में अगर अंग्रेजी से निखार आया है तो हिंदी ने भी उसे कहीं न कहीं जरूर महकाया है! फिराक़ साहब से पूछा जाये कि उन्हें अपनी ग़ज़लों में—रस, रसमसाई, सुहागरात, किरन, लोरियां झिझक, पुरवाइयां और गुत्थी जैसे हिंदी के या हिंदी से जन्मे शब्दों का प्रयोग करते समय उबकाई क्यों नहीं आयी.

फिराक़ साहब (ईश्वर उन्हें और लंबी उम्र दे) हिंदी साहित्य को पढ़कर देखें. बोधा कई सौ साल पहले नायिका के अधरों की उपमा 'वीरबहूटी' से दे चुके हैं. फिराक़ साहब अपनी खुशबूदार ज़ुबान के ज़रिये अभी इस पाये का बदल नहीं दे सके हैं. फिर भी किसी भाषा अथवा साहित्य विशेष के प्रति हमारी घृणा हमारी मानसिकता की विकृति का उद्दीपन है. दुनिया के श्रेष्ठतम साहित्यकारों में तुलसीदास और डर्टियेस्ट लिपि और बदबूदार जबान—हिंदी—दो विरोधी मत फिराक़ साहब को समझने में उलझन पैदा कर रहे हैं.

▣ **ओम राज, रामपुर.**

बेबाक स्वीकृति

सितंबर 80 की 'सारिका' देखने को मिली. चौरासी वर्षीय जनाब फिराक़ की बेबाक स्वीकृति 'बदबूदार, अवैज्ञानिक जबान और डर्टियेस्ट लिपि' में विश्व का श्रेष्ठतम साहित्यकार (तुलसी) पैदा करने की सामर्थ्य है.

▣ **साधु शरण, मुजफ्फरपुर (बिहार).**

भारतीयता के रक्षक कौन!

मैथिलीशरण गुप्त, भारतेंदु और महावीरप्रसाद द्विवेदी यदि भारतीयता के दुश्मन थे तो फिर भारतीयता के रक्षक कौन हैं? क्या वे लोग, जो खूबसूरत लड़कों को अपनी अर्दली में रखकर साहित्य सृजन कर पाते हैं. हिंदी वाले इस तरह की गालियां क्यों बर्दाश्त करते हैं?

▣ **ईश्वरचंद्र मिश्र, जबलपुर.**

हां, ध्यान से सुनना!

'हां, ध्यान से सुनना ये सदी बोल रही है.' फिराक़ गोरखपुरी के साथ उमाकांत मालवीय की एक गैररस्मी बातचीत फिराक़ को समझने के लिए पाठकों को खुली दृष्टि और पूर्वग्रहरहित संवेदन प्रदान करती है. निश्चय ही इस साक्षात्कार से फिराक़ का व्यक्तित्व, सोच का धरातल और कुछ वैचारिक सवालात उभरकर पाठकों के समक्ष नये रूप में आये हैं.

▣ **राजेंद्र रंजन, गोरखपुर.**

तुलसी बुरा न मानिए...

सारिका, 1 सितंबर, 1980 में उमाकांत मालवीय द्वारा फिराक़ साह साक्षात्कार पर इतनी तीव्र प्रति हुई है कि हिंदी दिवस पर 'सारि प्रतियां जला दी गयीं. शाम को कि विद्यालय में छात्रों ने फिराक़ का पु जलाना चाहा, पर समझाये जाने पर गटर में फेंक दिया गया. फि साहब तुलसीदास को सबसे बड़ी लब्धि मानते हैं—यह मानस का ही प्र है कि फिराक़ हत्यारे, चोर, डकैत, पर गमन, बलात्कार, कालाबाजारी, त रंडीबाजी और अप्राकृतिक मैथुन को नहीं मानते?—अनेक पाठक उन्हें बुरा कह सकते हैं, पर वे शायद जानते हों : **तुलसी बुरा न मा जो गंवार कहि जाय.**

▣ **डा. विश्वभावन देवलिया, जबल**

धर्म के नाम पर

हमारे अस्पताल में हर दिन मौतें होती रहती हैं, परंतु आज जो दो मौतें हुई हैं, उन्होंने मुझे आपको खत लिखने को मजबूर कर दिया है.

तेरह अक्तूबर की रात को एक मोटर साइकिल पर एक नौजवान अपनी पत्नी और बच्ची के साथ रामगढ़ से रांची आ रहा था. रास्ते में एक जगह सड़क के बीच में दुर्गापूजा के गेट बनाने के लिए सड़क पर तीन-चार गड्ढे खोद दिये गये थे. उसी में फंसकर मोटर-साइकिल दुर्घटनाग्रस्त हो गया. नौजवान और उसकी पत्नी की मौत आज हो गयी है, परंतु बच्ची को बचा लिया गया. पूजा जिस धूम-धाम से होनी थी, हो रही है. पुलिस वाले इसे 'धार्मिक कामों में अड़चन डालना' कहकर टाल गये. मैं सबकी बात मान लेता हूं, परंतु यह बच्ची समझती ही नहीं, बस रोती है, मां-बाप को खोजती है.

आपको खत लिखने का कारण है कि आगे से धर्म के नाम पर बच्चे अनाथ न बनाये जायें.

▣ छवि विश्वास, रांची.

दा खैर करे

फ़िराक़ साहब बड़े हैं. बड़ों की बात जानें. मैं अपनी छोटी-सी बुद्धि से समझ नहीं पा रहा हूं. हिंदी वालों को देना उनके बड़प्पन को बढ़ाता है ? खुदा खैर करे!

मधुर, सिवनी (म. प्र.)

रेबाजार पेशी

मुखपृष्ठ पर रसीली युवतियों के चित्र अंदर के पृष्ठों पर कमलादास जैसी कथित बेवाक लेखिका के अश्लील ों को उछालकर आपने हिंदी साहित्य प्रबुद्ध पाठक-पाठिकाओं का सचमुच बड़ा किया है.

कमलादास कहती हैं, **'मेरी कहानी'** ों में काफी लोकप्रिय है. भारत में भी लिता', 'लेडी चैटरली का प्रेमी,' 'रोम नगरवधू' आदि काफी लोकप्रिय हैं. का कारण है सेक्स की खुल्लमखुल्ला —और कोई खास बात नहीं. ने कहा है कि जर्मन प्रकाशक उनकी तस्वीरें विदेशों में प्रकाशनार्थ ले गये उनकी किताब फाइव स्टार होटलों में जायेगी. क्या उन खूबसूरत तस्वीरों नुमाइश के सहारे कमलादास अपने क्षेत्र का विस्तार करना चाहती हैं? मैं नहीं जानता विश्व की किसी संभ्रांत का ने अपनी प्रसिद्धि के लिए इस र अपने आपको सरेबाजार पेश किया

अमय कुमार अंबष्ठ, जमशेदपूर

री चुप क्यों हैं?

दास की 'मेरी कहानी'
मात्र
आवारा औरत की
गी और जलालत है,
समाज पर ठोक दी गयी है
विख्याति और बड़प्पन के लिए.
मर्द के जुर्म के खिलाफ तो
गला फाड़ रही है,
नारी, नारी पर जो अन्याय
रही है, उसके लिए
क्यों मौन है?

ओमप्रकाश शर्मा, चंडीगढ़

अग्नियात्रा के मुसाफिर अधिकांशतः युवा हैं!

आपने लिखा है. . .हम उन सभी के साथ हैं, जो इस दौड़ में पसीने-पसीने हैं, हांफ रहे हैं, मगर दौड़ रहे हैं, समय की धारा के बरखिलाफ उसकी सतह से चाहे आध इंच सही, ऊपर उठकर धारा को काट रहे हैं. . .उन मानवीय मूल्यों के मसीहाओं को शत् शत् नमन्, जो भले ही मजबूरी में सही, आग में कूद तो रहे हैं. . .फिर आपने जनाब शमीम फारुकी की गजल कही है.

मैं यह कहूंगा कि इस चिरंतन अग्नियात्रा के मुसाफिर अधिकांशतः युवा ही हैं. हां, वही युवा जो इस प्रज्जवलित अग्निपथ पर निरंतर चलते, दौड़ते और हांफते हुए भी अंधकार के एक गहनतम वर्तुल में कैद हैं, क्योंकि सुविज्ञ मानव समाज का जो तथाकथित 'सफल-स्थापित' चिंतनशील तवका (बुद्धिजीवी वर्ग) है, वो तो संघर्ष, अवाम और जद्दोजहद के नारों को हवा में उछालता हुआ स्वयं आरामपूर्वक किसी महावृक्ष की शीतल छाया में श्वास ले रहा है, सुस्ता रहा है, विश्रामरत है. विश्रामोपरांत जब-तब वो उसी महावृक्ष की छाया तले से कुछ बोल-बक देता है, किंतु जीवन के गहन तम-तोम से भरी हुई दुस्सह अग्नियात्रा के साक्षी यही युवा हैं, जो बढ़ रहे हैं, चल रहे हैं, घोर अंधकार के मध्य पवित्र अग्निपुंज की नाईं जल रहे हैं, और उसी के आलोक में दौड़ रहे हैं, हांफ रहे हैं, गिर रहे हैं, उठ रहे हैं, खो रहे हैं, बो रहे हैं—मगर किसी भी कीमत पर निरंतर चल रहे हैं. कहना यही चाहता हूं कि 'महावृक्ष की छांह' तले विश्रामरत (नितंर वर्ण-बुद्धिविलास करता हुआ) बुद्धिजीवी खेमा क्या इन अग्निवाहकों के अग्निपथ में कहीं किसी लघुतर वृक्ष की छांह प्रदान कर सकेगा! जिसके तले रुककर, सुस्ताकर, वो अग्निपुत्र पल दो-पल के लिए ही सही अपनी खोयी हुई तथा बेहद थकी हुई जीवनी-शक्ति में नवजीवन संचार कर सके, अपने पथ का पाथेय जुटा सके. हां 'दुष्यंत' के लफ्जों में कहूं तो वैसी 'छांह' की आस' इन युवाओं को कदापि नहीं, जहां :

(यहां) दरख्तों के साये में धूप लगती है,
चलो यहां से चलें और उम्र भर के लिए.

यह एक ध्रुव सत्य है कि अग्निपथ के इस 'शाश्वत मुसाफिर' के जीवन की डोर तक एक दिन यूं ही इसी अग्नियात्रा के बीच चलते, दौड़ते, भागते और हांफते हुए किसी भी अ-विश्रामस्थली पर सहसा टूट जाती है, एक जीवित मर्सिये को शेष छोड़कर! तो क्या यह साधन-संपन्न बुद्धिजीवी-समाज अपने गहन मनन और चिंतन की सद्यप्रवाहिता निर्झरिणी के जल में गोते लगाकर उस अग्निवाहक की जीवन डोर को पकड़ने का यत्न भी करेगा. और करेगा तो कब?

▣ सिद्धार्थ रेणु, लिटिल थियेटर ग्रुप, कोपरनिकस मार्ग, नयी दिल्ली

मुद्राराक्षस के अज्ञान का इलाज

'सारिका' वर्ष : 20; अंक : 269 में श्री मुद्राराक्षस से विनयदास की बातचीत 'साक्षात्कार' के अंतर्गत पढ़ने को मिली. कोई भी लेखक अपनी व्यक्तिगत धारणा बनाने के लिए स्वतंत्र है, किंतु जब उसका कोई कथन सार्वजनिक उपयोग हेतु प्रकाशित किया जाता है, तब उसमें यथार्थता एवं तथ्यात्मकता अवश्य होनी चाहिए.

श्री मुद्राराक्षस ने संस्कृत में निहायत बेहूदा भी देखा और मूल्यवान भी. वेद उनको बेहूदी रचनाएं, गाने भर लगे. यह वही कह सकता है, जिसने वैदिक साहित्य का दूर से भी दर्शन नहीं किया. धर्म, दर्शन और आचार संबंधी वेद-पद्यों को छोड़ भी दिया जाये तो वाक्सूक्त सौमनस्य सूक्त, पृथिवी सूक्त आदि ऐसे असंख्य पद्य हैं, जिनमें जन साधारण के मन की आवाजें सुनी जा सकती हैं. अगर ये सभी बातें बेहूदी हैं तो फिर सलीके की बातें क्या होंगी? अज्ञान को विज्ञान मानने वालों का कोई इलाज नहीं.

वैसे यह ठीक भी है, जो पोर्नोग्राफी को देखते-देखते उसमें अच्छी और बुरी की तमीज पैदा कर सके और केवल उत्तेजनावश धार्मिक कृति से उसे अच्छी मान सके तथा जो अतीत को अपनी इच्छानुसार परिवर्तनीय भी मान ले, ऐसे विद्वान (?) के द्वारा कुछ भी कहा जाना संभव है.

▣ कृष्णकांत चतुर्वेदी, जबलपुर

छपना जनवादियों का रँगीन पत्रिकाओं में

सारिका, अंक 270 में आपने किन्हीं श्री हरीश नवल का पत्र प्रकाशित किया है–'–छद्मनाम लेखन की नैतिकता का सवाल'. वैसे मैं इस गोष्ठी में शामिल नहीं था, लेकिन श्री प्रेम जनमेजय द्वारा उठाये गये तीन प्रश्न विचारणीय अवश्य हैं. प्रत्येक ईमानदार लेखक, संपादक, पाठक को इस विषय पर बात करनी चाहिए.

यह सच है कि छोटी पत्रिकाएं या स्पष्ट कहिए कि तथाकथित जनवाद का ढोल पीटने वाली पत्रिकाएं और उनके रजिस्टर्ड लेखक, जो बड़ी पत्रिकाओं को पूंजीवादी प्रतिष्ठानों की रंगीन, कुख्यात, चटखारे लेने वाली पत्रिकाएं बताते हैं, वे भी स्वयं अपनी पत्रिकाओं के मोटे-मोटे विशेषांकों को पुस्तकाकार में बाइंड कराकर ऊंचे मूल्यों पर बेचते हैं और लेखक को पारिश्रमिक या रॉयल्टी तो दरकिनार, पुस्तक की एक प्रति तक नहीं भेजते हैं. उस समय उनका शोषण और अत्याचार का नारा खोखला साबित होता है.

इन्हीं पूंजीवादी प्रतिष्ठानों की पत्रिकाओं के विरुद्ध जिस आंदोलन को चलाने की बात बार-बार अनेक जनवादी पत्रिकाओं के संपादकीय तथा विभिन्न लेखों और जनवादी सम्मेलनों में उठायी जाती है, वह कभी कोई रुख नहीं पकड़ पाया. उसके पीछे भ्रष्ट तथाकथित जनवादियों के गलत मंसूबे हैं. सच तो यह है कि वे स्वयं भी इन रंगीन पत्रिकाओं में छपने के मोह से मुक्त नहीं हैं. जो किसी पार्टी के सदस्य हैं, उनकी मजबूरी है कि वे स्वयं अपने नाम से इन पत्रिकाओं में नहीं छप सकते, लेकिन पैसा उन्हें भी चाहिए. वे या तो अपनी पत्नी के नाम से या फिर छद्म नाम से लिखते हैं. अगर अब नहीं छपते हैं तो वे ही लेखक-संपादक हैं, जो किसी जमाने में सिर्फ लेखक ही थे और इन्हीं रंगीन कुख्यात पत्रिकाओं में धड़ाके से छपते थे. आज वे पार्टी के ठोस मेंबर हैं. आज उनका नाम है, पैसा है, कार है, बंगला है, पुस्तकें हैं, रायल्टी है. आज वे पार्टी के पैसे से जनवादी पत्रिका निकालते हैं और जनवादी लेखकों की पाठशाला भी चलाते हैं. जिसका पहला सबक है नये लेखकों के लिए कि उन्हें इन पूंजीवादी पत्रिकाओं में नहीं छपना है. दूसरे वे लेखक-संपादक हैं, जिनका लेखन कभी दमदार था ही नहीं. वे शुरू से ही कलम के जरिए और अपनी आग उगलती जनवादी पत्रिका के माध्यम से क्रांति कर रहे हैं और रंगीन पत्रिकाओं में छपने वाले लेखकों को—पूंजीपतियों का भड़वा, दलाल बता रहे हैं. लेखिकाओं को बुजुर्वा लिफाफेबाज तथा डा. धर्मवीर भारती, कन्हैयालाल नंदन, मनोहरश्याम जोशी की आंखों में सुरमा लगाने वाली लेखिकाएं बता रहे हैं.

श्री प्रेम जनमेजय की इस बात से मैं सहमत हूं कि एक ईमानदार लेखक को किसी पार्टी का 'सिम्पेथाइजर' तो होना चाहिए, पार्टी का मेंबर कतई नहीं. वरना उसे हर कहानी का अंत पार्टी के मैनीफेस्टो के परिच्छेद फलां-फलां के मुताबिक ही रखना पड़ेगा, वरना कहानी बहक सकती है. दरअसल, इस तरह के मुखौटे भ्रष्ट मार्क्सवादी लेखकों ने ही लगा रखे हैं.

कितनी लघुपत्रिकाएं हैं, जो नये लेखकों को छापती हैं. वहां भी वही हिसाब है, तू भी संपादक, मैं भी संपादक, तू मुझे छाप, मैं तुझे छापूं. और कोई न छापे तो न सही.

▣ **विश्वरूप मोइत्रा, कानपुर**

ऐसा याद नहीं पड़ता

सारिका के 'एक नया नाम' में जगह पाने वाले नाम कहने को तो नये होते हैं, पर जैसी उम्दा चीजें वे दे जाते हैं, वह किसी पुराने की 'चीज' की बनिस्बत कुछ कम नहीं होती. पिछले दो अंकों में ऐसे दो पात्रों (ब्लैकर और हिजड़ा) पर युवा हस्ताक्षरों की कहानियां पढ़ने को मिलीं, जिस पर किसी स्थापित कलमकार ने कभी कलम चलायी हो, ऐसा याद नहीं पड़ता.

एक ओर जहां वेद प्रकाश की 'तीन का पांच' (अंक 268) का ब्लैकर 'छेदी दा होते तो. . .' कहकर हमारे विचारों को मथकर एक आदमकद-सा सवाल खड़ा कर देता है, वहीं सुभाष अखिल ने कुदरत की बेरहमी का मिसाल, समाज के सबसे अधिक अपेक्षित और हास्यास्पद पात्र 'दरमियाना' (अंक 270) में मार्मिकता के साथ पेश कर बहुत सारी हमदर्दी हमसे उगलवा ली है.

▣ **मार्टिन जॉन 'अजनबी' भोजूडीह**

मानवीय मूल्यों के मसीहा : तीन

अभी पिछले हफ्ते मदुरै स्टेशन पर 'सारिका' के बारे में सहज पूछताछ करते हुए 'सारिका' के बजाय 'सारिका' का ऐसा पाठक मिल गया जो पेशे से राजनीति करता था लेकिन फुरसत के वक्त कुछ सोचता-पढ़ता भी था. उसे मेरी इस अवधारणा से सख्त ऐतराज था कि समय को कभी ठहराया जा सकता है, मुझे इस ऐतराज पर खुशी हो रही थी कि दूर-दराज के तमिलभाषी क्षेत्र में, और वह भी एक राजनीतिक नेता द्वारा, इतिहास के संघातों और समय की अप्रतिहत प्रवहमान गति के वैचारिक मुद्दों पर टिप्पणी की जा रही थी. राजनीतिक बंटवारों से भाषा और साहित्य के सवालों को तौलने वालों ने यह धुंध फैला रखी है कि तमिलनाडु में हिंदी का विरोध है. यहां बात विचित्र थी कि उसी तमिलनाडु का एक राजनीतिक नेता हिंदी की एक पाक्षिक पत्रिका में व्यक्त विचारों पर अपना मंतव्य दे रहा था. मेरी आंखों के आगे राजनीति झूठी पड़ रही थी, उसके पीछे का सत्य उभरकर सामने आ रहा था : "आप संपादक हैं, फिर भी आप समय के ठहरने की वकालत कर रहे हैं. यह प्रगति का नहीं, प्रगति के विरोध का द्योतक है. आप आग में कूदने वालों के प्रति आदर व्यक्त कर रहे हैं जबकि यह एक तरह के आत्मदाह को खुला आमंत्रण है. क्षमा करें, मैं इस आत्मदाह को स्वीकार नहीं कर पाया."

मैं वैचारिक मतभेद रखते हुए भी ऐसे प्रबुद्ध पाठकों को

ज़ाविया-नज़रिया

अपना नमन देता हूं, जो सार्त्र की तरह समाधान से अधिक महत्त्व सवालों को देते हैं. सवालों की सर्जना समाधान की तलाश का पहला बिंदु होती है लेकिन मैं फिर विनम्रतापूर्वक निवेदन करना चाहता हूं कि समय की अप्रतिहत, प्रवहमान धारा से जो कालखंड हम अपने लिए काटकर ठहरा लेते हैं वही हमारा इतिहास बनता है, वही हमारे लिए अर्थवान है, बाकी सिर्फ एक निरंतरता की खाना पुरी है. अभी पिछली यूरोप यात्रा के दौरान मैंने बुडापेस्ट कला संग्रहालय में उन्नीसवीं शती का एक ऐसा चित्र देखा था जिसमें हंगरी के एक राजनीतिक बंदी को स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करने के अपराध में सींखचों के पार दिखाया गया था. उससे मिलने के लिए उसकी बेटी आयी हुई है, जो अपने पिता को बंदी देखना सह नहीं पाती और फूट पड़ती है. अश्रुधारा रोकने के लिए उसने चेहरे को रूमाल से ढक लिया है जबकि बंदी का चेहरा सामने है और सामने से पड़ रहे प्रकाश में उसकी डबडबायी आंख से ढुलका हुआ एक आंसू का कतरा आंख की कोर से बाहर ठहर गया है. इसके चित्रकार हैं—बालित (1802-1868). मुझे याद है कि थोड़ी देर तो मैं उस आंसू में ठहरा हुआ दर्द बर्दाश्त कर पाया था, लेकिन फिर वह क्षण मेरे लिए बर्दाश्त से बाहर हो गया था. हंगेरियन इतिहास का वह क्षण जिसे उस उन्नीसवीं शती के चित्रकार ने अपने जेहन पर ठहराकर कैनवास पर उतार दिया था, अभी तक मेरे जेहन पर आकर ठहरा हुआ है. संवेदना की तरल सतहों पर समय का यही ठहर जाना तो है जो सदियों तक सोच की धारा को दिशा देता है, जिसे मैंने 'कौम की जरूरत के अनुरूप शक्ल देकर बहने को मजबूर करना' कहा था. कैसे मानूं कि समय का वह ठहरा हुआ हिस्सा प्रगति का विलोम बिंब देता है.

एक समय था, जब प्रगतिशीलता का दायरा काफी बड़ा था. जो भी लेखक लीक से हटकर सामाजिक उत्थान के प्रति निष्ठा व्यक्त करता था, उसे प्रगतिशील मानने में ऐतराज नहीं होता था. लेकिन धीरे-धीरे हम प्रगतिशीलता को सिर्फ अर्थतंत्र के घेरे में कैद करके छोटा करते चले गये और आज उसे एक निश्चित राजनीतिक विचारधारा का पर्याय बनाकर रख दिया गया है. हमें देखना यह है कि हमारी प्रगतिशीलता गति की जड़ता का पर्याय बनकर भी न रह जाये. जीवन को समग्रता में देखने की हमारी दृष्टि हमसे छिन न जाये. विवेक के सारे रास्ते उसी दृष्टि को पाने का उपक्रम हैं. और यह उपक्रम जारी रख सकना आज आसान नहीं रह गया. यह समाधान की तलाश का उपक्रम है और इस उपक्रम में चलना 'तलवार की धार पै धावनो' से भी ज्यादा खतरनाक आग के दरिया में कूदना है. जाहिर है कि आग के दरिया में कूदना और उससे जूझना, भले ही वह मजबूरी में हो, कोई आसान काम नहीं होता. यही होता है. धारा के बरखिलाफ लड़ना. समय उन्हीं अग्निपुत्रों को अपनी विरासत का हकदार मानता है जो उससे टक्कर लेते हैं. अपनी पहचान की तलाश के लिए समय से टकराने की इस प्रक्रिया को मैं 'आत्महंता योग' कैसे मान लूं, समझ नहीं पाता. अगर अंधकार से प्रकाश की जययात्रा का आलेख हमें सचमुच तैयार करना है तो इस प्रक्रिया से गुजरना ही होगा. वरना करते रहेंगे हम 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' का जाप, मनाते रहेंगे 'ज्योति के पावन पर्व', अंधेरा टस से मस होने का नाम तक न लेगा.

ये पंक्तियां लिखते-लिखते भाई बालकवि बैरागी की भोपाल से भेजी दीवाली की शुभकामना मिली तो चौंक उठा. उन्हें बधाई देना चाहता हूं कि उन्होंने मेरी बात को एक आशंका में कवितामय वाणी दी. उनकी वही आशंका "आलोक वेला में बधाई के बावजूद" यहां आप सबको अर्पित कर रहा हूं :—

एक पीढ़ी बुझ रही है
एक पीढ़ी जल रही है,
एक पीढ़ी और है
जो गर्भ में ही पल रही है.
इन विसंगत पीढ़ियों को
कौन-सा परिवेश देंगे,
देश सौंपेंगे इन्हें हम
या कि बस उपदेश देंगे?
झिलमिलाती लौ
सनातन लौ भला
कब तक रहे,
क्रूर अंधियारे क्षितिज के
बोझ को कब त तक सहे.
तिलमिलाकर सहनशीला लौ
लपट यदि बन गयी,
तो न कहना यह दिवाली
हाय, कैसी मन गयी!

कन्हैयालाल नंदन

साक्षात्कार

“यह दुर्भाग्य ही है कि अपने देश में हिंदी को हिंदुओं के साथ, उर्दू को मुसलमानों के साथ और पंजाबी को सिक्खों के साथ जोड़कर देखने की आदत बन गयी है.” हिंदी के प्रख्यात कथा-शिल्पी डा. महीप सिंह का यह कथन उनके रचनाकार के दर्द को तो व्यक्त करता ही है. आज जो भाषा और संप्रदाय के आधार पर हमारे समाज को विभक्त करने की कोशिश की जा रही है, उसके प्रति भी एक दृष्टि देता है. यहां दी जा रही हैं उनसे दो बातचीतें पहली बातचीत की है डा. हरदयाल ने और दूसरी कन्हैयालाल नंदन ने.

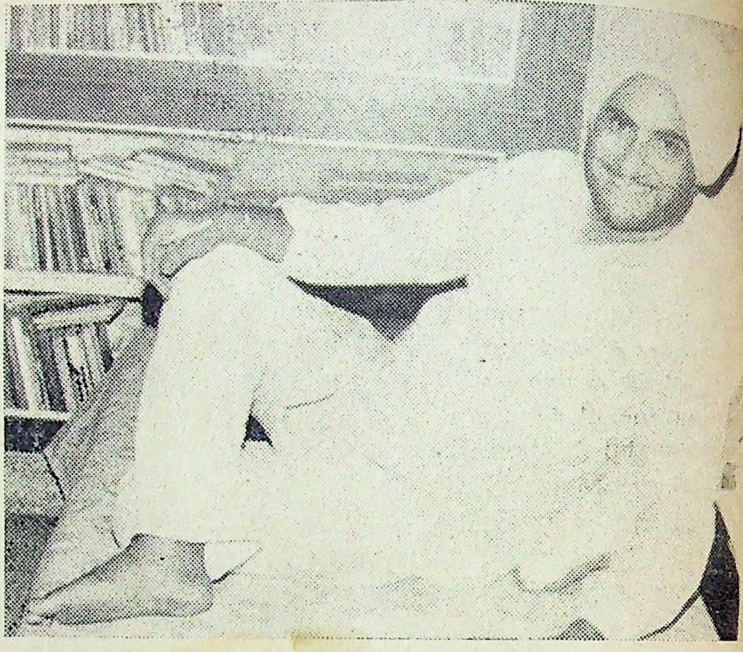

छाया : धर्मवीर

“आज के पाठक की रुचि बहुत प्रयोगधर्मा कहानी पढ़ने में नहीं

▣ महीप सिंह

अकसर लेखक शिकायत करते हैं कि इस देश में लिखने के लिए अनुकूल परिस्थितियां नहीं हैं. आपको क्या ऐसा लगता है?

अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थितियों का होना बहुत कुछ सापेक्षिक है. हमारा देश एक गरीब देश है, इसलिए यह बहुत स्वाभाविक है कि हमारे देश के अधिसंख्य लेखकों के पास वे सभी भौतिक सुविधाएं उस मात्रा में नहीं होतीं जिस मात्रा में किसी संपन्न देश के लेखक के पास होती हैं. जीविकोपार्जन के लिए संघर्ष, लेखन के लिए न्यूनतम सुविधाओं का भी अभाव, लेखक के लिए सामाजिक सुरक्षा की कमी आदि ऐसी अनेक स्थितियां हैं जो लेखन-कार्य में बाधा उपस्थित करती हैं. कदाचित यही कारण है कि हमारे देश में औसत लेखक की लेखन-आयु अधिक नहीं होती—मुश्किल से दस वर्ष.

परंतु यह भी सच है कि लेखन-कार्य सदैव उपलब्ध परिस्थितियों के मध्य ही होता है. भौतिक स्थितियों के साथ ही मानसिक स्थितियां भी लेखन पर गहरा प्रभाव डालती हैं. जहां तक मेरा संबंध है, मुझे लेखन-कार्य के लिए आवश्यक (न्यूनतम) सुविधाएं उपलब्ध रही हैं.

आपकी गतिविधियां बहुत तरह की हैं. आप बहुत व्यस्त रहते हैं. इतनी व्यस्तता के बावजूद आप बराबर लिखते भी रहते हैं. यह व्यस्तता आपके लेखन में कहीं बाधा उपस्थित करती है?

बाधा उपस्थित नहीं करती, यह नहीं कहूंगा. ये सभी गतिविधियां काफी समय ले लेती हैं और समय तो सीमित होता है. परंतु एक बात मुझे अकसर महसूस हुई है. मुझे लगता है कि सिर्फ लिखकर ही मुझे पूरा संतोष नहीं मिलेगा. मेरे अंदर जो अतिरिक्त है (आप इसे अतिरिक्त उ सकते हैं) उसे कुछ अतिरिक्त कर होगा. इस स्थिति का सबसे बड़ा सं है कि यह अतिरिक्त कार्य कभी इतना अधिक बढ़ जाता है कि मूल पिछड़ने लगता है.

कभी अकेलेपन का अनुभव होता है?

किन्हीं क्षणों में हर व्यक्ति को की तीव्र अनुभूति होती है. मेरा सामाजिक है. परंतु इस सामाजिक के कारण बने विविध संबंधों का खो भी मेरे सामने बहुत साफ है. गर्म मिलते हुए बहुत से हाथों और चेह बिखरी हुई मोहक मुस्कराहटों छिपी तुच्छता और कुटिलता भी नजर आती रहती हैं. परंतु क संबंधों के झूठ को जानकर भी कटकर जीना मुझे बहुत दूभर

दर्भ में मुझे अपनी ही एक कहानी के उल्लू' याद आती है. संबंधों कर जीने और नितांत अकेलेपन गने का एहसास उस एक वर्ष में ज्यादा हुआ जब मैं जापान में रहा. भाषा की दृष्टि से भी, और संपर्क संबंधों की दृष्टि से भी बिल्कुल कटा था. सचमुच अकेलापन क्या होता है, अनुभव मुझे पहली वार वहां हुआ. लिए एक-एक मिनट काटना वहां र बहुत कठिन हो जाता था.

उस जापान वाले अकेलेपन में क्या आप लिख सकते थे?

एक-दो महीने मुझे बहुत दिक्कत सारे अकेलेपन में अपने को समरस . यहां तक कि वह सारा अकेलापन र इतना हावी होने लगा कि मुझे कि मैं बीमार हो जाऊंगा, पर कुछ बाद मैंने उस अकेलेपन के साथ को समरस बनाया. अपना खाना नाना शुरू किया. अपनी चाय खुद शुरू की और एकांत की जो गूंज गूंज के साथ एक संबंध पैदा करने कोशिश की, उस गूंज में जीने की की. और फिर लिखा मैंने अपना 'यह भी नहीं' वहीं पर बैठकर.

नहीं, मेरे प्रश्न का एक दूसरा पक्ष है. जैसे हिंदी के अनेक लेखक विदेशों में रहने लगे हैं. वहां जाकर उनका लिखना धीरे-धीरे समाप्त हो गया है. आप जापान में जितने दिन रहे, वहां क्या आपने यह अनुभव किया कि यदि आपको जापान में लंबे समय तक रहना पड़े या स्थायी रूप से वहां रहना पड़े तो आप लेखन के साथ जुड़े रह सकते हैं या आपको वहां वह वातावरण मिल सकता है जिसमें लिखते रहना संभव हो सके?

सकता. मुझे वहां रहकर लगा कि मैं वहां बहुत दिन रहूंगा तो लेखक में बहुत जिंदा नहीं रह सकूंगा. न्यास जापान में रहकर मैं इसलिए का कि इस उपन्यास का पूरा ढांचा में पहले से ही तैयार था. मैंने सिर्फ रहने का उपयोग किया. मुझे यही कि मैं विदेश में रहकर और चाहे भी बन जाता, लेखन के लिए मेरी जो मानसिक पृष्ठभूमि थी, धीरे-धीरे मेरे हाथों से निकल जाती और लेखक नहीं रह पाता. कम-से-कम मुझे लगा कि मैं नहीं रह सकता था.

इसका मतलब यह हुआ कि लेखक के लिए अपनी जमीन से जुड़े रहना बहुत आवश्यक है.

मुझे बहुत ज्यादा महसूस हुआ. यह और लोगों को महसूस होता है कि नहीं, लेकिन मुझे बहुत महसूस हुआ.

'सचेतन कहानी' का आंदोलन चलाने या उस तरह की एक धारणा विकसित करने का कारण क्या था?

दो बातें थीं. सबसे पहली बात तो यह थी कि उस समय की कहानी, जिसको 'नयी कहानी' के नाम से पुकारा जा रहा था कुछ व्यक्तियों तक केंद्रित होकर रह गयी थी और आप जानते हैं कि तीन व्यक्तियों के बारे में ही उस समय अधिकांश चर्चा हो रही थी. हमें लगा कि संपूर्ण कहानी बहुत व्यक्तिपरक चर्चा में सीमित हो गयी है. इसके पीछे प्रतिस्पर्द्धा थी. यह भी कह लें तो कोई बड़ी बात नहीं. दूसरी बात, कहानी के संबंध में जो वैचारिक पक्ष उपस्थित किया जा रहा था—सन् साठ के आसपास कहानी के संबंध में जो वैचारिक पक्ष प्रस्तुत किया जा रहा था, यदि उसका चित्र आपके सामने हो तो—उसमें से एक साथ कई स्वर उभर रहे थे. बाद में कुछ लोगों ने दावा किया कि 'नयी कहानी' भी प्रगतिशील दृष्टिकोण की कहानी थी. पर इससे मैं सहमत नहीं हूं. बहुत से लोग कहानी को 'अंधेरे में चीख' की संज्ञा दे रहे थे और खास तौर से अस्तित्ववादी दर्शन के कुछ शब्द सारी कहानी-चर्चा में बहुत ज्यादा उभरकर आ गये थे. और उसमें थे—यह जीवन निष्क्रिय है, मनुष्य भविष्यहीनता के कगार पर आकर खड़ा हो गया है, मनुष्य का कोई भविष्य नहीं है, आज के वातावरण ने मनुष्य का इतना मोहभंग कर दिया है कि उसमें वह सिर्फ चीख सकता है, सिर्फ निरुपाय और अवश होकर जी सकता है इसके अलावा उसके सामने कोई उपाय नहीं है. ऐसी बहुत सारी चर्चा उस समय वातावरण में थी. हमने इस बात का उस समय विरोध किया था. हमने कहा था कि इस प्रकार की चर्चा जीवन को बहुत एकांगी समझने की चर्चा है. जीवन को मात्र जीना ही काफी नहीं है, उसे सक्रिय रूप से जानना भी बहुत आवश्यक है. जब 'आधार' का 'सचेतन कहानी विशेषांक' निकला तो मैंने कहा कि जीवन सिर्फ जिया ही नहीं जाता, बल्कि उसे जाना भी जाता है. और जानने का बोध हममें वातावरण के प्रति एक सक्रिय चेतना जाग्रत करता है. हमने इस बात पर भी आग्रह किया कि जो कुछ हमारे सामने घटित हो रहा है, परिवर्तन हो रहा है, वह हमें जड़ स्थान पर लाकर खड़ा नहीं करता. बल्कि वह अनेक नयी संभावनाओं के द्वार हमारे सामने खोलता है. इसलिए जीवन को आप स्थिर होकर, जड़ होकर जी नहीं सकते. बल्कि आपको उन सारी जड़ स्थितियों में से अपने लिए एक मार्ग निकालना होगा. इसलिए हमें लगता है कि आज जो बाद में हिंदी कहानी के साथ सारी चर्चा जुड़ी—आम आदमी की चर्चा जुड़ी, जनवादी चर्चा जुड़ी, मैं मानता हूं कि एक समय की उस जड़ता को तोड़ने में 'सचेतन कहानी' ने अपना बहुत बड़ा योगदान दिया. आज हिंदी कहानी का जो स्वरूप है, यह वह स्वरूप नहीं है जो सन् साठ के प्रारंभिक वर्ष में हिंदी कहानी का हुआ करता था. मैं कहूंगा कि यह वह स्वरूप है जिसे कभी 'सचेतन कहानीकारों' ने बहुत आग्रह के साथ रखा था. बाद में सबने उसकी चर्चा की और अलग-अलग ढंग से उसकी चर्चा की. साहित्य में ऐसा होता ही है. इसमें कुछ भी अस्वाभाविक नहीं है.

पिछले वर्षों में लिखी गयी कहानी में व्यावसायिकता की क्या भूमिका है?

मैं मानता हूं कि व्यावसायिकता की भूमिका सन साठ से लेकर सत्तर तक बहुत नहीं थी, लेकिन सत्तर से लेकर अस्सी तक यह भूमिका बहुत अधिक हो गयी. पहली बात, पहले कहानी की कुछ अच्छी पत्रिकाएं निकलती थीं. उनका प्रचार-प्रसार कितना है, यह महत्वपूर्ण नहीं होता था. उनमें कहानी छपना बड़े महत्व की बात मानी जाती थी. उदाहरण के लिए 'कहानी', 'नयी कहानियां', 'कल्पना' में कहानी छपना अपने आप में बड़ा

महत्वपूर्ण समझा जाता था. धीरे-धीरे ये पत्रिकाएं व्यापारिक दृष्टि से अपना महत्व खोने लगीं, क्योंकि धीरे-धीरे हिंदी पत्रिकाएं बड़े संस्थानों में जाकर केंद्रित होने लगीं और प्रचार-प्रसार उन पत्रिकाओं का बढ़ने लग गया, क्योंकि उनके पास व्यावसायिक तंत्र बहुत बड़ा है. स्वाभाविक है कि इन पत्रिकाओं का वितरण कम होने लग गया. इनके विज्ञापन कम होने लग गये. इनकी बिक्री कम होनी शुरू हो गयी और आर्थिक दृष्टि से धीरे-धीरे ये पत्रिकाएं लड़खड़ाने लग गयीं. जिन तीन पत्रिकाओं का जिक्र मैंने किया, आज ये तीनों ही बंद हो चुकी हैं. अब कहानी छपने के लिए रह गयी हैं कुछ बड़ी पत्रिकाएं, कुछ रंगीन पत्रिकाएं. इनका पहला उद्देश्य है कि इनकी पत्रिका बिकती कितनी है? स्वाभाविक है कि इनमें ऐसी कहानी छपेगी जिसको बहुत बड़ा पाठकवर्ग पढ़ सके. इसीलिए यह बात आकस्मिक नहीं है कि सत्तर के बाद हिंदी कहानी लेखन में महिलाओं की एक भीड़ तेजी से आयी है. आज हिंदी कहानी का एक खास किस्म का पाठकवर्ग है—घरों में रहने वाली महिलाएं या ऐसा पाठक जो गाड़ी में चलते हुए, सफर करते हुए कहानी पढ़ना चाहता है और एक ही पत्रिका में सब कुछ पा लेना चाहता है, उस पाठक की रुचि बहुत कलात्मक, प्रयोग-धर्मा कहानी पढ़ने में नहीं है. ऐसी कहानियां इन पत्रिकाओं को पुरुष लेखकों से कम मिलीं, परंतु घर-परिवार से जुड़ी हुई, घर और परिवार की संवेदना में डूबी हुई, कई बार, मैं उनको कहूंगा, रूमानी रंग में डूबी हुई कहानियां उन्हें महिला कथाकारों से अधिक मिलीं.

यह महिला लेखिकाओं का उभरना क्या सामाजिक परिवर्तन के कारण नहीं है?

सामाजिक परिवर्तन के संकेत तो जीवन के सभी क्षेत्रों में दिखाई दे रहे हैं. महिलाएं उन क्षेत्रों में भी आगे बढ़ रही हैं जिनमें कुछ वर्ष पूर्व तक उनका दखल नहीं के बराबर था. लेखन के क्षेत्र में भी उनका आना स्वाभाविक है, पर मुझे लगता है कि लेखन के क्षेत्र में महिलाएं जो इतनी अधिक आयी हैं, उसके पीछे दो बातें हैं. एक, कहानी को जितना सातवें दशक में अपठनीय बना दिया गया था, इन महिलाओं का एक बहुत बड़ा योगदान यह है कि इन्होंने कहानी को दुबारा पठनीय बनाया. यह एक अलग बात है कि कहानी को पठनीय बनाने के दौरान इन्होंने कहानी को बहुत रोमानी बनाया और कई बार कहानी को उस स्तर पर वापस ले गयीं जहां से कहानी को मुश्किल से खींचकर बाहर लाया गया था. मुझे लगता है कि इसके पीछे बहुत बड़ी व्यावसायिक मांग है. इस प्रकार की कहानियां आज का मध्यवर्गीय हिंदी पाठक (विशेष रूप से पाठिकाएं) पढ़ना पसंद करता है. उनकी जिंदगी की रोमानी झलक इन कहानियों में दिखाई देती है.

इतने अरसे से कहानियां लिखते रहने के बावजूद उपन्यास अभी तक आपने एक ही लिखा है 'यह भी नहीं.' ऐसा क्यों?

बहुत समय तक जो कथाबिंदु मेरे मन में उभरता था, वह मुझे सदैव कहानी के लिए ही उपयुक्त लगता था. फिर जब उपन्यास की दृष्टि से एक व्यापक कथाफलक मेरी कल्पना में आया तो अनेक व्यस्तताओं के कारण मैं उसे जल्दी नहीं लिख सका. उपन्यास-लेखन के लिए लेखक को एक विशेष प्रकार की फुर्सत चाहिए. समयाभाव के कारण वह मुझे बहुत नहीं मिल सकी. अपने एक वर्ष के जापान प्रवास में यह फुर्सत मुझे मिली और मैं बहुत दिन से सोचे हुए उस उपन्यास को लिख सका.

आपके उपन्यास में एक प्रकार का बिखराव-सा है. इसका क्या कारण है?

मैंने बंबई नगर के उस विशेष वर्ग को अपने उपन्यास में चित्रित किया है जो देश के अन्य भागों से जाकर वहां बसा है. सही अर्थों में बंबई भारत का एकमात्र कास्मोपॉलिटन नगर है, जिसका हर व्यक्ति देश के किसी अन्य भाग से उखड़कर वहां आया है. ऐसा व्यक्ति एक ओर अपने परंपरागत संस्कारों से बंधा रहता है, दूसरी ओर उस महानगर की बाध्यताएं उसे घेरती रहती हैं. इसलिए वहां के जीवन में अनिश्चय, बिखराव, संदेह और असुरक्षा मानो आवश्यक तत्व हो गये हैं. मैंने अपने उपन्यास में बंबई के मध्यवर्गीय जीवन को उसकी समग्रता में पकड़ने की कोशिश की है. इसलिए उसमें बिखराव ही बल्कि अनिश्चय, संदेह और असु का भाव भी शायद दिखाई देगा. उप का हर पात्र अपने भविष्य के संदर्भ में अनिश्चित स्थिति में जीता है और असुरक्षा को दूर करने के बड़े कमजोर सहारों को ढूंढ़ता फिरता है.

अंत में मैं आपसे एक प्रश्न पूछना चाहूंगा. सामान्यतः जाता है कि हिंदी हिंदुओं की है. आप सिक्ख हैं. क्या आ हिंदी को अपने सृजन का माध्य बनाने में किसी प्रकार की असुवि हुई है?

अपने सिक्ख होने की असुविधा या कहूं संकट को मैं पिछले पचीस वर्ष से लगात झेल रहा हूं. मैं मानता हूं कि भाषा संबंध धर्म या संप्रदाय के साथ न हो भूमि के साथ होता है. यह दुर्भाग्य ही कि अपने देश में हिंदी को हिंदुओं के सा उर्दू को मुसलमानों के साथ और पंजा को सिक्खों के साथ जोड़कर देखने आदत बन गयी है. मैं समझता हूं कि हि को हिंदुओं की भाषा कहना हिंदी के सा भयंकर अन्याय करना है. इस बात को अनेक स्थानों पर आग्रहपूर्वक कह चु हूं कि यदि हिंदी को इस समूचे देश भाषा बनना है तो सबसे पहले उसे हिंदू से मुक्त होना होगा. जब मैंने सन् 195 में एम. ए., हिंदी की कक्षा में प्रवेश लि था और आज जब मुझे हिंदी का अध्याप करते और हिंदी में लिखते पचीस-ती वर्ष हो चुके हैं, पता नहीं क्यों, अभी लोग यह नहीं भूल पाते कि मैं सिक्ख जैसे वे यह स्वीकार नहीं कर पाते कि मे हिंदी का अध्यापक होना या हिंदी लेखक होना उतना ही सहज हो सकता ज़ितना उस व्यक्ति का जिसने हिंदू-परिवा में जन्म लिया है. और अब तो हिंदी मुसलमान और ईसाई लेखक भी ब मात्रा में आ गये हैं. फिर भी, इतनी यात्रा कर लेने के बाद भी पता नहीं लोग मुझे बार-बार याद दिलाते हैं मैं सिक्ख हूं. व्यक्ति को व्यक्ति के संद में न देखकर सदैव उसे किसी समुदाय संदर्भ में देखा या परखा जाना, यात और खीझ से भरा हुआ होता है. इस अनुमान मेरे जैसे लोग ही लगा सकते हैं.

"सांप्रदायिकता से जुड़ना ही होता ो मैं अकाली न बन जाता!"

महीप सिंह

मैं आपकी इस बात से सहमत हूं कि कोई भी भाषा किसी संप्रदाय से जुड़ी हुई नहीं होती और भाषा विशेष को संप्रदाय विशेष के साथ जोड़ना गलत है, परंतु आपका सिक्ख होना हिंदी साहित्य को ऐसी कहानियां भी दे सकता था, जिन्हें संप्रदाय विशेष को समझने में किसी अन्य संप्रदाय के व्यक्ति को कुछ दिक्कत हो. इस विषय में आप क्या सोचते हैं?

देश में जब नवजागरण का आंदोलन तब अपनी सांस्कृतिक अस्मिता की न के लिए हम लोगों ने जहां देश, धर्म, ाओं और संस्कृति का नाम लिया, भाषा का भी नाम लिया. 'सब मिल एक जबान——हिंदी-हिंदू-हिंदुस्तान' उदघोष इसी नवजागरणवादी कता की उपज था, जिसका मुखर हमें 19वीं शताब्दी के अंत में सुनाई गया था. इसी तरह उर्दू के लिए मानों का, पंजाबी के लिए सिक्खों का आग्रह बना, जो किसी हद तक आज बना हुआ है. भाषाओं के पीछे धर्म संप्रदाय के जुड़ने की धारणा भी लेखकों, बुद्धिजीवियों और जाग- व्यक्तियों को विरोध करना चाहिए. सिक्ख परिवेश पर कुछ कहानियां हैं. इनमें से 'उलझन' को साप्ताहिक न द्वारा आयोजित 'प्रेमचंद कहानी गिता' में 1956 में प्रथम पुरस्कार था. 'पानी और पुल' जैसी कहानियां भी बहुत चर्चित हैं. बलवंत सिंह, र, गुरुबचन सिंह आदि अनेक सिक्ख ने सिक्ख परिवेश से जुड़ी हुई अच्छी यां हिंदी जगत को दी हैं. जब भी या अछूते परिवेश के व्यक्ति हिंदी में लिखेंगे तो स्वाभाविक है कि उनके परिवेश की झलक उन रचनाओं में दिखाई देगी. मुस्लिम परिवेश की कितनी अच्छी कहानियां हिंदी में लिखी गयी हैं. परंतु हिंदी में लिखने वाले किसी सिक्ख, मुसलमान या ईसाई लेखक को जब यह बार-बार याद कराया जाता है कि तुम सिक्ख, मुसलमान या ईसाई हो तो उसको यह एहसास होता है कि जैसे वह कोई बाहर का व्यक्ति है और अनपेक्षित रूप से हिंदी में घुस आया है. यह बाहर का व्यक्ति होने का एहसास दूर होना चाहिए.

आपकी बात ठीक है. जब यह याद कराया जाता है तो इससे मन में प्रतिक्रिया पैदा होती है. आप यह मानते होंगे कि पिछले 30–35 वर्षों में इस देश में सांप्रदायिकता बढ़ी है, जिसे बिलकुल समाप्त हो जाना चाहिए था——लगातार सांप्रदायिक दंगे भड़कते रहे हैं. हमारे सामाजिक जीवन की इन स्थितियों के प्रति रचनाकार क्यों उपेक्षा बरतता है?

सांप्रदायिक प्रश्नों पर हिंदी में तथा अन्य भारतीय भाषाओं में अनेक अच्छी कहानियां लिखी गयी हैं. अधिकांश लेखकों ने जब कभी इन समस्याओं पर लिखा तो उनकी 'एप्रोच' सदा असांप्रदायिक रही है और समस्त मानवीय मूल्यों को उन्होंने संप्रदायगत संकीर्णता से ऊंचा रखा है. विभाजन के संदर्भ में लिखी हुई कुछ कहानियां, जो विभाजन के समय लिखी गयीं और लगातार बाद तक लिखी जाती रहीं, आज भी लोगों को स्पंदित करती हैं. इसलिए मैं नहीं मानता हूं कि हमारा लेखक आज के सामाजिक प्रश्नों से जुड़ा हुआ नहीं है या उसके प्रति गहरा सरोकार अनुभव नहीं करता है, परंतु राजनीति ने सभी प्रश्नों को इतना उलझा दिया है और उनके स्वरूप को इतना विकृत कर दिया है कि उसके मध्य से सही दृष्टिकोण को उभार सकना आसान नहीं है.

इन स्थितियों के लिए आप राजनीति को बहुत अधिक उत्तरदायी मानते हैं?

आज तो अनेक सामाजिक प्रश्नों पर विचार करना इसलिए पाखंड लगता है कि राजनीति ने उसके सारे अर्थ को ही विकृत कर दिया है. सभी लोग कहते हैं, रिश्वत बहुत बुरी है परंतु इसी रिश्वत और भ्रष्टाचार के खुले उदाहरण हमें अनेक मंत्रियों और उच्च पदों पर बैठे हुए लोगों के संदर्भ में नजर आ जाते हैं. संसद और विधानपरिषदों के सदस्य कुछ लाख रुपये इकट्ठा करने के लिए जिस ढंग से दलबदल करते हुए दिखाई देते हैं, उससे रिश्वत लेने-देने का सारा संदर्भ भी बहुत बदला हुआ-सा दिखाई देता है. इसी संदर्भ में दूसरा उदाहरण अनुशासनहीनता का है. प्रायः कहा जाता है कि हमारा आज का युवक, विद्यार्थी वर्ग बहुत अनुशासनहीन हो गया है. एक अध्यापक होने के नाते मैं यह बात कुछ अधिकार से भी कह सकता हूं कि इस वर्ग में बढ़ती हुई अनुशासनहीनता के लिए भी बहुत दूर तक हमारा राजनीतिक वातावरण उत्तरदायी है. संसद तथा देश के विभिन्न राज्यों की विधान परिषदों में जनता के चुने हुए

महीप सिंह : 1952 में

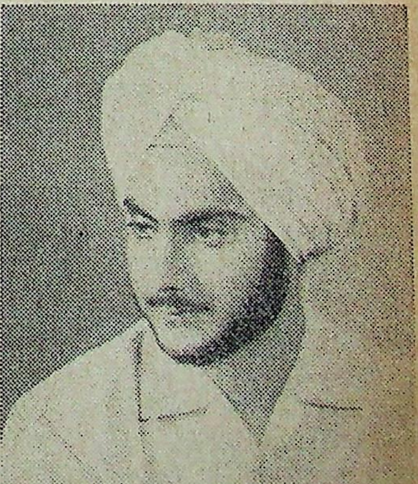

प्रतिनिधि प्रायः जिस तरह की अनुशासनहीनता का परिचय देते हैं, उसके बाद विद्यार्थियों की अनुशासनहीनता पर कुछ भी कहना हास्यास्पद लगता है. हमारे सामाजिक जीवन की इन पाखंडपूर्ण स्थितियों पर यदि लेखक लिखता है तो मैं मानता हूं कि वह इन प्रश्नों के प्रति जागरूक है.

हमारी वर्तमान राजनीति बहुत भ्रष्ट हो गयी है और सभी चीजों का राजनीतिकीकरण हो रहा है. मानवीय संबंधों से लेकर जिंदगी की मूलभूत आवश्यकताओं तक राजनीति बोलती हुई दिखाई देती है, इससे बचने का कोई उपाय है?

मैं समझता हूं कि प्रत्येक लेखक और सभी बुद्धिजीवियों को सबसे पहले यह निश्चय तो करना ही चाहिए कि उन्हें जो भी अन्यायपूर्ण स्थिति दिखाई दे, उसका वे निर्भीक होकर विरोध कर सकें. इस दृष्टि से लेखकों और बुद्धिजीवियों के बहुत सशक्त मंच बनने चाहिए. जिन मंचों से वे इन सारे पाखंडों का विरोध कर सकें और एक समानांतर दबाव की शक्ति का निर्माण कर सकें. लेखक स्वयं राजनीति में प्रवेश करके कोई सार्थक परिवर्तन कर सकेंगे, इसमें मुझे संदेह है, परंतु यदि लेखकों, बुद्धिजीवियों के सशक्त और प्रभावशाली मंच हैं तो राजनीति या अन्य व्यावसायिक तंत्रों पर कारगर दबाव डाला जा सकता है.

आपने भी तो इस तरह लेखकों का एक मंच बनाने में सक्रिय भूमिका अदा की थी. मैं आपके अनुभव के आधार पर यह जानना चाहता हूं कि इस मंच या संगठन को एक प्रभावी 'प्रेशरफोर्स' बनाने में कहां तक सफलता मिली?

भारतीय लेखक संगठन की स्थापना की पृष्ठभूमि में हमारी यही इच्छा थी कि यह मंच राजनीतिक विचारों से ऊपर उठकर एक ऐसा मंच बने, जो सीधे-सीधे लेखकों के प्रश्नों से जुड़े और लेखक वर्ग एक सार्थक सामाजिक शक्ति के रूप में उभर सके. साथ ही वह लेखकों के हितों के लिए भी लड़ सके, पर हमारे इस कार्य के लिए चारों ओर से हम पर बहुत से 'मोटिव्स' आरोपित किये गये और यह कहा गया कि इसके पीछे निहित स्वार्थ जुड़े हुए हैं. जब कभी कोई ऐसा प्रयास अधिक सफल नहीं हो पाता तो उसके पीछे मुख्य कारण यही दिखाई देता है कि लेखक अपनी क्षुद्र सीमाओं से उभर नहीं पाता. यह ठीक है कि यह प्रयत्न अभी बहुत अधिक सफल हुआ नहीं दिखाई देता है, पर मैं मानता हूं कि ऐसा प्रयत्न होना चाहिए.

आप अध्यापक हैं, क्या आप महसूस करते हैं कि अध्यापक होना आपकी रचनाधर्मिता में कहीं आड़े आता है?

नहीं. अध्यापक होना मैंने इसीलिए स्वीकार किया कि मैं अपनी रचनाधर्मिता से जुड़ा रह सकूं, परंतु अध्यापक की कुछ सीमाएं होती हैं. वर्षों तक विद्यार्थियों को विद्यार्थी स्तर से पढ़ाने के बाद उसकी सारी सोच-समझ, व्याख्या में एक खास किस्म की अध्यापकीय वृत्ति आ जाती है, जो अपने आप में एक बहुत बड़ी सीमा है. एक जागरूक लेखक या आलोचक के लिए इस सीमा से उबरना बहुत आवश्यक है.

इसमें मैं थोड़ी-सी असहमति व्यक्त करना चाहता हूं, जो अध्यापक अद्यतन साहित्य से जुड़ा होता है, उसके पढ़ाने में भी वह ध्वनित होता है और जरूरी नहीं कि जिस तथाकथित अध्यापकीय वृत्ति का आप जिक्र कर रहे हैं, उसका वह शिकार हो जाये.

मैं आपकी बात से सहमत हूं. मैंने जो कुछ कहा, यह उसका विरोध नहीं, बल्कि पुष्टि है. मैं मानता हूं कि अध्यापक को अद्यतन साहित्य से जुड़ा रहना चाहिए, परंतु दुर्भाग्य की बात यह है कि अधिकांश अध्यापक, साहित्य में नया जो कुछ भी लिखा जा रहा है, उसके प्रति बहुत जागरूक नहीं होते और उनके अध्ययन और अध्यापन की सीमा पाठ्यक्रम में निर्धारित साहित्य बन जाता है. ऐसे लोग जब मध्ययुगीन या आधुनिक साहित्य के संदर्भ में अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं तो उसमें कक्षा में दिये गये व्याख्यान की झलक स्पष्ट दिखाई देती है. मैं अपने आपको इससे बचाए रखना चाहता हूं. मैं अपने विद्यार्थियों के साथ उस स्तर पर संवाद करना पसंद करता हूं, जिस स्तर पर अपने साहित्यिक मित्रों के साथ.

> जिसके हाथ में थोड़ा-सा भी अधिकार है, विश्वविद्यालय में प्रोफेसर होने के रूप में, किसी पत्रिका का संपादक होने के रूप में, पुरस्कार देने वाली संस्थाओं में अपनी पहुंच के रूप में—वह अपने अधिकार का समय-असमय पूरा उपयोग करता है.

प्रायः ऐसा कहा जाता है कि आज का विद्यार्थी सामाजिक या साहित्यिक दृष्टि से उतना जागरूक न होता कि अध्यापक विशिष्ट स पर उनसे बात कर सके.

मैं इससे सहमत नहीं हूं. यह सदैव हो रहा है कि यदि किसी कक्षा में 50-6 विद्यार्थी हैं तो उनमें जागरूक विद्यार्थि की संख्या 5–10 के आसपास ही हो है. आज भी स्थिति लगभग यही है.

विद्यार्थियों पर सबसे अधि अनुशासनहीन होने का आरो लगा दिया जाता है. एक लंबे अर से अध्यापक होने के नाते आप विषय में क्या महसूस करते है

मैं मानता हूं कि अनुशासनहीनता बहुत गहरा संबंध लक्ष्यहीनता से है. य उसके सामने विद्यार्जन करने के बा रोजगार की संभावनाएं पूरी तरह खुली हु हों तो लक्ष्य निर्धारित करने में कोई कठि नाई नहीं होगी. दुर्भाग्य की बात यह है आजादी के इतने वर्षों बाद भी अधिकां विद्यार्थियों को हम लक्ष्य की कोई स्प परिकल्पना नहीं दे सके. इसके साथ ह हमारे देश का हर राजनीतिक दल विद्या का पूरा लाभ उठाने और उन्हें अपना मोह बनाने में लगा रहता है. राजनीति अपनाये जाने वाले सभी हथकंडे, कि गिरावट की सीमा तक पहुंच चुके जिससे आप-हम सभी परिचित हैं, यदि सभी हथकंडे राजनीतिक दलों द्वा विद्यार्थियों के मध्य ले जाये जायेंगे तो विद्यार्थियों से किस प्रकार के अच्छे चरि और अनुशासन की उम्मीद करेंगे?

हमारा जीवन जितना बहुआया हो चुका है, क्या उसे समग्रता

पकड़ सकने वाली कहानियां आ ही हैं? मेरा मत यह है हमारा लेखन उतना बहुआयामी नहीं हो रहा है, जितना हमारा जीवन हुआ है, आप इस बात को मानते हैं क्या?

के क्षेत्र में नये आयामों या नयी स्थिति का उद्घाटन करना तभी संभव है, जब उसके लिए समुचित माध्यम

ी प्रसंग में लघु पत्रिकाओं की सार्थ- हमारे सामने उभरती है, क्योंकि माध्यम व्यावसायिक पत्रिकाएं नहीं लघु पत्रिकाएं ही बनती हैं. जिस दी व्यवस्था में हम जी रहे हैं, उसमें की कसौटी भी उसकी व्यावसायिक ा के साथ जुड़ जाती है, पर कोई भी र्मी रचना या किसी भी अनउद्- परिवेश पर लिखी गयी कहानी एक क़िस्म के धीरज की मांग करती है व्यावसायिक युग में यह धीरज लेखकों में नहीं होता. जब आप हते हैं कि नये-नये संदर्भों और नये त्रों को उद्घाटित करने वाली कहा- हिंदी में नहीं आ रही हैं तो मैं कहूंगा रही हैं, पर उस मात्रा में नहीं आ जिस मात्रा में उन्हें आना चाहिए इसके पीछे मैं यह मानता हूं कि ायिक दबाव बहुत तेज है.

या लेखकीय दृष्टि में विस्तार की कमी भी कहीं सीमाएं खींचती है?

ायिक दौर में व्यक्ति के अंदर धीरज ना और लेखकीय दृष्टि के विस्तार धीरज की बहुत जरूरत पड़ती है.

हमारा लेखक वर्ग असहिष्णुता का भयंकर शिकार है और वह अपनी आलोचना भी नहीं सुन सकता, ऐसा क्यों?

ा क्यों मानते हैं कि ऐसे लेखक हैं? लेखकों से मेरा गहरा संबंध जानते हैं कि मैं लेखकों के बीच जीता अपना मत यह है, कुछ लेखक चाहे आलोचना के प्रति असहिष्णु हों, ंश्य लेखक और खास करके हमारे की जो युवा पीढ़ी है, वह अपनी ना के प्रति इतनी असहिष्णु नहीं मानता हूं कि जिस असहिष्णुता की कर रहे हैं, यह शायद उन लेखकों के मध्य ज्यादा है, जो लेखक कम और मठाधीश ज्यादा हो गये हैं.

आपने मठाधीशों की बात कही, मुझे लगता है कि आज कहीं ज्यादा छोटे-छोटे मठ बनते चले जा रहे हैं. कुछ वर्ष पहले तक प्रगतिशील लेखकों का एक मठ होता था और दूसरे वे होते थे, जो उनके साथ जुड़े हुए नहीं होते थे. अब तो प्रगतिशीलों के भी अलग-अलग मठ हो गये हैं और दूसरे लोगों के भी. आज ये व्यक्तिपरक मठ जो बनते चले जा रहे हैं, वे रचनाधर्मिता के लिए कहां तक सहायक सिद्ध होंगे?

मैं यह कहूंगा कि आज लेखकों के मध्य वैचारिक मतभेद बहुत अधिक नहीं है. अधिकांश लेखक अपने आपको सामाजिक संदर्भों और सरोकार से जुड़ा हुआ लेखक मानते हैं और उसका दावा करते हैं. हर लेखक यह मानता है कि व्यक्ति अपनी निजी जिंदगी, अंदर की जिंदगी में जीकर जो प्राप्त करता है, वही पर्याप्त नहीं होता, कहीं-कहीं वृहत्तर सामाजिक जीवन से उसका लगाव और जुड़ाव होता है और सामाजिक परिवर्तन की जो प्रक्रिया अपने देश में प्रारंभ हुई है, अधिसंख्य लेखक इसका स्वागत और समर्थन करते हैं और अपने आपको जुड़ा हुआ महसूस करते हैं. जहां तक प्रगतिशीलों का सवाल है, इस देश की वामपंथी राजनीति स्वयं अनेक प्रकार के मतभेदों से भरी हुई है. एक के बाद दूसरी, फिर तीसरी और अब चौथी कम्युनिस्ट पार्टी इस देश में बन गयी है. अपने आपको प्रगतिशील समझने वाले लोग यदि लगातार अपने आपको वामपंथी राजनीति से जोड़े रहेंगे तो जितने मतभेद राजनीति में उभरेंगे, उतने मतभेद इनके मध्य भी उभरेंगे. आपने व्यक्तिपरक मठों की चर्चा की, मैं कहूंगा कि इस प्रकार के गुटों और मठों का जैसा गर्हित स्वरूप आज दिखाई दे रहा है, वैसा शायद पहले कभी नहीं था.

जिसके हाथ में थोड़ा-सा भी अधिकार है, विश्वविद्यालय में प्रोफेसर होने के रूप में, किसी पत्रिका के संपादक होने के रूप में, सरकारी-गैरसरकारी संस्थाओं की कमेटियों की सदस्यता के रूप में, पुरस्कार देने वाली संस्थाओं में अपनी पहुंच के रूप में, वह अपने इस अधिकार का समय-असमय पूरा उपयोग करता है.

आपने पंजाबी में लेखकों का एक सहकारी प्रकाशन प्रारंभ किया. जहां तक मेरी जानकारी है, इस सहकारी प्रकाशन को बहुत सफलता मिली है, केरल के बाद, शायद यह दूसरा सहकारी प्रकाशन है, जो इतना सफल है. इसके बारे में आपके क्या अनुभव हैं और ऐसा हिंदी में क्यों नहीं हो सकता?

नंदनजी, पंजाबी में जो सहकारी प्रकाशन आज है, उसे मैंने शुरू नहीं किया. पंजाबी राइटर्स कोऑपरेटिव सोसायटी को बने आज इक्कीस वर्ष हो चुके हैं. पिछले तीन-चार वर्ष से मैं इसके साथ संबद्ध हूं-तीन वर्ष तक इसका अध्यक्ष रहा हूं. इस संस्था को सक्रिय बनाने में जरूर मैंने अपना कुछ योगदान दिया है. गत-तीन-चार वर्षों में इस संस्थान की ओर से 35–40 पुस्तकें प्रकाशित की गयी हैं. व्यावसायिक दृष्टि से भी यह प्रयोग सफल रहा है.

इस दृष्टि से हिंदी में भी कुछ प्रयत्न हुए थे. नरेंद्र शर्मा ने भी एक कोशिश की थी, किंतु यह बात हिंदी में अभी तक पनप नहीं सकी. क्या यह हिंदी वालों का कोई मानसिक गुण है जो इसे पनपने नहीं देता या इसके पीछे कोई व्यावसायिक टकराहट भी है?

दोनों कारण हैं. मैं यह मानता हूं कि ऐसे प्रकाशन की हिंदी में बहुत आवश्यकता है. संयोग से हिंदी का संपूर्ण प्रकाशन व्यवसाय आज दिल्ली में केंद्रित हो गया है. जम्मू, चंडीगढ़, जयपुर, भोपाल, पटना, कलकत्ता, बंबई या हैदराबाद जैसे केंद्रों पर ऐसे सहकारी प्रकाशन हों तो उन क्षेत्रों के लेखकों को अपनी रचनाओं को प्रकाशित कराने के लिए दिल्ली नहीं भागना पड़ेगा. हिंदी का लेखक कश्मीर से केरल तक और गुजरात से असम तक बसता है और वहां के लेखकों को अपनी पुस्तकें प्रकाशित कराने के लिए कितना संकट झेलना पड़ता है, इसकी दिल्ली में बैठकर कल्पना भी नहीं की जा सकती. हिंदी में ऐसा सहकारी प्रकाशन क्यों नहीं बन पा रहा है, इसके

कान्साई विदेश अध्ययन विश्वविद्यालय (जापान) में डॉ रमेश माथुर और प्रो. लिडिन के साथ

कारणों का विश्लेषण करना इसलिए मुश्किल है, क्योंकि जहां तक मैं समझता हूं, हिंदी में इस ढंग का अभी तक कोई व्यवस्थित प्रयत्न नहीं हुआ है. मैं मानता हूं कि यदि हिंदी में एक सुनियोजित प्रयास हो और पांच-दस-पंद्रह लेखक जो सचमुच एक-दूसरे पर विश्वास कर सकें, एक दूसरे के निकट हों और एक अच्छी समझ एक-दूसरे के प्रति जिनके अंदर हो. . .

आपने तो पांच-दस-पंद्रह बता दिये! माई जान, एक-दो तक रखो शायद ठीक हो जाये.

सहयोगी प्रकाशन एक-दो से शुरू नहीं होता. कम से कम उसमें पंद्रह-बीस लेखक होने चाहिए.

पंजाबी में सहकारी प्रकाशन की दृष्टि से आपने प्रक्रिया क्या अपनायी, उसका आर्थिक पहलू कैसे हल किया.

इस देश में कोई भी कोऑपरेटिव सोसायटी ऐसी नहीं है, जो सरकरी कर्ज की सहायता के बिना चलती हो. आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि पंजाबी राइटर्स कोऑपरेटिव सोसायटी ने कोई सरकारी ऋण नहीं लिया. दो वर्ष पूर्व एक बैंक ने हमें दस हजार रुपये के ओवरड्राफ्ट की सुविधा दी और गत वर्ष पंजाब सरकार ने हमें दस हजार रुपये का एक अनुदान दिया. विशेष काम लेखकों ने खुद किया और उसके लिए एक पूरी प्रक्रिया विकसित की. कितना पैसा लेखक लगायेगा, कितना सोसायटी लगायेगी. लेखक को अपना धन कैसे और कितनी अवधि में वापस मिलेगा, रायल्टी कितनी मिलेगी—ये सभी बातें लेखकों ने आपस में मिल बैठकर तय की हैं. और यह सब कुछ बड़े ठीक ढंग से चल रहा है.

हिंदी में भी ऐसा हो सकता है?

क्यों नहीं हो सकता. कुछ लेखक मिलकर ऐसा प्रयत्न शुरू करें तो हो सकता है, पर फिर सवाल वही पैदा होता है—कुछ लेखक मिलकर शुरू करें. . .पर लेखक मिलें कैसे?

बहुत बड़ा सवाल है, परंतु यदि ऐसा हो जाये तो बहुत अच्छा हो. खैर, चूंकि आप प्रकाशन व्यवसाय से थोड़ा-बहुत जुड़े हुए हैं—हिंदी में आज पुस्तकों की बिक्री की जो स्थिति है, उसके बारे में आपकी क्या राय है?

आज हिंदी में पुस्तकों की बिक्री की जो स्थिति है, वह बहुत स्वस्थ और संतोषजनक नहीं दिखाई देती. छोटे-बड़े सभी प्रकाशकों की नजर सरकारों द्वारा की जाने वाली 'बल्क परचेज' पर टिकी रहती है. मैं मानता हूं कि पुस्तकों की बिक्री में सरकारों को मदद करनी चाहिए. लोगों के बौद्धिक विकास का दायित्व किसी भी सरकार पर उतना ही है, जितना उनके रोजगार, आवास और सुरक्षा का है, परंतु इसी नीति में से खतरे भी उभरते हैं. मध्य प्रदेश सरकार की पुस्तक-खरीद नीति की मैंने कड़ी आलोचना की है. सरकारों की खरीद नीति इस तरह की नहीं होनी चाहिए कि लेखकों/प्रकाशकों को यह महसूस कराया जाये कि तुम्हें खरीदा जा रहा है, तुम्हें उपकृत किया जा रहा है. इस नीति से लेखकों में राज्याश्रित होने के भाव को बढ़ावा मिलता है. यह अच्छी बात नहीं है. इसका विरोध होना चाहिए. दूसरी ओर हिंदी में पुस्तकें खरीदकर पढ़ने वाला पाठक वर्ग बढ़े, इसका प्रयास होना चाहिए. कुछ प्रकाशकों ने अच्छी साहित्यिक पुस्तकों के सस्ते संस्करण और जेबी संस्करण छापने का कार्यक्रम शुरू किया है, लाभ हो रहा है. यह स्वागत योग्य है सरकारी तंत्रों द्वारा जो पुस्तकों की हो रही है, उस पर लेखकों, प्रकाशक बड़ी जागरूक दृष्टि होनी चाहिए. उस में यदि उन्हें कहीं भी भ्रष्ट स्थिति पनपने की संभावना दिखाई दे तो त्कालिक लाभ या हानि की चिंता बगैर उन्हें उनका विरोध करना चाहि

आपने कभी कविताएं लिखीं

नहीं, नहीं लिखी.

कभी आपको ऐसा कुछ लग कि कहानी लिखने के बाद ऐसा बिंदु भी है, जो उसमें न पा रहा है?

ऐसा लगता है. कभी-कभी लगता है बहुत सारी बातें जो मैं कहानी के म से नहीं कह पा रहा हूं, उसके लिए मुझे दूसरा माध्यम चाहिए. अपना उ (यह भी नहीं) लिखते समय एक ऐसा आया, जब एक बात को प्रतीक ढंग से व्यक्त करने के लिए मुझे कवि सहारा लेना पड़ा, उस स्थिति में मैं कविता लिखी.

जिंदगी के नाजुक पहलू, पहलू आज की जिंदगी में से जा रहे हैं. कारण आज का दबाव भी हो सकता है और नीतिक नारेबाजी भी. प्रकृति देखने का नजरिया भी खोता रहा है—चाहे वह कहानी कविता हो, नाटक हो. एक कार के नाते आप नहीं करते?

मुझे यह महसूस होता है. मैं इसे संयोग अपना दुर्भाग्य कहूंगा कि प्रकृति के वातावरण में मैं पला नहीं. हमेशा मैं नगरों का जीवन जीता रहा. उसमें का संस्पर्श कभी-कभी महसूस हुआ हवा का कोई ठंडा झोंका छूकर निक हो. प्रकृति का पूरा आस्वाद क्या है यह मैंने कभी गहराई तक अनुभ किया. मैं समझता हूं कि महानगरों में लेने और पलने वाली पीढ़ी की शायद नियति हो. हम अपने बच्चों से ही देखें कि क्या उन्होंने सूर्योदय देखा सूर्यास्त कैसा होता है, इसे वे जान बड़ी-बड़ी अट्टलिकाओं के पीछे

रज और घर वापस लौटने की भीड़ खोया हुआ सूर्यास्त हमें कहां दिखाई है. मेरी चिंता का दूसरा कारण संबंधों की कोमलता का निरंतर जाना है—चाहे आप इसे मेरी मानें, मुझे लगता है कि वह मानवीय संबंध, जिनका धरातल बंध होता था, धीरे-धीरे हमारे हाथ रहा है. सभी संबंध व्यावसायिक ते जा रहे हैं. किसी से मिलने से लाभ होगा, किसी की दोस्ती से लाभ या हानि होगी, संबंधों के गड़ने में यह बात इतनी अहम होती है कि प्रत्येक संबंध से मात्र संबंध ास टूटता जा रहा है. यह बात दर तक कुरेदती है. मानवीय संबंधों सहजता कम हो रही है. इसका व्यावसायिक तंत्र को देना चाहें, की भाग-दौड़ को देना चाहें, रण को देना चाहें तो दे दीजिए. के सभी भागों में यही स्थिति है हमारे यहां भी तेजी से पनप

हानी का एक बहुत बड़ा पहलू-प्रेम कहानियों का, बड़े अच्छे स्तर र ठीक-ठीक ढंग से प्रेम की स्थितियों को बितुनकर देखना या सेक्स के 'इन्वॉल्वमेंट' की स्थितियों को बितुन करके बड़े सुष्ठ ढंग से देख सकना—खोता चला जा रहा है. आज जो सेक्स वर्णन कहानियों में आता है, वह ऊपर से आरोपित किया हुआ, बिकने के लिए लिखा हुआ लगता है, आपको कैसा लगता है?

बंधों की सहज और छूने वाली कोई अच्छी कहानी मैंने इधर पढ़ी याद नहीं आता. प्रेम-संबंध के की कहानियां पढ़ी हैं, प्रेम संबंधों सायीकृत हो जाने की कहानियां प्रेम संबंधों में एकाकी हो जाने की पढ़ी हैं, दरार और अविश्वास नियां पढ़ी हैं. शायद आधुनिक का यह दबाव हो. स्त्री-पुरुष संबंधों में प्रेम की बदली हुई मानसिकता कहानियां आ रही हैं और आनी परंतु सहज प्रेम संबंध का आस्वाद कहानी का जैसे अभाव हो गया है. जहां तक सेक्स की बात है, संसार में प्राचीन काल से वह एक बिकने वाली वस्तु—कमॉडिटी, के रूप में इस्तेमाल होता है. आज भी संसार के अनेक देशों में इसका महत्वपूर्ण पर्यटन उद्योग के रूप में उपयोग हो रहा है. हमारे देश में भी सेक्स बहुत छोटे-छोटे स्वार्थों की पूर्ति का अप्रत्यक्ष साधन या समझौता बनकर उभर रहा है, यह तो नजर आ ही रहा है.

इसलिए यदि वह कहानियों में भी स्वार्थों के समझौते के रूप में आ रहा है तो इसे सहज मान लेना चाहिए.

मुझे लगता है कि सेक्स को किन्हीं स्थितियों में, किन्हीं लाभों की पूर्ति के लिए बहुत भौतिक ढंग से इस्तेमाल करने की स्थितियां हमारे महानगरों और व्यावसायिक तंत्रों में तेजी से आ रही हैं. मुझे थोड़ा विचित्र तब लगता है, जब वैयक्तिक संबंधों में भी इसे आनंद की जगह इस्तेमाल का साधन समझ लिया जाता है.

कहानी के शिल्प के संदर्भ में मेरे मन में एक बात उभर रही है. प्रायः मैं यह देख रहा हूं कि आत्मकथात्मक शैली में लिखने का आग्रह बढ़ता जा रहा है, कविताओं में भी यह बात आयी है, जैसे निजी अनुभूति को सार्वजनिक प्रामाणिकता प्रदान कर सामने रखा जा रहा है.

आत्मकथात्मक लेखन तो फिर भी कथा है, जिसमें कहानी का नैरेटर, कहानी लेखक से बहुत अलग हो सकता है. आत्मकथा 'मैं' से ही शुरू होती है. आत्मकथा का सबसे बड़ा संकट यह है कि 'मैं' अपने आप को कितनी निर्ममता से छील सकता है. अपने देश में 'आत्मकथा' लिखने की कोई पुष्ट परंपरा नहीं है और जो थोड़ी-बहुत आत्मकथाएं पिछले वर्षों में लिखी गयी हैं, उनमें इस निर्ममता का अभाव है. हमारा आत्मकथात्मक लेखन भी अधिकतर ऐसा ही है. आपने कविता की चर्चा की, मेरा खयाल है कि कविता में अनेक कवियों ने इस बीच अपने 'मैं' का खासा दुरुपयोग किया है. इधर की कविता में आया हुआ 'मैं' अत्यंत निरीह, शोषित, पीड़ित, लगातार सहते जाने वाला व्यक्ति, बड़ा ईमानदार बनकर उभरता है. 'मैं' की नजर से वह चारों ओर की व्यवस्था या व्यक्ति को देखता है जो उसे चालाक, धूर्त और शोषक नजर आते हैं. अपने आप के प्रति यह निरीहताबोध मुझे झूठी करुणा अर्जित करने का पाखंड-सा लगता है. जहां 'मैं' अपने आपको संपूर्ण विडंबनापूर्ण स्थितियों में सुरक्षित बचा ले और सारा दोष किसी दूसरे के सिर मढ़ दे, तो ऐसी आत्मकथात्मक कृतियों में कहीं झूठापन पैदा होगा, जैसा हमारी अधिसंख्य आत्मकथाओं में है.

मुझे लगता है कि वह कोमल मानवीय संबंध, जिसका धरातल मात्र संबंध होता है, धीरे-धीरे हमारे हाथ से जा रहा है. सभी संबंध व्यावसायिक बनते जा रहे हैं.

कभी आपको ऐसा लगता है कि किसी कहानी में आप किसी पात्र को जैसा चित्रित करना चाहते थे, वह हाथ से फिसल गया. उसने स्वयं अपनी दिशा खोजी और अपने आप को गढ़ लिया?

ऐसा भी होता है. अपनी लंबी कहानी 'कितने संबंध' को मैंने 'मैं' की शैली में लिखा था. कहानी में एक स्त्री, कथानायक की किन्हीं स्थितियों में बहन बन जाती है, जिसे वह सदैव नापसंद करता रहा है. अंत में जाकर वे दोनों पात्र जिस रूप में उभरे, उस संबंध में मुझे एक पाठक का पत्र याद है. उसने मुझे लिखा—आपकी कहानी का जो 'मैं' था, प्रारंभ में लग रहा था कि वह बहुत उदार है, किसी अनचाहे संबंध को वह अपनी उदारता के कारण स्वीकार कर रहा है, परंतु अंत में आते-आते लगा कि बहन तो बहुत बड़ी थी, कमीना तो वह 'मैं' निकला. उस कहानी को जब मैंने अपने मन में सोचा था तो मैं उसमें अनचाहे संबंध के द्वंद्व और यातना को उभारना चाहता था परंतु कहानी जैसी बनी, उसमें अनचाहे बहन कहीं बड़ी हो गयी और वह 'मैं' उस बहन के सामने बहुत छोटा हो गया.

पृष्ठ ७२ पर जारी

कोई तो

•विष्णु प्रभाकर

तीन दिन बाद मामा के घर पहुंची तो नंदिता लौट आयी थी. बोली, "अरे तू आ गयी. कभी मेरे उधर भी आ न. ऐसा भी क्या. . ."

नंदिता का मुख सहसा विवर्ण हो आया. वर्तिका मुस्कुरायी, "क्यों, कृष्ण ने मना किया है क्या?"

नंदिता बहुत पास आकर धीरे-से बोली, "मना नहीं करेंगे, पर मन से वह यही चाहते हैं कि मैं वहां न आऊं. पति के अधिकारों के प्रति बड़े सजग हैं. तुम्हारे बारे में न जाने क्या-क्या सुनते रहते हैं. प्रो. रुद्र और डा. रमाप्रसन्न उनसे मिलते रहते हैं. तुम अभी इलाहाबाद गयी थीं?"

"हां, कूपे में डा. रमाप्रसन्न के साथ गयी थी."

वे कह रहे थे, "किसी पर-पुरुष के साथ रात में कूपे में यात्रा करना, एक सीमा होती है स्वतंत्रता की. सच! क्या यह गलत नहीं?"

वर्तिका ने धीरे-से उसका कंधा दबाया, बोली, "सही-गलत क्या है, पता नहीं. पर बहनी, तुम्हें मेरे पास नहीं आना चाहिए. अच्छा!"

"जीजी!" नंदिता जैसे चीख उठेगी.

वर्तिका तब तक कुंतल भाभी के पास पहुंच चुकी थी. मुस्कराकर बोली, "हलो भाभी! कैसी हो?"

"ठीक ही हूं."

"यह ही क्यों? कहो ठीक हूं और हमारे बिट्टू भतीजे. . ."

"आज सवेरे बहुत रोया. अम्मा कहती है पेट में दर्द है."

वर्तिका ने बिट्टू को गोद में उठा लिया. मुख चूम कर बो
"बेटे! अभी से पेट की चिंता हो गयी. न, न, इतने लालची मत
मम्मी से कहो, अपना पेट ठीक रखो, आपका पेट मेरा पेट

कुंतल हंस पड़ी.

वर्तिका ने धीरे से बिट्टू को लिटा दिया. नींद आ रही थी
फिर भाभी के ऊपर झुककर बोली, "अब विश्वविद्यालय
खटखटाओ डाक्टरेट के लिए."

"क्या होगा डाक्टरेट करके दीदी?"

"जीने से क्या होगा, फिर भी जीना है. जीना है तो
जीना आना चाहिए.

"जैसा तुम कहो पर मुझे तो सब कुछ छूछा लगता है."

"बाहर कहीं कुछ छूछा नहीं है. छूछा बस मन है. मैं तो
कर चुकी हूं, अंत तक जिऊंगी, वह सब देखने के लिए जो मेरे
निश्चित हुआ है. मृत्यु के आने से पहले क्यों मरा जाये!". . .

"जीजी, आपने एक बार बिना अपराध के दंड भोगने
सांत्वना की चर्चा की थी."

"की थी भाभी! सांत्वना की उस तलखी को जो एक बार

ता है बार-बार भोगना चाहता है लेकिन हम फिर इन आप्त त्यों में उलझ गये. . .मैं देखूं जरा, चाय-वाय चल पड़ी या नहीं."

चाय पर मामी से बहुत देर बात करती रही. भाभी बच्चे के वास्थ्य के बारे में चिंतित थीं. पेट में कष्ट है. उसने यह भी कहा, कुंतल, कभी-कभी ऐसा बर्ताव करती है जैसे वह बेटे को परेशान खना चाहती है."

वर्तिका ने धीरे-से कहा, "आप इस बारे में भाभी से कुछ न कहें. . . क्टर क्या कहती है?"

"कुछ चिंतित है. कल शायद वे उसे अस्पताल में रखेंगी."

वर्तिका समझ गयी कि स्थिति कुछ गंभीर है, पर कहा उसने ही, "मामी! आशा करनी चाहिए सब ठीक होगा."

मामी का अंतर भीग-सा आया. दार्शनिक के से स्वर में बोली, जैसा वह चाहता है वही तो होता है."

तभी मामा ने आकर सूचना दी, "कल सवेरे दस बजे अस्पताल पहुंचना है."

तभी नीचे से मधुर की आवाज सुनायी दी. वर्तिका व्यस्त होकर उठी कि मधुर ऊपर आकर उससे चिपट गयी, "फ्लैट पर गयी थे, पता लगा आप यहां हैं. मामीजी, नमस्ते. मामाजी को भी. . र कहां हैं कुंतल भाभी और उसका बेटा? अब तो बड़ा हो गया गा." और उत्तर की आशा किये बिना अंदर दौड़ गयी.

मामी सहसा बोल उठी, "वर्ति! तू इलाहाबाद गयी थी न."

"हां मामी, गयी थी. कांफ्रेंस थी. अकेली नहीं थी. डा. रमा न्न भी थे, दोनों कूपे में थे."

मामी ने धीरे-से कहा, "तूने गलती की. रात में. . ."

"मामी, डा. रमाप्रसन्न की उमर पिताजी के बराबर है."

"सुना है, बहुत बदनाम है विश्वविद्यालय में. एक बार पकड़े थे. . .किसी लड़की के नंबर बढ़ाये थे."

"मुझे जानती हो तुम?"

"मेरे जानने से क्या दुनिया का मुंह बंद होता है. तुझे ध्यान ना चाहिए. लोग सच-झूठ की चिंता थोड़े ही न करते हैं. वह उसे र मानते हैं जिसे मानना चाहते हैं. . .!"

एकांत पाकर मधुर ने भी पूछा, "तुम इस बार इलाहाबाद थी."

"हां गयी थी. डा. रामप्रसन्न साथ थे. कूपे में गये थे दोनों."

"पर जीजी! यह क्या ठीक हुआ? कैसा बेहूदा पत्र लिखा है ने सुबोध को . स्तब्ध रह गयी. सुबोध ने पत्र पूरा पढ़ा नहीं और ड़ डाला. मैंने पूछा, "क्या है?"

"बोले, "डा. रामप्रसन्न हैं न, दिल्ली विश्वविद्यालय में. मेरे के रिश्ते में भाई लगते हैं. अपने सदाचार का प्रमाणपत्र भेजा न्होंने मेरे पास ताकि सनद रहे और वक्त जरूरत पर काम आये". मैंने कौतूहलवश फटे पन्नों को उठाकर पढ़ना शुरू किया कि न्होंने झपट लिया और उसकी चिंदी-चिंदी कर डाली."

"किसी का सदाचार-पत्र नहीं पढ़ा करते पगली." वर्तिका ने र का कंधा दबा दिया और बिना कुछ बोले बाहर चली गयी.

फ्लैट पर लौटकर वर्तिका ने पढ़ने की चेष्टा की. मौसी कॉफी कर रख गयी. कई क्षण चुपचाप पीती रही मानो जिंदगी की ाहट पी रही हो. क्यों है जिंदगी इतनी कड़वी? क्यों हम हर नैतिकता की चादर ओढ़े रहते हैं. . . ?

और क्यों भटक रही हूं मैं? कब तक लड़ती रहूंगी अकेले अपने से? क्या सचमुच कोई ऐसा व्यक्ति है जो मुझे नैतिकता से मुक्ति दिला सके. . .क्या नारायन मेरा साथ दे सकता है. . .?

सहसा उसने गरदन को झटका दिया. वह तनकर बैठ गयी. उसने तत्क्षण कलम और पैड उठाया और स्वयं अपने को चकित करती हुई लिखने लगी, तीव्र गति से मानो शब्द विचारों का साथ न दे पा रहे हों!

प्रिय नारायन,

बहुत भटकी हूं मैं पर दुख नहीं है भटकने का क्योंकि बहुत कुछ देखा है, और जाना है कि कितना कुछ है करने को.

मैं मध्यवर्ग से संबंध रखती हूं. यही वर्ग संचालन करता है समूचे राष्ट्र का. लेकिन स्वयं कितना रुग्ण, नैतिकता की नागपाश में जकड़ा हुआ, अस्तित्व के संकट से आक्रांत. . .

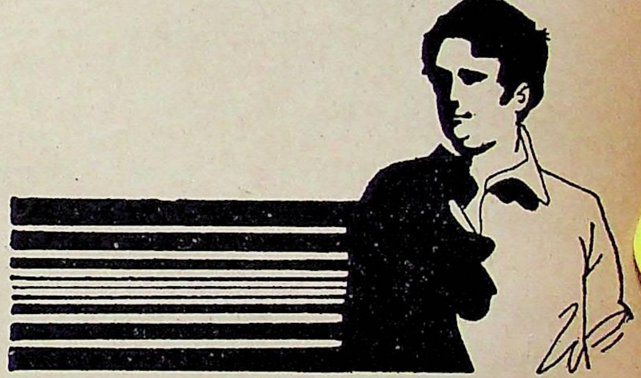

तुमने ही तो विवरण दिया है उस जघन्य घटना का जिसमें कुछ तथाकथित प्रबुद्ध युवकों ने पिकनिक पर गयी छात्राओं को शारीरिक रूप से अपमानित किया गया, लेकिन प्रधानाध्यापिका को उनके भविष्य की इतनी चिंता थी कि सार्वजनिक बयानों में वे अश्लील वाक्यों और मुद्राओं की चर्चाओं तक ही सीमित रही. यौन शुचिता की भावना कितनी शर्मनाक हो सकती है. . .

और मेरी मामी की कहानी! और मेरी कहानी! मैं अभी पिता की आयु के एक पर-पुरूष के साथ कूपे में गयी थी इलाहाबाद. कोई भी विश्वास करने को तैयार नहीं कि मैं अपने कौमार्य की रक्षा कर सकी हूंगी. . .

नारायन! क्या तुम यहां अनुभव नहीं करते कि सबसे पहली आवश्यकता आत्मनिर्भरता की है. नारी की आत्मनिर्भरता जो पुरूष-मानसिकता अर्थात सामंती मानसिकता की कलई खोल सके. .

किसान-मजदूर सभी दलित वर्गों की आत्मनिर्भरता जो आर्थिक और चेतना के शोषण से मुक्ति दिला सके. जिस देश की राष्ट्रीय आय का आधा भाग कृषि से आता हो, वहां कृषि और उससे संबद्ध लघु उद्योगों की इतनी उपेक्षा हो, इसीलिए न कि उत्पादन का ढांचा विलासोन्मुख है.

सेवक कहाने वाले सारी सुख-सुविधा के भक्षक आज के विलासी नेताओं ने कुर्सी और सत्ता के लिए राजनीति को वेश्या बना दिया है. किसी भी प्रकार की मानवीय संवेदना में उन्हें विश्वास नहीं है. राज्य करने के लोभ से उन्होंने मनुष्य में मनुष्यत्व छोड़ा ही नहीं. जो व्यवस्था विशिष्ट जनों के हित के प्रति प्रतिबद्ध हो वह आदमी के साथ छलावा ही कर सकती है. प्रश्न जमीन की मजूरी का हो या औरत के स्वामीत्व का, अंत उसका हत्याकांड और बलात्कार में ही होता है.

शोषण और भ्रष्टाचार से आतंकित समाज में किसी एक आदमी को दोष भी तो नहीं दिया जा सकता. मैं विद्यार्थियों को दोष दे रही थी पर वे तो उसी समाज का अंग है, जो समूचा कठघरे में खड़ा है. . .

कहां से कहां पहुंच गयी मैं, संबद्ध. .असंबद्ध. . .क्या-क्या लिख गयी, पर अब और नहीं. . .शब्द बहुत गुबार उठा चुके. पोस्टमार्टम इतने हुए कि समूचा वातावरण संड़ांध से आक्रांत है. अब कोई तो कुछ करे. वह कोई तो क्या हम नहीं हो सकते.

मैं चाहती हूं कि मेरे फ्लैट में जो कमरा खाली हुआ है, उसमें तुम आ जाओ, पूरे फ्लैट का उपयोग करने के अधिकार के साथ.

न मैं थकी हूं, न आहत हूं. निश्चित भविष्य है मेरे सामने फिर भी एक अनचीन्ही वेदना मुझे निरंतर करुणा बनाती रहती है. उसी से बचना चाहती हूं. बचना चाहती हूं उन दुर्बल क्षणों से जो सूनेपन और आतंकित कर देने वाले ठहराव को आकर्षित कर सकते हैं.

तुम्हारे स्नेह की,
र्वात

तीसरे दिन नारायण का उत्तर आ गया. लिखा था—

प्रिय र्वात,

यह जानकर कितना सुख मिला कि कोई तो मेरी तरह सोचता है. बहस में मैं भी बहुत बार बहका हूं. अब भी सत्य छल कर जाता है मुझसे पर तलाश जारी है. जहां तलाश है वहां कोई सिद्धांत आड़े नहीं आ सकता. . .

सिद्धांत विधि-विधान, सब जड़ हो रहते हैं, एक दिन नये को जन्म देने के लिए. उस प्रक्रिया में जो दर्द होता है उसी को सह रहे हैं हम. दर्द के बिना कुछ मिलता है क्या?

र्वात ! हम कोष के अर्थों को लेकर लड़ते हैं पर वे सही नहीं होते. भाषा जीने की प्रक्रिया में से उपजी थी. अर्थ पहले थे, शब्द बाद में आये. अब शब्द प्रमुख हो गया है. तभी तो हम छूछे हैं. भाषा को शब्द तो क्या, अर्थ से भी नहीं समझा जा सकता, भाव चाहिए उसे हृदयंगम करने को.

युगों पूर्व तात्कालीन परिस्थितियों में नैतिक नियम बने थे, वे आज वही भाव खो बैठे हैं, पर हम हैं कि उनके अर्थों से चिपके हैं. यही स्थिति नाना रूप से भ्रष्टाचार और ग्रंथियों को जन्म देती है. यह त्रासदी हर क्रांति से पूर्व अपने को दोहराती है. तब सभी संबंधों का अमानवीयकरण हो जाता है. . .

लो, मुझे भी तुम्हारी छूत लग गयी. बघारने लगा न दर्शन! मुझे तुम्हारा आमंत्रण स्वीकार है. . .

किसी दिन आकर चकित कर दूंगा तुम्हें!

तुम्हारे स्नेह का,
नारायन

अब भी दिलकश है तेरा हुस्न
मगर क्या की
और भी दुख हैं जमाने में मुहब्बत
के सिवा
राहतें और भी हैं वस्ल की राह
के सिवा
मुझसे पहले सी मुहब्बत मे
महबूब न मांग

रात को सोने से पहले गद्‌गद वर्तिका ने मौसी से कहा, "मौसी! वह नारायन है न, जिनका कमरा ठीक किया था, अब यही आक रहेंगे."

मौसी बोली, "राजेंद्र के कमरे में? राजेंद्र की तरह?"

"नहीं मौसी, मेरी तरह."

मौसी की अनुभवी आंखों ने वर्तिका को परखा, "क्या मतलब?"

अत्यंत मधुर स्वर में वर्तिका बोली, "और कुछ मत पूछो."

उस रात वर्तिका ने अपनी डायरी में लिखा—

मैंने दिशा पा ली है, अब मुड़ कर नहीं देखूंगी. और अपनी ओर से ऐसा कुछ नहीं करूंगी जिसे अमैत्री की संज्ञा दी जा सके विश्वास दूंगी, विश्वास चाहूंगी, जिस क्षण लगेगा विश्वास डगमग रहा है उसे मुक्त कर दूंगी. . . .

अकेलापन कभी-कभी इतना असहनीय हो उठता है कि उचित-अनुचित का ध्यान नहीं रहता. वह स्थिति नहीं आने देना चाहती मैं.. . . .

सारी रात जागती रही वह. अपने से प्रश्न करती रही. . . ठीक किया न मैंने?

किससे पूछती हो?. . . .

अपने से. . .

निर्णय का अधिकार अपने को हो सकता है लेकिन वह ठी है या गलत, यह निर्णय देने का अधिकार अपने को नहीं है.

किसे है फिर?

जो अपने से अलग है.

नहीं, नहीं, नहीं—मैं यह अधिकार उसे नहीं दूंगी.

यही विडंबना है. वह अधिकार उसे तुम्हीं ने दिया है.

मैंने. . . .

हां तुमने. तुम मात्र वर्तिका नहीं हो. तुम इकाई हो, इका शाश्वत है. किसी युग में किन्हीं इकाइयों ने अपने को मिला समाज बनाया था और निर्णय का अधिकार उसे दिया था.

के प्रति बदलता हुआ यह
रिया वक्त की मजबूरी है या
दमी की बेरुखी?
से जुड़े सवालों का सुलगता संसार
कथा विशेषांक
रिका की ओर से नये साल की प्रथम भेंट
जनवरी, १९८१

किन युग बदल गये हैं. क्या बदले युग में फिर से इकाई को का अधिकार नहीं है?

है, लेकिन मात्र किसी एक इकाई को नहीं, इकाइयों को है.

किन एक इकाई को मांग करने का अधिकार तो है.

है.

तो उसी अधिकार का प्रयोग मैं कर रही हूं. नये का आह्वान ांति की भूमिका सदा किसी एक से ही आरंभ होती है. . . .

और वर्तिका का अंतर मौन हो गया. उसे मीठी-मीठी नींद यी. स्वप्न देखा उसने. वायुयान में उड़ रही है वह, पास में न है, चारों ओर सुनहरी धूप है. उड़ते मेघ शावक हैं. दूर र्गी नक्षत्र है दीप्तमान, सब कुछ को दीप्त करता, वही है उनका. . . .

भी शून्य में से, एक के बाद अनेक वायुयान प्रगट हो जाते हैं. गति से उनके यान की ओर बढ़ते हैं.

नारायन कहता है, "सावधान वर्ति, आक्रमण हो रहा है!"

र्तिका कहती है, "होने दो, तुम साथ हो."

आक्रमण होते रहते हैं, यान बढ़ता रहता है . . . कि भयंकर र्जन मच उठता है!

अंधकार छा जाता है. उसका हाथ अभी चक्के पर है कि चीख ी है वह, "नारायन. . . .यान में कोई है. . . .!"

सचमुच वर्तिका चीखी और उसकी चीख सुनकर मौसी की ल गयी, "क्या है बेटी, डर गयी!"

री मां! कैसे छाती धड़क रही है. . . .!" सच मौसी डर ी, "पर अब ठीक है, सोओ तुम."

मौसी सोचने लगी. . . .नारायन को अब आ ही जाना !

□

618, कुंडेवालान, अजमेरी गेट, दिल्ली-6

[लेखक के इसी नाम के उपन्यास का एक अंश, जो ब्दकार प्रकाशन, तुर्कमान गेट, दिल्ली-6 द्वारा शीघ्र ही प्रकाशित किया जा रहा है]

लघुकथा

तीस रुपये

यह कथा सिर्फ कथा नहीं, हालात द्वारा हम पर लादी गयी एक हकीकत है, जिसे कथा का रूप तो मैंने दे दिया है.

▣ छाया वर्मा

"सुनो, सो गये क्या?"

"नहीं, क्या बात है?"

"एक बात कहूं?"

"कहो."

"नाराज तो नहीं होगे?"

"नहीं, कहो तो."

"सोच रही हूं, दीपू की स्कूल-बस छुड़वा दूं."

"फिर जायेगा कैसे?"

"पैदल चला जायेगा. कोई बहुत दूर तो नहीं."

"इतना पास भी तो नहीं . . . और फिर इतना भारी बैग . . . .?"

"बैग मैं ले लिया करूंगी."

"तुम जाओगी छोड़ने?"

"हां, तो क्या हुआ, तब तक बेबी के पास तुम रहोगे ही."

"ठीक है. लेकिन क्यों?"

"सोचती हूं, महीने में तीस रुपये बच जायेंगे."

"उन पैसों का क्या करोगी?"

"दूध बढ़ा दूंगी. बेबी के पीने के बाद बेचारे दीपू के लिए एक कप भी नहीं बचता."

". . . . ."

"चुप क्यों हो गये, कुछ गलत कहा मैंने?"

"नहीं, बस तो छुड़वानी ही पड़ेगी."

"और अगले महीने से दूध बढ़ा देंगे."

"दूध पीना शायद दीपू के नसीब में नहीं."

"क्यों?" वह झटके से उठ बैठी.

"अगले महीने से मकान मालिक ने किराया बढ़ा दिया है."

"बढ़ा दिया? कितना?"

"तीस रुपये!"

अनजानी इतिहास कथाएं

इतिहास को किसी ने 'अनुमोदित कल्पना' कहा है और किसी ने 'मानव जाति के अपराध, मूर्खता एवं दुर्भाग्य की पंजिका', लेकिन हमें लगता है कि इतिहास अतीत के हादसों की कब्रगाह है. किसी भी कब्र को कुरेदिए, आपको चीखते, कराहते, पैशाचिक अट्टहास लगाते हादसे नजर आयेंगे--वे हादसे, जिन्हें आम पाठक नहीं जानते. अगस्त : 80, अंक : 2 से प्रारंभ इस श्रृंखला में इस बार प्रस्तुत है--शाहजहां की एय्याशियों के किस्सों की झांकी कि किस प्रकार वह शालीन होने के बावजूद न केवल खुद नुकसान में रहा बल्कि अपनी बेटी जहांनारा को भी ले डूबा--

पर नारी पैनी छुरी

▣ बाला दुबे

पर उसे पैनी छुरियों से ही खेलने का बेहद शौक था--तेज धार वाली पैनी छुरियों से!

यह खिलाड़ी था--अबुल मुजफ्फर शिहाबुद्दीन मुहम्मद साहिबे किरान-ए-सानी शाहजहां!.....जहांगीर और भानुमती उर्फ जगत गुंसाई राजपूतनी का बेटा--शाहजहां. जिंदगी में कभी किसी से 'तू' करके नहीं बोला. हमेशा 'आप' कहा, भले ही छोटा हो या बड़ा. खुशबू का बेहद शौकीन, खास तौर से गुलाब के इत्र का दीवाना.

शाहजहां की बड़ी बेटी जहांनारा उर्फ बेगम साहिब थी बहुत सुंदर. और मशहूर था कि वही पैनी छुरियों को फुसलाकर शाहजहां की 'ख्वाबगाह' में लाती थी. करीब डेढ़ करोड़ रुपये खर्च किये थे शाहजहां ने ख्वाबगाह बनवाने में. चारों ओर आदमकद शीशे और सोने के पत्तर चढ़ी दीवारें.

मैनरीक लिखता है कि शाहजहां की नजर अपने साले शाइस्ता खां की खूबसूरत बीवी पर पड़ी और जहांनारा उसे शाहजहां का अद्भुत कमरा दिखलाने ले आयी. शाहजहां ने उसके साथ जबरदस्ती की. किले से लौटकर वह सीधी अपनी हवेली आयी, जहां आज फैज बाजार की पुलिस कोतवाली है, वहीं शाइस्ता खां रहता था.

शाहजहां की चहेती बेगम मुमताजमहल का भाई, आसफ खां का बेटा--शाइस्ता खां. उसकी बीवी ने आकर चटाई बिछाई और लेट गयी. आंखों से संताप की नदी बह निकली. वह यही कहती रही कि वह नापाक हो गयी है. शाइस्ता खां ने समझाया, उसे हर हाल में कबूल किया. रिश्तेदारों ने समझाया, शहर के बुजुर्ग नारुह ने समझाया, पर वह नहीं मानी. सात-आठ दिन तक भूखी-प्यासी रहकर वह मर गयी.

शाहजहां और जहांनारा सुनकर कांप गये थे. किस तरह बदबू फैली थी दिल्ली के वातावरण में. और शाइस्ता खां शाहजहां का जानी दुश्मन बन गया और बाद में औरंगजेब का अनन्य मित्र.

उधर खलीलुल्लाह खां की बीवी हमीदा बानू के चर्चे दिल्ली भर में फैले हुए थे. खलीलुल्लाह खां मीर मीरान यज्दी का छोटा बेटा था. उसकी शादी आसफ खां की पोती से हुई थी. इस रिश्ते से हमीदा बानू शाहजहां की भतीजी लगती थी. बड़ी पैनी थी हमीदा बानू! शाहजहां की चहेती पैनी छुरी बन गयी पांव में तीन लाख की जूती पहनकर जब वह पालकी में लाल किले आती तो चांदनी चौक के फकीर-फुकरे यह लगाते, "ऐ लुक्मा-ए-शाहजहां, कुछ इधर भी!" और वह होकर उन्हें बख्शीश देती जाती.

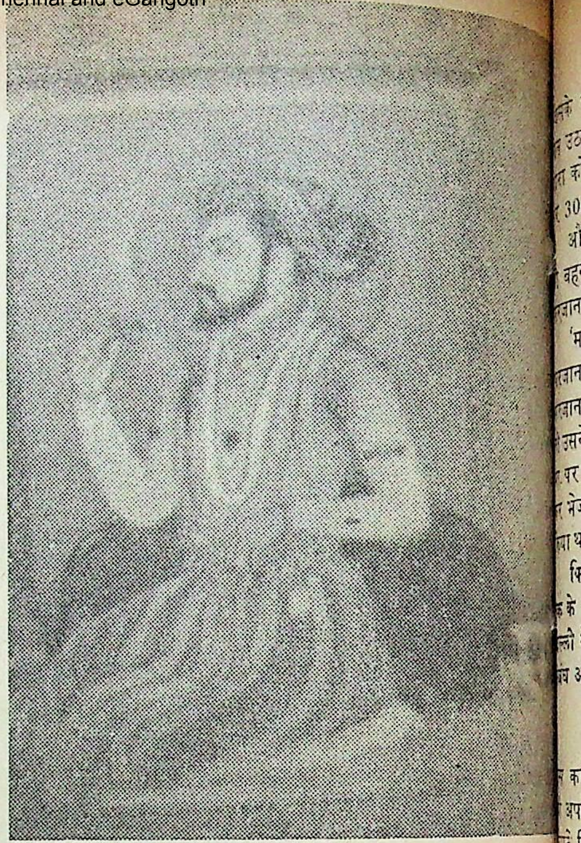

● शाहजहां : पैनी छुरियों का शौकीन!

दरबार के रईस खलीलुल्लाह खां पर फब्तियां कसते किसी ने शाहजहां के कान भरे कि उसकी बीवी पांवों में लाख की जूतियां पहनती है तो शाहजहां ने भरे दरबार में लुल्लाह खां से पूछा था, "क्या यह सच है?" तभी किसी मन अमीर ने कहा था, "हुजूरेवाली, खलीलुल्लाह खां साहिब सारी जायदाद बेगम साहिब के पांवों में रहती है. कभी-क वे इन जूतियों को खां साहब के मुंह पर भी मार दिया करती

सारा दरबार हंस पड़ा था. खलीलुल्लाह खां के दिल सांप लोट गये. आखिर वह बहरा नहीं था. उसने भी सब सुन रखा था. यही खलीलुल्लाह खां भी शाहजहां का दुश्मन और फिर औरंगजेब का दोस्त.

जब सामूगढ़ की लड़ाई लड़ने दाराशिकोह चला हमीदा बानू ने उसे आगाह किया था कि वह खलीलुल्लाह सतर्क रहे. खलीलुल्लाह खां की कमान में 30,000 घुड़ थे. औरंगजेब तो लड़ाई करीब-करीब हार ही गया था. उसने खलीलुल्लाह खां के कुचले स्वाभिमान को कुरेदा

"दारा की जीत, शाहजहां की जीत होगी....

के संबंध उसकी बेगम से हैं!" खलीलुल्लाह खां उस समय उठाये सांप की भांति बन गया था. उसी ने तो बहकाकर को उसके हाथी से नीचे उतरवाया था और वही ऐन वक्त 30.000 सवार वापस मोड़कर औरंगजेब से मिल गया था.

और दूसरा था जाफर खां. शाहजहां के ससुर आसफ खां बहन का लड़का, जिसकी शादी फरजाना बेगम से हुई थी. जाना बेगम भी शाहजहां की मनपसंद पैनी छुरी थी.

'मा आसिरे उल-उमारा' में लिखा है कि शाहजहां और जाना बेगम का बेटा नामदार खां हू-ब-हू दारा जैसा लगता था. जाना पर शाहजहां इस कदर मोहित हुआ था कि एक बार उसने जाफर खां को हमेशा के लिए हटाने का इरादा कर लिया पर फरजाना के कहने पर जाफर खां को पटना का सूबेदार बना-भेज दिया गया था. जाफर खां को शाहस्ता खां ने आगाह या था. और फिर वह भी शाहजहां का दुश्मन बना.

फिर मीर मुस्तफा खां की बेगम पर शाहजहां की नजर पड़ी. के बाद एक पैनी छुरियां इकट्ठी करने लगा था वह. तभी ली में एक और भयंकर अफवाह उड़ी. शाहजहां का अनुचित ंध अपनी बेटी जहांनारा से है!

शाहजहां और जहांनारा के संबंध?

काल में बाहर से आये यूरोपियन यात्रियों ने इस अफवाह अपने कानों सुना. यहां तक कि मुल्लाओं ने भी अपने लबे-टे विचार प्रकट कर डाले, "बादशाह ने जिस दरख्त को अपने ों से लगाया है, उसके फल खाने का उसे हक है!" क्या मतलब या जाये इसका?

प्रसिद्ध इतिहासकार विंसेंट स्मिथ लिखता है—"अगर जहां और उसकी बेटी के बारे में यह दुखदायी अफवाह कुल सत्य नहीं है तो बिलकुल असत्य भी नहीं है. यह बात न नहीं है कि शाहजहां बहुत एय्याश था और जहांनारा की गी के किस्से अपनी जगह मशहूर थे. . . .फिर भी यह विश्वसनीय-सा तो लगता ही है कि क्या वे इतने गिर चुके थे? ोंकि इस प्रकार के उदाहरण कुछ वर्ष पहले दक्षिण अफ्रीका 'बोअर' जाति में प्रमाणित हुए हैं."

मानूची अपनी पुस्तक 'स्टोरिया डि मोगोर' में लिखता है वह बर्नियर के इस कथन को 'नीचे तबके के लोगों की शरारत-अफवाह मात्र मानता है.'

सर रिच डटैंपल कहता है, "मैं इसे ऊंचे तबके में प्रचलित शरारतपूर्ण अफवाह मानता हूं, जो कि अक्सर हिंदुस्तान के ज़ाम में पायी जाती है. यह बात सही है कि मुगल शाहजादियों विवाह पर पाबंदी लगा दी गयी थी. . . . .शाहजहां काफी ाम था और यह भी सत्य था कि उसने जहांनारा को काफी कार दिये थे. उसका पक्षपात वह खुलेआम करता था. इसीलिए यह अफवाह फैली हो."

हो सकता है कि चोट खाये लोग—जैसे शाइस्ताखां, खलीलाह खां, जाफर खां, मीर मुस्तफा खां आदि का इस अफवाह फैलाने में हाथ हो. या शायद यह डरी हुई प्रजा के मौखिक ोध का दबा हुआ सा-विस्फोट मात्र हो.

में बंदी रूप में भी शाहजहां एय्याश ही रहा. उसके अंत के बारे में मानूची और बनारसी प्रसाद सक्सेना लिखते हैं 'वह 61 वर्ष की आयु में भी युवा बनने का असफल प्रयास करता रहा.'

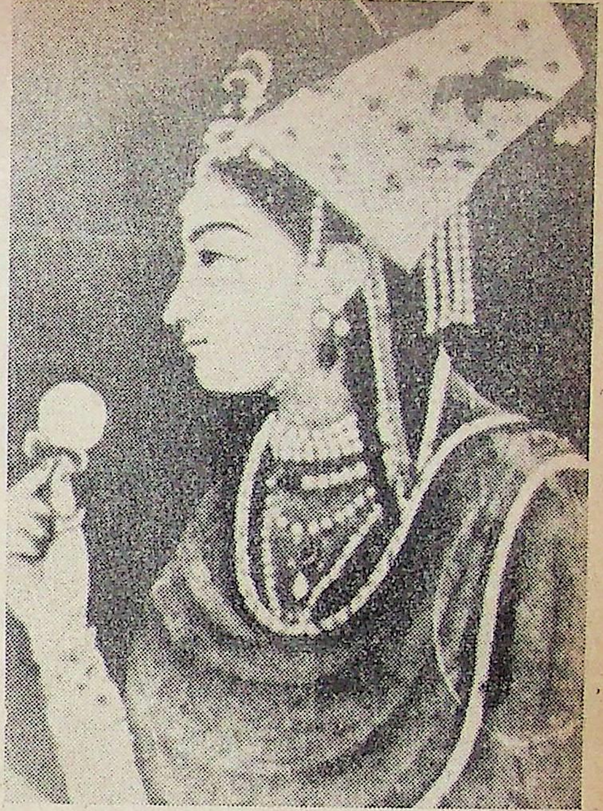

• जहांनारा : खिदमतगार बेटी!

शाहजहां की मौत और मौत की शिनाख्त

एक दिन जब वह शीशे के आगे खड़ा होकर अपनी मूंछें ठीक कर रहा था तो पीछे खड़ी आफताब और माहताब नाम की दो खूबसूरत लौंडियों ने मुंह बिचकाकर आपस में उसका मजाक उड़ाया. इस क्रिया को शाहजहां ने शीशे में देख लिया. उसके दुर्बल अहं को जबरदस्त धक्का लगा और उसने फौरन अपने हकीम रिज्कउल्ला मुकर्रम खां से औषधियुक्त तेल मंगवाकर मालिश करवायी. वह कुछ तेज कुश्ते भी खा गया. दवाओं का फौरन ही विपरीत असर हुआ. उसका पेशाब बंद हो गया, पेट में भयंकर मरोड़े उठने लगे और तेज ज्वर ने घेर लिया. उसके निजी हकीम वृंदावन ने नौ दिन तक इलाज करके उसे कुछ ठीक तो कर डाला पर शायद उसका अंत आ चुका था.

जब शाहजहां मर गया तब औरंगजेब ने अपना एक विश्वसनीय आदमी भेजा. उसने लाल तपी सलाख शाहजहां के पांव के पास फेरी. जब लाश में कोई सिहरन न हुई, तब उसने औरंगजेब को जाकर बतलाया कि शाहजहां सचमुच मर गया है!

—अगले अंक में—

पतझड़ का अंतिम गुलाब

1774! जब भारत पर कब्जा करने के लिए फ्रांस और इंग्लैंड जूझ रहे थे—फ्रांसीसी मैडम टैलीरेंड का रोमांचक किस्सा

एक-एक

एक मौका और दिया जाये हुजूर!

माई लार्ड! आपने अभी-अभी कटघरे में खड़े इस तथाकथित हत्यारे का बयान सुना. मेरे खयाल से इसके बाद और किसी गवाह के बयान या वकीलों की जिरह सुनने की जरूरत नहीं रह जाती. इसमें कोई संदेह नहीं कि इसने जो कुछ कहा, सच कहा. दरअसल यह इस कदर अनुभवहीन है कि सच के सिवाय और कुछ कह भी नहीं सकता, मगर यह जरूरी नहीं कि इसका सच औरों का भी सच हो. सूरज का गोला एक सच्चाई है, पर एक ही समय वह एक के लिए उगता सूरज और दूसरे के लिए डूबता सूरज होता है. यह आप पर निर्भर करता है कि उस सच्चाई को देखने के लिए आप कौन-सी जगह चुनते हैं खड़े होने को.

यह अपने को ढंग का आदमी कहता है और एक ढंग की नौकरी पाने का अधिकारी मानता है. यह किस ढंग का आदमी है, किस ढंग की नौकरी करने को उत्सुक है और उसे पाने को किस ढंग की हरकत करता है, यह आप सुन चुके हैं. हम इसके तर्क को बेढंगा नहीं कहेंगे, क्योंकि यह इसका सच है. हमारे समाज में मनुष्य को उसका चरित्र नहीं, धन प्रतिष्ठित करता है. धन किस ढंग से अर्जित किया गया है, इस ओर ध्यान नहीं दिया जाता, वरना मिलावट के धंधे में सक्रिय रूप से शामिल हो जाने को व्यग्र यह आदमी अपने को ढंग का आदमी कहने का साहस न कर पाया होता.

तथाकथित हत्यारा एक इंजीनियर है और ढंग की नौकरी के लिए इंटरव्यू देने को एक प्रौढ़ के पास जाता है. गौर कीजिए महामहिम, वह 'प्रौढ़' है, इसकी तरह नादान बच्चा नहीं. प्रौढ़ है, जभी पत्थर सप्लाई करने का सरकारी ठेका हासिल कर चुका है. सरकारी रेट्स अच्छे होते हैं, मगर सरकारी ठेके दिलवाने के रेट्स भी उतने ही ऊंचे होते हैं. हत्यारा शायद यह नहीं जानता कि एक सरकारी फाइल को अपनी मंजिल तक पहुंचने के लिए कितने पड़ावों से गुजरना पड़ता है. दर्जनों जगह पिंडदान करो, दर्जनों आत्माओं को तृप्त करो, तब जाकर फाइन बिल की सद्गति होती है. खालिस माल की सप्लाई करने का अर्थ हुआ अपना दीवाला पिटवाना. सरकारी नौकर पत्थरों से भी तेल निकाल लेने की क्षमता रखते हैं. ऐसी स्थिति में मिलावट द्वारा उन पत्थरों का वजन बढ़ाना ठेकेदारों के लिए केवल सैद्धांतिक उलझन ही नहीं, आर्थिक अनिवार्यता का प्रश्न भी हो जाता है?

अबोध हत्यारे को मिलावट की तकनीक नहीं आती थी, इंटरव्यू में छांट दिया गया. सरजूप्रसाद को आती थी, चुन लिया गया. हत्यारे ने सरजू के पैरों पर सिर रख दिया, शिष्यत्व देना ही पड़ेगा, दीक्षित करना ही पड़ेगा, पत्थर में मिलावट करने की कला सिखानी ही होगी. हाय, यह अंधा अपने उस्ताद की मजबूरी देख नहीं पाया. द्रोणाचार्य उस समय तक बिक चुके थे. एपायंटमेंट लेटर स्वीकार कर चुके थे. गुरु के ज्ञान का कापीराइट ठेकेदार के पास पहुंच चुका था, पर यह बेवकूफ बीच बाजार में पांव पकड़ उस्ताद की ऐसी-तैसी करने लगा, उसका बखिया उधेड़ने लगा. सरजूप्रसाद इसे दुत्कारता नहीं तो और क्या करता? अब जरा देखिए ढंग के इस आदमी को. यह गिड़गिड़ा सकता है और तिलमिला भी सकता दुत्कारे जाने पर यह अपने असली रं आ गया. गुरु को डराने या चोट पहुंचा के इरादे से इसने छुरा निकाल लिय आज का एकलव्य अंगूठा काटकर तो न देता, गुरु को अंगूठा दिखाकर भी बस न करता, सिर काटकर गुरु-दक्षिणा देता

"कानून की दृष्टि में आत्महत्या ही एक ऐसा काम है, जिसको सफलता से कर लेनेवाला निर्दोष और जिसमें असफल रह जाने वाला दोषी माना जाता है." 'सारिका' मई 1980, अंक : दो में प्रकाशित मनहर चौहान की कहानी 'एक तथाकथित हत्यारे का बयान' पढ़ते-पढ़ते व्यंग्यकार किट्टू रुक गये और कलम उठाकर एक और मौके की फरियाद कर बैठे. प्रस्तुत है, एक और चुलबुला खत.

सरजू प्रसाद मरा नहीं है. सरजूप्रसा कभी नहीं मरता. प्रेतों की दुनिया के वाशि के लिए दुबारा मरने का प्रश्न ही न उठता. यकीन न हो तो आप उस प्रौढ़ देखें. वह आज भी मजे से सरकार को पत्थ की सप्लाई कर रहा है और उसका दीवा नहीं निकला है. जाहिर है, उसके मातह में एक सरजूप्रसाद है, जिसके पास ऐसा तरल पदार्थ है, जिसके छिड़क से पत्थरों का वजन बढ़ जाता है. आप जानकारी के लिए यह बता दूं माई ला कि सरजू प्रसाद न इंजीनियर है और वैज्ञानिक. वह केवल एक वजन है. मेरा मतलब है, वह एक सरकारी अफ का साला है, जहां ठेकेदार पत्थरों सप्लाई करता है.

तथ्य यह है कि अभियुक्त के हाथों कि की हत्या नहीं हो पायी. यह अनाड़ी भी काम ढंग से नहीं कर पाता. इस तर्क के अनुसार मिलावट की कला सीख इसके लिए आत्मरक्षा का प्रश्न क्योंकि ऐसा न करता तो इसे ढंग की नौक नहीं मिलती और एक दिन इसे आत्मह कर लेनी पड़ती. इसके तर्क समझ में हैं, पर क्या हम नहीं कह सकते कि 'आ रक्षा' के नाम पर यह 'आत्महत्या' क जा रहा था? प्रेतों की दुनिया में जाने लिए यह अपने को मारने की कोशिश रहा था? कानून की दृष्टि में आत्मह ही एक ऐसा काम है, जिसको सफ से कर लेने वाला निर्दोष और जि असफल रह जाने वाला दोषी माना जा है. यह दोषी है माई लार्ड! पर इस कच्ची उम्र को देखते हुए इसे एक मौ और दिया जाये हुजूर! हो सकता अगली बार ढंग की जिंदगी जीने की लल में अपनी हत्या कर लेने में यह सफल जाये और अपने को निर्दोष साबित कर

■ किट्

धारावाही उपन्यास : दूसरी किस्त

"खुदा सही सलामत है!" यह कोई खबर नहीं है, क्योंकि खुदा तो जहां का भी होगा—आसमान का या जमीन का—सही सलामत ही होगा. सवाल तो सिर्फ बंदों की सलामती का है. बंदों की सलामती की पड़ताल करते रवींद्र कालिया ने इन्हें अपने उपन्यास के पात्रों में ढाला है. ये पात्र किसी एक गली के होते हुए भी एक गली, एक शहर या एक युग तक सीमित नहीं रहते बल्कि पूरी इनसानियत का प्रतिनिधित्व करते हैं. ये आपके सामने आते हैं और अपनी छोटी-सी भूमिका निभाकर चले जाते हैं. और पीछे छोड़ जाते हैं एक सवाल—बंदों की सलामती का सवाल.

अगस्त, अंक-2 : 1980 में प्रकाशित 'हुस्नाबाई का भाषण' उपन्यास की शुरुआत थी. पिछले अंक में आपकी मुलाकात हुई थी शिवलाल से जिसे अपनी चक्की के लिए कबाड़ी से चोरी का एक पट्टा खरीदने के जुर्म में पुलिस पकड़ ले गयी थी और पास-पड़ोस के लोग उसकी बीवी गुलाबदेई को पहले से आश्वासन तो देते रहे, पर आड़े वक्त सभी ने हाथ खींच लिये. लीजिए इस किस्त में मिलिए हैदरी से.

खुदा सही सलामत है

• रवींद्र कालिया

हैदरी इस गली की सबसे पुरानी बाशिंदा थी. हैदरी उन दिनों की यादगार है, जब इस गली में सांझ घिरते ही पायल बजने लगती, हारमोनियम और सारंगी रात-रात भर जवान रहते. अब जमाना बदल गया था. तवायफों की हालत काबिले रहम हो गयी थी और साजिंदे धीरे-धीरे खुदा को प्यारे हो गये थे या रेडियो में भरती. वाकर भी इसलिए बच गया कि बीस बरस पहले आकाशवाणी में एक सारंगीवादक के रूप में भरती हो गया था. पिछले बरस यके-बाद-दीगरे उसके साथ जो दुर्घटनाएं हुईं, उनसे वह पूरी तरह टूट गया—शहनाज की बेरुखी और 'रिटायरमेंट' एक साथ कुफ्र की तरह उसके ऊपर टूटे.

शहनाज को खोकर और रिटायरमेंट पाकर वह बहुत अकेला हो गया. हकीमजी के चौतरे पर पड़ा रात-रात भर पागलों की तरह सारंगी बजाता. मुहल्ले वाले समझते, वाकर मौत को बुला रहा है. वाकर को इस आलम में देखकर हैदरी बी जाड़े की बेहद बर्फीली रात में भी अपने सूती लिबास में ठिठुरती हुई गली में आकर चिल्लाने लगती, “वाकर, अब सो जाओ. सारी दुनिया सो गयी है. तुम्हारी सारंगी सुनकर तो न अब जरीना लौट सकती है और न नौकरी. तुम्हारी सारंगी सुनकर मेरे जिगर में कुछ डूबने लगता है. बंद करो अब वाकर अपना यह करोबार! तुम्हारी सारंगी के बोल सुनकर मेरी बूढ़ी हड्डियों में थिरकन आने लगती है. अल्लाह ने मुझे भी अक्ल दी होती तो शहनाज बेगम की तरह कोयले की दलाली करने लगती और तुम्हें कभी यों लाचार न देखती.”

वाकर की दाढ़ी बढ़ी हुई थी. उसकी लंबी कलात्मक उंगलियां सूखकर लौकी की बेल की तरह हो गयी थीं. आंखों में मल भरी थी. कपड़ों से बू आ रही थी और वह एक भिखारी की तरह हकीमजी के चौतरे पर निढाल पड़ा रहता. बीच-बीच में धुन में आकर पागलों की तरह सारंगी बजाता. कुछ राहगीर सारंगी सुनने को खड़े हो जाते और आते-जाते उसकी तरफ एकाध सिक्का उछाल जाते. वाकर उन सिक्कों से बेन्याज पड़ा रहता. मुहल्ले के लौंडे मौका मिलते ही सिक्के उठाकर भाग निकलते.

हकीमजी के बच्चे अब मृतसंजीवनी सुरा के नाम पर ठर्रा बनाते थे. खुद पीते थे और पूरे मुहल्ले को पिलाते थे. लड़कों में हकीमजी का कोई गुण नहीं आया था सिवाय इसके कि वे अपने बाप की तरह खुदातर्स और भावुक थे. दूसरों के दुःख को शिद्दत से महसूस करते थे. वाकर एक ऐसा कलाकार था कि उसे दूर-दूर से बुलाए आते थे. यह वही कलाकार था जिसकी सारंगी की धूम दूर-दूर थी. बड़ी-से-बड़ी गानेवालियां इस फिराक में रहती थीं कि वाकर मियां उनके साजिंदों के साथ हो लें. वाकर मियां जिस किसी के साथ हो जाते, उसका धंधा कुलांचें भरने लगता. अपनी जवानी में वाकर का कोई सानी न था. लड़ाई के दिनों में जब अंग्रेजों ने शहर में छावनी डाली थी तो वह एक-से-एक रसिया को पकड़ के ले आता था. लोकधुनें सुनकर कई गोरे बहुत खुश होते और मुंहमांगी बख्शीश देते.

बहुत पहले अजीजन ने वाकर को कई बार कहलाया था कि वह उसके साजिंदों में शामिल हो जाये. वाकर को अजीजन के महत्व का एहसास था, मगर वह जिद्दी आदमी था. उसकी जिद थी कि वह अपने साथ तबलची भी लायेगा और अजीजन अपने पुराने तबलची नियाज को किसी भी सूरत में निकालने को तैयार न थी.

आखिर अजीजन ही उसके काम आयी. जब एक-एक कर सब खैरख्वाह लोग कन्नी काट गये और अजीजन को इत्तिला लगी कि वाकर मौत के कगार पर खड़ा है तो वह तुरंत हकीमजी के चौतरे पर जा पहुंची.

“खैरियत तो है वाकर मियां?” अजीजन ने वाकर के गर्म माथे पर अपनी हथेली टिकाते हुए पूछा.

“इनायत है, अजीजन बी.” उसने उठने की कोशिश करते हुए कहा, मगर उठ न पाया. इसी क्रम में उसे खांसी का दौरा पड़ा. वह फिर कुछ बोल नहीं पाया. अपनी दुबली, बीमार कृश उंगलियों से उसके प्रति आभार प्रकट करता रहा.

“मैं तुम्हें अस्पताल में दाखिल करवाने की कोशिश करूं” अजीजन ने कहा. वह फौरन अस्पताल की ओर चल दी.

अस्पताल में उसके एक परिचित डाक्टर थे, डा. उस्मा डा. उस्मानी के पिता अजीजन के अच्छे दोस्त थे. उसने अस्प जाकर उनके बारे में पूछा तो मालूम हुआ कि वे छुट्टी प अजीजन ने वहीं अस्पताल से टेलीफोन पर बात की. डा. उस ने दाखिले का इंतजाम कर दिया.

थोड़ी देर के बाद जब अस्पताल की गाड़ी गली में दा हुई तो हकीमजी के चौतरे के सामने भीड़ लग गयी थी. ब बूढ़ों, बुढ़ियों की भीड़. सब लोग अजीजन की तरफ श्रद्धा देख रहे थे. पोर्टर जब बूढ़े वाकर को स्ट्रेचर में लिटाकर ले तो अजीजन ने दोनों को पांच-पांच के नोट थमा दिये.

थोड़ी देर में वैन वाकर को लेकर चली गयी. हकीम का बड़ा लड़का जो खुद अस्पताल में दाखिल होने लायक साथ में गया. उसने सोचा, किसी दिन अजीजन से कहकर खुद भी भरती हो जायेगा.

अस्पताल की वैन वाकर को लेकर रवाना हुई तो है गश खाकर वहीं चौतरे पर गिर पड़ी. लोगों ने ठंडे पानी की बूंदें उसके मुंह में डालीं तो वह शेरनी की तरह चौकस हो और शहनाज बेगम की दूकान के सामने उसने जमकर मि किया.

शहनाज बेगम से हैदरी को शुरू से ही रश्क था. दिसंबर में पुलिस का छापा पड़ते ही शहनाज बेगम ने चुपचाप को की दूकान कर ली और घोषणा कर दी कि हिंदुस्तान आ हो गया है. अब यह सब नहीं चलेगा. लोग फिल्म देखेंगे गाना सुनने के इरादे से इकबाल गंज में जो कदम रखेगा, पु मार-मार के भरता बना देगी. कोयले की दूकान दूर-दूर तक न शहनाज बेगम ने तय किया, क्यों न कोयले का धंधा ही शुरू कि जाये. इस धंधे में दिन भर में दो-तीन रुपये उसे मिल जाते. भी आराम हो गया और मुहल्ले वालों को भी. शहनाज के एक मकान था और कुछ नहीं था. मकान का वह क्या क नीचे की कोठरी में अपनी नन्हीं-सी दूकान बैठा ली. कोयले दूकान ही उसने क्यों खोली, वह खुद नहीं जानती. उस वक्त यही सूझा था.

“जिंदगी भर काला धंधा ही तो किया है.” वह क “यह इसी मुल्क में हो सकता था कि मौसीकी और रक्स भी धंधा बनकर रह जायें.” वह कहती.

लोगों का खयाल था कि शहनाज बेगम ने वाकर की से पूरा पैसा हथियाकर उसे लतिया दिया. जबकि सच्चाई थी कि शहनाज बेगम ने शुरू से ही अपनी सीमित आय से की मदद ही की थी. डा. अस्करी से उसको इंजेक्शन भी थे. मगर वह दिन-ब-दिन मजबूर होती चली गयी. उसका बुढ़ापा उसके सामने मुंह बाये खड़ा था. इससे ज्यादा वह क्या सकती थी. वाकर ने भी कभी अपने मुंह से शहना बुराई न की. वह जवानी में उस पर फिदा था मगर तब

पहुंच के बाहर थी. शहनाज उसे तब मिली जब दोनों बूढ़े थे. अब उसकी जिंदगी एक खुश्क पत्ते की तरह थी, जिधर आता उधर हो लेता. और कहीं जगह न नसीब हुई तो बाड़े में ही लेटा रहता. हैदरी बी से उसकी यह हालत बरदाश्त ती. वह शहनाज बेगम की दूकान के आसपास खड़ी होकर चिल्लाती, "खसम किया था तो जिंदगी भर साथ-साथ ती! तुममें इतनी भी मुरव्वत नहीं कि जाकर इमामबाड़े में देख आओ! वह एक लावारिश लाश की तरह वहां पड़ा री सांसें गिन रहा है!"

हनाज बेगम ने दसियों साल पहले तय किया था कि वह की किसी बात का जवाब न देगी. वह चुप रहती या उठकर दूसरी जगह चली जाती. जाते-जाते वह एक वाक्य बोल कि "तुम्हारे चलते ही रंडी की जात बदनाम हुई है." ज बेगम तो इतना कहकर गायब हो जाती और कहीं में बैठकर सरौते से सुपारी काटती, मगर हैदरी को पूरे के लिए मसाला मिल जाता.

आज हैदरी बी की जबान लड़ाने में दिलचस्पी नहीं थी. बुलेन्स के पीछे रोती, कलपती, छाती पीटती, तेज-तेज से चली जा रही थी.

मियां. . . . वाकर मियां." वार्ड का मुख्य दरवाजा पार ही हैदरी ने वाकर को पुकारना शुरू कर दिया. मगर वाकर हां था. वह दूसरी मंजिल पर वार्ड नंबर तीन में पड़ा था. हर किसी से वाकर का अता-पता दरियाफ्त करती. वार्ड नं. 3 तक पहुंच ही गयी. वाकर को देखते ही चिल्लायी मियां!"

वाकर मियां जिस करवट पड़े थे, वैसे ही पड़े रहे. उनके चेहरे अजीब-सा दिव्य भाव था. वह बिल्कुल शांत पड़े थे. दुनिया से एकदम बेखबर. उन्हें शायद नींद की दवा दी थी.

वाकर मियां, देखो हैदरी तुम्हारी खिदमत करने आयी हैदरी ने उसके कान के पास झुकते हुए कहा.

वाकर मियां ने हैदरी की पुकार की तरफ कोई ध्यान नहीं उसी तरह आंखें मूंदे पड़े रहे.

हैदरी की आवाज से पास वाले बैड का एक बूढ़ा रोगी या. उसकी आंखों में भी मैल भरी थी मगर खिचड़ी-सी के भीतर उसकी तेज आंखें जगमगा रही थीं.

यह तो जबसे आया है, ऐसे ही सुध-बुध खोकर पड़ा है

से ही पड़ा है?" हैदरी ने उससे पूछा, "डाक्टर ने क्या

वह आदमी हंसा, और कुछ बुदबुदाया, "डाक्टर ने कहा, अच्छा होता सब मरीज इसी तरह पड़े रहते."

र वह आदमी वहशी तरीके से हंसने लगा.

हैदरी ने वाकर की यह हालत देखी तो रोना शुरू कर ते-रोते वह छाती पीटने लगी. शोर सुनकर अचानक र्स दौड़ी हुई आयी.

"तुम लोगों ने उसे जहर का टीका लगा दिया. मुझे सब मालूम पड़ गया है. तुम लोगों ने अभी-अभी मेरे सामने जहर का टीका लगाया है. तुम लोग मरीजों से छुट्टी पाना चाहते हो. तुम लोगों को दोजख में भी जगह न मिलेगी. तुम लोगों ने मोहम्मद साहब के साथ भी यही सलूक किया था." हैदरी बी ने आव देखा न ताव, स्टूल पर आलथी-पालथी मारकर बैठ गयी और लगी मरसिया पढ़ने :

अरे लोगो, मेरे बाबा को बुला दे कोई,
अरे लोगो, मेरे भैया अली अकबर हैं कहां?

बाइस नंबर के बिस्तर पर एक मुसलमान घड़ीसाज बेहोश पड़ा था. कटरे से आते हुए घंटाघर के पास उसका रिक्शा उलट गया था. उसके आस-पास बहुत से रिश्तेदार खड़े थे. अचानक वह बूढ़ा घड़ीसाज 'हुसेन-हुसेन' कहता हुआ उठा. उसके रिश्तेदारों पर हैदरी बी की वाणी का इतना प्रभाव हुआ कि उन्होंने उसे घेर लिया और बूढ़े घड़ीसाज के बैड के पास ले गये. हैदरी बी ने नौहा शुरू किया :

सगरा मदीना लुट गया
चिल्लायीं जैनब पीटकर
सगरा मदीना लुट गया.

घड़ीसाज के रिश्तेदारों ने जोर-जोर से मातम शुरू कर दिया. अस्पताल में मातम होता देख एक नर्स और डाक्टर भागते हुए आये.

"इन्हीं लोगों ने मुहम्मद साहब की जान ली थी. यही लोग अब खुदा के बंदे वाकर मियां का भी काम तमाम करना चाहते हैं. मैं कमिश्नर साहब को इसकी इत्तिला दूंगी."

एक जूनियर डाक्टर हैदरी का अस्पताल में बढ़ता हुआ प्रभाव देखकर बोला, "वाकर मियां को बचाना है तो मेडिकल कालेज में भरती करवा दो. मैं चिट्ठी लिख दूंगा. वह न कुछ खा रहा है, न पी रहा है."

"वाकर मियां यहीं दम तोड़ेंगे. इसी अस्पताल में शहीद होंगे. वह तुम लोगों के पास इलाज के लिए आये थे. तुम लोगों ने उनकी जान ले ली." हैदरी फिर रोने लगी.

"हमारा एक्स-रे प्लांट बेकार पड़ा है. मैं क्या कर सकता हूं." डाक्टर ने कहा.

"तुम दोजख में जाने की तैयारी करो." हैदरी बी बोली और लगी गाने :

जालिमो, असगर के होंठों का तबस्सुम देख लो
तुम नहीं हो आशना कुरआन की तफसीर से
ऐ मुसलमानो, अली अकबर को पहचानो जरा
जंग करते हो रसूल अल्ला की तस्वीर से

घड़ीसाज को लिटा दिया गया था. हैदरी की आवाज से वह फिर उठ बैठा. उसके रिश्तेदारों के बीच हैदरी यकायक किसी फकीर की तरह मकबूल हो गयी. एक आदमी ने चुपके से उसके हाथ में एक बड़ा-सा संतरों का लिफाफा थमा दिया.

"मेरे लिए ये संतरे बेकार हैं. अगर आप लोग सही मायने में मुसलमान हैं तो आज कट मरिये हस्पताल की बदइंतजामी के खिलाफ!" हैदरी ने कहा :

जालिमो, असगर के होंठों का तबस्सुम देख लो."

बिगड़ता हुआ माहौल देखकर नर्स और डाक्टरों में एक नयी स्फूर्ति आ गयी. पूरा स्टाफ वाकर मियां को घेरे था. देखते-देखते वाकर मियां को ग्लूकोज लगा दिया गया. एक नर्स हैदरी को बुला ले गयी. उसे समझा दिया कि वह उसका हाथ थामे रहे. थोड़ी देर में वाकर हाथ झटकने की कोशिश करता. हैदरी कसकर हाथ थाम लेती.

यके-बाद-दीगरे वाकर को ग्लूकोज की तीन बोतलें चढ़ायी गयीं. हैदरी रात भर उसका हाथ थामे पड़ी रही. आधी रात को वाकर की एक बार आंख खुली. उसने अपने सामने हैदरी को बैठे पाया और उसके चेहरे पर एक संतोष की लकीर दाढ़ी के बीचोबीच कहीं गायब हो गयी. हैदरी रात भर जागती रही.

▣

सुबह हैदरी ने अजीजन को वार्ड में घुसते देखा तो उसकी जान में जान आयी. अजीजन ने सफेद साड़ी पहन रखी थी और वह धीरे-धीरे कदम बढ़ाती हुई वाकर के पास आयी. वाकर के पास हैदरी को देखकर अजीजन को कुछ तसल्ली हुई. मगर उसने हैदरी से कोई बात न की. दोनों के बीच में एक दूरी अब भी बनी हुई थी. जो दूरी बरसों पहले एक डेरेदार तवायफ और पेशेवालियों के बीच थी. हैदरी और अजीजन ने अपनी जवानी एक ही गली में गुजारी थी मगर हैदरी की कभी हिम्मत न हुई थी कि वह अजीजन का जीना चढ़ जाती. एक बार जब सरकार ने दफा आठ की पाबंदी पर बहुत जोर दिया था और पूरी गली से सिमेंट की बोरियों की तरह तवायफें ट्रकों में भरकर ले जायी जा रही थीं तो हैदरी डरते-डरते अजीजन के यहां पहुंची थी. अजीजन का ठाठ देखकर वह स्तंभित रह गयी. बैठक में कीमती फानूस लटक रहे थे. फर्श पर बहुत बढ़िया कालीन बिछा था. दीवारों पर सुनहरे फ्रेम के बड़े-बड़े आइने लटके थे. बीच में फूलों की चंगेर थी. चांदी का पानदान था, पीकदान, इत्रदान. हैदरी को दीनता की भावना ने घेर लिया था कि वह सीढ़ियां उतर आयी थी.

मुहल्ले में एक आतंक-सा बिछ गया था. लगभग तमाम दलाल पुलिस की हिरासत में थे. छज्जे पर बैठकर कोई भी तवायफ इशारेबाजी करती पकड़ी जाती तो तुरंत थाने की हवा खानी पड़ती. तमाम तवायफों ने अपने छज्जों पर हैसियत के मुताबिक चिकें या टाट लटका लिये थे.

"बी जान, सलामो अलैकुम !" हैदरी ने स्टूल से उठते हुए कहा. और फिर नर्स की तरफ घूम गयी.

"मरीज की मिजाजपुर्सी के लिए आपने यह किसको छोड़ रखा है?" नर्स और हाउस सर्जन एक साथ बोले.

"एक मुसीबतजद: औरत है. दिल की बहुत नेक है. अपने आप चली आयी है."

"उफ!" नर्स ने कहा, "कल रात भर मातम करती रही. डाक्टरों और नर्सों को ऐसी गाली दी कि देखा-देखी पूरा वार्ड कर्बला बन गया."

"वह जज्बाजी औरत है. इससे बरदाश्त न हुआ होगा." अजीजन ने पूछा, "मरीज की कैसी तबीयत है?"

"मुझे लगता है, इसे मेडिकल कालेज में ले जाना पड़ेगा." वह न कुछ खाता है और न ही कुछ बोलता है. हमारा ए प्लांट भी खराब पड़ा है."

"गली में तो यह रात भर चिल्लाता था."

"आप बुरा न मानें, इसका वक्त नजदीक आ गया है. फौरन इसे मेडिकल कालेज ले जायें. मैं डाक्टर से पर्चा लि लाती हूं."

अजीजन चुपचाप खड़ी रही. उसकी आंखों के सामने बांके वाकर का चेहरा घूम गया जो महफिल की जान होता सारंगी के उतार-चढ़ाव के साथ-साथ उसकी गर्दन बल ख थी. तुर्की टोपी पहने वह पूरी तल्लीनता में सारंगी बजाता इस समय वह एक लाश की तरह बेजान पड़ा था.

"वहां भी गरीब आदमी की क्या देख-भाल होगी." अजी बी ने जैसे अपने आपसे कहा, "एक बार मैं खुद डाक्टर से लूं."

डाक्टर से मिलकर अजीजन और निराश हो गयी. उ बताया कि उसकी आंतें सड़ चुकी हैं. पेट में अल्सर है. शरी बिल्कुल ताकत नहीं है. उसे सिर्फ जिंदा रखा जा सकता है.

अजीजन कुछ देर वाकर के बैड के पास खड़ी रही और देखती रही. जैसे वर्तमान, भूत और भविष्य से एक साथ अचा सामना हो गया हो.

"डागडर ने क्या बताया बी जान?"

"सब लोग तुम्हारी शिकायत कर रहे थे."

हैदरी ने गर्दन घुमाकर नर्स की तरफ देखा और बो "बी जान, ये लोग डागडर नहीं भेड़िए हैं. वाकर मियां को देखने तक न आया. सब मरीजों का बुखार देखा जाता है, न देखी जाती है, मगर उसके पास जब कोई न आया तो मैं आं बाहर हो गयी. मैंने जब लानत-मलामत भेजी, तब कहीं इन लो ने ग्लूकोज चढ़ाया. उसके बाद वाकर मियां ने आंखें खोलीं. पहचाना और देर तक मुझे घूरते रहे. उसके बाद जो उ आंखें बंद हुई, अब तक बंद हैं."

"हैदरी बी, अब डाक्टर भी कुछ न कर पायेगा. हमें बहुत पहले अस्पताल में भर्ती कराना चाहिए था."

कॉरीडोर से कोई लाश गुजर रही थी. लाश के पीछे-पीछे औरत चिल्लाती हुई जा रही थी. उसकी गोद में एक निढाल बच्चा था. अजीजन ने देखा तो उसका दिल बैठने लगा.

"बी जान, वाकर का इलाज होगा तो वह जरूर बच जायें हैदरी ने कहा, "ये लोग शैतान हैं. गरीब पर एक भी दवा नहीं करना चाहते."

"अच्छा, मैं मेडिकल कालेज भेजने का इंतजाम करती अजीजन ने कहा और डाक्टर के कमरे में घुस गयी. उसने डा से पर्चा लिया, एंबुलेंस का इंतजाम किया और बाहर दरवाजे खड़ी होकर वाकर के लिए स्ट्रैचर का इंतजाम करने लगी.

अगले अंक में

मिलिये मल्लू से जिसे खुदा ने जब छत दी तो उसे जरूरत महसूस हुई एक चारपाई की

अपनी ज़मीन

▣ मेहरुन्निसा परवेज़

री ने हताश होकर हारी, सूनी और रो-रोकर छिली ांखों की कोर से एक बार फिर अपने मृत बेटे पर नजर ौर फिर पति के दुःख से जड़ हुए चेहरे को देखा, जो पिछले ाह से भागते-भागते थक गया था और इतनी भाग-दौड़ ी बच्चा नहीं बच पाया था.

ों लड़कियां रो-रोकर थकी-सी, सुन्न दीवार से टिकी बैठी ाल का वही चिर-परिचित वातावरण था, जो वह पिछले ाह से देखती आ रही थी. सारी हलचल वही पहचानी-सी ा का सारा काम उसी गति, उसी रफ्तार से चल रहा था, े. . .इतने लोगों में किसी के मर जाने से दुनिया का काम तो ा न!

मदे में फिनाइल का पोंछा आज भी दिया जा रहा था, र साड़ियों में डाक्टरनियों का झुंड इस वार्ड से उस वार्ड ा था. सफेद मोजों में गंभीर चेहरा लिये डरावनी शक्लों ं उधर तेज-तेज आ-जा रही थीं. मरीजों का वही रोज का क्रम था, कष्ट से कराहते रुदन आज भी हवा में रचे-बसे थे. अस्पताल का वही चुप सन्नाटे से भरा वातावरण था. सब ज्यूं का त्यूं था, बस इतना अंतर हो गया था कि कल तक उसकी गोद में एक खेलता बच्चा लेटा रहता था और आज वह चुप निष्प्राण पड़ा था. . .बिना हिले-डुले. आज उसकी न आवाज थी, न जिद, न कोई मांग, आज वह शांत-सा पड़ा था. उसकी आंखों पर ढकी पलकें पत्थर की तरह ठंडी और भारी हो गयी थीं.

वह जब भी बेटे को निहारती, उसका कलेजा मुंह को आता, ऐसा जान पड़ता, कलेजा मुंह के रास्ते बाहर आ जायेगा, लगता इतनी. . .इतनी जोर की आवाज के साथ रोये कि सारी दुनिया को इस छोर से उस छोर तक सुनाई दे, सबको पता चल जाये कि उसका बेटा उससे छिन गया है, पर ऐसा वह कर नहीं सकती थी. उसकी ममता से भरी सिसकियां कलेजे में घुटकर रह गयी थीं.

जब डाक्टर ने बच्चे की जांच कर नर्स से कहा था, "बच्चा मर गया है, लाश उसके घर वालों को सौंप दो, तो वह पागलों-

सी फटी-फटी आंखों से बच्चे को देखती भयानक आवाज में रोयी थी. कहते हैं, मां जब दुःख से रोती है, तो धरती भी हिल जाती है, पर थोड़ी देर बाद ही मुंह में आंचल ठूंसकर उसे अपनी सिसकी घोंट देनी पड़ी थी. पति ने उसे समझाया था, अस्पताल में रोना सख्त मना है.

"जनक चला गया है गोदावरी," पति ने बच्चे की लाश को दोनों हाथों से पागलों की भांति समेटते हुए कहा था.

सिसकते-कराहते वह लोग बाहर लॉन में आ बैठे थे. वह ठगी-सी सिर पीट रही थी. दुःख जब आदमी पर पड़ता है तो सहसा विश्वास नहीं होता, पर ज्यूं-ज्यूं क्षण बीतते जाते हैं, सत्य को स्वीकारना पड़ता है. अभी कल ही तो जब जनक को लेकर वह लोग शहर आये थे, तो वह बोला था, "बाबा, लौटते में लश्कर से नयी बुशर्ट ले देना." उसे जीना है वह जीयेगा, इसका उसे कितना विश्वास था. कोई सोच भी नहीं सकता था कि हंसती-खेलती एक नन्हीं-सी जिंदगी दीये की तरह अचानक धप्प-से बुझ जायेगी?

▣

"बाबा, मैं बड़ा हो जाऊंगा, तो भैंस खरीदूंगा, खूब दूध पीऊंगा और बड़ा आदमी बनूंगा," अपने बाबा की गोद में लेटा-लेटा वह आसमान से चांद निहारा करता था. उसकी नन्हीं-नन्हीं भोली-भोली बातों से सारा घर निहाल हो जाता था.

लगातार एक के बाद एक चार लड़कियों के जन्म के बाद जनक ने जन्म लिया था. उसके जन्म से कितनी प्रसन्नता हुई थी सबको. हमेशा पैर की ठोकर देकर बात करने वाली सास ने भी पहली बार अच्छे से बोला था. अपने हाथों से असली घी में हरीला बनाकर खिलाया था. लड़के के जन्म से उसे लगा था, उसके सारे कष्ट समाप्त हो गये हैं, वरना उठते-बैठते सास उसे कोसती रहती थी, उसके बेटे का धन समाप्त करने, खून चूसने कुलछनी आयी है.

चौथी बेटी के सौर के समय तो जब दाई ने सास को देहरी के बाहर झांककर कहा था, "कन्या जन्मी है," तब उसने चिरे हुए फाटक से सास का मुंह देखा था, उसके बाद फिर सास की शक्ल नहीं देखी थी. उसे घी, हरीला कुछ नहीं दिया गया था. वह खाट पर पड़ी-पड़ी किस्मत को कोसती, रोती रहती थी. लड़की के जन्म को बहुत बुरा माना जाता था. जब तीसरी छोरी हुई थी, तब सास दो दिन तक आंचल के छोर में तंबाकू बांधे घूमती रही थी कि मौका लगते ही नवजात बच्ची के तालू में तंबाकू रख देगी, तंबाकू रखते ही एक घंटे में बच्ची के प्राण निकल जाते. दाई ने उसे संकेत दे दिया था और वह अपनी बच्ची को छाती से चिपकाये, निगरानी करती रही थी. एक क्षण भी अपने से अलग नहीं किया, चौकसी में वह सारी-सारी रात बच्ची को गोद में लिये बैठी रहती थी.

बाद में हारकर सास ने अपना इरादा बदल दिया, पर उसका क्रोध गालियों में, कोसने में निकलने लगा. चूल्हे में जलती कोलती तक से वह लड़कियों को मार बैठती थी.

ऐसी दुःखों से भरी काली रात के बाद सुख की भोर हुई थी. सारे घर में हलचल थी, खुशियों का वातावरण था, ससुर ने बंदूक उठाकर हवा में चलायी थी, सारे गांव को सूचना दी थी कि उनके घर वारिस पैदा हो गया है. खुशी के मारे खुद उसकी आंख से आँसू बहने लगे थे. इत्ते-इत्ते ढेर दुःख देखने के बाद, लड़कियों की मां बनकर लानतें सहने के बाद आज उसे बेटे की मां बनने का गौर था. उसके कमरे के बाहर रातभर गांव की औरतों ने ढोल बजाकर बधाई गायी थी. खुद सास अपनी शादी का पहनकर नाची थी, जिसे देखने सारा गांव जुट गया था. बूढ़े यौवन की थिरकन भर गयी थी. ससुर ने बिरादरी की पात थी और खुद सिर पर साफा बांधकर, छाती तानकर, गुड़गुड़ाते हुए सबसे बधाई स्वीकारी थी. हमेशा बेटे की मां रहने पर गर्व करने वाली सास पहली बार बेटी के लिए रो "मेरी बेटी होती तो उसे भतीजे को काजल लगाई में इतन कि उसका घर भर जाता, पर मेरे भाग्य खोटे, दो बेटे ही बेटे

सास ने हर नेग-दस्तूर बड़े मन से किये थे. दिन, ह फिर महीनों में, फिर साल में बदल गये और नन्हां जनक सा का हो गया . जनक सात बरस का था और सात जगह से ब्याह की बात आ गयी थी. ससुर ने मूछों पर ताव देकर बात दी थी, "भर नौ का होगा मोड़ा तब बात लेंगे!" पर किसे प होनी नाग बनकर डसने बैठी है. जनक को अचानक आया, गांव के लोगों ने कहा, इस साल आम में ज्यादा बौर आ इसी से बच्चों को बुखार आया है." पर धीरे-धीरे बुखार गया. सरकारी अस्पताल के डाक्टर ने देखा तो कहा, पीलि गया है. दवा-दारू, झाड़-फूंक सब करवाये, पर बुखार नहीं आखिर डाक्टर ने हाथ टेक दिये, "ग्वालियर के बड़े अस्पत जाओ और फिर आखिर बस में बैठकर शहर की ओर व चल पड़े थे.

▣

"गोदावरी, क्या सोच रही है? अब क्या करें? बच्चे का क्रिया करना पड़ेगा. मैं सुबह से चक्कर काट आया, कोई भी टैक्स लाश ले जाने को तैयार नहीं है, और जो तैयार होता है, व पांच सौ मांगता है." पति ने हताश होकर उसे बताया.

"नहीं, मेरे बेटे को गांव ले चलो, सबको उसका मुंह दि यहां परदेश में किसके सहारे करोगे मेरे बेटे को? क्या परदे मिट्टी ही मेरे बेटे के नसीब में है?"

"हूं, आखिर मां-बाप भी तो देख लें बेटे का मुंह." कहक चुप घुटने मोड़कर उदास बैठ गये.

अस्पताल की हलचल वैसी ही थी. लड़कियां रो निढाल पड़ी-पड़ी ऊंघ रही थीं. गोद में जनक को लिये म आंचल से भगाती बैठी थी, आंसू थे कि रुकना ही नहीं चा और मन था जो जनक को मरा हुआ स्वीकारना नहीं चाह

"सुन," अचानक पति ने उसके कंधे झकझोरे. "एक सकता है, इसे बस में ले चलते हैं, पर तू उसे जीवित बच्चे की गोद में समेटे रहना, रास्ते भर रोना-धोना नहीं और रा आंचल ढांककर इसे दूध पिलाती रहना, जरा भी शक न हो क्योंकि बस में जिंदा आदमी जाते हैं, मरे हुए नहीं. थोड़ा हुआ, तो हम सब जेल की हवा खायेंगे."

"आं, क्या कहते हो," उसने जोर से सिसकी भरी, "अ दूध पिलाऊं? मोड़ा तो रूठ गया, मेरी छाती पत्थर कर

"शांत हो जा गोदावरी, अकल से काम ले, इस तरह लेकर गांव जा सकेंगे क्या? सोच ले, बिना जनक के लौटना

और ज्यों-ज्यों देर होगी, समस्या और विकट हो जायेगी. अभी ताजी-ताजी बात है, मेरी बात मान ले."

गोदावरी बेवकूफ-सी गूंगी बनी पति को निहारती रही, उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था. अभी कल ही की तो बात है, जनक को हंसाते-खिलाते, बस की खिड़की से बंदर, मंदिर दिखाते वह लोग बस से लाये थे, और आज क्या हो गया, जो छिपाकर चोरी से ले जाने की बात होने लगी. उसका बेटा जनक अब जनक नहीं रहा?

"चल, चल गोदावरी, जनक को लेकर उठ." पति ने उसे कंधे से उठाकर खड़ा किया. लड़कियों ने बाकी सामान पकड़ लिया. पति उसे सहारा देकर ले जाने लगा. गोदावरी छाती से चिपकाए अपने छौने को ले चलने लगी, उसे धूप न लगे, सो उसने उसे आंचल से ढाक लिया था. चलते-चलते जनक का पैर हिल-डुल रहा था, तो उसे लगता कि दुनिया झूठ बोलती है, बच्चा जिंदा है और उसकी छाती में मुंह गाढ़े जनक शांत नींद सो रहा है, थका सा. लंबी बीमारी ने उसे कितना कमजोर कर दिया है.

बस स्टैंड आते ही पति उससे हटकर चलने लगा, साथ ही हिदायत देने लगा, "देख, सारे रास्ते रोना मत. गोदावरी, मन को पत्थर कर ले. जनक को गांव ले जाना है."

और गोदावरी ने कलेजा पत्थर कर लिया. ममता की चीखों को, रुदन को उसने दांतों से भींचकर भीतर रोक लिया. नहीं, वह नहीं रोयेगी. उसे अपने बेटे को अपने उधर ले जाना है, वह घर जायेगा. वह मां है, और मां होकर बच्चे को परदेश में अजनबियों के हाथ सौंप जायेगी?

वह लोग बस में बैठ गये. वह पत्थर की मूर्ति बनी बैठी रही. कंडक्टर दो बार आया, "अजी गोद के बच्चे का भी टिकट लगेगा, बताओ कितने वर्ष का है."

"सो रहा है बाबू, टिकट तुम ले लो, सात वर्ष का छोरा है, पति ने फंसे गले से कहा.

"बड़ी गहरी नींद में है, जरा भी शोर से उठ नहीं रहा." कंडक्टर ने टिकट पति को थमाते हुए अपनी दरियादिली दिखायी.

"हां बाबू बड़ी. . .गहरी नींद में है, कहते पति के गले से जोर से सिसकी उठी पर फिर गले में घुटकर रह गयी.

सारे रास्ते वह चुप बनी बैठी रही. बच्चे को छाती से चिपकाए वह फटी-फटी आंखों से सामने बिछी डामर की सड़क को निहारती रही. गांव पर गांव आते रहे, लोग उतरते-चढ़ते रहे. सारे लोग उतरकर नाश्ता-पानी करते रहे, पर वह लोग तो दूसरी दुनिया के हो गये थे, कभी भूख-प्यास लगती ही नहीं हो, ठठ बने बैठे रहे.

"अजी बच्चों का मुंह सूख रहा होगा, पानी-वानी तो पिला दो," एक यात्री ने हमदर्दी दिखायी.

"नहीं हुजूर, गरीब के बच्चे हैं, इन्हें भूख-प्यास नहीं लगती." बस फिर चल पड़ी. यात्रा इतनी कठिन हो सकती है, यह वह लोग सोच भी नहीं सकते थे.

जब बस उनके गांव में पीपल के पास रुकी तो उसका कलेजा मुंह को आने लगा. बच्चे के भार से उसकी बांह भारी हो गयी थी. पति के पीछे-पीछे वह भी उतरने लगी. पति लड़कियों को बांह पकड़कर उतारने लगा. पति ने उसे उतारने के लिए उसकी गोद से जनक को लिया. जनक को पति की बाहों में देते हुए उसे लगा कि वह एकदम हलकी-सी, तिनके-सी हो गयी है. जैसे उसका अपना कोई वजन ही नहीं हो. सारा भार तो जनक का था और पहली बार उसे लगा कि उसकी गोद सूनी हो गयी है. दुःख से उसकी छाती फटने लगी, वह एकदम नीचे उतरकर रोने लगी, उसके साथ पति, बच्चियां सब रोने लगे. बस के तथा आसपास के सारे आदमी चकित रह गये और आश्चर्य से उन्हें देखते रह गये. किसी की कुछ समझ में नहीं आया. पति जनक की लाश को दोनों बाहों में संभाले आगे चलने लगा. और उसे लगा कि बेटे को अपनी जमीन देने के सुख से वह निश्चित और हलकी हो उठी है. □

● **44, झांसी रोड़, ग्वालियर (म. प्र.)**

आसपास बिखरी कहानियां

धरम की बात

□ विमल किशोर

अंगूरी तो बस यही समझती थी कि उसका आदमी कल्लू जब भी शराब पीकर आता है, उसे मारता-पीटता है. बल्कि, अब तो वह यह समझने लगी थी कि कल्लू को जब भी उसे पीटना होता है तभी वह शराब पीकर आता है, अन्यथा नहीं.

मुहल्ले में नयी आयी रामकली को यह बात कुछ अजीब-सी और आतंकित करती-सी लगी. उस दिन उसने अंगूरी के चीखने-चिल्लाने की आवाज सुनी तो अपनी पड़ोसन चंपा के पास गयी. चंपा ने कल्लू को एक लंबी-सी गाली देते हुए जो कुछ कहा उसका आशय रामकली को यही समझ में आया कि यह तो हमेशा ही होता है—कोई कहां तक बीच-बचाव करे. . . . .और वह वहां से चली आयी, लेकिन ध्यान उसका अंगूरी की ओर ही लगा रहा.

अंगूरी चीखती-चिल्लाती बेबस कल्लू को गालियां दे रही थी, उसकी मौत भगवान से मांग रही थी. सुन-सुनकर रामकली भी चाह रही थी कि यह हत्यारा मर जाये और बेचारी की जान बचे.

चार दिन बाद महालक्ष्मी का व्रत आया. मुहल्ले की सभी स्त्रियों ने अपने पति और पुत्रों की दीर्घायु के लिए व्रत किया. रात को अंगूरी पूजा करने रामकली के घर आयी. पूजा करते समय रामकली ने लक्ष्मीजी की मूर्ति के सामने माथा टेकते हुए अपने पुत्र और पति के कल्याण एवं लंबी आयु की कामना की.

अंगूरी ने भी ऐसा ही किया तो रामकली ने आश्चर्य से पूछा, "अभी उस दिन तो तू मना रही थी कि लल्लू के कक्का अभी मर जायें और आज. . . ."

अंगूरी ने बीच में ही टोकते हुए कहा, "ऐसी बात मत कहो बाई . . .बा और बात हती. . .जा धरम की बात है . . . .करम में बोई बदो है, धरम में जे है. . ." □

यहीं से शुरू, यहीं से अंत.....पार्वती सोचती है और उसके हाथ के नोट सूखे पत्ते की तरह थरथराते हैं.....जिस्म यूं कांपता है, जैसे वर्षों से शांत पड़ी नदी में किसी ने कुछ फेंक दिया हो. ऐसा ही उस दिन भी हुआ था. बी. ए. का रिजल्ट आया था. अखबार सूखे पत्ते की तरह थरथराया था. मगर दिन में जब मामा की चिट्ठी आयी कि लड़का 'आई. ए. एस.' है, फोटो देखते ही उसने हां कर दिया है. फॉरेन रिटर्न है. अपनी पारू बहुत तकदीर वाली निकली.....तो मां-बाबा की खुशी का ठिकाना न रहा. उन्हें लग रहा था, जैसे जिंदगी की किसी परीक्षा में वे पहली बार बैठे और सफल हो गये. छुपकर उसने भी उस पत्र को पढ़ा था और जिस्म यूं कांपने लगा था, जैसे किसी ने वर्षों से शांत पड़ी नदी में कुछ फेंक दिया हो.....यहीं से शुरू, यहीं से अंत!

शादी के दिन निकट आ रहे थे. बाबा तैयारियों में जुटे थे. मां कहती, "कुछ अपना खयाल रखा करो."....बाबा हंस देते.....“अपना ही तो खयाल रख रहा हूं. पारु मेरी इकलौती बेटी है. 'आई. ए. एस.' के यहां जा रही है. कमी रह गयी तो मेरी ही बदनामी होगी."

सचमुच, बाबा ने कोई कसर नहीं रखी. सर-सामान इंतजाम-बात. बाराती बहुत प्रसन्न हुए थे. कितने खुश थे बाबा. लेकिन विदाई के दिन बाबा सुबह से दीखे नहीं....जाने कब तैयारियां हो रही थीं. वह दबे पांव पूजा-घर में गयी थी. जानती थी, जब बाबा दुखी होते थे, इसी कमरे में चुपचाप बैठकर भगवान

आखिरी साँस का किराया

•राबिन शा पुष्प

एकटक देखा करते थे. . . .मां कह रही थी, “सब कुछ तो इतने उत्साह से किया. अब जाते वक्त बेटी को आशीर्वाद दे दो. . . .”

बाबा घूमे थे. चेहरा आंसुओं से भीगा था. किसी तरह कांपते स्वर में बोले, “सावित्री, याद है जब पारु इस घर में आनेवाली थी. . . . .मैंने कितने उत्साह से हर कुछ जुटाया था. . . .पालना, दूध की बोतल, खिलौने. . . .फिर वह इस घर से जाने को हुई, तब भी सब कुछ जुटाया . . . .मगर आने और जाने के बीच इतना बड़ा अंतर हो सकता है, मैंने सोचा भी नहीं था. . . .” और वे एक बच्चे की तरह सिसकने लगे थे.

मां उनके एकदम करीब गयी थी. आंचल से आंसू पोंछने लगी थी—“हां, जब संतान आनेवाली होती है, तो मां पीड़ा से कराहती है. . .जिसे हर कोई सुनता है, मगर जब वह जानेवाली होती है, तो पिता. . .जिसके दुख को कोई समझ भी नहीं सकता. . . ऐसा क्यों होता है पारु के बापू. . . .ऐसा क्यों होता है. . . .?” और वह भी रोने लगी थी. दोनों रो रहे थे. . . . अचानक उसके हाथों की चूड़ियां बज गयीं थीं. बाबा की आंखें उठीं, फिर वे खुद ही उठकर उसके निकट आये थे—“अच्छा हुआ पारु, तूने सब देख लिया. . . इसे ही आशीर्वाद समझना और याद रखना, जब पुरुष भीड़ में हसे और घर में अपने लिए कोई एकांत जगह चुन ले, तो समझना वह कहीं से टूट रहा है. . . .ऐसे पुरुष पर क्रोध नहीं, दया करनी चाहिए.” उस दिन उसने केवल सुना था, मगर अब समझ गयी है, कि बाबा ने दूसरे शब्दों में कहा था—यहीं से शुरू, यहीं से अंत!

फिर वह पटना आ गयी.

हर शाम सजकर पति के साथ क्लब जाती. जब दो पेग पीकर वे ठहाका लगाते, तो वह भीतर ही भीतर कांप जाती. . . .रात देर से वे लौटते. ऊपर का कमरा उसका अपना था. नीतू और विवेक बगल के कमरे में सोते थे. उसका बहुत मन होता था कि वह दोनों बच्चों के बीच में जाकर सो जाये. मगर वह ऐसा नहीं कर पाती. बस, एक नजर बच्चों की देखकर पति के पास आ जाया करती थी. . . . . .फिर वे उसे समेट लेते. मुंह से शराब की बदबू आती और धीरे-धीरे ये गंध उसके जिस्म में उतर जाती. वह समझ नहीं पाती, कि इस पुरुष पर क्रोध करे या दया.

सुबह विवेक शिकायत करता, “ममी तुम मेरा होम-वर्क नहीं कराती. रिजल्ट अच्छा होता है, तो रिपोर्ट देखकर पापा बस इतना कहते हैं—गुड़. बुरा होने पर बुरी तरह डांट देते हैं. . . .मैं क्या करूं ममी!” नीतू अब कुछ नहीं कहती. केवल एक बार उसने डरते-डरते कहा था—“ममी, तुम मेरे साथ क्यों नहीं रहती? . . . .बहुत डर लगता है.” और वह भी तो कुछ नहीं कह सकी थी. न बच्चों से न पति से. . . .भीतर ही भीतर उसे भी कहीं कुछ भय लगता था. मगर आज उसे लगता है, जैसे सब कुछ वहीं से शुरू, यहीं से अंत!

तब बच्चे नहीं हुए थे.

हाथ में तनख्वाह पकड़ाकर उन्होंने कहा था—“इससे घर चलाना. . . .और ये रखो.”

“क्या है?”

“सौ का पत्ता. . . .”

“क्यों?”

“सेवा करने की बख्शीश. . . .” और वे ठहाका लगाकर हंसने लगे थे.

वह भीतर तक कांप गयी थी. आंखों में आंसू आ गये थे.

“अरे, ये क्या हुआ?”

“अगर कभी मैं सेवा करने लायक नहीं रही तो. . . .”

“तब भी तुम्हें यह मिलता रहेगा. . . . यह पॉकेटमनी है. इसे सिर्फ अपने घर पर खर्च करना.”

वह बुत की तरह खड़ी थी कि उन्होंने समेट लिया था—“वचन दो, तुम इन रुपये को न घर पर खर्च करोगी न मुझ पर. . .सिर्फ अपने-आप पर. . . .मेरी कमाई के किसी हिस्से पर तुम्हारा बहुत ही पर्सनल हक हो, यही चाहता हूं कि इन रुपयों को तुम अपना समझो.”

फिर बच्चे हुए. उन्हें पॉकेटमनी देकर वे एक सौ का पत्ता उसकी तरफ बढ़ा देते—“योर पॉकेटमनी.”

ऐसा हर महीने होता था. एक लंबा सिलसिला. लेकिन एक दिन, जब वे ऑफिस चले गये और बच्चे स्कूल के लिए तैयार हुए, तो विवेक आया था. उसके हाथ में नोट थे. नीतू चुपचाप खड़ी थी.

“क्या बात है विकू?”

वह चुप रहकर जैसे शब्द खोज रहा था. यकायक उसने सारे नोट फेंक दिये—“ऑफ्टरऑल आय एम योर सन . . . पापाज सन. . . कोई नौकर नहीं, कि हर महीने पॉकेटमनी के नाम पर वे हमें तनख्वाह थमा देते हैं. आई हेट दिस मनी. नीतू, तू भी फेंक दे रुपये!”

मगर वह चुप खड़ी रही.

विवेक ने उसे एक चपत मारी.“तुम भी ममी की तरह स्लेव बनके रहो. . .” और वह गुस्से में दनदनाता हुआ निकल गया था. उसके पीछे-पीछे रोती हुई नीतू भी चली गयी थी.

वह ठगी-सी खड़ी रह गयी थी. देखते-देखते विवेक इतना बड़ा हो गया ! इतना कुछ सोचने और समझने लगा. और उसे पति, पार्टी और क्लब के दायरे में कुछ भी नहीं पता चला! वह अपने बिस्तर पर गिरकर फफकने लगी. . . तभी उसने देखा, बिस्तर पर कुछ नोट पड़े हैं. साथ में एक स्लिप ‘विद थैंक्स टू ममी एंड पापा’—नीतू. वह नीतू की नन्हीं लिखावट को बार-बार चूमकर रोने लगी . . . मगर आज उसे लग रहा है, शायद यहीं से सब कुछ शुरू हुआ था और यहीं से अंत!

फिर उस शाम वह क्लब नहीं गयी. वे अकेले ही गये. बच्चे जब पढ़ने बैठे, तो वह उनके पास आयी—“आओ नीतू, आज तुम्हारा होमवर्क मैं करा दूं.”

नीतू एकटक देखने लगी थी.

“ऐसे क्या देख रही हो?”

“आज तुम क्लब नहीं गयी ममी?”

“अब कभी नहीं जाऊंगी.”

“और पार्टियों में?”

“वहां भी नहीं.”

रूसी लघुकथा

सौ रुपये

▣ ईवान बुनिन

उस समय मैं पुराने ढंग के बने एक डच होटल में ठहरा था. एक सुबह होटल के आंगन में मेरी नजर उस पर पड़ी. फिर तो मैं प्रतिदिन सुबह उसके यहां जाने लगा. बरामदे से कुछ ही दूर, मकान की उष्मापूर्ण छाया में वह एक बेंत की कुर्सी पर इत्मीनान से शरीर को ढीला करके बैठा करती. एक लंबा पीले-से चेहरे वाला और अरुचि उत्पन्न करने की सीमा तक चुंधी आंखों वाला मलायाली नौकर सफेद कैनवास की सख्त जाकेट और पतलून में सुसज्जित होकर, अपने नंगे पांवों की तलियों से कंकरों को कुचलने की आवाज करता हुआ आता. उसकी कुर्सी के पास पड़ी मेज पर एक ट्रे में पारदर्शी. हल्के सुनहरी रंग की चाय का कप रखकर बाअदब खड़ा रहता, अपने सूखे पतले बंद होंठों को बिना खोले सविनय कुछ बोलता और फिर अदब से झुककर चला जाता, और वह आधी लेटी हुई, हाथ में के ताड़ के पत्तों का पंखा धीरे-धीरे हिलाती हुई यथावत पड़ी रहती.

उसकी सुदृढ़ लेकिन नाजुक, उष्ण कटिबंध के सूर्य की गर्मी सेवन करने से कॉफी जैसा रंग धारण करने वाली काया कंधों और हाथों से लेकर वक्षस्थल तक नग्न थी. उसकी टांगें घुटनों तक खुली थीं, जांघ से कमर तक का भाग हल्के हरे रंग के कटिवस्त्र में लिपटा हुआ था. खड़ाऊं के लाल पटे में से उसके छोटे-से पांव की उंगलियों के रंगे हुए नाखून बाहर झांक रहे थे. उसके छोटे-से कान की लौ से सोने के झुमके लटक रहे थे. उसकी काली पलकें अविश्वसनीय रूप से लंबी एवं अद्भुत थीं. उन्हें झपकती देखने पर हिंदुस्तान के अनुपम फूलों पर जादूभरी अदा से मंडराती सुहावनी तितली का दृश्य बन जाता था. सौंदर्य, बुद्धिमत्ता, मूढ़ता आदि इन सबमें से कोई भी विशेषण उस पर लागू नहीं होता था. मानव सहज भाषा में उसका सीधा-सादा वर्णन करना असंभव -सा लगता था. वास्तव में ऐसा लगता था कि जैसे वह नक्षत्रलोक में से उतर आयी हो. बिना कुछ भी बोले-चाले बैठे रहना उसे सर्वाधिक रास आ गया था. तितली की सूंढ़ की भांति वह अपनी काली मखमल-सी आंखों को धीरे-धीरे उठाती-गिराती, हाथ वाले पंखे को लयपूर्वक हिलाते हुए वह बिल्कुल शांत पड़ी रहती. . . .एक सुबह रिक्शा होटल के सामने आ गया था और मैं हमेशा की तरह शहर में घूमने जाने के लिए उसमें बैठने जा ही रहा था कि बरामदे की सीढ़ियों पर वह मलायाली नौकर मिला, अदब से झुका और आहिस्ता स्वर में बोला—"सौ रुपये, साहब!" ☐

● अनुवाद : सुरेंद्र दोशी एवं सुनील जेरथ

नीतू एकदम उससे लिपट गयी थी, "तब तो आज हम नहीं पढ़ेंगे. . . सिर्फ अपनी मम्मी से बातें करेंगे." . . .और वह जबरदस्ती उसे अपने कमरे में ले आयी थी. बिस्तर पर लिटाकर ढेर-सारी स्कूल की बातें बताने लगी. साल-दो साल पीछे की भी बातें. अनायास उसकी आंखें भीग गयीं. इतना कुछ बताना था नीतू को. . .और वह कभी सुन नहीं सकी. . . ! तभी विवेक पेन में स्याही भरने आया. उसने कहा, "क्यों विवेक, तुम कुछ नहीं सुनाओगे?"

"ममी, बातें तो बहुत थीं. . . मगर यकीन नहीं था कि तुम्हारे पास मेरे लिए कभी वक्त होगा. . .इसलिए कुछ याद ही नहीं रखा. . ."

और वह कमरे से बाहर चला गया.वह नीतू से लिपटकर रोने लगी थी. कहीं यहीं से तो सब कुछ शुरू नहीं हुआ था, और यहीं से अंत!

फिर समय का रंदा वर्षों के जिस्म छीलता रहा. कितना कुछ बदल गया! वे अकेले क्लब जाते रहे. . .पीकर देर से लौटते. . .नीचे कमरे में सो जाते. . .कभी लौटते ही नहीं . . .सुनने में आया कि क्लब में आनेवाली किसी महिला . . .मगर वह सुनकर चुप रहती. जिस रात नहीं लौटते, वह परेशान-सी रात भर दरवाजे तक जाती और लौट आती. . .कई बार उसने देखा, विवेक खिड़की से लगा चुपचाप सिगरेट पी रहा है. उसकी हिम्मत नहीं होती कि विवेक से सिगरेट छीन ले.

सुबह उसकी लाल आंखें देखकर वह पूछती, "रात भर सोये नहीं विकू?"

". . .सारी रात पढ़ता रहा. . ." और जब वह पलटकर पूछता—"ममी, अक्सर ही तुम्हारी आंखें भी बुरी तरह लाल रहती हैं, चलो किसी डॉक्टर को दिखा लो". . .उस क्षण उसे लगता, वह कह दे—'विकू बेटे, तेरी मां भी एक परीक्षा दे रही है. . .प्रश्न है, औरत के सामने जब चुनाव आये तो किसे चुने —पति या संतान? तू कोई उत्तर सुझायेगा बेटे. . . .'मगर वह ऐसा कुछ भी नहीं कह पायी. . .और धीरे-धीरे हर कुछ बदल गया. नीतू भी जवान हो गयी. . .परंतु एक चीज नहीं बदली—हर महीने बच्चों को पॉकेटमनी मिलते रहे. . .उसे भी सौ का पत्ता. . . .कितनी बार ट्रांसफर हुए, कितनी बार वे लौटकर पटने आये. . . मगर घर लौटकर भी जैसे कभी नहीं लौटे. . . लौटे तो सिर्फ अपने कमरे!

एक बार उसने साहस करके पूछा था, "कभी घर के लिए भी समय निकाल लिया कीजिये न. . . ."

"समय रहता ही कहां है! अपनी नौकरी देखूं, सोसायटी देखूं, कैरियर देखूं या घर?. . . . .किसी मास्टर या किरानी से ब्याह करती तो पांच बजे आकर खूंटे से बंध जाता. . . . 'आई. ए. एस.' भी चाहिए. . . . .बंगला चाहिए . . . .कार चाहिए . . . न खुद एडवांस बन सकी न बच्चों को बनने दिया. . . . कभी विदेश जाकर देखो, बच्चे कितने इंडीपेंडेंट होकर बढ़ते हैं. . . .तुमने सब चौपट कर दिया . . ."

उसकी समझ में नहीं आया कि इस आदमी पर वह क्रोध करे या दया. और उस दिन से वह हमेशा के लिए चुप हो गयी.

फिर विवेक ने ही भाग-दौड़कर नीतू की शादी तय की

सामान जुटाता रहा. और जिस दिन विदाई थी, वह दोखा ....जाने की सारी तैयारियां हो गयी थीं. वे बाहर खड़े आशीर्वाद देने के लिए. देर हो रही थी. वे चिल्ला रहे "अरे भई, नीतू को जल्दी लाना, वरना इन लोगों की ट्रेन जायेगी.....दे डोंट नो द वैल्यु ऑफ टाइम...."

वह भागकर नीतू के कमरे में गयी. वहां नहीं थी. फिर पूजा- भगवान की मूर्ति के सामने विवेक चुपचाप बैठा था. नीतू थी. उसके पैर चौखट पर ही रुक गये...

"भैया, आशीर्वाद नहीं दोगे?"

विवेक ने चेहरा घुमाया. आंसुओं से भीगा चेहरा. उसे बाबा चेहरा याद आ गया.....मां के शब्द....'जब संतान आने- होती है, तो मां पीड़ा से कराहती है....हर कोई सुनता है. जब वह जानेवाली होती है...तो पिता...जिसके दुख को नहीं समझ सकता.....ऐसा क्यों होता है?'

"बाहर पापा तो हैं आशीर्वाद देने के लिए नीतू...."

"पापा! वे तो लोगों के सामने केवल फॉर्मेल्टी निभायेंगे.... कता है, दिखाने के लिए रो भी दें..... आइ हेट हिम... मुझे भाई का स्नेह दिया....पापा का प्यार दिया...तुम आशीर्वाद दो....." और वह रोने लगी थी.

विवेक ने उठकर उसे बांहों में भर लिया था--"नीतू, अपने की बात याद रखना.....तुम एक घर से नहीं, एक सराय रही हो...दोबारा इस सराय में मत लौटना ....मेरी लग जायेगी, तो मैं भी इस सराय को छोड़ दूंगा...."

दोनों लिपटकर रोने लगे. रोते-रोते नीतू ने कहा—"और जब तुम्हारी शादी हो ज़ाये...तुम पापा बन जाओ, तो बच्चों को खूब प्यार करना....वाइन, वुमेन और कैरियर र में उन्हें पापा की तरह नेगलेक्ट मत करना.....बहुत ता है भैया.... प्रॉमिज मी भैया .....प्रॉमिज मी .... हो सके तो ममी को इस सराय से निकाल लेना....."

ावंती से फिर न कुछ देखा गया न सुना गया. वह भागकर कमरे में आ गयी. बिस्तर पर नोट बिखरे हैं. साथ में एक —'विद थैंक्स टू पापा--नीतू.'.... उसे लगा, में रहने का सारा हिसाब नीतू भर गयी है. वह धीरे-धीरे आलमारी की तरफ बढ़ी. एक कोने में ढेर-सारे सौ-सौ के ...वह इनका क्या करे....किसे लौटाये ....कैसे ....और वह फफककर रोने लगी. जिस्म यूं कांपने जैसे वर्षों से शांत पड़ी नदी में किसी ने कुछ फेंक दिया हो. ....शायद यह सब आखिरी सांस के बाद का किराया एक दिन भरा जाना है.....शायद यहीं से एक दिन सब हुआ था, और यहीं से अंत.... □

गन', (सनोवर बिल्डिंग) 95, सब्जीबाग, पटना-800004

यात्रा एक वेश्या नगर की

की ने कहा था, "अगर यह किसी लड़की की कब्र में रोज इस पर फूल चढ़ाया करती!"....एक रचना- घूमने निकलता है तो क्या सोचता और करता है?— 'प्रेमगथा अंक' में पढ़िए धुआं होती जिंदगियों का -रिपोर्ताज—राबिन शा पुष्प के मार्मिक संस्मरण.

आसपास बिखरी कहानियां

सामाजिक-असामाजिक

■ कुलदीप जैन

दोस्तों ने मुझे बताया कि पिता ने जिस दंपती को नया किरायेदार बनाया है, ठीक नहीं हैं. मुझे यह भी बताया कि उन दोनों की शादी नहीं हुई है, बल्कि कमरा न मिल पाने की वजह से वे पति-पत्नी बनकर रह रहे हैं. एक दोस्त ने तो यहां तक दावा किया कि वह कालगर्ल है और कनाट सर्कस में अक्सर देखी जा सकती है.

मैंने पिता से कहा कि नये किरायेदार को तुरंत निकाल दें. इस पर पिता बोले, "क्यों निकाल दूं. खराब होंगे, अपने घर से. हमें तो किराये से मतलब है."

जब मैंने उनकी इस बात का विरोध किया तो वे व्यंग्य-पूर्वक बोले, "कमाता-धमाता है नहीं, ऊपर से रोब गांठता है. दो साल हो गये एम्. ए. किये हुए. आखिर मेरे बूढ़े कंधों पर तुम लोग कब तक चढ़े रहोगे?" यहीं आकर मैं हार जाता हूं. जवान बहन को हाई स्कूल कराते ही बैठा लिया. अब सिलाई-कढ़ाई के स्कूल जा रही है. दो छोटे भाई अभी स्कूल जा रहे हैं. दो बहनों की शादी हो चुकी है.

एक दिन बेबी को बुलाने के बहाने मैं कथित कालगर्ल के कमरे में गया. वह और बेबी चाय पी रहीं थीं. मुझे देखते ही किरायेदारनी बोली, "आइए भाई साब, चाय पीजिए. नाराज हैं क्या हमसे?"

"नहीं-नहीं, ऐसी कोई बात नहीं." मैं जबरदस्ती हंसा. मेरा दिल धक्धक् कर रहा था. जरूर ही यह कालगर्ल है.

"बेबी, तुझे अम्मा बुला रही है." मैंने क्रोधपूर्वक कहा, "बर्तन मांजकर छोड़ आयी है." यह सुनते ही, "अरे बाबा, बर्तन तो रह ही गये." कहकर बेबी बाहर निकल गयी.

चाय पीने के बाद जब मैं अपने कमरे में आया तो उस नव-विवाहिता (?) के बारे में बने विचार बदल गये थे. वह मॉडलिंग का धंधा करती है और पोस्ट ग्रेजुएट है. उसने वायदा भी किया कि उसे किसी पब्लिसिटी फर्म में 'ऐज ए क्लर्क' लगवा देगी.

शीघ्र ही मेरी बदचलनी के किस्से पूरे मोहल्ले में फैलने लगे. दोस्त मुझे रह-रहकर चिढ़ाते और कहते, "यार हमारा काम भी बनवा दे. तेरा क्या जाता है."

बिना पूर्व सूचना दिये पिता ने उस दंपती से कहा कि वे कमरा खाली कर दें. मैंने इस बात का कड़ा विरोध किया और घर छोड़ने की धमकी भी दी, लेकिन किसी बेरोजगार आदमी की आवाज में कोई दम नहीं होता.

उन लोगों ने दूसरे दिन घर खाली कर दिया. जाते-जाते उस युवती का पति बोला, "यह लो पता और कल इस फर्म में चले जाना."

उन लोगों की बदौलत आज मैं नौकरी पर हूं, पर पिता से मेरी बोलचाल बिलकुल बंद है. □

तस्वीर बोलती है

छायाकार : लवलीन
रूसी सर्विस, आकाशवाणी,
पार्लियामेंट स्ट्रीट, नयी दिल्ली-1

मेक-अपहीन तस्वीरें

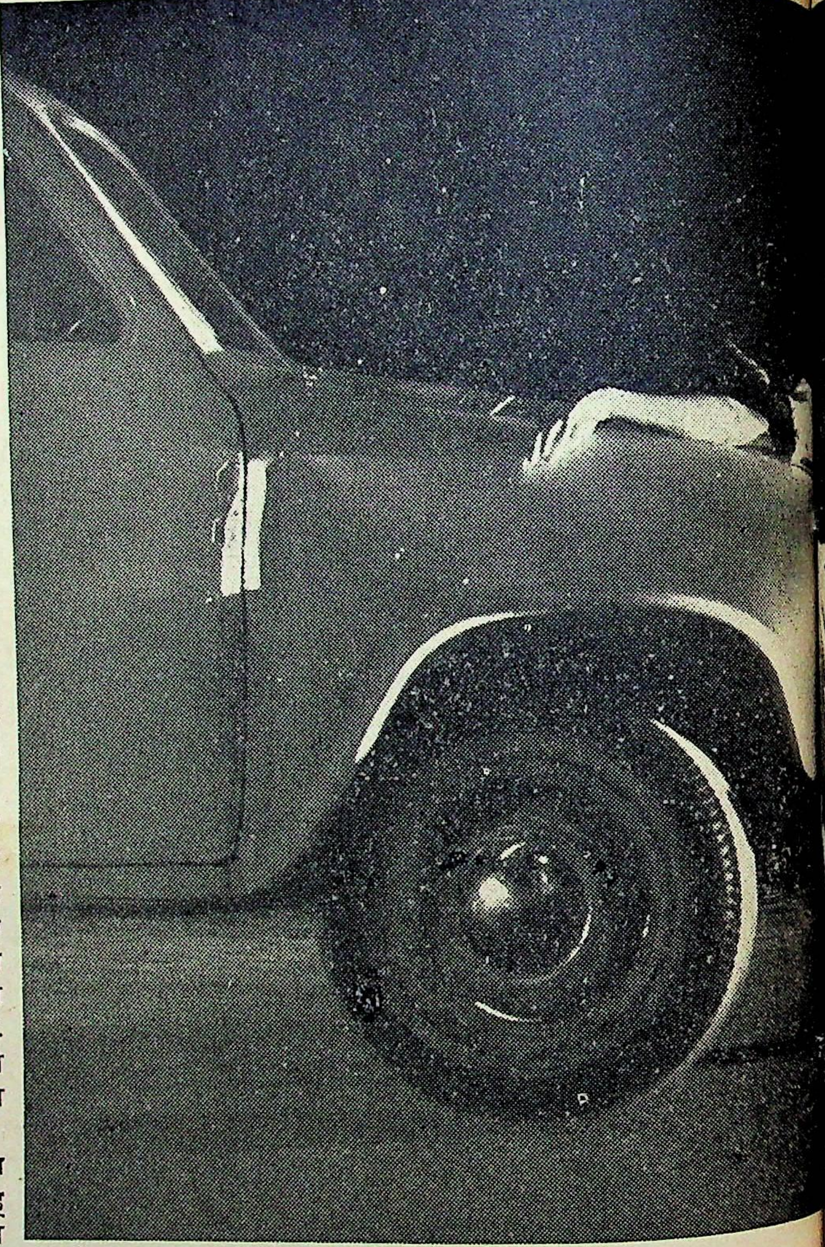

'सारिका' 16 मई, 1980 के अंक में लवलीन ने अपने इंटरव्यू में कहा था, "आज मैं बहुत नीची धरती का हिस्सा हूं, पर मेरा विश्वास उस क्षितिज में है, जहां धरती और आसमान मिलते हैं." लवलीन के ये शब्द उनकी फोटोग्राफी की प्रदर्शनी देखते हुए दिमाग पर हावी रहे और दृष्टि आकर अटक गयी उस चित्र पर, जिसमें जिंदगी का एक लंगड़ा टुकड़ा कार की बोनट पर आकर अटक गया है. क्षितिज वहां बेरंग था, बेहद काला; लेकिन रोशनी ने उसके बीच से जितना भी कुछ उभारा वह देखने वाले को जिंदगी से जोड़ देने के लिए काफी था. जिजीविषा आदमी को क्षितिज से भी ऊपर उठा देती है.

लवलीन को लोग फिल्म अभिनेत्री के रूप में भी जानते हैं, प्रसारण की एक दक्ष कलाकार के रूप में भी, लेकिन शुक्रिया इब्राहीम अल्काज़ी को कि उन्होंने लवलीन की कैमरा-कला को पिछले दिनों त्रिवेणी कला संगम, दिल्ली की कलादीर्घा में देखने को सुलभ कराया. विश्वास करना मुश्किल था कि प्रदर्शनी के सारे चित्र सिर्फ दो सप्ताह की मेहनत का नतीजा हैं.

इन चित्रों में से किसी एक के प्रति आपका विशेष लगाव हो सकता है, वह कौन सा चित्र है? इस प्रश्न पर लवलीन अपनी मुस्कराती आंखों से हंसी के छल्ले छोड़ती हुई बोलीं, "क्या कहूं, ये सभी मेरी रचना हैं. और मैं जिंदगी को वह जैसी है वैसी ही पकड़ने में विश्वास करती हूं."

इसके लिए आपने फोटोग्राफी का ककहरा कब से सीखना शुरू किया था?

"पिछले चार-पांच साल से."

रघु की सोहबत में?

"हो सकता है, लेकिन रघु मेरे लिए, मेरी आंख से जिंदगी तो नहीं देख सकते!"

रघुराय की तरह आपकी निगाह में भी संसार का श्रेष्ठतम फोटोग्राफर कार्टेब्रेसां होना चाहिए?

"जी हां, बेशक! इसलिए कि ब्रेसां जिंदगी को उसके समूचे रूपों में बिना किसी ड्रामा के, बेहद ईमानदारी के साथ, बिल्कुल सीधे-सीधे पेश करता है."

फिल्मों से क्यों भागीं?

"भागी कहां! सत्यू की फिल्म 'दुष्काल' अभी-अभी पूरी करके आयी हूं."

यह तो व्यावसायिक फिल्म नहीं फिल्मी सफलता तो व्यावसायिक से आंकी जाती है.

"आप मुझे असफल कह लीजिए मैं व्यावसायिक फिल्मों में काम पसंद नहीं करती. एक मजेदार भी बताऊं? सिर्फ एक! मैं तीन एक जगह बैठ नहीं सकती और इसके बिना काम चल नहीं दूसरा भी सुनिएगा? मैं मेक-अप

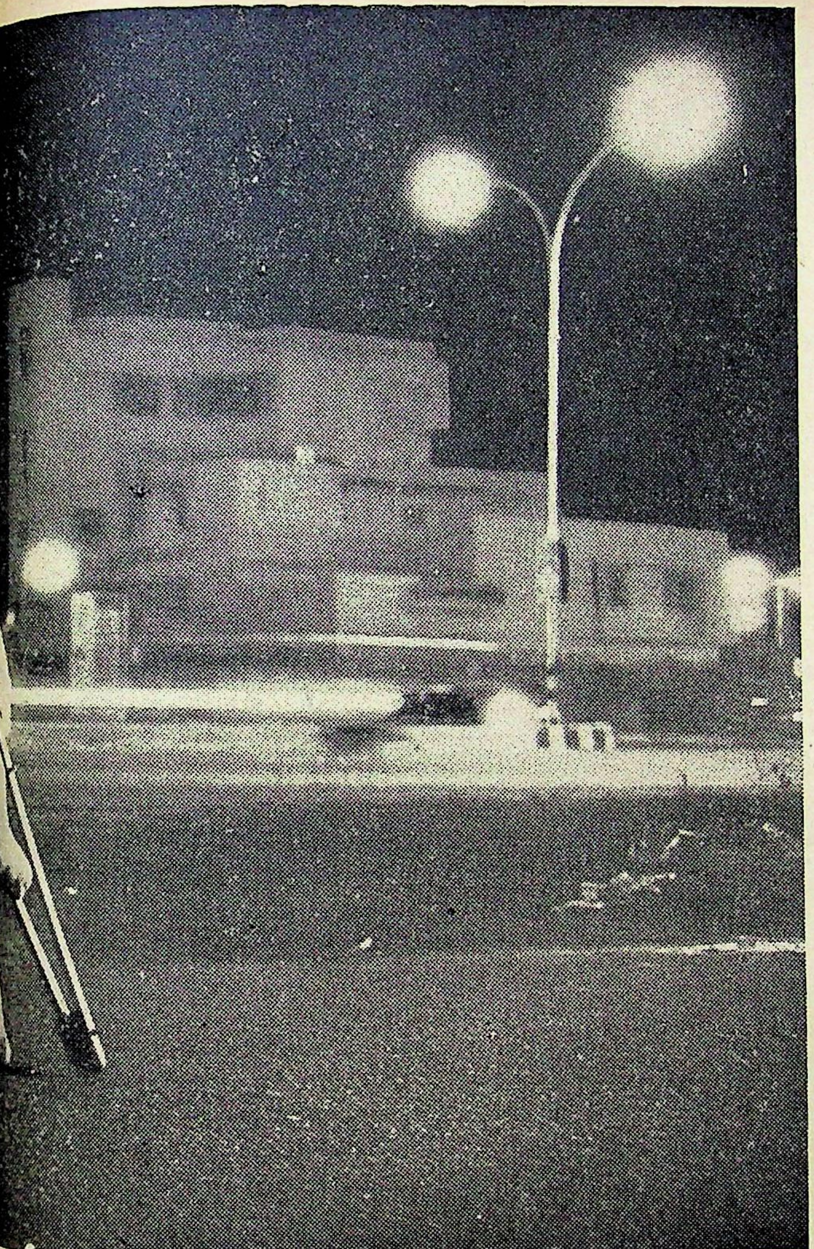

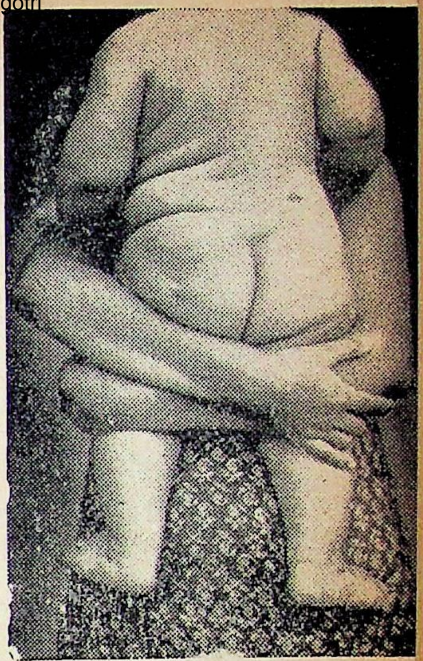

● लवलीन

पसंद नहीं करती. न जिंदगी में न तस्वीरों में. देख रहे हैं आप, मेरी तस्वीरें मेक-अप नहीं पहनतीं.

अभिव्यक्ति की इस नयी विधा को पकड़ कर छोड़ कब देंगी?

“पकड़ा है नहीं, तो छोड़ना कैसा; लेखन, प्रसारण, अभिनय, फोटोग्राफी . . . ये सब मेरे वजूद का, रूह का हिस्सा हो गये हैं, यहां इस गैलरी में अपनी रूह के इन हिस्सों के बीच बैठना, इन तस्वीरों के बीच . . . अपने-आप में मेरा एक नया अनुभव है. और यह अनुभव फोटोग्राफी से थोड़ा विमुख होकर भी अपने से अलग नहीं किया जा सकता.”

अपने समकालीनों की तस्वीरें देखती ही होंगी, कैसी लगती हैं उनमें से . . .?

“आप शैतानी करके मुझसे कुछ का कुछ उगलवाने की कोशिश कर रहे हैं और मैं अपनी तस्वीरों का हिस्सा बन कर बैठी हूं.” □

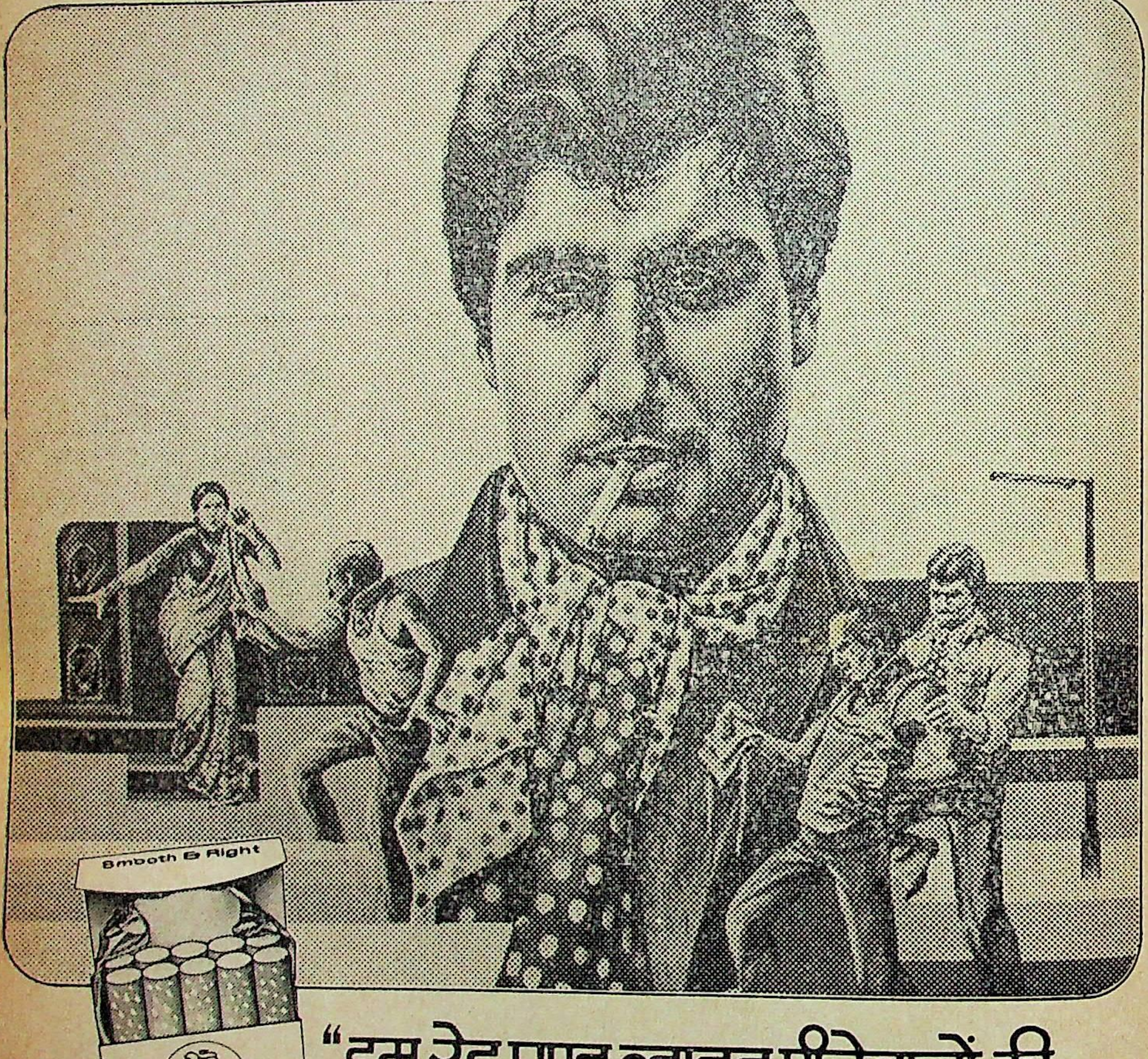
Smooth & Right
RED & WHITE
MARCOVITCH
VIRGINIA FILTER
"हम रेड एण्ड व्हाइट पीनेवालों की बात ही कुछ और है!"

GPI
गॉडफ्रे फिलिप्स इंडिया लिमिटेड

वैधानिक चेतावनी: सिगरेट पीना स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है।
STATUTORY WARNING: CIGARETTE SMOKING IS INJURIOUS TO HEALTH

Rediffusion/GPI/1142d HN

गांव की कहानी : परिचर्चा-परीचर्चा

अजित कुमार

लेखिकाओं की खासी भरमार के बावजूद ग्रामजीवन की चितेरी कोई बांधवी हिंदी में नजर क्यों नहीं आ रही? पुरुष कथाकारों ने इस क्षेत्र को अपने लिए विशेष रूप से सुरक्षित क्यों रख छोड़ा है? ग्राम कथा के संदर्भ में प्रेमचंद की परंपरा की स्थिति क्या है और इस लेखन की उपलब्धियां और संभावनाएं क्या हैं? ये तथा ऐसे ही तमाम सवाल लेकर प्रस्तुत हैं अजित कुमार. पिछले अंक में 'कुरु-कुरु स्वाहा' के लेखक मनोहरश्याम जोशी से हुई इनकी लिखा-पढ़ी का आनंद आप ले चुके हैं.

जता की जो प्रवृत्ति पिछले दिनों हिंदी कहानी में बढ़ती गयी, उसके ये सवाल तो उठने ही थे कि हमारे ों ने मुख्य या गौण रूप से ग्रामीण का चित्रण क्यों किया? गांव से विषय क्या चुक गये या फिर महा में रहने के कारण लेखकों की ग्रामीण ना पर से पकड छूटती जा रही है ग्राम-कथा के प्रति पाठकों की रुचि हो गयी है? गांव और अंचल में क्या है? ग्राम-कथा के संदर्भ में प्रेमचंद परंपरा की स्थिति क्या है? इस लेखन उपलब्धियां और संभावनाएं क्या हैं? इस तरह के प्रश्नों का ठीक-ठीक और ायदा उत्तर तो ग्राम-जीवन के चितेरे कार बंधु ही दे सकेंगे, शायद इसका कि लेखिकाओं की खासी भरमार के द ग्राम-जीवन की चितेरी कोई ी हमें नजर क्यों नहीं आ रही? कथाकारों ने इस क्षेत्र को अपने लिए रूप से सुरक्षित क्यों रख छोड़ा है? बहरहाल, जहां तक मेरा संबंध है, महा में बिछुड़ी कविता को खोजने के प्राय: 'परिचर्चाओं' में अटके- मुझ जैसे व्यक्ति मामले को और देने के सिवा कर भी क्या पायेंगे. वे यह दुराशा जरूर कर सकते हैं कि का खूब उलझ जाना ही उसके ने की शुरुआत होगी. उलझन या ाव की इसी प्रक्रिया में, अनुमान मैंने कि भाग्यशाली हैं वे लेखक, अपनी धरती और जड़ों से अंतरंग में जुड़े हुए हैं. उनसे कुछ कम भाग्य- वे हैं, जो नगरों-महानगरों में हुए भी तीज-त्योहार-छुट्टी पर गांव सजीव संपर्क बनाये रखते हैं. ीय स्थिति है—उन लेखकों की, जो होकर भी उसे नहीं जी पाये और र में रहकर भी उससे नहीं जुड़ बल्कि, ऐसों की तुलना में, वे लेखक मजे में हैं, जो या तो नगर के रंग में रंग गये या फिर पले-बढ़े ही इस परिवेश में.

इस तरह अपनी ओर से बना दी मैंने लेखकों की चार-पांच श्रेणियां और उनके सौभाग्य-दुर्भाग्य का भी निबटारा कर दिया. फिर यह सोच कर संतुष्ट हुआ कि तनिक हेर-फेर और जोड़-तोड़कर उनकी संख्या और मनोदशा में काफी बढ़ोतरी की जा सकती है.

विषय के यहां कुछ और पहलू भी हैं. मसलन यह है कि जिस तरह हिंदी में बहुत कुछ बस चल पड़ता है, उसी तरह गंवई, गांव, ग्राम, ग्राम्य, ग्रामीय ग्रामीण, गंवारू, भदेश, ग्रामगंधी, ग्रामांचली जैसे तमाम शब्द सामान्यत: एक ही भाव को व्यंजित करने वाले समझे जाने लगे हैं. आवश्यक नहीं कि प्रत्येक शब्द का प्रयोग पारिभाषिक अर्थ में ही किया जाये, लेकिन अर्थछायाओं के बीच अंतर की प्रतीति होनी ही चाहिए. उदाहरण के लिए अंग्रेजी के दो शब्द 'रूरल' और 'वलगर' ले लें. बहुत समय तक उनके लिए एक 'ग्रामीण' शब्द से काम चलाया गया. अब कहीं-कहीं 'ग्रामीय' का प्रयोग 'रूरल' के लिए होने लगा है. बहरहाल, भारत के गांवों की सामान्य दशा को देखते हुए 'ग्राम्य', 'ग्रामीण', 'गंवारू' या 'भदेश' का एक ही अर्थ—'कुत्सित' लगाना भले ही सामंती और औपनिवेशिक अवशेष माना जाये, तो भी यह खतरा बराबर मौजूद है कि शहरी नव-धनाढ्य वर्ग में पनप रही 'पॉप-कल्चर' गांव को उपेक्षा-तिरस्कर की दृष्टि से देखते हुए भी, उसको ऊपरी सजावट या दिखावे का स्रोत मान ले. नयी दिल्ली के प्रदर्शनी-स्थल में भारत के गांवों-झोंपड़ों की झांकी प्रस्तुत करने वाला 'रूरल कांप्लेक्स' नामक मंडप मनोमुग्धकारी तो होता ही है, आयोजकों की 'ग्राम-कुंठा' का भी परिचय देता है. इतना ही नहीं, गांवों के प्रति रोमानी कल्पना उन तमाम एयरकंडीशंड होटलों, दूकानों और ड्राइंगरूमों द्वारा पनपायी जाती है, जहां ग्राम-शिल्प, हस्तशिल्प आदि का चमकीला उपयोग दिखता है. इन जगहों में व्याप्त स्राव-वैभव को गंवई टोकरी, सूप, मोढ़ा, चटाई, मटका, छप्पर आदि अपने लोक-संस्पर्श से और भी अधिक भव्य, अपूर्व, अनुपम बना देते हैं.

मतलब यह है कि एक ओर तो शाही, संभ्रांत, शिक्षित, संपन्न वर्ग ने राजस्थानी

● अजित कुमार

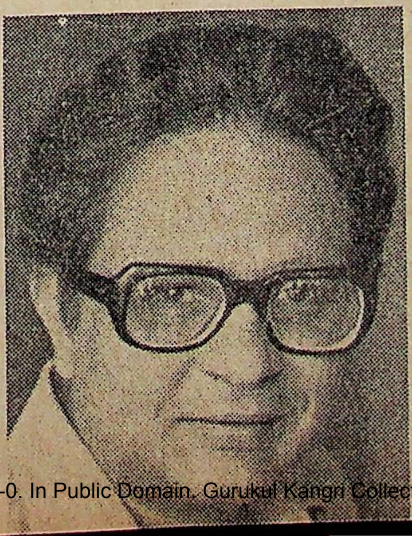

'पड़', मधुबनी आदि के नमूने दीवार पर टांगकर अपने आप को सुरुचिपूर्ण, सुसंस्कृत जताते हुए गांव और उसकी जिंदगी से कट जाने की, पूरी तरह 'इनसुलेट' हो जाने की, प्रवृत्ति बढ़ रही है और दूसरी ओर हमारे लेखकों के बीच अंचल, गांव, कस्बा, नगर, महानगर की कथाओं को लेकर खींचतान मची हुई है. इन दोनों धंधों में बड़ी दूर तक समानता दिखती है और इनका खास मकसद भी नजर आता है; मकसद भले ही कुछ कम हो याकि उलझा हुआ हो.

एक मकसद तो है—गांव को अनोखी, नायाब चीज बनाकर पारखियों के सामने पेश करने वाली 'क्यूरियो वृत्ति,' जा हायर मध्य वर्ग की उच्चाकांक्षा का पर्याय बनती गयी है. इसके अलावा यह खयाल भी मौजूद है कि गांव की कहानी तत्वतः प्रेम, दाम्पत्य अथवा नगर की कहानी से भिन्न और विशिष्ट होती है. यह भी कि वामपंथी समझ से युक्त लेखक के लिए जरूरी है कि वह गांव को अपनी रचना के केंद्र में रखे.

इन दबावों के कारण, बहुधा ग्राम-जीवन से संबद्ध कथायें आत्मसजग और सचेष्ट ही नहीं, आलोचकी भाव, दुरूह और अपढ़नीय भी हो गयी हैं. यदि हम लमही से जुड़कर लिखने वाले प्रेमचंद (और गढ़ाकोला-डलमऊ में रमे निराला) की रचनाओं के उस गुण को याद करें, जिसे डा. रामविलास शर्मा ने 'लोक-रस' कहा है और जो 'यहां की धरती की सुगंध, यहां की हवा की ताजगी और महक' से युक्त है तो अंतर और भी स्पष्ट हो जायेगा.

इस संबंध में समकालीन कथाकारों की दो अन्य मनोदशाएं भी विचारणीय हैं. कुछ शिक्षित, प्रबुद्ध, संभ्रांत लेखकों ने यह समझा था कि उनकी जागरूकता और जादूभरी लेखनी गांव का समूचा अंधकार मिटाकर उसे नवचेतना से आलोकित कर देगी. उनका यह भ्रम टूटने पर आंख चुराने या भाग खड़े होने की अनिवार्यता सामने आयी. डा. विवेकी राय ने 'स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य और ग्राम-जीवन' के दूसरे परिशिष्ट में इसका सटीक वर्णन किया है. "स्वतंत्रता के बाद आयी आंचलिकता की लहर के बाद पुनः हिंदी कथा-साहित्य में ग्राम-जीवन की उपेक्षा का एक जबरदस्त दौर आया. . .गांव की पीड़ा में क्या हैं? आजादी के पश्चात दशक पर दशक बीतते गये और बावजूद विकासी प्रयत्न के गांव टूटते गये. वे नरक होते गये. . . गांव के जड़, अंधपरंपरिक और गंवारनीतिक धक्का से उसके हितचेतकों का भाग खड़ा होना एक रोमांचक सत्य है."

कहने की जरूरत नहीं कि ये 'हित-चेतक कथा-नायक, लेखक या पाठक —कोई भी हो सकते हैं. इसे 'विमुखता' भी समझा जा सकता है, लेकिन आशा करनी चाहिए कि उत्साह और हताशा के अतिवादों से मुक्त होने पर जन-जीवन से संलग्नता और प्रतिबद्धता का मान बढ़ने के साथ-साथ उन्मुखता भी गहरी और पूरी होती जायेगी. तब शायद यह बात भी स्पष्ट हो सके कि वृहत्तर सामाजिक वास्तविकता से काटकर 'गांव' को एक द्वीप बनाने की कोई खास जरूरत नहीं है.

■

बड़े सुंदर शब्द हैं—'ग्रामात्मा', 'ग्रामांचली', 'ग्रामभित्तिक', 'ग्रामगंधी' आदि. शोध सूचना, संदर्भ विशेषज्ञता आदि उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कथा-साहित्य में इस आत्मा, भित्ति या गंध की खोज बेशक होनी चाहिए (इच्छा हो, काव्य में भी इन्हें तलाशा जाये) लेकिन भारत में एक भी राजधानी ऐसी नहीं है, जो शिकागो-न्यूयार्क से होड़ ले सके. हम भले ही गौरांगप्रभुओं की लाड़ली दिल्ली को एक बड़ा गांव न कहें, इस तथ्य को अन-देखा नहीं किया जा सकता कि यहां बाकायदा घोषित और सुरक्षित बीसों गांव महानगर की परिधि के भीतर मौजूद हैं. यही नहीं, प्रतिदिन सैकड़ों-हजारों लोग कस्बों-गांवों से आकर यहां बस रहे हैं. गांव यदि शहर बन रहे हैं तो शहर भी गांव होते जा रहे हैं. विभाजक-रेखाएं सब की सब गड्डमड्ड हैं. मोह और मोहभंग, सहजता और कुंठा, लघुता और विशालता वाला अंतर अब नहीं किया जा सकता. युवा-विद्रोह, नंगई, परोपजीविता, पीढ़ियों का संघर्ष, गुटबंदी, उत्कोचवृत्ति, असुरक्षा, संस्थाजीविता, अस्वस्थ नेतृत्व, विघटन और हुल्लड़बाजी जहां एक नये जीवन-मूल्य के रूप में पनप रही हैं. उसे जल्दबाजी में भले ही 'नगर' कह दें, विवेकीराय ने उनका उल्लेख 'गांव' संदर्भ में किया है. उन्होंने वहां 'व्याप आक्रोश और तीखा विक्षोभ' भी पा है. 'गांव की कहानी न होकर स्वदेश-गाथा का समकालीन आलेखन'—यह किसी अच्छी रचना का मानदंड हो सकता है श्री विवेकी राय का यह निष्कर्ष विचार है कि "ग्रामात्मा को विश्वात्मा से जोड़ यदि नहीं अंकित किया गया तो कृति स्थायित्व संदिग्ध होगा."

■

यहां 'गोदान' से जुड़ी वह बहस या आती है कि 'उपन्यास में गांव का चित्र जितना प्रामाणिक है, उतना शहर औ शहरियों का नहीं.' इसका समाधान कतिप लेखकों ने इस तरह किया कि अपने लि छोटे-बड़े अंचल, गांव, कस्बे, शहर चु लिये. बेशक इसके पीछे भोगे हुए यथार्थ ईमानदारी, गहरायी और प्रामाणिकता के तकाजे भी रहे हैं, बहुत-कुछ श्रेष्ठ और गंभीर लेखन भी इस नाते संभव हुआ है लेकिन 'ग्रामांचल' से 'गगनांचल' तक के जो अनेक कटघरे हिंदी में खड़े क दिये गये हैं, उनके मूल में सृजनात्म उद्देश्यों से कहीं अधिक वे उद्देश्य नजर आ हैं, जिन्हें (बेहतर नाम के अभाव में आलोचना, व्यवसाय, प्रतिष्ठा, राजनीति खेमा, सरलीकरण आदि के आसपास ढूं जा सकता है. सृजनात्मक प्रयोजन तो ढूं इन सब में भी मिल जायेंगे, तथापि 'गोदा को समग्र, समन्वित संरचना मानने जगह उसे खंडित, विभाजित करने कोई खास जरूरत नहीं दिखायी दे

यही बात साहित्यिक विधाओं के बा में भी कही जा सकती है. कविता और कहानी का विभाजन बहुधा आंतरि अनिवार्यता से नहीं, व्यावहारिक प्रयोज से प्रतीत होता है. इसे स्पष्ट करने के लि मैं अपने कविता-संग्रह 'ये फूल नहीं' की भूमिका से कुछ पंक्तियां उद्धृत कर चाहूंगा.

"इस देश के औसत शिक्षित लोगों की ही तरह मैं भी गांव से कस्बे, कस्बे से शहर शहर से बड़े शहर में पहुंचा और पि बीस सालों से लगातार वापस गांव

सपने देखता, झींखता, गुर्राता, आखिर-र बड़े शहर में ही मरूंगा. बीच में जब अपना या और कोई गांव देखा, मेरा ना टूटता गया, पर कुछ तो होगा कि ज भी चारों ओर की टूटन के बावजूद, में अपने बचपन के गांव-गलियारे, र-अमराई, कोल्हू, घाट, तोराई के ही विशेष रूप से अंकित हैं, मूसलाधार में कच्ची कोठरी की आधी ढही छत नीचे शरण की भांति. एक बचपना ही शायद यह चाहना कि हम बचपन में ही रहें. यह एक तरह से अधर में उलटे के रहना था. इस संग्रह की अधिकांश विताएं इस स्थिति के स्वीकार और जन्य पीड़ा की कविताएं हैं. पीड़ा एक ड़ा शब्द है. उसे वापस ले, सुधार कर कहूं: टपटाते-छटपटाते क्रमशः शांत पड़ जाने कविताएं. एक समूची दुनिया के, मेरी नी ही दुनिया के—बनने के ही क्रम में, ट जाने की कविताएं.

मगंधी' कथाओं में विद्यमान सीलन-ी मोहगंध या 'नास्टैल्जिया' पर ध्यान तो यह वक्तव्य मेरी कविताओं से आगे बहुतेरी 'गांव की कहानियों' पर भी हो जायेगी. बहरहाल, मैंने इसे दस पहले लिखा था. तब तक 'हरित क्रांति' सपना साकार न हुआ था और मैं भी सा कच्चा था. आज नवें दशक और नवीन शताब्दी की प्रतीक्षा करते मय आशा करनी चाहिए कि 'मिटने क्रम में बन जाने की प्रक्रिया' को हम चान लेंगे और अपनी कथाओं में यहां धरती की सुगंध, यहां की हवा की गी और महक बार-बार पायेंगे. □

हम कहें गांव की गाथा

'सारिका' के प्रेमचंद विशेषांक में ग्रामजीवन की समकालीन स्थितियों पर शिवसागर मिश्र की रिपोर्ताज कथा 'हम कहें गांव की गाथा' आप पढ़ चुके हैं. अगले अंक में पढ़िए शिवसागर मिश्र की एक और रिपोर्ताज कथा.

लघुकथा

सीढ़ियां

▣ प्रियंवद

मैंने जिंदगी को तीन बार निचोड़ा और मुझे तीन चीजें मिलीं. पहले सपने, फिर आंसू और फिर गीत.

बहुत पहले मैंने खरगोश के बच्चों के सफेद मुलायम जिस्म में मुंह दुबकाकर पूछा, "मैं कौन हूं?"

"मांस का लोथड़ा." सफेद बच्चे की आंखें टिमटिमायीं.

"मैं कौन हूं?" मैंने खिड़की के कांच से चिपके सुर्ख गुलाब से पूछा...

"मांस का लोथड़ा." गुलाब की इक्कीसों पंखुरियां फड़फड़ायीं.

"मैं कौन हूं?" मैंने मरते हुए सूरज, उगते हुए चांद से पूछा.

"मांस का लोथड़ा." उदास शाम और पीली बीमार चांदनी फुसफुसायी.

"मैं कौन हूं?" मैंने उससे पूछा.

"मेरी आत्मा." उसने मेरे गले का बायां हिस्सा चूम लिया.

मैंने तब जिंदगी को निचोड़ा तो उसमें से सिर्फ सपने निकले, रंगबिरंगे सपने, एक के साथ एक गुंथे हुए. वह सपने मेरे पूरे बदन में फैलते गये, किसी बोगनवेलिया की तरह.

जिंदगी में सपना ही सत्य है, मैं सोचने लगा.

"तुम्हारे एक गाल में धूप और दूसरे में चांदनी है." मैं उससे कहता और एक सपना अपनी हथेली से उतारकर उसके गालों पर टांक देता. वह खिलखिलाती, "और..."

"तुम्हारे बाल उस राजकुमारी की तरह हैं, जिसे राक्षस कैद कर लेता है." मैं एक सपना उसके बालों में गूंथ देता.

"और..." उसकी आंखें पागल हो जातीं.

फिर सपने के बाद सपने से मैं उसको ढंक देता, उसके होंठ, उसकी उंगलियों की पोरें, उसके पंजे तक.

एक दिन उसने पूछा, "अगर मैं जाऊं तो क्या करोगे?"

"तुम्हारे दोनों पांव काट लूंगा."

"काट लो." उसने अपने पांव बढ़ा दिये.

"मैं सारी रात उसके पांवों पर सिर रखकर रोता रहा.

मैंने तब जिंदगी को निचोड़ा तो उससे में सिर्फ आंसू निकले. एक के बाद और, फिर और आंसू. ये आंसू मेरे पूरे बदन में फैल गये, किसी गुलमोहर के गुच्छे की तरह.

जिंदगी में आंसू ही सत्य हैं, मैं सोचने लगा.

आंसुओं का दरिया चढ़ता रहा और मैं उसमें डूबता गया. मैंने तब जिंदगी को निचोड़ा तो उसमें से सिर्फ गीत निकले. वह गीत मेरे पूरे बदन में फैलते चले गये, हल्दिया अमलतास की तरह.

जिंदगी में गीत ही सत्य है, मैं अब सोचता हूं, लेकिन सच तो न सिर्फ सपना है न सिर्फ आंसू और न सिर्फ गीत. सच है एक सिलसिला. पहले सपने, फिर आंसू, और फिर गीत का शाश्वत अपराजेय सिलसिला. □

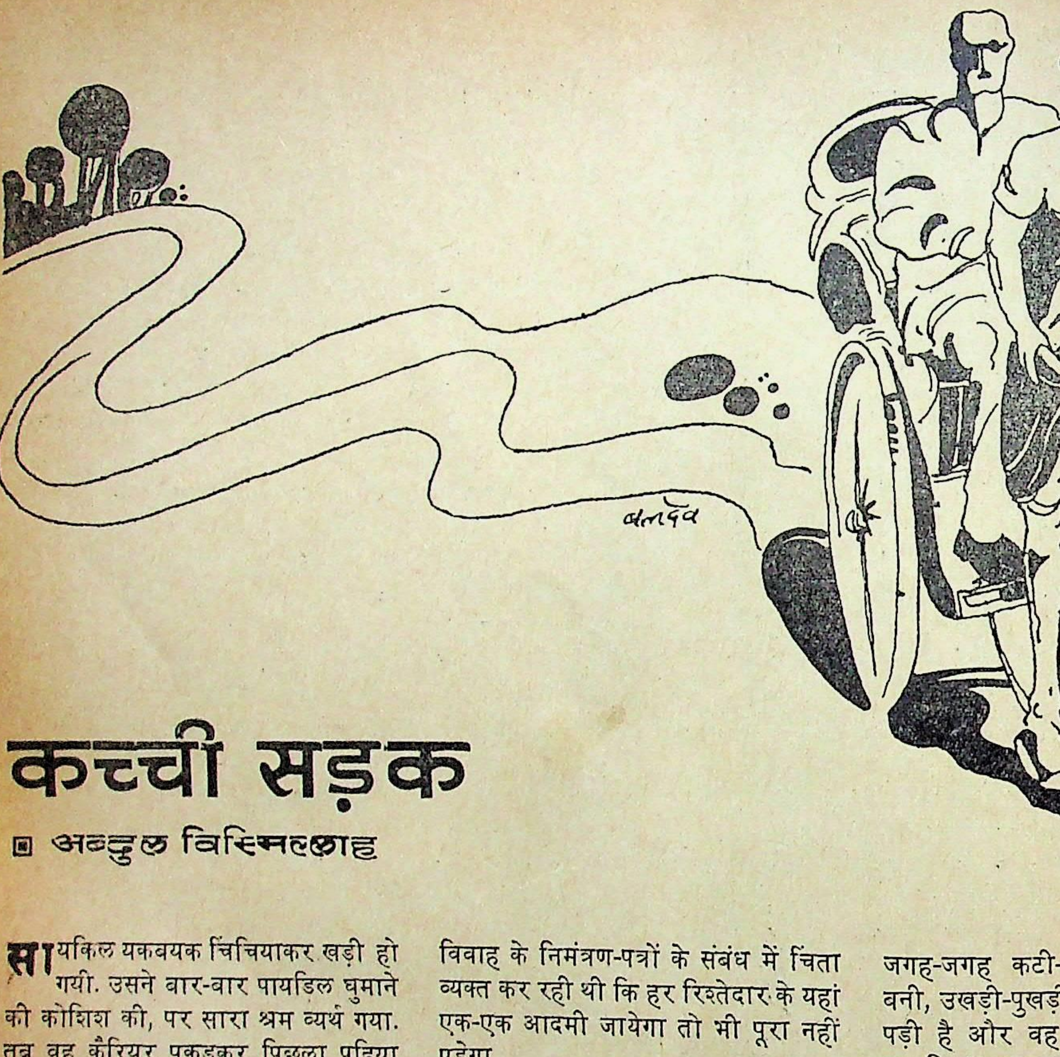

कच्ची सड़क

■ अब्दुल बिस्मिल्लाह

सायकिल यकबयक चिचियाकर खड़ी हो गयी. उसने बार-बार पायडिल घुमाने की कोशिश की, पर सारा श्रम व्यर्थ गया. तब वह कैरियर पकड़कर पिछला पहिया उठाये आगे वाली दूकान की ओर बढ़ गया, जहां सायकिलों की मरम्मत होती थी. वहां पहुंचकर उसने सायकिल पटक दी.

"देखो भाई, इसमें क्या गड़बड़ी हो गयी है?" उसने मरम्मत करने वाले व्यक्ति से यह वाक्य इस अंदाज में कहा, मानो गड़बड़ होने का सारा कसूर सायकिल का ही है.

मरम्मत करने वाला व्यक्ति उसकी बातों पर ध्यान दिये बगैर सामने पड़ी दूसरी सायकिल का पंक्चर ठीक करने के लिए रबर के एक टुकड़े पर सरेस घिसता रहा और बीच-बीच में अपनी पत्नी की बातों पर हूं-हां करता रहा. उसकी पत्नी एक अधेड़ औरत थी, जो अपने छ:-सात बच्चों से घिरी वहीं मुनगे के पेड़ के नीचे बैठी थी और अंतिम बच्चे को छाती खोले दूध पिलाती हुई रिश्तेदारों के यहां से आये विवाह के निमंत्रण-पत्रों के संबंध में चिंता व्यक्त कर रही थी कि हर रिश्तेदार के यहां एक-एक आदमी जायेगा तो भी पूरा नहीं पड़ेगा.

उस औरत की बातों से और आदमी की उदासीनता से प्राय: ऊबकर उसने एक बार फिर गिड़गिड़ाने की चेष्टा की, "अरे भाई, मेरी भी सायकिल देख लो न, शाम हो रही है, अभी दूर जाना है."

"बैठ जाइए, देखते हैं." सायकिल वाले ने राजसी ठाठ के साथ उस पर अब ध्यान दिया था और तसले में भरे काले पानी में हाथ धो रहा था.

वह वहीं बिछी झिलगी-सी बंसखट पर लुढ़क गया था. "कौन कटोरिया बिल्कुल खराब हुई गया है, काहे न जाम हो."

मरम्मत करने वाला व्यक्ति बुदबुदाया, पर उसने उस ओर कोई ध्यान नहीं दिया. वह सिर के नीचे दोनों हाथ लगाये बंसखट पर लेटे-लेटे सामने पक्की सड़क से निकलने वाली कच्ची सड़क को देखता रहा, जो जगह-जगह कटी-फटी, धूल का द बनी, उखड़ी-पुखड़ी एक मुद्दत से इसी पड़ी है और वह रोज उसी सड़क सायकिल चलाकर यहां से घर तक है और घर से यहां तक आता है.

"आजादी के बाद का हर भार नवयुवक एक कच्ची सड़क है." अचा ही यह जुमला उसके होंठों पर आ जात और वह मन मसोसकर रह जाता है. इस वक्त वह दोस्तों की महफिल में तो इस पर कितनी वाहवाहियां लूट

"वाह! क्या बात कही है गुलशन कोई दोस्त चीखता और आजादी के की तमाम परिस्थितियों पर जोर- बहसें शुरू हो जातीं.

कितने अच्छे दिन थे, जब वह स्टूडेंट की जिंदगी जी रहा था. . . और याद आते हैं वे दिन, जब वह हाई स्कू था और उसे 'विद्यार्थी जीवन' पर नि लिखना था. मास्टर साहब ने कैसी लाइंस दी थीं. उन्हीं में एक यह वाक्य

था, "आज का विद्यार्थी कल का राष्ट्र-निर्माता है."

उसके होंठों पर एक क्रूर मुस्कान तैर जाती है और आंखों में पिता की मृत्यु का दृश्य! उस दृश्य को वह परे ढकेलता है तो दूसरा दृश्य आ जाता है. फिर तीसरा, फिर चौथा, फिर पांचवां. . . .दृश्य ही दृश्य तो हैं.

▣

पिता की मृत्यु के बाद घर का स्वामित्व बड़े भाई के हाथ में आ गया था और उनकी भी असमय मृत्यु हो गयी थी. तब उसने शहर जाकर पढ़ने के लिए भाभी को राजी कर लिया था.

शहर में उसने एक कमरा ले लिया था और अब वह केवल शनिवार को घर आता, राशन आदि लेने. सोमवार की सुबह फिर क्वार्टर पर हाजिर हो जाता. कभी-कभी तो महीने पर या किसी मुख्य पर्व पर ही घर जाता. दरअसल क्वार्टर की जिंदगी उसे बेहद अच्छी लगती थी. इसलिए नहीं कि उसका क्वार्टर बहुत अच्छा था, बल्कि इसलिए कि वहां उसके ढेर सारे दोस्त आते, जिनसे उसे बौद्धिक खुराक मिलती थी. वह अपने को उनके सामने अभिव्यक्त करता और उनकी अभिव्यक्तियों को सुनता. इस प्रकार उसे लगता कि निश्चय ही भविष्य में वे किसी नयी दिशा का वातायन खोलने में सफल होंगे. . . . .

उसका क्वार्टर रेलवे स्टेशन के करीब एक अंधेरी गली में था. वह मकान बहुत पुराना था, जिसे एक आदमी ने पचीस रुपये महीने पर ले रखा था. उस आदमी ने उसे नीचे वाला कमरा पंद्रह रुपये में दे दिया था. इस प्रकार वह सबटेनेंट बनकर रह रहा था.

कमरे में एक दरवाजा था और एक खिड़की. वहां पहले से एक बड़ी मेज पड़ी थी, जिसे उसने खिड़की के पास लगा लिया था. यद्यपि वह बहुत पुरानी थी और हिलती-डुलती थी, पर ईंटों के सहारे उसने अपनी बंसखट बिछा ली. बंसखट जरा ऊंची ही खरीदी थी, ताकि उसी से कुर्सी का काम भी लिया जा सके और वह बंसखट पर बैठकर आराम से मेज पर लिख लेता था.

उन दिनों कमरे में बैठे-बैठे उसने एक अव्यक्त रोमांस भी लड़ाया था. खिड़की के सामने वाले घर में एक लड़की रहती थी, सांवली सी. उस घर के आंगन का दरवाजा खिड़की के ठीक सामने खुलता था, जिस पर हरे रंग का एक पर्दा बराबर लटकता रहता था. वह लड़की कभी-कभी पर्दा उठाकर किवाड़ों पर टांग देती और उसकी ओर मुंह करके खड़ी हो जाती. ऐसा वह प्रायः उसी वक्त करती, जब वह मेज पर कुछ लिख रहा होता. एक रोज कलम रोककर वह उधर देखने लगा था और मुस्करा उठा था. लड़की भी मुस्करायी थी. यद्यपि प्रेम करने के लिए वह एक गोल्डन चांस था, पर वह इस चक्कर में नहीं फंसना चाहता था. इसीलिए उसने पत्रव्यवहार का चक्कर भी नहीं चलाया और उनका रोमांस बस इतना ही आगे बढ़ सका कि अब वे एक दूसरे को मुंह चिढ़ा लिया करते थे.

रात को वहां दोस्तों की महफिल जमती थी. यद्यपि कमरे में जगह कम थी, पर वे लोग अपने को उतने में ही एडजस्ट कर लिया करते थे. कुछ लोग बंसखट पर बैठ जाते और कुछ लोग मेज पर. और बहसें शुरू हो जातीं . . .

उनकी ये बहसें सिर्फ बरसात में बंद रहतीं. कारण कि तब उसका कमरा इस लायक नहीं रह जाता था कि उसमें बैठा जा सके. बारिश जब होती, उसकी एक दीवार से इस कदर पानी रिसता कि तमाम फर्श पर पानी ही पानी हो जाता और उसके दोस्त डर जाते कि कहीं यह मकान ढह न पड़े. कुछ लोगों ने उसे कमरा छोड़ देने की सलाह भी दी, पर वह केवल मुस्कराकर रह गया.

"यह कमरा मेरा देश है, अपने देश को छोड़कर कहां जाऊंगा?"

गुलशन ने एक बार यह बात कह दी थी तो कई दिन तक वाहवाहियां लूटता रहा. और अचानक ही उसे मालूम हुआ कि उसका विद्यार्थी जीवन समाप्त हो गया. अब वह छात्र नहीं, राष्ट्रनिर्माता है.

▣

गर्मियों में घर लौटा था तो राष्ट्र-निर्माण की योजनाएं लेकर ही. और दिन भर नीम के नीचे पलंग डालकर गांधी और लोहिया की पुस्तकें पढ़ता रहता, लेकिन एक दिन उसे मालूम हुआ कि उसका गौना हो रहा है. जब वह हाई स्कूल में था, तभी विवाह हो गया था. पीली-सी धोती पहने सिर पर मौर बांधे कैसा तो लगता था वह! और गौने के दिन उसे शहरी लड़की की याद आयी. उसका मुस्कराना, मुंह चिढ़ाना . . . .पर उसकी पत्नी निकली बिल्कुल भोली-भाली, निपट देहातिन, जरा-जरा सी बात पर लजा जाने वाली . . .उसे यह सब अच्छा नहीं लगा.

'लज्जा नारी का आभूषण है', कैसे-कैसे रद्दी कोटेशन मिलते थे हमारे पूर्वजों को; उसने मन ही मन सोचा और पत्नी को अपनी योजनाएं समझाने लगा. वह देर तक राष्ट्र-निर्माण में स्त्रियों का क्या योगदान हो सकता है, इस विषय पर बोलता रहता और पत्नी बेचारी बुत बनी सामने बैठी रहती.

"बहू को अब चूल्हा-बर्तन करने के लिए भी कहो लाला."

एक दिन भाभी ने उसे टोका तो वह धरती पर आ गया. पत्नी उसी दिन से भाभी के कामों में हाथ बंटाने लगी.

और एक दिन पत्नी से ही उसे मालूम हुआ कि कल से उनका खाना अलग पकेगा. धरती से भी अधिक यथार्थ यदि कोई स्थल होता हो तो वह वहीं पहुंच गया था.

बंटवारे के नाम पर भतीजों से झगड़ा हुआ तो उसकी आंखें खुल गयीं. वह किसको क्या कहता? बाबूजी होते, अम्मां होतीं, भैया होते तो कुछ बोलता भी.

"इन दो कोठरियों के अलावा कुछ नहीं लूंगा."

आदर्शवाद के जोश में उसने घोषणा कर दी. अगले दिन से राशन उधार आने लगा.

"मैं शहर जा रहा हूं. जब तक न लौटूं, धैर्यपूर्वक रहना. किसी से कुछ मत कहना. अपना काम खुद कर लेना. लज्जा के चक्कर में मत पड़ना."

उसने दूसरी घोषणा की और शहर आकर कमरे का दरवाजा खोला. फर्श पर जमा ढेर सा पानी बाहर आ गया. उसे लगा कि उसके भीतर का मवाद बह रहा है. रघुवीर शर्मा भर रह गया था वहां. बाकी लोग किसी न किसी काम में फंस गये थे. प्रायः सबके यहां कोई न कोई बिजनेस होता था. रघुवीर के पास कुछ नहीं था. छोटी-मोटी नौकरी से घर चलाने वाले बाप गर्मियों में मर गये थे और अब वह छोटी-मोटी नौकरी कर रहा था.

"क्या करते हो तुम?"

"प्रूफ रीडिंग." रघुवीर शर्मा ने 'आजाद भारत' नामक अखबार का हवाला देते हुए बताया.

"यार, मेरे लिए भी कुछ करो." गुलशन की आंखों में ढेर सारी दयनीयता इकट्ठी हो गयी थी.

"करूंगा!" शर्मा ने आंखें झुका ली थीं. वह उस समय घर से लायी रोटियों में से बची एक रोटी को प्याज के साथ खा रहा था, "साथ दो!"

शर्मा ने एक टुकड़ा तोड़ लिया था, कड़क्! लगा, रोटी का टुकड़ा नहीं, उसके शरीर का कोई टुकड़ा कड़क् से बोलकर टूट गया है. और फिर दो महीने का बकाया किराया न दे सकने के कारण अगले दिन उसे कमरा छोड़ देना पड़ा.

अंतिम बार फिर वह मेज पर बैठा, लिखने का अभिनय करता हुआ, शायद लड़की सामने आये तो उसका चिढ़ाया हुआ मुंह भी देख ले, पर वह नहीं आयी.

▣

सामान उसने शर्मा के यहां रख दिया और खुद सड़क पर आ गया, "आजादी के बाद का मैं असली भारतीय युवक हूं." वह बुदबुदा उठा था और उस दिन भी उसके होंठों पर मुस्कान तैर गयी थी.

रघुवीर शर्मा ने उसे अपने साथ कॉपी होल्डर के रूप में रख लिया था, लेकिन अपने घर में उसे रख सकने में वह असमर्थ था. घर ही कितना बड़ा था. क्या वह घर कहने लायक था भी.

"इसकी फिक्र मत करो!" गुलशन के होंठों पर उस दिन भी मुस्कराहट थी.

खाने के लिए एक होटल में उसने तय कर लिया था और सोने के लिए रेलवे स्टेशन के प्रतीक्षालय को उपयुक्त स्थान समझा था. जिस दिन बारिश न हो रही होती और उमस होती, उस दिन वह सामने पार्क में सो रहता. यद्यपि कई बार वह सोचता कि कहीं पुलिस वाले उसे परेशान न करें, पर यह देखकर उसे संतोष हुआ कि साधना के इस मार्ग पर चलने वाला वह अकेला साधक नहीं है. इस देश की पुण्यवती धरती पर ऐसे अनेक साधक हैं.

और एक दिन उसे लगा कि वह बीमार हो गया है.

"ओस में सोने के कारण है, जाओ, एक-दो रोज के लिए घर चले जाओ. आराम कर आओ."

शर्मा ने सलाह दी तो तुरंत ही वह घर के लिए चल दिया. उस समय पत्नी को देखने की भी तीव्र इच्छा उसके मन में उत्पन्न हो गयी थी.

घर आकर देखा तो पत्नी बुखार में तड़प रही थी. वह बड़बड़ा रही थी और उसकी बड़बड़ाहट को सुनने वाला वहां कोई नहीं था.

"कहां गये राष्ट्र निर्माता?" उसे लगा कि उसकी धरती तड़प रही है. पत्नी नहीं, धरती बड़बड़ा रही है.

कई दिनों तक पति-पत्नी दोनों ही बीमार पड़े रहे थे. सोचा था, दोनों साथ ही ठीक होंगे, पर वह पहले ठीक हो गया. नौकरी की याद उसे भूली नहीं थी, लेकिन पत्नी ने अब शर्त लगा दी कि या तो मुझे वहीं ले चलो या तुम यहीं रहो. निश्चय ही वह दो में से एक बात भी नहीं कर सकता था. अतः उसने तीसरा फैसला लिया.

"मैं घर से आया-जाया करूंगा."

पत्नी खुश थी, क्योंकि वह नहीं जानती थी कि शहर यहां से पंद्रह मील दूर है और उसके पति की छुट्टी चार बजे नहीं, पांच बजे होती है. उसको राष्ट्र निर्माण की योजना समझाने वाला आदमी जहां काम करता है, वहां शानदार दफ्तर नहीं, काली दीवारों से घिरी एक मरियल कोठरी है, जिसमें जीरो पावर का एक बल्ब जलता रहता है और वह बगल की प्रेस-मशीन की राक्षसी चिग्घाड़ों के बीच बैठा कॉपी-होल्डिंग करता है, अर्थात मूल प्रति को ध्यान पूर्वक देखता रहता है और शर्मा प्रूफ पढ़ता है या शर्मा की अनुपस्थिति में वह गैलियों के प्रूफ देखता है.

▣

शहर लौटा तो छुट्टियों के दिनों का पैसा काटकर वेतन के नाम पर उसे जो कुछ मिला, होटल का बिल उससे ज्यादा था.

"यार शर्मा, मुझे गांव के बनिये का बिल भी देना है." उसने करीब-करीब टूटते हुए कहा था.

"तब इससे काम नहीं चलेगा. यहां तो इससे ज्यादा नहीं मिल सकेगा. तुमने प्रूफ देखना सीख लिया है, कहीं दूसरी जगह ट्राइ करो. अगर कहीं प्रूफरीडरी मिल गयी तो कुछ ज्यादा पा जाओगे या फिर कुछ सस्ता लेखन करो. अच्छे पैसे मिलते हैं."

गुलशन चुप रहा. घर आकर उसने वह कहानी निकाली, जो स्टूडेंट लाइफ में लिखी थी. उसमें सस्ते रोमांस का चित्रण था.

"यह कहीं छप जायेगी?" शर्मा से दूसरे दिन उसने पूछा तो वह उसे लेकर 'चित्रा' मासिक के दफ्तर चला गया. संपादक ने कहानी पढ़ी और रख ली.

"छप जायेगी?" उसने बहुत ही उतावलेपन से प्रश्न किया.

"और कुछ लिखते हो, फीचर-वीचर?" संपादक ने घूरकर उसे देखा.

"लिखता तो नहीं, पर लिखना पड़ा तो लिख लूंगा. क्या आपके यहां कोई जगह खाली है. . ." वह हड़बड़ी में बोलता चला जा रहा था.

"सोमवार को आओ."

यह वाक्य संपादक का था, जो कई सोमवारों को उसे सुनना पड़ा. तब तक 'आजाद भारत' से भी वह हटा दिया गया. उसके संपादक को 'कॉपी होल्डर' की पोस्ट अनावश्यक प्रतीत हुई.

"जी, मैं आजकल बहुत परेशान हूं. . . कृपया. . .!!"

'चित्रा' के संपादक से उसने याचना करने की चेष्टा की.

"प्रूफ पढ़ना जानते हो?"

"जी. . .!"

और उसके सामने 'चित्रा' का एक फर्मा रख दिया गया. वह प्रूफ पढ़ने लगा. कहानी बहुत गंदी थी, पर उसे सिर्फ प्रूफ देखना था. उसकी भाषा भी ठीक नहीं थी, पर रघुवीर ने बताया था कि प्रूफ पढ़ने का मतलब है मूल कॉपी में जो है, वह छपा है या नहीं, दूसरे किसी प्रकार के संशोधनों का अधिकार सिर्फ संपादक को होता है.

"ठीक है, तुम कल से आओ."

अब उसे विश्वास हो गया कि उसकी नौकरी पक्की हो गयी.

"तनख्वाह कितनी लोगे?"

"जो आप उचित समझें."

वह जानता था कि वह अभी इतना काबिल नहीं हो गया है कि मुंहमांगा धन मिलेगा, यह तो मात्र बिजनेस मेथड है और संपादक ने उसे डेढ़ सौ देना उचित समझा.

पहले महीने उसे एक सौ सत्तर मिले थे.

‘उसे लगा कि कच्ची सड़क पर चलने वाला वह ‘चित्रा’ का भूतपूर्व उप-संपादक नहीं है, सच तो यह है कि वह स्वयं एक कच्ची सड़क है, जिस पर ऐसे अनेक संपादक-उपसंपादक चला करते हैं, चलते रहेंगे . . . .’

उसकी कहानी ‘चित्रा’ में छप गयी थी, जिसके पारिश्रमिक के रूप में पच्चीस रुपये उसे अतिरिक्त दिये गये थे और एक रोज की छुट्टी के लिए पांच रुपये काट लिये गये थे. “क्या यहां छुट्टी का प्रावधान नहीं है?” उसने संपादक से जानना चाहा था.

“है, पर अभी तुम ट्रेनिंग पीरियड में हो. छह महीने बाद तुम छुट्टी ले सकोगे. जाओ, इन दो फर्मों के प्रूफ जल्दी से देखकर लाओ, और देखो, आज पांच बजे के बाद भी रुकना होगा, कुछ और प्रूफ देखने हैं.”

संपादक ने फर्मे उसकी ओर लगभग फेंक दिये थे और किसी कहानी को पढ़ने में लीन हो गया था. वह चुपचाप वहां से उठ गया था, पूरी तरह एक ट्रेनी की मानसिकता से ग्रस्त होकर.

मैं कैसा उप-संपादक हूं, जो केवल प्रूफ पढ़ता हूं और एक दिन की छुट्टी भी नहीं ले सकता? इस प्रश्न ने उसके शरीर को झनझना दिया था.

☐

उस दिन सायकिल चलाता हुआ वह बहुत कुछ सोचता रहा. अच्छी जिंदगी किसे कहते हैं? सबसे पहले इसी प्रश्न पर उसने सोचना शुरू किया, पर दिमाग में पत्नी आ गयी और पता नहीं क्यों, पत्नी के पीछे-पीछे उसके ससुर भी चले आये, जो न कुछ सुनकर केवल लड़की बुलाने आ गये थे. यह तो अच्छा रहा कि पत्नी ने जाने से इनकार कर दिया और अचानक ही उसका मन खिल उठा. पत्नी के प्रति ...हुआ, लेकिन साथ ही ससुर नामक जीव के प्रति घृणा भी उसके मन में भर गयी. उसने इस जीव की तुलना उस शेर से की, जो तालाब में खड़ा स्वर्ण-कंकड़ दान कर रहा था और जैसे ही एक पथिक तालाब में घुसा, कीचड़ में फंस गया और शेर ने उसे उदरस्थ कर लिया.

सोचता-सोचता वह कच्ची सड़क पर आ गया. अंधेरा हो चला था और नवंबर की ठंडी हवा बहने लगी थी. वह यद्यपि ...ने में मिले टेरीकॉट का सूट पहने हुए था, पर सर्दी में उसकी उंगलियां ऐंठने लगी थीं. सायकिल का हैंडिल इधर-उधर हो जाता था और कई बार उसे लगता कि अब वह गिर पड़ेगा.

इस कच्ची सड़क को वह बचपन से देखता आ रहा है. इसी तरह उखड़ी-पुखड़ी, धूल की दलदल बनी, कटी-फटी. बारिश में इस पर कीचड़ हो जाता है और गर्मियों में बैलगाड़ियों के चलने से धूल की दलदल बन जाती है. दोनों स्थितियों में सायकिल चलाना कठिन हो जाता है. सर्दियों में इतनी कठिनाई नहीं होती, तो भी जगह-जगह उखड़ी गिट्टियों पर पहिया पड़ जाने के कारण आये दिन कचक पड़ जाती है.

उस दिन भी कचक पड़ गयी थी. सायकिल पंक्चर हो गयी थी और घर तक पैदल ही उसे आना पड़ा था. सड़क के किनारे पंक्चर बनाने वाला एक बूढ़ा बैठता था, पर शाम होने से पहले ही वह दूकान बंद कर देता था. फिर सायकिल भी तो उसकी पुरातात्विक ही है. कितने दिन हो गये, जब गांव के ही मिस्त्री से उसने इसे इधर-उधर के पुराने पुर्जों को जोड़-जाड़कर बनवाया था. ससुराल की सायकिल तो अभी वादे पर थी और यह सायकिल क्या इस सड़क के योग्य है?

इस कच्ची सड़क से उसे कब छुटकारा मिलेगा? वह अक्सर सोचा करता और शहर में पत्नी को रखने लायक मकान की तलाश में रहता, पर मकान या तो मिलते ही नहीं या मिलते तो सत्तर-अस्सी से कम उनका किराया न होता. वह पराजय स्वीकार लेता और सायकिल लेकर चल पड़ता, भविष्य की योजनाएं बनाता हुआ.

उसके दिल में यह संतोष जरूर था कि वह एक प्रसिद्ध पत्रिका का उप-संपादक है और आज नहीं तो कल उसका नाम भी प्रसिद्ध हो जायेगा. तब उसकी तनख्वाह भी बढ़ जायेगी और इज्जत भी.

“गुलशन बाबू, संपादकजी ने आपका हिसाब कर दिया है. छः महीने हो गये न! सोमवार को आकर तनख्वाह ले जाइएगा.”

लेकिन आज चलते समय जब चपरासी ने उससे यह बात कही तो एक बार फिर उसे धरती पर आना पड़ा.

“मतलब?” वह चौंक गया था.

“यहां यही होता है बाबूजी, छः महीने से ज्यादा के लिए कोई नहीं रखा जाता, लोगों की कमी कहां है? तब आपको ज्यादा दिन रखकर वे परमानेंट क्यों करेंगे, आप की तनख्वाह क्यों बढ़ायेंगे?”

ओह! शायद इसीलिए हमारी कच्ची सड़क पक्की नहीं की जा रही है. वैसे तो हर साल उसमें काम लगता है, पर वह रहती है कच्ची की कच्ची. पक्की हो जायेगी तो पक्की करने के लिए फिर रुपया कैसे मंजूर होगा.

“बन गयी आपकी सायकिल बाबूजी!”

“आंय!” वह हड़बड़ाकर उठ बैठा. क्या क्या सोचने लगा था वह? अब तो रात हो गयी. इस बीच उसे चाहिए था कि जरा जल्दी बनाने को कहता इससे. अंधेरी रात है, कहीं किसी मिट्टी से टकराकर पहिया फिर न पंक्चर हो जाये.

“तीन रुपया हुआ बाबूजी!”

“तीन रुपया?” उसने जेब टटोली. मुश्किल से सत्तर-पचहत्तर पैसे रहे होंगे.

“अच्छा, सायकिल रखे रहो, सवेरे आकर ले जाऊंगा, पैसे पूरे नहीं हैं.”

यह बात उसने जल्दी-जल्दी कही और पक्की सड़क को पार करके कच्ची सड़क पर पहुंच गया.

फिर उसने सोचा, जल्दी क्या है, पैदल ही तो चलना है, धीरे-धीरे चला जाये. और तब वह संभल-संभलकर चलने लगा. रात धीरे-धीरे गहरी होती जा रही थी. मौसम गर्म था, पर उसे न गर्मी का एहसास हो रहा था, न सर्दी का. तो क्या वह जड़ है? इस प्रश्न ने किसी कोने में सिर उठाया तो उसके होंठों पर फिर एक विचित्र मुस्कान तैर गयी और उसे लगा कि इस कच्ची सड़क पर चलने वाला वह ‘चित्रा’ का भूतपूर्व उपसंपादक नहीं है, सच तो यह है कि वह स्वयं एक कच्ची सड़क है, जिस पर ऐसे अनेक संपादक-उपसंपादक चला करते हैं, चलते रहेंगे. . . . ☐

● ए-24/15 कोयला बाजार, वाराणसी-1

कुत्ते की मौत

▫ मृणाल पांडे

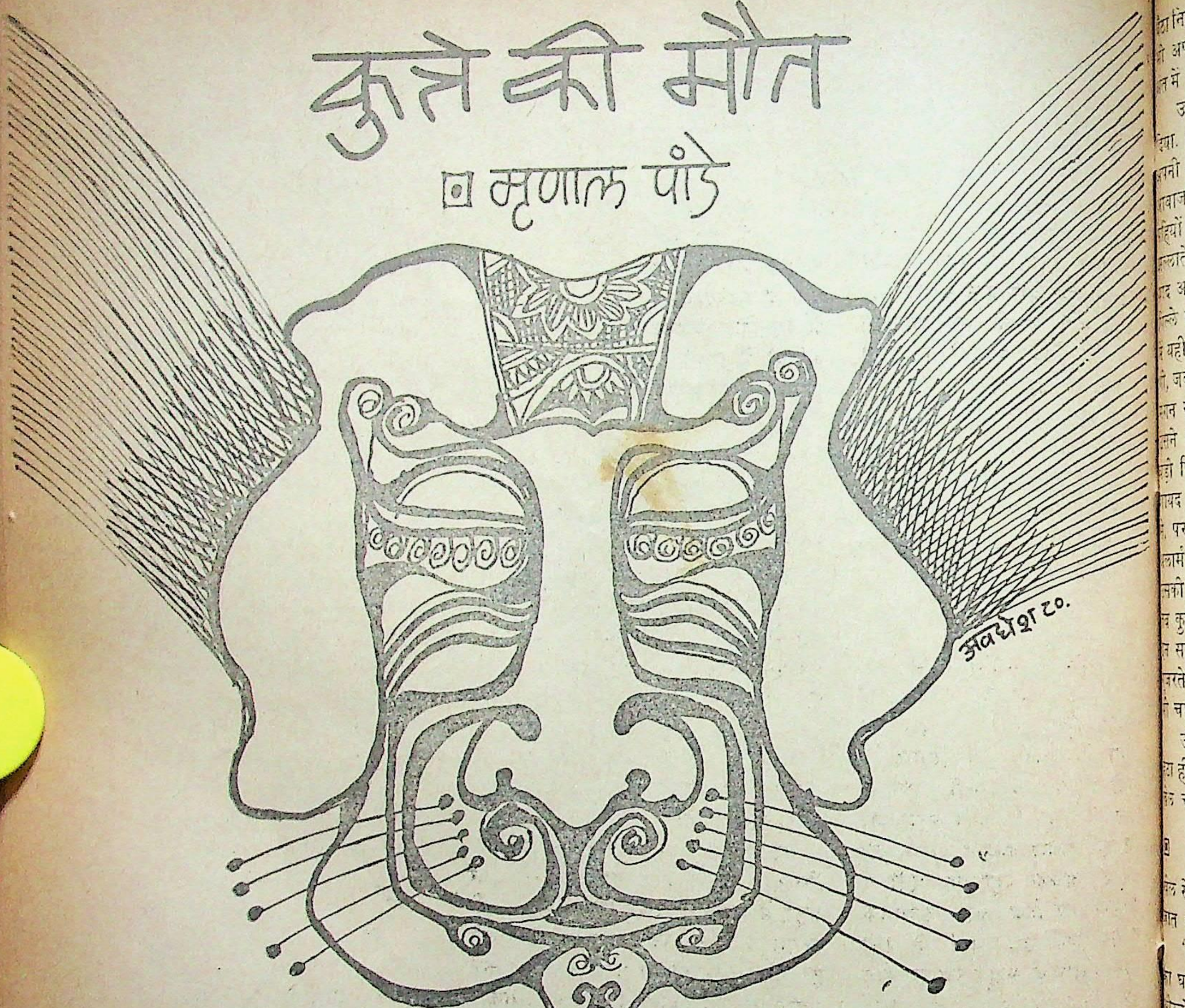

जब वे उसे लाये थे तो उसकी आंखें बस खुली ही थीं. धुनकी रुई के फाहे-सा गदबदा ललछौंहा पिल्ला जिसका अपना बदन खुद उसके लिए भी एक अजूबा था. हर एक-एक कदम वह लड़खड़ा-लड़खड़ा कर बढ़ाता था, अपने पंजों की लचक से अपनी देह का भार टोहते हुए. फिर जब कुछ-कुछ झूलते हुए रेंगते हुए वह हर हथेली में थूथन घुसाकर मां का स्तन ढूंढ़ने लगा तो अचानक मां को लगा कि वे लोग उ जल्दबाजी में ही उठा लाये थे. यह बड़ी खराब आदत थी उन लोगों की. मौके की मुलायमियत से अभिभूत होकर बात की औकात और अपनी जिम्मेदारी की गंभीरता भुला बैठना. आखिर पिल्ले को वे देखने भर ही तो गये थे. कोई स्टांप लगा के दरख्वास्त तो नहीं दी थी कि ले ही लेंगे, पर जब देख लिया तो कहने में अजीब झेंप-सी लगने लगी कि नहीं लेंगे. हालांकि वे पिल्ले काफी भद्दे थे. सभी देसी कुतिया के भोंडे पिल्लों को घर ले जाने को जान-बूझकर लोग उन्हीं सरीखे मूर्खों को बुलाते होंगे. मां मन ही मन अपने को कोसने लगी, पिता भी. उन्हीं के से लोगों के सहारे तो माया संसार को बस में किये रहती है, है कि नहीं? जो हर बार जिंदगी के सुथरेपने में अपने आप बेवजह एक बेहूदी खलबली मचाकर निरीहता से वह बस एक मुहलत और मांगने लगते हैं, प्यार करने की, तरने की.

"अब क्या खिलाना है इसे?" गाल पर हाथ रखकर वह बोली. पिता बच्चों के साथ घुटनों के ब

निहाल हो रहा था. अपनी सारी झुंझलाहट के बावजूद उसने अपने आप को धीमे-धीमे निहाल होता पाया. यहां तक कि में वह भी फर्श पर उकड़ूं बैठकर उसे आ-आ करने लगी.

उस सारी रात पिल्ला न खुद सोया, न ही उसने किसी को सोने या. जाड़े के दिन थे. टोकरी में बिछे शाल के बावजूद उसे नी मां की बदन की गर्माई नहीं मिल पा रही थी. एक पतली वाज में देर तक कर्णकटु कूं-कूं करता रहा, जैसे खूब जंग खाये हियों वाली गाड़ी खेंची जा रही हो और वे सब बारी-बारी से लाते और उसे चुपाने के उपाय सोचते रहे. तभी किसी को द आया कि उसने पढ़ा था कि अलार्म घड़ी के टिक-टिक से ल्ले चुप हो सकते हैं. अलार्म घड़ी लायी गयी. ले देकर पूरे घर यही तो एक अलार्म घड़ी थी. मां हर बार यह बात दुहराती , जब भी बच्चे उसके करीब से दहलाने वाली तेजी से खेल में न गुजरते या पिता उसे चाभी देना भूल जाता. इस बार भी ने वही बात दुहरायी. तब एक छोटे अंगोछे में लपेटकर पिल्ले की बगल में रख दी गयी. कुछ पल वह चुप रहा. यद घड़ी की टिक-टिक से नहीं, बल्कि उनके सजग सान्निध्य पर फिर यकायक रो पड़ा——कींऽऽऽ? उसके हिलने से लार्म की कोई कल भी हिल पड़ी शायद और क्षण भर को की 'कीं कीं' के ऊपर घनघनाता कर्कश अलार्म भी बज उठा. कुछ हंसते, कुछ खीझते, कुछ झेंपते पिता ने घड़ी हटा ली. सारी नेकनीयत पर बेहूदा और नाकामयाब प्रक्रियाओं से रते-गुजरते सड़क पर दूध वालों की सायकिलों की खटर-पटर चालू हो गयी थी.

उफ देखो तो सवेरा हो गया है, अब इसबेहूदा बला को ही देना है, माता-पिता ने ऐलान किया. बच्चे चुप रहे. फिर चल दिये, समझदारी से.

◆

से घर आते ही बच्चों ने गोली-सा प्रश्न दागा, "इसकी त क्या होगी मां?"

"किसने पूछा?" पता चला कि इत्ती की मौसी ने. इत्ती घर उनके घर से सटा हुआ था. भरी-भरी छातियों वाली रतों का एक झुंड सदा उसकी बाल्कनी पर मुझे सलवार-कुर्ता बगैर दुपट्टे के खड़ा-खड़ा पड़ोस पर गीध-सी खुर्दबीनी नजर रखता था. वे इत्ती मौसियां थीं या बुआएं भी हो सकती थीं, कि इन सब को वह आंटी बुलाती थी. एक अदद मां भी थी यद, क्योंकि कभी मम्मी की गुहार भी लगती थी. इत्ती के पिता नखजूरे सी पतली मूंछों वाले एक अधगंजे और बेवजह कित रहने वाले इंसान थे, जो खिजाब के बल से जाती जवानी दुम पकड़े अभी तक लटके हुए थे. हमेशा स्कूटर से उतरकर अंग्रेजी धुन गाते हुए सीढ़ी चढ़ते थे. उनसे नमस्ते कहो तो कहते थे और मां को देखकर बड़े अदब से गुडमार्निग मॉ.

माता-पिता को वे फूटी आंखों नहीं सुहाते थे, वे भी और ती-सी छातियों वाली उनके घर की वे औरतें भी, जो र बुनाई के चीर लहराती हर फेरीवाले के कर्कश स्वर में और तकरार करती थीं, पर इसके बावजूद दोनों परिवारों में एक सभ्य दुआ-सलाम का नाता बरकरार था. "जात? अरे कुछ भी होगी," मां ने किंचित् तल्खी के कहा, "कह दो कि देसी है. इसकी मां माथुर साहब के घर में परच गयी थी, सो उठा लाये." और फिर उसने यह भी कुछ रुककर कहा, "दुनिया भर को पिल्ले की जात-पांत की खबर करना भी ऐसा क्या जरूरी है? जिन्हें जरूरत हो सो बढ़िया नस्ल वाले छांट के ले आयें, हां नहीं तो. अरे, जब लाये हैं तो पालेंगे ही. गृहस्थ के घर में हर किसिम के जीव पलते हैं कि नहीं?"

सो देखते-देखते पिल्ला पल भी गया, नामकरण भी हो गया, लालू. लालू उस्ताद. अपनी छोटी-छोटी भूरी आंख सिकोड़कर वह जब देखता तो सच में गुंडा लगता था.

"क्यों बे जेल जायेगा?" बच्चे एक लंबी सुतली फहरा रहे थे. वह भी उसे नोंच-नोंचकर खेलने लगा, जैसे हथकड़ी छुड़ा रहा हो. मां ने कहा कि पता नहीं ऐसी भाषा वे कहां से सीख आते हैं. खबरदार, पर लालू उस्ताद चोर-चोर खेलते रहे. पिल्ला हिल गया था. और फिर से एक बार उनका निर्णय भी.

◆

ज्यों-ज्यों लालू बढ़ रहा था, उसकी देसी नस्ल भी स्पष्ट होती जा रही थी. गुलाबी और लंबा थूथन, कुछ-कुछ लोमड़ी का सा चेहरा, झब्बेदार पूंछ, और नीचे को दबे कान. पहले बच्चों ने कहा कि उसके कान खड़े होने लगे हैं, अल्सेशियन की तरह, पर कुछ शोध के बाद पता चला कि वह चौकन्ना होने पर कानों को खड़े करने का आभास भर देता था. दुम तो टेढ़ी रहनी ही थी, रही. एक बात थी, जो कतई छुप नहीं सकती थी, और वह था उसका खोंरहापन. या तो कभी उसे किसी सायकिल सवार ने टक्कर मारी थी या फिर किसी ने डंडे से मारा था, क्योंकि एक बार वह लंगड़ाता सा घर में आया और कई दिनों की दवाई-सिकाई के बाद ठीक हो पाया.

और इसके बाद वह हर सायकिल सवार या डंडा पकड़े आदमी का पक्का दुश्मन हो गया था. एक बार मां घर में नहीं थी तो एक आदमी देरी तक सड़क से उनकी खिड़की को ताक-ताक कर चिल्लाता रहा कि इस कुत्ते की खातिर उन्हें कभी जुरमाना देना होगा, वे समझ लें, राह चलना साले ने मुहाल कर रखा है वगैरह. अब घर के अंदर लालू सिर्फ रात गये आता था और अपना खाना खाकर अपनी एक निश्चित जगह पर बैठकर गंभीरता से सो जाता था. और कुत्तों की तरह उससे तुतलाकर बचकाने खेल करो तो वह अपनी पीली आंखें सिकोड़कर हिकारत से हट जाता. खुश होने पर वह खड़ा होकर दुम हिलाता था और कभी-कभार मां का हाथ चाट भी लेता था, पर उसके सिर के पास लाल-सुनहरे बालों का जो भंवर था, वहां वह किसी को हाथ न रखने देता था.

बैठकखाने में भी खास दाहिने कोने में एक जगह उसने अपने खास अड़ियल ढंग से हथिया ली थी, मां के प्रतिवादों की ऐसी की तैसी करते हुए. एक-दो बार उन लोगों ने उसे वहां से हटाना चाहा, पर गुर्राहट से डरकर हिम्मत नहीं हुई. छोड़ो भी, उन लोगों ने आजिजी से कहा, जो भय से उपजती है. मां और बच्चे धीमे-धीमे उससे काफी डरने लगे थे, पर जब हर

सुबह वह कुछ देर बारी-बारी से सब के कमरों में जा जाकर और दुम हिलाकर अपनी पारिवारिक सदस्यता का भावभीना सबूत दे जाता था तो उनकी कमजोरी को यही बहुत होता. "है तो वफादार," हर सुबह, उसे देखकर वे कहते और हर सुबह पिछले दिन का पूरा मनोमालिन्य न जाने कहां गायब हो जाता. प्यार में हार मानने में आदमी से बढ़कर नाकामयाब कोई प्राणी नहीं. होते-होते घर का कोई सदस्य ऐसा न बचा, जिस पर वह खौंखियाया न हो. इसके सदा तीन-चार बंधे-बंधाये कारण होते थे—एक तो उसकी नींद में खलल पड़ना, दूसरा, उसके हड्डी चबाते वक्त किसी का पास खड़े रहना और तीसरा, अगर वह सोफे या तखत पर अपना कोना छांटकर बैठा हो तो उसे वहां से उठाने की किसी तरह की अधिकृत-अनधिकृत चेष्टा. तब एक छन में उसका रुख बदल जाता था—रूप भी. और वह अपने पूर्वज भेड़ियों से हूबहू मिलने लगता था. उसके जबड़े ऊपर सिमटकर तीखे मांसखोरे दांत बाहर आ जाते, आंखों के पपोटे चढ़ने से आंखें सफेद और पुतलियां स्याह हो जातीं और गले से एक भीषण घुरघुराहट निकलती, बच्चे तो उसके क्रोध के लक्षणों से इतने वाकिफ हो चले थे कि उसका ऊपरी होंठ सिमटते ही तितर-बितर हो जाते, पर अगर कोई नया बाहरी व्यक्ति घर में आया हो तो जोखिम खड़ा हो जाता था. शर्म आती थी, सो अलग. कई लोग जो साफ-सीधी बात कह डालने के अपने ठेठ हिंदोस्तानी गुण से अभिभूत थे, साफ सीधे ढंग से कह जाते कि ऐसे कुत्ते का बच्चों के घर में पलना ठीक नहीं. कमाल है, पढ़े-लिखे होकर भी—पर इसी 'भी' पर दो साल गाड़ी अटकी रही. मां उसकी गुर्राहट सुनकर भी हर रोज नियमित समय पर रातब देती रही, पिता अखबार पढ़ने वाली अपनी नर्म धूपभरी कुर्सी का मोह त्यागकर बगल की चौकी पर बैठ तकलीफदेह कोणों में अखबार और चाय की प्याली हां हां करता संभालता रहा, और बच्चे हर मित्र को लालू के खौंरहेपन से आगाह कर, चोरी-छिपे अपने हिस्से के बिस्कुट और मक्खन लगी डबलरोटी उसे खिलाते रहे. लालू अब एक भरपूर कद्दावर कुत्ता था. स्पष्ट और निखालिस रूप से देसी और एक मंझोले ढंग से गठे कड़ियल बदन का ऐंठभरा मालिक. प्राय: गलियों में वह देसी कुतियों के साथ घूमता दीखता था और कभी दो-दो तीन-तीन रात तक गायब भी रहता, पर घर के बिगड़ैल नशाखोर निखट्टू सदस्य की तरह तब भी उसका आबोदाना घर के कोने में पड़ा ही रहता. नाराजगी, डर और प्यार के गड्डमगड्डपने में.

◘

तभी एक दिन लालू ने मां को काट खाया और सब कुछ जन्नाटे से हिल गया. समय आ गया था कि चीजों के गड्डमड्डपने को दुनियादारी से साफ कर निश्चित किया जाता कि घर में लालू का करना क्या है ? हुआ यह कि बरसात के दिन थे और मां अक्सर लालू के कान और गर्दन के पास 'टिक' चिपके देखती थी. छोटे-छोटे खटमल से कीड़े जो कि खून पीकर अंगूर से गोल और नरम होकर झड़ जाते और एक फुड़िया पीछे छोड़ जाते. हिम्मत कर उस दिन मां एक टूटी प्याली में मिट्टी का तेल लेकर बैठी और हाथ से चुन-चुनकर उन्हें निकालती प्याले में डालने लगी. छह-सात तक तो मामला ठीक रहा और मां जानवरों की देखभाल और घर की सफाई से अपने को जोड़कर कोई गर्वभरी बात कहने ही जा रही थी कि तभी लालू खौंखियाकर उठ खड़ा हुआ और मां के हाथ में काटकर चारपाई के नीचे घुस गया. घाव इतना गहरा नहीं था, जितना कि घटना की आकस्मिक क्रूरता का धक्का. थोड़ी देर मां बैठी रह गयी, फिर दवा की तलाश होने लगी और हाथ धोया जाने लगा. इस सारी हड़बड़ी के बीच पूरे दिनभर लालू उस्ताद गायब रहे और दूसरे दिन सुबह सिर झुकाये घर के भीतर आये और चुपचाप जाकर कोने में पहुंड़ रहे. मां उसके पास से गुजरी तो पूंछ आदतन दो-तीन बार सलूट में हिली और भूरी पुतलियों में मैत्रीभाव सा कुछ कांपा, पर दिल में हौल बैठ गया था. कल किसी बच्चे को या पड़ोसी को किया तो!

उस शानदार पशुचिकित्सालय का डाक्टर झुंझलायी भवोंवाला एक मोटा-सा शख्स था. उसने पूरा व्यौरा सुनकर उंगलियों से भीतर को इशारा किया, "मेरी राय में आप इसे खतम करवा दें तो ठीक रहेगा. स्वभाव तो अब इसका दवा-दारू, विटामिन किसी से बदलेगा नहीं. बच्चों का क्या है. बढ़िया नस्ल का दूसरा ला दीजिए, दो दिन में पूछेंगे भी नहीं कि कहां गया. देशी कुत्ता ही तो है. किसी को काटा तो नहीं इधर इसने?" मां को स्वीकार करना पड़ा. हाथ में अभी भी पट्टी बंधी थी. छुपाती तो कैसे? डाक्टर का चेहरा और भी गंभीर हुआ, "तब तो हफ्ताभर इसे देखना पड़ेगा. कहीं 'रेबीज' न हो, वर्ना आपको चौदह सुइयां लेनी होंगी. हफ्ते भर बाद आप फोन करके पूछ लें, अगर 'रेबीज' हुआ तो शर्तिया खुद ब खुद मर चुका होगा, अगर नहीं हुआ तो फिर आपकी मर्जी, वैसे पंद्रह रुपये में इंजेक्शन आता है—एकदम बिना तकलीफ के जानवर को मारता है—आप फोन पर बता दें तो बस." उन्होंने हाथ से खलास का इशारा किया. बीस रुपये इन आठ दिनों उसके अस्पताल में रहने-खाने के होंगे. आपका फोन नहीं आया तो हफ्ते भर बाद हम खुद इसे खत्म करा देंगे. ठीक?

◘

पैंतीस रुपये भरकर वे जब घर लौटे तो एक दूसरे से आंखें चुरा रहे थे. हफ्ते भर के बाद मां ने पिता से पूछा, "क्या फोन किया था उन्हें?" "हां किया था", पिता ने कहा, "वह जिंदा है. ज़ाहिर है कि उसे 'रेबीज' नहीं है."

"तब ?"

"तब ? तब ? तब क्या," पिता ने झल्लाकर कहा. मां ने सोलह साल की ग्राहस्थिक समझदारी से मुंह सी लिया और नल के नीचे साग धोने लगी, चुपचाप. उसने अपनी पराजय स्वीकार कर यूं मूक सहमति दे दी तो पिता अपनी इच्छा से मौत की सहमति आ जुड़ने की शर्म से बौखला गया था. अब वे मुहल्ले भी नहीं मांग सकते थे.

मरना तो उसे था ही, मरवा दिया, सो ठीक किया. बालकनी की औरतों में से किसी एक ने कहा, "अरे कुत्ता हो तो कुत्ते की औकात में रहे. कुत्ता भी आदमी जैसा तुनकमिजाज हो जाये तो हम लोग पालतू बनाकर किसे रखेंगे, है कि नहीं ?"

● सी-24, शिवाजी नगर, भोपाल.

सज़ा

•भगवान अटलानी

सी को बर्दाश्त करने, करते चले जाने की सीमा होती है, भले ही वह अपना पति न हो. और बर्दाश्त करना भी कैसा, किसी तंक में अपने को घुटाकर मारना, मारते चले ना और जब सीमा खत्म हो जाय तो ने आप को होम कर देना. एक सहज शील नारी के अतिरेकजनित आतंक में हो जाने की मार्मिक कथा.

सी कोई सभावना तब तुम्हारे जहन में क्यों नहीं उभरी? क्यों अपनी नाक ऊंची रखने के चक्कर में तुमने किसी दुष्परिणाम कल्पना तक नहीं की? बड़ा समझदार और होशियार मानते हो अपने आप को? हेम की जान लेकर साबित की है तुमने अपनी दारी. वाह रे दंभी आदमी! क्या कहने हैं तुम्हारी समझदारी के. तुम नाटक बड़ा अच्छा कर लेते हो. मान गये. तुम्हारे मां- आये. ससुराल वाले आये. हमउम्र साला आया. लंगोटिया आये. सबको धत्ता बता गये तुम. किसी को हवा भी नहीं दी तुमने कि कारण तलाश करने की कोई जरूरत है, क्योंकि रण का ताना-बाना बुनने वाला आदमी खुद इसका कारण है.

तुम सोचते हो, आदमी इज्जत बनाने या बिगाड़ने की शुरुआत ने आप से करता है. तुम समझते हो, इस बात को भूल जाओगे. हीं. घर ताउम्र तुम्हें काटने को दौड़ेगा. बिस्तर तुम्हें लीलने की शिश करेगा. हर स्वादिष्ट खाद्य पदार्थ तुम्हारे गले में अटकने गा. कपड़े तुम्हें निगलेंगे. दिन आग बनकर उगेगा. दुनिया धोखा दे सकते हो तुम, अपने आपको धोखा नहीं दे सकते.

हेम तो तुम्हें पल-पल, कदम-कदम पर याद आयेगी. कितनी लड़की थी वह. दूसरी शादी की अगर तुमने, तो पता लग गा कि 'सीक्वेंस' और 'ट्रेल' में क्या फर्क होता है. तुम्हारी हर ज-नाजायज, अच्छी-बुरी जिद को मानने वाली हेम जैसी की तुम्हें पत्नी के रूप में मिली, तुम्हारा सौभाग्य था. अब ख्वाब भी मत सोचना ऐसी पत्नी के लिए. दफ्तर की जगह पिकनिक चले गये तो कोई चिंता नहीं. होटलबाजी करते रहे तो फिक्र गप्पें मारते रहे तो गम नहीं. घर आठ बजे पहुंचो या बारह मुस्कराकर प्रतीक्षा करती मिलती थी तुम्हें हेम. कभी उसने खोलकर कहा भी नहीं तुमसे कि तुम्हारे इंतजार में बैठे-बैठे की आंखें पथरा जाती हैं, दिल घबड़ाने लगता है, दिमाग बुरी परेशान होकर थक जाता है.

कई बार तुम देर से लौटे हो. खाना खाकर अखबार देखते हो. बिस्तर पर जाने के बाद तुम्हें पता लगा है कि हेम बुखार से रही है. हंसते, मुस्कराते तुम्हारी सेवा करने वाली वह सहन- लड़की अंदर ही अंदर घुलती रही. खोखली होती रही. री लापरवाही, तुम्हारा मनमानापन, तुम्हारी स्वेच्छाचारिता से जर्जर बना दिया.

ज्यादती करने में कोई कसर छोड़ी तुमने? पांच साल के विवाहित न में एक तरफ तुमने उसकी ओर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया, ओर उसकी गोद सप्रयास खाली रखी. कभी सोचा तुमने कि

अपना सारा दिन वह कैसे गुजारती होगी? किलकारियों के सहारे तो विधवाएं पहाड़ों का सामना करने का बल पाती देखी गयी हैं. तुमने हेम को एकांतवासिनी, निर्वासिनी बनाकर एक खुली जेल में कैद कर दिया. सिर्फ एक साल पुरानी बात है, ज्यादा समय नहीं हुआ. तुम्हें अच्छी तरह याद होगा. तुम हेम को जबरदस्ती 'अबार्शन' के लिए ले गये थे. गर्भवती नहीं हुई थी तब तक, फिर भी ठीक था. पहली संतान का मानसिक सुख दारुण पीड़ा में बदल दिया तुमने हेम के लिए, "मेरे पास जीवन की निश्चित योजनाएं हैं. मैं एक सेंटीमीटर भी इधर-उधर नहीं हो सकता उससे. अभी बच्चा नहीं चाहिए." लो, चलो अपनी गाड़ी हुई पटरी पर. करो कार्यान्वित अपनी योजनाएं. क्या गलत कहा था हेम ने कि तुम तुनक गये? तुम खुली छत पर सरेआम उसे अपने साथ संभोग के लिए विवश कर रहे थे. झूठी तसल्ली के लिए ही सही, मगर वेश्याओं के अड्डों पर भी चारपाइयों के बीच फटे-पुराने परदों की आड़ होती है. तुम एक विवाहित औरत को, जो अभी मां भी नहीं बनी, छत पर बिछे कम से कम दस बिस्तरों की खुली या बंद आंखों में बेपर्दा करने पर तुले थे. एक तो तुम्हें ऐसा बेहूदा प्रस्ताव रखना ही नहीं चाहिए था. फिर चलो, तुमने ऐसा कुछ चाहा भी तो हेम की शर्मसारी को चुनौती नहीं मानना चाहिए था. वह गरीब क्या चुनौती देती तुम्हें? ऐसा कोई अधिकार कभी दिया था क्या तुमने उसे?

जिस रात पत्ते खेलकर लौटते हो, तुम अलग ही रंग में होते हो. एक विचित्र कामना, उद्दाम हवस तुममें कलाबाजियां मार रही होती है. दो-चार पैग भी तुम्हारे अंदर होती ही हैं. ऐसे अवसरों पर हारकर आओ या जीतकर, तुम तोड़ने-मरोड़ने की धुन में रहते हो. ठीक है, तुम्हारा मूड है. तुम किसी गैरऔरत के पास नहीं जा रहे, अपनी पत्नी के पास जा रहे हो. मगर तुम यह क्यों भूल जाते हो कि तुम्हारी पत्नी के भी कुछ मूड हो सकते हैं. उसकी भी कोई पसंद-नापसंद हो सकती है. तुम्हें अगर दीन-दुनिया का होश नहीं होता, अपनी पर उतारू होते हो, इसका मतलब वह भी बेशर्म होकर तुम्हारे साथ नंगी नाचे? उसकी इज्जत नहीं है? मगर तुम ये बातें सोचो तब न? तुम तो सिर्फ अपने बारे में सोचते हो. तुम्हारी इच्छा पूरी होनी चाहिए. तुम्हारे मूड के अनुसार काम होना चाहिए. तुम पति हो. पत्नी के सामने हर मामले में तुम्हारा वर्चस्व स्थापित होना चाहिए. दरअसल तुम ऐसी पत्नी के योग्य नहीं थे. तुम्हें लड़ने-भिड़ने, अपनी चलाने वाली पत्नी मिलनी चाहिए थी. कोई और आदमी अगर तुम्हारी जगह होता तो हेम की पूजा करता. तुमने उसकी सादगी और सेवापरायणता का दुरुपयोग किया. ज्यादा जिद्दी बन गये. ज्यादा नखरेबाज हो गये. ज्यादा समझदार और ऊंचा मानने लगे खुद को.

अब मान लो, कोई देख ही लेता. मोहल्ले भर में बातें बनतीं. पास-पड़ोस की औरतें हेम को टोकतीं, ताने मारतीं, मजाक उड़ातीं. तुम्हारा क्या था? तुम्हें तो सामने आकर कोई कहता नहीं. तुम्हें पता है, जिस मकान में तुम रहते हो, उसमें तुम्हारे अलावा सात किरायेदार और रहते हैं. यही चोंचले पूरे करने थे तो कोई अलहदा फ्लैट ले लिया होता. अलग फ्लैट ले सको, इतना पैसा जेब में नहीं है. पत्नी की परेशानियां महसूस कर सको, इतनी समझ दिमाग में नहीं है. अब कोई क्या करे तुम्हारा? तुम्हें हेम की बात अच्छी नहीं लगी तो क्यों नहीं लगी? उसने इन्कार तो किया नहीं था. इतना ही तो कह रही थी कि कमरे में चलो. यह बात मानने में तुम्हारा क्या जाता था भला? मगर कैसे मानते? वेद वाक्य गलत न हो जाता? तुम्हारी नाक न कट जाती पत्नी के सामने! उसकी नाक कट जाये, चिंता की कोई बात नहीं. तुम्हारी नाक पर खरोंच नहीं आनी चाहिए. अब तो खुश हो न?

◆

एक आदमी जिद्दी होता है. एक महाजिद्दी होता है. एक महाजिद्दी था चाणक्य. शिखा न रहते हुए भी जिसकी शिखा का जिक्र तुम अक्सर करते रहते हो. चाणक्य महाजिद्दी जरूर था, मगर तुम्हारी तरह मूर्ख नहीं था. खरे-खोटे, भले-बुरे की समझ उसमें थी. इसी लिए जहां वह नंदवंश का समूल नाश कर सका, वहीं चंद्रगुप्त जैसे शासक का निर्माण भी कर सका. तुम हेम जैसी अबोध और मासूम लड़की की हत्या तो कर सकते हो, किंतु किसी चंद्रगुप्त का निर्माण नहीं. पत्थर को हीरा क्या बनाओगे तुम.

करेंगे चाणक्य से अपनी तुलना और होश नहीं है परिणाम दुष्परिणाम की कल्पना करने का भी. हेम ने तुम्हें महत्व क्यों नहीं दिया? लोकलाज जैसी तुच्छ चीज को तुम्हारी तुलना में महत्व दे दिया. उसकी इतनी हिम्मत हो कैसे गयी? सजा दो उसको ऐसी सज़ा दो कि वह कांप उठे. भविष्य में कभी सोच भी न सके तुम्हारी शान में कोई गुस्ताखी करने वाली बात. कभी सिर उठाकर तुम्हारी हुक्मउदूली न कर सके. मन ही मन प्रफुल्लित होते हुए तुमने सुना दी सजा. तुमसे बड़ा न्यायाधीश हुआ है आज तक इस दुनिया में? अपराध की तुम्हारी अपनी परिभाषा है. तुम ही निश्चित करो कि अपराध हुआ या नहीं हुआ. और अगर हुआ तो किस श्रेणी का, किस स्तर का हुआ. क्या और कितनी सजा मिलनी चाहिए उस अपराध की, जिसे तुम, सिर्फ तुम अपराध कहते हो सब कुछ तय तुम करोगे. हेम क्योंकि शुरू से तुम्हारी हर इच्छा और हर जिद्द को मानती, पूरा करती रही है, इसलिए तुम्हारे इस शगल का निशाना भी वही बनेगी.

है तुममें हिम्मत किसी एक आदमी से भी इस घटना पर राय लेने की? अपने किसी पत्तेबाज, दारूबाज दोस्त से ही पूछकर देखो अगर पूछ सको तो. सरेआम बेपर्दगी का विरोध करके हेम ने क्या गलत किया? विरोध भी कैसा? दबी जुबान का विरोध. खुलकर तो उस बेचारी ने कभी तुम्हारा विरोध किया हो नहीं. काश, वह ऐसा कर पाती तो तुम्हारे मिजाज इतने ऊंचे नहीं होते, जितने अब हैं. मगर उसके स्वभाव में यह बात थी नहीं. उसे तो एक ही काम आता था—तुम्हारी पूजा करना, तुम्हें खुश रखना.

तुम्हें खुश रखने की उसकी कोशिश का ही तुमने नाजायज फायदा उठाया. पांच साल में एक बार भी तो लोहा नहीं लिया उसने तुमसे. जो औरत मां बनने के लिए तरस रही हो, उसी से गर्भपात के लिए कहा जाये. मान जायेगी? मानना तो दूर की बात है, सुनेगी ही नहीं, हाथ ही नहीं रखने देगी. वहां तुम्हें खुश रखने को हर कोशिश हेम ने की जो चाहा, उसने किया. रात को चौंककर उठना, सोते-सोते बड़बड़ाना, अचानक फुक्का मारकर रोना. इन बातों को तुमने कभी अधिक महत्त्व नहीं दिया. हेम की दमित इच्छाओं का उसके दिल पर, उसके मस्तिष्क पर पड़ने वाला प्रभाव इन लक्षणों से जाहिर होता था. तुमने कभी इन चीजों

गंभीरता से विचार नहीं किया. संयोग मानकर टाल गये.

“मैं ही तुम्हारा सब कुछ हूं. मेरी परवाह करो, सिर्फ मेरी. मैं गर नाखुश रहा तो दुनिया को खुश रखकर क्या करोगी.” तुम्हारे विचार से कितनी दुर्गंध आती है, तुम नहीं समझ सकोगे. हेम मझती थी. यह दुर्गंध उसके दिमाग में घर कर गयी थी. इस र्गंध का ही प्रभाव था कि वह टूटने लगी थी. मगर एक स्था थी उसकी, तुम्हारी खुशी में खुश रहना ही सब कुछ है. ह बिना कुछ कहे टूटती चली गयी और तुम नगाड़े बजा-जाकर, भाले फेंक-फेंककर उसे तोड़ते-छेदते चले गये.

टूटने का यह नाकाबिले बर्दाश्त चरमबिंदु था, जिसे वह ढो हीं पायी. वह सिर्फ एक घटना का शिकार नहीं हुई है, इस बात तुम्हें अच्छी तरह समझ लेना चाहिए. यह एक सिलसिला था —पांच साल अर्थात् साठ महीने अर्थात् एक हजार आठ सौ च्चीस दिन लंबा सिलसिला. इस सिलसिले में कितने घंटे, कितने नट, कितने सेकेंड होते हैं, तुम खुद ही हिसाब लगा लो. ऐसे रोड़ों हिस्सों में धीरे-धीरे उसको मारा है तुमने. वह क्षण उस लसिले का चरम क्षण था कि हेम बेजान होकर गिर गयी, उसके ल की धड़कनें एकाएक खामोश हो गयीं. वरना उस दिलेर रत ने मौत को हंस-हंसकर न जाने कितनी बार गले लगाया था. तुम मर्द हो न, पुरुष प्रधान समाज व्यवस्था के अंग. चलो, म एक बार नंगे होकर कमरे से निकलकर, सत्रह सीढ़ियां चढ़कर न लोगों के बीच बिछे अपने बिस्तर तक आकर बताओ. कर लाओ एक बार ऐसा. तुम नहीं कर सकते ऐसा, ताकयामत नहीं र सकते. और वही काम जो शक्तिशाली और महान् होकर भी म नहीं कर सकते, ऊंची कुर्सी पर बैठकर तुम अकड़ के साथ हेम कराने पर तुले थे. इस मुल्क में औरत आज भी मर्द के पांव की ती है.

तुमने आदेश न मानने और तुमसे ज्यादा लोकलाज की परवाह रने के जुर्म में हेम को कमरे में जाकर वस्त्र-विहीन अवस्था में न पर आने की सजा सुनायी. अपनी शर्म, सकपकाहट, कस-साहट को ताक पर रखकर तुम्हें खुश करने के लिए हेम यह भी रने को तैयार हो गयी. उसकी इस तैयारी से ही तुम संतुष्ट नहीं सकते थे? बिना किसी जुर्म के इतनी बड़ी सजा स्वीकार करने ली के समर्पण ने तुम्हें थोड़ा भी नहीं पिघलाया? उस अधिकार र अधिकार कूटने की ललक जो पहले ही तुम्हारी थी, तुम्हारा ंड, तुम्हारी लोलुपता कहां चैन लेने देते तुम्हें?

बस, यहीं तुम मात खा गये. हेम नहीं लौटी. पहली और सरी सीढ़ी के बीच लुढ़की हुई उसकी लाश मिली तुम्हें. छलनी था उसका कमजोर दिल इतना दबाव सह नहीं सका. ढह गया. वे इंतजार के बाद तुम नीचे उतरे. तब भी तुम यह सोच रहे थे हेम संकोचवश कमरे से बाहर नहीं निकल रही होगी. तुम्हें नी पर चुनौती दिये जा रही है हेम, ऐसा लगता था तुम्हें. ढ़ियों में से नंगी हेम को गोद में उठाकर, कमरे में तुमने उसकी होशी दूर करने की कोशिश की थी, लेकिन कोई बेहोश हो तो सकी बेहोशी दूर करो न तुम. उसका खून हो चुका था तब तक. ने कर दिया था उसका खून.

और तुम कितने ठंडे खून वाले आदमी हो. हेम को कपड़े नाये. रोशनी बुझायी. दरवाजा बंद किया. सुबह तक छत पर अकेले पड़े सोने का दिखावा करते रहे. सुबह आंखें मलते हुए उठे, सब लोगों के उठने के बाद. आराम से कमरे में आये और फिर हाय-तौबा मचायी. तुम्हारी, सिर्फ तुम्हारी वजह से हेम मर गयी, मगर दुनिया का कोई कानून तुम्हें हाथ नहीं लगा सकता. दुनिया का कोई आदमी तुम्हारी तरफ संदेहभरी अंगुली नहीं उठा सकता. तुम्हें लोगों की सहानुभूति मिल रही है. इकतीस साल की भरी जवानी में आखिर तुम्हारी पत्नी की मृत्यु हो गयी है. कौन नहीं दिखायेगा सहानुभूति? एक बात बताओ. तुमने कहीं हेम की मृत्यु की कल्पना पहले ही तो नहीं कर ली थी? दूसरी शादी करने में कोई दिक्कत न आये, यह सोचकर तुमने पिता बनने से किनाराकशी की हो? तुम सब कुछ कर सकते हो. सब कुछ संभव है तुम्हारे लिए. लगभग तय है कि जल्दी ही तुम्हारी शादी के लिए प्रस्ताव आने शुरू हो जायेंगे. तुम थोड़ी उदासीनता का नाटक करोगे. थोड़ी बहुत ना-नू का दिखावा करोगे. फिर इस अंदाज में गोया उस लड़की पर या मशविरा देने वालों पर एहसान कर रहे हो, स्वीकृति दे दोगे. लगभग तय है कि तुम्हारी शादी हो जायेगी. हो सकता है, लड़की खूबसूरत हो, हेम से भी ज्यादा.

लेकिन एक बात याद रखना. सब कुछ हो जायेगा, मगर हेम जैसी लड़की तुम्हें फिर नहीं मिलेगी. तुम्हारी खुशी के लिए मर मिटने का जज्बा हो जिसमें, ऐसी लड़की तुम्हें फिर नहीं मिलेगी. शादी तुम्हारी जरूर हो जायेगी. एक जिस्म तुम्हारे पास होगा जरूर, लेकिन घर ताउम्र तुम्हें काटने को दौड़ेगा. बिस्तर तुम्हें लीलने की कोशिश करेगा. हर स्वादिष्ट खाद्य पदार्थ तुम्हारे गले में अटकने लगेगा. कपड़े तुम्हें निगलेंगे. दिन आग बनकर उगेगा. रातें पर-छाइयां बन जायेंगी. दुनिया को धोखा दे सकते हो तुम, अपने आप को धोखा नहीं दे सकते. आखिर तुम कैसे भूल सकते हो कि एक नेकबख्त, बेकसूर लड़की के खूनी हो. □

● ए-130, आदर्शनगर, जयपुर-302004

ग़ज़ल

आग को आग से एक बार मिलाकर देखें,
प्यास फिर आग की पानी से बुझाकर देखें.

दिल किसी पेड़ की सूखी हुई डाली तो नहीं,
आओ! एहसास की भट्टी में जलाकर देखें.

ख्वाब महलों के तो हमने भी बहुत देखे हैं,
आब में रेत की दीवार उठाकर देखें.

लुटने वाले की तरह लूटने वाला होगा,
आईना सामने अपने कभी लाकर देखें.

हर घटाटोप अंधेरे में भटकने वाले,
दिल के दरवाजे पे कन्दील जलाकर देखें.

‘धूल का फूल’ यूं जूड़े में भी टंक सकता है,
गुल ये तहजीब की वादी में खिलाकर देखें.

मुझको जो गैर समझते हैं वो ‘आलम’ पहले,
अपनी परछाईं को सीने से लगाकर देखें.

▣ लालजी ‘आलम’ हथगांवी

मैथिली कहानी

बीच रात में

• शैवाल

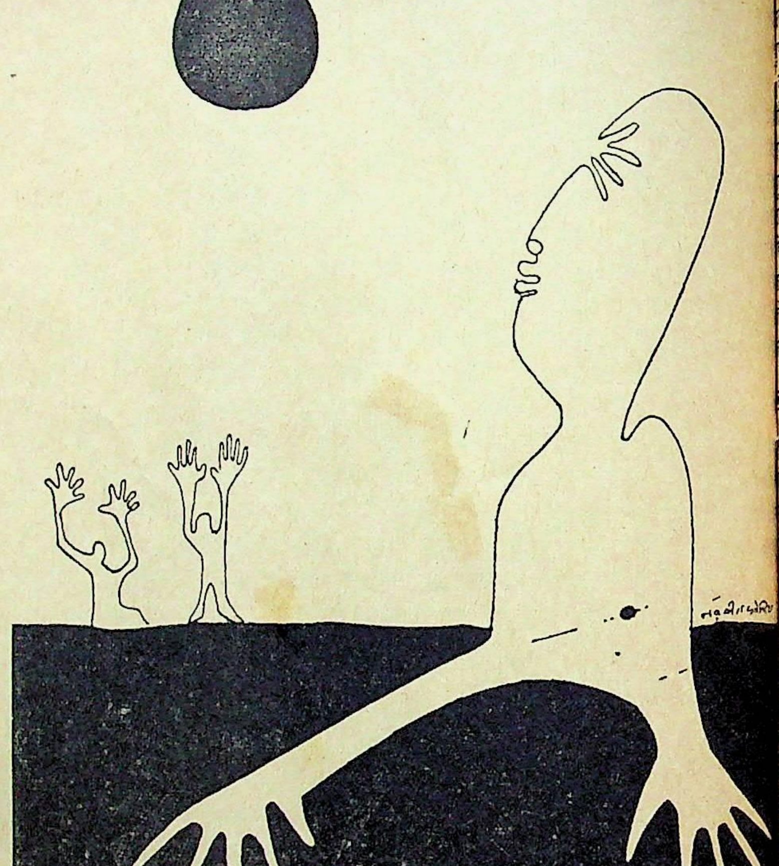

एक ने कहा था... "नींद नहीं आती तो तारे गिना करो."

दूसरे ने कहा था... "कोई काम नहीं है तो कौवे उड़ाओ."

जब नौकरी मिली थी तब पैसों की कोई बात नहीं चली थी. शुरू के कुछ दिन तो निष्काम सेवा और फलहीन कर्म की शिक्षा देने में बीत गये. इन उपदेशों के असर न करने पर थोड़ी रकम तय कर दी गयी. लेकिन इस रकम का पता तब चला जब वह वेतन लेने गया.

खजांची ने जब उसके हाथ में रुपये रखे तो देखकर बोला, "इससे क्या होगा सर, खर्चा भी पूरा नहीं पड़ेगा!"

"तो मैं क्या करूं?"

"खर्चा लायक रुपया तो मिलता."

"इतने से ही काम चलाओ."

"यह तो मुश्किल है."

"जानते नहीं हो, जितनी लंबी चादर रहे; पांव उतना ही फैलाना चाहिए. थोड़ा कम खाओ, गम खाओ, हवा पीओ, फिर देखो...बचा भी लोगे."

"पहले से तो कम खाकर कंकाल बन बन गया हूं. गम खाऊंगा तो एक्सरे की रिपोर्ट बन जाने में कोई कमी नहीं रह जायेगी."

"बकवास मत करो. बहुत काम है."

"सर, कुछ तो कीजिए. खर्चा नहीं पूरा होगा तो रातों की नींद हराम हो जायेगी."

"तो तारे गिन लिया करना."

निराश होकर मैनेजर से मिला. वह पहले से ही खार खाये बैठा था. खजांची ने भी शिकायत कर दी थी... कि यह अपना पूरा हक चाहता है.

मैनेजर ना-नुकर करने लगा.

वहां भी नाटक का एक अंश चला.

उसके तेवर बदल गये. पहले तो उपदेश दिया, "भगवान पर भरोसा करो, जितना किस्मत में है उतना ही पाओगे. संसार में सभी एक बराबर नहीं हैं. अभी नये-नये आये हो. तुम्हारे पीछे किसी का हाथ नहीं है...!" अनेक बातें दवा की तरह पिला दी गयीं. अंत में उसने निकाल देने की भी धमकी दी.

वह घबरा गया. बचने के प्रयास में सारा हर घूमता रहा. मजबूत हाथ वालों को ड़ता रहा. जिसके पांव मुलायम थे. के पांव में मक्खन लगाता रहा. चिकनी-ड़ी बातें करने लगा. गधे की तरह अपनी दुलत्ती भूलकर) नतमस्तक होकर तिकता का आदर्श सुनता रहा. कुत्ते की ह (दांत के पैनेपन को भूलकर) पूंछ ता रहा. वक्त आने पर बिछावन की ह बिछ गया. किसी को चेहरा दिखाया; सी को पेट. किसी के आगे रोया, किसी गीत गाया, किसी के आगे खीसें निपोरी; कहीं कूल्हा मटकाया. मगर कुछ भी तो हीं बना.

बार सीधे मालिक के पास गया. म प्रयास में सारी बातें सुन लेने पर लिक ने स्थिर बैठ जाने को कहा. तब ा, “सिनेमा में तो अवश्य रुचि होगी?”

“हां सर!”

“तो तुम्हें एक गीत सुनवाता हूं.” और ार्ड-प्लेयर पर रिकार्ड चढ़ाकर ऑन दिया.

तीन मिनट तक गीत सुनता रहा. मन लगा. गीत के बोल थे... “कर्म किये जा की चिंता मत कर ऐ इंसान...!” ही मन सोच रहा था....काम हो की उम्मीद है. यह तो दोस्ताना सलूक रहा है.

गीत समाप्त होने पर मालिक ने नजर ी तो वह बोला, “गीत तो मजेदार रहा.”

“लेकिन तुम...?”

“सवाल तो पेट का है सर?”

मालिक गुस्सा गया. पूछा, “किसी यन से नाता है?”

“नहीं सर!”

“कम्युनिस्ट हो?”

बात बदलकर वह बोला, “सर, मैं और कहना चाहता था.”

मालिक बौखला गया. वह भूंकने लगा, तुम सबको पहचानता हूं. मुझे चकमा दो.”

वह हक्का-बक्का रहकर खड़ा हो गया. मालिक आगे बोला, “तुम ऐसे नहीं ोगे. अभी चले जाओ. अभी, या मैं ान को बुलाऊं?”

वह हाथ मलता बाहर निकलने लगा.

मालिक ने अंग्रेजी में गाली दी, “हाऊ इडियट इंडियंस! धर्म तो सब भूल गये हैं.”

अगले दिन मैनेजर ने बुलाकर नोटिस थमा दिया—कल अपना हिसाब ले जाओ.

कोई चारा नहीं रहा!

◆

सारी भाग-दौड़ असफल रही. जिनके तलवों में मक्खन लगाया था; उनके तलवे छेद वाले निकल गये. जिनके मजबूत हाथों की मालिश की थी; वे कमजोर निकल गये. सबके आगे रोया, अपना दीदा खोया. लेकिन बना कुछ नहीं.

हिसाब देते समय मैनेजर ने सुनाया, “दाने-दाने पर लिखा है खाने वाले का नाम!”

अपना हिसाब लेकर वापस लौटने से पहले उसने मैनेजर से अंतिम बार कहा, “पहले कम पाता था तब भी रात की नींद हराम थी सर!”

खजांची ने टोका, “तब तो तारे गिनते थे न?”

बात आगे बढ़ायी उसने, “अब तो सर, बेरोजगार भी हो गया!”

मैनेजर ने टोका, “कोई बात नहीं, दिन में कौवे उड़ाना!”

उसके निकल जाने के बाद दोनों ने ठहाके लगाये और एक-दूसरे से कहा, “एक का पत्ता गुल हुआ!”

“मजा आ गया!”

तब से वह दिन में कौवे उड़ाता है... रात को तारे गिनता है!

एक रात तारे गिनते-गिनते भावुक हो गया और सिर झुकाये सड़क पर चुपचाप चलने लगा. चलने लगा और सोचने लगा. सोचने लगा और चलने लगा. लेकिन बाधा हुई. लगा धरती कांप रही है.

नजर उठाकर देखा तो पाया, बगल में एक मूर्ति खड़ी थी, जिसमें एक बूढ़ा आदमी आंखों पर स्कूलमास्टर की तरह कमानीदार चश्मा लगाये, हाथ में लाठी पकड़े, घुटने से ऊपर एक कपड़ा लपेटे चलने के मूड में खड़ा था. नजर नीचे झुकी थी. सिर पर बाल नहीं थे. ऐसा मालूम होता था सारे शहर की चिड़ियां यहीं बीट करती हैं. उसके पांव के नीचे काले-काले बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा था—सत्यमेव जयते!

उसी की मूर्ति कांप रही थी.

मूर्ति की जड़ पर नजर गयी तो कौतूहल हुआ. झुककर देखा तो पाया किसी का सिर बाहर निकला है. बाकी धड़ मूर्ति के नीचे दफन है. उस धराशायी ने अपना परिचय दिया—मैं सत्य हूं! और फिर पीड़ा से करवट लेने की चेष्टा की तो मूर्ति कांपी!

वह सत्य को कब्र से बाहर निकालने को तैयार हुआ तो उसे सलाह दी गयी.... “किस फेर में हो? मुझे मेरी हालत पर छोड़कर अपना काम देखो!”

“क्यों? मैं ऐसी बातें नहीं सह सकता?”

“देखो, मुझे बचाने वालों को एक अंधेरी गुफा में डाल दिया जाता है. जहां से वह कुछ दिनों बाद देश के नक्शे में बदल दिया जाता है. बेकार जान दे रहे हो.”

“ऐसा कैसे होगा?”

“ऐसा ही होता आया है. इस जगह पर किसी दूसरे की मूर्ति थी. उस समय भी मैं इसी तरह दफन था. तब नारा दूसरा था. जब इस बूढ़े का शासन हुआ तो यह भी मूर्ति बन गया. नारा भी बदल गया. पर मैं मुक्त नहीं हुआ. मेरे पीछे बहुतों ने जान गंवायी. तुम उन शहीदों में मत शामिल होओ. चाहो तो उनका बदला लेकर मुझे मुक्ति दिला सकते हो.”

निराश होकर चलने लगा तो मूर्ति पूर्ववत् कांपने लगी. एक उड़ता हुआ उल्लू उस पर आकर बैठ गया.

◆

थोड़ी दूर आगे बढ़ा तो देखा—दूर से एक सफेद आदमी शेर जैसी चाल से चलता आ रहा है. चेहरा शेर-सा ही लग रहा था. हाथ में खूनी नाखून थे. उसकी बड़ी-बड़ी मूंछें थीं, जो सड़क पर घिसटती आ रही थीं. उसके हाथ में एक पुतला था.

पास आने पर देखा, उसकी पूंछ नहीं, उसके पीछे समर्थकों का लंबा सिलसिला है. सबकी आंखें बंद हैं, ललाट पर जय-जयकार का नारा लिखा है. कौतूहलवश एक से उसने नाम पूछा तो कुछ कहने के बदले उसने जेब से चम्मच निकालकर दिखा दिया. गौर से देखने पर मिला—सबकी जुबान पर ताला लटका है. वह विचित्र आदमी इस रवैये पर मुस्करा उठा और रुक कर बोला, “क्या देख रहे हो?”

“तुम कौन हो? ये कौन हैं?”

“मैं? मुझे नहीं पहचाना? मैं ही देश

इक शहंशाह ने बनवा के हसीं ताजमहल,
हम गरीबों की मुहब्बत का उड़ाया है मजाक!

आदम और हवा की गंध के साथ जन्मे इस इंसानी जज्बे पर आखिर अमीरी का ही कब्जा क्यों हो गया?

पढ़िए—सवाल दर जवाब देता सारिका (1 जनवरी, 81) का

प्रेमकथा विशेषांक

का नियंता हूं."

"कैसे मान लूं?"

"देखते नहीं मेरे पीछे बहुमत है!"

"लेकिन सबके मुंह पर तो ताले जड़े हैं."

"ये ताले केवल जय-जयकार के वक्त खुलते हैं. बाद में फिर ठोक दिये जाते हैं."

"यह तो गलत तरीका है."

"तुम प्रतिक्रियावादी हो? विदेशों से पैसा मिलता है सत्ता पलटने का?"

"नहीं, मैं बेरोजगार हूं. दिन में कौवे उड़ाता हूं और रात को तारे गिनता हूं."

"मुझसे मुलाकात नहीं हुई है शायद, जब मेरी शक्ति पहचानोगे तो तुम भी वही हो जाओगे जो पीछे वाले हैं. बोलो, क्या चाहते हो?"

"अपना हक!"

"नक्सलवादी हो या कम्युनिस्ट?"

"शिक्षित बेरोजगार!"

"तुम ऐसे नहीं मानोगे. इधर देखो."

उसने अपने कुरते की एक जेब में नजर डालने का इशारा किया. उसमें बहुत सारे कल-कारखाने चल रहे थे. वहां मशीन और आदमी में कोई भेद करना कठिन था. सभी एक ही गति से कार्यरत थे. यह दृश्य हटा तो एक बड़ा स्ट्रांग-रूम का दृश्य उभरा, जिसमें सोने-जवाहरात, बहुमूल्य सामान और करंसी नोट भरे थे.

"अब दूसरी जेब देखो."

इसमें एक बड़ी प्रयोगशाला थी, जहां लोग शोध में लगे थे. सभी तल्लीनता से अपना काम कर रहे थे. दूसरा दृश्य आया तो कुछ ऐसे आदमी आये जिनमें कुछ जोर-शोर से कविता-पाठ कर रहे थे, कुछ नाटक खेल रहे थे, कुछ फिल्म बना रहे थे, कुछ पत्रिकाओं के दफ्तर में बैठे गुफ्तगू कर रहे थे.

वह आदमी बोला, "अब मत देखो. जानते हो कौन थे ये लोग?"

"नहीं."

"क्या कहा, नहीं? अरे, ये ही तो हमारी संस्कृति के गायक हैं, उन्नायक हैं. ये सारे के सारे 'एवार्ड विनर' हैं."

"होंगे."

"होंगे नहीं, हैं. ऐसे जितने भी होते हैं न, वे ही इतिहास में आते हैं."

वह सोच में पड़ गया.

कुछ देर बाद वह आदमी बोला, "अब पहचान लिया न मैं कौन हूं?"

उस विचित्र आदमी ने यह पूछकर अपनी ऊपर वाली जेब से एक मोटी-सी डायरीनुमा कोई चीज निकाली और दिखाते हुए पूछा, "जानते हो, यह क्या है?" और उसके पन्ने पलटने लगा.

उसने देखा, उसके पन्ने बीच-बीच से फटे हैं और वहां पिन लगाकर कई दूसरे-दूसरे पन्ने जोड़ दिये गये हैं. कई पन्ने तो सारे के सारे काले रंग से पुते हैं. कुछ न समझने पर बोला, "डायरी होगी और क्या?"

"जा रे बेवकूफ, यह व्यवस्था की किताब है. मेरे देश के नागरिक होकर इसे नहीं पहचानते? अभी मैं संसद में जाकर शिक्षा-प्रणाली पर प्रश्न उठाता हूं." और वह खामोश हो गया.

उसने सहसा एक पुतले की ओर निगाह फेंकते हुए पूछा, "यह क्या है?"

"मेरे विरोधी का पुतला."

"इससे अब तुम आगे हो न?"

"हां, तभी तो यह पुतला बन गया है."

"मगर पुतला ही तुमसे आगे है, गौर से देखो?"

उसने गौर किया, सच में उससे आगे उसके विरोधी का पुतला है. उसने झट अपने पीछे वाले को थमा दिया. पीछे वाले ने अपने पीछे वाले को दिया. सबसे पीछे वाले ने अपने पीछे किसी को न पाकर सड़क पर फेंक दिया.

वह आदमी काफी प्रसन्न हुआ और पूछा, "बड़े तेज मालूम पड़ते हो! इंपोर्टेड ब्रेन है क्या?"

"नहीं, सौ प्रतिशत भारतीय है."

"ऐऽऽ! भारतीय भी इतने तेज होते हैं? मैंने तो आज जाना. . . ."

तभी जोरों से गड़गड़ाहट हुई. दोनों ने आकाश की ओर देखा—पांच सफेद कबूतरों का पीछा तीन बंदर कर रहे

वह विचित्र आदमी चलते हुए
"मैं जा रहा हूं. ये तो आपस में ही
पर उतारू हैं."

वह उसी दिशा में पूरी जमात के
बढ़ने लगा, जिधर कबूतर गये थे.
आगे बढ़कर पूछा, "फिर कब
होगी?"

"पांच साल पर या जरूरत हुई तो
पहले भी."

कारवां गुजर गया. कुछ क्षण बाद
तीन देहाती-से लगने वाले आदमी
पर आ गये और थमकर सांस लेने
सभी जोरों से हांफ रहे थे. थोड़ा
लेने पर वे उसके पास आये और
'लेताजी' को देखा है?"

"लेताजी?"

"हां, लेताजी. इधरे आये हैं. पीछे-
बहुत आदमी रहे होंगे."

तभी दूसरा आदमी सफाई देने
"मालिक, हम लोग नेताजी को खोज
हैं. यह साफ-साफ नहीं बोल पाता
इसीलिए 'लेताजी' कह रहा था."

उसने दोनों को रास्ता
बताया, "वह सीधे गये हैं तुम्हारे
कुछ लेते गये हैं क्या?"

"सब कुछ!" कहते हुए दोनों उसी
जाने लगे.

तभी कंधे पर उसने किसी के हाथ
स्पर्श महसूस किया. पीछे मुड़कर
एक सिपाही था जो कह रहा था,
बड़बड़ा रहा है इतनी रात को! भागता
यहां से कि नहीं?"

अनुवादक : अजय
मिश्र टोला, दरभंगा (

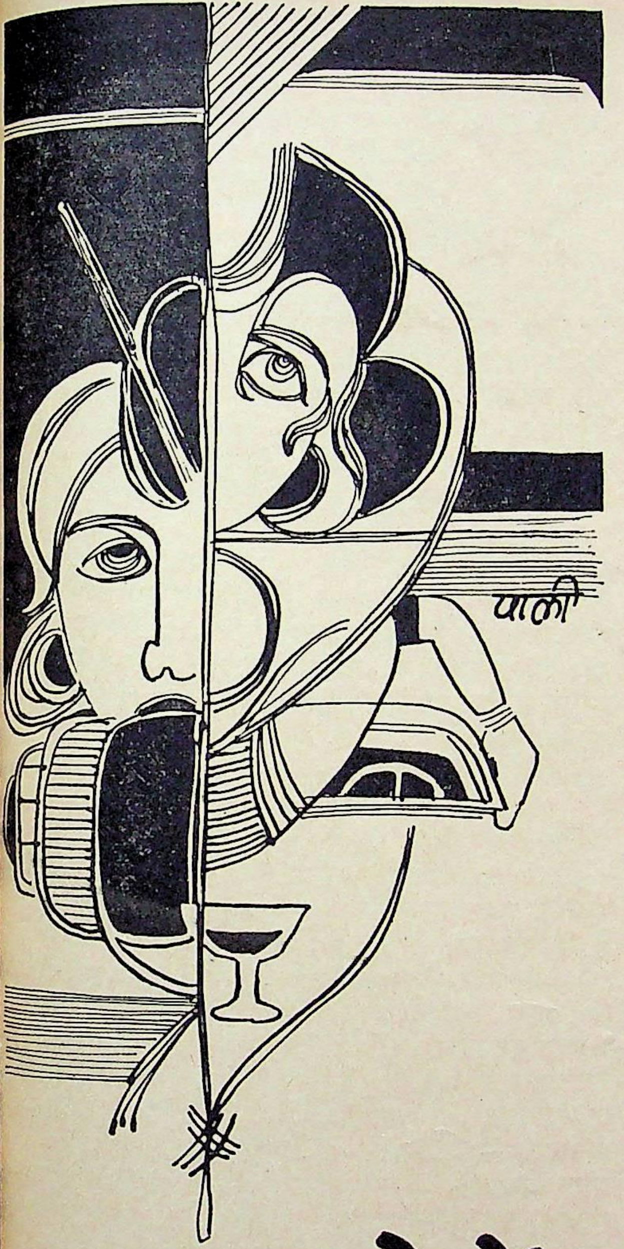

सभ्य लोगों का दर्द

• रंजन त्रिवेदी

लंबी-लंबी कोरों वाली आंखें, समेटी हुई भौहें, हवा से खेलते सूखे बाल तंबियायी लंबी गर्दन पर छितरा रहे थे. जब वे घूमतीं तो सफेद नाइटी कभी पीठ के पठारों के बीच दूर तक चली गयी ढलान तक गहरी पंक्ति को बाहर फेंक जाती. आईने के सामने गहरी सांसें ले बैठतीं तो देहचिंता में संवारी पहाड़ियां चांदनी से ढंकी लगतीं. मिसेज सिंह पता नहीं कितने कोणों से आईने के बीच नाइटी की चुन्नटों के पार अपने को देख लेतीं और हर बार पतले-पतले होंठों पर दांत गड़ाकर उन्हें लाल कर देतीं और तत्काल ही मुड़ जातीं. आज की मार्केटिंग में मिसेज सिंह दोनों के बीच टॉप करना चाहती रही हैं. मिसेज रमण को तो वैसे ही छरहरी होने का गुरूर है और मिसेज आशुतोष अपने को सदाबहार माने बैठी हैं. आज वे दोनों के बीच आंखों ही आंखों में उठ जाना चाहती हैं.

दोनों तैयार होकर सोफे पर आकर बैठ गयी थीं, और वे मिसेज सिंह को और आईने को देखे जा रही थीं. सुगंधित लहरें त्रिकोण से बाहर नहीं जा पा रही थीं. कभी-कभी बिंब चौंक जाते, चुन्नटें स्थिर हो जातीं. मिसेज सिंह को लगा कि चुप रहने से आंखें कहीं न कहीं स्थिर होने को विवश हो जायेंगी. अतः वे बालों को हल्का-सा झटका दे बोलने लगीं, "चुप रहने वाली औरतें जीना नहीं जानतीं. वह जिंदगी भी क्या जो मनहूसियत में कटे, किसी दरिया किनारे बने कॉटेज में कटे या किसी लायब्रेरी के कमरे में कटे, सारी जिंदगी अपने को समेटे रहने में कटे. उसी में घिरे रहो, दिखो न दिखाओ, बोलो न बतियाओ—यह सब अपने से हो ही नहीं सकता. चुप रहने वाली स्थितयां जहां एक ओर हारने की बात कहती हैं, उस सबको मांबदौलत कबका झुठला चुके हैं. रही, सुपरइंटैलिजैंट बनने की, चुप रहने की, कम हलचल करने की बात, वह सब इस उम्र को गंवारा नहीं. कटने, हटने, बचने, हिचकने की स्थितियां कभी आयें ही नहीं—यही मालिक से दरख्वास्त रहती है. चुप्पीपन अजीब हालातों के बीच, सच कहती हूं, मुझे तो कुसूरवार बनाकर खड़ा देता है. पहाड़ी झरने-से उछलते-कूदते, बढ़ते-छूते, खिलखिलाते बहते रहो बस, पत्थरों को शक्ल देते चलो, काफी है."

मिसेज सिंह एक सांस में अपनी बात कह गयीं और अपने बालों को ब्रश करने लगीं. सोफे पर बैठी रमण और आशुतोष को उन्होंने बारी-बारी से देखा. वे मोनालिसा स्टाइल में मुस्का रही थीं. अवयवों की सुघड़ता कहीं कोई खिंचाव तो उनके चेहरों पर नहीं दे रहे? देंह को जरा-सा झटका मारकर वे फिर ब्रश करने लगीं.

अब तक वे ही बोल रही थीं, बिंब नहीं बोल रहे थे.

दोनों की कारें, दोनों के साहब ऑफिस ले जाते हैं. सिर्फ मिसेज सिंह की ही कार साहब को पहुंचाकर बंगले पर लौट आती रही हैं. दोनों मन मसोसकर रह जातीं. मिस्टर सिंह कितने अच्छे हैं जो इन्हें कहीं नहीं टालते, और एक हमारे हैं. कार के बिना ये चलेंगे नहीं तो अफसर कैसे कहलायेंगे? इसी मसले को लेकर जब भी बात बढ़ती तो तीनों होटलों में खाने लगते या दौरों पर निकल जाते. अब आंसुओं का असर कम हो गया है. और मिसेज सिंह हैं कि अपना गुर बताती ही नहीं हैं. हर जगह ए-वन रिसपाँस चाहती हैं.

मिसेज सिंह ने दीवार पर टंगी घड़ी को देखा. वह बंद थी.

"रौनक तो शाम को ही होती है. फिर हमारे जाने ही से तो वह बढ़ती है. रौनक का इंतजार शाम को हो सकता है, शाम का हमें नहीं." उन्होंने बड़ी अदा से मुस्कराते हुए यह बात कह दी. घड़ी देखने वाली आंखों को बेअंदाजा किये आईने के पार देखने लगीं. वहां चुन्नटें दूधिया झरने की लहरों की तरह थिरक रही थीं.

मिसेज आशुतोष ने अब बायें पैर पर अपना दायां पैर रख लिया था. उनके जाली वाले सैंडिलों से उनके रक्तवर्णी पैरों के झूलते पंजे आलते के फीके चिन्हों को विदा दे रहे थे. लाल किनारे वाली महीन कोसे की हल्के पीले रंग की साड़ी उनकी देह से खूब मैच कर रही थी. लगता, खुशबुओं की घाटी में पैक देह का अरुणोदय साड़ी के रैपर में फूटा पड़ रहा है. अरुणाभा आकाश के लिए मचल रही है. किशलयी होंठ आंखों के विहंगों की नन्हीं उड़ान भर ही से कसमसा जाते पलकों की झाड़ियों में प्रभाती गुनगुनाते मिलते. जिसे कनखियों से मिसेज सिंह रह-रहकर देख लिया करतीं.

मिसेज सिंह को बातों को वे सुन रही थीं. उन्होंने अनुभव किया कि सारी बातें उन्हीं से कही गयी हैं. मिसेज रमण बीच में रखे टेबुल पर अपने दोनों पैरों को रखे उंगलियां नचा रही थीं. नाखूनों की जगह लगता, छोटे-छोटे मूंगे रख दिये गये हैं. श्वेत कमल-सी गौरांग काया अंगूरी रंग की शिपॉन की साड़ी में बंधे हुए जल की तरह लग रही थीं. माथे पर हरी टिकली और पन्ने के टॉप्स जूड़े में खुसे हरे गुलाब से लग रहे थे.

"तुम्हारी बात सही है मिसेज सिंह. मैं भी सहमत हूं. खिलखिलाते झरने का सुख और है. गुमसुम बने रहने से, झील-से बने रहने में क्या तुक है? झरने की खिलखिलाहटों से नये-नये दरख्त न झूमने लगें या झुक-झुककर यह न देखने लगें कि इतनी प्यारी आवाज, लहर, सुगंध आयी कहां से, तो वे भी फिर किस काम की, जो खिचाव न रच सकें." कहते-कहते मिसेज आशुतोष ने पहले मिसेज रमण की ओर फिर मिसेज सिंह की ओर देखा. वे अभी भी धीरे-धीरे बालों में ब्रश किये जा रही थीं. इस समय उनकी आंखों में यही भरा लग रहा था कि देखो भई, उम्र चालीस-बयालीस की जरूर होने को आयी, पर दो बच्चों के बाद भी कहीं शिकन नहीं आयी. कभी बच्चों को लेकर हम बाजार भी गये हैं? यह चेहरा लावण्य की ही बात नहीं करता, किसी भी कोण से इस मूर्ति को देख लो, चुस्त मांसलता को तराशने वाले हाथ खजुराहो या कोणार्क की ही याद ताजा कर जाते हैं. देह को जरा ध्यान से संभालो. रजनीगंधा-सी रात को ही महकने का सुख नहीं, वरन् सूरजमुखी-सी बेखौफ होने का अवसर भी मिलता है. हर देखने वाली निगाह को कभी सुगंध, कभी किरण मिल ही जाती है. फिर मैं तुम लोगों की ही निगाहों में नहीं अटकती, न जाने कितनी हूक करने को मचल जाती हैं. जरा रुककर मिसेज सिंह ने सिर को हिलाया और ब्रश को झुलाते हुए बोलीं, "मुझे यह जरा भी अच्छा नहीं लगता कि उठते-बैठते जब देखो तब क्लबों के चर्चे ही किये जायें और यह बताने की कोशिश की जाती रहे कि वे ही क्लब की शोहरत हैं. अगर वे क्लब में न जायें तो वहां बहारें ही न आयें. जबकि हकीकत यह होती है कि ये सब क्लबों की सीमित जिंदगी में इसलिए पहुंच जाती हैं कि इन्हें बाहर खुली जगह में कोई पूछने वाला ही नहीं होता. एक ढंग से ये अपने अवमूल्यन को छिपा ले जाती हैं. कैसे कहें कि बुढ़िया हो चली हैं. बिकनी पहनकर स्वीमिंग पूल पर या छतरी के नीचे गॉगल लगाकर देह की वर्जिस करते हुए बड़े-बड़े नामी-गिरामी जहाजों को लंगर डालने को विवश करने के लिए सर्कस करती रहें और खिसियाकर पति या पुराने प्रेमी को डांटें, उससे कुछ होता नहीं. मगर यहां तो देह को कुछ भी पहना दो फूटने लगता है, जैसे देह में चंदन हो, छूते ही महकने लगता है. होना चाहिए बस. नहीं तो कुछ भी पहनाओ, कुछ उभरता नहीं. फिर चाहे नाभिदर्शना साड़ी पहन लो, लो कट के स्लीवलेस ब्लाऊज पहन लो, पारदर्शी मैक्सी या मिनी स्कर्ट पहन लो, बुढ़िया देह कहीं स्पार्क नहीं करती. खुले में आने की इनकी हिम्मत ही कहां है! बैठे-बैठे ताश खेलेंगी, वैनिटी पर्स से आईना निकाल टच देती रहेंगी या फिर सिगरेटें पी-पीकर धुएं के साथ आहें छोड़ती मिलेंगी. पेग पर पेग लेने वाली तो इसी उपेक्षा के गम को गलत करती मिलेंगी. जो देह स्पार्क नहीं कर पाती, वह थम जाती हैं, बंध जाती हैं."

कहकर उन्होंने पास बैठी मिसेज रमण की ओर बड़े गौर से देखा. वह मजे से बातें सुनती हुई टेबुल पर रखे अपने पैरों की उंगलियां नचाये जा रही थीं. उनके चेहरे पर कहीं कोई प्रतिक्रिया नहीं थी. इसके बावजूद उनकी नाक का हीरे वाला लौंग किरण के छूते ही चमकने लगता. जिससे गालों पर जमें गुलाब लगता मंद-मंद मुस्कराये जा रहे हैं.

▣

मिसेज सिंह उन्हें भी छेड़ती रही हैं, लेकिन उनकी इस बात का अभी तक वे दोनों जवाब नहीं दे सकी हैं कि—आप लोग दो-दो बच्चों के बाद भी अपने को मेन्टेन करने का गौरव हासिल किये हुए हैं और एक हम हैं कि तीन ईशू हो जाने के बाद भी देह में कहीं कोई लथड़ने की, मांस लटकने की नौबत नहीं आयी है. अपने राम तो रेस्ट पीरियड में बाकायदा आसन कर लिया करते रहे हैं, मालिश कर लिया करते रहे हैं और दिनभर ताजा बने रहते हैं. वैसे आसन स्कूल के दिनों में सीखे थे, काम अब आ रहे हैं. देह के तनाव, कोण, और घुमाव आज भी किसी षोडशी की चुनौती स्वीकार करने में हिचकते नहीं. उन्होंने उन्हीं के बंगले में मिसेज रमण से जब कह दिया था कि हम लोगों को भी कोई संस्था-वंस्था बना लेनी चाहिए. जनसंपर्क बढ़ेगा. जानने वाले, चाहने वाले बढ़ेंगे. नया शगल रहेगा. राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्र के लोग भी इस ओर झुकेंगे. हमें कुछ करना-धरना भी नहीं पड़ेगा. अफसरों की बीवियों के नाम पर संस्था में सभी कुछ जुट जाया करेगा और हम बैठे-बैठे सब कुछ पा लिया करेंगे.

वे अपनी बात पूरी नहीं कर पायीं थीं कि मिसेज रमण बोलने लगी थीं. उनके हीरे की लौंग उस समय भी चांदी की रेखाओं को गालों पर दौड़ा रही थीं. माथे पर क्षणभर को लकीरें इकट्ठी हुई थीं और जैसे आयी थीं वैसे ही लौट गयी थीं. उनके किशमिशी होंठ भीगे से लग रहे थे और वे बोलने लगी थीं, "नहीं मिसेज सिंह, नहीं. हमें संस्था-वंस्था में विश्वास नहीं करना चाहिए. हम लोगों में घूमने-फिरने का बड़ा हौसला है, हम बंधी

जिंदगी के बिल्कुल आदी नहीं हैं. हमें वहां लोग भजाने आने लगेंगे. इधर चंदा देंगे उधर वसूल करेंगे. अभी हमारी कौन उमर हो गयी है. हम तो जहां खड़े हो जायेंगे, वहीं संस्था हो जाया करेंगी. सहयोग बनाये रखिए, यही बहुत है. फिर हमारे पतियों ने हम पर बड़ी रहम की है. उनकी नेकनीयती पर जुल्म नहीं ढाना चाहिए." कहते-कहते उन्होंने आंखें झपका लीं थीं और फिर बोलने लगी थीं, "उन्होंने हमें खिला-खिलाकर पलंग या गद्दा नहीं बना दिया है कि पड़े रहो. न सरको न हिलो. हां, अगर ऐसी स्थिति आ जाये तो फिर संस्था के बारे में सोचा जा सकता है. पलंग या गद्दे की तरह पड़े रहो, ताश खेलो, सिगरेटें पियो या घंटों प्यालों को घूरते रहो और चलने या उठने की नौबत भी आयी तो सांसों को ब्लडप्रेशर की सीमा तक पहुंचने से रोकने की लाचारी उठाओ. हमारा छरहरापन बरकरार रहे, बस. हमें मोटर ढोती रहे और बाद को ब्यूटी सैलून में हांफती नजर आओ, कमर और नितंबों पर पट्टों की घिसवाई स्वीकारो, फीगर की चिंता में जिंदगी का कीमती वक्त खराब करो. अभी हम लोगों को उस स्थिति में पहुंचने में काफी देर है."

▣

वे मिसेज रमण की बात का जवाब नहीं दे सकी थीं. उनकी कही बात में काफी असलियत थी. वे तीनों सिविल-लाइन में इसीलिए चर्चित भी रही हैं. ये बिना कहीं जाये ही हर की जबान पर है. उन्होंने बालों को स्प्रे किया. जिससे ढेर सारी खुशबू कमरे से मचलती हुई बाहर तक चली आयी. आई-ब्रो को उठाते-उठाते उन्होंने मिसेज रमण की ओर फिर देख लिया. मिसेज आशुतोष अपने छोटे से रूमाल से माथे पर पफ करने लगी थीं. लगता, जिंदगी के उजाले एक के बाद एक चेहरे पर जम गये हैं. पहाड़ियों पर उगने वाला सूरज हरदम तरोताजा है.

मिसेज रमण कनखियों से मिसेज सिंह की निहारती आंखों का अंदाजा ले चुकी थीं. उन्होंने अपनी तो कह दी थी. यह गनीमत है कि वे खोखली या छिछली मॉड बनी औरतों की तरह डींग नहीं मारतीं और न ही फिल्मी पत्रिकाओं के बीच अपने को विद्वान घोषित करना चाहती हैं. कभी वह जोर से बोलती नहीं दिखी हैं. वह पैरों की उंगलियां नचाना रोककर कहने लगीं. उनकी आंखों की कोरें दूर तक उभरती चलीं, वे जरा-सा कहकर रुक गयीं, "तुमने सुना, आजकल पीछे के बंगले वालों का शगल. . ." मिसेज आशुतोष भी चौकन्नी होकर उनकी ओर देखने लगीं. मत्स्यनयनों में खलबली मच गयी. मिसेज सिंह ने खड़े होते-होते नाइटी को जर्क दिया. सारी चुन्नटें सनसनाकर ठहर गयीं. वे भी देखने लगीं, आखिर कौन-सा शगल है, कौन-सी बात है? सुती हुई देह की रक्ताभा छवि चुन्नटों के पार ठीक वैसी ही लग रही थी, जैसे कि परदे के पीछे दीप शिखा निष्कंप खड़ी कर दी गयी हो. जहां कहीं छुये जाने का अंदेशा नहीं है.

मिसेज रमण कहने लगी थीं. उनके गाल में पड़ जाने वाला गड्ढा हंसने में ही उभरता था, बोलने में नहीं, पर कहते समय उन की आंखें हमेशा चमकतीं, पानीदार बनी रहतीं. "जो देखो वही उन बातों को हम तक पहुंचा देना चाहता है कि पीछे की लाइन वाली मिसेज उप्पल अक्सर मिस्टर तनेजा के यहां चली जाती हैं और मिसेज तनेजा किसी और के यहां चली जाती हैं. वह बाधा नहीं बनना चाहतीं, समझ से काम लो. . . ." दोनों बड़े गौर से मिसेज रमण की ओर देख रही थीं. मानो कह रही हों, रुक क्यों गयीं, आगे क्या हुआ है, कहों न?

वह कहने लगीं. टॉप्स की हरीतिमा किरणों के कारण गर्दन पर दूसरे गुलाब का भ्रम दे रही थीं. वे अपनी बात को बड़े विश्वास के साथ रखती लगीं—"भई, इसमें बुरा मानने की कोई बात नहीं. किसी का भी एक-सी मिठाई खाते-खाते जी ऊब जाता है. मरद तो किसम-किसम की जलेबियां—चमचम चख आते हैं, खा जाते हैं. हमने ही कौन-सा कसूर किया है? फिर अगर हम ही दूसरे मरद के साथ रह आयें, सो आयें, तो क्या फरक पड़ता है? कोई क्लबों में, कोई कॉटेजों में, फ्लैटों में या कूपों में स्वाद बदल लेता है, क्या अनहोना है? फिर हर बड़े शहर में वीमन एक्सचेंज क्लब इसी स्वाद की एकरसता को तोड़ने के लिए ही तो बने हैं. यहां वहां न जाकर सीधा एप्रोच तो हो जाता है. सभी स्वाद बदलने के हिमायती हैं, मॉडर्न हैं, तो फिर क्यों किसी पर अंकुश? सोसायटी ही फ्री होने जा रही है तो मर्यादा का ढोंग कब तक? कहीं कोई फर्क पड़ता ही नहीं. फिर एक रात में बनता-बिगड़ता ही क्या है. इस तकिये के सहारे सो गये या उस तकिये के सहारे, कौन-सा कहर टूट पड़ेगा!" इतना कहने के बाद मिसेज रमण ने गौर से दोनों की ओर बारी-बारी से देख डाला. मानो वे इस बात का असर दोनों के चेहरे पर खोजना चाह रही थीं. मिसेज आशुतोष की रूज तो गहरी दिखाई पड़ने लगी थी. उनकी आंखें पलकों को बार-बार झपकने से रोक भी नहीं पा रही थीं. आंखें पढ़ ली जायें, उसके पहले ही वहां व्यवधान उपस्थित किया जा रहा था, लेकिन मिसेज सिंह वार्डरोब की ओर जाने के लिए तैयार होने के बावजूद बात को सुन रही थी. ग्रीक कन्याओं-सी पतली नाक पर लगता पसीने से धनुषी वृत्त बना दिया था, गालों पर क्षण भर को संगमरमरी खिंचन आयी और चली गयी थी. होंठ कसने को हुए, पर दांत से दायें होंठों के कोने को दबाते हुए वह हंसी को बिखेरने न देते हुए सधे अंदाज में बोलने लगीं, "बात ये है कि इनकी भूख ज्यादा है. स्वाद बदलने की बात तो सिर्फ एक बहाना है. मैं कम से कम इन दोनों को नजदीक से जानती हूं. मिस्टर उप्पल हों या मिस्टर तनेजा, दोनों उम्र के हिसाब से पत्नी के लिए कोई मायने नहीं रखते और ये दोनों अभी भी भरी-पूरी, चढ़ी-खिंची रखी हुई हैं. कहीं से भी इन्हें खनकाकर देख लो, ये चांदी के कलदार रुपये की तरह किसी भी निकष के पत्थर पर खनक सकती हैं. इनकी आंखों में तुमने भी देखा होगा, एक चुनौती झांकती होती है, खनकने के लिए निकष की खोज होती है. भूखी सांडनी की तरह इनका रंभाना उप्पल और तनेजा की डैफिशियंसी के आगे चीत्कार बन जाता है. इसमें कुसूर किसी का नहीं, तकलीफ उठाने वाला कमी को पूरा करने के लिए मुक्ति चाहेगा ही, प्रयास करेगा ही. कहकर वह अनामिका से जरा गर्दन की चुनचुनाहट को सहलाकर फिर बोलने लगीं, "तुम्हें मालूम होगा कि पान और सुपारी का बैलेन्स न हो तो खाने में मजा नहीं आता. जरा भी संतुलन बिगड़ा नहीं कि उससे मुंह ही नहीं चिरता, बल्कि दूर तक मन चिरता चला जाता है. पान का जायका —सुगंध, बदबू और हताशा में बदल जाता है. सड़ी सुपारी और बंगला पान का भी कोई रिश्ता होता है?"

•

अब उनके चेहरे पर कनेरी मुस्कान बिछ गयी थी. दांत को फिर होंठ पर गड़ाते-गड़ाते वह बोल गयीं, “पान का भी तो मिजाज है भाई, सड़ी सुपारी की व्यथा पान क्यों सहे?”

मिसेज आशुतोष पहले तो थोड़ी देर गंभीर बनी रहीं, फिर मंद-मंद मुस्काने लगीं. मुस्कान उनके चेहरे से लहर की तरह उभरती लग रही थी और वे जरा देर को सोचने लगी थीं. मिसेज सिंह भी कौड़ी लाती हैं तो बड़ी दूर की, किस अंदाज से कह गयीं.

मिसेज रमण भी लगा, मुंह से मुस्कान बिखेरने लगी हैं. मिसेज सिंह की बात के लिए वे भी लगा क्षण भर को खुश हो गयी हैं. वह पैर की उंगलियां नचाने लगी थीं, लगता मुंगे एक वर्तुल में लीला कर रहे हैं. मिसेज सिंह वार्डरोब की ओर बढ़ने जा ही रही थीं कि मिसेज आशुतोष कहने लगीं, उनके होंठ ताजे लग रहे थे, “आपकी बात माने लेते हैं भाई, हमारे बीच कोई अनमेल या अनबैलेंस्ड नहीं है और कोई दिखने में गलत भी नहीं है. नहीं तो जलने वाले कहने ही लगते, कुछ दिखाने लायक चेहरे में, देह में तो है नहीं, तो तन उघाड़-उघाड़कर दिखाये जा रही हैं, अरे चेहरा नहीं खींच पाता तो स्लीवलैस कंवली-वंवलीनुमा बांहें ले लो, सुराहीनुमा गर्दन ले लो, उस पर फिट अजंताई जूड़ा ले लो या मिनी ब्लाऊज की फिटिंग में कसमसाये जा रहे पीठ के सुचिक्कन पठार ले लो, मांसल शंखों के जयघोषों की निर्द्वंद्वता ले लो, नाभिदर्शना साड़ी से खुले देह की आवाज ले लो, आंखों ही आंखों से जो चाहे ले लो, जो कुछ दिखने को है, वह सब देने को ही है,” कहते-कहते एक गहरी सांस छोड़ी और फिर बोलने लगीं, “यह अच्छा ही है कि हमारे साथ ऐसा कुछ नहीं है. हमें इस स्थिति पर उतरने की जरूरत नहीं है. यहां तो फीगर ही ऐसे हैं कि जहां कहीं खड़े हो जाओ, पता नहीं कितनी चुनचुनाहटें, चेहरे पर, गर्दन पर, बांहों पर रेंगने लगती हैं.

▣

मिसेज सिंह ने ब्लाऊज और साड़ी को निकालकर दरवाजा बंद कर दिया. नाईटी उतारने ही जा रही थीं कि पूछ बैठीं, “चाय यहीं मंगवा ली जाये कि रेस्त्रां. . . .”

मिसेज रमण बीच ही में बोलीं, “अरे, आप भी क्या गजब करती हैं, रेस्त्रां की आंखों को भी सुकून चाहिए, इंतजार करती आंखों का तो खयाल करिए. हमारे कद्रदान कहां नहीं हैं?”

मिसेज आशुतोष ने रमण की बात को संवारा, “हमारे कद्रदां कम हुए ही कब हैं? जब हम कॉलेज में थे, पता नहीं कितने गेट पर, नीम के झाड़ के नीचे, लॉन पर, सीढ़ियों पर, गैलरियों में घंटों इंतजार किया करते थे. हर कोई लगता निगाहों ही निगाहों में उठा लेना चाहता है. हर कोई चाहता कि एक इंच मुस्कान न सही, एक सेंटीमीटर ही दे दी जाये, और जब कुछ नहीं मिलता तो मैं आज भी कह सकती हूं, गहरी छोड़ी जाती सांसों की प्रतिध्वनि रात को जगा जाती है. तरसती आंखों का सुकून आज भी भूले नहीं भूलता. हर कोई शिकायत करता कि फलां लड़के ने उसे आज बुरी तरह से घूरा, लेकिन सच था कि हर कोई उस घूरे जाते क्षण का मोहताज था. उसी क्षण की प्राप्ति के लिए बन-ठनकर चली आया करती थीं. अगर देखने वाले न हों तो दिखाने वाले ही क्यों आयें? किसके लिए बने-संवरे, कहीं घूरे जाने से वंचित रह गयी तो उस दिन उसका सिर बुरी तरह दर्द करने लगता था. कैंटीन की काफी में मिट्टी की गंध आने लगती थी. सच में वे दिन आज भी अपनी गुमनाम पदचापों से भीतर के तार झनझना जाते हैं. देखे जाने का सुख मन को उठाता है. भीतर से हमें ताजा बनाता है. ताजा रहने के लिए इंस्पायर करता है.”

लघुकथा

स्थायी

▣ सुरेश अवस्थी

दीनू उस दफ्तर में पिछले दो वर्षों से चौकीदार के रूप में काम कर रहा था. अब तक उसकी नौकरी स्थायी नहीं हुई थी. उसे किसी भी समय निकाले जाने का डर था.

उसी दफ्तर के एक चलते-पुरजे बाबू से उसने मिन्नत की, “बाबूजी, कोई ऐसा जुगाड़ फिट करो कि मेरी नौकरी पक्की हो जाये. मैं आपका एहसान जिंदगी भर नहीं भूलूंगा.”

“इसमें क्या है. . . .?” बाबू ने धीरज बंधाया.

अगले दिन दफ्तर से एक टाइपराइटर चोरी हो गया. सबने दीनू को खूब डांटा, “तुम गेट पर बने रहे और टाइपराइटर चोरी चला गया?”

इस मामले को लेकर एक समिति बैठी. फैसला किया गया, “कोई भी सामान बिना दीनू की मिलीभगत के बाहर नहीं जा सकता. अतः दीनू को ही इसका नुकसान भरना होगा. टाइपराइटर की कीमत ढाई हजार रुपये होती है. दीनू इतनी रकम एक साथ अदा नहीं कर सकता, अतः जब तक यह रकम अदा न हो जाये तब तक दीनू के वेतन से दस रु. प्रतिमाह कटते रहेंगे.”

दीनू यह सजा सुनकर प्रसन्न हुआ. बाहर निकलकर उसने बाबू को धन्यवाद अदा किया. ☐

“एकदम ठीक कह रही हो मिसेज आशुतोष!” मिसेज सिंह साड़ी पहनते हुए कहने लगी थीं, “आंखों को ठहरा ले जाने की सफलता नारी को भीतर से ज्यादा जागृत रखती है और वह इसी सुख के लिए अपने को तैयार रखती है. यह तैयारी या लालसा देहसुख से कहीं ऊपर है. देहसुख तो एक सीमा में आकर रुक जाता है, ऊफनकर ठंडा हो जाता है, लेकिन आंखें ठहरा ले जाने की अहमन्यता नारी से अलग नहीं हो पाती. यह सुख कभी चुकता नहीं. यही अहमन्य उसे जिलाये रखता है, उठाये रखता है.”

मिसेज रमण परदे की दरार से लॉन की धूप का अंदाजा ले रही थीं. मौसम से लगता वासन्तिका विदा ले चुकी है, लान पर धूप के छौने इधर-उधर नहीं दौड़ पा रहे हैं. एक ही जगह इकट्ठे हो गये हैं. सिल्कन पर्दा बार-बार सामने आता जा रहा है. करीब पांच-साढ़े पांच बजने जा रहें होंगे. हमारे बाजार में पहुंचते ही दूकानदार ‘आइए बहिनजी’ की मुद्रा में चुस्त खड़ा हो जायेगा. न जाने कितने किशोर, युवक अपनी-अपनी जुल्फों को, कालर

संभालने लगेंगे. लिपस्टिक, शैंपू, सेंट अथवा नेल कटर के लिए ना नहीं कितनी दूकान छान मारेंगे और बेचारों की निगाहों को लचा-ललचा देने में मिसेज सिंह तो, ओफ कहीं डिजाइन की, हीं कलर की, कहीं क्वालिटी की बात करके सरक जायेंगे. और चारे लोग मछली निकल जाने का अफसोस लिये निगाहों की सी को झटका देने लगेंगे.

अच्छा है मिसेज सिंह जल्दी तैयार हो गयीं, वर्ना उनकी नाइटी से बाहर आने में घंटों ले लेती है. उनकी ब्रा में हुक ने की कठिनाई भांप ली और बोलीं, "मैं मदद करने आ ऊं क्या?"

"फिर तुम्हीं कहोगी 'शाकुंतलम' की प्रियंवदा की तरह कंचुक क्या दोष!" और मिसेज सिंह ने जरा झुककर ब्रा को एडजस्ट हुक लगाते-लगाते कह दिया.

तीनों हंसने लगी थीं. रमण ने स्थिति को संवारते हुए फिर कहा, ई, जो होगा वही तो दिखेगा. जो होगा ही नहीं, वह तो कल्पित कहलायेगा. तुम्हारी यह बात कि आंखों से मिलने वाला सुख री के अहमन्य को जिलाये रखता है, उसे सबके बीच महकने लिए, महत्त्वपूर्ण बनने के लिए तपन दिये रहता है, मैं माने ती हूं. लेकिन जब नारी में कुछ होगा ही नहीं तो कौन खिंचेगा? खोल बिना कस्तूरी के कब तक महकेगी? रूप के खोल में न की कस्तूरी अगर बनी हुई है तो सोने में सुहागा है. देखिए मिसेज राघव को, पूरी सिविल-लाइन में क्लियोपेट्रा बनी घूमती जिसको चाहती हैं, उसी को हैंग कर लेती हैं. अंडर सेक्रेटरी या सेक्रेटरी, हर कोई जीभ लपलपाते उनके पीछे घूमा करते हैं. ही कहिए, कस्तूरी है तभी तो सुगंध उड़ रही है, सुगंध खींच है. वह न हो तो सक्सेस मिलती हैं इतनी? किसी भी विभाग कोई भी काम उनके संकेत मात्र से हो जाता है. तनेजा और ल की श्रेणी से तो वे आगे की ही मानी जायेंगी. उनके एप्रोच, सक्सेस अल्ट्रामाडर्न हैं.

ज सिंह के चमचमाते चेहरे पर जरा देर को एक काली या का एक टुकड़ा बैठकर चला गया. होंठ कसे भी, कनपटियां नीं भी, लेकिन तत्काल ही भौंहों के साथ सब पूर्ववत हो गये. पने को संभाल गयीं. सामान्य होती हुई बोलीं, "इस तरह क्लियोपेट्रा वाली बात बहुत बड़ी सफलता नहीं है, मिसेज ण. देह को ही हर मंजिल का रास्ता बना देने का अगर औरत का इरादा हो गया हो तो यह सफलता जल्दी हासिल की कती है. जितनी जल्दी यह सफलता मिलती है, उतनी ही जल्दी भी होती है. हड्डियां मांस को कब तक कसे रख सकती हैं? खसोट में पता नहीं कितने वी. डी. डिजीज भीतर उठ आते कअप हों या दवाइयां, उसे नहीं छिपा सकते. फिर कोई सामने पूंछ नहीं हिलाता. अलशेशियन हों या देशी नस्ल के, मुंह घुमाकर निकल जाते हैं. इससे बेहतर तो मन की बात है, बे समय तक बनी रहती है. मन का सुख देह को भी जलाता और लंबे समय तक पराजय की भावना से अलग रखता है. हकर मिसेज सिंह बेड रूम में चली गयीं और थोड़ी ही देर ाभी हिलाते हुए बाहर आ गयीं. दोनों उठ खड़ी हुईं. मिसेज आशुतोष ने अपने जूड़े को ऐडजस्ट किया. चांदी की पिन के घुंघरू बजे और चुप हो गये. मिसेज रमण ने भी आईने में एक निगाह डाली और बालों पर हाथ फिरा दिया. तीनों पोर्टिको में आ गयीं. मिसेज सिंह ने कार स्टार्ट करते हुए दोनों को सामने ही बैठने का इशारा किया. कार बजरी पर रेंगती आगे बढ़ चली.

कार सड़क पर टर्न लेती हुई शहर की ओर बढ़ी जा रही थी. मिसेज सिंह बड़े उत्साह से कहे जा रही थीं, "दूसरों की आंखों में आ जाना, चर्चित हो जाना ही आज की नारी की बड़ी सफलता है. हम कहीं भी हों, पर दृष्टि बिंदु बनकर हों. यही मन को रास आता है. फिर सबके लिए देह को गोल्फ ग्राउंड बना देना दुर्गति ही करवाना है. सभी घृणा करें, मुंह फिरायें—उससे क्या फायदा! देखकर सामने वाले की तबीयत मस्त हो जाये, छाती जुड़ा जाये, यही हमारी बड़ी सफलता है. कालगर्ल, कैबरे डांसर या क्लियोपेट्रा आदि तो मूल्यांकन का बड़ा ही निचला तरीका है.

▣

मिसेज आशुतोष और रमण उनकी बातें सुन रही थीं. उनकी निगाहें सामने सूनी-सूनी सड़क पर लगी हुई थीं, जिन रास्तों पर निकलने के लिए भीड़ से भिड़ना पड़ता था. रेस्त्रां, पान के ठेले, चायघर, फुटपाथ और लोहे की रेलिंग वाले अड्डे सभी खामोश दिखाई पड़ रहे थे. लैंप-पोस्ट, नियॉन रॉड तो समय के पहले ही जल जाया करते थे. विज्ञापनों की तेज रोशनी तो हमेशा सामना करते मिलती थी. . . .पर. . .पर.

लगता है आज शहर बंद क्या है, अंधा हो गया है. कहीं कुछ दिख ही नहीं रहा, सूझ ही नहीं रहा और जो दिख रहा है, ओफ्.

जहां देखो वहां जानवर ही जानवर दिखाई पड़ रहे हैं. सड़क देख रहे हैं. प्रतीक्षा कर रहे हैं. बड़े-बड़े खौफनाक सांड़, जबरे बैल, कड़कीले हेलें (भैंसें) मुर्रा भैंसों के आगे नथुनों से किस कदर गुर्राती आवाजें निकाल रहे हैं! गाये झुंड बनाकर सरक रही हैं, पूंछ दबाये-दबाये आंखें हठीली होती जा रही हैं.

दरवाजे, शटर, शो केस, साइन बोर्ड अपने में घुटे-घुटे-से लग रहे हैं. कहीं कुछ दिख नहीं रहा, शोर-शराबा, हार्न, चीख सभी कहां चले गये हैं. इक्का-दुक्का चलने वाले लोग लगता है, रोशनी खोज रहे हैं. कहीं कुछ सूझ नहीं रहा है. कौन दिख रहा है? देखेगा भी कौन? लगता है अंधापन शहर के चारों तरफ फैल गया है. कोई बोलने-बतियाने वाला भी नहीं.

चौराहे पर मोड़ लेती कार जरा धीमे होकर फिर तेज हो गयी. मिसेज सिंह की सांसें भारी हो गयीं. माथे पर कितनी सारी लकीरें दौड़ लगाने लगीं. तीनों एक-दूसरे को देखने से बच रही थीं. मिसेज सिंह के हाथों लगा स्टियरिंग संभल नहीं रहा था. कमानीदार नथुने रह-रहकर कांपे जा रहे थे. पसीने की बूंदें भी झलक आयी थीं. वह हांफती-सी लग रही थीं और हार्न बजाये जा रही थीं, मानों जानवरों को हटाकर ही रहेंगी.

मोड़ पर बासबन के पास जाकर उन्होंने कार किनारे लगा दी. हैंडब्रेक लगा कर, सीट के नीचे से जिन और सोड़े की बोतलें और खाली गिलास वह देने लगीं. ☐

● सीताबर्डी, नागपुर, 440012

मुरली

• आलोक मेहता

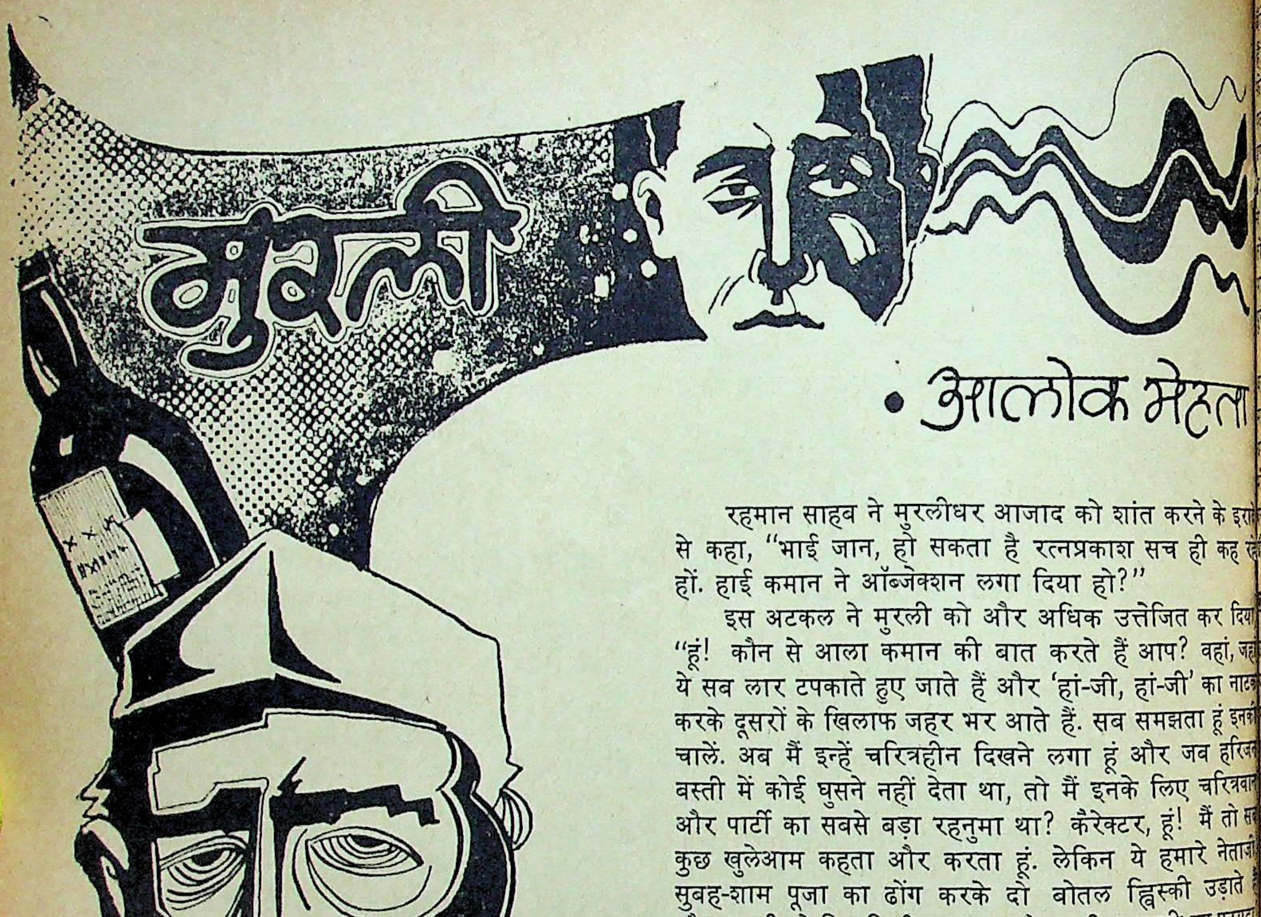

"अरे मियां, उठिये भी, क्या अभी से सोने लगे! कैबिनेट के नामों का फैसला हो जाये तो फिर आराम से दो-चार बरस सो लेना." रहमान साहब ने उस छोटे से कमरे में चल रही गर्मागर्म बहस से अलग हटकर किनारे पर आंखें बंद करके पैर पसार चुके मुरलीधर आजाद को महफिल में लाने के इरादे से कहा.

चुनाव की एक महीने की मारामारी और एक हफ्ते से पार्टी में चल रही खींचातानी से परेशान मुरली ने चिढ़कर कहा, "जो चाहो फैसला करवा दो रहमान साहब, देखता हूं, कैबिनेट से मेरा नाम कैसे कटता है! खाली लौंडों के बल पर राजनीति नहीं करता मैं और न ही भीख मांगता हूं. पच्चीस नाम अब भी जेब में हैं. कल राज्यपाल को अलग होने की लिस्ट दे दूं, तो ये आपका रत्नप्रकाश दुम हिलाता मेरे पीछे घूमता दिखेगा."

रहमान साहब ने मुरलीधर आजाद को शांत करने के इरा से कहा, "भाई जान, हो सकता है रत्नप्रकाश सच ही कह हों. हाई कमान ने ऑब्जेक्शन लगा दिया हो?"

इस अटकल ने मुरली को और अधिक उत्तेजित कर दिया "हूं! कौन से आला कमान की बात करते हैं आप? वहां, जह ये सब लार टपकाते हुए जाते हैं और 'हां-जी, हां-जी' का नाटक करके दूसरों के खिलाफ जहर भर आते हैं. सब समझता हूं इनकी चालें. अब मैं इन्हें चरित्रहीन दिखने लगा हूं और जब हरिज बस्ती में कोई घुसने नहीं देता था, तो मैं इनके लिए चरित्रवा और पार्टी का सबसे बड़ा रहनुमा था? कैरेक्टर, हूं! मैं तो स कुछ खुलेआम कहता और करता हूं. लेकिन ये हमारे नेताजी सुबह-शाम पूजा का ढोंग करके दो बोतल ह्विस्की उड़ाते और हर तीसरे दिन किसी असहाय औरत की मजबूरी का फायदा मैं तो पैसा देता हूं या दोस्ती रखता हूं और ये सब देते हैं—झू ख्वाब और टेंपरेरी नौकरी, ताकि जब तक नौकरी रहे, औरत इनके चंगुल से बाहर न जा पाये. पूछे हाई कमांड मुझसे ... या करें ये सबके सामने बात, इनकी तो ऐसी ...!"

"बस ... बस मियां, आप तो खफा हो गये. सो जाओ मुझ पर क्यों गर्म होते हो." रहमान साहब ने यहीं बात बंद करन ठीक समझा, वरना मुरली के साथ मिलकर नेता के खिला षडयंत्र करने के लिए कोई उनका ही नाम उछाल देगा और कैबिने में पका-पकाया नाम नीचे टपक जायेगा.

वह भी थोड़ा खिसककर चुपचाप आंखें मूंदकर बैठ ग सामने वाले कोने में आठ-दस विधायकों के बीच चल रही रा नीतिक बहस जारी थी—"डेमोक्रेसी, खाक है डेमोक्रेसी पार्टी जो नेता चाहे, वही होगा, तो फिर इतने नुमाइंदे चुने क्यों जा हैं? खाली हाथ खड़ा करने या अंगूठा लगाने के लिए?"

"नेता भी तो आपने-हमने मिलकर चुना है. किसने जबरदस् की थी. यदि उसकी ताकत का लोहा माना है, तो उसकी बा भी मानो."

"लेकिन उसे भी हमसे सलाह-मशविरा करना चाहिए— उसे सिंहासन पर बिठाकर राजा तो नहीं बनाया ...."

बस इसी बहस के कान में पड़ते-पड़ते रहमान साहब को सा

मुरली की जिंदगी आंखों में घूम गयी. पढ़ते थे, तब से जानते वह उसे. यूनिवर्सिटी की यूनियन के इलेक्शन में भी यह मिडिल जवान अपनी टांग अड़ाता रहता था. अपने इलाके के दस-बीस इसके यार थे और जिस गुट को हराना होता, ये लोग धौंस-ट, उठा-पटक और खून-खच्चर से पासा पलटकर ही छोड़ते. कई बार वाइस चांसलर की मेज पर छुरा गाड़ा था—जनाब और बात मनवाकर दम लिया था. एक बार लाठी-चार्ज हुआ, एक पुलिस सुपरिंटेंडेंट की छाती पर चढ़ बैठा और तब तक रता रहा, जब तक एक सिपाही ने अचानक इसके सिर पर ताकत से लाठी नहीं मारी.

इसके बाद पता लगा था, बेचारे के बाप की मौत हो गयी. नी का जोश दो जून की रोटी के लिए ठंडा होने लगा. बेवा और चार बहनें. बाप की कमाई होने तक कोई फिक्र नहीं की. लोगों के दरवाजे ताकने पड़ रहे थे. मजबूरी इंसान को गिराती है और चढ़ाती भी है. कहते हैं, उन दिनों मुरली भीगी बिल्ली गया था. गर्म खून को वक्त का इंतजार करना था. उसने रिस्थितियों के सामने सिर झुका दिया.

हीं दिनों पं. रत्नप्रकाश, जो अब मुख्यमंत्री हैं और तब निसिपल कमेटी के चेयरमैन की निगाह हरिजन बस्ती के नौजवान पर पड़ गयी. पंडिताई के कारण हरिजन बस्ती में उनकी अधिक ठहरने की इच्छा होती थी और न ही वे लोग व में उन्हें घास डालते थे. फिर उनका प्रतिद्वंद्वी रामदास इसका फायदा उठाता था. मुरलीधर आजाद, जो तब 'मुरली' था—उनके लिए दो शिकार कर सकता था. वक्त-की हाथापाई और चुनाव के समय हरिजन वोट.

एक शाम करीब आठ बजे उन्होंने मुरली को अपने बंगले बुलवाया. उस जैसे बकरे को हलाल करने से पहले उसे अच्छी दुलारा. पिता की मौत पर भरे गले से सहानुभूति प्रदर्शित और डेढ़ सौ रुपये महीने पर सेक्रेटरी बनने का प्रस्ताव रखा. इस प्रस्ताव पर चौंका, 'यह बाभन मुझे इतनी लिफ्ट मार रहा है? सुना तो था कि यह उसकी बिरादरी के लोगों बेहद नफरत करता है.' दिल की आवाज को दिमाग की हारिकता ने दबाया, 'लोगों की बातों से क्या करना है, सुनहरा मौका कब मिलेगा? फिर अपनी बस्ती-बिरादरी सामने नाक ऊंची हो जायेगी और रोब भी बढ़ जायेगा.'

मुरली ने झुककर रत्नप्रकाश 'जी' के पैर छुए और वायदा, "इस मुसीबत में पनाह देने के लिए मैं जिंदगी भर आपका नमंद रहूंगा." पंडित रत्नप्रकाश ने पीठ थपथपाकर उसे पास बैठाया और पहला सबक दिया—"मुरली, मेरे साथ करने के लिए एक बात याद रखना. अंदर की बात अंदर, बाहर की बाहर. दोनों में तुलना करके कभी अपना दिमाग मत करना. अच्छा छोड़ो, तो अब थोड़ी पूजा कर ली जाये."

"जी हां... जी हां, मुझे इजाजत दीजिए." मुरली ने झुकते विदा लेनी चाही.

"क्यों...अब तुम मेरे सक्रेटरी हो...दिन-रात, अच्छे-बुरे साथी." यह कहते हुए वह मुड़े और अलमारी में पुस्तकों की शेल्फ के पीछे से एक रंगीन बोतल निकालने लगे. फिर बोले, "देवि का प्रशाद लेने में तुम्हें परहेज तो नहीं?"

बेचारा नया-नया सेक्रेटरी कैसे मना करता! बोतल खुली और फिर खुलती ही रही. पांच-छह पैग के बाद रत्नप्रकाश भावुक होते चले गये—"क्या बिगाड़ा है मैंने इन लोगों का. हरिजन-बस्ती में सड़क, स्कूल, अस्पताल—क्या-क्या नहीं करवाया! लेकिन वह रामदास आग उगलता रहता है. भई, तुम्हारे लिए कुछ करूंगा, तो अपनी जात-बिरादरी के लोगों को ताक पर बैठाकर नहीं रख दूंगा. बताओ मुरली, क्या बुरा करता हूं मैं? क्यों तुम्हारी बस्ती के लोग मेरी जान के पीछे पड़े रहते हैं?"

मुरली पर एहसान और प्रशाद का पूरा असर था. उत्तेजित होकर बोला, "पंडितजी, बेफिक्र रहिए. रामदास क्या बेचता है आपके सामने! 'दिल्ली वालों' ने उसे चढ़ा दिया था, वरना कहीं झाड़ू लगाता ही दिखता. उसे तो मैं रास्ते पर लगा दूंगा. अब उस बस्ती में आप राजा की तरह जायेंगे और वह कमाल दिखाउंगा कि लोग सिर पर उठा लेंगे."

रत्नप्रकाश ने खुशी के मारे पूरी बोतल गिलास में उड़ेलते हुए पूछा, "सच मुरली! प्यारे सच, तो देखो मैं भी तुम्हें सिर पर बैठा लूंगा, इसी बात पर चियर्स."

गिलास से गिलास टकराये और फिर हर शाम टकराते ही रहे. इस नयी दोस्ती ने दोनों को चमकाने का मौका दिया. मुरली के चेअरमैन के सेक्रेटरी बन जाने के बाद लोग अपना काम निकलवाने के लिए रामदास के बजाय मुरली के दरवाजे पर पहुंचने लगे. नौकरी, तबादले, मकान के नक्शे, जमीन, टैक्स वगैरह-वगैरह.

उधर रत्नप्रकाश की सभाएं जमने लगीं. मुरली अपनी बस्ती के लोगों को 5-5 रुपये दिलवाकर बसों से बुलवा लेता. जय-जयकार के लिए एक इशारा काफी होता. दिल्ली से आने वाले नेता प्रसन्न होने लगे. पं. रत्नप्रकाश के लिए संसद का टिकट लगभग पक्का हो गया. चुनाव से पहले 'चेअरमैन' साहब का खजाना भरने के लिए 'सेक्रेटरी' ने धड़ाधड़ लोगों के कागजों पर दस्तखत करवाये—हिसाब-किताब बराबर किया जाता रहा. स्वाभाविक था, मुरली को उसका 'प्रशाद' भी मिल रहा था... लेकिन अब चेयरमैन की आंख के सामने नहीं?

▣

और चुनाव के दिनों में मुरली ने जी-जान लगाकर रत्नप्रकाश की हवा बनायी. विरोधियों की सभा में हुल्लड़, पत्थर, मारा-पीटी और 'पंडितजी' की सभा में—'जिंदाबाद', 'जीत के रहेगा रत्नप्रकाश' के नारे. मतदान से दो दिन पहले हरिजन बस्ती में रातोंरात शराब की बोतलों और कपड़ों के ढेर पहुंच गये. जितने वोट, उतने नोट. विरोधी घनश्याम सिंह के कार्यकर्ताओं से भिड़ाकर एक आदमी 'शहीद' कराकर आतंक फैला दिया.—"घनश्याम सिह ठाकुरवादी है. . .ब्राह्मणों, हरिजनों और मुसलमानों से नफरत करता है. उसे वोट दिया, तो समझो, तुम्हारी बस्ती भी जलेगी तो कोई नहीं पूछेगा." यों यह बात बाद में पता चली कि रत्नप्रकाश का जो कार्यकर्ता मरा था, उसे भीड़ में अपने ही गुट के आदमी ने चाकू मारा था, लेकिन चुनाव के बाद पंडितजी ने ले-देकर मामला दबवा दिया.

वोटिंग के दिन मुरली ने अपने पट्ठों को छोड़ दिया—'निगाह रखो, जिस घर का वोट हमारी तरफ न आ रहा हो, बाहर मत निकलने दो. निकले तो सीधे अपने बूथ पर पहुंचाओ. इस तरह चुनावी तिकड़मबाजी और बस्ती के लोगों पर किये गये एहसानों ने मुरली के रहनुमा रत्नप्रकाश को 'दिल्ली-दरबार' का एक रत्न बनवा दिया.

दिल्ली पहुंचकर रत्नप्रकाश ने प्रदेश के लिए रिजर्व कोटे से राज्यमंत्री का पद पाने में सफलता प्राप्त कर ली. उधर अपने निर्वाचन क्षेत्र में पलड़ा भारी रखने के लिए उन्होंने अधिकारियों और पार्टी वालों को आवश्यकतानुसार मीठी-कड़वी बातें कह-कहकर मुरली को पूरी तरह अपना राजनीतिक सेनापति बना लिया. बस फिर क्या था, मुरली के हर इशारे पर काम होने लगे. तबादला, नियुक्ति, जमीन का झगड़ा, इंडस्ट्री का लाइसेंस, बसों के परमिट. और हां, हरिजन बस्ती में अलग से कॉलेज खुल गया. चेअरमैन—रत्नप्रकाश और कर्ता-धर्ता सचिव—मुरली. सरकारी ग्रांट में तो कमी हो ही नहीं सकती थी. इसी तरह जमीन के पट्टे और मकानों के लिए ऋण की योजना आयी, तो मुरली की आंख के सामने से निकली हुई हर दर्खवास्त पर पंद्रह दिन में सारी कार्य-वाही पूरी होती गयी. इस समाज-कल्याण में अपनी गांठ खोले बगैर ही मुरली को भी मेन रोड के किनारे वाली दस बीघा जमीन मिल गयी और बस्ती के बीचोंबीच सबसे ऊंचा 'मुरली सदन' भी खड़ा हो गया.

देखते ही देखते यह नौबत आ गयी कि मुरली के सहारे के बिना 'सेंट्रल मिनिस्टर' पंडित रत्नप्रकाश अपने क्षेत्र में दस कदम भी आगे नहीं बढ़ सकते थे. वैसे भी केंद्र और प्रदेश की राजनीतिक खींचा-तानी में उलझे रहने के कारण वह आपने इलाके के लिए विशेष ध्यान नहीं दे सकते थे?

अगला चुनाव करीब आने पर एक शाम 'देवि पूजा' के वक्त 'प्रसाद' लेते-लेते मुरली ने अपने नेता से मुस्कराते हुए कहा, "पंडितजी, आखिर ये कब तक चलता रहेगा? आप शहर में राजा थे राजा. दिल्ली में रहकर हाई कमांड के पैर दबाते-दबाते और अधिकारियों के इशारों पर फाइलों में दस्तखत करते रहने से तो आपको जंग लग जायेगी."

पंडितजी जरा चौंके, "मुरली, मैं समझा नहीं, तुम कहना क्या चाहते हो?"

मुरली ने तवा गर्म देखकर छींटा मारा, "लीजिए, अब ये भी हमें समझाना पड़ेगा. आप तो हमारे गुरु हो महाराज. बहरहाल, हम कहना यही चाहते हैं कि छोड़ो दिल्ली-दरबार की सेवा और इस रियासत पर हुकूमत करने का इंतजाम करो. स्टेट का चीफ मिनिस्टर किसी प्राइम-मिनिस्टर से कम नहीं होता पंडितजी. यही नहीं, फिर दिल्ली की राजनीति में भी आपकी बात अधिक सुनी जायेगी.

पंडितजी दो मिनट के लिए बिल्कुल चुप हो गये. 'हूं' करके उन्होंने एक ही सांस में गिलास खाली कर दिया और बोले, "वाह मुरली! तुम तो उस्तादों के भी उस्ताद हो गये. ठीक है, इस बार मैं दिल्ली में साफ कह देने वाला हूं कि मुझे नहीं चाहिए संसद का टिकट...मुझे अपने क्षेत्र में रहकर काम करना है... लोगों के दुःख-दर्द दूर करने हैं. यदि मुझे पार्टी में रखना है, तो

•

—आसपास बिखरी कहानियां—

भगवान के नाम पर

◘ मार्टिन जौन 'अजनबी'

शहर के एकमात्र भव्य मंदिर के बाहर और भीतर दर्शनार्थियों की अपार भीड़ लगी हुई थी. शायद आज कोई धार्मिक उत्सव था. मंदिर से कुछ हटकर पूजन सामग्रियों के अलावा फल वगैरह की दुकानें पंक्तिबद्ध लगी हुई थीं.

सहसा चिथड़ों में लिपटी बूढ़ी काया वाली एक भिखारिन फलों की दूकान के समीप आ धमकी, "भला हो बेटा तेरा, भगवान के नाम पर एक केला दे दे!" फलवाला झुंझलाया और फौरन सफेद झूठ बोल दिया, "अभी जाओ, फालतू केला-वेला नहीं है." फिर जाने क्या सोचकर उसने केलों के ढेर से एक सड़ा केला उठाकर उस भिखारिन के हाथ में थमा दिया. केला लेकर भिखारिन ने क्षणांश उसे उलट-पुलट किया और अपने पिचके कटोरे से दस पैसे का एक सिक्का निकालकर फलवाले की ओर बढ़ाते हुए कहा, "ले, पैसे ले, एक केला और दे."

पैसे लेकर फलवाले ने एक बढ़िया-सा केला उसे थमा दिया. अचानक वह भिखारिन मंदिर की ओर मुड़ी और अपने लाठी तथा कटोरे को नीचे रखकर दोनों हथेलियों में केले को पकड़ कर कहने लगी, "देख ले भगवान, तेरे नाम पर मिला हुआ सड़ा केला और पैसे से खरीदा हुआ बढ़िया केला. अब बता, तू बड़ा है या पैसा!" और वह ठठाकर हंसने लगी. फलवाला अपने को व्यस्त प्रदर्शित करने के लिए केलों के ढेर पर अकारण हाथ फेरने लगा. ☐

एसेंबली का टिकट दे दीजिए."

"अर-र-र पंडितजी, आप तो सारा मामला ही चौपट कि दे रहे हैं. चुनाव से पहले ही पत्ते खोल देंगे, तो बन चुके ची मिनिस्टर. तब तो शायद आपको राजनीति छोड़कर हरिज बस्ती के मंदिर में भगवे कपड़े पहनकर कीर्तन ही करना पड़ेगा. मेरा मतलब तो यह है कि आप दिल्ली में ऐसा हिसाव-किता बैठाइए कि न केवल आपको पार्लियामेंट का टिकट मिले, ब एसेंबली के टिकटों के बंटवारे में आपकी राय पर विशेष ध्या दिया जाये. बस, फिर दोनों चुनावों के बाद जब यहां चीफ मिनिस्ट का चक्कर फंसे, तो आप ऊपर से टपक जाइए." यह कहक मुरली ने पंडित के गिलास को फिर से आधा भर दिया.

गिलास रखने की आवाज ने 'चीफ मिनिस्टरी' के खया में डूबे हुए पंडितजी का ध्यान खींचा. बोले, "बात तो तुम ठी कहते हो मुरली, लेकिन इधर यह रामदास और उधर ठा युधिष्ठिर सिंह कबसे मुख्यमंत्री की कुर्सी पर चौकड़ जमाये हैं, इनका क्या होगा?"

"इनका वही होगा पंडितजी, जो आप चाहेंगे." शेर तरह जोर से डकार लेते हुए मुरली ने कहा, "यदि दिल्ली

गपशप

मशवरा

ऑस्कर वाइल्ड

एक नवयुवक लेखक, जो बहुत बुद्धिमान और परिश्रमी था, मेरे पास आया और कहने लगा, "मैं एक मुद्दत से लिख रहा हूं और अब तक बहुत कुछ लिख चुका हूं, पर ऐसा लगता है कि देश के सभी समीक्षकों ने जैसे मेरे खिलाफ साजिश कर ली है, क्योंकि किसी भी समीक्षक ने मेरी रचनाओं पर आलोचना नहीं की. कृपया आप अपनी अमूल्य राय प्रदान करें."

मैंने उससे कहा "महाशय! मेरा मशवरा है कि आप भी इस साजिश में शामिल हो जायें!" □

आपकी गोटी फिट है, तो वहीं से इनका पत्ता साफ करवा दीजिए. रामदास का नाम कटवाकर मुझे एसेंबली का टिकट दिलवा दीजिए और युधिष्ठिर सिंह के गुट में फूट डलवा दीजिए. वो लक्ष्मण सिंह, कृपाल सिंह, छत्रपाल—सब तो खार खाये बैठे हैं—फिर उनकी वही फाइल भी जरा दिल्ली मंगवा लीजिए. अरे वही... मेडिकल कॉलेजों में भर्त्ती के लिये हुए 'रिश्वत कांड की.' सीधे पचास लाख का मामला था. सी.बी.आई. से जांच की बात ही चल निकली, तो चीफ मिनिस्टरी तो दूर रही, वह अपनी मेंबरी भी भीख की तरह मांगते घूमेगा और तब आप उनकी लिस्ट कूड़ेदान में फेंककर अपनी लिस्ट पास करवा लीजिएगा. वो बाद में कूद-फांद नहीं करे, इसलिए उस अकेले को उदारतापूर्वक टिकट दिलवा दीजिएगा. इसके बाद तो एसेंबली में आपका यह चेला दो सौ पच्चीस एम.एल.ए. की लाइन लगवाकर आपको सलामी न दिलवा दे, तो काला मुंह करके इसे दस जूते मारियेगा."

"ओ हो, क्या कह रहे हो मुरली!" पंडितजी ने शराब और सुंदर भविष्य की स्वप्निल गंगा में गोते लगाते हुए भावुकता के साथ कहा, "तुम मेरे सेक्रेटरी नहीं, मेरे देवता हो. तुम तो भगवान कृष्ण के साक्षात अवतार हो. मैं तो तुम्हारे बल पर जिंदा हूं और मुझे जिंदा रहना है. ... बस यह ठीक है ... तुमने यह शतरंज जमा दी है. अब देखो 6 महीने बाद इस प्रदेश पर हमारा ही डंका बजा करेगा. बोलो कैबिनेट में कौन-सा डिपार्टमेंट संभालोगे—होम, फाइनेंस या सोशल वेलफेयर!"

पंडितजी नशे में भावुक हो रहे थे और अपना दांव सही पड़ता देख मुरली का नशा उतर रहा था. उसने व्यावहारिक बनते हुए कहा, "पंडितजी, क्यों मजाक बनाते हो. आपके चरणों में जगह बनी रहे और अपने 'भाई-बंधुओं' की सेवा करने का अवसर... मेरे लिए तो इतना ही काफी है."

और सचमुच मुरली की बिछाई शतरंज की गोटें कमाल दिखाती रहीं—पंडितजी पार्लियामेंट का चुनाव जीते, एसेंबली के टिकटों में उनकी राय को विशेष महत्त्व मिलने से रामदास, युद्धिष्टिर सिंह और दस वर्षों से राज्य के मुख्यमंत्री बने हुए सोमनाथ शर्मा के पलड़े उलट गये. जिधर देखो, उधर पंडित रत्नप्रकाश का जादू छा गया. सो, एसेंबली के चुनाव में मुरली भी आसानी से एम.एल.ए. बन गया और अपने पुराने 10-15 परिचित पट्ठों को भी अलग-अलग क्षेत्रों से जितवा लाया. चुनाव में तो हवा चलनी चाहिए और जो हवा का फायदा उठा ले, वही असली राजनीतिज्ञ.

लेकिन मुरली यह सपने में भी नहीं सोच सकता था कि मुख्यमंत्री पद का कोहिनूरी 'ताज' पहनने के बाद पंडित रत्नप्रकाश उस सीढ़ी को गिराने में तनिक भी नहीं हिचकिचायेंगे, जिसके बल पर वह इस 'सिंहासन' को पाने में सफल हो सके थे. तभी तो तो मुख्यमंत्री पद की शपथ लेते ही पंडितजी ने अपने मंत्रिमंडल की लिस्ट बनाने के लिए मुरली से चर्चा करना कतई आवश्यक नहीं समझा. उन्हें यह महसूस होने लगा कि दिल्ली में रहने की बात और थी, प्रदेश में राज करने के लिए अपनी लगाम किसी और के हाथ में नहीं देनी चाहिए. फिर जो मुरली उनके केंद्रीय मंत्री बनने पर शहर का सर्वेसर्वा हो गया था, वह स्वयं होम मिनिस्टर बनाने के बाद अवसर मिलने पर पंडितजी को ही हवालात में रखवाने का इंतजाम कर सकता है. उनकी 'काले-धोले' की जीती-जागती फाइल तो वह खुद ही है.

सो, उन्होंने रातों-रात मुरली के पुराने दिनों के बलात्कार कांड की एक फाइल बनवाकर रामदास गुट के एक पट्ठे घनश्याम दास के हाथों दिल्ली दरबार तक पहुंचा दी. नतीजा यह है कि अब सबको एक-दूसरे से भिड़वाकर पं. रत्नप्रकाश कैबिनेट बनाने के लिए स्वतंत्र हैं और हाई कमांड के बहाने सबसे घुटने टिकवा रहे हैं.

▣

रहमान साहब, इन्हीं विचारों में डूबे थे कि बाहर जोर से हार्न बजने के साथ गाड़ी रुकने की आवाज आयी—एक हलचल-सी मच गयी. रहमान साहब कपड़े ठीक करके खड़े हो गये. बाहर से पंडित रत्नप्रकाश सबका अभिवादन स्वीकार करते हुए अंदर आये. चेहरे पर विजय की मुस्कान और गंभीरता के मिश्रित भाव.

उन्होंने देरी के लिए सबसे नाटकीय माफी मांगी और बताया, "मुझे हाई कमांड के अनुशासन की सीमाओं के सामने झुकना पड़ा है. लेकिन मेरा विश्वास है कि मेरे साथियों की शक्ति, मित्रता और सहयोग में कोई अंतर नहीं आयेगा." फिर उन्होंने सबसे अलग-अलग बातचीत करने की इच्छा व्यक्त की और सबसे पहले मुरली को ही अपने पास बुलाया. उसके गले में हाथ डालकर वह अंदर वाले कमरे में घुस गये.

पंद्रह मिनट बाद कमरे का दरवाजा खुला और अकेले मुरली बाहर आता दिखाई दिया—रहमान साहब ने आवाज लगायी, "मुबारक हो भाई! हमें भी खुशखबरी सुना दो! होम ले रहे हो या फाइनेंस." लेकिन मुरली तो जैसे कुछ सुन ही नहीं रहा था. वह नीची निगाह किये तेजी से कदम बढ़ाकर चला गया. सामने बैठे हुए चंदनसिंह ने स्थिति भांपते हुए कहा, "रहने दीजिए रहमान साहब, मुरली की तो 'मुरली' बज गयी! आप अपना राग संभालिए, नहीं वह भी हाथ से न निकल जाये." □

● ट्युनिशर स्ट्रासे-3/ 1606, 5 कोलोन-51 (पश्चिम जर्मनी)

आज उस घटना को हुए तीसरा दिन था. उससे मिलने कई लोग आ चुके थे. सभी ने एक ही प्रश्न किया था, "ओम! यह कैसे हो गया, किस तरह?...तुम दोनों में कोई दुश्मनी तो थी नहीं...फिर?" लेकिन इसका उत्तर उसके पास नहीं था, जो हो गया वह क्या था?

उसकी याद पीछे लौटने लगी. वह अपने गांव से दूर शहर के कॉलेज में पढ़ने जाया करता था. रास्ते में तरह-तरह की कल्पनाएं किया करता था. पंक्तियां जोड़-जोड़कर कविताएं लिखता था. उसकी एक कविता शहर की किसी पत्रिका में छपी भी थी. तब पहली बार उसे कितनी खुशी हुई थी. मित्र उसे कविजी कहते थे. और वह रजनी!! आज रजनी का, उसके मित्रों का वह कवि यहां सींखचों में बंद है.

घायल घोड़ा

· हरि मोहन

उसे याद आया कि वह नौकरी तलाशता रहा था, पर उसे कोई नौकरी नहीं मिली थी. एम. ए. किया था, फिर बी. एड. भी. वैसे रुचि उसकी साहित्य में थी और उसे चित्रकारी का भी शौक था. पर कहीं कोई किनारा नहीं---तीन-चार वर्ष ऐसे ही इधर-उधर इंटरव्यू देता रहा. पिताजी क्लर्क थे. बहुत मुश्किल से घर चल रहा था. जैसे-तैसे करके उसे इतना पढ़ाया, पर सब व्यर्थ. पिताजी फिर भी आशावान थे. कहा करते थे–'ईश्वर कभी वह दिन भी आयेगा, जब तुम्हें उपयुक्त नौकरी मिलेगी, पर उनकी यह आशा, आशा ही थी, किसी बांझ स्त्री की आशा की तरह. अंदर से वे खोखले हो चले थे और वह स्वयं भी बहुत निराश हो गया था--- अब किसी इंटरव्यू में जाने के लिए पिताजी से पैसे मांगने में उसे शर्म महसूस होती थी.

इसी दौर में एक दिन उसने अपना घर छोड़ दिया. दस-पंद्रह दिन ऐसे ही भटकता रहा. कई शहरों में दफ्तर-दफ्तर...पर बेकार. उसे पत्रिकाओं से लगाव था. सोचा था, किसी पत्रिका के दफ्तर में जाकर शायद कोई काम मिल जाये ...प्रूफ रीडरी या ऐसा ही कोई काम...लेकिन किसी ने कहीं नहीं पूछा. वह एक दिन पार्क में अकेला बैठा था. एक वृद्ध सज्जन घूमने आये थे---बातों ही बातों में पता चला कि वे स्टेट बैंक में मैनेजर हैं. उसने पांव पकड़े. उन्हें दया आ गयी और उसे बैंक में गेट-कीपर की जगह दे दी. कहा, "कुछ दिनों बाद क्लर्क के लिए फॉर्म भर देना, फिलहाल जगह नहीं है." वह तैयार हो गया था. चलो बुरे दिनों में यही सही!

गेट पर खाली बैठा क्या करे? वह कई दिन सोचता रहा. कुर्सी से उठकर बाहर, बाहर से फिर कुर्सी पर या बैंक के लंच टाइम में चाय-पानी, बस यही काम था उसका. खाकी वर्दी मिली थी. पहले-पहल शर्म तो आयी पहनने में, पर सोचा यहां उसे कौन जानता है. एक बंदूक थी उसके पास. कहां कलम और ब्रश, कहां बंदूक! वह एक दिन सोचता-सोचता हंस रहा था. पर थी उसके हाथ में बंदूक ही. जेब में कलम टटोली, बैंक के खाली छ

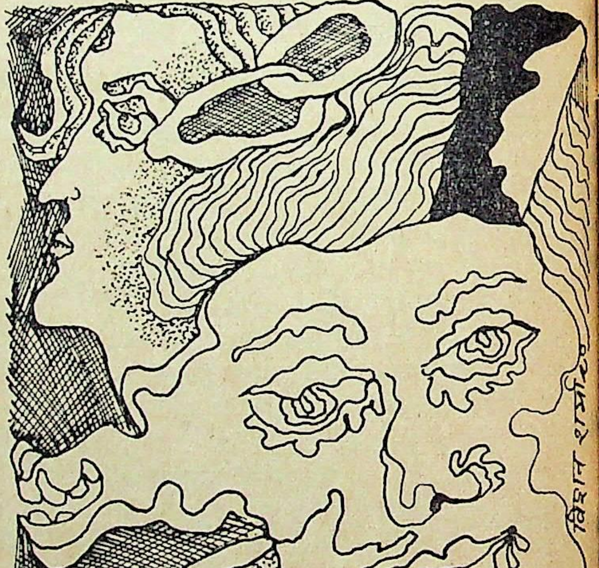

फॉर्म लेकर ऐसे ही कुछ लिखता-बनाता रहा, फिर उन्हें फाड़कर कूड़ेदान में फेंक दिया. प्रायः वह दिनभर बैठा-बैठा यही करता.

लेकिन आखिर कब तक यह जिंदगी चलेगी? ये भी कोई जिंदगी है? रोजाना बैंक आना, दिन भर खाली बैठना, शाम जो कैश को सुरक्षित स्थान तक पहुंचाने साथ जाना, बस. कई बार जमने की सोची, कई बार मन उखड़ा. अन्ततः वह वहीं था. उसी कुर्सी पर. वह पैसे का तमाशा देखता. पैसे निकालने, जमा करने वाले आते. लेकिन ज्यादातर भीड़ महीने के पहले दो-तीन ही दिन रहती. वह देखता...सोचता...सोचता-देखता. पर वहां कुछ था? कुछ नहीं था. सब बेमतलब. पैसा देखने की चीज नहीं, इस्तेमाल की है. लोग आते हैं, ढेर से नोट लेकर चले जाते हैं, कभी जमा कराने ढेर से नोट ले आते हैं—वह सोचने लगा, मेरे पास भी इतने पैसे होते तो खूब खर्च करता.

* * *

उसे इस जगह पर अभी एक महीना भी पूरा नहीं हुआ था —पहले चार-छह दिन तो किसी तरह कट गये. फिर निरंतर तबियत का एहसास. आज रामचंद्र उसके पास सुस्ताने बैठ गया . रामचंद्र उसी बैंक में चपरासी था. बड़ी-बड़ी मूंछें, छोटी-छोटी आंखें, चेहरा कभी साफ नहीं. ठोड़ी पर कड़े खुरदरे बाल. शुरू से ही जबसे उसने देखा है, वह ऐसी ही हैं. पर है बड़ा रंगीन तबियत का आदमी. बोला—

"कउन देस से आये हो बाबू?"

"अपनी कोई जगह नहीं भाई!" वह बोला.

"अरे! कहां फंसि गये! कहीं बड़े बाबू बनते."

"कहां रामचंद्र! अपन कहां बड़े बाबू बन सकत हैं?" वह लहजे में बोला.

"कइसे नहीं बन सकते? पढ़े-लिखे तो हौ न?"

"छोड़ो रामचंद्र!" उसने उसे टालना चाहा, किंतु रामचंद्र टलने वाला था, बोला, "अच्छा, बाबू तबियत तो नाहीं लगत होइहै?"

"हां, देखो कोशिश कर रहा हूं."

"अरे! कोसिस! ससुरी तबियत भी कइसी चीज है?... परसाद लेव, तब देखौ चमत्कार....सुरू-सुरू मां हमहूं बड़ा रहा"...और उसने पैंट की जेब में से एक चूनेदानी जैसी निकाली...और एक काला-सा टुकड़ा लेकर उसके हाथ रख दिया. बोला, ले लेव बाबू, पानी का गिलास पी लेव, फिर ...!"

वह सोचने लगा, क्या करे क्या न करे? रामचंद्र ने भी एक ले लिया था...तभी तनेजा बाबू ने आवाज फेंकी, "राम-" और रामचंद्र लापरवाही से 'आया जी' कहकर अपने काम गया. उसने वह परसाद वाला टुकड़ा ले लिया जो उसे लगा.

उस दिन रामचंद्र नहीं आया था. शायद छुट्टी पर था. उसने प्रतीक्षा की. उसे वह प्रसाद आज फिर चाहिए था. वह सोचने यह अफीम भी क्या चीज है. कहां मिलेगी, कल जरूर पूछेगा और खरीद लेगा. दिन तो आराम से कट जाया करेगा. उसने जेब में कलम टटोली. आज कलम भी नहीं थी. वह बैठा-बैठा उंगली से ही अपने हाथ पर कुछ बनाता रहा. फिर मन उचटा. बाहर की ओर गया. कूलर से पानी पीकर फिर वापस आ गया. भीड़ आज अधिक नहीं थी. अपनी जगह पर बैठा वह बोर हो रहा था. उसने बंदूक पर हाथ फेरा ऊपर से नीचे, नीचे से ऊपर. कई बार. हत्थों पर धूल थी, साफ की. नाल पर मक्खी की बीट थी, खुरच दी. फिर देखने लगा कारतूसों की बेल्ट. कारतूस! ... ये कितनों की ही जान ले सकते हैं. मन में सोचता, कहीं ये नकली तो नहीं हैं. उसने एक कारतूस निकाला. उलट-पलटकर देखने लगा ...भारी था. उसने इतने गौर से कभी कारतूस नहीं देखा था. ...असली ही होगा. बंदूक खोली. लोड कर ली. उसे पता नहीं था, वह क्या कर रहा है. वह तो जैसे अपने घर में था. जैसे इंटरव्यू से लौटा हो. जीना चढ़कर थका हुआ या हांफते हुए घोड़े की तरह...जैसे किसी घोड़े पर बोझा बहुत हो और वह हांफता हुआ दौड़ रहा हो....अचानक हिन-हिनाकर उसने दुलत्ती झाड़ी ...सालो मुझे नौकरी क्यों नहीं देते मेरी!

वह घोड़े की तरह हांफने लगा. उसकी उंगली का दबाव बंदूक के घोड़े पर बढ़ता गया...और धमाके के साथ उसका ध्यान टूटा—गोली छूट गयी थी. लोग इकट्ठे हो गये. सामने बैठने वाला क्लर्क रमेश लोगों के बीच था...गोली उसी को लगी थी.

वह धक् से रह गया. उसने आंखें फाड़कर देखा, लेकिन जो सामने था, सच था, सच के सिवा कुछ नहीं. उसके माथे पर पसीना झलक आया.

पुलिस आयी. मैनेजर ने बार-बार पूछा ... "ओम तुमने ऐसा क्यों किया? मुझे तुम भले लड़के लगे थे"...पर उसके पास कोई उत्तर नहीं था.

उस दिन की घटना को तीन दिन हो गये. वह यहीं कैद है. पता नहीं बेचारे रमेश बाबू के घर क्या हाल हुआ होगा! इस आशंका से उसकी चेतना में कहीं सांप रेंग गया.

पीछे लोग कहते थे ..'रमेश और उसमें कोई दुश्मनी थी? ...'वह रमेश बाबू के घर आया-जाया करता था...कोई कहा-सुनी हो गयी होगी, उसकी पत्नी'...कोई कहता...'वह भी ग्रेजुएट था. सोचा होगा इसे खत्म कर दूं, तो बाद में इस जगह पर मेरा चांस हो जायेगा'...पर वही जानता है ऐसा कुछ नहीं था. उसे खुद पता नहीं था, ऐसा क्यों हो गया? कैसे हो गया?

बचपन में पिताजी कहते थे...'हर समय कुछ न कुछ करता ही रहता है. या तो मिकेनिक बनेगा या इंजीनियर....हाथ रुकता ही नहीं कभी इसका.'

अगले दिन पता लगा कि रमेश बाबू बुरी तरह घायल हुए हैं, गोली निकल गयी है...पर...आगे क्या होगा? उसे स्वयं भी तो नहीं पता कि उसका अपना क्या होगा. वह भी तो कहीं गहरे में घायल हुआ है. सहसा उसे रजनी की याद आयी, जो मीरा बाई की पंक्तियां सुनती थी—'घायल की गति घायल जाने.' पर यहां उसे कौन जान रहा है?

और वह पुनः घोड़े की तरह हांफ-हांफ करने लगा!

● **पो. बॉक्स—20, श्रीनगर, गढ़वाल, (उ. प्र.)**

पखवारे की पुस्तकें

'साहित्य भवन' इलाहाबाद द्वारा बंगला उपन्यासों के हिंदी में अनुवादों की नयी शुरुआत हुई है, और ऐसे उपन्यासों का चयन भी किया है जो आधुनिक युग के हर तरह के पाठक के लिए जिज्ञासा और कौतूहल का केंद्र साबित हो सकें.

आशापूर्णा देवी के दो उपन्यास क्रमशः **'तीन छंद'** और **'राजकन्या'** (दोनों एक ही जिल्द में), रमापद चौधरी का **'लज्जा'** और चितरंजन माइती का **'मरियम'**, इसी श्रृंखला प्रकाशित हुए हैं.

आशापूर्णा देवी और चितरंजन माइती के उपन्यासों के अनुवाद अलका मुखोपाध्याय

बंगला उपन्यासों में सामाजिक जीवन

▣ श्रीराम वर्मा

ने किये हैं और रमापद चौधरी के उपन्यास का अनुवाद विमल मिश्र ने किया है. अनुवादकों ने सहज ही बंगला भाषा के हिंदी में खप जाने वाले अंदाज को बरकरार **रखा है,** इससे हिंदी समृद्ध हुई है. खासकर चितरंजन माइती की काव्य भाषा का अंदाज महत्त्व का है. कहीं-कहीं आशापूर्णा देवी और रमापद चौधरी के वाक्य और शब्द नया अर्थ-संभार देते प्रतीत होते हैं.

आशापूर्ण देवी कथा-संरचना और संवाद योजना में इतनी सिद्धहस्त हैं कि उनके दोनों उपन्यासों में कथा-प्रयोग एक लीला या नाटक जैसे लगते हैं. **'तीन छंद'** वास्तव में आजादी से पहले की, आजादी की, आजादी के बाद की पीढ़ियों की गाथा है, जिसके सारे सूत्र कविराज नीलकंठ के पास हैं. कविराज नीलकंठ एक ऐसे भारतीय चरित्र हैं, जिनमें अहिंसा , हिंसा, क्रांति, विस्फोट, मुक्ति, प्रेम, प्रेम के अनेक रूप, बचपन, किशोरावस्था, यौवन, वृद्धावस्था, सभी कुछ अतीत और वर्तमान में, आदर्श और यथार्थ के आमने-सामने है—भोक्ता से अधिक द्रष्टा हैं. उनके भीतर अनेक चरित्र उदित-अस्त होते गये हैं. जीवन का सत्त्व और सत उनके पास है. वे इतिहास का छोटी-छोटी कथाओं के माध्यम से अनुलेखन करते हैं. उनकी श्रोता तपु भी रुग्ण होने के बावजूद स्वयं स्मृतिजीवी और कथाजीवी होने लगती है. वह जिंदगी को निचोड़ने के लिए ललक उठती है. छोटे-छोटे चरित्रों में अपार मार्मिकता है. उसी में एक अंतिम चरित्र है—संचयिता, जो मनोपटल पर अंकित हो जाता है.

'राजकन्या' बहुत ललित उपन्यास है. इसे लंबी कहानी भी कह सकते हैं. एक किशोर और एक किशोरी के मर्मघटित प्रेम का संवाद-छल से भरा सुंदर नाटक. किशोरी संपन्न वर्ग की, किशोर विपन्न वर्ग का. किशोरी विपन्नता का नाटक करते-करते एक दिन अपने नेपथ्य से बाहर उद्घाटित हो जाती है. लेखिका ने बड़ी संजीदगी भरी नाटकीयता से अंत बड़ा सुखद किया है. इस उपन्यास में मित-कथन का सौंदर्य है और संवादों में नाटकीयता और कौतूहल. दोनों के इस प्रेमपूर्ण मर्म के भीतर करुण प्रसंग बहुत जीवंत हैं. इन दो के अतिरिक्त बाबा का चरित्र सबसे जानदार है.

रमापद चौधरी के **'लज्जा'** में अर्थ का किस तरह प्रभाव पड़ता है, किस तरह व्यक्ति वर्ग चरित्र बनकर परस्पर पहचान में भारी भूल कर बैठता है, दिखाया गया है. रेणु की अस्वाभाविक मनःस्थिति और उसके कभी के जटिलतम व्यवहार, स्नेह और उदारता की मांग करते हैं, लेकिन सब उसे पागल करार ही नहीं देते, पागल भेज भी आते हैं. उसका व्यक्तित्व और दबा हुआ है. उस में यौवनजन्य भी है. घोर उपेक्षा और दुत्कार में अकेली स्नेहवंचित छूट गयी है. उप का हर पात्र अपने को एक-दूसरे का अज पाता है. अपनत्व की सारी टूटी कड़ियों जोड़ने वाला भोला भुक्तभोगी एक द्रष्टा यथानाम यथागुण—अनिमेष. वह अपाहि का देवता है. वह सबके दुःख भोगता लेकिन अपना दुःख बांट नहीं पाता.

चितरंजन माइती के **'मरियम'** पटभूमि प्राकृतिक अतः चित्रात्मक काव्यात्मक है. उनके संवाद और विव भी काव्यात्मक हैं. एक चित्रकार 'मरियम' नाम की रिसेप्शनिस्ट लड़की ऐंसी प्रेम-गाथा, जिसमें साथ रहने की नि तरता कट-पिट गयी है. मरियम शारीरि तौर पर मातृत्व से वंचित है, इसलिए नहीं करती. चित्रकार की पत्नी अपने के प्रति आसक्त है और अपनी सं को छोड़कर गुरु के पास जाती है. संतान गुरु की है. चित्रकार संतान को अपना लेता है. मरियम विव विच्छिन्न है, चित्रकार के प्रति आदरपू आसक्त है. अंततः दोनों को जोड़ने कड़ी बनती है—वही संतान. चित्रकार पास चित्र हैं और मरियम के पास मम आत्मनिर्भरता और अपराजेय धैर्य, दोनों के अलावा एक है—मंसूर, नि निष्कपट, निस्वार्थ अटूट प्रेम है.

उपन्यास में परिवेश, संवाद और घट क्रम का अंग बनकर प्रस्तुत हुआ है.

चर्चित पुस्तकें

तीन छंद, राजकन्या

● आशापूर्णा देवी

मूल्य : 24 रुपये

लज्जा

● रमापद चौधरी

मूल्य : 15 रुपये

मरियम

● चितरंजन माइती

मूल्य : 12.50 रुपये

पूंजी और अर्थ के बीच आदमी की भूमिका!

कथात्मकता की सारी परंपरागत शर्तों को तोड़कर हिंदी कहानी को बिल्कुल नंगा और बेनकाब करने तथा से कलावादिता से अलग जीवन के साथ जोड़ने वाले समकालीन कथाकारों के मधुकर सिंह का स्वर रूखड़ेपन और जुझारूपन के कारण महत्त्वपूर्ण हैं. नंजय वर्मा के शब्दों में: "इनकी कहानियां थात्मकता के मोह से मुक्त तो हैं ही, वे नी अपरंपरागत भी हैं कि कई बार हानियां ही नहीं लगती--सच्चाई के न दहकते हुए शोलों की तरह लगता है न्हें जहां रखो, वहीं जलाते हैं और अपनी गह बनाते हैं. जिंदगी और कहानी की मा-रेखाएं आपस में घुल-मिल गयी हैं र यथार्थ अपनी सारी रूखड़ता और गी के साथ मूर्त हो गया है. . .इनका य जिंदगी की सीधी रगड़ से पैदा ता है और इसीलिए किसी भी कलात्मक साहित्यक एटीट्यूट का आग्रह लेकर चलता है. ये कहानियां जिंदगी को -तराश या बना-संवारकर नहीं, उसकी हीनता और अव्यवस्था के सारे दबावों ाथ पेश करना चाहती है."

वस्तुतः मधुकर सिंह की कहानियां ादी के आसपास उपजी उस पीढ़ी की ानियां हैं जो मौजूदा पूंजी-संचालित स्था के शिकंजे से मुक्त होने के लिए षरत हैं. इनकी अधिकांश कहानियां और उसके आसपास के मुक्ति-संघर्ष कहानियां हैं जिनका जन्म कल्पना की नों से नहीं, बल्कि जीवन की रगड़ हुआ है. ये कहानियां मिलेजुले रूप क कैनवास हैं जिस पर सामयिक नैतिक, सामाजिक, आर्थिक जीवन हर समस्या कहीं तो संपूर्णता में और कोण-विशेष से बखूबी उभरी है. तीखा व्यंग्य जगह-जगह पर मन-ष्क में खरोचें उत्पन्न करता है और प्रत्येक कहानी के अंत में इतना झटका है कि पाठक का विचार क्रियाशील का रूप अख्तियार कर लेता है यही वह स्थल है जहां लेखक की ता पाठक की पक्षधरता बन जाती है.

हला पाठ' मधुकर सिंह की चुनी हुई इक्कीस कहानियों का संकलन है, जिसमें 'बाढ़' 'भाई का जख्म', 'दुश्मन', 'पूरा सन्नाटा', 'लहू पुकारे', 'कवि भुनेसर मास्टर', 'हरिजन सेवक', 'स्वर्ग का विश्वास', जैसी चर्चित कहानियों के अलावा 'पंच परमेश्वर का दुख' 'सुबल की मैंस', 'माटी कहे कुम्हार से', 'पहला पाठ' जैसी नयी कहानियां भी हैं. इन सारी कहानियों में मधुकर सिंह के लेखकीय सोच में क्रमशः घटित होता बदलाव साफ-बखूबी आगे की ओर विकसित हुआ है. **'भाई का जख्म' 'बाढ़'** तथा **'दुश्मन'** में ग्रामीण परिवेश और उसकी विसंगतियों को समझने-परखने में उनकी अंतर्दृष्टि और भी ज्यादा तीव्र हो उठी है. निस्संदेह ये कहानियां मधुकर सिंह की पूर्ववर्ती कहानियों की तुलना में तल्ख, उग्र और नुकीली हैं.

▣ उमाशंकर गांधी

'बाढ़' में भगवती प्रशासन के भ्रष्टाचार के खिलाफ जेहाद छेड़ती है. भगवती के लिए 'बाढ़' उतनी खतरनाक नहीं है. खतरा आदमी को सरकारी वर्ग से ज्यादा है. भगवती की लड़ाई सही अर्थों में आम आदमी की लड़ाई होनी चाहिए और पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलनी चाहिए. **'उसका सपना'** मधुकर सिंह की लेखन-यात्रा का प्रतिमान है. नयी पीढ़ी की छिछली मानसिकता और उसकी खोखली सोचावट दिन-ब-दिन उसे खाती जा रही है. केशो युवा पीढ़ी के उन सदस्यों का प्रतिनिधित्व करता है जो विचारहीन होकर मात्र रंगीन कल्पनाओं में जीते हैं और सच्चाइयों को या तो नकार जाते हैं या उनसे मुकर जाते हैं. केशो की पराजय अंततः आज के सुप्त युवा वर्ग की ही पराजय है. युवा वर्ग का बौद्धिक खोखलापन **'कालखंड'** में भी साफ-साफ उभरा है.

ग्रामीण परिवेश की विसंगतियों और सामाजिक व्यवस्था की भ्रांतियां **'लहू पुकारे आदमी'** में भी साफ तौर पर अन्वेषित हुई है. सामाजिक शोषण का इससे अच्छा उदाहरण और क्या हो सकता है कि समाज का उच्च वर्ग, निम्न वर्ग के प्रगति-मार्ग को अवरुद्ध करने के लिए अपनी पूरी शक्ति लगा दे? ग्रामीण सामाजिक व्यवस्था का आर्थिक पक्ष **'रक्तबीज'** में भी खुलकर आया है. अकाल का भय रामधन और गंगा काकी को भी उतना ही है जितना जीवन ठाकुर को, अंतर सिर्फ इतना है कि जीवन ठाकुर को अन्न-संचय की संभावित कटौती का भय है, लेकिन रामधन और गंगा काकी के लिए वर्षा जीवन-मृत्यु का प्रश्न है. दोनों वर्गों की संवेदना में यही और साफ अलगाव है. वर्ग-विभाजन की रेखाएं **'दुश्मन'**, **'लहू पुकारे आदमी'** की तरह **'रक्तबीज'** में भी स्पष्ट रूप में द्रष्टव्य है.

दुर्गंध में भी सर्वहारा वर्ग की ही संवेदना मुखरित हुई है. यदि मालकिन की बड़ी हवेली, मालकिन की न रहकर सफेदपोश नेताओं और उच्च वर्गीय सदस्यों की हो जाती है तो इससे पूरी व्यवस्था के साथ कौन-सा फर्क आ जाता है? पूंजी और अर्थ किस तरह आदमी को आदमी से अलग कर देते हैं, इस तथ्य को **'फिलहाल'** ने प्रत्यक्ष तौर पर उद्घाटित किया है. **'घर'** आदमी के छोटा पड़ते जाने की स्थिति को खुले रूप में चित्रित करती है. असंख्य मजदूरों को नेतृत्व देने वाला नायक प्रतिक्रियावादी छद्मवेशी शक्तियों के बीच घिरकर अपने को कमजोर महसूस करने लगता है और मात्र अपनी सहनशीलता को ही अपने 'चरित्र' की ही संपत्ति मानकर संतोष कर लेता है. वस्तुतः, यह भी विद्रोह की ही एक स्थिति है और कहानी का नायक विवशताओं के बीच इस स्थिति को पूरी तरह से झेलता है.

इन कहानियों के आधार पर निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि मानवीय यातनाओं को रचनात्मकता के स्तर पर मधुकर सिंह ने ईमानदारी के साथ उतारा है. ☐

चर्चित पुस्तक

पहला पाठ

● मधुकर सिंह

वाणी प्रकाशन 61-एफ, कमला नगर
दिल्ली-7, मूल्य : 20 रुपये.

हलचल

कहानी ही मंचित होती रही

नाट्य संस्था 'रंगशिविर' लखनऊ की ओर से 21 अक्तूबर को 'सारिका' की कहानी प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कृत युवा कथाकार संजीव की बहुचर्चित कहानी 'अपराध' का मंचन अरुण केडी के निर्देशन में बाल रवींद्रलय में किया गया.

नक्सली माहौल के बहाने समाज और सत्ता-व्यवस्था के बीच खुलासा तौर पर चलने-फलने वाली अपराधवृत्ति को विश्लेषित करती इस विस्फोटक कहानी 'अपराध' और उसके सारे संवादों तथा विवरण में निहित दृश्यों-बिंबों को निर्देशक समेत अभिनेता प्रहलाद शुक्ल, रामप्रकाश, दर्शिका, कीर्ति, अतुल 'शिव' राजवीर, सत्यव्रत, अरुण, राकेश, अमिताभ, वागीश, रवि और अशोक आदि ने दोहरी-तिहरी भूमिकाओं में अभिनय करते हुए साकार करने की सफल कोशिश की.

मंचसज्जा और वेशभूषा के पारंपरिक तामझाम से कटकर स्वयं कलाकारों द्वारा तैयार किये गये दृश्य (मकड़ी के जाले से घिरा कंट्रोलिंग टावर और मृत्यु का दृश्य) प्रभावशाली रहे. इस प्रस्तुति की एक विशेषता यह भी रही कि इसमें नाटक कहीं नहीं दिखा, मंच पर कहानी ही मंचित होती रही.

प्रहलाद शुक्ल, अरुण केडी और राकेश ने अभिनय की ऊंचाई को स्पर्श किया, शेष कलाकार सामान्य रहे. राकेश व सुशील के ध्वनि प्रभाव ने स्वाभाविक असर पैदा किया तथा राजवीर की आलोक व्यंजना ने प्रस्तुति को जीवंतता प्रदान की.

प्रस्तुति के अंत में 'रंगशिविर' ने दर्शकों के साथ सीधा संवाद कायम करने, उनके ताजा विचारों व सुझावों के साथ प्रस्तुति के तत्काल बाद ही ताजी प्रतिक्रिया के लिए खुली बातचीत भी करने का नया और महत्वपूर्ण सिलसिला भी अपनी इस प्रस्तुति के साथ शुरू किया. ☐

● दिनेश 'दीनू'

संस्कृति पुरस्कार
SANSKRITI
AWARDS
1980

युवा प्रतिभा पुरस्कृत

पुरस्कारों की परंपरा, विशेष रूप से कला के क्षेत्र में कुछ ऐसी रही है कि किसी वृद्ध कलाकार को ही जब उसकी रचनात्मकता--कुछ अपवादों को छोड़कर, लगभग चुक जाती हैं, मिलता है. इधर संस्कृति प्रतिष्ठान ने इस दिशा में एक नया कार्य किया है. ये संस्कृति के विभिन्न क्षेत्रों--सृजनात्मक साहित्य, पत्रकारिता, ललितकला, रंगमंच और विशिष्ट सामाजिक उपलब्धि के क्षेत्र में हर वर्ष एक-एक पुरस्कार देते हैं. ये पुरस्कार 35 वर्ष से कम आयु के प्रतिभावान कलाकारों को दिये जाते हैं, पर इनका क्षेत्र दिल्ली तक ही सीमित है. हम आशा करते हैं कि देश के अन्य क्षेत्रों के युवाओं के लिए भी इस प्रकार के पुरस्कार दिये जाने की परंपरा बनेगी. इस वर्ष की पुरस्कृत प्रतिभाएं है :

चित्र में बायें से--प्रिया देवी (सृजनात्मक साहित्य), बनवारी (पत्रकारिता), गोगी सरोजपाल (ललितकला), एम. के. रैना (रंगमंच) तथा राजीव सेठी (विशिष्ट सामाजिक उपलब्धि) 'सारिका' परिवार की ओर से सभी पुरस्कृत कलाकारों को बधाई.

हिंदी दिवस या प्रायश्चित दिवस !

हिंदी-दिवस के अवसर पर भारतीय स्टेट बैंक, क्षेत्रीय कार्यालय, जयपुर द्वारा 'राजभाषा : अपेक्षाएं एवं उपलब्धिगत कठिनाइयां' विषय पर विचार-गोष्ठी हुई.

बैंक के मुख्य क्षेत्रीय प्रबंधक श्री गोवर्धन कथूरिया तथा भाषा विभाग के निदेशक श्री कलानाथ शास्त्री ने दावा किया कि हिंदी किसी भी भाषा से उन्नीस नहीं है, किंतु उन्होंने केंद्र और राज्य सरकारों के काम में हिंदी के अपर्याप्त प्रचार-प्रसार पर दुःख व्यक्त किया. पंजाब नेशनल बैंक के जयपुर स्थित आंचलिक कार्यालय में हिंदी अधिकारी श्री श्रीराम शर्मा का विचार था कि वर्तमान में हिंदी को अपेक्षाकृत कम महत्व दिया जा रहा है.

देवताओं की भाषा संस्कृत को हिंदी की जननी बताते हुए राजस्थान विश्वविद्यालय के संस्कृत विभागाध्यक्ष डा. हरीराम आचार्य ने कहा कि इस समय हिंदी का प्रयो मजबूरन होता है, आदतन नहीं. इसके वा केंद्रीय सचिवालय हिंदी परिषद्, भारती रिज़र्व बैंक, जयपुर के सचिव कृष्णद शर्मा ने कहा कि हिंदी को वह सम्मान औ आत्मीयता नहीं मिल पा रही है, जिस वह वास्तव में अधिकारिणी है.

सहायक परिवहन आयुक्त कुमा शमीम अख्तर को हिंदी प्रेमियों से शिकायत है कि वे हिंदी को लोगों पर जब दस्ती थोपने में लगे रहते हैं.

हिंदी दिवस को प्राश्चित-दिवस के में मनाने की सलाह देते हुए प्रभुनारा नाट्याचार्य ने इस बात पर क्षोभ व्य किया कि हम मात्र एक घंटे भी वि विदेशी भाषा की सहायता लिये हिंदी बात नहीं कर सकते.

गोष्ठी के मुख्य वक्ता कन्हैया

ड्राइंग-रूम में वटवृक्ष

उदयपुर में आदिवासी बालक-बालिकाओं में अपनी संस्कृति तथा अपने आदिम जीवन की विशेषताओं के प्रति द विश्वास प्रतिष्ठित कराने की दृष्टि राजस्थान में पहली बार 'आदिवासी ध संस्थान' ने समारोह आयोजित किया, जिसमें 130 भील बालक-बालिकाओं भाग लिया. तीन दिन के इस समारोह भीलों के सांस्कृतिक एवं कलात्मक जीवन को उजागर करने वाली विविध खेलकूद, तीरंदाजी, मेंहदी तथा भूमि मांडणा, चित्रकारी, नृत्य, गीत तथा खेल-तमाशों की प्रतियोगिताएं एवं वार्ता-आख्यान आयोजित किये गये. इस समारोह वे बालक-बालिकाएं भी आये, जिन्होंने राष्ट्रीय एवं प्रांतीय स्तर पर तीरंदाजी में स्वर्ण, रजत एवं कांस्य पदक प्राप्त किये. 0 मीटर रेंज में तीरंदाजी का राष्ट्रीय स्वर्ण पदक पाने वाला तेरह वर्षीय लजी तथा दिन-रात नाच मग्न रहती ी समारोह के आकर्षण रहे.

जनजाति विकास विभाग के आयुक्त विजय वर्मा ने ऐसे आयोजनों को शहरों प्रस्तुत करना 'जंगल के वटवृक्ष को ी ड्राइंग रूम में सजाना' कहा. ☐

डा. महेंद्र भानावत

न ने कहा कि अन्य भाषाभाषियों द्वारा हिंदी को कठिन भाषा प्रचारित करना क सुनियोजित षड़यंत्र है. उन्होंने हिंदी भाषी लोगों को सलाह दी कि उन्हें पहले षड़यंत्र से उत्पन्न मुश्किलों से बचना गा, तदुपरांत आंतरिक झंझटों से. आंतरिक झंझटों से उनका आशय अन्य भाषाओं के शब्दों के प्रयोग से था.

अंत में गोष्ठी के अध्यक्ष भारतीय स्टेट क के क्षेत्रीय प्रबंधक श्रीरामनाथ साईं ने रामचरितमानस का उदाहरण हुए कहा कि हिंदी में इतने महान वि, लेखक, विद्वान आदि हैं कि उनके तित्व और व्यक्तित्व के सम्मोहन मात्र लोगों में हिंदी के प्रति प्यार पैदा किया सकता है. गोष्ठी का संचालन आकाशवाणी, जयपुर में कार्यक्रम अधिकारी श्री द्र वोहरा ने किया ☐

कुमार टाक

पत्र-पत्रिकाएं

एक नन्हा-सा प्रयास

हिंदी में कला-पत्रिकाएं 'न' के बराबर रही हैं. विशुद्ध रूप से चित्रकला और मूर्तिकला को समर्पित पत्रिकाएं तो बहुत ही कम. कलाओं और उनके कलाकारों के संबंध में जानकारी विभिन्न पत्रिकाओं में समाहित स्तंभों के जरिये ही मिल पाती है. दिल्ली से श्रीमती विमल बाथम के संपादन में 'कला संगम' त्रैमासिक की सहयोगी मासिक पत्रिका के रूप में 'कला और कलाकार' (60 बी. डी. डी. ए. फ्लैट्स, नयी दिल्ली-14) का प्रकाशन उस दिशा में एक नन्हा-सा प्रयास है, जिसके जरिये भारतीय कला जगत की हलचल का हलका सा अंदाजा पाठक को जरूर मिल जाता है. इस नन्हीं सी शुरूआत के लिए साधुवाद! ☐

सीमित साधनों के बीच

विज्ञान जैसे-जैसे जिंदगी के नजदीक आता जा रहा है, वैसे वैसे उसकी जानकारी आम पाठकों को देना जरूरी होता जा रहा है. इस संदर्भ में वैज्ञानिक पत्रिकाओं की कमी खलती है. आज हिंदी में सिर्फ दो वैज्ञानिक पत्रिकाएं ही सामने हैं---एक है बंबई से प्रकाशित होने वाली त्रैमासिक 'वैज्ञानिक' (संपादक : अरविंद) और दूसरी दिल्ली से प्रकाशित होने वाली भारत सरकार की पत्रिका 'विज्ञान प्रगति' पर ये पत्रिकाएं हिंदी पाठकों में वैज्ञानिक समझ पैदा करने के लिए पर्याप्त नहीं हैं.

अपने तीखे तेवरों और बेलाग टिप्पणियों के कारण साहित्यकारों के बीच जानी जाने वाले पत्रिका 'शनीचर' (सं: ललित कुमार शर्मा 'ललित') का कथांक अभी अभी आया है, जिसका शनीचरीय बनाम संपादकीय पढ़कर स्वर्गीय पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' की उग्रबयानी ताजा हो जाती है. प्रस्तुत अंक में ठाकुरप्रसाद सिंह, सुभाष पंत, चंद्रप्रकाश पांडेय तथा सुशील शुक्ल की कहानियों के अलावा समकालीन हिंदी कहानी पर डॉ. मालती शर्मा का लेख महत्वपूर्ण है.

धार और डालमिया नगर जैसे छोटे कस्बों से 'यथार्थ' (संपादक : स्वप्निल शर्मा) तथा 'सोनमाटी' (संपादक : कृष्ण किसलय) जैसी पत्रिकाएं निकलती हैं. 'यथार्थ' के ताजा अंक में प्रेमचंद की प्रासंगिकता पर कपिल तिवारी का लेख समसामयिक स्थितियों पर प्रकाश डालता है. 'सोनमाटी' का यह अंक प्रेमचंद अंक है, जिसमें डा. रामविलास शर्मा, डा. बालेंदु शेखर तिवारी तथा कृष्ण कमलेश के लेख प्रेमचंद को और नजदीक से समझने में मदद करते हैं. ये पत्रिकाएं अपने सीमित साधनों में जो काम कर रही हैं, उसके लिए साधुवाद की हकदार हैं. ☐

●बलराम

उन ने कहा था

● सेक्स मेरे लिए संपूर्णता के साथ उसकी पुष्टि है, जिसे मैं प्यार करती हूं. प्यार के बिना मेरे लिए सेक्स असंभव है. मैं मानवतावादी हूं, मानव मन पर मुग्ध हूं और उसे समझना चाहती हूं.

▣ अमृता प्रीतम (ईव्स वीकली)

● मस्जिदों के बाहर बाजे बजते हैं तो इबादत में खलल पड़ जाता है. मंदिरों में शंख और घड़ियाल न बजाओ तो पूजा नहीं होती. उपासकों की मंजिल एक ही है. एक ही चक्की का आटा खाते हुए दोनों एक ही जगह से रवाना होते हैं, पर एक का रास्ता दूसरे के रास्ते का रोड़ा बन जाता है.

▣ किट्टू, (रविवार)

● अधिकांश पत्रकार आसानी से खरीदी जा सकने वाली वेश्याओं की तरह हैं.

▣ अरुण शौरी (सोसायटी)

● यह सत्य किसी से छिपा नहीं है कि मध्य प्रदेश सरकार ने थोक खरीद उन्हीं पुस्तकों की की है, जिनके लेखक कुछ साहित्यिक अफसरों की मंडली के हैं या जो मध्य प्रदेश सरकार में हैं या उन प्रकाशकों के यहां से छपे हैं, जिनकी उन अफसरों से सांठगांठ है.

▣ रामदरश मिश्र (संचेतना)

साक्षात्कार : पृष्ठ १९ से जारी

लिखते समय आप किन्हीं 'मास्टर्स' को पढ़ना पसंद करते हैं?

'मास्टर्स' को भी और नये लेखकों को भी मैं बराबर पढ़ता रहता हूं.

जब आप कहानी लिख रहे होते हैं तो उस बीच क्या आपको यह जरूरत महसूस होती है कि इस बीच मुझे इन-इन लेखकों को पढ़ना चाहिए.

उस समय मुझे ऐसी जरूरत नहीं महसूस होती.

ऐतिहासिक कथा लेखन में आपकी खासी रुचि है और वह इस बीच बहुत कम हो रहा है. इसके पीछे क्या कारण हैं? इतिहास पढ़ने की लोगों की दृष्टि खो गयी है या इतिहास को उल्था करके अपने लिए इस्तेमाल करने का लेखन में जो जरिया बनता है, वह लोग नहीं कर पा रहे हैं?

यह तो सही है कि आजकल जागरूक व्यक्ति के लिए इतिहास की दृष्टि अवश्य भ्रमपूर्ण-सी हो गयी है. जिन मूल्यों और स्थितियों के बीच से हम गुजर रहे हैं उनमें इतिहास के पुनर्लेखन और इतिहास की पुनर्व्याख्या की जरूरत कदम-कदम पर महसूस हो रही है, कल इतिहास पढ़ते समय जो बात बड़ी गौरवपूर्ण लगती थी आज ऐसा लगता है कि सचमुच वह बात क्या उतनी गौरवपूर्ण है. इसलिए इतिहास को सही संदर्भों में समझाने की दृष्टि में भ्रम पैदा हुआ है, स्वयं इतिहासकारों में हुआ है. लेखक को भी यदि इतिहास की सही समझ नहीं है तो उसमें भी यह भ्रम हो जाना स्वाभाविक है. इसलिए ऐतिहासिक लेखन आज कठिन भी है और जोखिम भरा भी. दूसरी एक बात भी है. हिंदी कहानी में पंद्रह-बीस वर्ष पहले कुछ लोगों ने यह बात भी कही कि ऐतिहासिक लेखन समकालीन यथार्थ से पलायन का लेखन है. कुछ इस कारण से समाकालीन लेखन का माहौल ऐतिहासिक लेखन के विरोध में चला गया.

मेरी इतिहास में रुचि है और मैं ऐतिहासिक उपन्यास लिखना चाहता हूं.

इतिहास के किस हिस्से में आपकी विशेष रुचि है?

प्रागैतिहासिक काल में भी मेरी रुचि है और मध्ययुग—आठवीं शती से अठारहवीं शती तक के भारतीय इतिहास में मेरी विशेष रुचि है.

आप बुरा न मानें तो कहूं कि आप पर लोगों ने अक्सर जनसंघी लेबल चिपकाया. जब आपकी सोच पर कुछ लोग इस तरह की चर्चाएं जोड़ देते हैं तो कैसा लगता है?

मुझे खुशी है कि आपने यह बात पूछी. एक बात कहूं, मेरे लेखन में से या मेरे विचारों में से आज तक कभी किसी ने जनसंघी दृष्टिकोण ढूंढ़कर दिखाने की कोशिश नहीं की. यह बात बड़ी दुर्भाग्यपूर्ण है कि व्यक्ति पर, उसके लेखन पर, उसकी सोच पर, उसके विचारों पर विश्वास न करके लोग विश्वास उस बात पर करना चाहते हैं जो उसके संबंध में कुत्सित ढंग से प्रचारित किया जाता है. एक बात मैं यहां स्वीकार कर लूं. कानपुर के अपने विद्यार्थी जीवन में मेरा संबंध राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और जनसंघ से रहा. धीरे-धीरे मैंने अनुभव किया कि जिन धर्मनिरपेक्ष, जनतांत्रिक और व्यापक दृष्टिकोण वाले मूल्यों के आधार पर हम अपने देश का निर्माण करना चाहते हैं उनमें संघ की कट्टर हिंदूवादी विचारधारा सहायक नहीं है, बल्कि विघटनकारी है. पंजाब में वर्षों तक संघ/जनसंघ का दृष्टिकोण सिक्ख-विरोधी रहा और अपने 'हिंदूपन' की झोंक में उन्होंने अपनी मातृभाषा पंजाबी तक का विरोध किया. मुझे लगा कि जिस तलवार को धार देने में मैं कहीं सहायक हो रहा हूं, वह तलवार तो मेरी ही गर्दन काटने को तैयार है. उस समय (सन् 1950-55 के आसपास) पंजाब में भाषा के संबंध में इस प्रकार की जो सांप्रदायिक आवाज संघ/जनसंघ के मंचों से उठायी जा रही थी, मैंने उसका कड़े शब्दों में विरोध किया था. मेरा संबंध था, इससे मैंने कभी इन्कार नहीं किया, वर्षों से मैं उस विचारधारा का पोषक या समर्थक नहीं हूं. यह मेरे अपने स्वतंत्र विचार और चिंतन की भूमिका पर है.

और सबसे बड़ी बात तो यह है कि यदि संघ/जनसंघ हिंदू सांप्रदायिकता से जुड़ी संस्थाएं हैं तो मैं—एक सिक्ख, जो हिंदू नहीं है, हिंदू सांप्रदायिकता से क्यों जुड़ूंगा? सांप्रदायिकता से जुड़ना होगा तो मैं अकाली बनूंगा. परंतु मैं सभी प्रकार की सांप्रदायिक सोच और नीतियों के विरुद्ध हूं और मानता हूं कि इस विभिन्न धर्मों, मतों, भाषाओं परंपराओं और संस्कृतियों के देश में धार्मिक, जातिगत या भाषाई सांप्रदायिक सोच इस देश की प्रगति और एकता में बहुत हानिकारक सिद्ध होगी.

> सरकारों की खरीद नीति इस तरह की नहीं होनी चाहिए कि लेखकों/प्रकाशकों को यह महसूस कराया जाये कि तुम्हें खरीदा जा रहा है. इस नीति से लेखकों में राज्याश्रित होने के भाव को वढ़ावा मिलता है. इसका विरोध होना चाहिए.

इस संबंध में एक बात और कहूंगा, वे लोग जो अपने आपको प्रगतिशील और असांप्रदायिक कहते हैं और मुझे सांप्रदायिक कहते हैं, उन्हें मैं भी अच्छी तरह जानता हूं. यह बात मैं बड़े विश्वास से कह सकता हूं कि ये लोग अंदर से अत्यंत संकीर्ण मनोवृत्ति वाले लोग हैं. इनमें बेहिसाब जातिगत संकीर्णता मैंने देखी है जो किसी भी सांप्रदायिक भाव वाले व्यक्ति के सिर को झुका देगी. ये मुझे कट्टर ब्राह्मण, ठाकुर, वैश्य, कायस्थ नजर आते हैं. ये लोग अपनी जातिगत संकीर्णताओं का भरसक पोषण करते हैं और उसका लाभ उठाते हैं साथ ही बहुत प्रगतिशील होने का दावा भी करते हैं.

अगले अंक में

"सारी लड़ाई ताकत और दौलत की लड़ाई है. अब इस लड़ाई को चाहे धर्म के नाम पर लड़ो, चाहे देश के नाम पर . . ."

इसी तरह के सवालों से जूझती डॉ. महीप सिंह की ताजा कहानी

सहमे हुए

अगला अंक

दिसंबर—८० : अंक—१

-कृपया, मेरा काम कर दें!
-क्यों, आप मेरे क्या लगते हैं?
-जी, कुछ नहीं !
-कोई सिफारिश है ? . . .

फारिश, जान-पहचान और रिश्वत! . . .आम तौर र यही माना जाने लगा है कि इनके बिना आज निया में कोई काम नहीं बनता. यह भ्रष्टाचार हम र इतना हावी क्यों हो गया है और इसका शिकंजा में जीते-जागते किस गर्त में धकेल रहा है? इस बार ढ़िए भ्रष्टाचार, सांप्रदायिकता, दंगा-फसाद, कारी, बदसलूकी जैसे अमूर्त पिशाचों से साक्षात्कार रती—

दीप सिंह, सुधा चंदोला, मनहर चौहान, सुरेंद्र रोड़ा, सागर सरहदी, मुकेश सेठी, चंद्रमोहन प्रधान की सशक्त कहानियां

दा सही सलामत है

वींद्र कालिया के अजीबो-गरीब चरित्रों से कथात्मक रिचय करवाते धारावाही उपन्यास की अगली किस्त

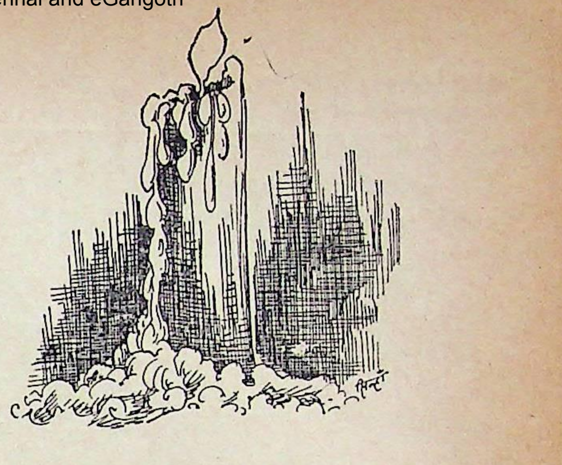

सारिका

घर-परिवार और पुस्तकालय का स्थायी महत्त्व

- अनजानी इतिहास कथाएं

पतझड़ का अंतिम गुलाब

1774! जब भारत पर कब्जा करने के लिए फ्रांस और इंग्लैंड परस्पर जूझ रहे थे. तब मात्र पंद्रह वर्षीय फ्रांसीसी मैडम टैलीरेंड ने तहलका मचा दिया. **बाला दुबे** की जबानी पढ़िए उसी मैडम के उत्थान और पतन की रोमांचक कहानी.

हम कहें गांव की गाथा

शहरों की तेज-रफ्तार और बारौनक जिंदगी से दूर भारत के गांवों में क्या रहा है? वहां लोग कैसे रहते हैं? कैसे जीते हैं? शहर के बारे में उनकी क्या राय है? वे अपने बारे में क्या सोचते हैं? आदि बहुत-सी बातों के आधार और कारण रेखांकित करती **शिवसागर मित्र** की रिपोर्ताज कथा. इन्हीं संदर्भों में किसानी जीवन को रेखांकित करती इनकी एक रिपोर्ताज कथा आप 'प्रेमचंद विशेषांक' में पढ़ चुके हैं.

आपबीती

खुद पर गुजरी वे लोमहर्षक घटनाएं, जिनमें आप मौत के मुंह से वापस आ गये—पाठकों की आपबीतियों में समाये साहस को लाखों लोगों के बांटने वाला ताजा स्तंभ.

पाठकों का पन्ना, जरिया-नजरिया, तस्वीर बोलती है, लघुकथाएं, गजलें, गपशप, कार्टून, पखवारे की पुस्तकें, हलचल, पत्र-पत्रिकाएं, पढ़ते-पढ़ते, उनने कहा था—आदि स्थायी स्तंभों सहित—

दो रुपये में एक पूरी किताब—रोचक, ज्ञानवर्द्धक और मनोरंजक

सबसे कम क़ीमत में सबसे ज़्यादा सफ़ाई

SWASTIK
SWASTIK Detergent Washing Bar
नीली
स्वस्तिक
डिटर्जेण्ट धुलाई की बार
कम से कम दाम ज़्यादा से ज़्यादा काम

दूसरी सब डिटर्जेण्ट बार से कहीं ज़्यादा अच्छी, कहीं ज़्यादा किफ़ायती और साबुनों से ११/२ गुना ज़्यादा शक्तिशाली!

नीली स्वस्तिक डिटर्जेण्ट धुलाई की बार

एक बार स्वस्तिक बार...फिर हमेशा स्वस्तिक बार

Shilpi DM 9 A/80 Hin

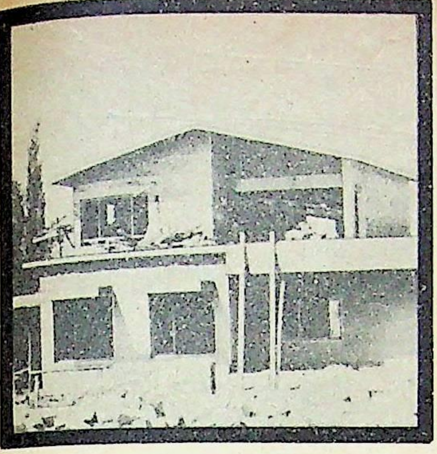

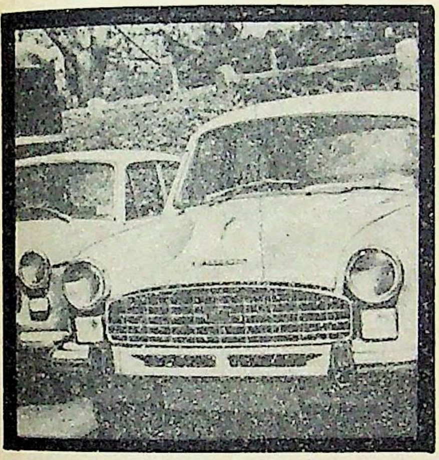

आप और
कौन-कौन से
खर्चों के लिए
योजना
बना रहे हैं?

केनरा बैंक आपकी योजनाएँ सफल बनाता है.

भविष्य के लिए योजनाएँ बनाकर और बचत कर आप जो चाहें खरीद सकते हैं. केनरा बैंक की **कामधेनु जमा योजना** की मदद से आप भविष्य के खर्चों की योजना बना सकते हैं.

आप कार, स्कूटर या अपना घर लेना चाहते हैं ?
बच्चों की शिक्षा या उनके विवाह के लिए चिन्तित हैं ?
तो **कामधेनु योजना** आपके काम आयेगी... आपका धन बढ़ाकर ज्यादा रकम दिलायेगी.

इसमें आपको अपनी ज़रूरत की रकम का छोटा-सा हिस्सा ही जमा करना होगा. बस **कामधेनु** में जमा की जानेवाली रकम और अवधि का फैसला आपको करना है. आपको ब्याज पर ब्याज मिलेगा... हर महीने अच्छी कमाई होगी और रकम दूनी से भी ज्यादा हो जायेगी.

अधिक जानकारी के लिए केनरा बैंक की नज़दीकी शाखा में आइए. हमारी अन्य विशेष जमा योजनाएँ हैं :
विद्यानिधि, **निरंतर** और **बालक्षेम**

कामधेनु जमा योजना

केनरा बैंक

(एक राष्ट्रीयकृत बैंक)
देश भर में १२०० से भी अधिक शाखाएँ.

GROWING TO SERVE · SERVING TO GROW · CANARA BANK

maa CB 5 Hin B '80

मैन ऐंड कंपनी लिमिटेड, स्वत्वाधिकारी के लिए रमेशचन्द्र द्वारा नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, 10 दरियागंज, नयी दिल्ली-110002 से मुद्रित व प्रकाशित. जनरल मैनेजर :
नरेजा. पंजीकृत कार्यालय : डा. दादाभाई नौरोजी रोड, बंबई-400001. शाखाएँ : 7, बहादुरशाह जफर मार्ग, नयी दिल्ली-110002; 139, आश्रम रोड,
-380009; 105/7ए, एस. एन. बनर्जी रोड, कलकत्ता-700014. कार्यालय : 13/1, गवर्नमेंट प्लेस ईस्ट, कलकत्ता-700069; 63, मोंटियथ रोड, इग्मोर,
-600008; 407-1, तीरथ भवन, क्वार्टर गेट, पुणे-411002; [illegible] मिडिलसेक्स, लंदन, यू. के., लंदन टेलीफोन : 01-903-9696.

पंजीयत सं. D-(C)-779
पूर्व शुल्क के बिना डाक में डालने
की अनुमति-लाइसेंस सं. U-89

everest/80/PP/333 hn

MADRAS
Regn. No. G6/TN/MS(C)/

क्र.'1
254
2/12/80

नन्हे मुन्नों की मुस्कान से आबाद है जहान

पारले
PARLE
Gluco
DELICIOUS AND NOURISHING
PARLE
Gluco
BISCUITS

उन्हे दीजिये प्यार भरी देखभाल

पारले ग्लुको– स्वाद में निराले, शक्ति से भरपूर

दूध, गेहूँ, शक्कर और ग्लूकोज़ के
स्वाद और पौष्टिक गुणों से भरपूर.

वर्ल्ड सिलेक्शन
पारितोषिक विजे

पारले ग्लुको भारत के सबसे ज़्यादा बिकनेवाले बिस्किट

पाक्षिक

सारिका

वर्ष:२०; अंक:२७४

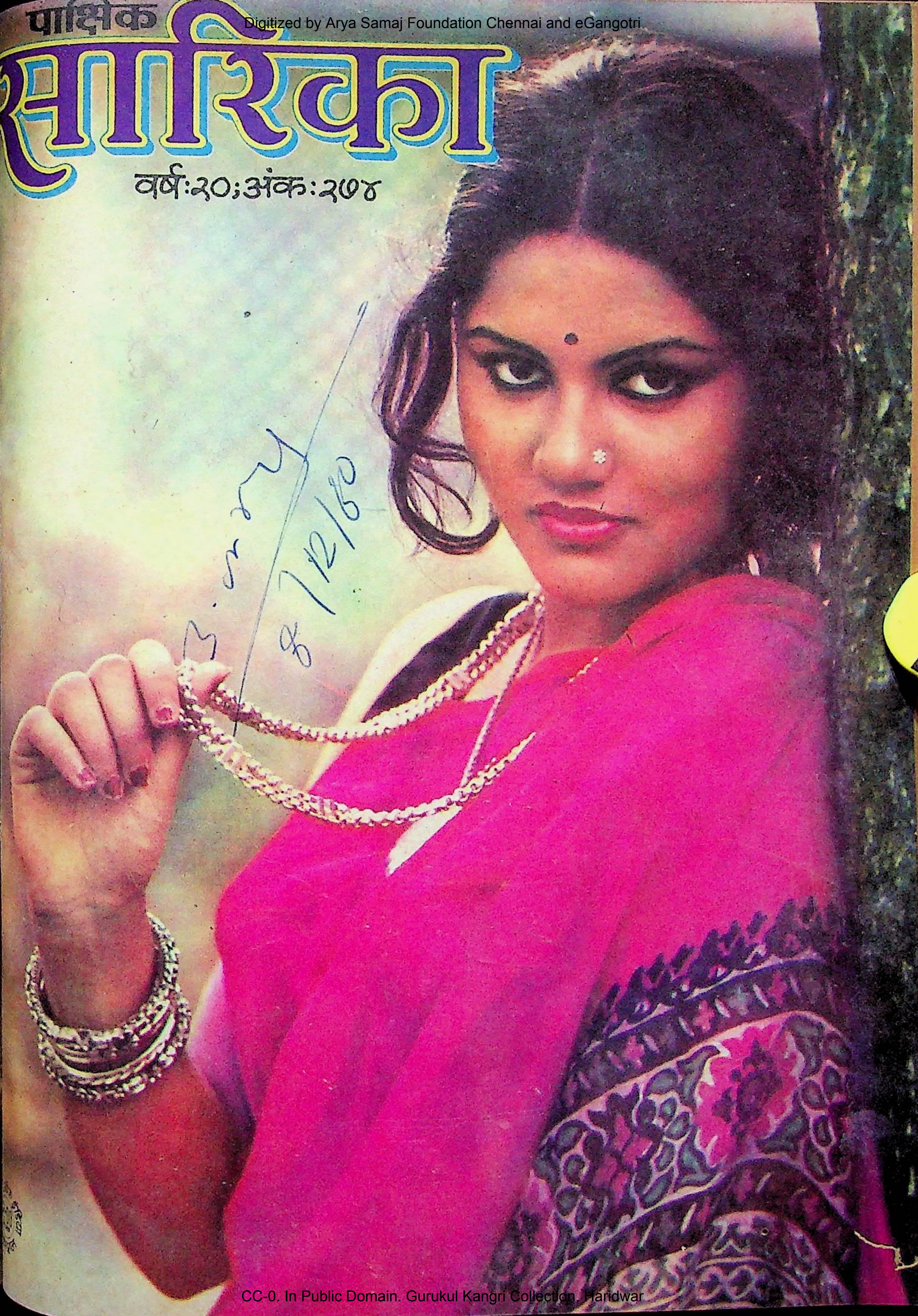

8/12/80

Nestle
NESCAFE
instant coffee
Made from finest 100% pure coffee
उत्साह भरे जीवन
के लिये
नेस्कैफे®
दुनिया भर में सबसे
ज्यादा बिकने वाली
इन्स्टैन्ट कॉफी
एकमात्र इन्स्टैन्ट कॉफी
जो १००% शुद्ध कॉफी से बनी है

इलाहाबाद बैंक की डबल डिपॉजिट योजना से मुझे होता है—दोहरा फायदा।

जिसका मतलब है मेरा धन दो तरह से बढ़ रहा है!

जी हाँ, इलाहाबाद बैंक की डबल डिपॉजिट योजना से दुगुना फायदा होता है : मुझे मिलता है एक अच्छा-खासा ब्याज—और ब्याज की रकम हर तिमाही मेरे मूलधन में जोड़ दी जाती है जिससे अगली तिमाही में मुझे और ज्यादा रकम पर ब्याज मिलता है।

और यदि मैं अपनी रकम ७ वर्ष के लिये जमा करू तो मेरा मूलधन लगभग दुगुना हो जायेगा।

* जमा की अधिकतम अवधि १० वर्ष—१,००० रुपये के गुणितों में
* बैंक जमा पर प्राप्य ३,००० रुपये तक का वार्षिक ब्याज आयकर से मुक्त है
* इसके साथ ही बैंक में जमा १,५०,००० रुपयें तक की राशि सम्पत्ति कर से मुक्त है
* अर्जित ब्याज का प्रमाणपत्र हर वर्ष दिया जाता है।

आइये, अपनी बचत से इलाहाबाद बैंक में दोहरा फायदा उठाइये। अधिक जानकारी के लिये किसी भी निकटतम शाखा में पधारिये।

इलाहाबाद बैंक

आपका अपना बैंक

(भारत सरकार का एक प्रतिष्ठान)

U-AB-4A Hin

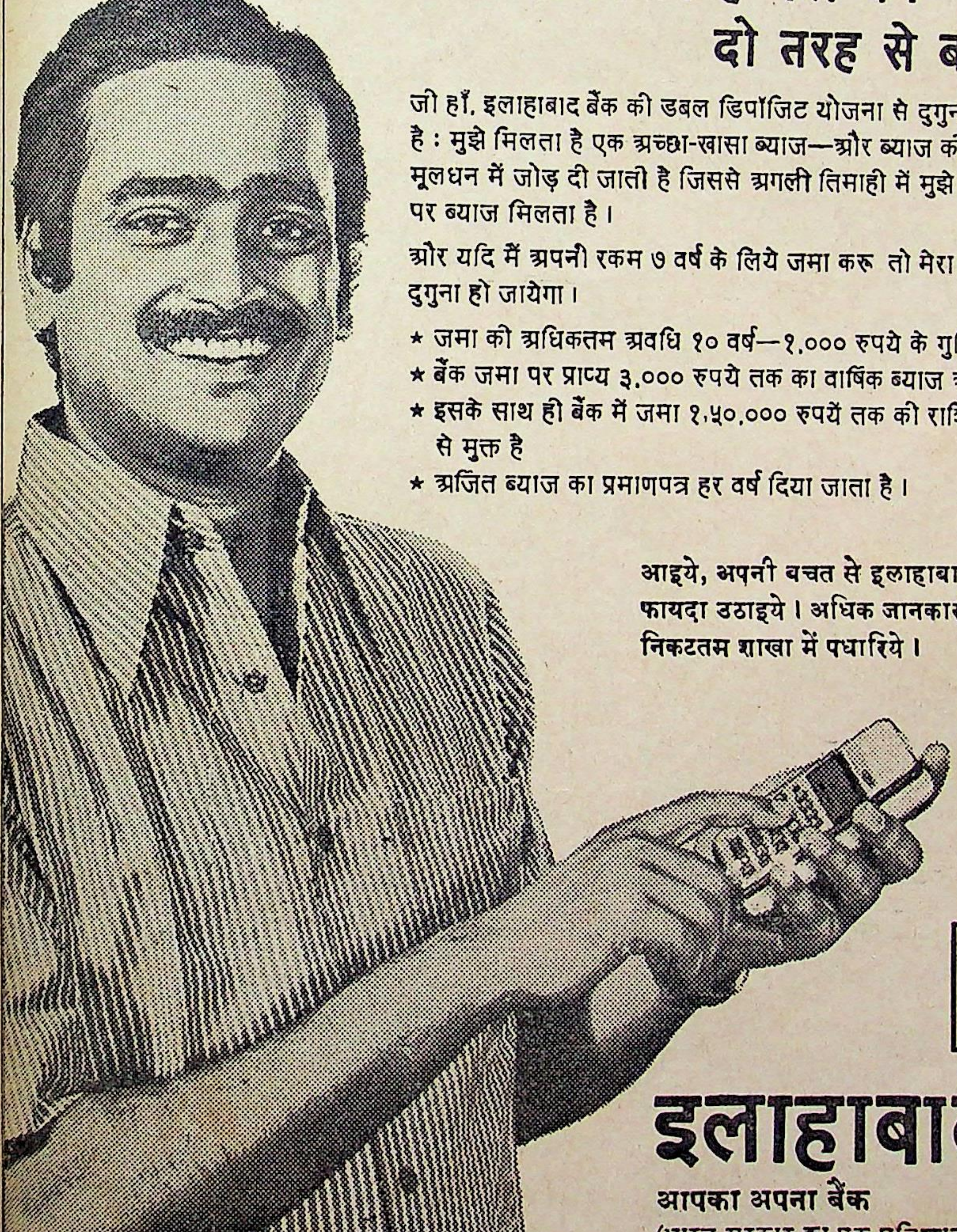

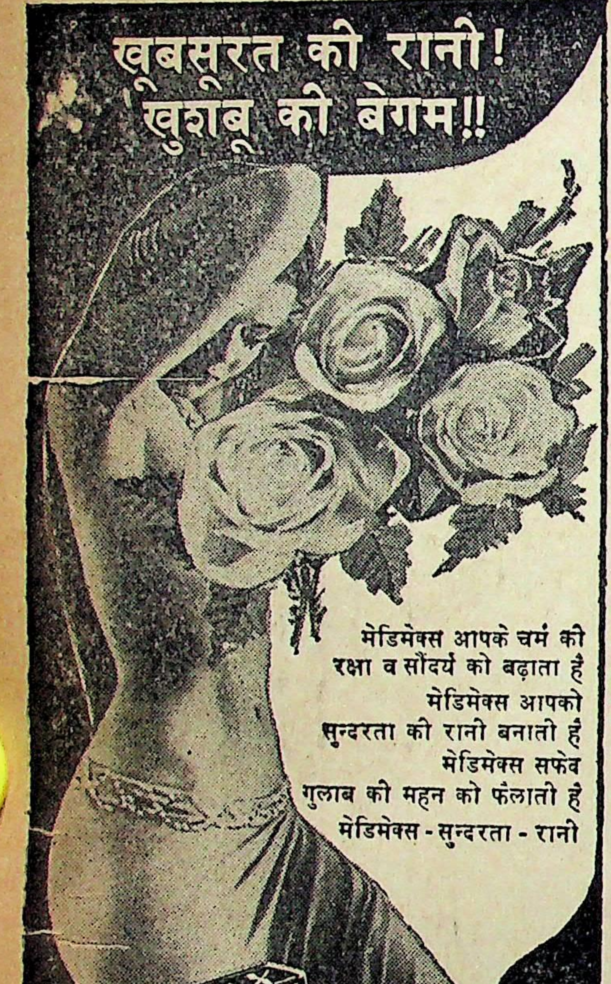

खूबसूरत की रानी!
खुशबू की बेगम!!

मेडिमेक्स आपके चर्म की रक्षा व सौंदर्य को बढ़ाता है मेडिमेक्स आपको सुन्दरता की रानी बनाती है मेडिमेक्स सफेद गुलाब की महन को फैलाती है मेडिमेक्स - सुन्दरता - रानी

MEDIMIX AYURVEDIC TOILET SOAP

मेडिमिक्स
आयुर्वेदिक टॉयलेट सोप

रंग परिवर्तन • गरमी के फ़ोड़े • नाई केन
फुन्सी • खुजली • छाला
बालों की रुसी • काले धब्बे • धोबी केच

CHOLAYIL PHARMACEUTICALS
22, THIRUVALLUVAR STREET, MADRAS-600011

mod

Subhodaya

• सर्वश्रेष्ठ लेखक • बहुचर्चित पुस्तकें
• असंक्षिप्त पेपरबैक संस्करण
• सजिल्द संस्करण से ठीक आधा मूल्य
• सदस्यता-शुल्क मात्र 3 रुपये

आलोचना पुस्तक परिवार

आलोचना पुस्तक परिवार के सदस्य बनकर उच्च कोटि का साहित्य आधे मूल्य पर प्राप्त करें।

दिसम्बर मास में आधे मूल्य पर सुलभ हैं

महाभारत
सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'
डिमाई, पृष्ठ : 232, मूल्य : रु. 15.00

टूटे हुए सूर्यबिम्ब
पानू खोलिया
क्राउन, पृष्ठ : 122, मूल्य . रु. 15.00

प्रस्तुत सूची से भी मनचाही पुस्तकें चुनिए :

उपन्यास		
अँधेरे बन्द कमरे	मोहन राकेश	35.00
डार से बिछुड़ी	कृष्णा सोबती	12.00
लाल टीन की छत	निर्मल वर्मा	17.00
राका की मंजिल	बलवन्त सिंह	20.00
कागज की नाव	कृश्नचन्दर	8.00
अजनबी	आल्बेयर कामू	8.00
कहानी-संग्रह		
कागा सब तन खाइयो	गुरुबख्श सिंह	7.50
नाटक		
ज्योत्स्ना	सुमित्रानन्दन पन्त	5.50
एवम् इन्द्रजित	बादल सरकार	7.00

यहाँ सजिल्द संस्करण के मूल्य अंकित हैं। पेपरबैक संस्करण इसके ठीक आधे मूल्य पर उपलब्ध है।

राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.
8, नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-110002

देखिए...
सर्वोत्तम सफ़ेदी के लिए रानीपाल®

Ranipal®
whitener for cottons

Ranipal®-S
whitener for synthetics and blends

वस्त्रों को आखरी बार खंगालने से पहले पानी में थोड़ा सा रानीपाल मिलाइए और फिर देखिए...वस्त्रों पर चमकती सफ़ेदी! रानीपाल की सफ़ेदी! सफ़ेद वस्त्र कैसे भी हों—सूती, सिन्थेटिक और ब्लैंडिड— रानीपाल से चमक उठते हैं.

नियमित रानीपाल लगाइए... और सफ़ेदी देखिए, दिखाइए!

सूती वस्त्रों के लिए **रानीपाल®**
सिन्थेटिक और ब्लैंडिड वस्त्रों के लिए **रानीपाल®-एस**

Shilpi SG-2A/78 Hin

और अब 8% ब्याज

1980-81 के दौरान
15 वर्षीय लोक भविष्य निधि योजना पर
आप पाएंगे 8% चक्रवृद्धि ब्याज ।
यह व्यवसायिकों तथा नियमित वेतन पाने वालों के लिए
एकमात्र आदर्श योजना है । इसकी प्रमुख विशेषताएं हैं :–

- ■ एक वर्ष की जमा राशि 100 रु० से लेकर 30,000 रु० तक ।
- ■ ब्याज आय कर मुक्त ।
- ■ जमाराशि धन-कर से मुक्त ।
- ■ जीवन बीमा तथा सावधिक योजनाओं में जमा धन में भी छूट ।
- ■ जमा राशि को अदालतों के कुर्की आदेश से संरक्षण ।

किसी भी मुख्य डाकघर या स्टेट बैंक और
इसके सहायक बैंकों की किसी भी शाखा में
आज ही अपना खाता खोलें ।

राष्ट्रीय बचत संगठन
(भारत सरकार)
पोस्ट बाक्स नं० 96, नागपुर-440001

डीएवीपी 80/224

सारिका

कहानियों और कथा-जगत की जीवंत पाक्षिकी

वर्ष : 20; अंक : 274; 1 से 15 दिसंबर, 1980

आवरण : एन. के. सरीन

कहानियां

12. सहमे हुए : महीप सिंह
25. सुहागिन : सुधा चंदोला
30. भार : मनहर चौहान
45. एक और सुदामा : सुरेंद्र अरोड़ा
50. वह बरावर वह : मुकेश सेठी
57. योग योगी योगेश : सागर सरहदी
66. नायक नहीं : चंद्रमोहन प्रधान

धारावाही उपन्यास

19. खुदा सही सलामत है : रवींद्र कालिया

विशेष

62. बिरादरी की इज्जत : शिवसागर मिश्र

लघु रचनाएं

15. भीड़ : अशोक भाटिया
16. स्याह हाशिये : विनोद शुक्ल
18. कौन भले : उपेंद्रप्रसाद राय
27. सबूत : भगवान प्रियभाषी
33. उधारी : रमेश दीक्षित
35. प्रतिष्ठा : विमल विश्वास
47. सौ रुपये का फूटा : गणेश शंकर शर्मा
53. पाठ, समानता : मुश्ताक नकवी
56. दया : पृथ्वीराज अरोड़ा
60. शिकायत, तलाश : शिवरत्न
61. एहसान : विजय कुमार बिज्जू
65. कहानियां कचहरी की : दिनेशचंद्र दुबे

ग़ज़ल

22. शतदल, शमीम फारूकी
54. सत्यनारायण

अन्य आकर्षण

8. ज़रिया-नज़रिया
9. पाठकों का पन्ना
39. तस्वीर बोलती है : मोतीराम जैन
41. अनजानी इतिहास कथाएं : बाला दुबे
44. बिरजू रिक्शावाले का गीत : कृष्ण कल्पित
69. गपशप
70. पखवारे की पुस्तकें : सुधीर चंद्र, पुष्पपाल सिंह
72. हलचल
73. उनने कहा था

संपादक
कन्हैयालाल नंदन

मुख्य उप-संपादक :
अवधनारायण मुद्गल

उप-संपादक :
रमेश बत्तरा, सुरेश उनियाल, बलराम, अरुण वर्द्धन

सज्जा : **रवि शर्मा**

ज़रिया-नज़रिया

आत्मग्लानि की अदा

अपने देश को पिछले कुछ वर्षों में जो नयी उपलब्धियां, कीमतों के बढ़ने, चीजों के गायब होते जाने, कानून और व्यवस्था के बिगड़ते चले जाने, घूस लेने और उसे सांस्कृतिक प्रतिष्ठा के पद पर बैठाने. . . गरज कि लगभग हर क्षेत्र में जिस के मूल्यों के बढ़ने और जीवन-मूल्यों के तेजी से गिरते जाने की दिशा में हासिल हुई हैं, उनमें एक और चीज ने हमारा दामन थामा है—वह है आत्मग्लानि की अदा. इस नयी अदा ने जितनी तेजी से विकास किया है, उसके सामने देश की कलाओं का विकास भी किसी खेत की मूली नहीं सिद्ध होता. आपात्काल के बाद जनता सरकार आते ही इस अदा को नये परवान चढ़े थे. अपने विवेक पर लानतें भेज-भेजकर स्वीकार किया गया कि पता नहीं उस समय हमें क्या हो गया था. हम और हमारा देश यह सब सुनता गया और इस अदा के अदाकारों की तथाकथित आत्मस्वीकारात्मक 'ईमानदारी' पर गद्गद् होता गया कि देखिए, कितना कष्ट है इस महान आत्मा को, फिर भी अपनी गलती को सरेआम स्वीकार कर रहा है. और तब से लेकर हम सबके देखते-देखते इस अदा को कला का दर्जा देते चले गये हैं हमारे कर्णधार. यों तो ऐसे कर्णधार हैं किस क्षेत्र में नहीं, लेकिन राजनीति के महाउपवन में इनके पुष्पित और पल्लवित होने का बेजोड़ इतिहास बन गया है. पिछले सप्ताह एक दिग्गज राजनीतिक नेता को अपने कार्यकर्त्ताओं को उद्बोधन देते हुए सुना. कह रहे थे कि 'हमारी पीढ़ी ने इस देश को रसातल पर पहुंचा दिया है. नेहरू, पटेल, गांधी के आदर्शों का ढिंढोरा पीटनेवाले हम उनके आदर्शों को घोलकर पीते चले गये. अब आदर्श ही हमारे सामने नहीं रह गये तो हम आपको क्या दें. तीस-बत्तीस साल जो हमारी आजादी के रहे, उनमें हम सत्ता-सुख भोगते रहे, किया क्या! अरे झाड़ू मारो हमको और हमारी पीढ़ी को. न भी मारोगे तो हम अपनी करनी से मरे जा रहे हैं. हममें इतना साहस भी नहीं रहा कि हम आप सबके सामने अपनी गलती स्वीकारते. अपने को खुद कटघरे में रखते. . .' नेता बोल रहा था, अनुयायीगण मुग्ध भाव से सुन रहा था. जिस अदा में वक्तृता की डेलीवरी हो रही थी, उसमें मुग्ध होने के अलावा उन बेचारों के पास कोई चारा भी नहीं था. वे जानते थे कि उनका नेता अब विपक्ष तक में नहीं है लेकिन वह दिलेरी की तारीफ करने से नहीं चूक रहा. नेता उवाच बंद नहीं था. . . 'तुमने देखा, शाह कमीशन में हम सब किस कदर भें बोल गये थे. तारीफ तो करनी ही पड़ेगी विद्याचरण शुक्ल की. भले मैडम के साथ हैं, लेकिन यार उस आदमी में नेजा तो है कि अपने मंत्रालय के हर काम की जिम्मेदारी खुद के ऊपर ली, अपने किसी अफसर को नहीं सांदा. हमारी पीढ़ी के तो एक भी नेता में यह ईमानदारी न निकली. . .' और फिर नेताजी ने अपनी इस आत्मभर्त्सना की अदा में 'भक्तों' को आकंठ डुबोकर भेजा. मैं सोचने लगा कि इन तथाकथित भक्तों को हासिल क्या हुआ? कोई नयी दिशा मिली क्या देश को!

आत्मस्वीकृति और आत्मग्लानि का एक और खतरनाक रूप सामने आया है. लोग बड़ी सीनाजोरी से कहते हैं—'हां हमने गलतियां कीं और आगे भी करेंगे क्योंकि हमारे पास कोई जादू की छड़ी नहीं कि घुमाते ही सब कुछ सही हो जाये.' विपक्ष जब आत्मग्लानि में आत्मस्वीकृति करता है तो उसका उतना महत्व नहीं होता जितना कि सत्ता पक्ष की आत्मस्वीकृति का होता है. यह ठीक है कि दोनों ही आत्मस्वीकृतियां राजनीतिक स्वार्थ के लिए होती हैं लेकिन सत्ता की स्वीकृति पूरे देश की स्थिति को प्रभावित करती है. अगर वहां इस तरह की बातें की जाती हैं तो अविश्वास का सिलसिला शुरू होता है और देश को कोई भी दिशा-निर्देश नहीं मिल पाता.

हमारे एक सहपाठी कथाकार लक्ष्मीधर मालवीय (जिनकी एक कहानी सारिका मार्च, 1980, अंक-दो और अप्रैल, अंक-एक में आप पढ़ चुके हैं) ने जापान से मुझे अपने एक पत्र में एक चिंता व्यक्त की है कि हमारे यहां कितने दर्जन कापका नाकाफी होंगे भला? हमारे जीवन और लेखन के बीच की विसंगतियों को कितनी बारीकी से देखा जाता है वहां इसका उदाहरण भी उस पत्र में उन्होंने दिया है:

'मेरे एक जापानी सहयोगी ने 'गुलकी बन्नो' पढ़ने के बाद मुझसे सवाल किया था कि आपके देश में तो चींटी तक को हिंसा में गिना जाता है, एक कुबड़ी की पीठ पर मारकर उसे सीढ़ियों से गिराकर घायल कर दे वह भी बच्चों का—बड़ों निगाह में हिंसा में शुमार होता? वह कुबड़ी तो बेचकर स्वावलंबी होने कोशिश कर रही है.

एक आदमी पुलिस इं को घूस देता है कि इं हिरासत में बंद उसके भाई को और अधिक न मा 'दिनमान' में छपे एक चि के अश्लील होने की शि एक पाठक करता है; उसी 'दिनमान' में छपी, जोदड़ो की नर्तकी की मूर्ति की मुद्रा में पड़ी हुई जिंदा जलायी गयी औरत की लाश को अश्लील नहीं कहता! यहां कितने दर्जन नाकाफी होंगे भला!'

मैं अपने मित्र से चाहता हूं कि हमारे कापकाओं से होगा क्या! ये तमाम कापका सिर्फ नाउम्मीदी और बदअ अंधेरे ही फैलाते हैं, इनका सकारात्मक रचना नहीं. रही हरिजन महि जली हुई लाश की बा वह हमारे यहां चल रहे ग्लानि के राजनीतिक में खो जाती है. लाश श्लील-अश्लील के भा दर किनार, उसे सत्ता के सार्वजनिक प्रदर्शन और की जिंस बना देते हैं. ग्लानि की यह प्रदर्शनप्रि देश के भविष्य के लिए बेहद खतरनाक लग रही

कन्हैयालाल न

पाठकों का पन्ना

दंगा : सन्नाटे की सिसकियां

'सारिका' अक्तूबर अंक-दो देखा. इस अंक में प्रकाशित शकील रिजवी का 'नेताई जरिया नजरिया' कुछ अलग ढंग से सोचने पर मजबूर कर देता है. मैं इसी कथाधर्मी (शकील रिजवी) की एक अन्य पत्रिका में प्रकाशित कहानी 'पिंजरा' के संवाद पेश कर रही हूं. कहानी के मौलाना सलीम (पात्र) शकील रिजवी से कहते हैं.

"मगर ये तो हिंदू होटल है."

"तो क्या हुआ?" मैंने मुस्कराते हुए बात जारी रखी, "क्या हिंदू हाड़ मांस के होकर किसी और चीज के होते हैं?"

"फिर भी, हमारा इस्लाम इसे कुबूल नहीं करता. जब वे (हिंदू) हमारे होटलों में नहीं खाते तो हम क्यों उनका फायदा करें."

"अच्छा कोई बात नहीं." मैंने बहस करना उचित नहीं समझा. और मुसलमान होटल में घुस गया. सोचने लगा 'हिंदुस्तान और पाकिस्तान बट गया है, फिर भी भारत का मुसलमान खुद को यहां मेहमान जैसा समझता है.'

इस तरह की सोच एक देशपरस्त ही सकता है. तिरंगे झंडे को जिन लोगों चाक किया है, यकीनन ही उन्हें देश बदल देना चाहिए. क्योंकि शकील रिजवी शब्दों में (कहानी तबर्रा से) दंगे करा सहज हैं लेकिन उस शोर-शराबे के बाद सन्नाटा होता है उसमें से उठने वाली सिसकियों को भी कभी सुना है? किस तरह एक मां अपने बेटे को खोने के बाद बिलखती हैं. भाई के बिछड़ जाने के बाद बहन तड़पती और पछाड़े खाती हैं. कभी देखा है आपने? इन लोगों पर मजहब के नाम से जो पागलपन आप लोगों ने फैलाया है, उसे उतारने का काम भी आप को करना चाहिए.

सारिका के माध्यम से मौलिक सोच-विचार के लिए शकील रिजवी को मेरा मुबारकवाद पहुंचा दीजियेगा.

■ शाहीन खातून, बाराबंकी

तेरी रघुनाथकृपा की !

ऊपर से नीचे तक की भ्रष्ट एवं जटिल व्यवस्था को रेखांकित करती गिरिराज किशोर की कहानी 'रघुनाथ कृपा' सराहनीय है. रम्मे बाबू की यह 'रघुनाथ कृपा' मात्र दफ्तरशाही को बेनकाब नहीं करती अपितु बहुत कुछ कहती है. वास्तव में, हर कहीं, हर स्तर पर व्यवस्था अपने आपमें इतनी उलझी हुई है कि यह निर्णय कर पाना कठिन हो जाता है कि सारी कुव्यवस्था की जड़ कहां है? जो जहां है, अपने ढंग से, अपने स्तर पर, जानबूझकर अंधा बना हुआ है, कुव्यवस्था रूपी महामारी को रोकने में नहीं, बढ़ाने में ही हाथ बंटा रहा है. सबसे जीवंत पात्र है 'रिक्सा वाला' 'धत्त तेरी रघुनाथ कृपा की ऐसी की तैसी मारूं.' वैसे 'सारिका' का यह पूरा अंक ही सराहनीय है 'दंगा : घटनाकथाएं', 'तालियां', 'मेरे लिए नहीं' आदि रचनाओं के रचनाकारों को बधाई.

■ ज्ञानी राम महतो, सिंदरी, धनबाद

मछली-बाजारू राजनीति

'जरिया नजरिया' के अंतर्गत 'सारिका' के दो अंकों (271–272) में पसरा 'मानवीय मूल्यों के मसीहा' पढ़ा, रुचा. वस्तुतः इतिहास समय की करवटों के हिसाब से अंकित हुआ है अवश्य, परंतु हर बार काल पात्रों में उन्हींके नाम उत्कीर्ण हुए हैं जो सत्ता के शिखर पर रहे. रावण और राम का अतीत हो अथवा महाशक्तियों का वर्त्तमान—सत्ता ने सदा सामान्यजन के भविष्य के पन्नों पर कालिख ही पोती है. महाशक्तियों के अपने स्वार्थ टकराते हैं और निःस्वार्थ सामान्य जन उस टकराव में किरच-किरच बिखर जाता है. महाभारत हो या पहले-दूसरे महायुद्ध, वर्तमान सामरिक विभीषिकाएं हों या भावी परमाणु युद्ध—कभी किसी युद्ध में राजनेताओं या धनपतियों का कुछ नहीं बिगड़ता. हार हो या जीत—वे अपना सिक्का चला ही लेते हैं. आम आदमी का लेकिन हर छोटे से छोटे युद्ध में भी इस कदर मर्दन होता है कि उसका समग्र व्यक्तित्व और अस्तित्व मूल्यहीनता और दिशाहीनता का शिकार होकर मात्र खंडित होने को शेष रह जाता है.

इतिहास साक्षी है कि युद्ध आम आदमी के हित के लिए कम (अथवा नहीं) और राजसत्ता के हित के लिए अधिक (अथवा हमेशा) हुए हैं. राजशक्ति और अर्थशक्ति जिनके पास रही है, उन्होंने यश लूटा है और इतिहास भी उन्हींके पक्ष में लिखा गया है. आम आदमी गुमनामी की जिंदगी जीने को सदा मजबूर रहा है, आज भी है और रहेगा भी. यह किसी एक देश की घटना नहीं है. 'भूगोल के छोटा होने और इतिहास के सिमट जाने' से आज सारा विश्व समुदाय एक सी नियति से जुड़ गया है और विश्व भर का सामान्यजन आशंका एवं आतंक से तथा समग्र मानवता सस्तेपन के संक्रमण से ग्रस्त है.

इतने पर भी, लेकिन, यह सच है कि सदा मर्दित होने वाला वह सामान्य जन अभी तक टूटा नहीं है. मानवीय मूल्यों में उसकी आस्था अभी शेष है. अपने परिवेश की समस्याओं से यथार्थ युद्ध अनवरत चल रहा है. गलियारों की मछली-बाजारू राजनीति ने उसके जीवन को खग्रास ग्रहण-सा ग्रस रखा है, तो भी वह शाश्वत मानवीय मूल्यों की फसल उगाने में शक्ति भर लगा है. सही कलमकार (एवं पत्रिका) का आज दायित्व है कि कि वह गुमनामी के कोहरे में जीवन मूल्यों के रक्षार्थ चल रहे इस संघर्ष को स्वर प्रदान करे.

■ ऋ. दे. शर्मा देवराज, खतौली

गजल और गांव

दशहरा अंक खूबसूरत और उत्कृष्ट है. गजलों में भाई **योगेंद्रदत्त शर्मा** की गजल कहीं भीतर तक मन को छू ही नहीं गयी अपितु झकझोर गयी. गांव और ग्रामीण परिवेश का चित्रण और वह भी गजल में अन्यतम है. कहानियों में **राजी सेठ** और **लक्ष्मीनारायण लाल** की कहानियां बहुत पसंद आयीं. नये नाम भी कमाल कर रहे हैं. **रंजन** की कहानी भविष्य में उनके अच्छे किस्सागो होने का विश्वास दिलाती है. पिछले अंक में **सुभाष अखिल** के 'दरमियाना' को पढ़कर भी यही कहा जा सकता है.

■ बिंदेश्वरी प्र. सिंह, मोरे, गया (बिहार)

नामों में हेर-फेर

तमाम कोशिशों के बावजूद प्रेस का प्रेत इस बार करिश्मा दिखा ही गया. इसलिए, कृपया नोट कर लें कि पृष्ठ 33 पर प्रकाशित लघुकथा **(उधारी)** के लेखक हैं—**रमेश दीक्षित;** और पृष्ठ 35 पर प्रकाशित 'आसपास बिखरी कहानियां' के तहत प्रकाशित रचना **(प्रतिष्ठा)** के लेखक हैं—**विमल विश्वास.** —सं.

राम की जगह बालि

अंक 271 आद्योपांत पढ़ डाला. **डा. लाल** की 'कथा विसरजन' और **बाला दुबे** की 'राम-वध' काफी प्रभावी लगीं. 'राम-वध' की सत्यता आज की सत्यता है, जिसके समर्थन में एक दैनिक अखबार की कटिंग भेज रहा हूं. अंतर केवल यह है कि राम-रावण की जगह बालि-सुग्रीव घटना में हैं.

▣ **डा. रामकिशोर सिंह, नानपारा**

बालि अस्पताल में!

शाहजहांपुर (नि.सं.)। बालि-सुग्रीव युद्ध में बालि हमेशा जीतते आये हैं किन्तु इस बार सुग्रीव बहुत अधिकताकतवर सिद्ध हुए, जिसका प्रभाव यह हुआ कि बालि के प्राण तो बच गये किन्तु उनकी कई हड्डियां टूट गयी। उन्हें अस्पताल में भर्ती होना पड़ा। यहां हो रही राम लीला में सुग्रीव का पार्ट करने वाले व्यक्ति ने स्टेज पर बालि की वास्तविक पिटायी शुरू कर दी। बालि चिल्लाने लगे दर्शक उनकी पीड़ा को प्रभावशाली अभिनय समझते रहे किन्तु अब तक उनकी बुरी तरह पिटायी हो चुकी थी तथा हड्डियां भी टूट चुकी थी।

(एक अखबार की कटिंग की फोटो-कॉपी)

राजी सेठ की कलक्टरनी

दशहरा अंक में सुश्री **राजी सेठ** की कहानी 'मेरे लिए नहीं' कथ्य, शिल्प और संवेदना की दृष्टि से आज के सामयिक हिंदी कथा लेखन की एक प्रतिनिधि रचना कही जा सकती है. चरित्रांकन इतना सटीक लगा, जैसे कलक्टरनी अपनी संपूर्ण भंगिमाओं और तेवरों के साथ सामने आ खड़ी हुई है. लेखिका के लिए बधाइयां.

▣ **विनोद कौशिक, नई बस्ती, बिजनौर**

औरतें भी खुश, मर्द भी खुश

कमलादास की कहानी पढ़कर औरतें खुश हो सकती हैं कि उनमें साहस की कमी नहीं और मर्द भी राहत की सांस ले सकते हैं कि बलात्कार तक झेलकर लेखिका ने उन पर अत्याचारी होने का आरोप नहीं लगाया. जो कुछ हुआ, वह उनका व्यक्तिगत मामला था.

▣ **उग्रनाथ नागरिक, बहराइच**

'आधे अधूरों' की कहानी

270 वे अंक में कमलादास की प्यार और हृदयहीनता की दस्तावेजी कृति 'मेरी कहानी' पर रवींद्र कालिया का बेबाक लेखकीय नजरिया एक बहस की मांग करता है. विद्वान कथाकार-समीक्षक पूर्वाग्रह से ग्रसित होकर लेखिका को रीतिकालीन कवियों की पंक्ति में ला बैठाते हैं. यह उनके उथले दृष्टिकोण का परिचायक है. सेक्स और प्रेम के बेबाक चित्रण से ही कोई कृति रीतिकालीन नहीं हो जाती. कमलादास की 'मेरी कहानी' खुली वास्तविकता है, जिसे नकारा नहीं जा सकता. इसमें जीवन के खुरदरे यथार्थ हैं, कपोल-कल्पना नहीं. लेखिका ने अपने व्यक्तित्व पर तह-ब-तह नकाब नहीं डाले. वह जैसी हैं, अपने आपको वैसा ही प्रस्तुत किया है उन्होंने. उनकी स्पष्टवादिता सीमाहीन है, वह रस्म-रिवाज और परंपरा की पाबंद नहीं. 'मेरी कहानी' लेखिका के 'स्व' की कहानी है. उन्होंने अपने जीवन के भोगे हुए क्षणों का चित्र उतारा है, अपनी आपबीती लिखी है. और एक कुशल फोटोग्राफर की तरह अपनी भूमिका का निर्वाह किया है. उन्होंने छोटे-छोटे स्नेप शाट्स उतारे हैं और अपने मनोभावों के बारीक-से बारीक रेशे उभारकर भाव-प्रवणता से प्रस्तुत किये हैं. सच के क्षणों को पकड़ने की कोशिश में शब्दों के प्रति 'पूजा का भाव समाप्त हो जाता है,' 'शब्द शोधन' की बात बेमानी लगने लगती है. इसी से 'मेरी कहानी' की भाषा तक की विनम्रता भी आहत हो गयी है. यह अनुभवों पर शब्दों की चिप्पी लगाने वाली भाषा नहीं. इसमें रचनात्मक पूर्णता देने की कोशिश है, जो एक बार भी यह शंका नहीं होने देती कि कमलादास की कहानी कहीं भी अपने साथ झूठ हो रही है या लेखिका केवल कोई मुद्रा ओढ़ रही है. विद्वान समीक्षक कभी गहरे में उतरे हैं तो कभी उथले में रह गये हैं, इसी से कहीं-कहीं वे कहानी की आवाज को नजरअंदाज कर गये हैं. 'सच' को अनसुना कर गये हैं. 'स्त्री की जांघ की दरार में पड़ा रहना' या जीभ और जांघ के चालू भूगोल के अध्ययन में रत रहना भी जीवन का 'सच' ही है. व्यक्तित्व की चौथी गरिमा के व्यामोह में पड़कर जीवन को विकृत तो नहीं किया जा सकता. माना कि कमलादास का प्रेम रुधिर का अंधावेग है, इंद्रिय-तर्पण का माध्यम है. उसे पति का प्यार मिलता है, लेकिन वह बदलाव चाहती है और नये-नये चरागाहों की तलाश करती है, वह त्वचा खोजती है, स्वाद चाहती है. उसका प्रेम पूजने का नाम नहीं, वियोग में सुलगने का नाम नहीं. यह भावना आध्यात्मिक नहीं, यह तो शारीरिक भूख को व्यक्त करने का एक रास्ता है, मन का एक विकार है या फिर मानसिक व्यापार है. उसके कई प्रेमी हैं. प्रेमी उसके लिए सिर्फ एक वेटिंग-रूम है, जहां एक गाड़ी से उतरकर दूसरी गाड़ी पकड़ने तक टिकना भर है. उसे किसी में भी वह गहराई और हृदयहीनता नहीं मिलती, जिसकी उसे तलाश है. सभी 'आधे-अधूरे' ही हैं.

▣ **विजय विनीत, हवेली खड़गपुर (मुंगेर)**

त मौजूदा इंतजामात का

'सारिका' अंक 270 में हरीश नवल का पढ़ा. बहुत सारी स्थितियां हैं जो किसी यशस्वी कथाकार को छद्मनाम से न पत्रिकाओं में लिखने को विवश ती हैं. कुछ लेखक इस स्थिति को सुदूर ों की सरकारी पत्रिकाओं में चालू की रचनाएं देकर जीते हैं, तो कई संपा- य विभाग के रचनाकार 'अपनी' काओं में कुछ कालम लिखकर, तो रेडियो, टी. वी. या ऐसे ही माध्यमों इन सब स्थितियों के बीच लेखक कहां है? दोषी तो वह व्यवस्था है जहां के लिए भी चोरी सूझे, जहां जेल- ास इसलिए अच्छा लगता हो कि वहां मिलती है. किसी रचनाकार का यहां 'गिरना' उसका पतन नहीं बल्कि दा इंतजामात का पतन है. साथ ही नाम से लिखने वाले 'कथाकारों' सीना ठोंककर असल नाम से लिखने ों के प्रति अशिष्ट भाषा का रवैया निंदनीय है.

राजकुमार गौतम, नयी दिल्ली

टी दूकान : बड़ी दूकान

'सारिका' अंक: 270 में प्रेमचंद शताब्दी ाह के अंतर्गत 'विचारधारा' र द्वारा आयोजित विचार गोष्ठी पट पर भाई हरीश नवल के विचार मैं व्यक्तिगत रूप से बड़ी पत्रिकाओं लिखने के खिलाफ नहीं हूं पर हरीश पत्र में भी ईमानदारी नहीं झलकती. कानदार, दूकानदार होता है, चाहे छोटी दूकान करता हो या बड़ी. और दूकान करने वाला अपनी दूकान ी हो जाने के सपने अधिक देखता है. पत्रिका व्यावसायिक होते हुए भी अपनी रचना-सामग्री में ईमानदार र कोई समझौता नहीं करती तो योग्य है. और छोटी पत्रिका भी निहित स्वार्थों के कारण ईमानदारी लित होती है तो छोटी और व्याव- क होते हुए भी स्वागत योग्य नहीं है. पत्रिकाएं भी कभी-कभी स्वार्थों से समय की सच्चाइयों को सामने का प्रयास करती रही हैं. पर खुले रूप में बड़ी पत्रिकाओं की वकालत और छोटी पत्रिकाओं के विरोध से किसी स्वार्थ की बू आती है.

यदि साहित्यकार किसी दल का 'सिम्पेथाइजर' भर है सदस्य नहीं, तो क्या ऐसा नहीं लगता कि **रंज लीडर को बहुत है मगर आराम के साथ**, क्या यह वह कायराना वृत्ति नहीं है कि फायदे तो लूट लो और खतरों से दूर रहो? यदि साहित्यकार को कोई विचारधारा पसंद है तो उसे खुलकर, पूरे साहस के साथ आगे आकर, उसका समर्थन करना चाहिए. स्व. मुक्तिबोध के शब्दों में **अब अभिव्यक्ति के खतरे उठाने ही होंगे.** आज तक ऐसा कोई भी पिंजरा निर्मित नहीं हो सका है जो साहित्यकार की सोच को सीमित बना सके. मैं नहीं जानता कि वह छद्मनाम वाले व्यक्ति कौन हैं और उनके समक्ष ऐसी क्या विवशता रही है कि वह बड़ी पत्रिकाओं की खिलाफत करते हुए भी छद्मनाम से बड़ी पत्रिकाओं में लिखते हैं, पर मुझे इतना विश्वास अवश्य है कि यदि उन लेखक महोदय का उद्देश्य मात्र पैसा और यश कमाना भर होता, तो वह बड़ी पत्रिकाओं का विरोध नहीं करते और अपने ही नाम से बड़ी पत्रिकाओं में लिखकर अधिक धन और यश कमाते तथा शब्दाडंबर रच कर उन पत्रिकाओं की वकालत करते रहते.

▣ **वीरेंद्र कुमार जैन, हैदराबाद**

एक और सांप्रदायिकता

सांप्रदायिकता के अतिरिक्त, क्षेत्रीयता के नाम पर भी दंगा होने की आपकी भविष्यवाणी (जानवर और जानवर: तीन, अक्तूबर प्रथम) सही चरितार्थ हुई. पश्चिम उड़ीसा में विगत दिनों मारवाड़ी भाइयों के साथ हुआ भयानक अत्याचार, निश्चय ही राष्ट्र की भावनात्मक अखंडता पर कुठाराघात है. भले ही उड़ीसा की घटनाओं को 'दंगे' के नाम से प्रचारित नहीं किया गया (दंगे सिर्फ सांप्रदायिक ही नहीं होते), लेकिन वह सब किसी दंगे से कम न था. अंतर मात्र यही था कि मुरादाबाद जैसे सांप्रदायिक दंगे में दोनों विरोधी पक्ष हिंसक रूप में सक्रिय रहे, जबकि उड़ीसा में उत्पीड़क वर्ग (स्थानीय-निवासी) पीड़ित-समुदाय (प्रवासी राजस्थानी, जो वहीं बस गये थे) पर अत्याचार करने में क्रियाशील रहा, और पीड़ितों की सक्रियता केवल बचाव का उपाय ढूंढने की चिंता तक ही सीमित रही. 'मारवाड़ी हटाओ' के नाम पर हुए भयानक-लूटपाट और दंगे के शर्मनाक हादसे के हफ्तों बाद भी आतंक इतना बना हुआ है कि राजस्थानी समुदाय के लोग घर-द्वार, व्यापार-व्यवसाय औने-पौने भाव पर छोड़-बेच कर पूर्वी तथा दक्षिण-पूर्वी मध्य प्रदेश की ओर पलायन कर रहे हैं.

दुहाई हो प्रशासन की, जो नागरिक स्वतंत्रता की रक्षा करने में असमर्थ होने पर भी पूरी दृढ़ता से टिका हुआ है.

▣ **जयप्रकाश साव, राजनांद गांव (म.प्र.)**

'दरमियाना' लिख कर

सुभाष अखिल ने 'दरमियाना' पर लिख कर संभवतः प्रथम बार उनकी मानसिक चेतना एवं मनोविज्ञान पर प्रकाश डाल कर एक साहसिक कार्य किया है.

▣ **सतीश चंद्र शर्मा "दीप" मेरठ (उ. प्र.)**

चाहिए तो यह था

सुभाष अखिल की 'दरमियाना' भी बहुत पसंद आयी. गजलें कुछ फीकी लगीं. चाहिए तो यह था कि दुष्यंत से भी आगे कोई निकलता, परंतु लगता है दुष्यंत को ही सब मंजिल मान बैठे हैं.

▣ **राकेश वत्स, अमृतसर**

धुरंधरों के मुकाबले

लघुकथाएं अपेक्षाकृत बहुत अच्छी, सरल, सहज व तीखी लगीं.

नये हस्ताक्षर **सुभाष अखिल** की कहानी 'दरमियाना' को यदि अंक की सर्वश्रेष्ठ कहानी कहूं तो कुछ गलत न होगा. इस बात में कोई संदेह नहीं कि आठवें दशक के कुछेक युवा कथाकारों ने निस्संदेह ही वर्षों से साहित्य पर अपना आधिपत्य रखने वाले धुरंधरों को पछाड़ा है, जो इस क्षेत्र में युवा आंदोलन की एक अच्छी शुरुआत है. इस बात से भी इंकार नहीं किया जा सकता कि इस सबके बावजूद अभी भी उन्हें सही मंच नहीं मिल पा रहा है.

▣ **अनिल वर्मा, कंकर खेड़ा, मेरठ**

"झगड़ों के बीज हमारी पृष्ठभूमि में पता नहीं कब किसने क्यों बो दिये हैं. उस बोयी हुई फसल को हम कब से काट रहे हैं. काटते चले जा रहे हैं. काटते चले जायेंगे???" इस तरह के और भी कई सवालों से जूझती यह कहानी दंगों के सामाजिक प्रभावों का विश्लेषण करने की सफल कोशिश भी है.

सहमे हुए

•महीप सिंह

हाशमी के ठीक सामने हरजीत बैठता है. हरजीत के दायीं ओर लोबो और बायीं ओर शर्मा. वर्मा की जगह निश्चित नहीं है. कभी वह शर्मा के बायीं ओर बैठता है, कभी लोबो के दायीं ओर.

दफ्तर की यह चौकड़ी नहीं, पंचकड़ी है—जनाब इकबाल हाशमी, सरदार हरजीत सिंह, मिस्टर जॉन लोबो, पंडित रघुनाथ शर्मा और श्री बी. आर. वर्मा. पर...यह बी. आर. क्या हुआ? जब सभी के नाम पूरे-पूरे हैं तो वर्मा के ही 'इनीशल' क्यों? पर यह भी सही है कि इसमें कोई कुछ नहीं कर सकता. वर्मा अपने आपको बी. आर. वर्मा ही कहलाना पसंद करता है.

जब पांचों व्यक्ति अपना-अपना लंच बॉक्स खोल लेते हैं तो किसी न किसी बात को लेकर बहस शुरू हो जाती है. जॉन ोबो यह कहकर भी अपनी बात शुरू कर सकता है, "यार वर्मा, तुम न बी. आर. हो, न वर्मा. तुम हो बुधराम कोरी. कोरी होने से तुम 'शेड्यूल्ड कास्ट' में आ गये और आजकल 'शेड्यूल्ड कास्ट' ी तो चांदी ही चांदी है. पर यार, तुम बी. आर. और वर्मा की काब के पीछे अपनी असलियत कितने दिन छिपाते रहोगे. मेरी मझ में यह नहीं आता कि तुम खुलकर कहते क्यों नहीं कि मैं ोरी हूं . . . ऐंड आइ एम प्राउड ऑव इट . . . !"

बस यूं समझिए कि लंच का पूरा वक्त इसी चर्चा में निकल ाता है. वर्मा आर्यों और अनार्यों के संपूर्ण इतिहास को उन्हीं िनटों में अपनी सब्जी की कटोरी में समेट लेता है. वर्ण-व्यवस्था े नाम पर कुछ लोगों को 'अछूत' बना दिये जाने की साजिश र पूरा भाषण दे डालता है और कहता है, "मैं बी. आर. वर्मा ी लिखता हूं. मेरा बेटा सीधे-सीधे अपने आपको ब्रह्मकुमार र्मा लिखेगा." यह कहकर वह रघुनाथ शर्मा की ओर मुड़ता है ोर मुस्कराता है.

महफिल बर्खास्त होती है. हाशमी अपनी मेज की दराज से लायची-सुपारी निकालकर सबको देता है और लोग अपनी-पनी मेजों पर चले जाते हैं.

◆

स पंचकड़ी में एक हिंदू, एक मुसलमान, एक ईसाई, एक ख और एक हरिजन होने का यह अर्थ नहीं है कि यह कोई श की भावात्मक एकता बढ़ाने वाला दफ्तर है. इसको बस एक योग ही मानना चाहिए . . . संयोग से एक और बात याद आती आपको नयी दिल्ली की 'बैंक वैन डकैती' की बात नहीं भूली गी. चार युवकों ने मिलकर दिन-दहाड़े एक बैंक की मोटर-ड़ी को लूट लिया था, खजांची और ड्राइवर युवकों की गोली शिकार हो गये थे. लंबे समय तक इस डकैती का कोई सुराग हीं मिला था. और जब सुराग मिला और चारों युवक पकड़े ये तो पता लगा कि वे भावात्मक एकता का खासा प्रतिनिधित्व रते थे. उनमें दो हिंदू थे, एक मुसलमान और एक सिख.

यह दफ्तर किताबें प्रकाशित करने का एक बड़ा व्यावसायिक स्थान है. इसका मुख्य कार्यालय बंबई में है. उत्तर-पश्चिमी ग का कर्यालय दिल्ली में है. यह संस्थान अनेक भाषाओं में तकें प्रकाशित करता है. हर भाषा के अपने-अपने संपादक हैं. रघुनाथ शर्मा हिंदी के, जनाब इकबाल हाशमी उर्दू के, सरदार जीत सिंह पंजाबी के और मिस्टर जॉन लोबो अंग्रेजी के संपादक . पहले यह संस्था एक ब्रिटिश फर्म का अंग थी. अब इस पर ी तरह भारतीयों का अधिकार है. परंतु ब्रिटिश लोगों ने इस स्थान में जो परंपराएं डाली थीं, आज के मालिक भी उसे पूरी ह निभाये जा रहे हैं. यह भी शायद इसी परंपरा का एक ग है कि मालिक लोग समझते हैं कि संस्कृत-हिंदी का काम ई ब्राह्मण ही ठीक ढंग से कर सकता है, उर्दू का काम कोई सलमान ही कर सकता है, पंजाबी के लिए एक सिख होना हिए और अंग्रेजी किसी शुद्ध हिंदुस्तानी के बस का रोग नहीं. के लिए ब्रिटिश व्यक्ति होना चाहिए. वह न हो तो एंग्लो-इंडियन हो. और वह भी न हो तो कम से कम क्रिश्चियन तो होना ही चाहिए.

एक परिवर्तन जरूर आया है. पहले हिंदी का संपादक गांठ लगी चोटी वाला, धोती-कुर्ता धारी, त्रिपुंडयुक्त पंडित होता था. इसी तरह उर्दू का संपादक 'मौलवीनुमा' और पंजाबी वाला 'ज्ञानीनुमा' होता था. अब यह बात नहीं रही है. अब लोग काफी 'उदार' हो गये हैं. यह बात अलग है कि शर्मा, हाशमी और लोबो की शक्ल देखकर उन्हें हिंदू, मुसलमान और ईसाई बताया जा सकता है. हरजीत की तो बात ही अलग है. उसकी मेरून रंग की पगड़ी उसके 'खालसा' होने की घोषणा करती रहती है. परंतु इसमें संदेह नहीं कि ये पांचों लोग 'उदार' हैं. इनकी उदारता का इससे बड़ा प्रमाण क्या होगा कि ये पांचों मित्र हैं, एक-दूसरे के घर आते-जाते हैं. वहां चाय-वाय पीते हैं. ये लोग नियमित रूप से हाशमी की मेज पर अपने लंच बॉक्स खोलते हैं. यहां भी इनकी 'उदारता' कभी संकरी गलियों और कभी चौड़े पाट से होकर बहती है.

यह स्थिति भी कुछ कम मजेदार नहीं, शर्मा दूसरों के लंच बॉक्स में से अचार और सलाद—खीरा, गाजर, मूली, प्याज आदि ले लेता है. हाशमी के लंच बॉक्स में अक्सर कबाब होते हैं और हरजीत के लंच बॉक्स में तली हुई कलेजियां. हाशमी हरजीत की कलेजियां खा लेता है और हरजीत हाशमी के कबाब खा जाता है. यहां दोनों अपने-अपने धार्मिक आदेशों की कुछ अवहेलना कर जाते हैं क्योंकि हाशमी के कबाब हलाल किये हुए बकरे के मांस से बने होते हैं और सिखों में हलाल खाना वर्जित है. इसी तरह हरजीत की कलेजियां 'झटका' किये हुए बकरे की होती है, जिसे एक मुसलमान नहीं खा सकता. खानपान की इस 'उदारता' के बावजूद हाशमी और हरजीत के मन को एक शंका अंदर ही अंदर घेरे रहती है. हरजीत हलाल बकरे के कबाब खाने जितना उदार तो हो गया है पर 'बीफ' नहीं खा सकता. इसलिए वह कभी-कभी हाशमी से कह देता है, "यार हाशमी, तेरे कबाब इतने लजीज होते हैं कि मैं उन्हें छोड़ नहीं सकता. पर कभी मुझे 'बीफ' खिलाकर मेरा धरम भ्रष्ट न कर देना."

◆

इसी तरह हाशमी भी एक बात की ओर से पूरी तरह सतर्क है. वह हरजीत के लंच बॉक्स की कलेजी खा लेता है क्योंकि बकरे की कलेजी का स्वाद उसे हलाल या झटका किये जाने से नहीं बदलता. पर वह 'पोर्क' नहीं खा सकता. वह अक्सर कह देता है, "सुअर का मांस भी कोई इंसानों के खाने की चीज है . . . लाहौल विला कूवत . . . . !"

लोबो और वर्मा ने खाने-पीने के मामले में कभी हुज्जत नहीं की. लोबो सब कुछ खा लेता है. वैसे उसका लंच बॉक्स सिर्फ उसी का रहता है क्योंकि उसमें कभी टमाटर वाली, कभी 'चीज' वाली और कभी-कभी हैम वाली सैंडविचेज होती हैं. वर्मा को दूसरों के लंच बॉक्स से कुछ भी लेते संकोच होता है. वह अपने साथ सलाद खूब लाता है और उसे एक अखबारी कागज पर डालकर मेज के बीचों बीच रख देता है. सब वहीं से लेकर खाते रहते हैं.

हाशमी और हरजीत कभी-कभी अपने लंच बॉक्स से कबाब या कलेजी निकालकर उसके लंच बॉक्स में डाल देते हैं.

▣

एक दिन हरजीत बोला, "यार हाशमी, आज फिर अखबार में यह खबर आयी है कि लखनऊ में शिया-सुन्नियों में झगड़ा हो गया है. मेरी समझ में यह नहीं आता कि शिया-सुन्नियों में आखिर झगड़ा किस बात का है?"

खबर सुबह के ही अखबार में थी और सभी ने पढ़ी थी. इससे पहले भी इस पंचकड़ी में इस विषय पर कितनी ही बार चर्चा हो चुकी थी, क्योंकि साल में एक-दो बार तो ऐसी खबर अखबारों में आती ही है. हाशमी ने कई बार इसकी पृष्ठभूमि भी बतायी है, पर वह किसी को याद नहीं रहती. जब भी अखबार में यह खबर छपती है, यह बात नये सिरे से शुरू होती है.

आज हाशमी ने जवाब नहीं दिया, बल्कि सवाल किया, "तुम यह बताओ कि यह अकालियों और निरंकारियों का झगड़ा, क्या है? इस झगड़े में कुछ ही अर्से में कितने लोग हलाक हो चुके हैं."

शर्मा, वर्मा, लोबो सभी हरजीत की ओर देखने लगे. इन दिनों अकाली-निरंकारी संघर्ष की खबरें अखबारों को घेरे हुए थीं. हरजीत ने कुछ बताना चाहा, पर उसकी समझ में नहीं आया कि इतनी देर में वह क्या बता दे. वह इतना ही बोला, "इस झगड़े की पृष्ठभूमि जरा लंबी है. मैं किसी दिन विस्तार से बताऊंगा."

शर्मा ऐसे विवादों में बहुत उत्साह से भाग नहीं लेता. वह लोगों की बातें सुनता है और अपनी सारी प्रतिक्रिया आंखों से, भौंहों से, चेहरे की रेखाओं से और गर्दन को आगे-पीछे या इधर-उधर हिलाने से ही व्यक्त करता है.

वह बोला, "हरजीत ठीक कहता है. झगड़ों के बीज हमारी पृष्ठभूमि में पता नहीं कब, किसने, क्यों बो दिये थे. उस बोयी हुई फसल को हम कब से काट रहे हैं, काटते चले जा रहे हैं. काटते चले जायेंगे. मनुष्य अवश्य लड़ेगा. वह अकेले-अकेले लड़ता है तो लोग उसे झगड़ालू, गुंडा और बदमाश कहते हैं. वह झुंड बनाकर लड़ता है तो देशभक्त, धर्मवीर और गाजी कहलाता है, उसे सम्मानित किया जाता है. आखिर मनुष्य यह सम्मान क्यों न ले?"

"जी हां... इसी सम्मान के लिए वह सामूहिक रूप से घृणा करता है... व्यक्ति से नहीं, बल्कि एक पूरे समूह से... उसे गांव में बसने नहीं देता, कुएं से पानी नहीं भरने देता, मंदिर में नहीं जाने देता, उसकी छाया मात्र पड़ जाने से वह अशुद्ध हो जाता है." वर्मा प्रायः बात करते-करते उत्तेजित हो जाता है.

इन दिनों के अखबार सांप्रदायिक दंगों की खबरों से भरे पड़े हैं. मुरादाबाद की ईदगाह में सुअर घुस गया था, वाराणसी के किसी मंदिर में गोमांस मिला था, इलाहाबाद की एक मस्जिद में सुअर का गोश्त पाया गया.

दिल्ली में भी छुट-पुट वारदातें हो गयी हैं. हाशमी बल्लीमारान में रहता है. वहां कर्फ्यू लगा हुआ है. हरजीत तुर्कमान गेट में रहता है. वहां भी करफ्यू लगा हुआ है. लोबो और वर्मा ही दफ्तर आ रहे हैं. शर्मा कुछ दिन के लिए चंदौसी अपने भाई से मिलने गया था. उस क्षेत्र में दंगा कुछ इस तरह भड़का हुआ है कि वहां से उसकी कोई खबर नहीं आ रही है. हरजीत कितने ही वर्षों से रोज शाम को किसी भी समय शीशगंज गुरुद्वारे में 'मत्था टेकने' जाता है.

सन सैंतालीस में जब उसके मां-बाप, बड़े भाई-बहन गुजरांवाला से उजड़कर दिल्ली आये थे तो वह गर्भ में था. उसकी मां कितने दहशत भरे दिन और कितनी डरावनी रातों को अपनी कोख में समेटे हुए दिल्ली पहुंची थी. उसके परिवार ने कितने ही दिन इधर-उधर भटकते हुए और शीशगंज गुरुद्वारे में 'लंगर' खाते हुए गुजारे थे. बाद में उसके पिता ने तुर्कमान गेट में एक मकान खरीद लिया था जिसका मुसलमान मालिक पाकिस्तान जाने की उतावली में उसे कौड़ियों के मोल बेच रहा था. तब से उसका परिवार इसी मकान में है. उस मकान का पूरा हुलिया ही बदल गया है. उसके पिता और भाइयों ने मिलकर धीरे-धीरे उसे एक अच्छी-खासी कोठी में बदल दिया है. पर उस क्षेत्र में आज भी मुसलमानों की बहुतायत है. 'सरदारजी' के परिवार की गली-मुहल्ले में बड़ी इज्जत है. पर जब भी देश के किसी हिस्से से दंगे-फसाद की खबरें आती हैं, मन की किन्हीं तहों में बैठा हुआ सहम उनके चारों ओर फैलने लगता है.

हरजीत को आजकल कितना घूमकर गुरुद्वारे जाना पड़ता है. जब भी दंगों की खबर जोर पकड़ती है, हरजीत अपनी बुशर्ट के नीचे छोटी कृपाण पहनना शुरू कर देता है.

हाशमी इलाहाबाद का रहने वाला है; देश के विभाजन के समय उसकी उम्र तीन-चार की थी. उसके कई नजदीकी रिश्तेदार पाकिस्तान में रहते हैं जो विभाजन के समय उधर चले गये थे. इलाहाबाद विश्वविद्यालय से उर्दू में एम. ए. करने के बाद वह नौकरी की तलाश में दिल्ली आया. वर्षों तक छोटी-मोटी उर्दू अखबारों में नौकरी करने के बाद उसे इस प्रकाशन संस्था में अच्छी नौकरी मिली. वर्षों से वह बल्लीमारान की बदबूदार गलियों के गवाह बने दो कमरों के सीलनदार मकान में रहता है. कितनी ही बार उसका मन हुआ है कि वह भी दिल्ली की किसी आधुनिक कॉलोनी में एक फ्लैट लेकर रहे, उसके बच्चे किसी अच्छे पब्लिक स्कूल में पढ़ें, उसकी बीवी इन गलियों की पान खाती, फूहड़ बातें करती और टाट के पर्दों के पीछे जिंदगी जीती औरतों से कुछ अलग होकर जीवन जिये. परंतु वह इसी गली में जीवन जिये जा रहा है. यहां एक अजीब किस्म की सुरक्षा अनुभव करता है. उसे बार-बार लगता है—यदि वह ग्रीन पार्क, हौजखास, साउथ एक्स्टेंशन या लाजपतनगर जैसी किसी कॉलोनी में, जहां से उसका दफ्तर बहुत नजदीक है, मकान लेकर रहेगा तो उसके हिंदू-सिख पड़ोसी कभी उससे खुलकर व्यवहार नहीं करेंगे. उनकी औरतें उसकी बीवी नसरीन से वैसा बहनापा नहीं बनायेंगी, जैसा वे आपस में बना लेती हैं. और उसके बच्चे दूसरे बच्चों से हमेशा दूर-दूर रहेंगे. इन गलियों में बदबू तो है पर उन कॉलोनियों में एक घुटन होगी जो उसे और उसके परिवार को लगातार महसूस होती रहेगी.

▣

आज कई दिन बाद यह पंचकड़ी फिर जमी है. शर्मा चंदौसी से वापस आ गया है. उसके चेहरे पर गहरा खिंचाव है. लोबो पूछता है, "क्या हाल है उस तरफ?"

आसपास बिखरी कहानियां

भीड़

▣ अशोक भाटिया

कैमिस्ट ने सिपाही को बताया, "वो देखिए, वह औरत दवा के दस रुपये दिये बिना भागी जा रही है."

सिपाही औरत के पीछे-पीछे हो लिया.

भीड़ ने कहा, "देखो, साली चोर है. ऐसे भागी जाती है, जैसे बाप का माल हो."

वह औरत अपने घर में पहुंच गयी. सिपाही ने अंदर झांककर देखा. वह औरत अपनी बीमार मां के कंधे पकड़े हुए उसे दवा दे रही थी. उनकी पतली हालत देखकर सिपाही वापस हो गया.

आकर उसने कैमिस्ट से कहा, "लो भई, अपने दस रुपये." और जेब से दस का नोट देकर चुपचाप चल दिया.

भीड़ में से एक फुसफुसाया, "साले ने गरीब औरत को भी नहीं छोड़ा!" □

"हाल क्या होना है," शर्मा भर्रायी आवाज में कहता है, "पाकिस्तान बन गया, पर पाकिस्तान जिंदाबाद के नारे अब भी उसी तरह लग रहे हैं जैसे अभी एक और पाकिस्तान बनना है. मस्जिदें गोला-बारूद और चाकू-छुरों की भंडार बनी हुई हैं. पाकिस्तानी एजेंट सरेआम दंगे करवा रहे हैं. दुख की बात तो यह है कि पनाह उन्हें यहां के मुसलमानों से मिल रही है. दंगई घुसकर पुलिस और फौज पर हमले कर रहे हैं और इसमें मशीन-गनों और ऑटोमेटिक राइफलों का प्रयोग हो रहा है... ये हथियार इन्हें कहां से मिल रहे हैं?"

शर्मा की बात से एक अजीब सन्नाटा-सा छा जाता है. वर्मा, हरजीत, लोबो सभी कनखियों से हाशमी की ओर देखते हैं, जैसे जो कुछ शर्मा ने कहा है उसकी कुछ न कुछ जिम्मेदारी हाशमी के सिर पर भी है.

हाशमी कुछ नहीं बोलता. चुपचाप खाना खाता रहता है.

वर्मा कहता है, "यह भी कैसी अजीब बात है कि हरिजन सभी तरफ से पिटते हैं. मराठवाड़ा में सवर्ण हिंदुओं के हाथों पिट रहे हैं. क्योंकि अछूत हैं. मुरादाबाद इलाके में मुसलमानों ने हरिजन बस्तियां जला दी हैं, क्योंकि उनकी नजर में हम हिंदू हैं."

लोबो कहता है, "तुम सब लोगों ने वह खबर तो पढ़ी ही होगी...असम में कुछ ईश्वर भक्तों ने एक पुलिस सब-इन्सपैक्टर को पकड़कर इतना पीटा कि वह वहीं मर गया."

सभी लोबो की ओर देखने लगते हैं.

"कैसी जहालत है?" लोबो जैसे अपने आप से कहता है, "एक मुसलमान पुलिस सब-इन्सपेक्टर अपने एक हिंदू साथी को ढूंढ़ता हुआ मंदिर के अहाते में चला गया. वहां कुछ लोगों ने उसे पहचान लिया...अरे यह तो मुसलमान है...और फिर इतना पीटा...इतना पीटा कि वह वहीं ढेर हो गया."

सभी शर्मा की ओर देखते हैं. जैसे वह मुसलमान सब-इन्सपैक्टर क्यों मारा गया, इसका पूरा स्पष्टीकरण शर्मा के पास है.

सभी खाना खत्म कर लेते हैं. आज वर्मा का लाया हुआ सलाद बच जाता है. क्योंकि शायद सभी ने उसमें से मूली या प्याज के टुकड़े नहीं उठाये थे. आज यह भी हुआ कि हाशमी ने अपने कबाब और हरजीत ने अपनी कलेजियां खुद ही खायीं.

▣

आजकल हाशमी और हरजीत कुछ ज्यादा ही नजदीक दिखाई देते हैं. तुर्कमान गेट और बल्लीमारान के इलाके भी पास-पास हैं. प्रायः शाम को दोनों साथ-साथ लौटते हैं. लाल किले पर बस से उतरकर दोनों चांदनी चौक की तरफ चल देते हैं. हरजीत 'शीशगंज' गुरुद्वारे में मत्था टेकने के लिए रुक जाता है, हाशमी आगे चला जाता है. दोनों साथ-साथ रहते हैं तो एक-दूसरे का सहारा अनुभव करते हैं.

हाशमी कहता है, "किसी भी मुल्क में माइनारटीज की जिंदगी महफूज नहीं होती. पता नहीं कब मैजोरिटी कम्युनिटी में किसी भी सबब से पागलपन सवार हो जाये और वह माइनारटीज के पीछे हाथ धोकर पड़ जाये."

हरजीत उसकी बात का समर्थन करता है, "कम गिनती वाली कम्युनिटी के आदमी को तो एक अच्छी नौकरी भी नहीं मिलती. मुझे पता है इस नौकरी को पाने के लिए मुझे कितने धक्के खाने पड़े."

▣

उस दिन लंच के बाद हाशमी ने हरजीत को अपने कमरे में बुलाया.

"यार हरजीत, तुमसे एक मशवरा करना है!"

"बोलो." हरजीत ने देखा हाशमी कुछ घबराया हुआ है.

"गांव से वालिद साहब का खत आया है. अम्मा बहुत बीमार हैं...बस आखरी वक्त समझो. मरने से पहले वे मुझे एक नजर देखना चाहती हैं. सोचता हूं, दो-चार दिन के लिए चला जाऊं."

"हां...हां...हो आओ. इसमें इतना सोचने की क्या बात है. तुम्हारी छुट्टी तो बाकी होगी."

"छुट्टी की तो कोई बात नहीं है, पर यार...चारों तरफ फसाद फैले हुए हैं." हाशमी कुछ सकुचाते हुए बोला.

"हां, फसाद तो हैं. पर ऐसी चिंता की कोई बात नहीं है. आजकल हालात बेहतर हैं. और अब तो दंगाग्रस्त इलाकों में फौज तैनात है." हरजीत बोला.

"हां, यह तो ठीक है." हाशमी कुछ रुक-रुककर बोला, "पर यह भी तो होता है कि लोग रास्ते में ट्रेन रोक लेते हैं और बस फिर काट-पीट शुरू कर देते हैं."

हरजीत ने देखा, हाशमी के चेहरे पर पसीने की बूंदें झलक आयी हैं.

"नहीं, ऐसी कोई बात नहीं. इस बीच दंगइयों ने कहीं ट्रेन रोककर काट-पीट की हो, ऐसी कोई खबर भी नहीं है. तुम ऐसा करो, रात की गाड़ी से सफर मत करो. तुम्हें इलाहाबाद जाना है ना, कालका मेल से चले जाओ. गाड़ी सुबह चलती है. तुम दिन-दिन में ही इलाहाबाद पहुंच जाओगे."

हरजीत की बात सुनकर हाशमी कुछ सोचने लगा. फिर

स्याह हाशिये

दंगा

खुशी

उसकी बेरोजगारी दूर हो गयी थी. दंगे के बाद उसने दूकान खोल ली थी, भगदड़ में मिले जूते-चप्पलों से.

पता

भगदड़ में भटके हुए बच्चे अपने-अपने घर पहुंच गये थे, सिवाय एक लड़की के, जो घर का पता लगाने पुलिस-थाने चली गयी थी.

दूकान

उसकी दूकान चल निकली थी. वह कपड़ा बेचने लगा था—कफन का.

नुकसान

दंगे के कारण सबसे ज्यादा नुकसान पुलिस को उठाना पड़ा, क्योंकि सारा माह केवल वेतन पर गुजारना पड़ा. ☐

▣ विनोद शुक्ल

बोला, "इसमें एक और उलझन है. हमारा गांव इलाहाबाद से तकरीबन बीस मील दूर है. वहां बस से जाना पड़ता है. इलाहाबाद की हालत तो तुम जानते ही हो. बस-अड्डे तक पहुंचते-पहुंचते किसी ने छुरा भोंक दिया तो अपन गये काम से."

दोनों सोच में पड़ गये और फिर कितनी ही देर सोचते रहे. हाशमी गांव नहीं गया. पंचकड़ी में उससे किसी ने नहीं पूछा कि उसकी मां की हालत कैसी है. उसकी मां सख्त बीमार है, यह बात सभी को पता थी. पर अब उसकी हालत कैसी है, यह पूछते जैसे सभी को अंदर ही अंदर डर लग रहा था.

▣

लंच टाइम में खाना तो सबका साथ-साथ चल रहा है, जगह भी वही है, खाना भी पहले जैसा ही है, पर पता नहीं क्यों एक-दूसरे के लंच बॉक्स से चीजें लेना लगभग बंद-सा हो गया है. वर्मा अपना सलाद जरूर उसी तरह लाता है और कागज पर फैलाकर मेज के बीचों-बीच रख देता है. लोग बड़े अनमने ढंग से उसमें से एक-आध टुकड़ा उठा लेते हैं. पर खाना सभी लोग अपने-अपने लंच बॉक्स से ही खाते रहते हैं—जैसे दूसरे के खाने में जहर मिला हुआ हो.

अब पहले जितनी बातचीत भी नहीं होती. एक चुप्पी-सी छायी रहती है. इस चुप्पी को प्रायः लोबो ही तोड़ता है, "यार हिंदू-मुसलमानों के दंगों में हम ईसाइयों की बड़ी मुसीबत होती है. मुसलमान हमें हिंदू समझकर छुरा भोंक देता है और हिंदू हमें मुसलमान समझकर हमारी गर्दन काट देता है. जब तक हम बताएं-बताएं कि हम क्या हैं, पेट चाक हो चुका होता है. हमें तो साला कुछ दिखाने का मौका भी नहीं मिलता."

उसकी इस बात पर ऐसा ठहाका लगता है कि पूरा कमरा गूंजने लगता है.

▣

पटना में होने वाले 'बुक फेयर' की तारीख नजदीक आ गयी है. इस प्रकाशन संस्था ने उसमें अपने लिए काफी बड़ी जगह ली है. वर्मा चूंकि बिक्री-विभाग में है इसलिए वह एक सप्ताह पहले ही वहां चला गया था. शर्मा, हाशमी, हरजीत, लोबो को भी वहां जाने का आदेश मिला है. 'अपर इंडिया एक्सप्रेस' में फर्स्ट क्लास के डिब्बे में सभी का रिजर्वेशन हो चुका है. चारों की बर्थ एक ही केबिन में है, इसलिए सभी संतुष्ट हैं—रात को खूब मौज रहेगी. हरजीत ने सबसे कह दिया है, "दोस्तो, घर से खाना खाकर मत आना, अपना-अपना खाना साथ लाना. आठ बजकर दस मिनट पर गाड़ी छूटती है. गाजियाबाद निकल जाने के बाद 'जश्ने जमहूरियत' शुरू करेंगे. बोतल लोबो लायेगा... सलाद मास्टर वर्मा साथ नहीं है, कोई बात नहीं, शर्माजी सलाद आप लायेंगे. हाशमी, देख यार, कबाब काफी होने चाहिए... और हरजीत सिंह लायेगा कम से कम आधा किलो तली हुई कलेजी."

आज का अखबार दंगे-फसाद की खबरों से फिर भर गया है. अलीगढ़ में चौबीस घंटे का कर्फ्यू लगा दिया गया है. सारे शहर में सेना गश्त कर रही है. दंगइयों ने कितने ही दूकान-मकान जलाकर खाक कर दिये हैं. कितनी लाशें जले हुए मकानों के मलबों के नीचे से निकाली गयी हैं. सारा शहर आतंक में डूबा हुआ है.

स्टेशन पर सबसे पहले शर्मा पहुंच जाता है. कुछ देर में हाशमी पहुंचता है. दोनों अपनी केबिन में आमने-सामने बैठे हैं. शर्मा कहता है, "यह बुक फेयर सफल नहीं होगा. वैसे ही कौन पुस्तकें खरीदता है. फिर आजकल तो आम आदमी ऐसे ही घर से निकलने से डरता है."

हाशमी सिगरेट सुलगाकर पीने लगता है. बैठे-बैठे बार-बार उसकी नजर प्लेटफार्म पर जाती है. आज ज्यादा भीड़ नहीं है. वह आते-जाते लोगों को देखता है और अनायास ही उनमें हिंदू और मुसलमान चेहरे ढूंढ़ने लगता है.

लोबो और हरजीत एक साथ आते हैं. चारों लोग आ गये हैं, इस बात पर सभी खुशी प्रकट करते हैं. लोबो कहता है, "घर से स्टेशन तक आते-आते लगा जैसे मुझे सैल्यूट मारने के लिए जगह-जगह पर सिपाही तैनात हैं. लाजपतनगर से कोई स्कूटर वाला इधर आने को तैयार ही नहीं होता था. सब कहते थे—उधर कर्फ्यू लगा हुआ है."

गाड़ी चलने में अभी दस-पंद्रह मिनट बाकी हैं. हरजीत प्लेटफार्म पर खड़ा है. प्लेटफार्म पर रोशनी बहुत मद्धिम है और उमस बहुत ज्यादा.

गार्ड की सीटी सुनाई देती है तो वह अपनी केबिन में आकर

ी की बगल में बैठ जाता है. चारों चुप-चुप बैठे हैं. अलीगढ़ की खबर आज की सबसे ताजा खबर है. शाम के अखबारों र है कि आसपास के जिलों में भी तनाव बढ़ गया है. शाम खबार दोनों खिड़कियों के बीच की टेबिल पर रखा हुआ है.

हरजीत बोलता है, "कल अलीगढ़ में दंगई एक मकान में ये. घर में उस समय एक बूढ़ा था—सत्तर साल का और ड़की थी—आठ साल की. दंगइयों ने दोनों को छुरों से ोदकर मार डाला. पिताजी बताते हैं कि सन सैंतालीस के में दंगई छोटे-छोटे बच्चों को नेजों की नोक पर उछाल ...क्या वही दिन वापस आ रहे हैं?"

ऐसा लगता है जैसे सभी के चेहरों पर पसीने की बूंदें झलक हैं.

गाड़ी चल देती है. धीरे-धीरे वह प्लेटफार्म से बाहर निकल है. यमुना पुल पर गाड़ी आती है तो हाशमी उठकर केबिन रवाजा बंद करके चिटकनी लगा देता है. फिर सभी लोग कुछ पढ़ने में तल्लीन हो जाते हैं.

किसी ने केबिन का दरवाजा खटखटाया है. लोबो दरवाजा ता है. कंडक्टर आकर टिकट चेक करता है. और पूछता है, लोग बेड टी कहां लेंगे?"

"कानपुर में." लोबो कहता है.

नहीं," हरजीत कहता है. "यह गाड़ी कानपुर तो सुबह चार पहुंच जाती है . . . चाय फतेपुर में भिजवाइएगा."

ठीक है साब." कहकर कंडक्टर केबिन से बाहर निकल है और दरवाजा बंद करता जाता है.

हाशमी उठता है और दरवाजे की चिटकनी लगा देता है.

बाद के प्लेटफार्म को छोड़कर गाड़ी आगे बढ़ती है बो अपने बैग से बोतल निकालकर मेज पर रख देता है. है, "बड़ी मुश्किल से आज इसका इंतजाम हुआ. मुझे ही नहीं था कि आज 'ड्राइडे' है."

र्मा अपना टिफिन कैरियर खोलता है जिसके ऊपरी डिब्बे हुआ सलाद रखा है. हाशमी और हरजीत भी अपने-अपने ालते हैं. लोबो बोतल खोलकर थोड़ी-थोड़ी ह्विस्की सबके ों में डाल देता है. हरजीत वाटर बॉटल से गिलासों में डालता है.

गिलासों को टकराते हैं और पीने लगते हैं.

तीन घूंट पीने के बाद शर्मा बोलता है, "यार हाशमी, मानना. मुसलमान इस देश के प्रति कभी वफादार नहीं ता."

जीत और लोबो को इस समय यह चर्चा अच्छी नहीं हाशमी शर्मा की बात सुनता है और चुप रहता है. फिर हुई शराब को गले में उतार देता है और गिलास को रख देता है, "शर्मा, एक बात मैं भी कहूं. यह देश क्या है? पहाड़! जमीन! नहीं, यह देश नहीं हैं. देश हैं यहां वाले लोग. . .तुम जो अपने आपको हिंदू कहते हो. मन में हमारे लिए नफरत है और उसके दिल से यह नफरत सकती."

लोबो गिलास फिर भर देता है.

"देखो," वह कहता है, "शर्मा हाशमी से नफरत नहीं करता और न ही हाशमी कभी शर्मा के प्रति बेवफाई करेगा. पर जब हम अपने-अपने मजहबी माहौल में पहुंचते हैं तो हम बदलने लगते हैं. तब हरजीत पक्का अकाली बन जाता है और मुझे अपना कैथोलिक होना याद आने लगता है.'"

हरजीत एक घूंट में गिलास खत्म कर देता है, "दोस्तो, मुझे लगता है, सारी लड़ाई ताकत और दौलत की लड़ाई है. आदमी सत्ता हथियाना चाहता है. इससे उसका अहं तुष्ट होता है. सत्ता के पीछे-पीछे दौलत आती है. अब इस लड़ाई को चाहे धर्म के नाम पर लड़ो, चाहे देश के नाम पर लड़ो, चाहे किसी चमकदार वाद के नाम पर लड़ो. . .बस लड़ो. . . लड़ो. . .और लड़ते चले जाओ!"

◘

बोतल आधी से ज्यादा खत्म हो चुकी है. गाड़ी अपनी पूरी रफ्तार से भागती चली जा रही है. लोबो ने बातचीत का रुख दूसरी तरफ मोड़ दिया है. अब बातचीत के केंद्र में प्रकाशन संस्था के मैनेजिंग डायरेक्टर मिस्टर रामानी आ गये हैं. लोबो ने अपनी अनेक स्रोतों से प्राप्त उस जानकारी को फिर दुहरा दिया है कि मिस्टर रामानी पहले इस फर्म में प्रूफ रीडर के तौर पर भरती हुए थे. धीरे-धीरे वे अंग्रेज मालिकों के चहेते बनते चले गये. उसी जमाने में वे कंपनी के एक डायरेक्टर बन गये. जब अंग्रेजों ने इसे छोड़ने का फैसला किया तो सब कुछ मिस्टर रामानी के पास आ गया.

आज मिस्टर रामानी लाखों में खेल रहे हैं.

अलीगढ़ से पहले सभी ने खाना खा लिया है. यहां तक किसी ने सोने की बात नहीं कही है. सभी के मन में था—पहले अलीगढ़ निकल जाये.

अलीगढ़ स्टेशन पर लगभग सन्नाटा-सा छाया हुआ है. शर्मा ने खिड़कियों के शीशे नीचे गिरा दिये हैं. चारों लोग शीशे से ही बाहर झांकने की कोशिश कर रहे हैं. इक्का-दुक्का चायवाला आवाज लगाता हुआ घूम रहा है. पुलिस के दो-चार सिपाहियों के बूटों की आवाज उस सन्नाटे में बज-सी रही है.

गाड़ी अलीगढ़ स्टेशन छोड़ती है तो सभी राहत की सांस लेते हैं. सभी अपने-अपने बिस्तर बिछाने लगते हैं. शर्मा और हाशमी नीचे की बर्थों पर हैं तथा लोबो और हरजीत ऊपर की बर्थों पर. सोने से पहले शर्मा उठकर केबिन के दरवाजे की चिटकनी और लैच को अच्छी तरह देख लेता है और हल्की नीली रोशनी छोड़कर बाकी बत्तियां बुझा देता है.

◘

लोबो के खर्राटों की आवाज सबसे पहले आती है. फिर हरजीत की नाक भी हल्की-हल्की बजने लगती है. शर्मा और हाशमी एक-दूसरे की ओर पीठ किये सोने की कोशिश करने लगते हैं. उन्हें भी नींद का पहला झोंका आ गया है.

तभी शर्मा की आवाज सुनाई देती है, "हाशमी. . .हाशमी!"

हाशमी एकदम चौंककर उठता है, "क्या है. . . क्या है?"

लघुकथा

कौन भले

▣ उपेंद्रप्रसाद राय

गर्मी का मौसम. शाम का वक्त. सड़क पर खरीदारी करने वालों की रेल-पेल. अचानक एक घर का दरवाजा खुला, पांच व्यक्ति घबराये से बाहर निकले और आती-जाती भीड़-भाड़ में गुम हो गये. घर से रोने की आवाज आ रही थी. लोग-बाग अपने-अपने कामों में व्यस्त! कौन आया और कौन गया, कौन हंसा और कौन रोया, किसे इतनी फुरसत इन फालतू बातों को जानने की! किंतु पास की सड़क के किनारे बैंगन-भाजा बेचने वाली परबतिया से रहा नहीं गया. वह दौड़ी आयी लेकिन घर में घुसते ही अवाक् रह गयी, "हाय राम! यह क्या हो गया? कैसे हो गया?"

देह पर के सारे कपड़े अस्त-व्यस्त, नुचे-फटे; साड़ी खून से सनी हुई, चेहरे और छाती पर काले-काले निशान! दर्द से छटपटाती रामपियारी नंगी जमीन पर चित्त पड़ी थी. परबतिया ने आगे बढ़कर उसके कपड़े ठीक किये.

इसी समय गस्त लगाती पुलिस की गाड़ी उधर से गुजर रही थी. गाड़ी रुकी और कुछ पुलिस वाले दनदनाते हुए घर में घुस गये.

"क्यों, क्या बात है? रो क्यों रही हो? कपड़े पर यह खून कहां से आया? क्या हुआ?" उन्होंने पूछा.

रामपियारी कराहती हुई उठ बैठी और कपड़े ठीक करती हुई बोली, "कुछ नहीं. होगा क्या? नल पर पानी लाने गयी थी. फिसल गयी.

पुलिसवालों ने क्षणभर फटे कपड़ों से झांकती उसकी देह को घूरा. फिर एक-दूसरे की आंखों में आंखें डालकर गंदे ढंग से मुस्कराये और डंडे फटकारते हुए बाहर निकल गये. क्षणभर में उनकी गाड़ी हॉर्न बजाती आगे बढ़ गयी.

परबतिया ने झट से दरवाजा बंद किया; रामपियारी को एक गिलास पानी लाकर दिया और पूछा, "क्योंजी, यह तुमने क्या किया? हाकिम लोग आये थे. उन्हें सच्ची बात बता दी होती तो वे कलमुंहों को पकड़कर सजा तो देते. उन्हें अपने पाप का मजा तो चखाते!"

"कैसी बात बोलती हो, दीदी! वे कलमुंहे तो पांच ही थे. अगर मैं सच्ची बात बता देती तो ये लोग पूछताछ करने के बहाने थाने पर ले जाते और पच्चीसों पुलिसवाले मुझे रातभर जगाये रखते, देखा नहीं था, बेचारी दुक्खो की क्या दुरगत की थी इन्होंने?" रामपियारी ने अपने आंसू पोंछते हुए कहा. □

"गाड़ी रुकी हुई है." शर्मा खिड़की से कुछ देखने की कोशि करता है.

हाशमी झटपट उठकर बत्ती जलाने के लिए स्विच ऑ करता है. पर बत्ती नहीं जलती. तभी वह अनुभव करता है केबिन के पंखे भी बंद हैं और उमस बढ़ गयी है. लोबो और हर की नींद भी गर्मी के कारण टूट जाती है.

लोबो लेटे-लेटे ही कहता है, "शर्मा, गाड़ी रुकी हुई है क्य और इतनी गर्मी क्यों हो रही है."

हरजीत कहता है, "अरे हाशमी, लाइट तो ऑन कर दो

"लाइट गायब है." हाशमी और शर्मा के मुंह से एक सा निकलता है.

लोबो और हरजीत नीचे उतर आते हैं.

गाड़ी खड़ी है. चारों और घुप अंधेरा है. आकाश में एक तारा टिमटिमाता हुआ नजर नहीं आ रहा है.

हाशमी अपने पास हरजीत को कंधे से हिलाते हुए कहता "तुम्हें कुछ शोर नहीं सुनाई दे रहा है?"

सभी ध्यान लगाकर सुनने लगते हैं. आंखें फाड़-फाड़ दूर अंधेरे में कुछ देखने की कोशिश करते हैं. दूर से सांय-सांय आवाज आ रही है, जैसे कहीं शोर हो रहा हो.

लोबो उठकर दरवाजा खोलने लगता है.

"दरवाजा मत खोलो. . . "हाशमी चीख उठता है.

केबिन में इतना अंधेरा है कि किसी को किसी की श साफ नहीं दिखाई दे रही है. शर्मा लोहे की सरियों की खिड़ से इंजिन की ओर देखने की कोशिश कर रहा है. पर अंधेरे में आ के डिब्बों की खामोश कतार के अलावा और कुछ न दिखाई देता.

"यार, बाहर निकलकर पता तो लगाएं कि आखिर बा क्या है?" हरजीत कहता है.

"जरा कंडक्टर से ही पूछकर देखें." लोबो कहता है.

"चुपचाप बैठे रहो." शर्मा कड़ककर कहता है.

सभी को लगता है, शोर बढ़ता जा रहा है और पास-पा आता जा रहा है.

▣

तभी एक बहुत जोर का धमाका होता है. कोई भारी औ सख्त चीज शर्मा की खिड़की से लगे सरियों से टकराती है औ नीचे गिर जाती है. एक चीख और दहशत केबिन में भर जाती शर्मा और हाशमी जल्दी-जल्दी अपनी खिड़कियों के शटर औ शीशे नीचे गिरा देते हैं.

केबिन में घुप अंधेरा छा जाता है.

सभी को एक-दूसरे की सांसों की आवाज साफ सुनाई रही है.

केबिन चारों ओर से बंद है. फिर भी ऐसा लग रहा है औ बाहर बेहिसाब शोर फैला हुआ है.

पसीने से तर-बतर और सहमे हुए आठ हाथ आपस में ए दूसरे को पलोसते जा रहे हैं.

● एच-108, शिवाजी पार्क, नयी दिल्ली-110026

खुदा सही सलामत है

"खुदा सही सलामत है!" यह कोई खबर नहीं है, क्योंकि खुदा तो जहां का भी होगा—आसमान का या जमीन का —सही सलामत ही होगा. सवाल तो सिर्फ बंदों की सलामती का है. बंदों की सलामती की पड़ताल करते रवींद्र कालिया ने इन्हें अपने उपन्यास के पात्रों में ढाला है. ये पात्र किसी एक गली के होते हुए भी एक गली, एक शहर या एक युग तक सीमित नहीं रहते बल्कि पूरी इंसानियत का प्रतिनिधित्व करते हैं. ये आपके सामने आते हैं और अपनी छोटी-सी भूमिका निभाकर चले जाते हैं. और पीछे छोड़ जाते हैं एक सवाल—बंदों की सलामती का सवाल!

अगस्त, अंक-2 : 1980 में प्रकाशित 'हुस्नाबाई का भाषण' उपन्यास की शुरूआत थी. पहली किस्त में आपकी मुलाकात हुई थी शिवलाल से जिसे अपनी चक्की के लिए कबाड़ी से चोरी का एक पट्टा खरीदने के जुर्म में पुलिस पकड़ ले गयी थी और पास-पड़ोस के लोग उसकी बीवी गुलाबदेई को पहले से आश्वासन तो देते रहे, पर आड़े वक्त सभी ने हाथ खींच लिये. फिर आप मिले हैदरी बी से दूसरी किस्त में जिसने जब देखा कि वाकर मियां का इलाज ठीक तरह से नहीं किया जा रहा है तो अस्पताल को ही कर्बला बना दिया था. इस बार हाजिर है मल्लू...

• रवींद्र कालिया

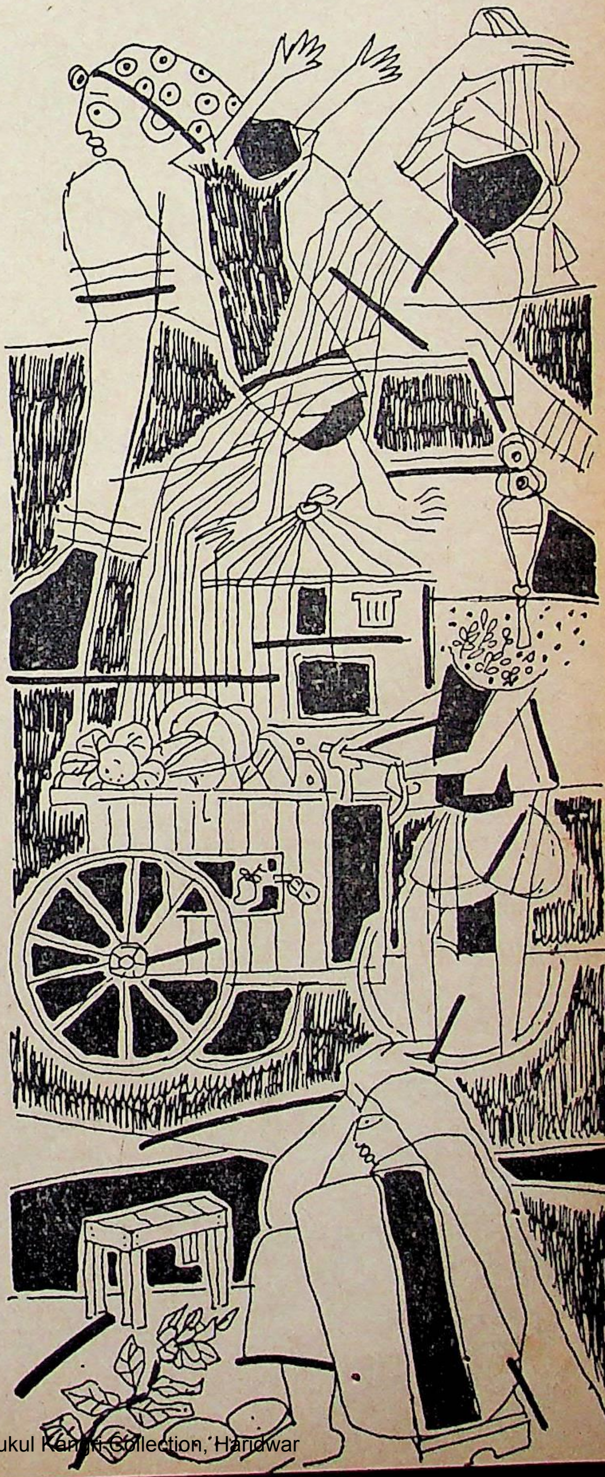

ल्लू इकबालगंज के आसपास सब्जी का ठेला लगाता था. उसके पास न कोई घर था, न कोई सामान. वह दुनिया में यत अकेला था. एक दयालु सरदारजी ने एक बार उसकी राम-नी सुनकर उसे एक ठेला दिलवा दिया था. मल्लू दिन भर ठेले सब्जी लगाता, शाम को बची हुई सब्जी ठेले के नीचे टोकरों टकाकर ठेले पर ही सो जाता. मल्लू था और ठेला था. जहां हो जाती वह ठेला खड़ा करके उस पर टाट बिछाकर सो जाता. की उम्र पचास के आसपास होगी. यह संयोग ही है कि जाड़ों क सर्द रात को मल्लू ने चमेली के घर के पास ठेला खड़ा किया टाट जोड़कर ठेले पर लेट गया. चमेली के यहां उस दिन दाल थी. अचानक साहिल भागता हुआ बाहर गया और गेंद की एक प्याज उछालते हुए चला आया.

"मल्लू भाई, कल हरी मिर्च भी लायेंगे." साहिल ने कहा.

"यह मल्लू भाई कौन है?"

"हमारा दोस्त है."

"कहां है?"

"बाहर. आज उसका ठेला हमारे ही घर की दीवार से लगा है. अम्मा, यह दूसरी वाली कोठरी अब खाली ही तो पड़ी रहती है, अगर मल्लू भाई को दे दें तो वे रोज दो प्याज और कुछ हरी मिर्चें तो दे ही दिया करेंगे." साहिल ने कहा.

चमेली ने अपने कानों पर दोनों तरफ चश्मे का धागा लपेटा और लालटेन लेकर बाहर चली आयी. जब से हसीना के अंग उभरने लगे थे, चमेली को उसकी बहुत चिंता सताती थी. कहीं कोई बदमाश किसी बुरे इरादे से तो नहीं आ टपका? साहिल ने अम्मा के पास से लालटेन पकड़ ली और अम्मा साहिल के पीछे लाठी टेकती चल पड़ी.

मल्लू ठेले पर टाट बिछाकर और टाट ओढ़कर अभी लेटा ही था कि उसके कानों में आवाज आयी, "कौन है जो इस कड़कते जाड़े में यहां सो रहा है?"

मल्लू जाड़े से कांप रहा था, बोला, "मैं हूं. . .दुनिया में कोई नहीं. एक ठेला है और मैं हूं. सब्जी बेचता हूं. होटल में खा के कहीं भी सो लेता हूं."

"काफी घाघ आदमी दिखाई पड़ रहे हो. अभी दारोगाजी को बुलवाकर तुम्हारी सारी बदमाशी निकलवा दूंगी." चमेली को उसकी बात बहुत जाली मालूम हुई.

"देखिए बाईजी, आप फिजूल में बिगड़ रही हैं. मैं एक लावारिस और बदनसीब इंसान हूं. सब्जी का ठेला लगाता हूं. जो मिलता है उसी में खुश हूं. हराम की कमाई मुझे हराम है." मल्लू बोला. फिर गाड़ी से उतरा और आगे जाने लगा.

"रुको भैया!" चमेली सहसा आर्द्र हो उठी, "तुम भी वक्त के सताये हुए आदमी मालूम देते हो. इतने जाड़े में भला कोई खुले आसमान के नीचे सो सकता है!"

"इसकी मैंने कभी फिकिर नहीं की." मल्लू बोला और गाड़ी ठेलकर आगे बढ़ गया, "खुले आसमान के नीचे ही सोना पड़ेगा. लगता है, खुदा ने अभी तक मेरे लिए कोई छत या दीवार नहीं बनवायी."

▣

कोठरी में पहुंचकर चमेली का मन बहुत उदास हो गया. न जाने कौन दुःख का मारा आदमी था. वह खुद उससे कई बार आलू वगैरह खरीद चुकी थी, मगर अंधेरे में पहचान न पायी.

"मुझे उसे इस तरह डांटना नहीं चाहिए था." चमेली ने प्याज तोड़ते हुए साहिल से कहा, "भला आदमी मालूम देता था. लगता है, खुदा ने मेरा इम्तिहान लेने के लिए उसे भेजा था."

चमेली पश्चाताप करती हुई सो गयी.

अगले रोज लगभग उसी समय साहिल भागता हुआ आया और बोला "अम्मा, कल जो ठेलेवाला आया था, वह चकैया-नीम पर खड़ा है."

"खुदा तुम्हारा भला करे, तू उसे बुला ला. मैं उससे मुआफी मांगना चाहती हूं."

साहिल थोड़ी देर में उसे अपने साथ लिवा लाया. साहिल के हाथ में एक बड़ा प्याज और कुछ हरी मिर्चें थीं.

"बाईजी आदाब!" मल्लू आते ही बोला.

"क्या नाम है जी आपका? मुझे तो कल बड़ा अफसोस होता रहा कि मैंने दरवाजे पर आये गर्जमंद को चोट पहुंचा दी. आपसे मुआफी मांगना चाहती थी."

"आप बहुत खुदातर्स औरत हैं. मुझे तो ज्यादा फर्क नहीं प रात चकैयानीम के तले आराम से सोया. हां, रात को किसी प ने बड़ी-सी बीट जरूर कर दी, जिससे मुझे आधी रात को उ टाट धोना पड़ा. बहुत बदबू आ रही थी."

"आपका नाम क्या है?"

"मल्लू."

"मल्लू?"

"हां."

"यह कैसा नाम है? कहां के रहने वाले हैं आप?"

"शायद पंजाब का. बंटवारे के बाद मैंने जब होश सं तो इसी शहर के स्टेशन पर लोगों से भीख मांगते पाया. मैं क से आया था और मेरे मां-बाप का क्या हुआ, नहीं मालूम. शायद किसी अच्छे परिवार का रहा हूंगा. क्योंकि भीख मांगने से हमेशा घिन लगती थी."

"बहुत अफसोस हुआ आपकी दास्तान सुनकर. घर में बंटवा के बाद से हम भी लगातार टूटते चले गये हैं. आप इस मलबे देख रहे हैं. यहां तीन-तीन कमरे थे. सब ढह गये. मैंने इस मकान सस्ते के दिनों में पांच हजार में खरीदा था. मगर पूरा ढह और अब यह कोठरी है और मलबा. बाहर एक ड्योढ़ी थी. . अच्छी. अक्सर वहां फूल मालाएं बिका करती थीं और रात गैस जलते थे. उजाला रहता था. मगर अब तो इस राह से गुजर भी दुश्वार है. छत है मगर दरवाजे नहीं, दरवाजे हैं तो छत नहीं

"खुदा की मर्जी." मल्लू बोला, "मुझे तो कभी छत नसीब नही हुई."

"अगर सिर्फ छत दरकरार हो तो आप रात को आराम सोइए. घर में कोई मरद भी नहीं है. बच्ची जवान हो रही और यह साहिल, जबसे इसके अब्बा गायब हुए हैं, गलियों में भर आवारा कुत्तों की तरह दौड़ता है."

"साहिल, तुम्हें यह सब तो नहीं करना चाहिए."

साहिल को नसीहत वगैरह कभी रास नहीं आयी. वह भाग गया और मल्लू के ठेले से गोभी का फूल निकाल लाया, "म भाई, क्यों न आज गोभी खायी जाये." उसने हांफते हुए क "दरअसल गोभी खाये बहुत बरस बीत गये हैं."

मल्लू नाराज नहीं हुआ, बोला, "देखो बेटा, तू हिफाजत आज ठेला यहीं लगा दे. तुम्हारी अम्मा देवी हैं. मुझे जरूर इत इजाजत दे देंगी कि मैं अब ठेला यहीं लगाकर सोया करूं."

"आप शर्मिंदा कर रहे हैं." चमेली ने कहा, "मैंने जिंदगी बड़ा दुःख पाया है. मैं दूसरों के दुःख को समझ सकती हूं. यह ड्यो है. इसके दरवाजे वक्त की आंधी ले उड़ी है. फिर भी दो-दो ट दोनों तरफ लटका दीजिए. बगल में एक प्रेस है, वहां एक-एक में टाट मिल जायेंगे. खुदा आपका भला करे, आपको झट छत मि जायेगी. तकदीर में हुआ तो दरवाजे भी हासिल हो जायेंगे."

"मेरे लिए तो यह महल की तरह होगा."

"खुश आमदीद!" चमेली ने कहा.

घर में एक खटिया जरूर थी, मगर उसके चारों पाये नि चुके थे और पाटियों के बीच में बांध झूलता रहता था. चमेली

संकोच में कहा, "एक खटिया जरूर है, मगर उसकी हालत मेरी तरह है. आप चाहें तो मरम्मत करवा लें."

मल्लू के पास एक पैट्रोमैक्स था जो ठेले की तिजोरी में बंद ता था. मगर इधर हफ्तों से निकला नहीं था. उसने साहिल से ा, "ये लो भइया चाभी, अंदर से निकाल लाओ. अगर अल्लाह ाथ दिया तो आज ही खटिया पर सोयेंगे. मगर तुम्हें भी साथ में ना पड़ेगा."

साहिल हर उस काम के लिए हमेशा तत्पर रहता था जिसमें मीट दरकरार हो.

"मल्लू भाई, यह गैस जला लो." साहिल तूफान की तरह र गैस उठा लाया था."

मल्लू ने पैट्रोमैक्स जला दिया. जैसे सदियों बाद ड्योढ़ी में कोई लौकिक प्रकाश हो गया हो. शायद दिन में भी वहां इतनी रोशनी ती थी. पूरी ड्योढ़ी के जाले एक साथ उजागर हो गये. दीवारों जैसे वक्त के आंसू सूखकर चिपक गये थे. तरह-तरह के कीड़े, न्होंने जिदगी में कभी रोशनी नहीं देखी थी, रोशनी देखकर इधर-र भागने और उसी प्रक्रिया में पट्-पट् गिरने लगे.

मल्लू को लगा, वह यहां नहीं रह पायेगा. वह डरकर भाग खड़ा ा, मगर उसने साहिल से खटिया मंगवायी. वह इतनी जर्जर चुकी थी कि उसे एक साथ उठाकर लाना असंभव था. दो-तीन र में साहिल खटिया उठा लाया. मल्लू ने खटिया देखी तो समझ ा, उसके भाग्य में अभी खटिया पर सोना नहीं बदा. खटिया के मजबूत थे. मगर सब अलग थे. मल्लू ने तय किया कि वह चमेली दो-चार रुपये देगा कि सुबह किसी बढ़ई को बुलाकर खटिया रवा दे.

ड्योढ़ी का फर्श भी जगह-जगह से उखड़ चुका था. वहां सो की कोई संभावना न देख, मल्लू वापिस चकैयानीम की ओर मैक्स थामे चल पड़ा. साहिल और साहिल की अम्मा दोनों को निराशा हुई.

वाहर बहुत सर्दी थी. मल्लू के दांत किटकिटाने लगे. मगर मल्लू ने जीवन में ऐसी कई सर्दियां देख चुका था. वह चकैयानीम नीचे जल्द से जल्द पहुंच जाना चाहता था ताकि जल्दी से दो-टाट और फटा एक हुआ कंबल ओढ़कर लेट जाये.

मल्लू ने रात किसी तरह काटी और सुबह उठते ही उसे उस्मान गया. उस्मान के ग्यारह बच्चे थे और वह खानदानी बढ़ई चकैयानीम से जरा हटाकर ही उसका घर था. दरवाजे के बाहर ज्यों धूप फैलती, उसके बच्चे एक-एक कर निकलने लगते. ने अक्सर बच्चों को बनियान-चड्डी में ही देखा है. इतने में भी वे बच्चे बिना किसी गर्म कपड़े के दिखाई देते.

उस्मान कुछ परेशान-सा दिख रहा था. वह शायद नमाज र लौट रहा था. उसने एक हल्की-सी लोई ओढ़ रखी थी और ड़ा हुआ-सा चला जा रहा था.

"उस्मान भाई, सलामालैकुम."

"वालैकुम असलाम!" उस्मान उसके पास आकर खड़ा हो , "क्या बात है मल्लू भाई, आज यहां डेरा जमाये हो?"

"जहां शाम हो जाये हमारा डेरा वहीं लग जाता है." मल्लू हा और अपना बगैर कमानी का चश्मा नाक पर रखकर कानों डोरी लपेटते हुए बोला, "अमां यार, कल से चमेली बाई की ड्योढ़ी में सोने का इरादा है."

उस्मान हंसा, "अरे वह बहुत जालिम बुढ़िया है. हो सकता है तुम्हें गैया की तरह बाहर हांक दे. उसके दर पर किसी को पनाह मिली हो, मुझे इसका कोई इलम नहीं. बीच में चक्की वाली उसके यहां जरूर रही, मगर शिवलाल चिल्ला रहा था कि उसकी लुगाई से वह पेशा करवाती है."

"वह बकवास करती है. वह तो एक खुदातर्स और मुसीबतजदा औरत है. मैं भी मुफ्त नहीं रहूंगा. जो बन पड़ेगा मैं उसका किराया दूंगा."

"अरे, यह इस मुहल्ले की रवायत है कि किरायेदार ही कुछ समय बाद मालिक मकान बन जाते हैं. आज नवाब साहब को देखते हो. सलीमन की पूरी हवेली पर कब्जा कर लिये हैं. तुम्हारी तरह शुरूआत ड्योढ़ी से ही की थी."

"उस्मान भाई, मुझे यों शर्मिंदा न करो. चमेली से मैंने कल इजाजत ले ली थी. उसने एक खटिया भी देने का वादा किया था, मगर माशाअल्लाह वैसी खटिया भी मैंने आज तक नहीं देखी. एक पाये पर चमगादढ़ की तरह बांध लटक रहा था और एक-एक पाया एक-एक मन का होगा."

"पुराने वक्त की कोई यादगार होगी."

"जरूर," मल्लू बोला, "अगर वक्त मिले तो उस्मान भाई, जरा खटिया देखकर बता दो कि मरम्मत के काबिल है या नहीं. अगर मरम्मत के लायक हो तो कितने में तैयार हो जायेगी."

"क्यों नहीं, क्यों नहीं." उस्मान खुश हो गया. घर में फूटी कौड़ी भी नहीं थी. उस्मान इसी चिंता में निकला था कि कहीं कुछ हाथ लग जाये. दिन भर उसके बच्चे खाली पेटियां खरीदते और उनके छोटे-छोटे संदूक बनाकर ठेले-खोमचे वालों में बेचते. इधर कुछ ऐसी मंदी चल रही थी कि उस्मान के यहां लगभग एक दर्जन छोटे-बड़े संदूक रखे रह गये थे, कोई ग्राहक न मिल पाया था.

"देखो, जरा दिन निकल आये, मैं जाकर खटिया देख आऊंगा. इधर कुछ मसरूफ हूं. मिलिटरी का एक ठेला ले रखा है. काम खत्म हो तो कुछ पैसे हाथ में आयें. इधर तो सब उसी में घुसता चला जा रहा है. मगर तुम बेफिक्र रहो. मैं जरूर आज कोई-न-कोई इंतजाम करूंगा."

मल्लू भी नल पर दातुन-कुल्ले में व्यस्त हो गया. सामने अनवर मियां के ढाबे से धुंआ उठ रहा था, गली में थोड़ी आमदोरफ्त भी बढ़ गयी थी. एक-दो दूध वाले साइकिल पर खटर-पटर मचाते निकल रहे थे और एक अखबार वाला. 'आज की ताजा खबर' कहते-कहते दूर गली में चला गया था. नीम पर परिंदों का शोर बढ़ गया था. मस्जिद से अजान की ऊंची आवाज सारे माहौल में लहरा रही थी. दूसरी तरफ गुरुद्वारों से भी ग्रंथी साहब के पाठ की आवाज आने लगी थी, किसी दूसरी तरफ से भक्तिपरक फिल्मी रिकार्ड भी बजने लगे थे. ईश्वर और वाहेगुरु के संदेश ऊपर आसमान में एक दूसरे में समा रहे थे.

मल्लू को मंडी के लिए देर हो रही थी. आज उसका इरादा सिर्फ आलू खरीदने का था. मल्लू एक ही सब्जी खरीदने का हामी था. आलू सस्ते हुए तो आलू, वरना प्याज, गोभी या मटर. इधर हरा चना भी आने लगा था, उसका इरादा था कि अगर चने निकालने में

ग़ज़लें

वो जो आजिज़ आ के अपनी ज़िंदगी से मर गये,
उनसे क्या उम्मीद थी और देखिए क्या कर गये!

दरअसल हम उम्र भर अंधी गुफ़ाओं में रहे,
इसलिए कल धूप में साये से अपने डर गये!

इस इमारत में करिश्मे ही करिश्मे देखिए,
रोज़ रखे जा रहे हैं नींव में पत्थर नये!

क़ैद से छूटे मगर परवाज़ के क़ाबिल न थे,
उन परिंदों के निकलने लग गये हैं पर नये!

बट रहा है तेल मिट्टी का, किसी ने कह दिया,
छोड़कर बच्चे मदरसा अपने-अपने घर गये!

कल वतन के नाम पर कितने उतारे जा चुके,
आज आयेंगे किधर से देखना है सिर नये!

एक मुद्दत से रुका था क़ाफ़िला जिस ठौर पर,
उस जगह अब गाड़ने हैं मील के पत्थर नये!

▣ **चन्चल**

रात भर एक जिस्म था जिस पर कई खंजर चले,
दिन निकल आया तो चारों सिम्त से पत्थर चले.

अपने सब मंजर लुटाकर शाम रुखसत हो गयी,
तुम भी वापस लौट जाओ हम भी अपने घर चले.

नींद की सारी तनावें टूटकर गिरती गयीं,
मुझको तन्हा छोड़कर ख्वाबों के सब पैकर चले.

कोई सूरत हो कि टूटे भी सुकूने दिल 'शमीम',
यह जो आंधी जिस्म के बाहर है, अब अंदर चले.

■ **शमीम फारूकी**

में चमेली मदद कर दे तो वह चने की चाट भी बेचना शुरू करेगा. चमेली की भी कुछ मदद हो जायेगी. मगर चमेली को बीड़ी बनाने से ही फुर्सत न थी. मां, बेटा और बिटिया दिन-रात ही बीड़ी बनाते देखे जाते थे. मुहल्ले में सुबह-सुबह कूड़े के नाम पर बीड़ी के छो छोटे पत्तों के ढेर ही जगह-जगह नजर आते.

"अनवर मियां, अभी चाय को कितनी देर है?" मल्लू तौलिए से टांगें पोंछते हुए आवाज दी.

"कोई देर नहीं है, बस चले आओ."

मल्लू अनवर मियां के चबूतरे पर चढ़ गया. अंदर स्टूल प असहाक मियां बहुत गौर से 'सियासत' पढ़ रहे थे. बगल के स्टू पर उनकी टोपी रखी थी और एक तरफ छड़ी. अंगीठी जलाने अंदर के कमरे में धुआं भर गया था और बाहर दो-एक कुत्ते ब लालसा से अनवर मियां की ओर पूंछ हिलाते हुए एकटक ता रहे थे.

मल्लू अंगीठी ताप रहा था और बड़ी बेसब्री से पानी उबलने का इंतजार कर रहा था. उसे मंडी पहुंचने की जल्दी थी. वह जितनी बार अनवर से पूछता कि अभी कितनी देर है, अवनर पतीले में उंगली डालकर पानी छूकर देखता. आखिर पानी उबलने लगा. अनवर मियां ने उबलते हुए पानी में चाय-पत्ती, दूध मिलाकर पतीला ढक दिया और मल्लू के लिए गिलास धोने लगा. एक गिलास उसने असहाक मियां के लिए धोया और एक अपने लिए. फिर उसने तीनों गिलासों के ऊपर बार-बार छलनी रखकर चाय उंडेल दी.

मल्लू अभी गिलास होंठ तक ही ले गया था कि उस्मान भाई नजर आये. उस्मान भाई न इस बीच न सिर्फ मल्लू की खटिया का मुआयना कर आये थे बल्कि चमेली के सामने मल्लू की तारीफों का पुल भी बांध आये थे.

"वह एक अभागा इंसान हैं, आज तक किसी से उलझते मैंने उसे नहीं देखा. ऐसा इंसान पेड़ों के नीचे रात बिताये, यह किसी भी मुसलमान के लिए शर्म की बात है. आपके इस सुझाव पर कि वह ड्योढ़ी में रात बिता ले, अल्लाहताला बहुत खुश होंगे. अल्लाह ने चाहा तो यह घर फिर से बस जायेगा."

उसके बाद उस्मान भाई ने खटिया का मुआयना किया. बा गल चुका था, पायों को भी कहीं-कहीं से दीमक चाट चुकी थी. मगर लकड़ी चूंकि बहुत मजबूत थी इसलिए दीमक अंदर तक घुस-पै नहीं कर पायी थी. दीमक एक सीधी लकीर इधर-उधर बनाकर र गयी थी. उस्मान भाई ने घटिया की भरपूर प्रशंसा की, "ऐसी खटिया आज सौ रुपये में भी न बने. बहरहाल अगर मल्लू कुछ पैसे खर्च करे तो उसकी जिंदगी भर के लिए तो यह खाट काफी है."

चमेली को यह सोचकर भी तसल्ली हो रही थी कि साहिल शायद मल्लू के आने पर सुधर जाये. और कुछ नहीं, सब्जी बेचने में ही उसकी मदद करने लगे. वह दिन भर पतंगों के पीछे भागता था. घर में जवान लड़की चमेली के सीने पर एक सिल की तरह बैठी थी.

"उस्मान भाई, कुछ साहिल के लिए भी सोचिए. वह दिन भर आवारा कुत्तों की तरह दौड़ता है. मुहर्रम पर मातम कर लेने से ही आदमी जिंदा नहीं रहेगा. कल बता रहा था कि चहल्लुम का मातम करने जौनपुर जायेगा. आप ही कुछ समझाइए उसे."

"सब ठीक हो जायेगा अम्मा. मैं मिलिटरी के ठीके से खाली जाऊं तो साहब से जिक्र करूंगा. खुदा ने चाहा तो वे जरूर उसे ट्री में काम दिलवा देंगे."

उस्मान भाई ज्यादा देर तक वहां न रुक सके. उन्हें भय था कहीं मल्लू मंडी की तरफ न चला जा चुका हो. चमेली से विदा कर वह लंबे-लंब डग भरते हुए अनवर मियां के यहां पहुंचे थे.

"अनवर भाई, एक गर्म चाय और दो ठो बिस्कुट तो दो ही, गरेट पहले बढ़ा दो."

सिगरेट सुलगाकर वह वहीं सीढ़ी पर उकड़ूं बैठ गये.

"मल्लू भाई, खटिया मैं देख आया हूं. आज तैयार करवा दूंगा, कि काम ज्यादा है. बांध तो पूरा ही बदलना होगा. पायों पर कहीं-कहीं दीमक लग चुके हैं. मेरे पास एक तेल है. वह लगा तो दीमक हमेशा-हमेशा के लिए खत्म हो जायेगी."

"बहुत मेहरबानी होगी, उस्मान भाई."

"ऐसा करो, अभी दस-पंद्रह रुपये दे दो. कम-ज्यादा निकला तो म को हिसाब हो जायेगा."

सुबह-सुबह दस रुपये देने के मूड में नहीं था. उसका दा था कि शाम को लौटकर अपने सामने खटिया बनवा ले. र उस पर ज्यादा पैसा खर्च होता नजर आये तो एक नयी या ही खरीद लाये.

"नयी खटिया कितने की आयेगी?"

"ऐसी खटिया तो जमींदारी के साथ ही गायब हो गयी. अब चाहो तो सौ में भी नहीं मिले."

"मेरे लिए तो एक छोटी-सी खटिया ही काफी होगी."

"फिर भी बीस से कम में न मिलेगी और यहां तो मैं दस में ही फिट कर दूंगा."

उस्मान मियां बहुत परेशान हो उठे थे. उन्होंने दस-पंद्रह पर जोर न देकर इस बार दस रुपये पर ही जोर दिया. अनवर यां ने उसे यह सोचकर ही चाय दी थी कि उसके पास एकाध या जरूर होगा. दो बरस पहले अनवर और उस्मान की ऐसी हुई थी कि दोनों को उम्र भर याद रहेगी. उस्मान को लगा कि हाथ से निकल गया तो उसकी बड़ी फजीहत होगी. वह घर च्चों के लिए थोड़ा गोश्त ले जाने की सोच रहा था. बगल में -अभी गोश्त कट रहा था.

"ठीक है उस्मान भाई, शाम को बाजार से लौटकर तय करेंगे."

"मैं तो अभी निकल जाऊंगा कंटोनमेंट की तरफ. बताया था ठीका ले रखा है. न जाने मुलाकात हो या नहीं."

"अरे, मैं आपको खोज लूंगा."

"जैसी मर्जी." उस्मान ने कहा, "आपके लिए मैंने सुबह-सुबह टा खो दिया. वजीर हसन साहब के यहां जाना था मगर यह कर टाल गया कि वह तो आराम फरमाते होंगे, तुम्हारी तरह ड़े में न किटकिटा रहे होंगे."

मल्लू को बातों में और दिलचस्पी न थी. वह जल्द से जल्द पहुंच जाना चाहता था. उसने चाय का पैसा दिया और की तरफ बढ़ गया.

उस्मान मियां वहीं बैठे रह गये. उन्होंने तहमद बांधा हुआ था और उसे बार-बार खोंसकर मजबूती से बांध रहे थे. घर में फूटी कौड़ी न थी. अनवर से उधार न लेने की कसम वह खा चुके थे. बड़े इत्मीनान से उन्होंने अनवर से पूछा, "अनवर भाई, कै पैसे हुए."

"आठ आने." अनवर पहले ही जोड़कर तैयार बैठा था.

"ला, एक सिगरेट और पिला."

उस्मान भाई ने सिगरेट सुलगायी और वहीं पटरे पर बैठे-बैठे फूकने लगे. उस्मान भाई की लंबी-तगड़ी देह थी. वह दाढ़ी नहीं रखे थे. मगर दो-चार दिन की शेव हमेशा ही बढ़ी रहती थी. सिर पर वह जरूर रामपुरी काली टोपी पहने रहता. लुंगी हमेशा शोख रंग की होती. उस्मान भाई को अगर आप ईद के रोज देखें तो पहचान नहीं सकते. नयी लुंगी, नयी टोपी, नयी कमीज और बेदाग ओजस्वी चेहरे को देखकर अनुमान भी नहीं लगाया जा सकता कि यह आदमी बढ़ईगिरी करता है या इसका कोई आरा या लकड़ी की टाल है.

इस समय उस्मान मियां की हालत पतली थी. उसके ऊपर एक कमीने होटल वाले का पचास पैसे का कर्ज चढ़ गया था और वह अपनी कसम के मुताबिक तुरंत ही चुकाना चाहता था. मुहल्ले में कोई ऐसा न होगा, जो खुशी-खुशी उसे एक-दो रुपये भी दे सके. दूसरे शब्दों में कहा जाये तो कोई शख्स ऐसा मुश्किल से मिलेगा जो उस्मान मियां को उधार देकर वापसी की आशा रखता हो. दूसरे किसी से आठ पैसे उधार लेना भी तो तौहीन की बात थी. अपने पंद्रह वर्षों के वैवाहिक जीवन में उसने ग्यारह बच्चे पैदा किये थे. तीन बच्चे अल्लाह को प्यारे हो चुके थे. मगर बच्चों का वह कोई खास खर्चा भी न कर पाता था. ईद पर शादी से पहले भी उसके यहां एक ही बकरा कटता था, अब भी एक ही. घर में जो भी कपड़ा आता था, वह यके बाद दीगरे सभी बच्चों के काम आता था. दस बरस पुराने कपड़े घर में आज भी दिखाई देते थे.

आखिर उसे एक तरकीब सूझी. वह वहां से उठकर सामने हैदर साहब की दीवार के पास पेशाब करने लगा, वहां से वह बायें हाथ सरक गया. अंदर अनवर कुछ व्यस्त हो गया था, क्योंकि एक साथ तीन लोग तभी दाखिल हुए थे.

◆

उस्मान सीधा चमेली के यहां गया. चमेली बिस्तर में दुबकी हुक्का गुड़गुड़ा रही थी.

"अम्मा, सुबह तुमने साहिल की बाबत बात की थी. मैं आज छावनी जा रहा हूं. सोचता हूं उसका फार्म भरवा दूं. फार्म तो फकत दो रुपये का है, मगर अगर साहिल ले लिया गया तो तीन-चार सौ लाने लगेगा. पिछले महीने मैंने अपनी खाला के लड़के का फार्म भरवाया था, उस पर तो खुदा की इनायत हो गयी. अब वह गोरखपुर में है और अल्लाह ताला ने चाहा तो इसी माह उसकी शादी भी हो जायेगी."

चमेली यकायक उत्साहित हो गयी.

"देखो हसीना, उस्मान साहब के लिए पान लगा." चमेली ने कहा. उसे यकायक साहिल पर लाड़ आ गया, बोली, "देखो, कैसी लंबी तानकर पड़े हैं. मिलिट्री में जब सुबह-सुबह परेड़ करनी पड़ेगी तो नानी याद आ जायेगी. आप उस्मान भाई फार्म

जरूर आज भरवा दें. दो रुपये मैं आपको जल्द से जल्द चुका दूंगी."

उस्मान मियां ने माथा ठोंक लिया.

उसने चमेली के यहां और अधिक समय नष्ट करना उचित न समझा. उसे मल्लू पर बहुत क्रोध आ रहा था, सुबह-सुबह उसकी अपेक्षाएं जगाकर यकायक गायब हो गया और वह कर्ज के अपमान में ऊपर से नीचे तक सुलग रहा था. इधर हर तरफ मंदी न होती तो क्या उसकी हैसियत एक प्याला चाय पीने की भी नहीं थी? दस-बीस रुपये घर में हमेशा रहते थे. मगर छोटे बेटे ने यकायक बीमार पड़के वे रुपये भी तबाह कर दिये. घर में स्त्रियां बीड़ी बनाकर अपना गुजर चला रही थीं, मगर उसे कोई एक दमड़ी देने को तैयार न था.

▣

सामने सड़क पर इस्माइल खां ईंटें जोड़कर लेई पका रहा था. इस्माइल खां के लिए उस्मान मियां ने अभी पिछले सप्ताह कुछ पटरियां तैयार की थीं मगर इस वादे पर कि इस्माइल खां दीवाली के दूसरे रोज उसको पचीस रुपये का भुगतान करेगा. दीवाली में अभी कुछ रोज बाकी थे. इस्माइल खां का डिब्बे बनाने का छोटा-सा कारखाना था. उसके कारखाने में उस्मान का छोटा बेटा अख्तर भी काम करता था. उस्मान का अख्तर पर भी कोई जोर न था. सब लौंडे अपनी मां के साये में ज्यादा सुरक्षित महसूस करते थे.

उस्मान ने इस्माइल को भी आजमा लेने में कोई हर्ज नहीं समझा. वह उसके पास ही सड़क पर उकड़ू बैठ गया और पतीले में लकड़ी चलाते हुए बोला, "इस्माइल भाई, बीड़ी-वीड़ी हो तो पिलाओ." इस्माइल बीड़ी नहीं पीता था. दूसरे दीवाली यानी सीजन के दिन थे, वह अपना एक क्षण भी नष्ट नहीं करना चाहता था, बोला, "देखो मियां, हम बीड़ी पीते होते तो इतना बड़ा कारखाना खड़ा न कर पाते. बीड़ी तो क्या, कभी पान तक नहीं सूंघा."

दरअसल इस्माइल ने उस्मान का चेहरा देखकर ही अंदाज कर लिया था कि उसके इरादे नेक नहीं हैं. पेशतर इसके कि उस्मान कुछ कहता, इस्माइल ने कहा, "देखो मियां, दस बंडल दफ्ती आज ही चाहिए वरना मैं हाथ में लिया काम पूरा न कर पाऊंगा. इलाहाबाद पेपर बोर्ड से मुझे हजार रुपये तक का उधार ही मिल पाता है. कोई दफ्तीवाला व्यापारी वाकिफ हो तो बताओ. दीवाली के रोज पाई-पाई चुका दूंगा."

उस्मान की वाकफियत किसी दफ्तीवाले से न थी. उसने बहुत दिमाग लड़ाया, मगर नाकामयाब रहा. इस्माइल दफ़्ती की बात कर रहा है, वह उसे अभी नूरउल्लाह रोड पर कोई मकान आसान किस्तों पर दिला देता. सेल्सटैक्स आफिसर को अपना साला घोषित कर देता मगर इस सुबह-सुबह की गर्दिश ने उसे निराश कर दिया था, बोला, "कैसे दिन आ गये हैं कि मुसलमान ईद को दीवाली का इंतजार करने लगे. किसी हिंदू से कभी ईद का नाम सुना है?"

"तुम्हारा दिमाग फिर गया. मेरे लिए तो दीवाली पर सचमुच लक्ष्मी उतरती है. वह तुम्हारा चचाजात भाई है न, हसन, होली पर रंग और दीवाली पर पटाखे बेचकर ही लखपति हो गया है और तुम्हारे जैसे लोग हुनरमंद होते हुए भी धक्के खा रहे हैं."

"तुम्हारे अंदर का मुसलमान मर चुका है." उस्मान भाई ने बड़ी नफरत से कहा, "तुम जाकर कहीं से नसबंदी करा आओ."

वास्तव में उस्मान भाई ने भी कभी इस तरह हिंदू-मुसलमान के बारे में नहीं सोचा था. इस समय वह इस्माइल को अपमानित करना चाहता था. जो उसकी सूरत देखते ही दफ्ती का रोना ले बैठा था.

"टके-टके के लिए मारा-मारा फिरने से बेहतर है कि आदमी नसबंदी करा ले. वह देखो, सामने अनवर तुम्हारी जान को रो रहा है कि अल्लाह ताला की कसम खाने के बाद भी तुम हराम की चाय पी गये."

उस्मान कुछ कहता, इससे पहले ही इस्माइल अंदर जाकर दफ्ती काटने की मशीन को तेल देने लगा. उस्मान के लिए अब वहां बैठना भी बेकार हो चुका था. उसने तय किया कि वह अब कभी सुबह उठकर मल्लू की सूरत नहीं देखेगा. ऐसी मनहूस सूरत तो उसने जिंदगी में कभी नहीं देखी थी. उसकी इच्छा हुई कि जाकर चमेली को पाठ पढ़ा आये कि यह मल्लू अव्वल दर्जे का बदमाश है और उसकी नजर न केवल चमेली के मकान पर है बल्कि उसकी बिटिया हसीना पर भी है.

उस्मान मियां से और अधिक अपमान बर्दाश्त न हुआ. वे अनवर की दूकान पर गये और अपनी कमीज उतारकर दे दी. "लो भाई, इसे ही गिरो रख लो."

"कैसी बातें कर रहे हैं उस्मान भाई," अनवर ने कमीज लौटाते हुए कहा, "आप इस तरह शर्मिंदा कर रहे हैं कि मुंह दिखाने लायक न रह जाऊंगा.

अनवर कुशल दूकानदार था. कमीज का वह क्या करेगा. दूकान से उठ गयी तो उस्मान उसे बीसियों रुपये की बतायेगा और दूसरे, सामने नेताजी के यहां से अभी-अभी कुछ अंडों के आमलेट का आर्डर आया था. वह नशे में अंडे फेंट रहा था. उसने पहले से ही तय कर लिया था कि एक अंडा बचाकर वह उस्मान की चाय का दाम वसूल लेगा.

"मगर अनवर भाई, आपको सारे मुहल्ले में इस बात का ढोल नहीं पीट देना चाहिए कि उस्मान हराम की चाय पी गया. इसी इस्माइल से मुझे पचास रुपये लेने हैं और उसकी हिम्मत देखिए कि मुझे एक प्याला चाय पीने पर जलील कर रहा था. उसे तो डूब मरना चाहिए था कि वह खुद मेरा कर्जदार है. अल्लाह की इनायत से घर पर पैसों की भी कमी नहीं है. मैंने कमीज यह सोचकर उतार दी कि इस बीच कहीं अनवर मियां का हार्ट ही फेल न कर जाये."

उस्मान ने कमीज पहनी और मल्लू को गाली बकते हुए अपने घर के सामने पड़ी एक खटिया पर जा बैठा. पास ही एक बकरी बंधी थी. वह धीरे-धीरे बकरी को पुचकारने लगा. उसने तय किया किया कि कल से वह पांचों नमाजें पढ़ा करेगा.

क्रमशः

अगले अंक में

पंडिताइन को नौकरी भी मिली तो मास्टरजी के घर जहां एक ओर मास्टरजी की जीभ उसे देख लपलपाती रहती थी तो दूसरी ओर मास्टरनी इस ताक में रहती थी कि पंडिताइन चोरी न कर ले.

बहू द्वारा कही गयी अपनी सास की क गाथा, जो सुहागिन होकर भी य-सा काटती रही. बहू की नजर में का कारण बाबूजी थे. मगर बाबू जी ऐसा हार क्यों करते थे आखिर. . . . .? कुछ पहले बाबूजी ने एक लेख पढ़ा था, का शीर्षक था—अपनी पत्नी को ा बनना सिखाओ!

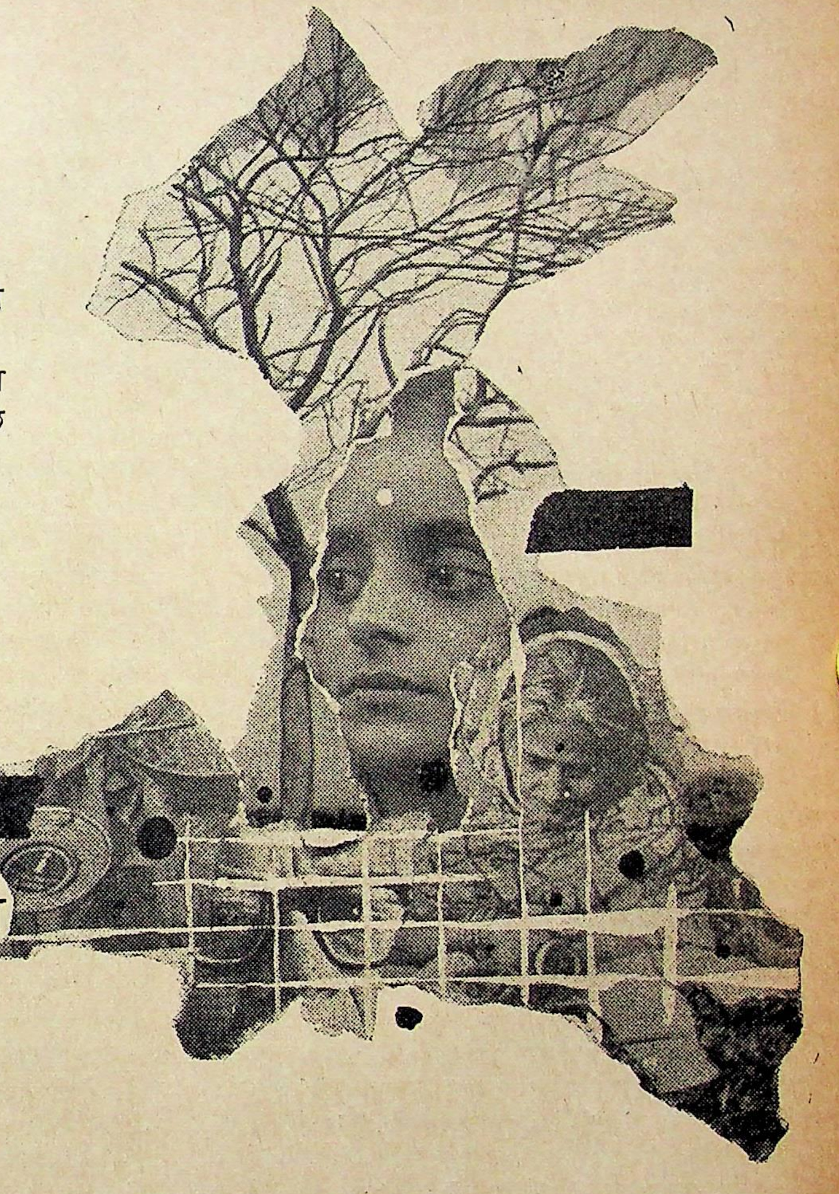

सुहागिन

• सुधा चंदोला

मैं फिर से एलबम खोल कर बैठ गयी हूं और मेरी नजर अम्माजी के चित्र पर जाकर ठहर गयी है. सहसा मेरा वरुद्ध हो जाता है और आंखें छलछला उठती हैं. एलबम रके मैं सोफे पर लेट गयी हूं, शरीर को मैंने एकदम ढीला दिया है और मेरा मन अतीत में भ्रमण करने लगा है. . .

ो वर्ष पूर्व!

हां, ठीक दो वर्ष पहले की बात है. उस दिन संध्या के समय र जाने के लिए तैयार हो रही थी. पड़ोस के शर्माजी का रामू रिक्शा लेने गया था. मैं जल्दबाजी में सामान की सूची लगी कि तभी अम्माजी ने स्नेहभरी आवाज में कहा, "बहूऽ! " मैंने सिर उठाकर देखा, मोटी खादी की धोती के पल्लू से पोंछती अम्मा चली आ रही थीं. . . .गेहुंआ रंग, बड़ी-बड़ी काली आंखें, पीठ पर लहराती घने घुंघराले बालों की मोटी-सी चोटी; आभूषणों के नाम पर नाक में लौंग, हाथ में चार-चार कांच की चूड़ियां और गले में झूलता हुआ मंगलसूत्र. गर्मी में चूल्हा फूंक-फूंककर उनका चेहरा दमदमा रहा था, आंखों में लाल डोरे खिंच आये थे और माथे पर पसीने की बूंदें छलछला रही थीं.

"बड़ी गर्मी है! " कहकर वे मेरे पास ही कुर्सी पर बैठ गयीं. और मैं पास पड़े हाथ के पंखे से उन पर हवा झलने लगी.

बिजली का पंखा यहां एक ही है और उसके नीचे बब्बूजी और मुन्ना सोये हुए हैं.

अम्माजी पर हवा झलते-झलते मैंने कहा, "अम्मा! मैं तो कहते-कहते हार गयी, पर तुम सुनती ही नहीं हो. मुझे भी चूल्हे का काम संभालने दो न! "

हंसकर अम्मा बोलीं, "तू तो बिल्कुल पगली है. अब तू ही बता बेटी, तू इतनी दूर से आयी है. बड़े भाग से तुझे देखने का मौका मिला है... और मैं तुझे काम में लगा दूं? फिर तेरे बस का है भी नहीं यहां का खटराग. एक दिन काम किया नहीं कि बीमार पड़ जायेगी."

"तुम भी अम्मा कमाल करती हो! तुम्हारी उम्र है काम करने की? और मेरे लिए तो तुम व्यर्थ ही चिंता करती हो. अच्छी-भली मोटी-ताजी हूं. मुझे कुछ नहीं होने का!"

"बस-बस! बड़ी हट्टी-कट्टी है तू! एक मिनट धूप में जाते ही चेहरा कुम्हला जाता है. फिर गोद का बच्चा है सो अलग."

"अच्छा अम्मा, एक नौकर रख लो न!"

"अरी बेटी! इस घर में नौकर तो नौकर, महरी तक का नाम लेना पाप है. पिछले साल काली खांसी हो गयी थी मुझे. पूरे दो माह में ठीक हुई. पर घर का सारा काम करती रही. तेरे ससुर को तो जिंदगी भर मेरा काम प्यारा रहा है. मुझे आराम करती तो वे फूटी आंखों भी नहीं देख सकते. उन्हें तो मेरी बीमारी भी बहाना लगता है."

एक वेदना की लहर-सी उनके चेहरे पर दौड़ गयी. फिर एक निःश्वास लेकर बोलीं, "नौकर-चाकर की बातें तो बड़ी बातें हैं, यहाँ तेरे ससुर ने तो मुझे पैसे-पैसे को मोहताज बना दिया है. न मेरे पास पैसा होता है न उन्हें मेरी जरूरतें दिखाई पड़ती हैं. बस, यही एक-दो घर पहनने की धोतियां बची हैं. बाकी सब फेंकने वाली हो गयी हैं."

"अम्मा, मैं तुम्हें चुपचाप रुपये दे जाऊंगी."

"रुपये क्या वे मेरे पास रहने देते हैं! पिछले साल भैया आये थे, उनके जाते ही मेरा सूटकेस टटोलने लगे. एक-एक कपड़ा झाड़कर देखा कि कहीं पैसे छिपाकर तो नहीं रखे हैं. मेरे लिए तो तू सस्ती-सी दो धोतियां ले आना!" और आंखों में उमड़ते आंसुओं को छिपाने के लिए वे तेजी से रसोईघर में चली गयीं.

■

गोपाल मुझे अक्सर पिताजी की कंजूसी के किस्से सुनाते थे, पर मुझे आज पहली बार पता चला कि अम्मा अपना समय किस तंगी में काट रही हैं. रिक्शा आ गया था और मैं बाजार चली गयी.

घर आते-आते रात हो गयी थी. पच्चीस पॉवर के बल्ब की बीमार-सी रोशनी रसोईघर में टिमटिमा रही थी. बाकी पूरे घर में अंधेरे का साम्राज्य था. मुन्ना शायद सो गया होगा और बिजली का खर्चा बचाने के चक्कर में बाबूजी बत्ती बंद करके बरामदे में बैठे मेरे घर पहुंचने की प्रतीक्षा कर रहे होंगे. अम्मा अभी भी खाना बनाने में लगी होंगी. लकड़ियां फूंकते-फूंकते उनका सिर दुखने लगता है. . . . .बस एक-दो दिन और . . . फिर अम्मा को थोड़ा आराम हो जायेगा!

घर के दरवाजे पर रिक्शा रुकवाकर सामान से लदी हुई मैं रिक्शा से उतरी ही थी कि बाबूजी आ गये, मेरे हाथ से सामान लेकर बोले, "रिक्शा वाले का हिसाब हो गया बेटी?"

"नहीं बाबूजी!" और मैं पर्स खोलने को थी कि वे बोले, "अच्छा, तुम अंदर जाओ."

मैंने घर में पांव रखा ही था कि बाबूजी की आवाज सुनाई पड़ी, "गोपाल की अम्मा! एक रुपये के छुट्टे पैसे दे जाओ." अम्मा जा लगी तो इच्छा हुई कि कहूं—एक रुपया ही दे दीजिए न अम्मा उसे, पर फिर कहने की हिम्मत न हुई.

"लगता है पूरा स्टोर ही उठा लायी" कहते हुए उन्होंने बाबूजी के हाथ से सामान ले लिया.

"हां अम्मा, चलो तुम्हें दिखाऊं." कहकर मैं अपने कमरे की ओर बढ़ी तो वे बोलीं, "बैठक वाले कमरे में बैठें बेटी. मुन्ना अभी अभी सोया है."

सामान प्रायः सभी अम्मा और बाबूजी के लिए ही था. गोपाल की खास हिदायत थी कि मैं इन दोनों की हर जरूरत को ध्यान में रखते हुए उचित प्रबंध कर दूं. अम्मा, बाबूजी के लिए कपड़े सिलवा दूं, नौकर का इंतजाम कर दूं, घर में कूलर लगवा दूं, आदि आदि.

अम्माजी के सामने सामान खोला तो वे हक्की-बक्की रह गयीं मानो जिंदगी में एक साथ कभी इतना सामान न देखा हो, सिल्क की साड़िया देख वे बोलीं, "बड़ी सुंदर हैं, तुझ पर खूब फबेंगी."

"पर ये तो तुम्हारे लिए हैं अम्मा."

"मेरे लिए? अरे नहीं, नहीं. मैं क्या करूंगी इनका? मेरे लिए तो तू अपनी पुरानी जापानी जार्जट की साड़ियां छोड़ जाना. कहीं आने-जाने के लिए अच्छी हैं और प्रेस भी नहीं करनी पड़ती."

"वह तो छोड़ ही दूंगी अम्मा!" कहते हुए मैंने सब सामान खोलकर उन्हें दिखाया. बेबी की फीडिंग बॉटल और एक-आध झुनझुने के अलावा अम्माजी के लिए साड़ियां, पेटीकोट और बाबूजी के लिए गरम सूट, कुर्ते, पाजामे, स्वेटर के लिए ऊन आदि!

सामान देखकर बाबूजी मुझे प्यारभरी झिड़कियां देने लगे, "बच्चे को छोड़कर नाहक बाजार गयी. मैं तो समझता था कि अपने और मुन्ने के लिए सामान खरीदने गयी होगी, नहीं तो कभी न जाने देता."

"कल गैस का चूल्हा और कूलर भी आ जायेगा बाबूजी!" मैंने किंचित उल्लास से कहा.

"क्या?" बाबूजी जैसे सोते से जाग पड़े. क्षणभर पहले वाला वात्सल्यपूर्ण पिता का रूप पता नहीं कहां तिरोहित हो गया. बड़ी खीझ भरे स्वर में उन्होंने पूछा, "अभी खरीदा तो नहीं है न?"

"खरीद लिया, कल बंशीलालजी आकर दे जायेंगे."

बंशीलाल गोपाल के मित्र थे और उनके भाई की दूकान से मैंने कूलर और गैस का चूल्हा खरीदा था.

"कल सुबह जाकर ही उसे मना कर आऊंगा." बाबूजी बोले.

"नहीं नहीं बाबूजी, बड़ी अच्छी कीमत पर ये चीजें मिल गयी हैं. आपने इन्हें लौटाया तो मुझे बहुत बुरा लगेगा."

"पर किसने कहा ये सब खरीदने को? गोपाल की मां ने?"

"नहीं, अम्माजी को तो पता भी नहीं था."

"तुम्हारी हिम्मत कैसे हुई इतना बड़ा सौदा पटाने की?" प्रायः चीखते हुए से वे बोले.

उनका गुस्सा देखकर मेरा तो हुलिया पस्त हो गया. मेरे मुंह से निकला, "जीऽऽऽ! . . .मुन्ना के डैडी ने कहा था."

"ऐसी की तैसी उसकी साले की! तेरह हजार मील दूर बैठा हुकूमत चलाना चाहता है हम पर. हमारे रहन-सहन पर शर्म आती हो उसे, तो न कहे हमें मां-बाप!"

बाबूजी बड़बड़ाते हुए कमरे से निकल गये. अम्माजी की

ज़बान तो जैसे तलवे से चिपट गयी थी. चुपचाप उन्होंने आंसू पोंछे, शायद वे रसोई में जाने को थीं कि बाबूजी फिर अंदर आ गये. अभी भी बुरी तरह भरे हुए थे, "बिजली यहां कितनी महंगी है. . . तुम्हें मालूम है?"

"जी!"

"जी क्या?" तुम्हें कुछ मालूम नहीं है. कौन देगा बिजली का खर्चा? यहां खजाना गड़ा है मेरे पास?"

पता नहीं कैसे मेरे मुंह से निकल गया, "बिजली का खर्चा भी वहीं देंगे, जिन्होंने ये चीजें खरीदवायी हैं." और मैं उन्हें कुछ कहने का मौका दिये बिना अपने कमरे में चली गयी.

कमरे में जाकर मैं बहुत देर तक सिसक-सिसककर रोती रही. अम्माजी कई बार मुझे खाना खाने को बुलाने आयीं पर मैं नहीं गयी. उस रात किसी ने भी खाना नहीं खाया. दूसरे दिन वह खाना भंगन को दे दिया गया.

गोपाल से बाबूजी के क्रोध की बहुत-सी बातें सुनी थीं पर उनका क्रोध देखने का यह मेरा पहला मौका था. शादी के समय तो दो दिन ही इस घर में रही थी, फिर सीधे मायके से ही अमरीका चली गयी थी. उन दो दिनों में किसी को जानने-पहचानने का मौका नहीं मिला. अब दो वर्ष बाद आठ माह के बच्चे को लेकर आयी थी. अम्मा, बाबूजी की बड़ी साध थी कि जल्दी से जल्दी नाती का मुंह देखें, पर अमरीका आने को वे तैयार न थे. इसलिए मुझे ही आना पड़ा था.

अगले दिन उठकर अम्मा के पैर छुए तो उन्होंने मुझे सीने से लगा लिया. आंसू पोंछती हुई बोलीं, "तू हमारे लिए इतना कर रही है और बदले में उनकी जली-कटी सुन रही है. कल से कान खाये जा रहे हैं कि बहू के हाथ बहुत खुले हैं. मैंने भी कह दिया कि खर्च भी तो हमारे सुख के लिए कर रही है."

मेरे मन में एक हूक-सी उठी. . .अम्माजी सुख तो आप लोगों के भाग्य में है ही नहीं! . . .न मानसिक सुख न सांसारिक! न तुम लोग अपनी स्थिति से ही सुखी हो, न उसमें हेर-फेर का मौका देते हो. लड़का लाखों कमाता है और मां-बाप दरिद्रता को दांतों से दबाये बैठे हैं, यह क्या उचित है? इनके लिए छोटा-सा काम करना भी कितना भारी पड़ता है.

मुझे याद आया कि गोपाल ने जब भी बाबूजी के लिए पैसे भेजे, बाबूजी ने चैक वापस लौटा दिया और लिखा, "हमारे पास भगवान का दिया सब कुछ है, इसलिए हमारे वास्ते पैसा भेजने की जरूरत नहीं. अपने नाम से दान या भंडारा कराना चाहो तो बात दूसरी है."

ऐसे हठी हैं बाबूजी! बाबूजी का गुस्सा तो गोपाल में नहीं आया है पर हठ उन्हीं जैसा ही है. मेरे लाख कहने पर भी फिर उन्होंने पैसे भेजने का नाम नहीं लिया.

बाबूजी हमेशा से ही मितव्ययी थे पर गोपाल की शिक्षा पर उन्होंने हाथ खोलकर खर्च किया. भारत में डाक्टरी पढ़ाकर अपने खर्चे से ही उन्हें एफ. आर. सी. एस. करने इंग्लैंड भेजा. वहीं से गोपाल अमरीका चले गये और कुछ साल सर्जरी की ट्रेनिंग के बाद प्राइवेट प्रैक्टिस शुरू कर दी थी. तभी वे विवाह के लिए भारत आये थे.

आसपास बिखरी कहानियां

सबूत

▣ भगवान प्रियभाषी

उन दिनों मैं रुड़की में इंजिनियरिंग का छात्र था. एक आवश्यक कार्य से वार्षिक परीक्षा से एक दिन पूर्व सहारनपुर आया तो रात को वहीं ठहरना पड़ा. सुबह पांच बजे वहां से रुड़की के लिए गाड़ी चलती थी, जिससे समय पर परीक्षा में पहुंचा जा सकता था, अतः निश्चित था. अगली सुबह जब स्टेशन पहुंचा तो देखा गाड़ी दूसरी सीटी दे चुकी थी और धीरे-धीरे रेंगने लगी थी. मैं अत्यंत असमंजस में पड़ गया. गाड़ी छूटने का मतलब था—परीक्षा का छूटना. उधर पहली बस एक घंटा देर से पहुंचती थी, इसलिए न चाहते हुए भी भागकर गाड़ी में सवार हो गया.

दो स्टेशन ही निकले थे कि टिकट बाबू मेरे डब्बे में आ गये. मैंने उन्हें सारी स्थिति सच-सच बता दी और कहा कि वह टिकट बना दें. मगर वह बोले, "टिकट तो मैं अमृतसर से बनाऊंगा, मुझे क्या पता आप कहां से बैठे हैं. आसपास बैठे लोगों ने भी काफी कहा. मगर वह अड़े रहे. एकाएक मुझे एक बात सूझी, मैंने उनसे कहा, "यदि मैं आपको इसका सबूत दे दूं कि मैं सहारनपुर से ही बैठा हूं तो. . . ?"

"तो ठीक है!" वह बोले.

मैंने अपने हाथ का छोटा-सा थैला उनकी हथेली पर रख दिया. वह चौंके, "यह क्या है?"

"गरम-गरम परांठे, थोड़ी देर पहले ही मां ने बनाकर दिये थे, अमृतसर से गाड़ी दस घंटे पहले चली थी, परांठे क्या इतनी देर गरम. . ?"

मेरी बात पूरी होने से पहले ही उन्होंने कान से पेंसिल निकाली और तुरंत पचासी पैसे का टिकट बनाकर मुझे थमा दिया. ☐

बाबूजी ने तीन वर्ष पहले रिटायरमेंट ले लिया था. काफी अच्छी सरकारी नौकरी पर थे. परिवार भी छोटा था. अतः काफी पैसा बचाया था. जीवन में दान-पुण्य करने को वे आवश्यक समझते थे पर पैसे से कुछ कुछ-सुविधाएं भी खरीदी जा सकती हैं, यह उन्होंने कभी न जाना. उनकी कंजूसी और सनक की शिकार बनीं अम्माजी, जिन्हें शायद जीवन में कोई खुशी हासिल न हुई.

कुछ वर्ष पूर्व बाबूजी ने किसी पत्रिका में एक लेख पढ़ा जिसका शीर्षक कुछ इस प्रकार था: 'अपनी पत्नी को विधवा बनना सिखाओ'. इस लेख में क्या-क्या लिखा था भगवान जाने, पर बाबूजी को तब से एक सनक सवार हो गयी थी. . .कहीं अम्माजी से पहले वे संसार से चल बसें तो अम्माजी को किसी के आगे हाथ न फैलाना पड़े. . .अपने पुत्र से भी वे कोई आर्थिक सहायता ग्रहण न करें. इसके लिए उन्होंने दो काम किये—अम्माजी के नाम पर समय-समय पर

सेविंग सर्टिफिकेट खरीदते गये और अम्माजी के खर्चे पर रोक-टोक लगाकर उन्हें विधवाओं की-सी अभावग्रस्त जिंदगी व्यतीत करने पर मजबूर कर दिया. उनकी यह सनक इतनी बढ़ गयी कि कांच की चूड़ियां खरीदने के लिए भी अम्मा को हजार बार मिन्नतें करनी पड़ती थीं. सास की यह व्यथा-कथा सुनकर मेरा मन बड़ा दुखी हो जाता था. मैं कहती, "अम्मा ! आप लोग हमारे पास चल कर रहिए."

अम्मा कहतीं, "इस घर में ब्याहकर आयी थी, अब यहां से तो एक बार में ही जाऊंगी."

उनका उत्तर सुनकर मैं खीझ जाती तो वे कहतीं, "मेरे गोपाल को लौटा ला रानी बेटी, तो मुझे सब कुछ मिल जायेगा."

उनका याचनाभरा स्वर कहीं अंदर तक मेरे दिल को कुरेद जाता और मैं मन ही मन संकल्प करती कि गोपाल को वापस लाने का जी-जान से प्रयास करूंगी.

घर में गैस आ गयी थी और कूलर भी लग गया था. बाबूजी का गुस्सा भी कभी का उतर गया था. आजकल उन्हें चाय बनाने का शौक हो आया था. हम दोनों को चाय के समय पर वे रसोई में फटकने न देते थे. गैस के चूल्हे को दियासलाई लगाते हुए कहते, "ये ल्लो! और आंच तैयार!"

मैं मन ही मन कल्पना करती कि यह कहते हुए उनकी आंखों में बच्चों का-सा भोला आश्चर्य तैर जाता होगा. उनके स्वभाव में इस परिवर्तन को देखकर मुझे लगता कि हम लोग लौट आयें तो शायद इस घर में भी खुशियों का सागर लहराने लगेगा.

◆

बाबूजी धीरे-धीरे आधुनिक सुविधाओं के दास बनते जा रहे थे. अब धूप ढलने तक वे कूलर को बंद करने का नाम न लेते थे. बिजली के खर्च की बात शायद उनके दिमाग से उतर गयी थी. पच्चीस पॉवर के बल्ब का स्थान सौ पॉवर के बल्ब ने ले लिया था और अब वे रात में सोने से पहले रामायण और गीता का पाठ करने लगे थे. नौकर रखने को वे बिल्कुल तैयार न हुए. पर मेरे बहुत अनुरोध के बाद महरी रखने को तैयार हो गये. मुझे बहुत खुशी हुई.

दो माह कैसे गुजर गये, कुछ पता ही न चला और मेरे वापस आने के तीन-चार दिन ही बाकी रह गये. एक दिन मैंने कार्यक्रम बनाया कि मुन्ने के साथ बाबूजी और अम्मा के फोटो खींचे जायें. बाबूजी मेरे खरीदे हुए सूट में थे और अम्मा ने नयी सिल्क की साड़ी पहन रखी थी. अम्मा के बालों को संवारकर मैंने उनका जूड़ा बनाया. कानों में झुमके पहनवाये और आंखों में काजल डलवाया. छोटी बच्ची की तरह उल्लास से अम्मा मेरा कहा करती जा रही थीं. उनका चेहरा प्रसन्नता से दमक रहा था. मैंने शीशा लाकर उनके सामने रखा तो अपना बदला हुआ रूप देखकर वे नयी बहू-सी शरमा गयीं. उनके उस रूप को देखकर मुझे लगा कि अपनी जवानी में वे बड़ी सुंदर लगती होंगी, हालांकि अम्माजी ने एक बार बताया था कि उनके पक्के रंग के कारण उनकी सास हमेशा उलाहना देती थीं कि उनके लड़के के जोड़ की बहू न मिली!

अम्मा को तैयार करके मैं बाहर आयी. बाबूजी मुन्ने के साथ खेल रहे थे. मेरे पीछे दुबकी-सी खड़ी अम्माजी पर दृष्टि पड़ते ही वे हंसने लगे.

"बुढ़ापे में पर लग गये हैं तेरे!" किंचित व्यंग्य से वे बो

एक क्षण के लिए अम्मा अचकचायी, फिर हिम्मत करके बो "तुम्हें क्या?... अपने बेटे-बहू की कमाई से सजती हूं. तुम्हारी से तो धेला भी नहीं जाता."

"यह क्यों नहीं कहती कि बहू की देखा-देखी सज रही बहू का साज-शृंगार देखकर जलन होती होगी कि तुझे यह सब क न मिला!"

"अरे, आग लगे तुम्हारी ज़बान को! अपनी इकलौती ब के ओढ़ने-पहनने से जलूंगी मैं? ऐसी नीच समझते हो मुझे?" और अम्मा गुस्से के मारे अपने बाल नोचने लगीं. रोते-रोते उन हिचकियां बंध गयीं. मैं दौड़कर पानी लायी. मुश्किल से उन्हें पा पिलाया और बहुत समझाया तब वे शांत हुईं. बाबूजी तो कभी खिसक गये थे...!

◆

वह दिन भी बड़ी उदासी से बीता. उस कांड के बाद फो खींचने का सवाल ही न उठता था. शाम को खाना खाकर जल्दी मैं अपने कमरे में आ गयी. दिन की घटना से मेरा मन बड़ा खि था. एक अजीब-सी बेचैनी महसूस होती थी. मैं चुपचाप लेट ग बहुत देर तक लेटी-लेटी सोने की कोशिश करती रही, पर आं झपकने का नाम न लेती थीं.

मैं धीरे-से उठी. मुन्ना कभी का सो गया था. घर के साम खड़े घने बरगद के पेड़ की शाखाओं से छन-छनकर आता हु चंद्रमा का मद्धिम शीतल प्रकाश अंधेरे कमरे को रात्रि-प्रकाश क सा आलम दे रहा था. उस धुंधले प्रकाश में दमकता मुन्ने का फू सा कोमल चेहरा मुझे वापस अमरीका ले गया और गोपाल क याद कर मैं फूट-फूटकर रो पड़ी... गोपाल ! तुमने मुझे अके क्यों भेज दिया यहां!

जी भर रोकर मैं चुपचाप खिड़की के पास पड़ी आराम कु पर लेट गयी. मेरे मन का अवसाद प्रतिपल बढ़ता ही गया. ब देर तक मैं बाहर देखती रही, फिर आंखें बद करके कुर्सी पर ही ले रही. तभी आहट सुनकर चौंक उठी.

"अभी सोयी नहीं बेटी?" अत्यंत स्नेहिल पर दर्द भरे स्वर अम्माजी ने पूछा.

उनके स्वर की तरलता मेरे हृदय को छू गयी. बैठते हुए मैं कहा, "अभी नींद नहीं आयी अम्मा!"

"नींद कैसे आयेगी इस नरक में! उनसे यह भी नहीं होता कि चार दिन को बहू आयी है तो चैन से रहने दें."

कुर्सी खींचकर वे मेरे पास ही आ बैठीं. कुछ देर हम दो खामोश रहीं. तभी अम्मा ने एक दीर्घ निःश्वास छोड़ा.

मुझे लगा कि जीवन के समस्त संघर्ष, दुःख और अभा के पर्वत के नीचे दबी हुई अम्माजी की सूक्ष्म काया को सांस लेन भी कितना भारी पड़ता होगा.

बहुत देर तक अम्माजी मेरे पास बैठी रहीं और बताती रहीं— अपने जीवन-संघर्ष की बातें, ससुरजी के क्रोधी स्वभाव और कृपणता की बातें. मैं चुपचाप उनकी बातें सुनती रही और उनकी एक-ए बात हृदय में संजोती रही.

फुसफुसाते स्वर में, असहाय-सी बीच-बीच में उ

रोकर अम्माजी अपनी गाथा सुनाती रहीं और उनके साथ बीतता हर पल मुझे उनके हृदय के और भी निकट पहुंचाता गया. . .

शादी से पहले अम्माजी को अपने धनी मां-बाप से बेहद प्यार मिला था. संपन्न पिता ने उनकी शादी में हाथ खोलकर खर्चा भी किया. पर मां-बाप की मृत्यु जल्दी ही हो गयी और उनके बाद भाई-भाभी ने उनकी कोई खबर न ली. इधर उनकी किस्मत से सास बेहद गुस्से वाली मिलीं. अपनी मां की तरह ही मां का परमभक्त पुत्र निकला. सास ने ओढ़ने-पहनने, खाने-पीने पर प्रतिबंध लगा दिया. इससे भी जी न भरा तो बेटे-बहू के मिलने-जुलने में भी बाधा खड़ी करने लगीं. सख्ती इतनी कि घर के अंदर भी घूंघट जरा-सा हट जाये तो मरने-मारने पर उतारू हो जायें. एक बार गलती से घूंघट थोड़ा हट गया और किस्मत से तभी ससुरजी उधर से गुजरे, फिर क्या था! उनकी सास उनके सिर पर सवार हो गयीं, "बदचलन कहीं की! ससुर को ठुड्डी दिखा रही थी! ! " कहती उनकी चोटी पकड़कर घसीटती हुई अंदर ले गयीं और जोर से लात मार कर उन्हें पतुरिया की उपाधि दे डाली.

"मैंने तो बिटिया पूरी जिंदगी ही दुखों में निकाल दी. अब इस बुढ़ापे में क्या शौक करूंगी. तेरा मन रखने को सज ली थी वरना मन तो इस घर में पैर रखते ही मर गया था और अब आदमी के होते हुए भी विधवा की तरह रहती हूं. अब तो बेटी हर समय यही मनाती हूं कि हे परमात्मा! हाथ-पैर रहते ही मिट्टी समेट ले मेरी! "

अम्मा फिर फफक-फफककर रोने लगी थीं और मैंने भावावेश में उनके सिर को अपने सीने में भींच लिया था. मैं भी रोती जा रही थी और टप-टप गिरते मेरे आंसू उनके सिर को भिगो रहे थे. इस समय हम दोनों के बीच के सब बंधन टूट गये थे—सास-बहू और उम्र के बंधनों से परे मैं ऐसे धरातल पर पहुंच गयी थी, जहां पहुंचकर लगता था कि अम्मा के सब दुख मेरे अपने ही हैं. अपने समस्त सुखों के मध्य अम्मा के दुखों की टीस मेरे हृदय में इतनी गहरी पैठ गयी थी कि अम्मा के दुखी रहते मैं कभी सुख नहीं पा सकती थी.

अतीत को मैं नहीं बदल सकती थी पर भविष्य के लिए कुछ करना संभव था—खासकर जब भविष्य के तिलिस्म को खोलने की कुंजी गोपाल के पास थी. बस, अगर गोपाल राजी हो जाये तो अम्मा के जीवन की फुलवारी महक उठेगी. इन कल्पनाओं के मध्य एक प्रश्न मेरे मन में उठता. . .'जो सुख सदा से अम्मा का वैरी रहा है, क्या वह उनके जीवन की संध्या में उन पर सदय हो सकेगा?. . .शायद हां! . . .शायद नहीं! !

मुझे अमरीका आये चार माह हो गये. मेरे कई पत्रों के जवाब में अम्मा का एक पत्र आया, वह भी बहुत संक्षिप्त, उन्होंने लिखा—'मेरी आंखों की ज्योति बहुत कम हो गयी है'. . .और फिर वही विनती. . .'मेरे गोपाल को वापस लौटा ला बेटी! '

उनके पत्र से मेरा मन बड़ा व्यथित हो उठा. गोपाल ने बाबूजी के लिए लिखा कि वे फौरन अम्मा की आंखें किसी अच्छे आंखों के डाक्टर को दिखायें. प्रत्युत्तर में बाबूजी का वही वेद वाक्य आया—'हम बिल्कुल ठीक हैं, हमारी चिंता न करो.'

इधर मैं गोपाल के सिर हो गयी कि हमें भारत लौट चलना चाहिए. पर गोपाल मेरे हठ को बेकार का प्रलाप समझते. उनका विचार था कि भारत जाकर उनकी सारी ट्रेनिंग बेकार हो जायेगी.

तुझ पे उट्ठी हैं वह खोयी हुई साहिर आंखें,
तुझको मालूम है क्यों उम्र गवां दी हमने?
उम्र और आंखों के यथार्थ की सही पहचान
प्रेमकथा विशेषांक
'सारिका'
एक जनवरी, उन्नीस सौ इकयासी

मेरे कानों में प्रतिपल अम्मा की आवाज गूंजती. . .'गोपाल को वापस ले आ बेटी! '. . .और तब मैं एक टूटापन-सा महसूस करती, जो मेरी हार और असफलताओं का प्रतिरूप था. अपनी इस तथाकथित प्रगति के लिए आदमी अपनी कीमती भावनाओं को भी दांव चढ़ाने में नहीं हिचकिचाता. फिर क्या सारी भावुकता में डूब मरने को औरतें ही पड़ी हैं? पर हाय रे मां का दिल! मुझे लगता जैसे अम्मा का नहीं मेरा अपना दिल अपने बेटे के लिए तरस रहा है. क्या गोपाल की तरह मेरा बेटा भी मुझे ऐसे ही रुलायेगा? तब भावावेश में मैं मुन्ने को हृदय से लगाकर फूट-फूटकर रोने लगती.

▣

फिर कुछ समय के बाद सब कुछ पहले-सा हो गया. मेरी भावुकता का दौरा उतर गया. धीरे-धीरे मैं भारत जाने की बात को, गोपाल को लौटा लाने के आग्रह को प्रायः भुला बैठी. अम्मा के पत्र आने बंद हो गये. बाबूजी के पत्रों से स्थिति का पता लगाना वैसा ही था जैसे रेत से तेल निकालना, पर मजबूरी में उनके पत्रों के एक वाक्य—हम दोनों मजे में हैं—को वेद वाक्य-सा माने हम आश्वस्त होकर समय से आंख-मिचौनी खेलते रहे.

और एक दिन घर आये तो दरवाजे पर तार का लिफाफा लटका मिला. दिल की गति मानो बंद-सी हो गयी. कांपते हाथों तार खोला. तार खोलते ही गोपाल छोटे बच्चों की तरह फूट-फूट कर रोने लगा. मेरा मन एक प्रकार की विरक्ति से भर उठा. लगा कि गोपाल को झकझोर कर पूछूं, "अभी तक कहां थी तुम्हारी सारी ममता! अब रोये तो क्या रोये! "

फिर कुछ दिनों में बाबूजी का पत्र आया. साथ में आये अम्मा के अंतिम संस्कारों के फोटो, बाबूजी ने लिखा था—

"तुम्हारी अम्मा बड़ी भाग्यशालिनी थीं कि सुहागिन मरीं. उनके नाम बैंक में चालीस हजार रुपया जमा था, जिसे उनके नाम से दान-पुण्य में खर्च कर दिया जायेगा, जिससे उनकी आत्मा को शांति मिले! "

सुहागिन के वेश में लाल साड़ी में सजी अम्मा के चित्र पर मेरी नजर ठहर जाती है. उनके आवाक्-से खुले तनिक विकृत-से हो गये अधर मानो कुछ आश्चर्य व व्यंग्य के साथ बाबूजी से पूछ रहे हों—'तुम्हें मेरी शांति की चिंता कब से होने लगी गोपाल के बाबू? ? ?' ☐

● **ओरिएंटल स्टडीज़, अरीज़ोना युनिवर्सिटी, टकसॉन, ए-जेड-85721, अमरीका.**

“इसमें बहुत अधिक भार है. तुम अकेले नहीं उठा सकोगे.” मैंने नेक सलाह देने वाले शुभचिंतक की अदा में कहा तो वह मेरी ओर ऐसे देखने लगा, मानो मेरा मजाक उड़ाने की तैयारी में हो.

जल्दी से उसने अपने चेहरे का भाव बदल लिया. शायद उसे याद आ गया था कि जो व्यक्ति पैसे देने वाला हो, उसका मजाक कभी नहीं उड़ाना चाहिए.

अब उसकी आंखों में ऐसे भाव आ गये थे, मानो वह खुद अपनी तारीफ के पुल बांधने की तैयारी में हो.

एक लंबी कहानी

भार

• मनहर चौहान

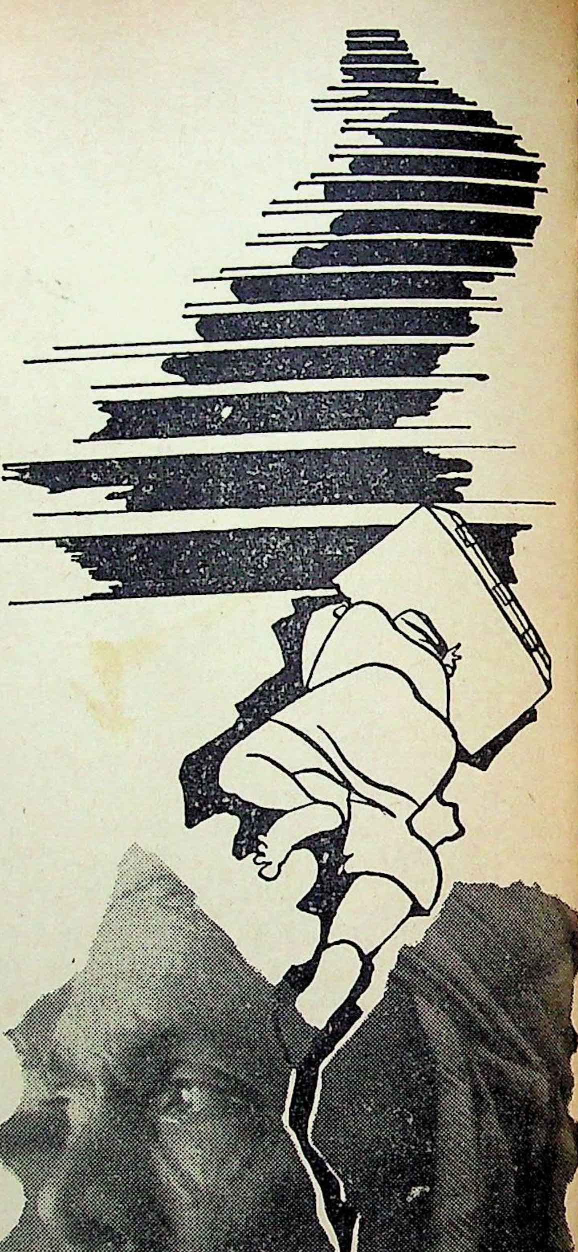

उसने हाथ बढ़ाकर ट्रंक के कोने को छुआ. क्या छूने मात्र से उसे ट्रंक के भार का अंदाजा लग जाने वाला था? पल भर को वह कुछ सोचता खड़ा रहा. फिर उसने ट्रंक के दाहिनी ओर के कुंडे को दोनों मुट्ठियों में भर लिया. उसने कुंडे को सिर्फ एक शक्तिशाली झटका दिया और ट्रंक का दाहिना हिस्सा धरती से ऊपर उठ गया. और फिर उठे हुए ट्रंक को उसने हौले-हौले वापस धरती पर रख दिया.

ट्रंक की आधी परिक्रमा-सी करके वह बायें कुंडे के पास पहुंच गया. इस कुंडे को भी उसने दोनों मुट्ठियों में भरकर ऊंचा उठाया. कुंडे के साथ-साथ ट्रंक भी बायीं तरफ से ऊपर उठ गया.

जैसे उसने पहली बार किया था, वैसे ही, इस बार भी उसने हौले-हौले ट्रंक को वापस धरती पर रख दिया. अगले ही क्षण उसने अपनी बीड़ी सुलगाना शुरू किया. बीड़ी को शीघ्रातिशीघ्र सुलगाने के लिए वह जल्दी-जल्दी कश खींच रहा था, जिससे बीड़ी के छोर को छू रही तीली की लौ जल्दी-जल्दी आगे-पीछे फड़फड़ा रही थी.

धुएं की एक लंबी लकीर उसने ट्रंक पर छोड़ी. ऐसा लगा, जैसे ट्रंक पर वह कोई मंत्र मार रहा है. भार कम कर देने वाला कौन-सा मंत्र आता था उसे?

अचानक वह मेरी ओर मंद-मंद मुस्कान के साथ देखने लगा.

“उठा लूंगा, साब!” उसने ठंडे आत्मविश्वासी स्वर में कहा.

“देखो, यह बहुत भारी है.” मैं लंबे कदम उठाकर उसके नजदीक पहुंचता हुआ बोला, “ग्वालियर में इसे उठाने के लिए तीन-तीन जने बुलाने पड़े थे. तुम अकेले कैसे उठा लोगे? इसके अंदर किताबें भरी हैं. तुम सोच नहीं सकते, किताबों में कितना ज्यादा भार होता है. इसे उठाने और रखने में तुम्हें कम-से-कम दो मजदूरों की सहायता लेनी ही चाहिए.”

“नहीं, साब! आप चिंता क्यों करते हैं?” उसका स्वर वैसा

ठंडा और आत्मविश्वासी था, "आप तो सिर्फ इतना बताइए देना क्या चाहते हैं."

"देखो, तुम फालतू जिद कर रहे हो." मेरे स्वर में इस बार राजगी की स्पष्ट झलक थी, "एक मिनट को यदि मान भी लें यहां तुम उठा लोगे, तो भी वहां नहीं उठा सकोगे. वहां सामान थी मंजिल पर चढ़ाना है और लिफ्ट नहीं है."

"ठीक है! आपने पहले ही बता दिया था कि लिफ्ट नहीं है र सामान चौथी मंजिल पर चढ़ाना है." उसने रूखे ढंग से ाब दिया, "मैंने भी कब कहा कि माल तीसरी मंजिल पर छोड़ ा? अरे साब! चौथी मंजिल पर आपके घर के अंदर सारा सामान दूं, उसके बाद ही रुपये दीजिएगा. और आप क्या चाहते हैं?"

मेरी झुंझलाहट बढ़ गयी. वह सारा सामान अकेले ही उठाने-ने की जिद पर आमादा था और मुझे मालूम था कि यह असंभव मेरा तबादला ग्वालियर से बंबई हुआ था और मैं लिखने-पढ़ने शौकीन आदमी हूं. ग्वालियर के पड़ोसियों की यह राय मैंने काल अस्वीकृत कर दी थी कि जिन पुस्तकों को मैंने हसरत से ना किया था, उन्हीं को रद्दी के मोल बेच-बाचकर छुट्टी करूं. कें भरने के लिए मैं बाजार से एक ट्रंक खरीद लाया था. ट्रंक बड़ा नहीं था, लेकिन जब पुस्तकें भरने के बाद उठाने का प्रयास या गया तो पता चला कि इसका वजन तो बहुत ही ज्यादा है. -तीन मजदूरों ने मिलकर उसे उठाया-रखा था. यहां यह र जिद कर रहा था कि अकेला ही उठाऊंगा-रखूंगा.

ना भारी सामान मैंने ट्रांसपोर्ट से बुक किया था. केवल योग की चीजें अपने साथ लेकर मैं ट्रेन से बंबई पहुंचा था. भारी मान ट्रांसपोर्ट वालों ने चार दिन बाद बंबई पहुंचाया. मैं उसी को ने और घर ले जाने के लिए ट्रांसपोर्ट कंपनी के ऑफिस आया यह ऑफिस था मस्जिद के इलाके में, जिसके दमघोंटू वाता-ण में मैं वैसे ही झुंझला रहा था. ऊपर से उस मजदूर के साथ बहस छिड़ गयी, वह बिल्कुल ऐसी लगी, जैसे घाव पर नमक. र भी मैंने सोचा कि इसे समझाने की आखिरी कोशिश कर देखता नहीं माना तो किसी और को तलाशूंगा.

"सुनो," मैं ऐसे आगे बढ़ा, जैसे उसके कंधे पर हाथ रखने वाला होऊं, "इस काम के कितने रुपये दूंगा, यह बाद का सवाल पहले इस जिद को छोड़ो कि सारा सामान तुम अकेले ही उठाकर में रख लोगे और फिर वहां चौथी मंजिल पर भी अकेले चढ़ा . छोटे-बड़े मिलाकर ग्यारह नग हैं. बाकी सामान के बारे में कहता, लेकिन किताबों के इस ट्रंक को तीन जने ही मिलकर सकेंगे. चौथी मंजिल पर चढ़ाने के लिए तो शायद तीन जने भी पड़ें. मैं नहीं चाहता कि कोई ऐसी-वैसी बात हो जाये. फर्ज कि तुम अकेले उठाते हो और ट्रंक तुम्हारे पैरों पर गिर पड़ता या तुम्हारी हड्डी नहीं टूट सकती? तुम अचानक इस प्रकार ड़ा भी सकते हो कि पैरों में मोच आ जाये. मोच कोई मामूली नहीं. कई बार वह महीने-महीने भर तक नहीं उतरती. तुम मजदूर आदमी. महीने भर के लिए बैठ गये तो क्या होगा?"

बीड़ी के कश लेता-लेता वह रुक गया. बीड़ी उसके होंठों से लटक गयी, जैसे किसी भी क्षण गिर सकती हो. वह ऐसी नजर से मुझे ताकने लगा, जैसे हिकारत भरे स्वर में कहने ही वाला हो, 'बड़ा आया हमदर्दी दिखाने वाला!'

आंखों के इस मनोभाव को उसने जल्दी से पलट लिया और फिर उसने तपाक से कहा, "अच्छा ठीक है, मान लीजिए, तीन जने मिलकर इस ट्रंक को उठायेंगे. तीनों को मिलाकर आप क्या देना चाहते हैं?"

जितने तपाक से उसने मेरा प्रस्ताव मान लिया, उसी से मैंने भांप लिया कि जरूर उसका इरादा कुछ और है. मैं सावधान होता हुआ बोला, "ग्वालियर में ट्रंक की लदवाई के खाते में मेरे तीस रुपये खर्च हुए थे. उतने में उन्होंने ट्रंक को मेरे घर से उठाकर ट्रांसपोर्ट कंपनी के ऑफिस तक पहुंचा दिया था. बेशक मैं जानता हूं कि ग्वालियर ग्वालियर है और बंबई. बंबई. यहां तीस से कुछ ज्यादा ही देने होंगे. बोलो, कितने?"

"साठ देंगे?" उसने पूछा और सीधी नजर मुझ पर डाली.

मुझे वह बड़ा लालची महसूस हुआ. अभी-अभी वह जिद पर अड़ा था कि सारा सामान अकेले ढोयेगा. कम-से-कम तीन जनों की मजदूरी वह अकेले हड़प करना चाहता था. सफल नहीं हुआ तो तीस दूने साठ मांग रहा है. मैंने घोर एतराज से उसकी ओर देखा. नजर मिलते ही वह धीमे से इस प्रकार हंस दिया, मानो साठ रुपयों की मांग करने के साथ उसकी विजय प्रारंभ हो गयी हो.

"एकदम डबल?" मैंने भौहें चढ़ाकर पूछा.

"चलिए, दो रुपये कम दे दीजिएगा."

"देखो, मुझे खिजाओ मत. दो रुपये कम करना भी कोई कम करना है? सबसे पहले उन दो मजदूरों को बुलाकर लाओ, जो तुम्हारी सहायता करेंगे. जब तक तीनों इकट्ठे नहीं होते, मैं सौदा कैसे कर लूं?"

"मजदूरों की यहां कोई कमी है, साब? एक ढूंढ़ो, हजार मिलते हैं. मेरे एक इशारे पर सौ मजदूर पैदा हो जायेंगे. उनकी चिंता आप क्यों करते हैं? मैं जो आपके सामने खड़ा हूं. जो मेरे साथ तय होगा, वही उनके साथ भी अपने-आप तय हो जायेगा. आप मुझसे बात करिए. बोलिए, कितना देंगे?"

ले-देकर सौदा पैंतालीस में तय हुआ. वह अपने सहायक मजदूरों की खोज में लपकता हुआ चला गया. जिस शैली में वह लपक रहा था, उसमें न जाने क्यों मुझे बनावट का आभास मिला. दसेक मिनट में मैंने देखा कि वह लौट रहा है—अकेला.

आते ही उसने नये जमाने को कोसना शुरू कर दिया, जिसकी हवा बच्चो-बूढ़ों सभी को लग चुकी थी और सभी ने मुंह फाड़कर बैठने को ही अपना ईमान-धरम मान लिया था.

"इनके मुंह इतने फटे हुए हैं साब, कि दस हजार रुपये डालो, तो भी पता न चले. मैंने सोचा कि कंबख्तों को पांच-दस का काम दिला दूं. उल्टे मुझी को खाने दौड़े! जायें भाड़ में, बला से! आप चिंता न करिएगा साब! मैं जो आप के साथ हूं. तबादला हुआ है, तो इसका मतलब यह तो नहीं कि आपकी चमड़ी उतारकर घर दें. आपका सामान उठाने को अगर एक बंदा भी न आये तो मैं कहता हूं कि सारी दुनिया की ऐसी की तैसी! मैं अकेला आपका काम कर दूंगा."

मामूली बुद्धि का भी व्यक्ति समझ सकता था कि दो अतिरिक्त मजदूर प्राप्त करने की उसने कोशिश ही नहीं की थी. केवल दिखावे

के लिए वह मजदूरों की खोज में गया था और दसेक मिनट में टहलकर लौट आया था. मेरे मन में उसके प्रति तीखा रोष उबल पड़ा. वह मेरा समय नष्ट कर रहा था. मेरा एक शब्द भी सुनने को वह तैयार नहीं था. सिर्फ अपनी मनवाने के लिए वह मुझ पर घेरा डाल रहा था. सारी ढुलाई अकेले हाथों करने की एक ऐसी जिद उसने पकड़ ली थी, जो न केवल बचकानी और असंभव, बल्कि खतरनाक भी थी. पुस्तकों का ट्रंक अपने भार से उसके हाथ-पैर तो तोड़ ही सकता था. अगर उसका समूचा शरीर ही ट्रंक के नीचे आ जाये, तो. . . मैंने आगे कल्पना नहीं की.

उसकी बातों की क्या प्रतिक्रिया मुझपर हुई है, इसे देखने के लिए वह रुका ही नहीं. न जाने कहां से वह एक मजदूर पटा ले आया. टैंपो के पीछे उस फट्टे को उसने तिरछा लगा दिया. वह इतनी स्फूर्ति से काम कर रहा था कि कुछ पल तो मैं उस अलौकिक दृश्य को देखता रह गया. उसने ट्रंक को घसीटना शुरू किया. मैंने नहीं सोचा था कि वह ट्रंक को अकेला घसीट पायेगा. उतने अधिक भार को कोई भी अकेला व्यक्ति टस-से-मस नहीं कर सकता, यही राय थी मेरी. मेरी राय की धज्जियां उड़ाता हुआ वह उस ट्रंक को घसीटकर टैंपो के पीछे ले आया. उसके छरहरे बदन में शारीरिक शक्ति की कमी नहीं थी, यह मैं अपनी आंखों से देख रहा था. मैं उससे चमत्कृत होने की बजाय नाराज होने लगा. वह निश्चित रूप से मुझ पर हावी होना चाह रहा था.

निर्ममता के साथ मैं मन-ही-मन कामना करने लगा कि ट्रंक के नीचे इसका पैर यदि सचमुच दब जाये तो कितना अच्छा हो! क्या वह अपने ढंग से मेरे साथ दादागीरी नहीं कर रहा था?

■

अतुलनीय शक्ति का प्रयोग करके उसने ट्रंक को फट्टे के ऊपर धकेलना शुरू किया. तिरछे फट्टे की पोजीशन ऐसी थी कि यदि सचमुच ट्रंक फट्टे के ऊपर सरक आता तो वह टैंपो के भीतर पहुंच सकता था. लगभग तीस सेकंड तक ट्रंक बिल्कुल भी न हिला. फिर अचानक उसने हौले-हौले ऊपर सरकना शुरू किया.

"हूंऊंऊंऊं. . .हुंक. . .हुंक. . ." शक्ति संचय के लिए वह अजीब-सी रिरियाहट अपने गले से निकालने लगा था. उसकी आंखें फैलकर बड़ी हो गयी थीं. चेहरे की एक-एक पेशी अपनी जगह से हिल गयी थी. गले की नसें इतनी ज्यादा फूल आयी थीं कि मैं आश्चर्य करने लगा, 'क्या आदमी की नसें इतनी मोटी हो सकती हैं?' उसके लंबे, छरहरे, शक्तिशाली हाथ ट्रंक को ऊपर धकेल रहे हैं या उसे वापस नीचे सरकने से रोक रहे हैं, इसी का पता कई बार नहीं चलता था. तिरछे फट्टे की आधी दूरी पार करके धरती से ऊपर उठ चुका ट्रंक, कई बार, एकदम रुक जाता था. न ऊपर चढ़ता था, न नीचे उतरता था. तब ट्रंक के साथ वह भी एकदम रुक जाता. गहरी सांसें लेकर वह एक नया ही दम अपने अंदर पैदा करता. उसके गले की फूली नसें और ज्यादा फूलने लगतीं. अचानक वह दौड़ने की तरह पैर चलाने लगता, किंतु दौड़ बिल्कुल न पाता. एक ही जगह खड़ा-खड़ा वह पैर चलाता रह जाता—लंबी मालगाड़ी को खींचने वाला भाप का इंजन यात्रा शुरू करते समय, जिस प्रकार जोर से चक्के घुमाने के बावजूद आगे नहीं बढ़ पाता, ठीक उसी प्रकार!

उसकी घोर प्रयत्नशील मुद्राएं वीर रस से ओतप्रोत थीं. प्राचीन युद्धों में नगाड़े की धमक सुनकर जिस प्रकार कायरों की भी रगें फड़क उठती थीं, उसी प्रकार उसकी संघर्षशील मुद्राएं देखकर मेरी हालत भी, मारे जोश के खस्ता होने लगती थी. सहसा मैं भूल जाता था कि मैं उससे चमत्कृत नहीं, बल्कि नाराज हूं और मेरी मान-रक्षा इसी में है कि मैं नाराज ही बना रहूं. भार को धकेलने की उसकी विकट क्षमता ने मुझे मंत्रमुग्ध कर लिया था. उसकी रगों का तनाव देखकर मेरी मुट्ठियां भिंच जातीं. मुट्ठियों को खोलने के लिए मुझे बहुत चैतन्य होकर प्रयास करना पड़ता. मेरे पूरे शरीर में एक तड़पन-सी पैदा हो गयी थी, जो मुझे बार-बार ट्रंक की दिशा में धकेलने लगती. ट्रंक ने जैसे मुझे हिप्नोटाइज कर लिया था. ललकार-ललकारकर ट्रंक मुझे पुकार-पुकार रहा था, 'आ! धकेल! आ! धकेल!'

सम्मोहन को तोड़ने के लिए मैंने जल्दी से सिगरेट निकालकर सुलगा लिया. उसने अचानक जोर लगाकर ट्रंक को सर्र से ऊंचा धकेल दिया. तिरछे फट्टे पर से होता हुआ ट्रंक टैंपो के अंदर चला गया.

उसने राहत की सांस भी न ली. हाथ झाड़ने जैसी भी कोई हरकत उसने नहीं की. वह ऐसा प्रदर्शन करने के प्रयास में था, मानो इतना भार उठाना-रखना तो उसका रोज का, अनेक बार का काम हो, किंतु उसका राज मुझसे छिपा नहीं रह पाया था. मैं जान चुका था कि उसकी सांसें भर चुकी हैं, किंतु उन्हीं सांसों को वह संयत रखकर धीरे-धीरे ले रहा है.

किसी मक्कार और क्रूर दर्शक की तरह मैंने सिगरेट के दो कश, पूरा समय लेते हुए, खींचे और छोड़े.

अब वह सामान के अन्य नगों को जल्दी-जल्दी उठाकर टैंपो में रखने लगा था. चुटकियों में उसने सारा सामान उठाकर भीतर सजा दिया और मेरे नजदीक आकर कहा, "चलिए साब!"

मुझे उसकी आवाज बदली हुई लगी. क्या यह परिवर्तन इसलिए था कि तीन जनों की मजदूरी अकेले घेर लेने की खुशी उसके सीने में समा नहीं रही थी? या इसलिए कि अपनी अंदरूनी थकान को छिपाने का प्रयास उसे बहुत भारी पड़ रहा था?

मैं खामोशी से उठ पड़ा. खामोश रहना ही मेरे लिए सर्वाधिक उचित एवं सुरक्षित था. जब वह मेरा एक शब्द भी नहीं सुन रहा था तो मेरे पास और चारा भी क्या था?

मैं टैंपो में सामने बैठ गया. वह पीछे, सामान के साथ बैठा. यह उसने अच्छा किया. उसको भी सामने बिठा लेने पर टैंपो चालक को अड़चन हो सकती थी. न होती तो भी मैं उसे अपने संग बिठाने को बिल्कुल राजी नहीं था.

उसका घमंड चूर-चूर होने में देर नहीं है, यह मैं निश्चित रूप से जानता था. अभी तो उसने ट्रंक को केवल धकियाकर ऊपर चढ़ाया है. इतने ही में उसकी दशा बिगड़ने लगी थी, भले ही उसने बिगड़ती दशा को खासे अच्छे ढंग से छिपा लिया. टैंपो जब अपनी मंजिल पर पहुंचेगा, याने कि मेरे घर, तब सारा सामान, जिसमें ट्रंक भी शामिल रहेगा, चौथी मंजिल पर चढ़ाना होगा. उस वक्त इतना विराट फट्टा कहीं से भी नहीं मिलेगा कि उसे आप तिरछा करके चौथी मंजिल पर टिका दें और ट्रंक को सिर्फ धकियाकर ऊपर चढ़ा दें.

मस्जिद से बोरीवली पहुंचने में दो घंटे लग गये. इस बीच मुझे शेर और सुअर की कहानी याद आती रही. पंचतंत्र में एक कथा है कि सुअर गंदे कीचड़ के बीच खड़ा था और शेर हरी दूब पर. सुअर

शेर को ललकारते हुए पूछा, "मुझसे लड़ सकते हो?" शेर ने सुअर कीचड़ सने गंधाते शरीर की तरफ घृणा से देखा. फिर कहा, लड़ तो सकता हूं, किंतु लड़ूंगा नहीं!" मैं अपने-आप को शेर जसी स्थिति में पा रहा था. भले ही मैं उसे सुअर नहीं कहूंगा, किंतु मेरी स्थिति अवश्य शेर जैसी थी. यदि मैं चाहता तो बहस में उसे निश्चित रूप से हरा सकता था, किंतु मैं उसे हरा देने के लिए प्रस्तुत ही नहीं था. मेरे पास सौ इलाजों का एक इलाज था—इंकार. यदि मैं उसकी सेवाएं लेने से ही इंकार कर देता तो क्या उसे अपनी हेकड़ी छोड़नी न पड़ जाती? या तो वह हेकड़ीविहीन होकर मेरे कदमों पर आ जाता या फिर मेरा काम छोड़कर चलता बनने के लिए मजबूर हो जाता.

किंतु इंकार करने से बहस छिड़ती, जिसके लिए मैं प्रस्तुत था नहीं. अपनी शेर-स्थिति में निरंतर मैं याद रखे हुए था. मैं इस दृश्य की कल्पना करके मन-ही-मन मुस्करा रहा था, जब टैंपो मेरा सारा सामान जमीन पर छोड़कर जा चुका होगा और हजरत सिर खुजाते खड़े होंगे कि इतने सारे सामान को और खासकर ट्रंक को, अकेले हाथों, चौथी मंजिल तक चढ़ाया कैसे जाये?

टैंपो मेरा सारा सामान जमीन पर छोड़कर जा चुका था पर वह सिर खुजाता हुआ खड़ा नहीं रह गया था. चार मंजिलें कितनी ऊंची होती हैं, इसका अंदाजा लेने के लिए उसने एक बार आसमान की ओर नजर नहीं उठायी थी. टैंपो में से सारा सामान उसने अकेले हाथों बाहर निकाला था. मैंने आशा नहीं रखी थी कि ट्रंक को भी अकेला ही बाहर खींचकर जमीन पर रख लेगा. प्रयास में ट्रंक अचानक उसके हाथ से छूट सकता था. टिन का यदि किसी भी कोने से जरा भी दब गया तो मैं डांट-डांटकर उसका हुलिया टाइट कर दूंगा, ऐसा निर्णय मैं लिये बैठा था, उसने इतनी खूबी से ट्रंक को जमीन पर रखा, मानो किसी ने अंडों की टोकरी उतारकर नीचे रखी हो. मैं उसके हुनर को देखता रह गया. भार उठाने के अनोखे दांव-पेचों का वह पक्का उस्ताद था.

"चलिए साब! आ पहुंचे!" वह बुदबुदाया. फिर से मुझे उसकी आवाज बदली हुई लगी या. . .यह मेरे मन का भ्रम था? क्या बुदबुदाहट से पता चल सकता है कि किसी की आवाज बदली हुई है या नहीं? न जाने क्यों, मुझे आभास मिल रहा था कि उसके मन में आशंका के बादल घुमड़ने लगे हैं. क्या वह सचमुच आशंकित था या केवल अपनी मनोकामना की सत्यता की कल्पना कर रहा था?

चौथी मंजिल की बालकनी से झांककर मेरी बीवी तसल्ली कर रही थी कि सारा सामान सही-सही आ तो गया? दोनों बच्चे शीघ्रता से जीना उतरकर नीचे आ गये थे. कुछ न सूझा तो उस भारी ट्रंक पर ही चढ़ बैठे और हंसने लगे. उनके हंसने का नोटिस नहीं लिया. मैंने बड़े ठंडे दिल से सिगरेट सुलगाया और तीली जरूरत-से-ज्यादा जोर लगाकर फेंकी.

वह बोला, "चलो बच्चो! अपना घर तो दिखाओ."

बच्चे कूदकर ट्रंक से उतरे. वे ही-ही करते हुए जीने की तरफ बढ़े. उनकी हंसी देखकर वह भी हंस दिया और कहने लगा, "रुको! मुझे सामान तो उठाने दो."

फिर उसने चुनकर दो नग उठा लिये. ट्रांसपोर्ट से आये हुए नग भारी होने के कारण, उन दो नगों में भी, भार की कोई कमी नहीं थी. इसके बावजूद, वे सर्वाधिक भारी नग तो नहीं ही थे. सर्वाधिक भारी तो वह ट्रंक ही था, जिसे अकेले हाथों उठाने का प्रयास तक उसने नहीं किया था. मेरे जीतने की प्रक्रिया शुरू हो चुकी थी! बड़ी ठंडक के साथ मैंने सिगरेट का गर्म कश खींचा.

बच्चे आगे-आगे चले. दोनों नग उठाकर वह उनके पीछे जीना चढ़ने लगा. सामान की रक्षा के लिए मैं नीचे रुका रहा. वह शीघ्र ही नीचे आ गया, खाली हाथ. उसकी सांस भर आयी थी, किंतु बहुत अधिक नहीं. बच्चे इस बार नीचे नहीं उतरे थे. उसने फिर दो नग उठा लिये. न जाने किस प्रकार उसने अपना शरीर संचालित किया कि अचानक दोनों नग उसके कंधे पर चढ़े नजर आये. मैंने मन-ही-मन कहा कि यह आदमी तो जादूगरों की तरह हाथ की सफाई दिखाता है! दोनों कंधों पर एक-एक नग उठाकर उसने झटपट जीना चढ़ना शुरू किया. इस बार जब वह खाली हाथ नीचे आया तो उसकी सांस पहले से ज्यादा भर आयी थी.

वह सरासर बेवकूफी कर रहा था, लेकिन मैं उसे कुछ बताने वाला नहीं था. छोटे नगों को ऊपर चढ़ाने के लिए उसे जो बार-बार जीना चढ़ना-उतरना पड़ रहा था, उसमें उसका शरीर भीतर और बाहर से थकता जा रहा था. इकट्ठी हो रही थकान के कारण, अंत में, जब वह ट्रंक को उठाना चाहेगा, तब एकदम पस्त होकर फैल जायेगा. सामान चढ़ाने का क्रम उसे उल्टा रखना चाहिए था. भारी ट्रंक को यदि वह सबसे पहले चढ़ाता तो शरीर में थकान इकट्ठी न होने के कारण उसे आसानी रहती. बेशक, ट्रंक चढ़ाते-चढ़ाते वह बुरी तरह थक जाता, किंतु थोड़ा आराम करके इतनी शक्ति-संचय वह अवश्य कर लेता कि कम भार के छोटे नगों को बाद में

लघुकथा

उधारी

■ विमल विश्वास

खचाखच भरे एक टैंपो को पुलिस के सिपाही ने रोका और अपनी रौबदार आवाज में कहा, "स्साले. . . ओवर लोडिंग करता है!"

चालक सकपका गया और बिना कुछ बोले दस रुपये का एक नोट सिपाही के हाथ में थमा दिया.

"रिश्वत देता है मुझे, तेरा चालान करूंगा." पुलिस वाला फिर गरजा.

चालक ने बड़े धैर्य के साथ कहा, 'दीवानजी, ये रिश्वत नहीं है, भूल गये क्या? कल मैंने आपसे दस रुपये उधार लिये थे. वही रुपये लौटा रहा हूं."

"अच्छा-अच्छा, ठीक है". सिपाही ने नोट जेब के हवाले किया और चालक ने अपना टैंपो आगे बढ़ा दिया. ☐

आसानी से ऊपर ले जा सकता . ठीक विपरीत, वह छोटे नगों को पहले चढ़ाने की भूल कर रहा था. अब तो यह बात निश्चित हो गयी थी कि भारी ट्रंक को वह अकेला नहीं ले जा सकता.

वैसे तो खैर, ट्रंक को वह उस सूरत में भी अकेला नहीं ले जा सकता था, यदि उसने उसी को सबसे पहले चढ़ाना चाहा होता. इन्हीं सुखद एवं आनंदमय विचारों में डोलता हुआ मैं खड़ा रहा और उसने देखते-देखते सारा छोटा सामान ऊपर चढ़ा दिया. मैंने अचानक देखा कि मैदान तो साफ है और वह ट्रंक, हारे हुए अकेले सिपाही की तरह नीचे रह गया है.

वह ग्राउंड फ्लोर के आंगन में बैठकर बीड़ी पी रहा था. मैं उसकी ओर सहानुभूति से देखता रह गया. पहली बार मुझे लगा कि अब तक उसके प्रति सहानुभूति-विहीन रुख रखकर मैंने अच्छा नहीं किया. वह ढीठ या लालची नहीं, बल्कि एक मेहनतकश और गरीब व्यक्ति है. इसकी मजबूरियों का कच्चा चिट्ठा न जाने कितना लंबा हो! इतना निश्चित है कि इसे आज पैंतालिस रुपयों की सख्त जरूरत है— इतनी कि यह कुछ भी कर गुजरने को तैयार है. मेरा फर्ज है कि इसे समझाऊं. कुछ भी कर गुजरने का अर्थ यह तो नहीं कि यह अपने हाथ-पैर तुड़वा ले. अब तक चुपचाप तमाशा देखकर मैंने अच्छा नहीं किया. मैं उसके पास जाकर गला खंखारकर बोला, "थक गये होगे! है न?"

"थकने से काम नहीं चलता बाबूजी!" उसने जवाब दिया.

"फिर भी. . .थके तो होगे ही. आखिर तुमने कम सामान ऊपर नहीं चढ़ाया है."

"अरे बाबूजी!" मैंने इससे भी भारी सामान न जाने कितनी बार ऊपर चढ़ाया है. आप शायद यह सोच रहे हैं कि अब इस ट्रंक को चढ़ाने की ताकत मुझमें बची नहीं है."

"नहीं, नहीं! मुझे तुम्हारी ताकत पर पूरा भरोसा है."

"फिर भी. . .अगर आप ऐसा सोच रहे हैं तो गलत नहीं सोच रहे. ऐन इस वक्त तो वाकई मुझमें ताकत नहीं है, लेकिन दसेक मिनट सुस्ता भर लूं. फिर देखिए, ताकत का कमाल." और वह खीसें निपोरकर मुस्कराने लगा.

मैंने जवाब दिया, "ऐसा है. . .तुम्हारी ताकत का कमाल मैं काफी देख चुका हूं. जितना भारी सामान तुमने अकेले ऊपर पहुंचाया है, उसमें कमाल की कोई कमी नहीं है. अब. . .मेरी बात जरा ध्यान से सुनो! सुन रहे हो?"

"जी."

"ट्रंक बेहद भारी है. उसे अकेले उठाओगे तो भारी खतरा मोल लोगे. अगर कहीं गिर-गिरा पड़ा तो खुद तो गड्ढे में जाओगे ही, मुझे भी उतारोगे! मेरे पास न तो इतना वक्त है और न पैसा कि तुम्हें लादकर अस्पताल ले जाऊं और इलाज करवाता फिरूं."

"आप चाहते क्या हैं?" उसने दो टूक सवाल किया.

"सहायता के लिए तुम्हें आसपास से मजदूर मिल जायेंगे. कम-से-कम तीन मजदूरों को बुला लाओ. तुम्हें मिलाकर चार हो जायेंगे. चारों कोनों पर एक-एक का कंधा लगेगा, तब कहीं ट्रंक ऊपर चढ़ेगा."

"ऐसा है बाबूजी, आपकी बात मैं आधी मानूंगा, आधी नहीं."

"क्या मतलब?" मैं फिर सावधान होने लगा.

"मतलब सिर्फ यह कि ट्रंक तो मैं अकेला ही चढ़ाऊंगा."

"देखो, मैं साफ-साफ कहे देता हूं. . ."

"च च च . . .पहले मेरी बात तो सुनिए. मैं तीन नहीं, चार मजदूर बुलाने को तैयार हूं, लेकिन पहले मेरी बात सुनिए."

"बोलो!"

"मेरी समस्या सिर्फ इतनी है कि ट्रंक को उठाकर मैं अपनी पीठ पर कैसे रखूं! भार-वार से मुझे डर नहीं लगता. मैं तो इससे भी ज्यादा भार उठाकर चार मंजिलें चढ़ सकता हूं. ऊपर जाने के बाद फिर समस्या होगी कि ट्रंक को मेरी पीठ पर से उतारेगा कौन? उतारकर फर्श पर रखेगा कौन? इसीलिए मैंने कहा कि आपकी बात मैं आधी मान लेता हूं. याने, मजदूर बुलाकर तो ले आता हूं, लेकिन वे सिर्फ इतना करेंगे कि. . ."

आगे के शब्द मैंने नहीं सुने. फिर से अदम्य क्रोध मेरे तन-मन में हिलोरें लेने लगा था. मैं इसकी भलाई के लिए चिंतित हूं और यह मानो मुझ पर एहसान कर रहा है, आधी बात स्वीकार कर. यह चाहता है, बुलाये गये मजदूरों से न्यूनतम काम लेना, ताकि इसे जो पैंतालिस रुपये मिलेंगे, उनमें से न्यूनतम हिस्सा मजदूरों को देना पड़े. बेवकूफी की हद है! इसे तो यदि कोई कहे कि मैं तुम्हें सौ रुपये दूंगा, बशर्ते तुम आत्महत्या कर लो तो यह निश्चित रूप से आत्महत्या कर ले!

मैं उस विकट व्यक्ति से अनेक कदम पीछे हट गया. दूर से मैंने कहा, "जो तुम्हारी मरजी में आये, सो करो." मेरा लहजा ऐसा था, मानो कह रहा होऊं, 'जा साले, मर!'

मैं खटाखट जीना चढ़ने लगा. चौथी मंजिल पर आकर मैं अपने फ्लैट में घुसा. सख्त नाराजगी से मैंने दरवाजा बंद कर लिया.

◆

मुश्किल से दस मिनट बीते होंगे कि मन में अकुलाहट उबलने लगी. मैंने बाल्कनी में आकर नीचे झांका. मुझसे बातचीत करते समय वह जहां बैठा था, वहां से मैंने उसे नदारद पाया. अवश्य वह मजदूरों की खोज में चला गया था. अंदर लौटकर मैं बेचैनी से टहलने लगा. फिर से मैं बाल्कनी में निकल आया. चौथी मंजिल की ऊंचाई से मैंने उस ट्रंक को देखा, जिसका भार एक अजीब-सी आर्थिक और नैतिक गुत्थी का कारण बन रहा था. ट्रंक जहां-का-तहां रखा दिखाई दिया. उतने भारी-भरकम ट्रंक के चोरी हो जाने का कोई खतरा नहीं था. इसीलिए तो मैं उसे छोड़कर ऊपर आ गया था और वह उसे छोड़कर मजदूरों की तलाश में चला गया था. ट्रंक के ढक्कन का टिन जोरों से चमक रहा था. सूर्य की किरणें ढक्कन पर सीधी टकराकर मेरी दिशा में उछल रही थीं. उन किरणों ने ढक्कन के टिन को आईने जैसा रूप दे दिया था. चौंध के कारण मुझे आंखें मसलने की इच्छा हुई. बाल्कनी छोड़ मैं फिर कमरे में आ गया.

कोई पंद्रह मिनट बाद मैंने ग्राउंड फ्लोर की तरफ से किसी बहस की आवाजें आतीं महसूस कीं. झांककर देखा, तो वह दो मजदूरों को कहीं से बुलाकर लौट आया था. मजदूर ज्यादा मांग रहे थे और वह कम देना चाह रहा था! बहस इसी की थी. मजदूर बार-बार ट्रंक के कुंडे पकड़कर, उठा-उठाकर, वजन की जांच करते और बड़ी शिद्दत से दोहराते कि जो वे मांग रहे हैं, उसमें गैरवाजिब कुछ नहीं है. रह-रहकर वे चेहरे बाल्कनी की तरफ उठाकर सीधी नजर से देखते, मानो चार-चार मंजिलों की ऊंचाई को कोसने के

इच्छुक हों. बहस की आवाजें कभी तो मुझ तक साफ-साफ पहुंचने लगतीं और कभी धुंधली पड़ जातीं. दोनों मजदूरों को वह समझा रहा था कि मंजिलें चार हों, चाहे दस हों, तुम्हें क्या सरोकार? लादकर ऊपर तो मैं ले जाऊंगा न? तुम दोनों मेरे पीछे-पीछे खाली हाथ, आराम से ऊपर चढ़ोगे. साहब के कमरे के अंदर तुम इस ट्रंक को मेरी पीठ पर से नीचे उतारोगे. बस, छुट्टी ! इतने से काम के इतने ज्यादा रुपये?

मैं ठीक से कह नहीं सकता कि सौदा उनके बीच कितने में पटा. बहरहाल, दोनों मजदूरों ने कुंडा एक-एक तरफ से पकड़कर ट्रंक को उठाना शुरू किया. ट्रंक के डोलने से उसका चमकता ढक्कन कभी तो बुझ जाता और कभी फिर चमकने लगता, जैसे निर्जीव ट्रंक में स्पंदन आने लगा हो.

सहसा मैंने गौर किया कि वह अपने मस्तक पर कोई कपड़ा कसकर बांध चुका था. अतुलनीय वजन उठाने से पहले मस्तक पर कपड़ा बांध लेने से, योग के किस नियमानुसार कौन-सी खास बात पैदा हो जाती है, मैं नहीं जानता; किंतु कुछ-न-कुछ होता अवश्य है. मैंने एक सरकस में देखा था कि एक नाजुक किशोरी चित लेट गयी. उसके ऊपर एक फट्टा रखा गया. फट्टे के ऊपर से एक जबर्दस्त हाथी चलता हुआ निकल गया. किशोरी को कुछ भी न हुआ. इस किशोरी ने हाथी के नीचे कुचले जाने से पहले अपने मस्तक पर कसकर पट्टी बांधी थी.

मजदूरों के चेहरों से जाहिर था कि वे कितना ज्यादा दम लगा रहे थे. ऊंची बाल्कनी से नीचे देख रहा होने के कारण मुझे ठीक से पता न चला कि धरती से कुल कितनी ऊंचाई तक ट्रंक को उठाया गया. बहरहाल, ट्रंक के नीचे इतनी जगह अवश्य बन गयी थी कि वह अपनी कमर झुकाकर नीचे घुस सकता.

कमर झुकाकर उसने तड़ से एक ताली बजायी. अगले ही क्षण वह ऐसे लपका, जैसे छछूंदर अपने बिल में घुसने को लपकती है. मैंने बाल्कनी से देखा कि वह उस ट्रंक के नीचे घुसकर मेरी आंखों से ओझल हो गया है. मैंने उसकी ललकार सुनी, "छोड़ो! छोड़ो!" ट्रंक के नीचे से उसकी आवाज ऐसे आ रही थी, जैसे कि वह भूगर्भ में से फूटकर निकल रही हो. हुक्म पाते ही दोनों मजदूरों से हौले से ट्रंक के कुंडे छोड़ दिये. जंगली प्राणी को शिकारी की दिशा में खदेड़ने के लिए जिस प्रकार हांका लगाया जाता है, कुछ-कुछ उसी प्रकार की आवाजें लगाते हुए दोनों मजदूर बड़े उत्तेजित होकर ट्रंक के इर्दगिर्द डोलने लगे. उन्होंने आशा नहीं रखी थी कि उतना भारी ट्रंक एक अकेला व्यक्ति अपनी पीठ पर उठा लेगा. जरूर वे यही समझे हुए थे कि हमें हाथ तो लगाना ही पड़ेगा. फिर वे अपने पारिश्रमिक को आसानी से बढ़वा लेते.

किंतु ऐसा कुछ हुआ नहीं. उनकी निराशा तत्काल उत्तेजना में बदल गयी. "होक् होक्...हाक्... हीक्...रे...रे...औ...ओक्!" जैसी आवाजें उनके गलों को झटके दे-देकर निकलने लगीं. बंदरों की तरह उन्होंने ट्रंक के आसपास उछलना शुरू कर दिया.

असहमति और नाराजगी से मैं न जाने क्या बड़बड़ाया. समझ में न आया कि बाल्कनी में ही खड़ा रहूं या तेजी से जीना उतरकर नीचे जा पहुंचूं. वहां पहुंचकर भी मैं आखिर क्या कर सकता था? ऊंची बाल्कनी से देखने के कारण, मेरी नजर ट्रंक के भारवाहक तक, बिल्कुल नहीं पहुंच रही थी. मुझे यही लग रहा था, जैसे वह ट्रंक अपने-आप किसी जादू से हिलने-डुलने लगा है. मैंने आसपास खेलते बच्चों को ट्रंक की दिशा में लपकते देखा. मुझे अचानक खतरा महसूस हुआ. ट्रंक यदि किसी बच्चे पर गिर पड़ा तो? वह सदा के लिए अपंग हो सकता था. ट्रंक के नीचे यदि वह मार्मिक ढंग से दबा तो उसकी मौत भी...नहीं, नहीं...मैं किसी बाल-हत्या का निमित्त नहीं बन सकता. निमित्त के रूप में मेरी ओर ही तो इशारा किया जायेगा. न मैं इतना भारी ट्रंक ग्वालियर से बंबई लाता, न यहां उसे एक दीवाना मजदूर अकेले के दम पर पीठ पर उठाता, न उस बच्चे पर ट्रंक अचानक गिर पड़ता...बाल्कनी से ही मैंने गला फाड़कर चिल्लाना शुरू कर दिया, "बच्चो! बच्चो! दूर रहो, बच्चो!"

यह कम आश्चर्य की बात नहीं थी कि मैं उतने जोर से चिल्ला रहा था, किंतु कोई बच्चा मेरा एक भी शब्द नहीं सुन रहा था. डोलते ट्रंक के चारों ओर जैसे मजदूर 'होक्...होक्...' करते हुए उछल रहे थे, वैसे ही उन बच्चों ने भी गलों से विचित्र आवाजें और कीकें निकालते हुए उछलना शुरू कर दिया.

क्रोध और आशंका से थरथराता हुआ मैं तेजी से जीना उतरने लगा. बेशक मेरा एक शहर से दूसरे शहर में तबादला हुआ है, लेकिन मैं यहां कोई सरकस कंपनी लेकर नहीं आया हूं.

तीन मंजिलों तक मैं धड़ाधड़ जीना उतरता गया और फिर सहमकर रुक गया. ट्रंक ऊपर आ रहा था..

आसपास बिखरी कहानियां

प्रतिष्ठा

▣ रमेश दीक्षित

मिथिलांचल में किसी भी भोज-भात में खाते समय अंत में थोड़ा सा अन्न थाल में छोड़ देना प्रतिष्ठामूलक समझा जाता है. उस छोड़े हुए भोजन को वहां 'प्रतिष्ठा' कहते हैं.

उस दिन मेरे एक मिथिलावासी मित्र की शादी थी. शादी आधी रात गये सम्पन्न हुई. शादी के पश्चात दूल्हे को उसकी सास ने खाना खिलाने को बुलवाया. दूल्हा बहुत भूखा था, उसने झट-पट सारा खाना खा लिया, यहां तक कि थाल में एक दाना भी नहीं बचा. जब सास ने यह देखा तो हंसते हुए उन्होंने चुटकी ली, 'अरे मेहमान! आपने तो अपनी प्रतिष्ठा भी खा ली!"

मेरा मित्र खिसियानी हंसी हंसता हुआ बोला, "मायजी! जब पेट ही नहीं भरा तो प्रतिष्ठा रखकर ही क्या मिलेगा?"

आस-पास खड़े साले-सालियां ठठाकर हंस पड़े. ☐

जैसे कोई बूढ़ा व्यक्ति एक-एक सीढ़ी रुक-रुककर चढ़ता है; उसी तरह वह ट्रंक एक-एक सीढ़ी पर रुककर ऊपर उठ रहा था. जीने के घुमाव पर ट्रंक कुछ ऐसे फंसा हुआ था कि उसके नीचे का कुछ भी मुझे नजर नहीं आ रहा था. एक अदम्य शोर ट्रंक के नीचे से फूटकर, किसी उल्टे झरने की तरह, ऊपर बह रहा था. उस शोर में दोनों मजदूरों की 'होक्-होक्' तो शामिल थी ही, बच्चों की तीखी चिल्ल-पों भी पूरी बेधकता से मिली हुई थी. इनके साथ गुथकर एक और विचित्र आवाज चारों ओर थरथरा रही थी. वह आवाज एक धीमी, दर्दनाक रिरियाहट जैसी थी, मानो किसी कैदी को वीभत्स यातना दी जा रही हो और वह जब्त करते-करते भी लगातार रिरिया रहा हो . . . उस रिरियाहट पर कैदी को खुद शर्म आ रही हो, लेकिन किसी भी प्रकार वह उसे रोक न पा रहा हो. निश्चित रूप से वह रिरियाहट उसी के मुंह से फूट रही थी, जिसने अपनी पीठ पर ट्रंक लाद रखा था. ट्रंक उसे दबा रहा था, जबकि वह उसे एक-एक सीढ़ी ऊपर उठा रहा था. मैं बेतहाशा चिल्लाने लगा, "हट जाओ. नीचे से हट जाओ. ट्रंक गिरेगा तो दब जाओगे. हटो, हटो."

मैं और आगे चिल्लाया, "सहारा दो, मजदूरो सहारा दो!"

तुरंत एक चीत्कार ट्रंक के नीचे से सुनाई पड़ा, "छूना मत! बैलेंस बिगड़ेगा. छूना मत. खबरदार! हा-आऽऽ. . . ."

'हाआऽऽ. . .' का यह स्वर फौरन 'हाक् . . . हीक् . . . हीईक . . .' जैसी चुनौतियों में बदल गया. प्रत्येक 'हाक्!' या 'हीक्!' पर ट्रंक एक-एक सीढ़ी ऊंचा उठ जाता.

जीने के मोड़ पर ट्रंक जरा थमा, ताकि तिरछा हो सके. फिर से उसने एक-एक चुनौतीपूर्ण शब्द पर एक-एक सीढ़ी ऊपर उठना शुरू किया.

अगर मैं सामने से न हट जाता, तो ट्रंक मुझे निश्चित रूप से धकियाकर गिरा देता. गिरने के अगले ही क्षण ट्रंक स्वयं भी मुझ पर आ गिरेगा और अपने भार से मेरी तमाम पसलियां तोड़ डालेगा—यह भय मेरे लिए इतना वास्तविक हो चला कि मैं चिहुंककर कई सीढ़ियां ऊपर चढ़ गया. शिशुओं की तरह चिहुंक पड़ने पर मैंने बड़ी शर्म महसूस की. मैं शर्मसार हूं या बेशर्म, इसकी परवाह किये बगैर ट्रंक एक-एक सीढ़ी ऊपर चढ़ता ही जा रहा था. यह बात मुझे घोर अविश्वसनीय लगी, हालांकि यह मेरी आंखों के सामने ही घट रही थी.

मैं फिर से चिल्लाया, "मजदूरो! इसे सहारा दो!"

और ट्रंक ने तत्काल चीत्कार किया, "खबरदार! छूना मत!"

मैंने ट्रंक के नीचे दो नंगे पैर देखे. पेंसिल जैसी मोटी रगें उन पैरों में इतनी ज्यादा उभरी हुई थीं कि मुझे लगा, ये रगें किसी भी क्षण बर्स्ट हो जायेंगी. जीने में दूर-दूर तक खून के छींटे उड़ेंगे. सीढ़ियां लाल और चिकनी हो जायेंगी. हवा निकलने से गुब्बारा जिस तरह पिचककर बैठने लगता है, उसी तरह ट्रंक भी नीचे बैठ जायेगा. सीढ़ियों पर तिरछा होकर यह ऐसा बैठेगा कि न ऊपर जायेगा, न नीचे उतरेगा. इसके नीचे ये जो पैर हैं, ये इसी के नीचे घुलकर गायब हो जायेंगे.

"हीक्! हाक्! हीक्! हाक्!"

ट्रंक एक-एक सीढ़ी ऊपर उठता जा रहा था.

जैसे बुलडोजर के सामने कुछ भी नहीं टिक पाता और मटियामेट हो जाता है, उसी प्रकार वह ऊपर उठता ट्रंक मुझे मटियामेट कर देने के पक्के इरादे के साथ, दूसरी मंजिल पार कर के तीसरी मंजिल के जीने पर आ रहा था. "हीईक्! हा आक्! खबरदार! छूना मत!"

ट्रंक के पैरों को अब मैंने घुटनों तक देख लिया. केवल देखने से ही पैर इस्पात जैसे सख्त महसूस हुए. वे बढ़े आ रहे थे. उनमें तेजी नहीं थी, लेकिन ठोस नियमितता थी. चेहरों पर भीष्म प्रतिज्ञाएं लिखी हुई मैंने कई बार देखी हैं. आज मैं भीष्म प्रतिज्ञा को पैरों पर लिखी देख रहा था. चौथी मंजिल तक भारवहन की ऐसी प्रतिज्ञा, जिसने मेरे छक्के छुड़ा दिये थे. "हीक्! हाक्!"

मैं चिल्लाता हुआ चौथी मंजिल की तरफ भागा, "संभलकर! बचकर!"

संभलने और बचने की सलाह मैं किसे दे रहा था? उस ट्रंक को या अपने-आप को?

ट्रंक चौथी मंजिल के जीने पर कदम रख चुका था. उसका आकार मैंने एकाएक ही फूलकर बड़ा होता महसूस किया, मानो वह जीने में समा नहीं रहा था. जीने की दीवारों को तोड़ता-फोड़ता हुआ वह फूल रहा था. टूटती दीवारों का मलवा मुझ पर गिरने लगा. ट्रंक का इरादा शुरू से यही तो था—मुझे गिराकर मलबे में जिंदा दफन कर देना! खास इसी इरादे से वह फूल रहा था . . . फूलता और ऊपर उठता जा रहा था—मेरी ओर! "हीक्! हाक्! हीईक्! हाआक्! . . . ."

भयाक्रांत कर देने वाले उस तिलिस्म को तोड़कर मैं हांफता हुआ अपने फ्लैट में घुसा.

बीवी-बच्चों को मैंने तुरंत किचन की तरफ धकेलना शुरू कर दिया, "हटो! हटो! बच्चो! वह आ रहा है!"

"कौन आ रहा है?" बीवी ने पूछा.

"ट्रंक! और कौन?"

"लेकिन इसमें इतना . . ." बीवी ने आगे न जाने क्या कहा. मैं सुन कैसे सकता था? ट्रंक मेरे खुले दरवाजे पर प्रकट हो चुका था, जैसे कोई गेंड़ा दिशा बदलने के लिए धीरे-धीरे मुड़ रहा हो, उस तरह उसने जीने में अपनी दिशा बदलनी शुरू की.

फिर वह हौले से मेरे फ्लैट में दाखिल हो गया. यह कुछ-कुछ ऐसा ही था कि किसी के गले पर आप एक घंटे तक छुरा दबाये रखें, लेकिन घुसेड़ें नहीं—और फिर एक सेकंड में घुसेड़ दें.

ट्रंक के पैर कमरे में बीचोंबीच आकर रुक गये. मेरी बोलती बंद हो गयी थी. मैं बौड़म की तरह उन दो मजदूरों की तरफ देख रहा था, जो ट्रंक के पीछे-पीछे कमरे में दाखिल हुए थे. दोनों का रंग उड़ा हुआ था. अब वे मसखरी के स्वर में 'होक्! होक्' नहीं चिल्ला रहे थे. जो पराक्रम उन्होंने अभी-अभी देखा था, उससे वे स्तब्ध हो गये थे. इसी स्तब्धता ने उनका रंग उड़ा दिया था. उनकी मंत्रमुग्ध नजरें कमरे के बीचोंबीच ठहर गयीं, जहां ट्रंक आकर रुका खड़ा था.

ट्रंक को उसकी पीठ पर से उतारने का कोई प्रयास ही उन्होंने नहीं किया. मारे स्तब्धता के वे सब-कुछ भूलभाल कर खड़े थे. मैं एकदम बौखला गया, "देखते क्या हो? उतारो! उतारो!"

वे झपटकर ट्रंक के दायें-बायें खड़े हो गये. एक-एक कुंडा पकड़कर उन्होंने ट्रंक को उसकी पीठ पर से उठाया और हौले

बायें झुलाकर फर्श पर रख दिया. तब मैंने उसे झुके हुए देखा. समें इतना भी दम नहीं था कि पीठ सीधी कर सकता. वह हांफ हा था. उठती-गिरती छाती के कारण ही वह मुझे जिंदा महसूस आ, वरना वह तो किसी बेजान बुत की तरह झुका-झुका खड़ा ह गया था. उसके मुंह के दोनों छोरों से लार की लकीरें निकलकर ड्डी तक पहुंच चुकी थीं. उसके दोनों हाथ फर्श की दिशा में बेदम कर लटक रहे थे. लगता था, पशुओं की तरह उसके चार पैर और हाथ हैं ही नहीं. भार हट जाने के बावजूद उसकी आंखें टी पड़ रही थीं. मुझे वह कोई और ही व्यक्ति महसूस हुआ.

सहसा उसकी और मेरी नजरें मिल गयीं. ऐसा लगा, जैसे ह आंखों-आंखों में मुझे कोसता हुआ कह रहा है, 'मेरी यह दशा हीं ने की है.'

मुहल्ले के जो बच्चे साथ-साथ ऊपर आ गये थे, उन्हें मैंने टकर भगा दिया. कोई ताकझांक न कर सके, इस दृष्टि से मैंने तं दरवाजा बंद कर लिया.

कुंडी चढ़ाते समय मैंने गर्दन मोड़कर उसकी तरफ देखा. ह अभी भी सीधा तनकर खड़ा नहीं हुआ था, जबकि उसकी ठ पर से भार कब का हट चुका था. मैं घबरा गया.

कहीं उसकी कमर हमेशा के लिए तो मुड़ नहीं गयी? शरीर-ज्ञान की दृष्टि से यह संभव था या नहीं, मैं नहीं जानता था; तु मेरे मन की पहली आशंका यही थी, इसकी रीढ़ की हड्डी रत से ज्यादा तो नहीं दब गयी? सारा भार इसने इसी हड्डी ढोया है. कोई मनका तो इधर-से-उधर नहीं खिसक गया?

मैंने सोचा कि आगे बढ़कर मैं उसके कंधे पर स्पर्श करूं. से उसे तसल्ली मिलेगी और वह सीधा तनकर खड़ा हो जायेगा, कन वह मुझे कंधा छूने का अधिकार देना ही नहीं चाहता शायद वह जानता था कि साब कोई ईसा-मसीह नहीं हैं, मुझे कंधा छूटकर ही सीधा खड़ा कर देंगे.

उसकी ओर मैं बढ़ सकूं, इससे पहले ही उसने हौले-हौले नी कमर सीधी करनी शुरू कर दी. निर्जीव-से होकर झूलते के हाथों में चेतना आ गयी. एक हाथ से उसने ठुड्डी तक आयी लार को पोंछा.

सीधी होती हुई कमर उसे राहत पहुंचा रही थी या पीड़ा? यह बिल्कुल समझ में नहीं आया. मैंने किसी मानव के चेहरे वैसे भाव कभी नहीं देखे थे, जैसे उस वक्त उसके चेहरे पर उन भावों का अर्थ समझना मेरे लिए मुमकिन हो ही कैसे ता था? दोनों हाथ कमर पर रखकर अब वह सीधा तन गया एक हाथ कमर पर धरे रहकर उसने अचानक दूसरा हाथ ओर बढ़ा दिया और कहा, "लाइए, पैसे दीजिए! मैं चलूं."

"देता हूं." मैंने कोमलता से कहा, "पानी-वानी पीयोगे?"

"अभी कुछ भी खाना या पीना ठीक न होगा." वह बोला, प रकम दीजिए. मैं चलता हूं."

"चले जाना, बैठो तो सही." मैं सचमुच चाहता था कि वह और कुछ आराम कर ले. उसने मेरी ओर ऐसे देखा, जैसे नीयत पर उसे शक होने लगा हो.

"बैठना क्या है, साब!" वह जरा नाराजगी से बोला, "हम बैठ नहीं सकते."

"फिर भी..."

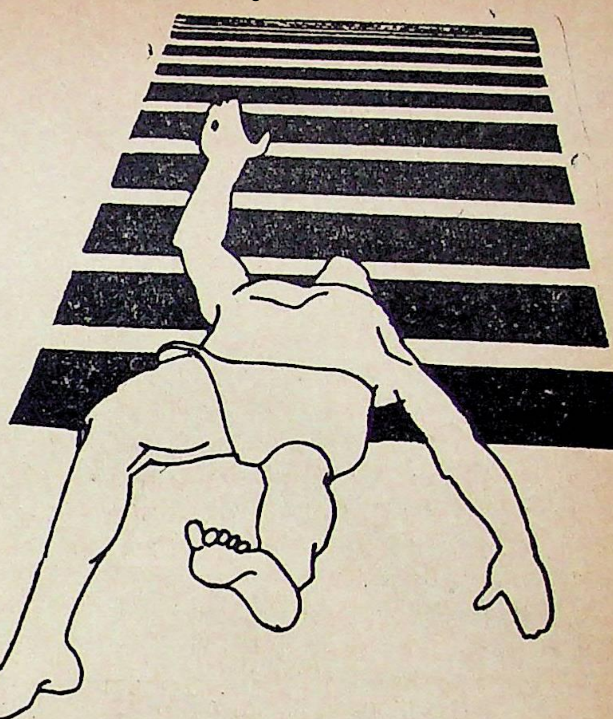

"आप तो बस पैंतालीस गिन दीजिए और मुझे जाने दीजिए."

मेरी सारी सहानुभूति कपूर की तरह उड़ गयी. मैंने पैंतालीस रुपये गिनकर उसे दे दिये. जब मैं गिन रहा था, तब वह भी नजरों ही-नजरों में गिन रहा था. इसके बावजूद नोट हाथ में आने के बाद उसने दुबारा गिने. कोई धन्यवाद उसने मुझे नहीं दिया. मेरी ओर हल्की-सी मुस्कान भी उसने नहीं फेंकी.

विशुद्ध रूखेपन से उसने कहा, "अच्छा साब! जयहिंद!"

'जयहिंद' शब्द मैंने बरसों बाद इतना अचानक सुना कि अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करने जितना भी मैं न संभल पाया—और वह मेरे फ्लैट का दरवाजा खोलकर जीना उतरना शुरू कर चुका था. उसके पीछे दोनों मजदूर भी शीघ्रता से जीना उतरने लगे. मैंने दरवाजा बंद किया. उस भारी ट्रंक को मैं देखता रह गया.

मैं इस अंदाजे के साथ बालकनी में आकर खड़ा हुआ कि अब तक उस विकट मानव ने चारों मंजिलों की सीढ़ियां उतर ली होंगी. इमारत में से वह बाहर निकलने ही वाला होगा. मैं नजर झुकाकर बालकनी से नीचे देखने लगा.

वे तीनों जीने में से निकले और गेट की तरफ जाने लगे. ऊपर से मैं तीनों के सिर देख रहा था. तीनों की शारीरिक लंबाइयां आधी-आधी लग रही थीं.

वे झगड़ा कर रहे थे. दोनों मजदूरों को शायद वह ठहरायी गयी रकम से कुछ कम देने के प्रयास में था. अचानक तीनों ठिठक कर खड़े हो गये. उसने दोनों मजदूरों को सख्त नाराजगी से कुछ नोट थमा दिये. मजदूरों ने साधिकार उन नोटों को टेंट में खोंसा. फिर वे जाने लगे. वह उनके साथ न चला. सीना तानकर वह एक ही जगह खड़ा रहा. चहारदीवारी का गेट पार करके मजदूर सड़क पर मुड़े और ओझल होने लगे.

वह तब तक अपनी जगह से न हिला, जब तक दोनों मजदूर पूर्णतया ओझल न हो गये.

फिर उसने गेट की ओर बढ़ना शुरू किया. मस्तक पर बंधा कपड़ा खोलकर उसने जेब में रख लिया.

सहसा मुझे उसकी चाल में फर्क आता महसूस हुआ.

मैं कुछ समझूं, न समझूं कि वह बुरी तरह लड़खड़ाया. अभी-अभी तो वह सीना तानकर खड़ा था. अचानक क्या हुआ? मेरा दिल धक् से होकर रह गया. मुझे उसकी रीढ़ की हड्डी याद आ गयी, जिस पर उसने अतुलनीय भार उठाया था. वह हड्डी तो आदमी की जान होती है. मुझे बिल्कुल यही लगा कि उतना अधिक भार उठाकर उसने अपनी जान के साथ खिलवाड़ किया है.

अचानक वह बेजान लक्कड़ की तरह जमीन पर गिर पड़ा. वह मुंह के बल नहीं, बल्कि झूमकर और लड़खड़ाकर पीठ के बल गिरा. मैंने बड़ी स्पष्टता से उसके गिरने और जमीन से टकराने की आवाज सुनी. उसका संपूर्ण शरीर अचानक आसमान के आमने-सामने होकर चित लेट गया.

मैंने अनेक लोगों को उसकी दिशा में दौड़ते और चिल्लाते देखा. दौड़ने वालों में वे बच्चे भी शामिल थे, जिन्होंने अभी-अभी उसका सरकस जैसा तमाशा देखा था.

कुछ पलों तक तो मैं अपनी जगह से हिल ही न सका. मैं बिना हिले-डुले उसके हिलने-डुलने का इंतजार कर रहा था. उसके शरीर में जब रंचमात्र भी हरकत दिखाई न दी तो आपे में न रह सका. पलटकर मैं भागा, ताकि बाल्कनी को छोड़क फ्लैट के अंदर और फ्लैट को छोड़कर जीने में आ सकूं. मैं इतने तेजी से जीना उतरने लगा कि अपनी स्फूर्ति पर मुझी को आश्चर्य हुआ. चौथी मंजिल से दूसरी मंजिल तक आते-आते मैं हांफ गया.

वैसे . . . मुझे काफी अंदाजा था कि मेरे लपकने का अ कोई अर्थ शायद नहीं रह गया हैं. दिल के किसी कोने से आवाज उठ रही थी कि बहुत देर हो चुकी है. जिस प्रकार वह अचानक गिरा था, उसी से जाहिर था कि भीतरी और बाहरी थकान और टूटन ने उसे शायद हमेशा के लिए गिरा दिया है. मैं कदापि दावा नहीं कर सकता हूं कि जब मैं उसके नजदीक पहुंचूंगा, तब वह मुझे जिंदा ही मिल जायेगा. आशंका के भयानक भंवर में मैं बड़े डरावने ढंग से डूब रहा था. मैं तेजी से, और तेजी से और-और तेजी से जीना उतरता जा रहा था. बहुत देर हो जाने के बाद भी क्या जीना तेजी से नहीं उतरा जा सकता? मैंने अपने दिल पर एक असह्य भार आता महसूस किया—भार, जो क्षण-क्षण बढ़ रहा था . . . . □

● **बी-17 परवाना अपार्टमेंट, रामनगर, एस. बी. रोड, बोरीवली**
(पश्चिम) बंबई-400092

HAMDARD GRIPE WATER
HAMDARD GRIPE WATER

नन्हे मुन्नों के लिये बिना-अल्कोहल प्राकृतिक औषधि.

हमदर्द ग्राइप वॉटर विशेष रूप से नन्हे बच्चों के लिए तैयार किया गया है। यह अल्कोहल रहित है। इसमें अन्य कोई ऐसा कैमिकल सम्मिलित नहीं है जो हानि पहुंचाये।
हमदर्द ग्राइप वॉटर में ऐसे आरोग्य होने योग्य प्राकृतिक द्रव्य ग्राधुनिक तरीके से सम्मिलित हैं जो नन्हे बच्चों को पेट की खराबियों से सुरक्षित रखते है। और पाचन क्रिया को ठीक करते है।.
नन्हे बच्चों के लिये प्राकृतिक इलाज

हमदर्द ग्राइप वॉटर

हमदर्द

HD 4971 H

तस्वीर बोलती है

□

छायाकार

मोती राम जैन
ई-36, हौज खास
नयी दिल्ली-16

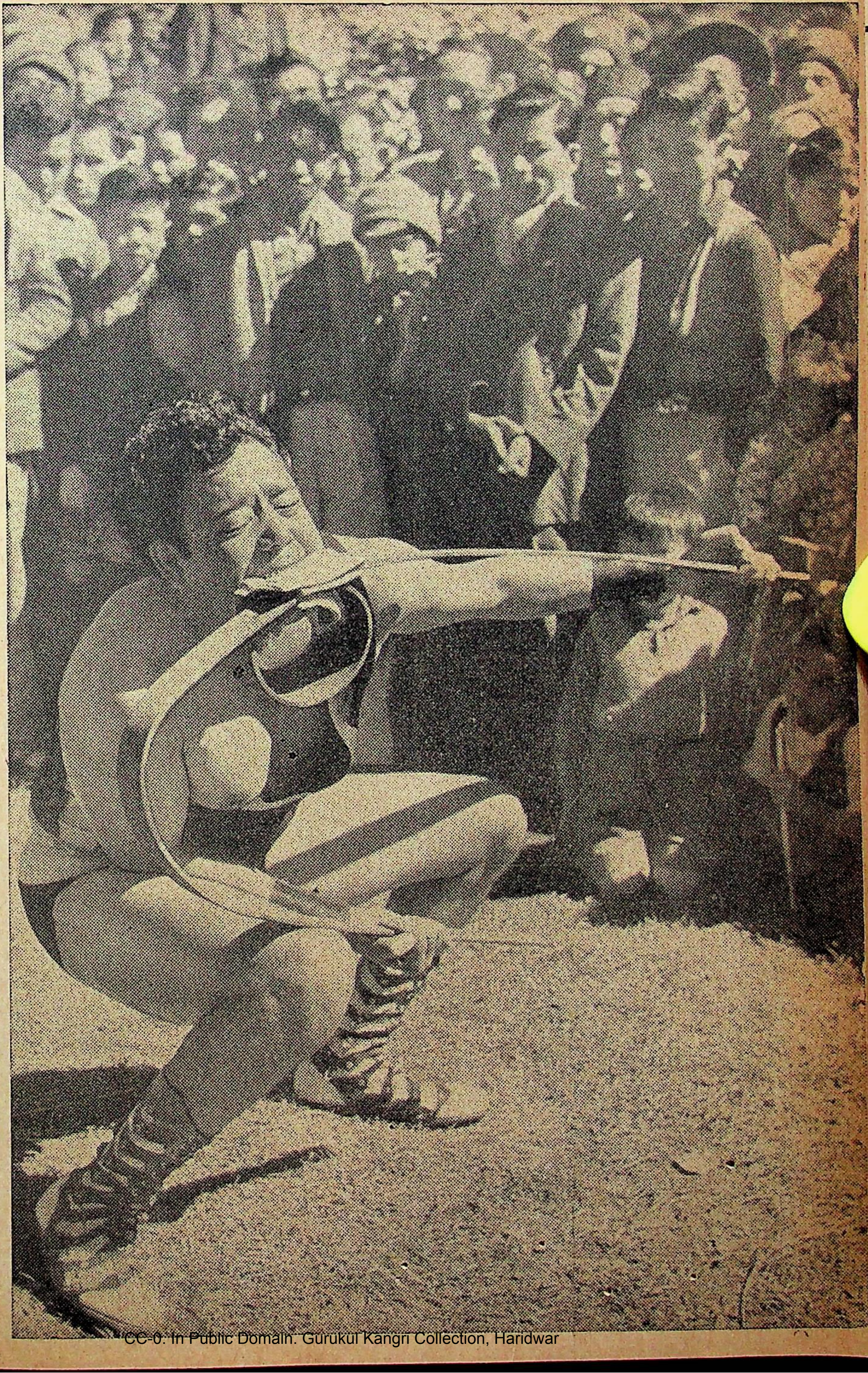

आज तक सुर्ख़-ओ-सियाह सदियों के साये के तले,
आदम-ओ-हव्वा की औलाद पे क्या गुज़री है!

Smooth & Right
RED & WHITE
MARCOVITCH
VIRGINIA FILTER
GPI

"हम रेड एण्ड व्हाइट पीनेवालों की बात ही कुछ और है!"

गॉडफ्रे फिलिप्स इंडिया लिमिटेड

वैधानिक चेतावनी: सिगरेट पीना स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है।
STATUTORY WARNING: CIGARETTE SMOKING IS INJURIOUS TO HEALTH

Rediffusion/GPI/1141d HN

तिहास को किसी ने 'अनुमोदित कल्पना' कहा है और किसी ने 'मानव ाति के अपराध, मूर्खता एवं दुर्भाग्य की पंजिका', लेकिन हमें लगता है कि तिहास अतीत के हादसों की कब्रगाह है. किसी भी कब्र को कुरेदिए, आपको खते, कराहते, पैशाचिक अट्टहास लगाते नये-नये हादसे नजर आयेंगे— हादसे, जिन्हें आम पाठक नहीं जानते, अगस्त, 80 : अंक-2 से 'अनजानी तिहास कथाएं' शीर्षक से ऐसे हादसों की श्रृंखला प्रकाशित की जा रही है. ां प्रस्तुत है उस जमाने का किस्सा जब फ्रांसीसी भारत पर हुकूमत करने ख्वाब देख रहे थे और एक मात्र चौदह वर्ष नौ महीने की अल्हड़ युवती सबका तमाशा बना रही थी—

पतझड़ का अंतिम गुलाब

बाला दुबे

या की भांति कलकत्ता निश-दिन निखरता जा रहा था. मुठ्ठी भर अंग्रेजों माज का दृश्य-केंद्र बन गया था कलकत्ता. 19 अक्टूबर, सन् 1774 को बंगाल सुप्रीम काउंसिल के तीन नये सदस्य सन, जनरल क्लैवरिंग और सर फिलिप सिस कलकत्ता के चांदपाल घाट पर . गवर्नर जनरल हेस्टिंग्स ने उन्हें 17 की सलामी दिलवाई थी. शाही सलामी तोपों की होती थी. नये सदस्यों को यह त अखर गया. कहते हैं, वारन हेस्टिंग्स कलम में जादू था. फिलिप फ्रांसिस लम का जादूगर था, पर जरा उन्नीस. लकत्ता अमर बेल की भांति फैल था. मकान खरीदकर सजाने की होड़ जा रही थी. मिस्टर फ्रांसिस के का नाम 'लॉज' था. उसके हाते में एकड़ जमीन थी. बाद में यही बंगला स परगना के कलक्टर का सरकारी बना. किराये के मकान भी काफी मंहगें स्टर वेलर को साढ़े तीन बीघा बंगले सौ रुपये माहवार मिलते थे. साढ़े सौ रुपये माहवार से कम अच्छा मकान मिल पाता था.

आसूदा लोग 'फिटन' में निकलते थे. घोड़े की गर्दन पर चांदी का बारीक जाल पड़ा रहता, जिससे मक्खियां उसे तंग न कर सकें. छप्पन फुट लंबा और सोलह फुट चौड़ा 'बजरा' रईस अंग्रेज हुगली में छोड़ देते, जिसमें चौदह आदमी पतवार चलाते थे.

और फिर जब सुंदरियों का जादू चला तो एक अजीब खलबली-सी मच गयी. मिसेज इमहॉफ के रूपजाल में स्वयं गवर्नर वारन हेस्टिंग्स फंस गया. मिस्टर इमहॉफ एक जर्मन पेंटर था, जिससे हेस्टिंग्स ने दस हजार पाउंड देकर जर्मनी वापस जाने पर तैयार कर लिया और उसने मिसेज इमहॉफ से सेंट जांस केथीड्रल कलकत्ता में 8 अगस्त, 1777 को शादी कर ली.

मिस्टर चेंबर्स ने षोडशीय अनिंद्य सुंदरी मिस विल्टन से शादी की थी, जिसकी सुंदरता के चर्चे कलकत्ता में होते थे. सर जॉन डे ने मिस बैनिडिक्टा रैमस से शादी की थी, वह इतनी सुंदर थी की इसकी पेंटिग सन् 1887 में साढ़े नौ हजार सोने की गिन्नियों में बिकी थी. मैरिया मारगिरट की शादी लार्ड नेपियर से हुई थी. अभूतपूर्व सुंदरी मिस इलिजाबेथ जैन सैंडरसन की शादी काउंसिल के सदस्य मिल्टर बारबैल के साथ हुई थी.

कलकत्ता में सुरा-सुंदरी होड़ खूब पनप रही थी. तभो मानो इंद्र ने अपनी सभा की एक अप्सरा को सबको झकझोर देने को भेज दिया हो—मैडमोजेल वर्ली, पंद्रह वर्ष की आयु में तीन महीने बाकी थे, उसने आकर कलकत्ता के रूप-पारखियों के दिलों में आग लगा दी.

मैडमोजेल वर्ली, 21 नवंबर, 1761 को भारत के कोरोमेंडल तट की डच बस्ती ट्रेंक्वीबार में पैदा हुई थी. उसे फ्रांसीसी लेखकों ने 'भारतीय महिला' कहा है. ईस्ट इंडिया कंपनी के एक 'राइटर' मिस्टर फ्रांसिस ग्रैंड्र ने इस अप्सरा से चंद्रनगर में विवाह किया था. चौहद वर्ष नौ महीने की उम्र में वह मैडम ग्रैंड बन गयी. इस दामिनी वरण सुंदरी के केश इतने अद्भुत थे कि जो भी उन्हें देखता उन्हीं में उलझ जाता. इतने सुंदर केश शायद ही किसी सुंदरी के हुए होंगे. कलकत्ता में पारखियों ने उसके बारे में लिखा . . **मिसेज ग्रैंड उस समय कलकत्ता की सबसे श्रेष्ठ सुंदरी थी. लंबा कद, जलपरी जैसा शरीर, अद्वितीय गौर वर्ण, मोहक हल्के लाल रंग के केश-गुच्छे, नीलम जैसी आंखें जिसके चारों और लंबी-लंबी काली बरौनिया . . .**मैडम ग्रैंड कलकत्ता की 'जूलियट' थी और तभी उसे कलकत्ता का 'रोमियो' भी मिल गया, सुंदर आकर्षक सर फिलिफ फ्रांसिस.

फ्रांसिस का सांचे में ढला सुंदर शरीर, मीठा कोमल स्वर, आकर्षक व्यक्तित्व अलग-थलग ही नजर आता था. वह सुथरी फ्रेंच बोलता था. वर्ली भी अक्सर फ्रेंच में ही बातें करती थी. जिस समय इन दोनों की घनिष्टता बढ़ी उस समय फ्रांसिस 38 वर्ष का था और वर्ली 14 वर्ष 9 महीने की. फ्रांसिस

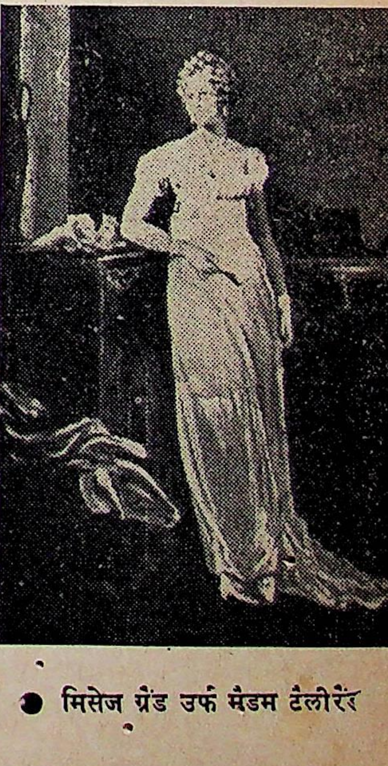

● मिसेज ग्रैंड उर्फ मैडम टैलीरैंड

की डायरी के अनुसार 23 नवंबर, 1778 को उसके घर बॉल-डांस हुआ था, जिसमें वारेन हेस्टिंग्स भी आया था. वर्ली पर अत्यधिक ध्यान एंव रुचि से घनिष्टता और भी बढ़ती चली गयी. पर विस्फोट 8 दिसंबर, 1778 को हुआ.

मिस्टर ग्रैंड के मित्र मिस्टर बारबैल के यहां पाक्षिक भोज होता था, जिसमें व्यापार संबंधी बातों पर विचार-विमर्श हुआ करता था. 8 दिसंबर को मिस्टर ग्रैंड मेज पर खाना खा रहे थे कि उनके घर का एक नौकर बदहवास-सा आया और उन्हें बतलाया कि मिस्टर फ्रांसिस उनके मकान पर पकड़ लिये गये हैं, जिन्हें जमादार ने रोक रखा है. यह सुनकर मिस्टर ग्रैंड स्तब्ध रह गये. उन्होंने अपने साथियों में से किसी एक को साथ चलने को भी कहा, पर मामले की बारीकी समझते हुए लोगों ने बहाना बनाकर टाल दिया. ग्रैंड फौरन ही चल दिये और रास्ते में गवर्नर जनरल हैस्टिंग्स के सेक्रेटरी मेजर पॉमर के घर जाकर उन्होंने उन से तलवार मांगी और यह भी निवेदन किया कि वह भी उनके साथ चले. ग्रैंड का अभिप्राय था कि पहले सर फिलिप फ्रांसिस को अपने घर से बाहर निकाल दिया जाये और फिर तलवार से फैसला कर लिया जाये. जब दोनों घर पहुंचे तो देखा कि सर फ्रांसिस वहां नहीं है. एक कुर्सी पर नौकरों ने मिस्टर शी को जबरदस्ती बैठा रखा था. मिस्टर शी उस समय नौकरों से बड़ी लल्लो-चप्पो कर रहे थे कि उन्हें छोड़ दिया जाये और उनके बगल में खड़े मिस्टर शोर भी उनके सुर में सुर मिला रहे थे. ये ही मिस्टर शी बाद में सर जार्ज शी बने और शोर लार्ड टेनमथ कहलाये.

मिस्टर ग्रैंड को उनके जमादार राम बख्श ने बताया कि उसने मिस्टर फ्रांसिस को पकड़ लिया था पर जब फ्रांसिस ने सीटी बजायी तो मिस्टर शी और मिस्टर शोर धड़धड़ाते हुए घुस आये और छीना-झपटी में सर फिलिप फ्रांसिस भाग निकले, पर उसने शी को पकड़ लिया. मिस्टर ग्रैंड ने ने उनसे पूछताछ की पर उनके सब जवाब टालमटोल वाले थे. हारकर उन्हें छोड़ दिया गया और उस रात मिस्टर ग्रैंड उदास होकर मेजर पॉमर के साथ उसी के घर पर रहे.

मिस्टर ग्रैंड ने आवेश में एक पत्र सर फिलिप फ्रांसिस को लिखा जिसमें 'ड्यूअल' (स्वाभिमान युद्ध) का निवेदन किया. सर फिलिप ने 'ड्यूअल' से मना कर दिया और लिखा की कदाचित मिस्टर ग्रैंड को गलतफहमी हो रही है. इस बीच मिसेज ग्रैंड की बहन और उसका पति चंद्रनगर से आ गये. मिसेज ग्रैंड ऊपर की मंजिल में रहीं और वे नीचे की मंजिल में रहे. मिस्टर ग्रैंड के साथ उनकी बातचीत और गरमागर्मी भी हुई. मिस्टर ग्रैंड ने अफसोस जाहिर किया कि सोलहवें वर्ष में ही मिसेज ग्रैंड ने इतना अद्भुत कांड कर डाला. बरहाल ग्रैंड ने उसके लिए माहवारी खर्च बांध दिया और दोनों का संबंध विच्छेद निश्चित हो गया.

मुकदमा और गवाहियां

सर फिलिप फ्रांसिस और वारेन हैस्टिंग्स में पहले से ही अंदरूनी अनबन थी. हैस्टिंग्स के सक्रेटेरी मेजर पामर ने फौरन ही अपने आका के कान भरे.

यह बड़ा सुंदर अवसर उसके हाथ लगा था. लिहाजा जब मिस्टर ग्रैंड ने सुप्रीम कोर्ट में अपने वकील राल्फ युवडेल के जरिए सर फिलिप फ्रांसिस मेंबर ऑफ दि काउंसिल पर मुकदमा दायर किया था, तो सबको कोई विशेष आश्चर्य नहीं हुआ. ग्रैंड ने पंद्रह लाख हरजाना तलब किया.

• प्रिंसेस टैलीरैंड

सुप्रीम कोर्ट के चीफ जस्टिस सर इलाइज इंपे थे और उनके साथी जज सर राब चेंबर्स और मिस्टर जस्टिस हाइड अदालत का पहला दौर 8 फरवरी, 177 को शुरू हुआ, जिसमें खास गवाह थे— मीरन खिदमतगार, शेख रुजुल्ला दरबान भवानी हरकारा, राम बख्श जमादार मिस्टर शी और शोर राबर्ट सैंडरसन आदि

पहले गवाह मीरन खिदमतगार बतलाया कि रात के करीब दस और ग्यार बजे के बीच उसे आया ने कहा कि मिसे ग्रैंड ने अपने कमरे के लिए मोमबत्ती मां थी, पर जब वह मोमबत्ती लेकर पहुंची तो दरवाजा बंद पाया. मीरन यह सुनकर अप घर से निकला तो उसने मिसेज ग्रैंड के कम की खिड़की पर बांस की नसेनी (सीढ़ी टिकी देखी. उसे यह एक अजीब बात ल और झटपट वह जमादार राम बख्श बतलाने पहुंचा. जमादार भी सीढ़ी देखक आश्चर्य में पड़ गया. तभी अंदर से फिलि फ्रांसिस बाहर आया और बोला, "मु यह चीज (यानी सीढ़ी) दे दो, मैं तुम् पैसे दूंगा, तुम्हें मालामाल कर दूंगा." फि घबराता हुआ बोला, "तुम मुझे नहीं प चानते? मैं मिस्टर फ्रांसिस हूं." त जमादार राम बख्श ने आगे बढ़कर फिलि की कलाई पकड़ ली और कहा, "मेरे मालि इस वक्त घर पर नहीं हैं. तुम यहां क कर रहे हो?" जमादार उन्हें खींचता हु अंदर ले आया. मिसेज ग्रैंड ने फ्रांसिस फ्रेंच में कुछ कहा, जिसे नौकर नहीं समझ

शेख रजुल्ला दरबान ने अदालत बतलाया कि उसके मालिक मिस्टर हर मंगलवार को बाहर खाना खाने जाते रजुल्ला के पास ही 'खास फाटक' की चा रहती थी और वह मालिक के लौटने ही दरवाजा खोलता था.

जमादार राम बख्श के बयान के अनु फ्रांसिस काले कपड़े पहने थे. जब मीरन उसे सीढ़ी दिखाई तो जमादार हक्का-ब रह गया क्योंकि उसने फ्रांसिस को पहचा लिया था.

फ्रांसिस उतरकर आबदार की श की अलमारी के पास खड़े हो गये जमादार ने उनके पास आकर "आपका यहां क्या काम है?" फ्रांसिस सीढ़ी मांगी और जेब से सोने की मो

कालकर दी. जब जमादार ने उन्हें लेने ना किया तो फ्रांसिस ने कहा, "मैं तुम्हें आदमी बना दूंगा. . . मालामाल कर ा. तुम्हें सौ अशर्फी और दूंगा." कहकर ने कलाई छुड़ानी चाही तो जमादार ल्लाया, "कोई है! पकड़ लो इसे!" मीरन और भवानी ने फ्रांसिस को दबोचा और ऊपर की मंजिल से नीचे आये. नीचे उतरते वक्त फ्रांसिस ने कई सीटी बजायी. मिसेज ग्रैंड ने आकर फ्रांसिस को छोड़ देने को कहा पर ादार ने मना कर दिया. उसने साहब ादुर को आरामकुर्सी पर बैठा दिया था स्वयं कुर्सी के हत्थों पर हाथ जमा लिये जिससे वह भाग न निकले. सीटी के बाद बाहर कुछ ऊधम हुआ. बाहर के दोनों वाजे बंद थे. जमादार ने सइसों से कह ा कि कोई अंदर नहीं आने पाये. तभी स्टर डकरल और मिस्टर शी दीवाल दकर अंदर आ गये. उन्होंने आकर ादार को जोर का धक्का दिया, जिससे कुर्सी पर गिर गया. इस कमरे में कुछ रा भी था. धक्कमधक्का में फ्रांसिस भाग ला पर मिस्टर शी जमादार की लपेट आ गया. उधर सईस और बैरा ने स्टर डकरल को दबोच लिया. हल्ला-ला सुनकर सामने के मकान से मिस्टर ने पूछा, "यह सब क्या हो रहा है?" स और बैरा ने जवाब दिया, "ये साहब हमारे साहब की गैरहाजिरी में में घुस आये हैं." यह सुनकर मिस्टर घूरे के पास खड़े होकर मिस्टर डकरल अंग्रेजी में बातें करने लगे और फिर रों से कहा, "साहब लोगों को छोड़" नौकरों ने साफ मना कर दिया. ी तरह से मिस्टर डकरल को तो े ने छुड़ा लिया और फिर मिस्टर को भी छुड़ाने का प्रयास किया. उसने की जिम्मेदारी भी अपने सिर पर ली नौकर नहीं माने.

कुछ ही देर बाद मिस्टर ग्रैंड और मेजर र आ गये. गवाहों ने ये भी बताया कि टर शी ने भी नौकरों को तीन सोने की रों का लालच दिया था. फ्रांसिस का भी घर में ही बरामद हुआ जो पहचान ा गया.

मिस्टर जार्ज शी ने कबूल किया कि पहले फ्रांसिस ने मिस्टर ग्रैंड की गैरहाजिरी में मैडम ग्रैंड से मिलना तय कर लिया था. शी ने इसे एक खतरनाक कदम बतलाया था पर फ्रांसिस विवेकहीन हो चुका था. शी घर के पिछवाड़े की गली पर पहरेदारी देता रहा और जब उसने फ्रांसिस की सीटी सुनी तो डकरल के मकान पर पहरेदारी देता रहा और जब उसने फ्रांसिस की सीटी सुनी तो डकरल के मकान में गया और तब दोनों जमादार उस पर टूट पड़े. शी ने सीढ़ी के बारे में भी बतलाया कि किस प्रकार से एक हिंदुस्तानी बढ़ई से वह सीढ़ी बनवायी गयी थी. इसी सीढ़ी को कंधे पर लादे फ्रांसिस प्रणय-लीला करने चले थे. 6 मार्च को मुकदमे का फैसला सुना दिया गया. फ्रांसिस को पचास हजार रुपये मिस्टर ग्रैंड को देने पड़े.

मैडम ग्रैंड पर क्या गुजरी?

सोलह वर्ष की अल्हड़ नौअल कैथरीन ग्रैंड को प्रथम प्रणय दीक्षा एक वरदान सिद्ध हुई. उसने दर्पण के आगे खड़े होकर अपने को पहचाना. और वह एक अनूठी चुनौती देने प्रणय-आंगन में आ गयी. उसके जीवन के सोलह वर्ष न जाने किस बाग में महके. जब वह यौवन की देहरी लांघने को हुई तब उसे लोगों ने फ्रांस के हृदय 'पेरिस' में सुगंधित गुलाब की भांति महकते हुए देखा. प्रकृति ने उसके, मुंह बंधी गुलाब की कलियों जैसे हाथों में मदन-धनुष पकड़ा दिया था. उसके छोड़े बाण जिसे भी लगे वह तड़प गया. मैडम ग्रैंड यह जान चुकी थी कि प्रकृति की विशेष कृपा उस पर है. उसने अपना बाण भी एक विशेष व्यक्ति पर ही छोड़ा था—टैलीरैंड पर. फ्रांस की राजनीति की शतरंज का प्रमुख मोहरा, टैलीरैंड, आगे चलकर नेपोलियन बोनापार्ट का दाहिना हाथ, टैलीरैंड. उस समय फ्रांस के रईस, क्रांति के प्रकोप के डर से इधर-उधर के देशों में भटक रहे थे.

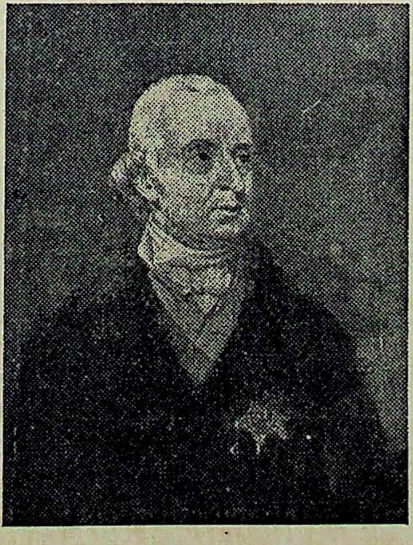

● सर फिलिप फ्रांसिस

मैडम ग्रैंड ने भी अपनी आंखों से स्विस कुलियों का वध देखा था. फ्रांसिसी क्रांतिकारियों ने उन्हें गाजर-मूली की तरह काट डाला था. अगस्त, 1792 में मैडम ग्रैंड डोवर भाग गयी थी. उस समय उसकी जेब में केवल बारह लुई थे. सब कुछ पैरिस में रह गया था. लंदन आकर उसने अपने पूर्व पति के नाम का लाभ उठाया. एक अंग्रेज की पत्नी होने के नाते वह फ्रांस में छोड़ी संपत्ति पर अधिकार जता सकती थी. ओ. ड्रायर और 21 वर्षीय बैलचियर ने पैरिस जाकर उसकी संपत्ति वापस ली—पच्चीस हजार पाउंड की संपत्ति, सोना, जवाहरात, हुंडियों के रूप में. मैडम ग्रैंड ने उन्हें इस कृपा की कीमत देनी चाही पर उन्होंने कुछ भी नहीं लिया. मैडम ग्रैंड ने फ्रांस के विदेश मंत्री टैलीरैंड पर जाल डाल ही दिया. सन्, 1797 तक वह टैलीरैंड के गोपनीय आश्रय में रही थी.

टैलीरैंड और मैडम ग्रैंड के चर्चे खुशबू की तरह फैलने लगे. जब माश्योर फूश ने अंग्रेजी पत्रिका में छपी टिप्पणी 'फर्स्ट काउंसिल' को दिखलाई तो नेपोलियन बोनापार्ट आग बबूला होकर टैलीरैंड से बोला था, "कोई आश्चर्य नहीं कि हमें इंगलैंड में ऐसे बदनाम किया जाता है. सुना है कि मंत्री और राजदूत तुम्हारी मिस्ट्रेस से मिलने को आतुर खड़े रहते हैं. यह सब बंद होना चाहिए."

टैलीरैंड ने उसी तेवर में नेपोलियन को जवाब दिया था, "आज से वे मेरी मिस्ट्रेस से तो नहीं, लेकिन मेरी पत्नी से मिलने की प्रतीक्षा में खड़े रहा करेंगे."

नेपोलियन के निजी सचिव बैरन मेनेवल ने अपने संस्मरण में लिखा है कि नेपोलियन ने टैलीरैंड और मैडम ग्रैंड के विवाह की अनुमति नहीं दी थी, इधर विदेशालय के राजदूतों की पत्नियां मैडम ग्रैंड की उपस्थिति का विरोध करने लगीं. जब 'फर्स्ट काउंसिल' ने मैडम ग्रैंड से चले जाने को कहा तो उसकी इस आज्ञा का उल्लंघन किया गया.

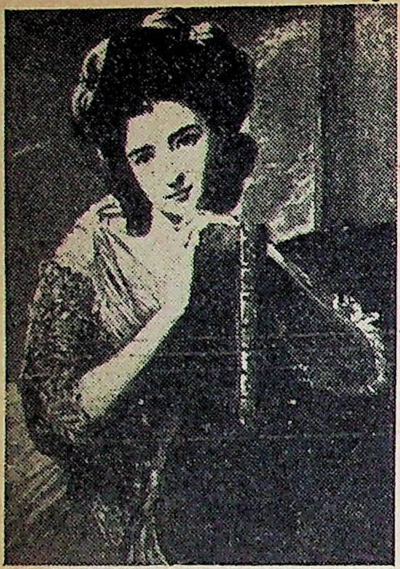

● मिसेज लेडी डे

मैडम ग्रैंड तभी नेपोलियन की चहेती पत्नी जोजफीन के पास अपना दुखड़ा रोने पहुंची थी. जोजफीन उसे नेपोलियन के कक्ष में ले गयी थी. उस समय मैडम ग्रैंड उंतालीस वर्ष की थी, पर तब तक रूप की पतझड़ आरंभ नहीं हो पायी थी. नेपोलियन के सामने वह घुटने टेककर रोयी थी. नेपोलियन तभी मोम की तरह पिघल गया और फिर संभलते हुए बोला, "इस शंका का एक ही समाधान है. टैलीरैंड को तुमसे विवाह कर लेना चाहिए. जब तक उसका नाम तुम्हारे नाम से नहीं जुड़ेगा, इस घर में तुम्हारा सम्मान होना नामुमकिन होगा."

नेपोलियन ने टैलीरैंड को इस निर्णय के लिए केवल चौबीस घंटे दिये थे.

10 सितंबर, 1802 को दोनों का विवाह हो गया. इस विवाह के विरुद्ध पोप ने बहुत जहर उगला. और टैलीरैंड की माता ने तो अपने बेटे द्वारा नियमित भेजी जाने वाली धन राशि भी लेना बंद कर दी.

लोगों की धारणा थी कि नेपोलियन ने टैलीरैंड को कभी नहीं चाहा किंतु वह उसके बगैर काम भी कभी नहीं चला सका. नैपोलियन के हृदय में मैडम टैलीरैंड के लिए भी किसी तरह की श्रद्धा नहीं थी.

विवाह के तुरंत बाद जब मैडम टैलीरैंड नेपोलियन के कोर्ट में पहुंची तो नेपोलियन ने कड़वे व्यंग्य का छींटा मारा कि उसे विश्वास है कि मैडम ग्रैंड अपने चलन को संतुलित रखेंगी जिससे कि बीते वर्षों की मैडम ग्रैंड के दामन के धब्बे धुल सकें. मैडम टैलीरैंड ने भी नेपोलियन को व्यंग्य कटार मार ही दी, "मैं सिटीजिनैस बोनापार्ट के चलन के अनुसरण के अतिरिक्त और कुछ महत्त्वपूर्ण परिवर्तन शायद नहीं कर पाऊंगी." उसे मालूम था कि नेपोलियन की पत्नी जोजफीन दूध की धुली नहीं थी. नेपोलियन उसका धृष्ट साहस देख कटकर रह गया.

आगे चलकर मैडम टैलीरैंड राजनीति के ताने-बाने से उलझती चली गयी. जब अफवाह उड़ी कि ड्यूक आफ सैन कार्लोस उसका नया प्रेमी बन गया है तब नेपोलियन ने गुस्साकर टैलीरैंड से कहा, "मुझे तुमने यह नहीं बतलाया कि ड्यूक ऑफ कार्लोस तुम्हारी पत्नी का प्रेमी है? टैलीरैंड ने तब उत्तर दिया था, "यह मेरी या आप की प्रतिष्ठा के हित में नहीं था, इसीलिए इस बात का जिक्र मैंने नहीं किया."

मैडम टैलीरैंड के जीवन पर पतझड़ की बयार चलने लगी थी. वह मुटियाने लगी थी और उसका गुलाब जैसा चेहरा अत्यधिक लाल-सा हो गया था.

"रेस्टोरेशन' होते ही यह तजवीज पेश की गयी कि मैडम टैलीरैंड को फ्रांस छोड़कर इंग्लैंड रहना होगा. उसे साठ हजार फ्रांक सालाना मिलते रहेंगे और वह बगैर टैलीरैंड की आज्ञा के फ्रांस नहीं लौटेगी.

ड्यूक ऑफ वैलिंगटन ने बाद में मैडम टैलीरैंड और प्रिंस टैलीरैंड के बीच समझौता करवा दिया था और मैडम चुपचाप फ्रांस लौटकर ओटियिल में रहने लगी थी.

आखिरी समय तक भी वह अपने उजड़ते हुए सौंदर्य के उचित प्रसाधन ढूंढती रही. जब जीवन पर संपूर्ण पतझड़ छा गया तब 74 वर्ष की आयु में 12 दिसंबर, 1835 को यह अंतिम गुलाब मुरझा गया. ☐

अगले अंक में

कितना था बदनसीब जफर !

सन 1803 ! दिल्ली पर अंग्रेजों का कब्जा और किस्सा मुगलिया सल्तनत के आखिरी और शायर बादशाह की बदनसीबियों के हादसों का, जिनके घटते न घटते वह पांवों पर खुद ही कुल्हाड़ियां मारता रहा !

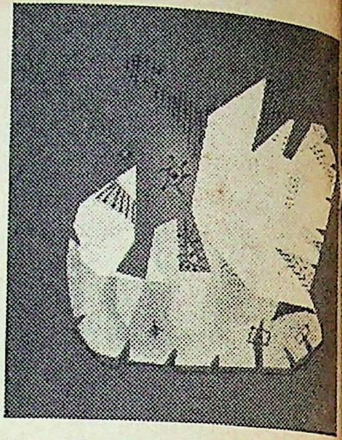

बिरजू रिक्शा वाले का गीत

▣ कृष्ण कल्पित

दफ्तर से छूट गये लोग,
छूट गयी ड्यूटी से छांव.
छूट नहीं पाये पर
रिक्शे पर चढ़े हुए बिरजू के
'पैंडल' से जुड़े हुए पांव.
आता है जाता है
हर तरफ चढ़ाई है.
बरसों से एक भी
ढलान नहीं आई है,
जाने किस दुश्मन ने
सड़कें बनवाई हैं.
चौपड़ से 'टेसन' तक,
'टेसन' से चांदपोल आता,
ढोता है मुड़े हुए गांव
हर हफ्ते सांसों का
टायर घिस जाता है,
ट्रैफिक पर खड़ा हुआ,
पुलिस का सिपाही,
बेमतलब आंतों में
स्क्रू कस जाता है.
बीत गये बरसों ही,
चखे हुए इमली का स्वाद,
सुने हुए कागा की कांव!

एक और सुदामा

▣ सुरेंद्र अरोड़ा

"साहब के दरशन ही बड़े भाग वालों को मिलते हैं जाने कैसे किरपा हुई साहब की कि कल ही बात कर ली हमसे और मिठाई भी मांग ली अपने मुंह से तुम्हार पास होने की वरना. . . ." और चल पड़े हैं आज के सुदामा मिठाई का डिब्बा लेकर कलक्टर रूपी कृष्ण से मिलने. . . .

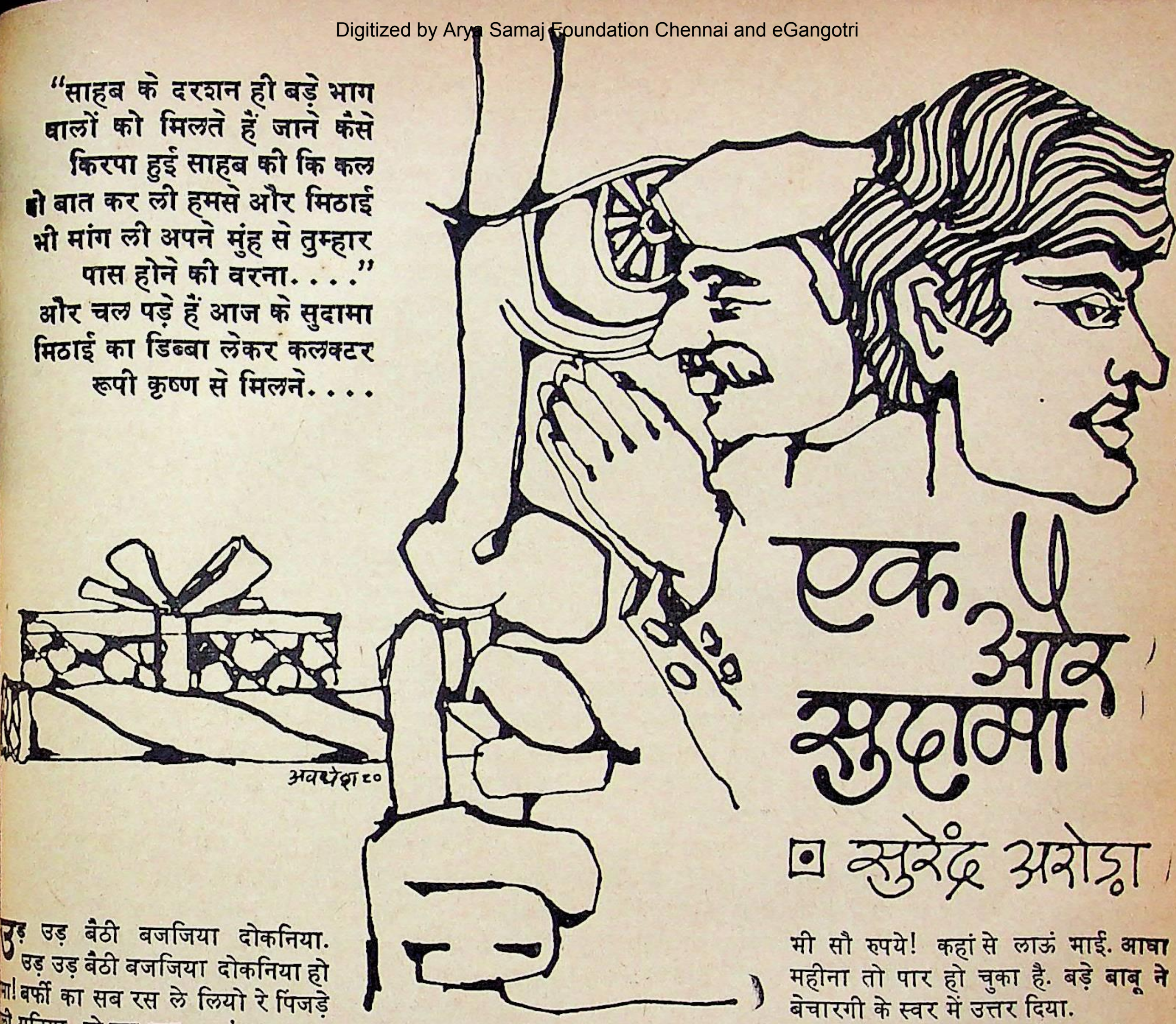

उड़ उड़ बैठी बजजिया दोकनिया. उड़ उड़ बैठी बजजिया दोकनिया हो ना! बर्फी का सब रस ले लियो रे पिंजड़े ो मुनिया. हो उड़ उड़. . .' गाना चल था और ढोलक पर जोर की थाप पड़ थी. और सब बर्फी का रस लेने में डूबे राम आसरे के घर में ही नहीं, पूरे नदान में रम्मू पहला था, जिसने मैट्रिक किया था. और वह भी फस्ट किलास आज ही रिजल्ट निकला था और वान की ऐसी मार कि आज भी छुट्टी र कल भी छुट्टी. सैकिंड सैटरडे-संडे. न मौके के दिन नहीं मनाया तो क्या या. रम्मू फस्ट किलास पास हुआ ोई मजाक है क्या! वाह रे मेरा रम्मू! ाल कर दिया. तैंने तो धोतिया को के रूमाल कर दिया रे! बरोबर. ह रिजल्ट सुनते ही राम आसरे तो ा गया था खुशी से. मुहल्ले में घर-घर र बताया था उसने. "देखो प्रान बाबू, पियारे लाल, हमरा रम्मू फस्ट किलास पास किया है मैट्रिक." और फिर बिरादरी के चार बड़े लोगों को इकठ्ठा करके शाम का परोगराम तय कर लिया गया था. शाम की रोटी-पानी राम आसरे के घर. साथ गाना-बजाना भी. भागा-भागा गया था अपने दफ्तर के बड़े बाबू के घर. उन्हें खुशखबरी सुनायी थी और झोली पसार दी थी उनके आगे, "हुजूर, हमारी लाज रख लेओ. हमारे पूरे खानदान में पहली वारदात हुई है—ये मैट्रिक पास करने की. और वह भी फस्ट किलास में. हुजूर, हमको सौ ठो रुपया उधार दे देओ. रात को घर पर बिरादरी वालों की रोटी-पानी का इंतजाम करना है."

वाह राम आसरे! कमाल कर दिया तुम्हारे बेटे ने. बधाई हो. पर रुपये? वो भी सौ रुपये! कहां से लाऊं भाई. आधा महीना तो पार हो चुका है. बड़े बाबू ने बेचारगी के स्वर में उत्तर दिया.

"बाबूजी, और कहां जायें हम. किसके द्वारे. आपके सिवा कौन है हमारा. नहीं किया रोटी-पानी तो बिरादरी में नाक कट जायेगी हमारी. बड़े बाबू, कुछ तो करो. जैसे भी हो." राम आसरे ने हाथ जोड़कर विनीत मुद्रा में सिर झुका दिया.

"ठीक है भाई. तुम इतना कह रहे हो तो ले जाओ रुपये. पर लौटाओगे कहां से?" बड़े बाबू ने पूछा.

"बड़े बाबू, परसों दफ्तर खुलते ही सुसाइटी से लोन लेकर आपके पैसे वापस कर दूंगा. आप इस बखत हमारी लाज रख लेओ." राम आसरे ने हाथ जोड़ते हुए कहा.

"अच्छा, ले जाओ भाई, पर मेरी मानो तो ये पैसे अपने लड़के को आगे कोई कोर्स-वोर्स सिखाने में लगाओ." बड़े बाबू ने उसे सौ रुपये देते हुए समझाया.

"अरे बाबूजी, भली कही आपने भी. पैसा तो हाथन का मैल है. दायें हाथ से खर्च किया तो बायें हाथ से कमा भी लेंगे." कहते हुए राम आसरे ने बड़े बाबू से विदा ली थी.

राम आसरे, डिस्ट्रिक्ट कलक्टर के दफ्तर का जमादार, आज अपने को साहब से कम नहीं समझ रहा था.

▣

रात गाना-बजाना हुआ था. संतरे की बोतलें भी खुली थीं. जात-बिरादरी के सभी लोग आये थे. सभी ने एक स्वर में सलाह दी थी कि बेटे को आगे पढ़ाओ-लिखाओ. बड़ा आदमी बनाओ.

उसने तय कर लिया था कि जैसे भी हो, रम्मू को पढ़ायेगा-लिखायेगा और अपने कलक्टर साहब की तरह बड़ा आदमी बनायेगा.

▣

दो दिन की छुट्टी के बाद भी अपने लड़के के भविष्य के सुहाने सपनों की खुमारी उस पर सवार थी. दफ्तर पहुंचते ही उसने बड़ी तन्मयता से सारे दफ्तर की झाड़-पोंछ की थी. कलक्टर साहब के विशाल कक्ष की सफाई करते-करते वह सपनों में खो गया था. उसने साहब की मेज-कुर्सी को बड़े प्यार से देखा था. कुर्सी को पोंछते-पोंछते उसके हाथ रुक गये थे. उसे एक क्षण को लगा था, उसका रम्मू इस कुर्सी पर बैठा हुआ है और उसने पोंछते-पोंछते कुर्सी को जोर से फिरकी की तरह घुमा दिया था. "वाह रे मेरा रम्मू!" अनायास ही उसके मुंह से निकल पड़ा था.

अनायास ही कमरे का दरवाजा खुला था और साहब के चपरासी ने उसे घूरकर देखा था और डांटते हुए कहा था, "अरे! क्या कर रहे हो खड़े-खड़े यहां. अभी झाड़-पोंछ खतम नहीं हुई क्या! साहब के आने का टैम हो गया है. चलो, निकलो यहां से."

"जाते हैं, जाते हैं. बरसत क्यों हो बेमौसम बरसात की तरह." झाड़न को कंधे पर टांगते हुए राम आसरे दरवाजे की ओर बढ़ा था. एकाएक उसे कुछ ध्यान आया और उसने गंगादीन चपरासी की ओर मुड़ते हुए उसे बताया, "जानत हो गंगादीन, हमरा बेटवा रम्मू मैट्रिक में फस्ट किलास पास हुआ है, फस्ट किलास!....." वाक्य मुंह में ही रह गया था और उसने देखा था कि बड़े साहब कमरे के बीचों-बीच खड़े थे.

"क्या कहा, तुम्हारा बेटा फर्स्ट क्लास पास हुआ है मैट्रिक में. बधाई हो राम आसरे. उसको आगे जरूर पढ़ाना. यह नव-युग है, समझे. कोई भी छोटा-बड़ा नहीं है. जो योग्य है, जिसमें प्रतिभा है, वही आगे बढ़ सकता है, समझे. किसी तरह की मदद की जरूरत हो तो संकोच मत करना, समझे. और हां, मिठाई नहीं खिलाओगे भाई हमें." साहब ने मुस्कराते हुए कहा था और कुर्सी पर आकर बैठ गये थे.

"जी! जी!" राम आसरे की जबान पर ताला लग गया था जैसे. मुंह से कोई बोल ही नहीं निकल रहा था. वह खड़ा था सिर झुकाए. दोनों हाथ आगे बांधे. चपरासी गंगादीन भी कोने में खड़ा था, उसके पीछे.

"अच्छा जाओ अब! अपना-अपना काम करो." साहब ने आदेशात्मक स्वर में कहा था.

राम आसरे साहब के कमरे से निकला तो उसके पैर धरती पर नहीं पड़ रहे थे. वह उड़ा-उड़ा फिर रहा था. वह साहब की उपदेशावली दफ्तर के एक-एक आदमी के सामने दोहरा रहा था. साथ में यह भी जोड़ देता था, "साहब ने कहा, मिठाई नहीं खिलाओगे राम आसरे."

शाम को घर पहुंचकर उसने अपने पड़ोसी से बीस रुपये उधार लिये और शहर के मशहूर मिठाई वाले 'चिरंजीलाल माधोलाल' की दूकान से एक किलो मिठाई ली. और उसे कहकर डिब्बे को खासतौर पर चमकीले कागज में बंधवाकर घर ले आया.

रात खाना खाते हुए उसने रम्मू को बताया, "सुबह कलक्टर साहब की कोठी पर चलना है, मिठाई देने. बड़े साहब ने मुंह से मांगी है. कितने भले हैं बड़े साहब! कह रहे थे, 'अपने लड़के को आगे जरूर पढ़ाना. कुछ मदद की जरूरत हो तो बेधड़क कहना.' हां, मिठाई भी मांगी थी तुम्हारे पास होने की."

रम्मू ने कुछ जवाब नहीं दिया. वह ताकता रहा बापू को, बिटर-बिटर.

रात राम आसरे ने करवटें बदलते हुए गुजारी थी. बड़े-बड़े सपनों की आंखों में धमाचौकड़ी जारी थी. बड़ा-सा बंगला. वह मिठाई ले गया है. कलक्टर साहब की जगह उसका बेटा बंगले के बड़े कमरे से बाहर निकला है. वह हाथ जोड़कर, सिर झुकाकर खड़ा हो गया है.

अरे! यह तो तुम्हारा अपना रम्मू है, रमेश. इसके सामने भी ऐसे ही सिर झुकाओगे? हां, क्यों नहीं. हम तो रहेंगे वही जमादार के जमादार. बेटा चाहे बड़ा अफसर क्यों न हो जाये. परजा तो परजा ही रहेगी. वह नींद में मुस्करा दिया.

▣

सपनों की छलांग कितनी भी बड़ी हो सकती है. चाहे जहां पहुंच जाओ, हवाई जहाज की रफ्तार से भी तेज. दूसरा सपना एक और लंबी छलांग मारकर उसे कहीं दूर ले जाने ही वाला था कि मुर्गे की बांग उसके कान से टकरायी और वह आंखें मलता हुआ उठ खड़ा हुआ और उसने रम्मू को जगाया.

हाथ-मुंह धो, जल्दी तैयार हुआ. जल्दी-जल्दी नाश्ता-पानी किया. और मिठाई का डिब्बा बगल में दबाकर कलक्टर साहब के घर जाने को तैयार हो गया. रम्मू को फिर आवाज लगायी, "जल्दी करो भाई! अभी से सुस्ती करोगे तो बड़े आदमी कैसे बनोगे."

"बापू, अभी तो सात ही बजे हैं. जल्दी क्या है." रम्मू ने पिता की वर्दी की पतलून पहनते हुए कहा.

"अरे, चलो भाई! भोर का टैम है. घूमते-घामते चलेंगे. पहुंचते-पहुंचते आठ तो बज ही जायेंगे. अब ये काहिली छोड़ो. तुम्हें बड़ा आदमी बनना है. रम्मू की मां, मेरा रोटी का डिब्बा तैयार है? वहीं से सीधे दफ्तर चला जाऊंगा."

और बाप-बेटा चल दिये थे कलक्टर साहब की कोठी की ओर. रास्ते भर अपने बेटे को समझाता रहा राम आसरे कि साहब

कैसे झुककर सलाम करना है. कसे साहब की बात को ध्यान सुनना है. और बातों-बातों में चार किलोमीटर की दूरी कब गयी थी, पता ही नहीं चला था. वे कलक्टर साहब की कोठी सामने खड़े थे.

फाटक पर दरबान को पिता ने फर्शी सलाम किया, झुककर. ता की इस हरकत पर उसका रोम-रोम घृणा से भर गया. पर ता तो पिता थे, उनकी किसी भी हरकत पर भारत की संतान प्रश्नचिह्न लगाने का प्रश्न ही कहां उठता था. फाटक के प्रवेश करते ही लाल बजरी की एक फर्लांग लंबी सड़क थी, के दोनों ओर लॉन था, मखमली गलीचे-सा, जिसके किनारे-नारे लाल गुलाबों की लंबी क्यारियों ने खुशबू से वातावरण महका रखा था. लाल बजरी की सड़क पार करते हुए वे दोनों टर साहब की विशाल कोठी के बरामदे में पहुंच गये थे. ने बरामदे के दायीं ओर के छोटे से कमरे का दरवाजा धीरे ोला और हाथ जोड़कर खड़े हो गये. वह भी खड़ा हो गया, हाथ बांधे हुए. कमरे के बीचों-बीच बड़ी-सी मेज पर टांगें ये अखबार में डूबे हुए कलक्टर साहब के पी. ए. का ध्यान हुआ. उसने अखबार हटायी और भौंहें सिकोड़ते हुए रोबीली ज में पूछा, "राम आसरे, तुम यहां? कैसे? और यह कौन

"हुजूर, हमार बेटवा है, रम्मू. इसने हाई स्कूल पास किया है किलास से. साहब के लिए थोड़ी-सी मिठाई लाया था." आसरे ने हाथ जोड़ते हुए खुशामदी स्वर में कहा.

पिता की अत्यंत विनीत मुद्रा व अतिरिक्त कोमल स्वर ने कान में सीसा घोल दिया था.

"ओह अच्छा! बड़ी खुशी की बात है. बधाई हो बधाई. ो मिठाई कहां है?" अखबार को मोड़कर मेज पर रखते पी. ए. ने कहा. उसकी आंखों से लालच टपक रहा था.

"जी वो आपकी... वो आपकी... ही-ही आपको दफ्तर में ऊंगा साहब. जरूर खिलाऊंगा. जरूर. आज तनिक साहब से वा दीजिए तो हम पर बहुत बड़ी मेहरबानी हो जाये."

उसे पिता की अतिशय विनम्रता पर क्षोभ हो रहा था. उसका चाहा था कि वहां से भाग जाये. लेकिन वह खड़ा रहा के पीछे. चुपचाप.

"अच्छा, बाहर बैठो. देखता हूं." पी. ए. को शायद उस पर आ गयी थी.

वे दोनों बाहर आकर बरामदे के कोने में पड़ी एक बेंच पर गये थे.

उसके पिता ने उसे फिर समझाया था, "देखो, साहब को र सलाम करना. वह जो-जो कहें, जो-जो समझाएं, उनकी हां मिलाना. साहब भगवान होता है. समझे!"

उसने पिता को घूरकर देखा. पर कहा कुछ नहीं. उसकी नदी से फैले लॉन के किनारों पर लगे गुलाब के फूलों तक पहुंच उसे लगा, इन फूलों से लाल खून टपक रहा है. खून! और वह र टहलने लगा. उसे टहलता देख राम आसरे हड़बड़ा उठा ठकर उसका हाथ पकड़ लिया और उससे चिरौरी भरे स्वर हा, "गजब कर रहे हो भैया! यह तुम्हारा घर नहीं, कलक्टर का बंगला है. बैठ जाओ. बैठ जाओ." और उसने हाथ पकड़कर उसे बिठा दिया. वह बुत-सा बना बैठ गया. अचल. उसे यह सब मायावी प्रपंच-सा लग रहा था. पर पिता. ..उसे पिता की दयनीयता पर रहम आ गया. वह चुपचाप बैठा रहा, उसी तरह.

"भैय्या! हमारी जिंदगानी की तो सांझ हो गयी है, इसी खिटपिट में. तुम्हारा सफर तो अभी शुरू होगा, साहब की किरपा से. साहब के दरशन ही बड़े भाग वालों को मिलते हैं. जाने कैसे किरपा हुई साहब की कि कल दो बात भी कर ली हमसे. और मिठाई भी मांग ली अपने मुंह से. तुम्हारे पास होने की. वरना... इतने साल हो गये साहब को दफ्तर में देखते-देखते, पर दो ठो बात करने को तरस गये हम तो. सुबह गाड़ी से उतरकर साहब दफ्तर के अंदर. शाम छुट्टी हुई तो साहब मोटर में बैठकर उड़नछू. अपने कलक्टर साहब तो काम से काम रखते हैं, बस! बेवजह की चौपाल नहीं लगाते. फिर उन्हें फुरसत भी कहां है." राम आसरे ने गर्व भरे स्वर में कहा था.

आसपास बिखरी कहानियां

सौ रुपये का फूटा

▣ गणेश शंकर शर्मा

टीकमगढ़ (म. प्र.) क्षेत्र में मृदा संरक्षण विभाग की एक पार्टी कार्यरत थी. इसमें 11 सर्वेयर तथा एक अधीक्षक थे. उस समय सर्वेयर को मात्र 103 रु. मासिक वेतन मिलता था.

अधीक्षक महोदय वेतन के दिन सौ-सौ के नोट लेकर ही आते. प्रत्येक सर्वेक्षक को 100 रु. का एक नोट पकड़ा देते और कह देते, "बाबू रे, फूटा (छुट्टा रुपया) नहीं है रे." परिणाम यह होता है कि प्रतिमास उनके पास तैंतीस रुपये बच जाते.

सर्वे पार्टियों को गांव-गांव जाकर भूमि की पैमाइश करनी पड़ती है. गांव में सौ का फूटा कहां से मिलता?

तीसरे महीने जब अधीक्षक महोदय वेतन बांट रहे थे तब वही वाक्य फिर सामने आया, "बाबू रे, फूटा नहीं है रे.

तभी एक सर्वेक्षक ने कहा, "दादा, फूटा कितना चाहिए."

अधीक्षक ने सौ का नोट उसकी ओर बढ़ा दिया. सर्वेक्षक को वेतन के सौ रुपये पहले मिल चुके थे.

सर्वेक्षक ने अपने जेब से एक रुपये का नोट अधीक्षक की ओर बढ़ा दिया.

अधीक्षक चीखने लगा. अन्य सर्वेक्षक भी तब तक आ गये. उस सर्वेक्षक ने उन्हें समझाते हुए कहा, "यारो, कोई लड़ाई नहीं है. हम सबको तीन रुपया कम मिलते थे न वो तीन माह में निन्नानवे हो गये हैं. इन्होंने एक सौ का नोट दे दिया है, मैंने एक रुपया वापस कर दिया है."

सारे सर्वेक्षक हंसते हुए टैंट से बाहर आ गये. ☐

"आपको पहचानते भी हैं आपके साहब?" उसने धीरे से पूछा. उसके स्वर में व्यंग्य स्पष्ट झलक रहा था. उसे तो शक हो रहा था कि कल साहब ने पिता से बात भी की थी. मिठाई मांगना तो दूर की बात है.

"लो, कर लो बात. साहब, और मुझे न पहचानें! मैं उनके दफ्तर का जमादार. कित्ते प्यार से कल बात करी हमसे. उनकी नजर में सब बरोबर हैं. कह रहे थे कल, 'यह नव-युग है राम आसरे! इसमें कोई छोटा-बड़ा नहीं है'."

उसने चाहा था, वह पिता की इस सोच पर ठहाका लगाकर हंसे, पर वह एक व्यंग्य भरी मुस्कान ही फेंक सका था. क्योंकि वह जानता था कि यहां, इस बड़ी कोठी की दीवारों को उसकी उन्मुक्त हंसी अच्छी नहीं लगेगी. जाने उसे एकाएक क्या सूझा कि वह पिता से पूछ बैठा था, "यहां हंसना मना है ना बापू."

उसके इस सवाल पर राम आसरे हकबका गया था और उसकी आंखें कटोरियों में से बाहर निकल आयी थीं. वह बैंच से उचक पड़ा था और उसके दोनों कंधे पकड़कर बोला था, "रम्मू, क्या हो गया है तुझे! कैसी उटपटांग बात पूछ रहा है. साहब से ऐसा कुछ मत पूछियो. हम तो. . ." राम आसरे का वाक्य अधूरा रह गया था और वह धोती की लांग संभालते हुए उठ खड़ा हुआ था. उसके दोनों हाथ ऊपर उठकर विनीत मुद्रा में जुड़ गये थे, अपने आप. जैसे वह कोई चाभी वाला खिलौना हो और किसी ने चाभी भरकर उसके दोनों हाथ आगे लाकर जोड़ दिये हों.

▣

बीच के दरवाजे के पट खुले थे. स्प्रिंगदार दरवाजा झूलकर फिर बंद हो गया था. कलक्टर साहब सामने खड़े थे. उनके पीछे पी. ए. खड़ा था, दोनों हाथ आगे बांधे.

उसके हाथ भी अपने आप जुड़ गये थे. पर गर्दन नहीं झुका पाया था वह, अपने पिता की तरह. शायद यह उम्र का तकाजा था कि उसकी जवान गर्दन अपने पिता की गर्दन की तरह वक्त की मार से नहीं झुक पायी थी. साहब खड़े थे एक चट्टान की तरह. धारीदार रेशमी गाउन में कैद. मुंह में पाइप लगा था, जिस पर अपना बायां हाथ टिकाये वह बार-बार कश खींचकर इंजन की तरह धुआं छोड़ रहे थे.

वह सिर से पैर तक चट्टाननुमा साहब का मुआयना कर गया था. उसने अपनी अठारह साल की जिंदगी में पहली बार 'साहब' देखा था. उसे भी कुछ अचंभा-सा हुआ था और वह भी क्षणभर को सकपका गया था. क्यों चला आया पिता के साथ यहां! खामखाह इस झंझट में पड़ गया, उसने सोचा.

साहब खड़े थे उसी तरह, राम आसरे की ओर घूरते हुए. और इंजन की तरह धुआं फेंकते हुए. आखिर पी. ए. ने चुप्पी की चट्टान को तोड़ा, "सर! ये राम आसरे है. हमारा जमादार. ये इसका बेटा है. हां, क्या नाम है तुम्हारा?" पी. ए. ने उसे संबोधित किया.

"रमेश." उसने निर्विकार भाव से अपना नाम बता दिया.

"हूं! ये किसलिए आया है?" साहब ने पूछा और मुंह से पाइप निकालकर बायीं ओर की दीवार पर झाड़ने लगे. इस प्रक्रिया में उनकी पीठ राम आसरे की ओर हो गयी.

राम आसरे थोड़ा आश्वस्त हुआ और बोला, "हुजूर! वह. . ."

"हां हां, बोलो राम आसरे! व्हॉट आई कैन! . . श्रीवास्तव, अंदर से तंबाकू का पाउच और माचिस लाना." और अब वह पाइप को पास पड़ी कुर्सी के हत्थे पर झटककर साफ करने लगे.

श्रीवास्तव, उनका पी. ए. फुर्ती से बंगले के अंदर तंबाकू चला गया.

"हुजूर! मेरा बेटवा रमेश मैट्रिक में फस्ट किलास पास है. . ." राम आसरे ने मिठाई के डिब्बा पकड़े हुए, हाथ पीछे हुए कहा.

"हां, कल तुमने बताया तो था. आई एम हैप्पी, वैरी हैप्पी पाइप की सफाई जारी थी कि इस बीच पी. ए. आ गया.

"सर, ये आपका तंबाकू और माचिस." पी. ए. ने दोनों की तश्तरी को आगे बढ़ा दिया.

"हूं!" साहब ने पाइप को कुर्सी पर रखा. फिर पाउच में थोड़ा-सा तंबाकू निकाला और दायें हाथ पर रखकर उसे मस फिर पाइप में डाल दिया. माचिस की तीली निकाली और ती की उल्टी तरफ से तंबाकू को पाइप के मुंह के अंदर जमाने में व्य हो गये.

"हुजूर, ये थोड़ी-सी मिठाई. बेटा फस्ट किलास पास. ." रा आसरे ने पीछे बंधे अपने दोनों हाथों में पकड़े मिठाई के डिब्बे आगे कर दिया.

वह साफ देख रहा था कि उसके पिता इस समय साक्षात सुदा बने हुए हैं. उसने धीरे-से दांत किटकिटाये. पर शायद साहब उनके पी. ए. ने सुना नहीं.

"हूं! थैंक्यू! थैंक्यू! क्यों इतनी तकलीफ की. अच्छा श्रीवास्त ले लो भाई. राम आसरे को डिसअपॉएंट मत करो." उनका पाइ सुलग चुका था. वह लंबे-लंबे कश खींच रहे थे.

"अच्छा, एनी थिंग एल्स श्रीवास्तव." उन्होंने दायां ह गाउन की जेब में डालते हुए अपने पी.ए. को संबोधित करते पूछा. साहब की भृकुटियां तनी हुई थीं और उनके स्वर में क्रो छलक रहा था.

"नहीं सर, कुछ नहीं. मैं तो कह रहा था, पर राम आसरे मा ही नहीं. कह रहा था, बेटे के पास होने की खुशी में साहब को मिठ देनी है. मैंने तो कहा था. . . पी. ए. ने स्वर में अतिरिक्त मिठास हुए कहा और राम आसरे की ओर घूरने लगा.

"जी हुजूर, गलती माफ हो. आपको तकलीफ दिया ब हुजूर ने गरीब की मिठाई कबूल की. हुजूर का इकबाल बुलंद हो राम आसरे ने हाथ जोड़कर सिर झुकाते हुए कहा.

वह पीछे खड़ा था और दांत किटकिटा रहा था.

सहसा स्प्रिंगदार दरवाजा खुला और क्षण भर में जोर आवाज से बजकर बंद हो गया. साहब अंदर जा चुके थे.

मिठाई का डिब्बा निरीह-सा कुर्सी पर पड़ा था.

"अब जाओ भी, यहां क्या कर रहे हो!" पी. ए. ने उसे झिड़ हुए कहा था.

"जी हुजूर!" वह रिरियाया और बेटे का हाथ पकड़ अचकचाता हुआ भारी कदमों से लाल बजरी की नदी-सी सड़क पार करने लगा, जिसके दोनों ओर गुलाब के खिले थे.

● **डी-2/84 जनकपुरी, नयी दिल्ली-58.**

इक आग का दरिया है और डूब के जाना है !

प्रेम यानी मुहब्बत यानी दिल का दिलेर संसार!
इक्कीसवें साल में प्रवेश करते हुए कहानियों
और कथा-जगत की जीवंत परंपरा में
सारिका की ओर से नये साल की हार्दिक शुभकामनाओं सहित
प्रेम सहित प्रस्तुत है एक अनूठी भेंट——

प्रेमकथा विशेषांक

प्रेम——वह सुख जो आदम और हव्वा की गंध के साथ जन्मा और समा गया रोम-रोम में——कुदरत की हरियाली में, मंदिर की आरती में, गिरजे की प्रार्थना में, गुरुद्वारे की बाणी में, मस्जिद की अजान में. . . .यानी **——जहां नहीं तहां सब कुछ देखा, यह सुख कासो कहना!** ——कबीर

परंतु वक्त बदला, निजाम बदला, दौर बदले और जनाब फैज साहब ने लिखा——

राहतें और भी हैं वस्ल की राहत के सिवा,
मुझसे पहले-सी मुहब्बत मेरे महबूब न मांग!

- **तो क्या प्रेम का नूर फीका पड़ गया है ?**
- **या यह झूठ है कि प्रेम अमर है ?**
- **क्या अब प्रेम की कोई जरूरत नहीं रह गयी ?...**

इक शहंशाह ने बनवा के हसीं ताजमहल,
हम गरीबों की मुहब्बत का उड़ाया है मजाक!

मरहूम साहिर साहब की जानिब गौर करें तो पूछा जा सकता है कि क्या प्रेम सिर्फ अमीरों का जज़्बा है, गरीबों का इस पर कोई हक नहीं?
प्रेम के प्रति बदलता हुआ यह नजरिया, वक्त की मजबूरी है या आदमी का पागलपन?

प्रेमकथा विशेषांक में पढ़िए ऐसे और ऐसे अनेक सवालों के तहत वक्त और जज़्बे के रू-ब-रू आदमी की जरूरत और जिंदगी को सुलगते सवालों से रेखांकित करती विश्व साहित्य की कुछ अनूठी रचनाएं

विस्तृत सूचना अगले अंक में

सारिका

घर-परिवार और पुस्तकालय की पहली जरूरत

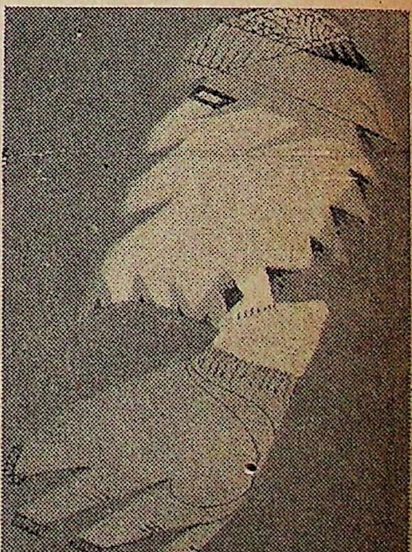

वह बराबर वह

· मुकेश सेठी

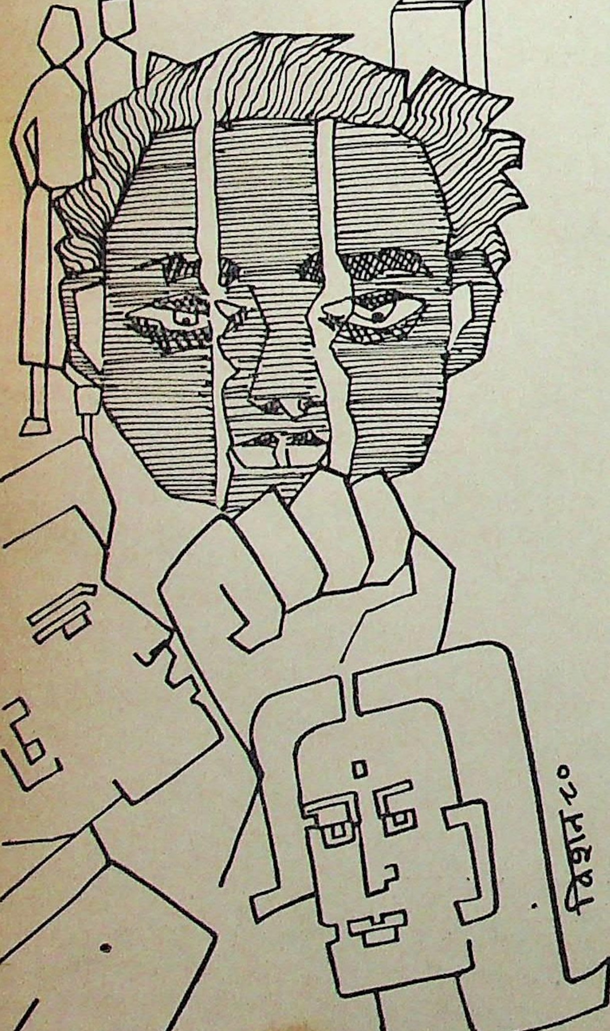

रैंप चढ़ काफ में दाखिल होते नितिन ने पल भर रुककर सारी मेजें देख लीं. उसे खुशी हुई कि उनमें से अभी कोई नहीं पहुंचा था. चंदेक जोड़े थे जो उस पहर की ताजगी और निश्चिंतता का भरपूर फायदा उठाने चले आये थे. उनके लिए एकांत अभी पर्याप्त समय बना रहना था. जून के दिनों का उन्हें इंतजार रहता था, तब युनिवर्सिटी लगभग खाली हो चुकी होती थी. नितिन ने एक निःश्वास छोड़ा और बढ़ गया. उसे उनमें से किसी के न पहुंचने की जो खुशी हुई, वह देर तक नहीं रही. . . .वह अकेला लगातार घंटों बैठ सकता था. . . . .सिगरेटों का पैकेट सरेआम मेज पर रख सकता था. . . .बैरे को टिप न दिया जाये, तो कोई दोष-मनःताप नहीं. . . .बैठने के चुनाव की उहापोह नहीं. . . .पर उसे लगा, कोई चाहिए जो उनका अहसास बांट दे. जिसे उससे एक खास रवैये की अपेक्षा न हो. जो बीच खचाखच के भी बिना गर्दन फेरे सीधा उसके पास चला आये और वे दोनों साथ-साथ काफे से निकलें. लेकिन वह फिर एक शुरुआत होगी. . . .जानने-परखने का फिजूल अभ्यास, जिसके थमते ही सब कुछ उसी बेपर्दगी, उसी ओढ़न-भाड़न में जा गिरेगा, स्वच्छ पानी के मैला हो नाली में बह जाने की भांति!

"न, बिलकुल नहीं." बनर्जी ने बात को चुभलाते हुए कहा था, "पर प्रॉब्लम यह है कि आप दूसरों को भी यही सोचने का मौका नहीं देते. तुममें और अखिल में यह अजीब समानता है. वह अगर मौका देता भी है तो इस तरह कि जैसे ढील दे रहा हो. पूछ लो सविता से, सामने बैठी है."

"क्यों, मेरी गवाही के बगैर तुम्हारी छान-बीन अधूरी रह जायेगी क्या?" सविता चमकी थी, "तुम पत्रकार लोगों को लाग-लपेट में मजा लेना खूब आता है. लेकिन वहां तो एक शब्द भी किसी के बारे में लिखते हुए तुम्हारा ब्लड-प्रेशर लो हो जाता है."

"कहीं चड्ढा से न कह बैठना ऐसा. उसकी बड़ी पुरानी छनती है अखिल से."

"वह. . . . वह अर्द्धनारीश्वर! उसकी अखिल से जैसी छनती है, सब जानते हैं. छह साल से उसके थियेटर-ग्रुप में कुलियों का काम कर रहा है, ब्राशर में, उसकी मिन्नतें करके बै स्टेज मैनेजर की जगह नाम छपवा लेता है और बाद में उसे कोस लगता है. वह कौन-सा मुंह लेकर मुझसे ऐसी बेहूदा बात करेगा!"

"बेहूदा बात?. . .अरे यह तो एक पैक्ट है." बनर्जी ने मुस्कुराहट चूसते हुए व्यंग्य को करवट दी, "अब चड्ढा न कह सके तो उसकी बुजदिली है. वैसे अर्द्धनारीश्वर तुमने उसे ठीक ही कहा."

वह हंसने लगा. सविता की आंखों में एक तीखी चोट का भाव आकर चला गया. वह कसमसाकर खामोश नितिन को देखने लगी. वह खामोश ही रहा तो सविता ने जैसे उमस को छांटने का यत्न किया, "क्यों नितिन, आजकल कोई बहुत उल्टा-सीधा थी आड़े आया हुआ है?"

"अरे, सुना नहीं," बनर्जी बोला, "कहता है, न शुरुआत के कुछ अर्थ रह गये हैं न व्यंथता को जीना रचनात्मक हो सकता है. उस पर. . . ."

"आप अपनी चहचहाहट अपने संपादक के लिए बचाकर रखिए." सविता ने उसे संक्षिप्त कर दिया.

"हां, मेरी चहचहाहट से आपको बदपरहेजी हो जाती है."

"बनर्जी!" नितिन चटखा था, "पूरे एक हफ्ते बाद हम मिले हैं. अब एक महीना डालना चाहते हो. मैंने एक बात कही थी, सो इसलिए नहीं कि तुम उसे भूसे की तरह चिगलाकर जुगाली करो. बेतकल्लुफी की भी कोई हद होती है!"

"तुम साफ कह दो, मैं उठकर चला जाऊं."

"तुम जो भी समझो."

"राइट दैन. आ'ल वेट फॉर य्योर काल नाऊ." कहता वह चल दिया. नितिन क्षुब्ध हो सामने लंबी यू-टेबुल की भीड़ देखने लगा. सविता उसे रैंप तक देखती रही. फिर काफी का एक-एक कप और होकर वे भी उठ गये थे. नितिन बनर्जी के जाते ही उतावला होने गा था, पर सविता को अखिल की प्रतीक्षा थी.

वह नहीं ही आया. सविता को उसके घर जाना पड़ा. "अखिल जानबूझकर नहीं आया. कैन यू इमेजिन? वह जानता है कि बनर्जी हमारे साथ था, पर यह नहीं कि वह अपमानित होकर उठ गया और मैं अपने गाइड डॉक्टर गुप्ता से मिलने उसके संग तो क्या, अकेली भी नहीं गयी. बनर्जी का गाइड भी डॉक्टर गुप्ता है तो इसमें मेरा क्या कुसूर."...जाते हुए सविता उससे सांझ डाल दी थी....."हाऊ पिटिएबल इज इट नितिन. क्या तुम अपने त यह बर्दाश्त कर सकते हो?"

"नो, नेवर! यह अपने बुद्धिजीवी होने का मिथ्या दंभ है. ट प्रेगमैटिव!" नितिन बोला था, "उसने जो नहीं कहा वह यह कि हम उस पर भी शर्मिंदा हैं, जिसका प्राप्त होना आसान हो जाता है. और जो हमारी खूबियों को पहचानते हैं, वे हमारे खयाल इसके लिए मजबूर हैं. जो नहीं पहचानते, उन्हें हम शोषक समझते हैं.....उन्हें धक्का देना बूते से बाहर है, सो हम आपस ही लतियाते रहते हैं. इंटेलेक्चुअल्ज आर ए क्लासलेस सोसाइटी ..हुंह, बकवास है! सविता क्यों महसूस नहीं करती इसे?"

ादाब!" कमल चला आ रहा है, "कामरेड, बड़े भावुक नजर रहे हो. सिटिंग डे सो लेट!" उसने कुर्सी खींचकर चश्मा उतार या, "मैं तो सारी रात नहीं सोया. एक नीग्रो पोएट ऐमि जेयर का ऐपिक मिल गया था. वह भी पेंगुइन पब्लिकेशन. है अजूबा?...स्साला भावुक कर डाला. उड़ा दिया व्हाइट बगर्ज . रियली कामरेड, नेरुदा का भी क्या तेवर होगा सिजेयर की ुकता के सामने. और वह अमेरिकन नीग्रो कैदी एलरिज क्लीवर पैरोल पर छूटकर सिर्फ रोनाल्ड रीगन को चुनौती देता था न, कामरेड तो सारे यूरोप को ललकारें मार रहा है. मैं शर्त ता हूं, द निग्रोज पोयट्री कैन ब्रिंग ए डिबेकल इन द ब्लैक ड़े!"

नितिन मुस्कुरा दिया. कमल उसे अच्छा लगता है. कोई ीं कह सकता कि वह पंजाबी कृषक परिवार से आया है. अर्थ-स्त्र के एक विषय में शोध कर रहा है. पढ़ता बहुत है, हर प्रकार साहित्य. हर काल, देश और प्रांत का साहित्य. हर वाद, हर ति, हर नियति...सबमें रुचि है उसकी. जब देखो, भरा ा.

उसका लंबा छरहरा शरीर, लंबोतरा चेहरा, छोटी-छोटी ी, पीछे की ओर बैठाये बाल और बारीक डंडी वाली ऐनक के शीशों में से चमकती काली आंखें देखकर नितिन को अपने एक प्रिय लेखक की याद आती है. कमल लानत भेजता है. अपने घर की जमींदारी से लेकर फर्श पर पोचा लगाने वाले खलासी तक. मगर चार सौ रुपये घर से मंगवाता है हर महीने और साढ़े चार सौ यू. जी. सी. का स्कॉलरशिप लेता है... "अरे मैंने तो स्टेट बैंक के प्रोबेशन ऑफिसर की नौकरी छोड़ दी. यू नो, मुझे वे ग्यारह सौ से ऊपर दे रहे थे. बट आइ शाउटेड—यू आर कन्वर्टिंग द जैनेरेशंस इन टू डिसऑनरेबल चेक्स. और फिर ये स्साले युनिवर्सिटी-इंटेलेक्चुअल्ज...इन्होंने तो मुझे मृत घोषित कर दिया था, सो आइ टोल्ड दैम यू नो, दैट आय कैन ब्रीद एं लायंज. नौवां रिसर्च स्कालर हूं अपने विभाग में, जबसे यह युनिवर्सिटी बनी है."

▣

"कमल!" अखिल ने एक कठिन सांस छोड़ी थी, "ठीक है, इस दौर में किताबों का मुरीद हो पाना भी सौभाग्य है." फिर खुद-बुदा उठा था. मुझे नहीं पसंद वे लोग, जिनका सरोकार जिंदगी से न होकर सिर्फ किताबों से हो और नजरिया नाम की चीज नदारद हो."

"देखो कामरेड. अस्तित्ववाद और डांग में कोई अंतर नहीं." यह कमल था.

"अपने सविता भैनजी को तो जानते हो. बनर्जी और चडढा ने क्या नहीं किया उसके लिए. बनर्जी ने तो उसके एम. ए. के पर्चों में ऐक्जामिनर के पास बैठकर नंबर लगवाये थे. फिर उसकी रिसर्च के लिए डॉक्टर गुप्ता, हैड और उसके थ्रू 'बोर्ड ऑव स्टडीज' तक गया बेचारा. पर अखिलजी सविता को एक ही ड्रामे में ले उड़े. कामरेड, बनर्जी लतिया दिया गया. क्यों? क्योंकि सविता लखपति बाप की बेटी है. वह इंपोर्टेड कार में यहां आती थी, अब बैंक जाती है. उचाट हो गयी बेचारी, अखिल से परेशान होकर कुछ नहीं सूझा तो बैंक में नौकरी कर ली. अब यह अलग बात है कि अखिल की ईगो की डांग खुद उस पर ताड़-ताड़ बरस रही है. अस्तित्ववाद की विकृति हो गयी न डांग के रूप में? अखिल का सविता से विद्वेष और अपने काम से सदा उखड़े रहना, उसकी कराहें नहीं तो क्या हैं!"

नितिन को तर्क करना व्यर्थ लगा. कमल की गड़बड़ी ही उसका फलसफा थी. वह तो अभी किसी नामी लेखक को उद्धरित कर देगा. नितिन ने चड्ढा का जिक्र छेड़ दिया.

"अरे उसकी क्या पूछते हो कामरेड. वो साहब तो उस काली-कलूटी क्षमा भैनजी पर मर मिटे हैं. और कर भी क्या सकते थे! क्षमा को दो साल हो चले यहां-वहां लीव वेकेंसीज पर काम करते हुए. पति उसका उड़ीसा में रहता है. आता ही नहीं. बस, एक बच्चा दे गया है, जिसे क्षमा की गैरहाजिरी में चड्ढा साहब पाल रहे हैं. तेईस सैक्टर में क्षमा ने एक बरसाती किराये पर ले रखी है. चड्ढाजी अपने फटीचर स्कूटर पर पहले उसे दूध पिलाकर, नहला धुलाकर स्कूल छोड़ने जाते हैं, फिर डायरेक्टोरेट से जाकर उसे लंच करवाते हैं और रात को सुलाने जाते हैं. कभी तो वहीं सो जाते हैं. घर वाले दुःखी हैं, पर यदि क्षमा यहां हो तो चड्ढा साहब गये काम से. उनका तो फिर ठीया ही वहीं होता है न, कामरेड! लेकिन लौटते हैं तो कभी रीढ़ की हड्डी में दर्द लेकर, कभी

पीलिया करवाकर. देखते नहीं, स्कूटर पर कैसे कुबड़ा होकर बैठता है?"

नितिन उलझ गया. वाक्य, मुद्राएं और चेहरे. मस्तिष्क लबालब भरा था. वही प्रश्न, वही हां-ना के घेरे. वजन घटाने या जिस्म स्वस्थ रखने के लिए तो व्यायामशालाएं हैं, पर मानसिक संतुलन बनाये रखने के लिए कौन-सा योगाश्रम है—फिल्म सोसाइटी थियेटर? रोज गार्डन के झुरमुट? म्यूजियम या आर्ट गैलरी? राक गार्डन? झील?...नहीं, झील में आजकल बोटिंग मना है. उसमें केवल डूबा जा सकता है. पहले बायोकैमिस्ट्री विभाग के दो निराश प्रेमी पोटैशियम सायनाइड खाते हुए बोट से कूद गये. फिर सचिवालय के दो क्लर्क, फिर दड़बेनुमा मकानों से भाग खड़े हुए अधेड़ दंपती. फिर एक नौजवान एम. एल. ए., खुदकुशियों का अंतहीन सिलसिला. अखबारें पढ़ो, चौंकने पर एक तमाचा, अफसोस करने पर दो-दो तमाचे. क्यों, पूछना सेहत के लिए हानिकारक हैं. सो भयाक्रांत रहो या निर्लिप्त. फिर कुछ नहीं... लेकिन नहीं. बात वास्तव में दूसरी है. वे सब बुनियादी तौर पर कभी कमजोर नहीं थे. अपने वर्ग पर उन्हें गर्व था. किसने तोड़ दिया उसे. क्या वाकई कोई शक्ति है या व्यक्ति ही अलग-अलग इसके जिम्मेदार हैं...वे जो किस्म-किस्म के शरीरों के अलावा क्या रहते जा रहे हैं, समझ से बाहर है. एक समझौता था भी—...कि मिडियाक्रिसी...सभी सहयोग करेंगे. नितिन भी उस समझौते में शामिल था. क्यों, वह क्यों नहीं था? वह सबसे अदना है. एक आश्रित व्यक्तित्व. घर से अब हर मनीऑर्डर 'नौकरी तलाश करो' की चेतावनी के साथ आता है...'बिजनेस ठप्प होता जा जा रहा है...बलबीर चली-चलायी फोटोग्राफी की दूकान उजाड़कर घर बैठ गया है...दूसरे बच्चे का बाप बनने वाला है...ऊपर से तुम्हारे पिता ने फिर से पीना शुरू कर दिया है, '.....अपना इंतजाम करो...'

◆

सामने एक पर्दा तन गया है. उस पर फिल्म चलने लगी है.... पिताजी की दो में से एक मुख्य रक्तनली फट गयी है....खून की उल्टियां....खून की अट्ठारह बोतलें....उस केस की तब तक की जीवन-दर मात्र दो प्रतिशत है....लेकिन पिताजी बचा लिये गये हैं.....अपने फादर के बिजनेस में दिलचस्पी लो.....लेन-देन का पता रखो.....पांच बरस से ज्यादा मियाद नहीं है.... यह सब शराब की वजह से हुआ....अब एक बूंद भी अलकोहल अंदर नहीं जाना चाहिए....ऊपर से तुम्हारे पिता ने फिर पीना शुरू कर दिया है...फादर ऐक्सपायर्ड...बंगला और सामान बिक रहा है....एक अजनबी शहर में किराये का टू-रूम सेट... बलबीर ने संन्यास ले लिया है....मां और उसकी पत्नी सफेद धोतियों में लिपटी एक-एक बच्चे को पुचकार रही हैं....नौकरी नहीं मिल रही....मुट्ठी भर जमा रुपये खत्म हो गये हैं....

'स्टाप इट!' एक चीख गूंज गयी. नितिन ने चौंधियायी-सी आंखों से अगल-बगल देखा. सब जोड़े अपने में खोये थे. किसी ने कुछ नहीं सुना. उसकी नसें कसीं, फिर फड़कने लगीं, फिर रस्सी की तरह एक-दूजी पर बटने लगीं. बटाव कड़ा होने लगा...'नो, गेट अप, ओ शट अप! एक प्याली चाय की सख्त जरूरत है. नरक में जायें वे और मां.....पिताजी, बलबीर...इतनी यातना से अधिक उनका कोई अधिकार नहीं. कुछ कर पाने की उम्मीद एक तसल्ली है....उसका टूटना अपनी तमाम योग्यताओं की हत्या है.....इस अपराध से बचने का रास्ता ढूंढ़ो....हर स्मृति, हर संबंध उस रास्ते में घात लगाकर बैठे हुए डाकू हैं... दो-दो लड़ाइयां एक साथ नहीं लड़ी जा सकतीं....उनसे बचो ....भागो...छिप जाओ...'

'गेट लास्ट!' एक और चीख. वह भी बाहर नहीं निकली. हां, चाय पी जाये. मेज पर पड़ी उसकी हथेली के नीचे सिगरेट का पैकेट और माचिस ढंके थे. एक सिगरेट सुलगाया.

"सर!" पुराना वेटर टामस सामने खड़ा था, "चाय लाऊं सर?"

"हां टामस, और मजे हैं न? सिगरेट पीओगे?" टामस को बिना टिप के खुश करने का नितिन का अपना ढंग है.

"नो सर, थैंक्यू. वो चड्ढा साब आपको गियारा बजे इदर मिलने कूं बोल गिया.....आपसे दस मिनट पैले आया ता. अइक लड़की ता सर, उनके संग."

"कोई काम नहीं बताया खास?"

"नई सर. उस लड़की का नाम बताया बस. पन अपन भूल गया ऐ."

"कोई बात नहीं. ठीक है. तुम चाय लाओ, जरा बढ़िया-सी."

नितिन ने घड़ी देखी. सवा दस बजे थे. डायरेक्टोरेट जाते हुए चड्ढा कह गया होगा. पर उसके संग लड़की?... .बनर्जी के लिए तो यह स्कूप है! वैसे भी चड्ढा ने उसे अपनी कविताएं जरूर सुनायी होंगी. वह बतायेगी. खामखाह घेराव करवा बैठेगा अपना.

वह आया तो साथ बनर्जी, कमल, दो कविनुमा लड़के और एक लड़की भी थी. कविनुमा लड़कों में से एक ने अच्छी-खासी दाढ़ी बढ़ा रखी थी, जो आकर्षक लगती थी.

"यह हैं मिस रूमा भट्टाचार्य, कलकत्ता से. अंग्रेजी में लिखती हैं. यहां फिलॉसफी डिपार्टमेंट के सेमिनार में भाग लेने आयी हैं. शाम को सर्वहारा रंगमंच की गोष्ठी में भी बोलेंगी" चड्ढा ने कुर्सी सरकायी, "और यह है सोमनाथ, पंजाबी नाटककार और यह मिस्टर प्रकाश, पंजाबी के जाने-माने कवि तथा समीक्षक." बैठिए जी! चड्डा ने दोनों बाहें 'लो देख लो' के अंदाज में फैला दीं.

"कामरेड, यह मिस शिमला हैं, मेरी क्लासफेलो. विदाउट स्कॉलरशिप रिसर्च कर रही हैं. काफी मशहूर ट्यूटर हैं. अभी-अभी हॉस्टल लिया है. फिक्शन के बारे में खास भावुक हैं. इसलिए सोचा, तुमसे मिलवा दूं. थोड़ी ही देर में जाने कितने लेखक डिस्कस कर चुकी हैं. मुझे भी भावुक कर डाला." कमल चश्मा उतारकर शीशे साफ करने लगा और विमला पसीने के संग माथे की शिकनें पोंछने लगी, जो कमल द्वारा दिये उसके परिचय से पड़ गयी थीं.

"मिस्टर अखिल आपको जानते हैं?" रूमा ने नितिन से पूछा.

"अरे, इसे कैसे नहीं जानेगा. वही तो इस शहर में एक तेज-तर्रार आलोचक था" चड्ढा बोला, "अखिल जब कविताएं लिखता था, तो मुझे सुनाने के बाद इसे सुनाया करता था. जो पत्रिका यह सुझाये, उसी में भेजता था. ज्यादातर लौट आती थीं और अब वह डायरेक्टर हो गया है, एक स्वतंत्र थियेटर ग्रुप

आसपास बिखरी कहानियां

मुश्ताक़ नक़वी

पाठ

गरीब धोबी के बच्चे को विद्यालय में पढ़ाया गया—गुड मॉर्निंग मदर, गुड मॉर्निंग चिल्ड्रेन! इज दी ब्रेकफास्ट रेडी? येस, कम एंड हैव यौर ब्रेकफास्ट. नीतू एंड पीपी टुक देयर सीट्स. नीतू एट ब्रेड एंड बटर. पीपी ड्रैंक मिल्क. नीतू एंड पीपी एट फ्रूट्स.

फिर अध्यापक की आवाज गूंजी, "कल यह पाठ याद करके आना. जो याद नहीं करेगा, उसे पांच बेंत खाने पड़ेंगे."

बच्चे ने पुस्तक में बने चित्र को देखा. एक सुंदर कमरे में मेज पर खाने की वस्तुएं सजी हैं. दो साफ-सुथरे बच्चे अपनी मां के साथ बैठे नाश्ता कर रहे हैं. उसे रोटी, मक्खन, फलों और दूध के स्थान पर अपनी रूखी रोटी याद आ गयी और पाठ याद नहीं हुआ. अगले दिन उसने पांच बेंत खाये.

इसी प्रकार उसे पिकनिक वाला, मम्मी-डैडी वाला और चिड़ियाघर वाला पाठ भी याद नहीं हुआ था और उसने हर बार पांच बेंत खाये.

एक दिन अध्यापक ने पढ़ाया--हियर इज ए वाशरमैन. हिज नेम इज मोती. ही वर्क्स हार्ड. . . . . .

दूसरे दिन उसने सारा पाठ याद कर लिया. □

समानता

नन्हा-सा झबरा पिल्ला बड़ा ढीठ था. हलवाई ने एक बार दुतकारा, दो बार दुतकारा, लेकिन वह हिला तक नहीं. हलवाई ने खीझकर उस पर खौलता हुआ शीरा छिड़क दिया. पिल्ला एक चीत्कार के साथ भाग गया!

हलवाई हो-हो करते हुए बोला, "अब साला नहीं आयेगा!"

दूसरे दिन एक भिखारी बालक हलवाई की दूकान पर खड़ा हो गया. हलवाई ने एक बार मना किया, दो बार मना किया, किंतु बालक नहीं टला. बराबर का दूकानदार बोला, "अबे यार, कल वाली तरकीब चला."

और हलवाई ने कल वाली तरकीब चला दी! □

जो सचमुच काफी चर्चित है. आप तो रूमाजी, मुझसे पूछिए अखिल को किससे कैसी है."

"ओह येस, अखिल की मिस रूमा से कैसी है?" बनर्जी फूटा. मा कटाक्ष भांपकर हौले से हंस दी. सभी हंस पड़े.

"और कामरेड तुम्हारी कैसी है आजकल उससे?" संयत ठहाकों में बदल गयी. चड्ढा का उखड़ना स्वाभाविक था, लोग आये-गये का भी ध्यान नहीं रखते. मिस रूमा हमारी न हैं."

"ओ नो!" रूमा अपने वाब्ड बाल झुमकाकर बोली, "आप-लकर मिस्टर चड्ढा, मेहमान बने रहना किसे अच्छा लगेगा! एटिच्यूड इज सो फ्रैंक एंड ह्यूमरस."

"नाट ह्यूमरस, बट फनी! क्यों कामरेड?" और ठहाके ऊंचे उठ गये. चड्ढा असहाय-सा उंगलियां कटकटाने लगा.

"मिस रूमा, आप मिस सविता को जानती होंगी." कमल ने यों से चड्ढा को देखा. होंठों पर जीभ घुमायी, "वह अखिल एटर-ग्रुप की सब से ब्रिलिएंट ऐक्ट्रेस है. उसके हर ड्रामे की . . . और इस युनिवर्सिटी में बनर्जी के बाद स्कालर्ज में उसी का नाम लिया जाता है. चड्ढा को वह प्यार से भाईजान कहती है. चड्ढा, पर उससे कुछ घबराता है. पता नहीं क्यों? . . . . यू नो, आदमी भावुक हो ही जाता है."

"भावुक से तुम्हारा क्या मतलब है?" चड्ढा ठुनका.

"ओ बई चड्ढा, भावुक होना कोई बुरी बात थोड़ी है." प्रकाश ने सिरा पकड़ा, "कामरेड कमल इज राइट. इस उमर में भावुक न हुए तो पछताओगे और रोया करोगे. वैसे तो तुम पैंतीस पार चुके हो."

"मिस रूमा, चड्ढा ने अखिल की प्रतिभा के बारे में ठीक कहा है." बनर्जी आश्वस्त था कि अब नोक उसकी ओर नहीं मुड़ेगी, "उसमें बहुत बड़ा स्रोत है. सविता जैसी इंटलेक्चुअल लड़की. . : . .लेकिन पता नहीं क्यों, वह यह भी स्वीकार नहीं पाता. यह उसका तीसरा मीडियम है, थियेटर, आई मीन, पहले कविताएं लिखता था, ओफ्फ! क्या स्ट्रोक थी उनमें. पर 'लेफ्टहैंड ड्राइव' में क्या ऐक्सिडेंट नहीं होते? सो, आलोचना लिखने लगा, लेकिन एप्रोच नेगेटिव करार दे दी गयी और अब. . . .आय केन बेट इट, ब्रेख्त जैसे प्लेराइट के प्रयोगों को उसने यहां की

ग़ज़ल

सत्यनारायण

वह दुआ बेअसर न हो जाये,
बात अब दरगुजर न हो जाये.

दोस्तो, खेल मुल्तवी कर दो,
आज बरबाद घर न हो जाये.

खून से है लिखी इबारत यह,
दीमकों की नजर न हो जाये.

खौफ है मेमनों की बस्ती में,
भेड़ियों को खबर न हो जाये.

आग जंगल की रोक लो लोगो,
खाक सारा शहर न हो जाये.

इन चिरागों में रोशनी कम है,
जुस्तजू दर-ब-दर न हो जाये.

आज जो सर झुका है सिजदे में,
कल वही दर्दे-सर न हो जाये.

रंग बदला है फिर अंधेरों ने,
दांव यह कारगर न हो जाये.

रात गहरी है, जागते रहिए,
जिंदगी ही जहर न हो जाये.

स्टेज पर चैलेंजिली प्रोड्यूज किया है. और देखिए न, अजीब पैराडॉक्स है—लोकप्रिय है वह बिल्कुल सपाट चरित्रों में, पर असली जिंदगी में हमेशा अंत:क्रिया....इंट्रेक्शन आई मीन, ही ढूंढ़ता रहता है! आप सोच सकती हैं, उसकी जीनियस कैसे फ्रस्ट्रेट होती जा रही है. आजकल तो इतनी निर्ममता से वह आत्म-स्वीकृतियां देने लगा है कि डर लगता है कहीं विभाग से भी इस्तीफा न दे डाले.

माहौल में सन्नाट-चुप व्याप्त गयी थी. अखिल बेचाहे उन पर जंगी जहाज की भयावह आशंका-सा हावी हो गया था. सविता एक निरीह, किंतु स्पर्श से परे दैवी काया-सी अदृश्य उनमें डोलने लगी थी. नितिन सोच रहा था—अगर अखिल या सविता यहां होते तो बनर्जी और चड्ढा तब भी बाज न आते और अपनी पोलें खुलवा बैठते.....सविता के लिए क्या, उन्होंने किस मंशा से किया, कि वे प्रथम वर्ष की छात्राओं के संग, रोज गार्डन या पश्चिमी फिल्मों की भीड़ में सटे, पिघलते फिरते हैं, कि कैंपस की सड़कों पर उन्हें लेकर निकलना उन्हें शर्मिंदा करता है और कि यह महज कुत्सित मन की बौखलाहट है.

और प्रकाश और सोमनाथ सर्वहारा रंगमंच के नाम पर पराये पैसे को शराब में उड़ा रहे हैं. प्रकाश की कविताएं और समीक्षा तथा सोमनाथ का नाटक दो-तीन किस्तों में उनकी अपनी ही एक अनियमित पत्रिका में छपा है. तीस पृष्ठों के उस पंफलेट को वे सारे शहर में बांट आते हैं और सौ-सवा सौ पतों पर पोस्ट कर देते हैं. पंजाबी विभाग का एक प्रोफेसर और पब्लिकेशन ब्यूरो का एक सहायक उनके नेता हैं. दोनों पिछली सरकार के पिट्ठू रहे, नयी राजनीति मुंह नहीं लगाती. सर्वहारा रंगमंच... सर्वभाषी साहित्य-परिषद....हो हाय-हो हाय....

अखिल को लोग क्यों गंभीरता से लेना शुरू कर रहे हैं? उसका थियेटर-ग्रुप शहर में नुमायां क्यों है? सविता उस पर क्यों मरती है? ....खड़काओ, बदनाम करो स्साले को! वे इस तरह अखिल को खारिज नहीं कर रहे, उल्टे लाजिमी गिनवा रहे हैं!

"मिस्टर नितिन!" रूमा बोली, "मैं मिस सविता से भी मिलना पसंद करूंगी."

"सेमिनार में वह आयेंगी. चड्ढा और बनर्जी उनसे मिलवा देंगे आपको." नितिन तटस्थ हो लिया.

"क्यों अखिल खुद ही मिलवा देगा." चड्ढा बोला.

"आफ कोर्स, मैं भी व्यस्त रहूंगा मिस रूमा." बनर्जी ने ताईद की.

"तब तो कामरेड, तुम अखिल को नहीं जानते." कमल ने चेतावनी दी, "वह तो पूछेगा कि सविता को कैसे जानती हैं मिस रूमा. मिस रूमा तो मेरा नाम बतायेंगी न, चड्ढा और बनर्जी कहेंगे कि उन्होंने जिक्र किया था! वह तो फिर मेरे बारे में ही भावुक होगा, बाद में बेशक इन दोनों को भी पकड़ ले."

"मैं खुद मिल लूंगी उनसे." रूमा की खीझ छलक पड़ी, "शुड वी लीव मिस्टर चड्ढा?"

"ओह हां," चड्ढा ने शुक्र मनाया, "अखिल भी फ्री हो गया होगा."

सभी उठ खड़े हुए. बिल नितिन ने काउंटर पर अदा किया.

आदतन अखिल चलते सेमिनार से उठकर बाहर आ गया. सविता साथ थी. चड्ढा, कमल और विमला बाद में निकले और नितिन सबके बाद अकेला. उसने भांप लिया था कि मेजें बजेंगी, माइक पटक दिया जायेगा और कइयों के गिरेबान फटेंगे. लगभग सभी सज्जन बहस में शरीक हो गये थे और सेमिनार-रूम मछली बाजार प्रतीत हो रहा था. 'कलाओं में संप्रेषणीयता' विषय था!

रूमा पर्चा पढ़ चुकी थी. नितिन ने उसे कई बार उठने का इशारा किया, पर उसे शायद अभी मजा नहीं आया था.

बाहर लॉन में अखिल मसीहा बना बोल रहा था, "कला गल-सड़ गयी है. उसमें से अब बू आने लगी है. सूंघो इस बू को. चाटो एक-दूजे की थूकें. जबान तो स्वाद मांगेगी ही! हालांकि पेट भरा हुआ है, इसलिए, वर्ना कौन महान पुरुष यह नतीजा निकाल सका है कि जो हम हैं, वही हमारी असलियत है, या जो हम नहीं होना चाहते थे, यह उसकी सफाई है, पछतावा है."

"अच्छा! तुम भी यह सब सोच लेते हो कामरेड?"

"क्यों, आपको यकीन नहीं हुआ?"

"नहीं, मेरा मतलब है, तब तुम पहले अपने-आप को क्यों नहीं बरजते? यह तो कामरेड, बड़ी सीधी-सी बात है कि गली-गली मारा-मारा फिरने से उनका कुछ नहीं बिगड़ेगा, जो तुम्हारे ख्याल में कला को गला-सड़ा रहे हैं. या तो कुछ करो या मान लो कि तुम्हारी समस्या कला को सिर्फ गाली देना है और कुछ नहीं. तुम अगर नहीं मानते तो यह तुम्हारी तुच्छता है, एंड दैट इज वाट एवरीबॉडी इज टॉकिंग एबाउट!"

"हू एवरीबॉडी?"

"मे बी चड्ढा, मे बी बनर्जी और.....शहर में और लोग भी तो हैं, जो अब तुम्हारे साथ नहीं बैठते."

"तो मैं इतना सिग्निफाइड हो गया हूं. मुझे तो फिर खुश नहीं होना चाहिए?" अखिल ने मोटी-मोटी गोल आंखों की तिरछ उस पर गाड़ दी.

"मैंने क्या कहा?" चड्ढा बुलबुलाया.

"कमल ने ठीक कहा है." अखिल ने उसे डांट दिया.

"मैं जाता हूं. भाड़ में जाओ तुम, तुम और तुम. मैं यह इन्सल्ट बर्दाश्त नहीं कर सकता." कहता चड्ढा हेलमेट उठाकर चल दिया.

"सविता, रूमा को बुला लो. तुम कह रही थीं, वह मिलना चाहती है. तुम्हारा क्या प्रोग्राम है नितिन?" सविता के जाने के बाद उसने पूछा.

"मैं अब कमरे में जाऊंगा."

"कब तक रहोगे?"

"कहो?"

"साढ़े आठ तक मैं आऊंगा. डिनर इकट्ठे लेंगे."

"ओ. के."

नितिन जानता था, अखिल पीना चाहता है. कोई हर्ज नहीं. काफी दिन हो गये अलग से बैठे हुए.

अखिल ने बताया कि हिमाचल सरकार द्वारा आयोजित नाट्य मेले में वह भी अपना एक पुराना बहुचर्चित नाटक खेलने वाला है. वह खुश नहीं था. तब नायिका सविता थी, अब एक नयी लड़की. नाटक बर्टोल्ट ब्रेख्त की प्रयोगवादी परंपरा का था और नयी लड़की पारसी प्रभाव से मुक्त नहीं हो पा रही थी. फिर सविता ने नायिका की भूमिका में ऐसा यथार्थ भ्रम पैदा कर दिया था कि सात के सात शो एक भी सीट खाली नहीं रही थी. दिल्ली और प्रदेश के अखबारों के परिशिष्ट में उन दोनों के प्रणय दृश्य छपे थे. अब सविता शहर छोड़कर जा रही थी. फील्ड ऑफिसर का प्रशिक्षण...छह महीने कलकत्ता, छह महीने जम्मू और आगे कुछ निश्चित नहीं. अपनी जगह किसी और को देखने की उत्कट इच्छा, पर समय नहीं था. रिसर्च अधूरी, सब कुछ अधूरा....एक छोटा-सा अंत भी संभव नहीं हुआ. अतः क्या कोई विराम चिह्न होता है कि दूजा वाक्य शुरू न किया जा सके? घटनाओं के प्रवाह में क्या अंत और क्या शुरुआत?....हम कहीं अटक गये हैं.... पांवों के नीचे जमीन नहीं, पर आसमान फिर भी नजर आता है!

"अच्छा अखिल, तुमने सविता से शादी क्यों नहीं कर ली." अखिल तीसरा पेग डाल रहा था तो उसने पूछा.

"शादी!" अखिल के चेहरे पर चिढ़ और उत्तेजना के अजीब घुले-मिले भाव उभर आये, "सविता का मुझसे लगाव सिर्फ उसका औरतपन था. वह मुझसे आब्सेस्ड थी, क्योंकि मैं अपनी असफलताओं को खुलेआम स्वीकार सकता हूं. उसके लगाव, उसके आब्सेसन का मेरे सीधे-सीधे अंदरूनी पुरुष से कोई रिश्ता नहीं था. ऐसे तो वह बनर्जी से भी इतनी ही खुली, इतनी ही प्रभावित और जुड़ी रह चुकी थी, मेरे संपर्क में आने से पहले. वह लाखों पढ़ी-लिखी लड़कियों जैसी एक आम लड़की थी, जो अपनी बौद्धिकता के माध्यम से आसरा खोजती फिरती हैं." एक ही सांस में कहकर गिलासों में पानी डालना भूल अखिल कुर्सी में अधलेटा हो छत को टकटकाने में लीन हो गया.

"सलामी वैसे ही पड़ी है अखिल."

"हूम्." वह एक टुकड़ा उठाकर धीरे-धीरे कुतरने लगा. तभी दरवाजा भड़भड़ाया. दोनों लपके. सामने प्रकाश और सोमनाथ खड़े थे. उनके पीछे दाढ़ी वाला एक युवक. तीनों की आंखें नशे से लाल हो रही थीं. "आओ." अखिल अचकचाया हुआ था.

"हमारे साथ चलो!" प्रकाश ने गुंडई के तेवर में आदेश दिया.

"कहो?"

"हम तुम्हारे साथ पीना चाहते हैं. बोतल उठा लो और चलो. तुम नहीं चलोगे तो हम तुम्हें किडनैप करके ले जायेंगे." प्रकाश ने धमकी उछाल दी. नितिन घबरा गया. क्रोध भी आ रहा था दोनों को. अखिल ने नितिन को देखा, फिर कहा, "तुम मेरे साथ पीना चाहते हो तो हम यहीं बैठ सकते हैं."

"नहीं, हम बोहेमियन ड्रिंक करेंगे, युनिवर्सिटी के बाहर रेहड़ी मार्केट में. वहां डांस भी करेंगे. तुम्हें साथ चलना होगा."

"चलो." अखिल निरस्त्र था. समूचे आसपास में हल्ला फैल जाने का खतरा था उसे.

बाहर थ्री ह्वीलर में बनर्जी और कमल भी थे. उन्होंने सिर नीचे कर लिये! अलबत्ता बनर्जी उस अपहरण में रुचि लेने लगा.

थ्री ह्वीलर रिहाइशी इलाके से बाहर खुली सड़क पर निकला तो प्रकाश ने अखिल की ओर गर्दन घुमाकर दांत पीसकर कहा, "तुम स्साले स्नॉब, हमें शहर में नहीं रहने देना चाहते. कविता तुम्हारी प्रशंसित हुई, आलोचना में तुमने सबको खदेड़ दिया और अब मंच पर भी कब्जा कर रहे हो. हम तुम्हें रातों-रात गायब न कर दें तो मर्दानगी क्या हुई! स्साला टूटा आशिक. पूछते हैं तुम्हें अभी."

"अरे पूछना क्या, हो जाओ शुरू." सोमनाथ चिल्लाया और प्रकाश का पंजा धाक्क अखिल के गाल पर आ पड़ा.

"यह क्या गुंडागर्दी है." नितिन भड़का.

"अबे चुप्प, हरामजादा! तेज चला ओए." प्रकाश वहशी हुआ जा रहा था. सारा रास्ता वह गलियां बकता रहा. सोमनाथ उसे हल्लाशेरी देता रहा. वे तीनों चुप. अखिल मानो गूंगा हो गया हो. नितिन कचकचाता रहा.

रेहड़ी मार्केट उतरकर उन्होंने अखिल को जकड़ लिया. सोमनाथ ने पायजामे में खोंसी देशी शराब की बोतल निकालकर दांतों से उसका ढक्कन खोला और शराब अखिल के सिर पर उड़ेलने लगा.

"मुंह में एक बूंद न पड़े." प्रकाश ने निर्देश दिया. तभी अखिल फड़फड़ाकर छूट गया, "मैं तुम सबसे निपट सकता हूं...एक-

एक आओ." . . .उसकी सांस फूली थी. नितिन ने दौड़कर अखिल को थाम लिया, "भागो यहां से अखिल, ये लोग होश में नहीं हैं." अखिल एकाएक उससे लिपटकर सुबकने लगा. अवमानना की अति ने गुस्से को तरला दिया था, "मैं समझता था, मैं कहीं कामयाब नहीं हूं. लेकिन देखा तुमने, मैं कितना. . . .कितना कामयाब हो गया हूं. कितना जरूरी हो गया हूं नितिन!" अखिल फफकने लगा था. तब कमल को जाने क्या हुआ, "लिसन ओए, यू बास्टर्ड्ज, अब अगर कामरेड अखिल को हाथ लगाया तो स्सालो, सबको अंदर पूल में फेंक आऊंगा."

प्रकाश उछलकर कमल के गले से लटक गया. कमल ने प्रकाश को गेंद की भांति फ्रेंचकट युवक और सोमनाथ पर दे उछाला. तीनों गुत्थम-गुत्था हुए मिट्टी चाटने लगे. . . "कामरेड नितिन, अखिल को ले जाओ." अखिल ने पहले ही घूंट लगा ली थी. . . "नितिन मेरा हाथ पकड़ लो!" अखिल कुरलाया था. नितिन ने उसका हाथ पकड़ लिया. वे बेतहाशा दौड़ रहे थे. प्रकाश और सोमनाथ उनका पीछा कर रहे थे.

अखिल और नितिन पंद्रह सेक्टर को घूमे, फिर उल्टी दिशा में इंजीनियरिंग कॉलेज की सड़क नापने लगे. वहां ज्वालामुखी होस्टल में अखिल के कुछ परिचित होंगे. कमल को हांक सुनाई दी, "वापिस आ जाओ, प्रकाश. नहीं, मैं थ्री-व्हीलर लेकर आ रहा हूं." लेकिन वे दोनों बुरी तरह हांफने के कारण खुद ही रुक गये थे. एक अजीब कौतूहलभरा शोर उस 'साइलेंस जोन' के सन्नाटे को भेदने लगा था, जैसे वहां आग में सब कुछ स्वाहा हो रहा हो और लोग लाचार उस तबाही को देख रहे हों.

इंजीनियरिंग कॉलेज का फाटक बंद था. अखिल उसे फांदने लगा तो धड़ाम से गुनगुने कोलतार पर गिरा. उसके पैर में मोच आ गयी थी.

"अब कोई खतरा नहीं अखिल. चलो ग्यारह सेक्टर की मार्केट से स्कूटर लेकर घर चलते हैं." नितिन ने उसे सहारा देकर उठाते हुए धीरज बंधाया, "घर में व्हिस्की काफी पड़ी है. पीओगे तो राहत मिलेगी और सो जाओगे."

"सच कह रहे हो न, मुझे नींद आ जायेगी?" अखिल बौराया हुआ नितिन को ताक रहा था.

"हां-हां, मैं जो हूं तुम्हारे साथ. तुम सिर्फ डर गये हो." उसने पैर की मोच नहीं बतायी उसे. . ."अब सच्ची, खतरा नहीं है."

अखिल की कराह निकल गयी, "खतरा तो अब पैदा हुआ है. . .वे सर्वहारा. . . सर्वभाषी. . .मुझे सोने नहीं देंगे."

अखिल को कंधों पर लादे चलता हुआ नितिन सोच रहा था, . . . क्या वे सो सकेंगे? मुद्दत पहले शहर के तमाम कोनों से उकताकर वे शाम के बदरंग होते मिनी बांड स्ट्रीट कहलाते सत्रह सैक्टर में आ रुके थे. वहां 'मेडारिन' के सामने नितिन ने कहा था, "तुम सब अपनी-अपनी आत्माओं से पूछो कि तुम कबसे नहीं सोये?" सब जेबों में हाथ डालने-निकालने के सिवा कुछ न कर सके थे.

'. . .कोई नहीं सोता, क्योंकि हमारे पास मुंहफट शब्दों की उच्छृंखलता के सिवा कुछ नहीं. हम सब इक-दूजे को ढोते और खुद लुढ़कते रहेंगे.' नितिन सोच रहा था, शायद हमेशा! ☐

● टीचर्स कॉलोनी, नवां शहर दोआबा, पंजाब.

लघुकथा

दया

▣ पृथ्वीराज अरोड़ा

दसवीं क्लास का हिंदी का अध्यापक, जो अपने सादे रहन-सहन, उच्च आचरण और दयाभाव के लिए स्कूल-भर में विख्यात था, नयी क्लास को संबोधित कर रहा था, "जीवन में सादे रहन-सहन और उच्च आचरण से दयाभाव का महत्व कहीं ज्यादा है असल में जिसमें दयाभाव नहीं है, वह आदमी कहलाने का हकदार नहीं है. राजकुमार गौतम एक दिन घूमते हुए दूर तक निकल गये. एक जगह एक मछुआ मछलियों को जाल में फांसकर किनारे पर रखे बर्तन में फेंक रहा था. वह कुछ पल मछुए द्वारा पकड़ी गयी मछलियों को, जो बिना पानी के तड़प रही थीं, देखते रहे, फिर मछुए से पूछा, "इन मछलियों का क्या करोगे?"

मछुए ने जवाब दिया, "बाजार में बेचूंगा."

"कितने की बिक जायेंगी?" राजकुमार का अगला प्रश्न था.

"यही कोई चार या पांच रुपये की."

राजकुमार ने अपनी सोने की अंगूठी मछुए को देकर सारी मछलियां ले लीं और उन्हें दोबारा पानी में फेंक दिया. राजकुमार के दयाभाव से हमें सीख लेनी चाहिए."

एक लड़का उठा.

"कुछ कहना चाहते हो?" अध्यापक ने प्रश्न किया.

"हां, श्रीमान!"

"कहो."

"मैं एक मछुए का बेटा हूं. मेरा बाप हर रोज मछलियां पकड़कर बाजार में बेचता है. लगभग हर रोज कुछ मछलियां बच जाती हैं और किसी अन्य सब्जी के स्थान पर मछली ही खानी पड़ती है. जब मछलियों को छीला जाता है तो मेरे मन को कुछ होने लगता है. कल रात मैंने खाना खाने से इंकार कर दिया क्योंकि मैंने मछली के बजाय किसी दूसरी सब्जी की मांग की थी परंतु मेरे मां-बाप ने मेरी प्रार्थना पर कोई ध्यान न दिया और उल्टे डांट दिया. मैं भूखा ही सो गया. आधी रात को मेरी नींद खुली. मुझे बेहद भूख लगी थी. ऐसा लग रहा था कि अगर मैंने खाना न खाया तो प्राण निकल जायेंगे. मेरे लिए उन मछलियों को खाने के सिवा कोई चारा न था." लड़के का कंठ भारी हो गया. उसने अध्यापक की ओर रुआंसी आंखों से देखा.

अध्यापक ने लड़के द्वारा कही गयी सच्चाई पर सोचा. फिर अपनी मोटी-मोटी किताबों को बगल में दबाये लड़के के पास आया. . .और उसके कंधे को थपथपाकर कक्षा से बाहर हो गया! ☐

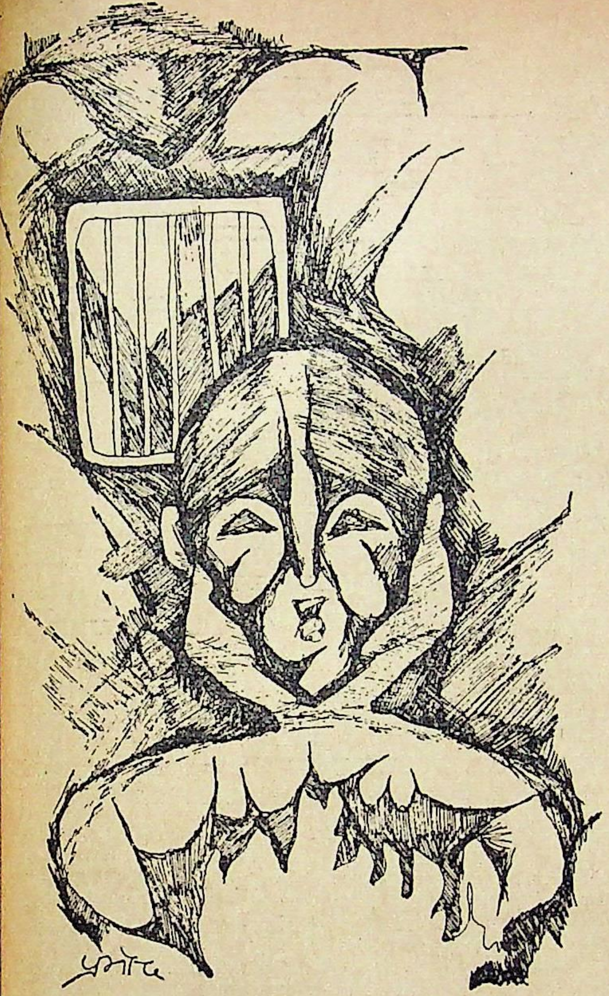

योग योगी योगेश

▣ सागर सरहदी

ऊषा की आवाज पहचानकर उसने कहा कि वह उसके साथ किसी तरह का कोई वास्ता नहीं रखना चाहता और वह उसे मिलने की कोशिश न करे. उसे महसूस हुआ कि उसने समझौता करना छोड़ दिया है. और यह सिलसिले की पहली कड़ी है ! ....प्रस्तुत है दमघोंटू निरर्थकता में सार्थक जुड़ाव और समझौतों के बिखराव की व्यथा—

यह किस बात का डर है कि सुबह से वह आंखें मिलाने से डरता है. जिंदगी का या मौत का? इस तरह के जीने से वह अब थक गया है...हर रोज उसे अपने आपको यकीन दिलाना पड़ता है कि तुम दुनिया का सामना कर लोगे. उठो, आंखें खोलो, धूप निकल चुकी है. छोटी-छोटी बातों से दिन शुरू करो. दांतों को ब्रश करो, गरारे करो, घड़े का ठंडा पानी पियो. चाय का दौर शुरू करो और फिर बिल्कुल बेमतलब बातें सोचो—बेसिर-पैर की...जिंदगी की वजह न ढूंढ़ो...जिंदगी से उम्मीद न रखो.

पांच बजे होंगे, लेकिन मौसम अभी गर्म था. बंबई का मौसम. वह अपने दोस्त के साथ तिनके का सहारा ढूंढ़ रहा था. पैदल चलकर दिमाग की थकान दूर करना चाहता था. एक गाड़ी उसके करीब से गुजरती हुई आहिस्ता हो गयी. एक जानी-पहचानी सूरत बैठी हुई थी. वह गाड़ी से उतकर पास आयी. योगेश थम गया.

कितनी मुद्दत हुई थी, इस सूरत को देखे हुए, इस जिस्म से मिले हुए, वह फैसला न कर सका. वह यह भी फैसला न कर सका कि वह इस औरत से नफरत करता है या मोहब्बत. या कि अब उससे कोई वास्ता-नाता नहीं रहा. अगर नाता नहीं तो शायद कोई रिश्ता भी नहीं.

“मम्मी की तबीयत बहुत खराब है.” उसने गंभीरता से कहा.

योगेश ने पहले अपने थके हुए दिमाग को छुआ, फिर हारे हुए शरीर को टटोलकर उन आंखों से उस औरत को देखा, जिसकी रोशनी दिन-ब-दिन कम होती जा रही थी. फिर सोचने की कोशिश करने लगा...आखिर ऊषा की मम्मी से उसका क्या संबंध है...ऊषा ने मम्मी का जिक्र आखिर क्यों किया. उसकी मम्मी से जिंदगी में एक-दो बार मिला है. मिला भी क्या, बस देखा ही है. फिर ऊषा का मतलब क्या है? कहीं मम्मी की बीमारी का जिक्र करके वह उसे ब्लैकमेल तो नहीं कर रही. उसने अपने दिल की तरफ देखा, उसे छुआ, अपनी हथेली पर रखा. कंबख्त दिल ने कितनी बार उसे दगा दी है. कितनी बार अपने दिल को कुएं की गहराई में फेंका है. गुमनाम-सी टीकरी पर खड़े होकर वादी में ढकेला है. कई बार धड़कन से मुंह मोड़ा है. सिर्फ इस दिल की वजह से वह रोया है, कभी भी दिमाग का कहना नहीं माना दिल ने—अब भी वह दिल उसकी हथेली पर एक हीरे की तरह चमक रहा था. जिद्द कर रहा था. उसने ऊषा की मम्मी से कोई रिश्ता जोड़ना चाहा. कोई इंसानी संबंध, लेकिन एक अंतरिक्ष था, चक्कर था, कहीं किसी लकीर का कोना न मिलता था. अब ऊषा की आंखें डबडबा आयी थीं. वह खबसूरत औरत, सड़क पर खड़ी हुई पूरी बेशर्मी के साथ रो रही थी. योगेश उसकी हिम्मत की प्रशंसा कर रहा था.

“उनकी उमर हो चुकी है. फिर वह एक लंबी बीमारी का शिकार रही हैं. तुमसे जितना बन पड़ता है, करती हो, रोने से क्या फायदा.”

वह चुप रही. कोई जवाब नहीं दिया. योगेश ने अपने दिमाग को टटोला कि यह तुमसे अपनी मम्मी के बारे में कुछ नहीं कहना चाहती. इसकी खामोशी कह रही है कि जो कुछ वह कह रही है, उसका कुछ मतलब नहीं. वह, वही बात दोहरा रही है जिसे तुम किसी गुमनाम टीकरी पर भूल आये थे. जिसे तुम किसी अंधे कुएं में फेंक आये थे.

“अगर मैं तुम्हारे किसी काम आ सकूं तो मुझे फोन करना.”

“तुमने फोन करने से मना जो किया है.”

और योगेश का शक यकीन में बदल गया.

“अच्छा अब मैं तुम्हें फोन करूंगा.” कहकर वह अपने दोस्त के साथ आगे बढ़ गया. उसे ऐसा लगा कि इस वाक्य, ‘मैं तुम्हें फोन करूंगा,’ से वह एक संबंध जोड़ आया है. इकरार कर आया है. एक बंदिश, एक जिम्मेदारी कंधों पर उठा लाया है. वह दस कदम चल चुका था. लेकिन इसकी कोई कीमत भी न थी. अगर वह यह शहर छोड़ दे या यह मुल्क भी, फिर भी वह इस वाक्य का बंदी रहेगा. फिर ऊषा का एक दिन फोन आया कि वह दोबारा उससे संबंध जोड़ना चाहती है.

◆

एक दीवार जैसा आईना था और योगेश उसके सामने खड़ा था. हल्की-हल्की बारिश शुरू हो चुकी थी. बच्चे भागकर घरों में घुस गये थे. कुछ छतों के नीचे खड़े इंतजार कर रहे थे कि बारिश थम जाये. योगेश टिकटिकी बांधे ऊषा को देख रहा था, जो बार-बार अपनी खिड़की पर आ रही थी. यह किस्सा दिनों का था, महीनों का था. . .ऊषा का बदन सावन-भादो का मौसम था. कभी घटा बरसाता, कभी हल्की-हल्की फुहार. . .उसकी चाहत योगेश के पोरों पर आकर बैठ जाती. कभी उसकी आंखों की चमक बन जाती और कभी उसके शरीर की गर्मी. उसे बहुत दिन हुए थे, शायद महीने हो गये थे, साल बीत गये थे, उसने बातचीत न की थी. अपनी सांसों के संदेश न कहे थे वह सुख भूल गया था—पलों का सुख, साथ का सुख और फैसला कर चुका था कि अब कोई दरवाजा नहीं खटखटायेगा.

फिर एक दिन बस यूं ही हुआ. . .न विगत से कोई संबंध न भविष्य से कोई नाता.

पिछली रात उसने एक कहानी लिखी थी. लिखने के बाद कुछ घड़ियां आसान हो गयी थीं. उसने एक दोस्त को ढूंढ़ निकाला और ठर्रा पीने की इच्छा प्रकट की, जैसे कहानी लिखने के बाद यह उसका अधिकार हो. दोस्त ने कहानी सुनी और साथ ही अपनी पत्नी की बीमारी का जिक्र कर दिया कि वह बहुत दिनों से घर देर से जाता रहा है, आज वह जल्दी जाना चाहता है. योगेश जानता था कि अगर वह पीने की इच्छा प्रकट न करता तो उसका दोस्त उसे पीने के लिए साथ ले जाता और खाना खिलाकर घर छोड़ आता. वह अगले स्टेशन पर उतर गया और मीलों पैदल चलकर अपने कमरे की तरफ आ गया.

और अब बारिश शुरू हो चुकी थी. योगेश के शरीर में कड़वाहट थी. . .दिमाग में बेचैनी. विचारों से बगोले उड़ रहे थे. और वह किसी जानवर की तरह अपने पिंजरे में घूम रहा था. अब ऊषा खिड़की में आ गयी. हैरानी से उसे देख रही थी कि वह पागल हो गया है जो इस तरह भीग रहा है. फिर कुछ और खिड़कियां खुलीं. लोग बाल्कनियों से झांकने लगे. बच्चे आश्चर्य से उसे देख रहे थे और योगेश अपनी तमन्ना लिये किसी बाजारू पोस्टर की तरह चौराहे पर इच्छा व्यक्त कर रहा था.

फिर ऊषा खिड़की से हट गयी और दरवाजे के पास आ गयी. चटखनी खोली, फिर दरवाजा खोला और बारिश में भीगती हुई आकर उसके सामने खड़ी हो गयी. कुछ देर उसको देखती रही, खामोशी के तीन पल. योगेश की आंखें पहले शीशा बनीं, फिर जवान, और कहा—“मैंने अकेलापन झेला है. समय ऐसा काटा है जैसे कोई पहाड़ काटता है. बिना मतलब की कहानियां पढ़ी हैं. बेमानी बातें की हैं. अर्थहीन-सी फिल्में देखी हैं और फिर भी समय नहीं कटता तो मीलों पैदल चलता हूं. मगर फिर भी समय नहीं कटता है. अब भी समय नहीं कटता.”

ऊषा ने तीन पल खामोश रहकर टिकटिकी बांधे उसे देखकर कहा, “मैंने सोचा है तुम्हें बहुत सुख दूंगी.” कहकर वह लौट गयी.

यह एक घटना नहीं, दुर्घटना नहीं, एक ऐक्ट है. दो किरदार सीन कर रहे हैं. बहुत पहले से निर्णित हैं. युगों से हवा के कंधों पर रेले आते रहे, संदेश लाते रहे. उस शाम को समंदर में सूरज डूबा था तो उसने यही कहा था. उस साल पहली बारिश में योगेश ने यही सोचा था.

एक बदनाम होटल के बदनाम कमरे के बिस्तर पर दोनों लेटे हुए थे. दोनों के बीच हाथ भर की दूरी थी. दोनों छत की ओर देख रहे थे. हर एक ने अपने लिए एक चिन्ह ढूंढ़ लिया था. सांस लेने की आवाज भी अब नहीं आ रही थी. सिर्फ पंखे की आवाज वास्तविकता की याद दिला रही थी. योगेश कह रहा था. . .योगेश कह रहा था. . . .“ऊषा मैं तुमसे शादी नहीं करूंगा. दूसरे शब्दों में मैं शादी के खिलाफ हूं. मैं अपनी अर्थहीन जिंदगी को कोई अर्थ देना चाहता हूं. मुझे अपने अस्तित्व की कोई चीज अच्छी नहीं लगती. न अपने पैदा होने पर खुश हूं. जीवन से संतुष्ट हूं. हां, मौतें इस बेचैनी, कड़वाहट, अर्थहीनता को खामोश कर सकती हैं. और इससे पहले मैं अपनी जिंदगी को कोई अर्थ देना चाहता हूं.

◆

बहुत देर ऊषा ने कोई उत्तर नहीं दिया. फिर योगेश को विश्वास हो चला कि वह अब नहीं बोलेगी. उसने निर्णय कर लिया कि कुछ पलों के बाद वह दोनों उठेंगे, बिल देकर निकल जायेंगे. योगेश को यह सोचकर कोई दुख न हुआ बल्कि एक तरह का संतोष मिला. एक तरह का इरादा उसकी सोच में उभर रहा था कि वह पहाड़ जैसे अकेले दिन ऊषा के बिना, उसके प्यार के बिना, उसके सहवास के बिना काट लेगा. लेकिन किसी संबंध का कृतज्ञ नहीं रहेगा. किसी जिम्मेदारी का बंदी नहीं रहेगा.

फिर उसे ऊषा के रोने की आवाज आयी. बहुत धीरे, आहिस्ता-आहिस्ता एक ही लय में वह रोती रही, काफी देर तक वह रोती रही. योगेश ने फिर कहना शुरू किया, “तुम अपने लिए एक साथी तलाश करो. . .एक दोस्त, एक मेहरबान दोस्त जो तुमसे प्यार करे. . . . .तुम्हारे बच्चों का बाप बने. बच्चे जरूर पैदा करो. औरत के लिए इससे बड़ी और कोई खुशी इस धरती पर नहीं है. औरत बच्चों के बिना कभी संपूर्ण औरत नहीं बन सकती.”

और इसके साथ ही योगेश ने अनुभूत किया कि उसने दोपहर को इस गर्म मौसम में, एक बदनाम होटल के बदनाम कमरे में ऊषा के अंदर एक अंतरिक्ष पैदा कर दिया है. उसे शहर की एक बदनाम गली समझकर गुजरना चाहता है, लेकिन साथ ही अपना स्वार्थ पूरा करके दूसरी ओर भागना भी चाहता है.

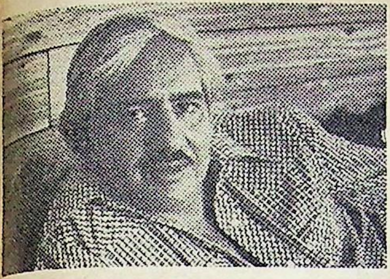

सागर सरहदी मानते हैं कि राजनीति और जिंदगी का गहरा ताल्लुक है. लंबे अर्से तक 'इप्टा' से जुड़कर अब उन्होंने अपनी नाट्य-संस्था 'दि कर्टन' तैयार कर ली है और उसी के लिए काम कर रहे हैं. आर्थिक और साहित्यिक मुद्दों को मद्देनजर रखते हुए वह कई बार फिल्मों से जुड़े और अलग हुए. फिलहाल साहित्य-सृजन और अपनी फिल्म 'बाजार' के निर्माण में व्यस्त

अब ऊषा चुप हो चुकी थी. उसने करवट बदली और योगेश की ओर मुड़ गयी. उसके चेहरे पर उसके आंसुओं की गर्मी बरस रही थी. उसने मुड़कर देखा. वह उसके और करीब आ गयी. उसके होंठों को ऐसे चूमा जैसे कभी किसी ने प्यार न किया था.

फिर वह उठ खड़ी हुई और बाथरूम में चली गयी. इंतजार में योगेश का शरीर तन-सा गया था. प्रश्न बनकर रह गया था...उत्तर की तलाश में था. थोड़ी देर में दरवाजा खुला और ऊषा एक सफेद तौलिया लपेटे उसके पास आ गयी. बिना किसी शर्म, बिना किसी संकोच, बिना किसी झिझक, बिना किसी तकाजे, बिना किसी मांग के...उसने तौलिया गिरा दिया. ऊषा ने वही वाक्य दोहराया..."मैं तुम्हें बहुत सुख दूंगी."

वह नाता जो इसके लिए एक स्वार्थ से शुरू हुआ था, अब निःस्वार्थ बन गया था. निःसंपर्कता, संपर्क में बदल गयी थी. रोटी-रोजी के संघर्ष में वह जीने को कोई अर्थ नहीं दे सका. बल्कि हर पल, हर घड़ी समझौते करने लगा. उसके किरदार की बस एक विशेषता थी––क्रोध, एंगर––जो वह अपनी कहानियों में हथियार की तरह इस्तेमाल करता था. अन्याय के विरुद्ध, अब उसके क्रोध की धार कम होती गयी. वह जिंदगी से भागना चाहता था. थक-हारकर हारा हुआ वह ऊषा के पास पहुंचता और ऊषा एक सहारा साबित होती. एक आशियाना...बिना किसी संकोच, बिना किसी प्रतिज्ञा के उसके सुपुर्द हो जाती और वह फिर सुबह से आंख मिलाने के योग्य हो जाता. दिन का सामना करने के योग्य हो जाता और फिर धीरे-धीरे वह ऊषा का कर्जदार होता गया. अनजाने में ही उसका पाबंद होता गया और प्रतिज्ञा के किसी कोने में अनजाने ही उसने निश्चय कर लिया कि आदर्श निभाना बहुत कठिन है. इस जीवन में जी लेने में ही बेहतरी है. वह योगी नहीं है योगेश है. बचपन के सोचे हुए सपने भला किससे पूरे होते हैं!...जीवन में सिर छुपाने के लिए छत और दो समय की रोटी के बाद अगर कोई एक अच्छा-सा सहारा मिल जाये तो उसे मंजिल समझो. ऊषा से जो संबंध है उसे कोई नाम दे दो, या न भी दो. हार मानकर, समझौता करके उसे स्वीकार कर लो. इस भावना के कारण वह ऊषा का आभारी रहा, साथ निभाता रहा. उसका हर तरह खयाल रखता. कई कठिन पलों में एक अच्छा मित्र साबित हुआ. जिसकी वजह से ऊषा का अपने-आप पर विश्वास बढ़ने लगा. वह अपने आसपास देखने लगी. वातावरण पहचानने लगी. नाम देने लगी. उसमें एक प्रकार का ज्ञान, एक प्रकार का विश्वास पैदा हो गया. अब वह रोने-धोने वाली ऊषा न थी जो खुद अपने साये से भी कांपती थी, बल्कि वह ऊषा थी जो अपने दरोदिवार खुद बनाती, फैसले करती, आगे बढ़ती.

डेढ़ महीने की अनुपस्थिति के बाद जब योगेश शहर लौटा तो आदत के अनुसार ऊषा से मिलने उसके घर चला गया. रात के ग्यारह-साढ़े ग्यारह बज रहे थे. उसने थोड़ी-सी पी रखी थी. जब वह ऊषा के यहां पहुंचा तो उसने एक कार खड़ी देखी. खिड़की में झांका तो अंधेरा था. वह कोई फैसला न कर सका. लौट जाये? लेकिन ऊषा की जरूरत थी उसे. डेढ़ महीने बाद वह इस शहर में लौटा था. अब उसकी जिंदगी का एक केंद्र था, एक खूंटा था, जिससे वह बंधा था. उसने फैसला कर लिया और दरवाजा खटखटाना शुरू कर दिया. बहुत देर कोई जवाब नहीं मिला. साधारण रूप से ऊषा की नौकरानी उसके लिए दरवाजा खोल देती थी, लेकिन वह भी दरवाजे तक न आयी. फिर वह संभला, चौंका, तब भी कोई न उठा. जैसे ऊषा इंतजार में हो कि थोड़ी देर दरवाजा खटखटाने के बाद वह लौट जायेगा. लेकिन योगेश कहां लौटकर जाता...अपने फ्लैट में जहां कोई उसका इंतजार नहीं कर रहा था? उसने फिर दस्तक दी. जोर से दरवाजा पीटा. तब कुछ हलचल हुई. दरवाजा जरा-सा खुला, बत्ती नहीं जली. अंधेरे में ऊषा मुंह बाहर करके उससे बोली, "उसका भाई उसके पास रहने आया है." और बिना जवाब सुने दरवाजा बंद करके चली गयी.

सुबह उसने छोटी-मोटी बातों से शुरू की. उसने चाय का एक कप पिया और अपने-आपसे कहा कि दिन का सामना करो. फिर एक ही सांस में उसने समझ लिया कि ऊषा की जिंदगी में कोई दूसरा आदमी आ चुका है. एक पल, एक क्षण वह बहुत खुश हुआ कि संबंध का बोझ उतर गया है. और यह कार्य उसने नहीं किया, बल्कि पहल ऊषा से हुई है. और वह इस संबंध से आजाद हो गया है. और शायद ऊषा की बेवफाई का कारण भी खुद योगेश था. उस बदनाम गली के बदनाम कमरे में, ऊषा को बदनाम गली का नाम देकर उसने शायद ऊषा के जीवन में एक अंतरिक्ष पैदा कर दिया था और ऊषा अब वह अंतरिक्ष भर रही थी, चाहे वह खाक और मिट्टी से ही क्यों न हो. इसलिए उससे वफा की आशा रखना बेमतलब था.

फिर उसने दूसरा कप चाय का पिया, अपनी किताबों से गर्द झाड़ी, उनके टाइटल पढ़े. डेढ़ महीने में आयी डाक देखी, कुछ निमंत्रण पत्र, कुछ पत्रिकाएं और कुछ बिल. बेकार वह फाड़ता

गया और जरूरी फाइल करता गया. इस तरह अर्थहीन और बेकार काम करते हुए जब वह एक बिल देख रहा था तो अक्षर उसकी नजरों से गायब हो गये. उसने दोबारा देखा, ध्यान से देखने का प्रयास किया, लेकिन सब कुछ धुंधला गया था. अपनी कम होती हुई नजर के बारे में सोचने लगा. फिर धुंध और बढ़ गयी. काफी देर तक उसे पता न चला कि वह रो रहा है.

जब उसे एहसास हुआ कि वह रो रहा है तो बड़ा ढांढ़स हुआ. रोना एक इंसानी कार्य है और वह रोने की हिम्मत भी कर सकता है. यह एक स्वस्थ भावना है. दूसरे शब्दों में अभी वह मरा नहीं. यानी अभी सब कुछ समाप्त नहीं हुआ. उसने बिल और खत वहीं रखे और सोने के कमरे में चला गया. दरवाजे और खिड़कियां पहले बंद कीं, फिर पर्दे गिरा दिये. वह इस भावना को जीवित रखना चाहता था कि जीवन में पहली बार उसने किसी को चाहा है और वह नाकाम हुआ है. ऊषा ने उसे धोखा दिया है, झूठ बोला है, बेवफाई की है. वह बंधन जाने कब से चल रहा है. अगर यह बात वह उसे बता देती तो शायद यह कड़वापन दोनों के बीच न आता. उसने अपने-आपको रोका नहीं और दहाड़े मारकर रोने लगा. रोने के इस एक्ट के बाद उसने गंभीरता से अपने चेहरे पर, अपनी आंखों पर छींटें मारकर एक धुला हुआ तौलिया लेकर मुंह पोंछा और बाहर निकल गया.

▣

ग्यारह-साढ़े ग्यारह बजे वह टहलता हुआ ऊषा की कॉलोनी में पहुंचा. चौकीदार ने उसे सलाम किया. चौकीदार को उनके संबंध मालूम थे. इसलिए योगेश अक्सर उसे ईनाम देता. वह जानता था कि ऊषा इस समय घर पर नहीं होगी. इसलिए वह इस समय वहां गया था. सुबह जो बात उसके दिमाग ने तय की थी, उसको वह साकार देखना चाहता था.

"ऊषा है घर में?"

"नहीं साहब."

"ओह. . .!" जैसे उसे बहुत आश्चर्य हुआ हो. अपने इस रोल में वह बहुत खुश था. जिंदगी में पहली बार जासूस बना था. लेकिन जिंदगी में पहली बार चोट भी तो खायी थी उसने.

"साहब, तुम बाहर गया था?"

"हां."

"अभी बहुत दिन से नहीं देखा."

"यह रात को गाड़ी किसकी थी?"

"एक आदमी आता है साहब."

"रोज आता है."

"हां साहब."

"कितने दिनों से?"

"बहुत दिनों से. पहले दिन में आता था. अभी रात को. . . ."

"वापस कभी जाता है?"

"बारह-साढ़े बारह. . .हमको क्या है साहब. हम किसी को क्या बोलेगा!"

"हां." अब वह सुन नहीं रहा था.

"कभी-कभी साहब, रात को बारह बजे बोलता है सोडा लेकर आओ. अब रात को सोडा किधर मिलेगा. लेकिन मेम साहब को ह्विस्की के लिए सोडा ही मंगता. काम नहीं करेगा तो गाली देता है."

उसका चेहरा धुआं हो चुका था. दिल भारी पत्थर हो गया था. वह देखकर भी नहीं देख रहा था. यह लाचारी, यह कमजोरी उसने पहले कभी महसूस नहीं की. वह बराबर मुस्कराता रहा, सुनता रहा. वह बात जो दिमाग अनजाने में स्वीकार कर चुका था, जान जाने पर स्वीकार करने से इंकार कर रहा था. जब वह चला आया तो उसने निश्चय कर लिया था कि यह संबंध उसे खत्म करना है. वह ऊषा को मिलने चला गया. ऊषा देखते ही उसकी ओर बढ़ी. उसी समय रात वाली गाड़ी आयी, रुकी, दरवाजा खुला. एक आदमी अपना अधिकार समझकर मुस्कराता हुआ घर में दाखिल हुआ. योगेश को छोड़कर ऊषा ने मुस्कराते हुए उस आदमी का स्वागत किया. उसने एक पल के लिए सोचा कि कभी यह मुस्कराहट सिर्फ उसके लिए थी. यह बोल सिर्फ उसके

लघुकथाएं

शिकायत

एक शराबी एक गांव में से गुजर रहा था. अचानक एक कुत्ता जोर-जोर से भौंकता हुआ शराबी की ओर लपका. शराबी ने घबराकर तुरंत जमीन पर से एक पत्थर उठाना चाहा, लेकिन वह पत्थर जमीन में आधा धंसा हुआ था.

शराबी झल्लाकर बोला, "बड़ा अजीब गांव है यह. कुत्ते खुले छोड़े जाते हैं और पत्थरों को बांधकर रखा जाता है!"

तलाश

लाल चौक, श्रीनगर (कश्मीर) में एक दिन एक आवारा कुत्ता एक पर्यटक की तेज-रफ्तार कार से टकरा गया. भीड़ जमा हो गयी. एक लोभी व्यक्ति कुत्ते का तथाकथित स्वामी बनकर, मृतक कुत्ते का हर्जाना मांगने लगा.

आखिर दो सौ रुपये पर बात पक्की हुई.

अचानक दूसरे पर्यटक ने लोगों से पूछा, "मृतक कुत्ता कहां है भाइयो?"

एक बच्चा चिल्लाया, "कुत्ता अभी-अभी भागा है. वह मरा नहीं था, बेहोश था!" □

▣ **शिवरत्न**

एहसान

"सफाई क्या देता है? हरामखोर कहीं का! हमारा इत्ता पैसा से कुछ होता-जाता नहीं है. अरे, ये तो समझ लो कि हमारे बाप-दादे तुम जैसे धन-चटों की भलाई के लिए ही यह सब करते हैं. लेकिन पता नहीं, भगवान भी तुम लोगों को कैसी सड़ी मिट्टी का बनाके भेजता है, जो अपने गदहेपन से बाज आ ही नहीं सकते! तुम्हीं जैसे लोगों से इस धरती पर पाप पल रहा है. हम एहसान करते हैं, इसका मतलब, तुम हमको उल्लू बनाओ? आं. ..! समझ क्या रखा है? नौकर! देखो, कह देते हैं. . . सैकड़े पांच के हिसाब से 240 रुपया पूरे साल का सूद और दिया हुआ मूल महीने की आखिरी तारीख तक नहीं दिया तो अबकी बार घर से निकाल ही फेंकेंगे, छोड़ेंगे नहीं. . .हां!" इलाकेदार चमरू राय का इंटर पास पोता बैजूराय रोबीले ढंग से बूढ़े रमेसरा से कहे जा रहा था. रमेसरा बूढ़ा मूक माई-बाप की मुद्रा में हाथ जोड़े अपनी झोंपड़ी से बाहर खड़ा था और उसका आठ साल का इकलौता पोता सहमा हुआ झोंपड़ी के दरवाजे पर खड़ा टुकुर-टुकुर देख रहा था. इस इकलौते पोते को, रमेसरा का इकलौता बेटा बुढ़ापे की छड़ी के तौर पर, छोड़कर पिछले वर्ष खलिहान में टूटकर गिरे बिजली के तार से सटकर मर गया था. बहू भी पति शोक से विचलित हो दूसरे दिन रेल से कट मरी थी.

बाबू साहब का हल्ला सुन अच्छी-खासी भीड़ जमा हो गयी थी, जो बाबू साहब की बातों पर खीसें निपोर रही थी. मैं भी बाबू साहब के ऐसे एहसान का गीत गाने लगा था. क्योंकि न तो मुझे भीड़ ने चुपचाप खड़ा रहने दिया और न ही हिम्मत ने बूढ़े रमेसरा कहार की तरफदारी का साथ दिया. ☐

▣ विजय कुमार बिज्जू

थे. उस आदमी को ऊषा ने एक कुर्सी दी. योगेश रुका रहा. वह उसके पास आयी. जरा-सी आगे बढ़ी . वह भी कुछ कदम हो गया. योगेश ने प्रश्न किया, "रात को जो तुमने कहा था, झूठ था?"

ऊषा ने उत्तर दिया, "हां."

फिर योगेश ने उस सुख के बारे में सोचा जो ऊषा ने उसे था. उसकी मुस्कराहट, उसके नंगे शरीर की गर्मी, उन होंठों नर्मी, और वह आवाजें जो उसने अंधेरे में सुनी थीं.

और योगेश ने कहा, "अब तुम्हारा और मेरा कोई संबंध है."

"अच्छा . . .!" ऊषा ने जवाब दिया.

और वह संबंध तोड़कर चला आया.

और उसके अगले दिन उसने अपने दिल में एक कबर बनायी. गंभीरता से लोबान, नारियल फूल जमा किये. कोशिश की कि की गंध से घुटन महसूस करे और मर जाये. कई रातों को चौंक कर वह उठा, कई बार रोने की कोशिश की, लेकिन रो न सका. आवारागर्दी करता रहा. मीलों पैदल चलता रहा, अपने-आप से बातें करता रहा.

जिंदगी को एक खूंटे के साथ बांधकर आदमी कितना लाचार, कितना मजबूर हो जाता है. मौत की इच्छा उसे न जिंदा रखती है न मरने देती है. आज वह युग नहीं है कि आदमी विद्रोह करके, कपड़े फाड़कर चौराहे पर खड़ा हो जाये और अपना नाम मजनू रख दे.

फिर उसने अपने आपको सजा देनी शुरू की. पीड़ा दी. वह सुबह छुपकर गली के मोड़ पर खड़ा रहता, जब ऊषा के निकलने का समय होता तो वह उसकी जाती हुई कार को देखता. ऊषा को गाड़ी चलाते हुए देखता. कई बार शाम के समय उसके रास्ते पर खड़ा रहता, जब उसके लौटने का समय होता. रात को उस गली की सब गाड़ियां देखता और उस गाड़ी का नंबर तलाश करता, जिस गाड़ी में बैठकर वह आदमी ऊषा से मिलने आता था. फिर उस आदमी का चेहरा देखता और उसका मुकाबला अपनी सूरत से करता.

कई बार वह खुशफहमी गढ़ता कि वह आदमी अपनी गरज पूरी करके, बहुत जल्द उसे छोड़कर चला जायेगा और ऊषा रोती हुई, गिड़गिड़ाती हुई उसके पास आयेगी कि वह बेहतर इंसान है. बेगरज है. कभी-कभी रात को वह बेबस हो जाता और पैदल चलता हुआ उस बस्ती में पहुंच जाता. रात के पिछले पहर वह आदमी कार में आता, कुछ देर खिड़की में रोशनी रहती. फिर अंधेरा छा जाता. और योगेश उस अंधेरे में घूमता रहता. चक्कर काटता रहता. रात ठंडी हो जाती. सड़कें वीरान हो जातीं. कभी वह गली के एक छोर पर, कभी दूसरे छोर पर टहलते हुए उस आदमी का इंतजार करता. कब वह लौटा है. लौटता भी है या नहीं.

▣

फिर एक दिन उसने दिल से कहा—उठो, दिन का सामना करो. छोटी-छोटी बातों से दिन शुरू करो. दांतों को ब्रश करो. गरारे करो. . .मटके का ठंडा पानी पियो, फिर चाय का दौर शुरू करो. बिल्कुल अर्थहीन बातें सोचो. . .बिना सिर-पैर की जिंदगी से आशा मत रखो.

फिर वह अपने सोने के कमरे में गया जहां वह रोया था. उसने खिड़कियों पर पर्दे गिरा दिये, दरवाजा बंद कर दिया. अंधेरे में अपने दिल के अंदर गुस्से की चिंगारियां देखने लगा. वह आग जो अन्याय के विरुद्ध दहका करती थी. उसे यह देखकर संतोष हुआ कि वह अभी बुझी नहीं. वह दरवाजा खोलकर बाहर निकल आया. फिर उसने चारों तरफ से अपने घर को देखा—नंगी दीवारें, खाली कमरे, खामोश दरवाजे, खिड़कियां, चुपचाप दहलीज, ठंडी बर्फीली जमीन. उसने फोन का नंबर घुमाया. ऊषा की आवाज पहचानकर कहा कि वह उसके साथ किसी तरह का कोई वास्ता नहीं रखना चाहता और वह उसे मिलने की कोशिश न करे. उसे महसूस हुआ कि उसने समझौता करना छोड़ दिया है. और यह सिलसिले की पहली कड़ी है. ☐

● 30/1363, सरदार नगर, बंबई-400022

गांव : एक रिपोर्ताज कथा

बिरादरी की इज्जत

■ शिवसागर मिश्र

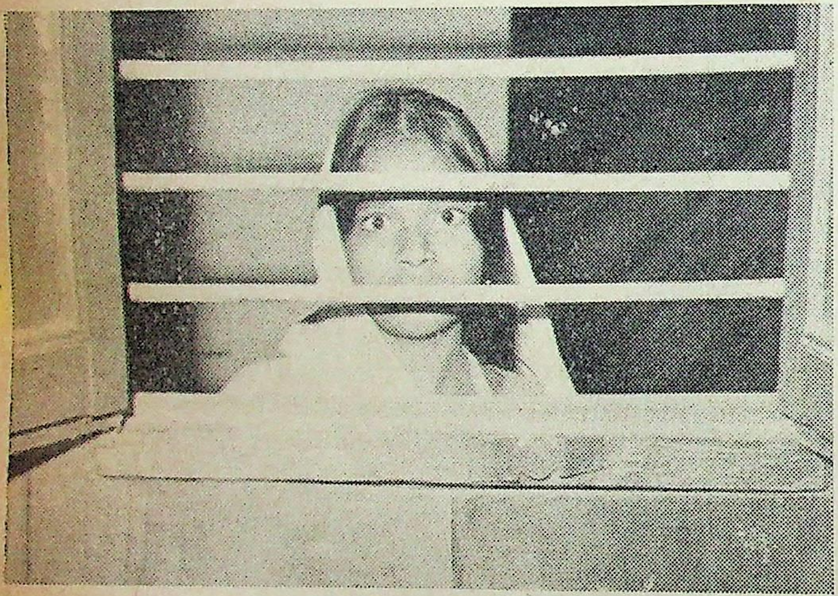

छाया : विजय कुमार

"चालीस-पैंतालीस की आयु का आदमी सात-आठ साल की लड़की खरीद लाता है. . . छुआछूत और जात-पात का कट्टरता से पालन करने वाले समाज को इस अनमेल विवाह में कोई खोट नहीं दिखाई देता. हमारे गांवों में दिन-ब-दिन गहराती सामाजिक रूढ़ियां आज अपनी विकृति के जिस चरम तक जा पहुंची हैं उसी की झांकी यहां प्रस्तुत है. ग्रामीण विसंगति की एक झांकी सारिका के 'प्रेमचंद-विशेषांक' में भी शिवसागर मिश्र आपको दिखा चुके हैं."

पता नहीं, गांव की छंदबद्ध कथा कब शुरू हुई. शायद तब, जब मानव ने पहले पहल धान-गेहूं के पौधे देखे होंगे. वह कौतूहल और प्रसन्नता से भर उठा होगा. उसके मन की मुख्य चिंता दूर हो गयी होगी. और तब उसे जमीन से मोह हो गया होगा. उसने अनुभव कर लिया होगा कि शिकार में खतरे ही खतरे हैं, जबकि खेती में बड़ी निश्चितता है. खेत हैं, तो फसल उगेगी ही और बाल-बच्चों का पेट भरने के लिए जंगलों, पहाड़ों की खाक नहीं छाननी पड़ेगी.

कैसी विडंबना है. परिवार और प्यार के जिस मकसद को लेकर मानव ने गांव बसाया था, वह मकसद कम से कम भारत का किसान आज तक हासिल नहीं कर पाया है. हजारों वर्षों से वह खेत बोता-जोतता आ रहा है, लेकिन वह खेत हमेशा उसका नहीं रहा है. आज उसके पास न हल है, न बैल हैं और न गाय.

गाय की कहानी कृषि प्रधान देश भारत की ही कहानी है. यह इसलिए नहीं कि गाय की पूजा होती है या इसे भगवान कृष्ण चराया करते थे. यह इसलिए कि भारत जैसे पिछड़े हुए देश में गाय-बैल के ऊपर है खेती-बाड़ी निर्भर करती है. खेती-बाड़ी है तो परिवार में सुख है, शांति है. इसी गाय को अपने दरवाजे पर बांधने की लालसा लिये पराधीन भारत के बेलारी गांव का होरी इस दुनिया से उठ गया था. उसके मरते समय उसकी पत्नी धनिया ने बचे-खुचे चंद पैसे होरी के हाथ से दान कराकर गोदान की रस्म अदायगी कर दी थी. जिंदगी भर खून-पसीना एक करके परती जमीन तोड़ने वाले होरी को मरते समय कफन तक नसीब नहीं हुआ. उसी होरी का बेटा गोबर गांव के बेगार, गरीबी, कारिंदों की धांधली और सामाजिक कुरीतियों से तंग आकर अपने मां-बाप को छोड़कर शहर चला गया था. यह कथा आज लगभग 50 वर्ष पहले प्रेमचंद ने सुनायी थी. प्रेमचंद के होरी की मरजाद के खात्मे साथ एक शाश्वत मूल्य का खात्मा नज आया था. वह शुरुआत थी जो आज अप घृणिततम रूप में हमारे सामने मौजूद

■

एक गांव है बहेरा. गंगा के किनारे, छ किलोमीटर दूर उत्तर में. इस गां के पूरब में रेलवे का बहुत बड़ा, ती किलोमीटर लंबा यार्ड है. गांव के पश्चि में पहले छोटी लाइन थी और उसका स्टेशन था धाम नगर, जो अब बंद पड़ है. उन दिनों गंगा पर पुल नहीं बना था स्टीमर से यात्री गंगा पार करते अब पुल बन गया है. उस पार से आ वाली बड़ी लाइन की गाड़ियां घड़घड़ाती हुई इस पार चली आती हैं. यार्ड में माल भरे डिब्बे हफ्तों खड़े रहते हैं. बड़ी लाइ के डिब्बों से छोटी लाइन के डिब्बों में औ छोटी लाइन के डिब्बों से बड़ी लाइन डिब्बों में माल उतारा-लादा जाता जहां यार्ड है वहां पहले खेत ही खेत अब यार्ड के दोनों ओर कई दूकानें खुल ग हैं. इस यार्ड से कुछ किलोमीटर दूर राष्ट्रीय महत्व के बड़े-बड़े कारखाने बने

हेरा गांव की आबादी बहुत है. एक-से सटे-जुड़े बसे हुए घर हैं. गांव के र सड़कें नहीं, संकरी गलियां हैं, जो र, पाखाना-पेशाब से पटी रहती हैं. बंद करके उछल-उछल कर चलना ता है. धानुकों का टोला गांव के भीतर है, अलग-थलक नहीं. ऊंची जाति के दों का मनोरंजन होता रहता है, -शाम कुएं पर, जहां हृदय के तंत्र को न करने वाली ध्वनियां गुंजित होती ती हैं. चूड़ियों की खनखनाहट के साथ (छोटी बाल्टी) का कुएं के पानी की पर छपाक से गिरना, पनिहारिनों समवेत खिलखिलाहट और छप-छपाक छप! वहीं मंडराते हुए भंवरों से तों में तय हो जाता है कि कहां मिलना त के समय, संकरी गलियों में या. . . ड़ी में?

ह गांव भी गरीबी के मारे दुर्गंध ता है. पहले तीन परिवार ही बड़े दो जमीन की बदौलत और तीसरा और यश के आधार पर. यशस्वी व्यक्ति हर चले गये. उनका परिवार भी शहर ही बस गया. बचे हुए अधिकांश लोग गरीब हैं कि पेट भरने से ही नहीं ता कि अच्छे साफ-सुथरे वस्त्र पहन या तरीके का घर बना सकें. हैं ऊंची के, किंतु देखने में दीन-हीन अछूतों भी बदतर. बेशक, एक-दो परिवारों स इधर नल-कूप हो गया है. साल में फसलें उगा लेते हैं. इसलिए, अकड़-चलते हैं. उनके पास नगदी जो रहने है. इसके बावजूद रहन-सहन में कोई नहीं आया, सिवाय इसके कि पुराने न की मरम्मत करवा ली है और घर सौ गज दूर बांस-बिट्टी में आधुनिक का पाखाना बनवा लिया है.

अजीब गांव था यह! अजीब गांव है आज भी. ऊंची जाति के लोग हैं. अपने जातिगत बड़प्पन का एहसास छुआछूत, रस्म-रिवाज, ऊंच-नीच पूजा-पाठ के इतने कायल हैं कि नीची का तो क्या, पिछड़ी जाति का बुजुर्ग रवाजे पर रखी चौकी पर उनके बराबर बैठ सकता. इह लोक दरिद्रावस्था ना तो क्या, परलोक सुधारने के लिए के तीन-तीन भोज खाते हैं, भले ही खिलाने वाला गरीब भी क्यों न मर जाये. गांव में तीन ठाकुरबाड़ी हैं. जो स्त्री विधवा हो जाती है, उसे परलोक की चिंता सताने लगती है और वह अपनी जमीन ठाकुरजी को लिख देती है. एक घर में तो सास के साथ-साथ चौदह साल की जवान पतोहू भी विधवा थी. सास ने यह नहीं सोचा कि विधवा पतोहू का लंबा जीवन किस प्रकार कटेगा और उसने पूरी जमीन ठाकुरजी को लिखकर ही मोक्ष की राह पकड़ी. गांव के लोग उस बुढ़िया की भगवद् भक्ति देखकर अभिभूत हो गये, 'कितना बड़ा त्याग किया उस बुढ़िया ने. कैसा अद्भुत समर्पण!' उसकी विधवा पतोहू आज भी कूट-पीसकर पेट पाल रही है. सास की क्रूरता का जिक्र तक नहीं करती. परलोक जो सुधारना है. लोग उसकी इज्जत करते हैं, क्योंकि वैधव्य के तैंतीस साल वह बेदाग निकाल ले गयी है.

▣

इस गांव में विधवाओं की भरमार है. निदान कुछ घरों में रासलीला भी दिन-दहाड़े चलती रहती है. क्या करे कोई. गरीबी के चलते बहुतों का विधिवत विवाह नहीं हो पाता. चालीस-पैंतालिस की आयु तक खटता गरीब पाई-पाई जोड़कर जब पांच-छह हजार रुपये बना लेता तब कार्तिक महीने में गंगा किनारे लगने वाले मेले से वह सात-आठ साल की लड़की खरीद लाता है.

कार्तिक के महीने में तिरहुत निवासी अपने वृद्ध माता-पिता को मोक्ष दिलाने (या हत्या करने) के लिए गंगा तट पर ले आते हैं. महीने भर ऐसे धर्म-पिपासु लोगों का गंगा-सेवन चलता रहता है. आस्थावान परिवार के लोग अपने सत्तर-अस्सी वर्षीय वृद्ध अभिभावकों को सुबह-सुबह गंगा में डुबकी लगवाते हैं. पुण्यवान लोग तो जल्दी ही ठंड से सिकुड़कर मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं, लेकिन जो चरमघिट्ट होते हैं, वे महीना-महीना भर जीवन मृत्यु के बीच ऊब-चूभ करते रहते हैं. इनके परिवार के धर्म-भीरु लोग भी थकते नहीं. वे उन्हें पकड़कर उत्साहपूर्वक रोज बार-बार शीतल जल में डुबकी लगवाते हैं. गंगाघाट से ऐसे वृद्ध को जीवित वापस ले जाना, उन्हें नरक में ले जाना है. भगवान यहां बड़े दयालु और सक्रिय हैं. प्रायः सबकी सुन लेते हैं.

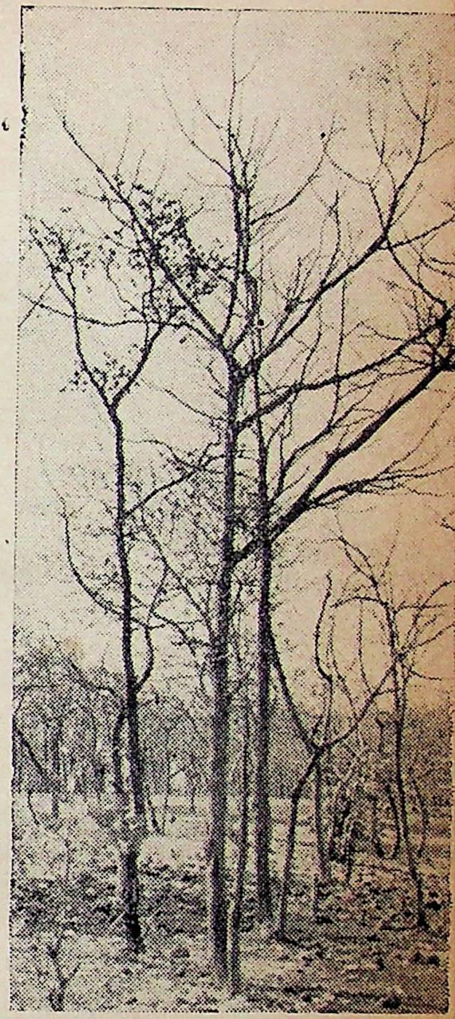
छाया : सुधीर सक्सेना

आस-पास के गांव वाले इन्हीं तिरहुतियों से लड़की खरीद लेते हैं. गांव में आज भी कन्यादान से बड़ा कोई दूसरा पुण्य नहीं है, ऊंची जातियों में! बहेरा के कुमार प्रौढ़ों को इस मेले की आकुल प्रतीक्षा रहती है. छुआछूत और जात-पांत का कट्टरता के साथ पालन करने वाले बहेरा गांव के समाज को इस अनमेल विवाह में कोई खोट नहीं दिखाई देता. इसमें दोष क्या है? विवाह महत्वपूर्ण संस्कार है. मोक्ष के लिए सभी संस्कारों से गुजरना अनिवार्य है.

ऐसी कुमारी जब जवान होती है, तब उसका तथाकथित पति पचास-पचपन का वृद्ध बन जाता है. मकई की सूखी रोटी पर शरीर कब तक चले. चंद वर्षों के बाद ही वह खाट पकड़ लेता है. उसकी जवान पत्नी शोहदों के आकर्षण और शेष लोगों

के लिए गरम रसदार चर्चा का विषय बन जाती है.

उस वहेड़ा गाव में आज भी खास परिवर्तन नहीं आया है. हां, उस यशस्वी व्यक्ति के नाम पर गांव के कुछ कर्मठ युवकों ने एक हाई स्कूल अवश्य बना दिया है, किंतु, यह तो शायद पचास साल पहले भी बन जाता. परिवर्तन के नाम पर हुआ यह है कि जिन्हें इज्जत-प्रतिष्ठा जाने का भय नहीं है, जो पहले खेत में मजदूरी करते थे या कुली का धंधा करते थे, उनमें से काफी लोग रेल-यार्ड में जाकर माल के डिब्बे काटने लगे हैं, उनके मकान, छोटे ही सही, लेकिन ईंट-सीमेंट के बन गये हैं. ऊंची जाति के कुछ महत्वाकांक्षी लोग बन गये हैं इस काम में उनके नेता, सलाहाकार!

◆

ऐसे ही नेताओं में एक है. . .कुछ नाम रख लीजिए. . .मान लीजिए कि वह सियाबर है । सियाबर ने शुरू में दूकान खोल ली, चावल-दाल की. शायद बहुत मुनाफा कमा लिया उसने, क्योंकि चार-पांच महीने बाद ही नल-कूल भी लगवा लिया. नकद बारह हजार रुपये लगे. कहां से आ गये इतने रुपये?

“अरे, किसी से कहना नहीं. रेल के डिब्बे कटवाता है. रुपये की कमी नहीं है इसके पास. चावल-दाल की दूकान तो दिखाने के लिए है.”

“खबरदार, मुझसे कहा सो कहा. यह बात फिर कहीं मत बोलना. सियाबर अब वह सियाबर नहीं है. ऊपर से हमेशा मुस्कराता रहता है, लेकिन, भीतर से वह बहुत. . .!”

कानाफूसी शुरू है. इस इलाके में इस तरह के कई कैक्टस उग आये हैं. आंखों में चुभते हैं. फिर भी आधुनिक सौंदर्यबोध चुभन के आभाव में जाग्रत नहीं होता. अपराधकर्मियों का बोलबाला है. कारखानों के आगे से जाने वाले राष्ट्रीय मार्ग पर सरेआम मोटरगाड़ी रोककर माल-असबाब लूट लिया जाता है. नेपाल से स्टेनलेस स्टील; ब्लेड, कैमरा, गांजा आदि स्मगलिंग करने वाले बड़े-बड़े अपराधी पैदा हो गये हैं, बम, बंदूक, स्टेनगन से लैस. किसकी मां बाघ बियायी है कि कुछ बोले. सब चुप हैं. गांव में इज्जत के नाम पर शरीफों के लिए वैसी ही गरीबी है, फटेहाली है, अनमेल विवाह है और विधवाओं की दुर्दशा है.

सियाबर समृद्ध से समृद्धतर होता जा रहा है. अब वह गांव के बिल्कुल बाहर एक किनारे ईंट-सीमेंट का छोटा-सा दोमंजिला मकान बनाकर वहीं रहने लगा है. पत्नी को घर-खर्च के लिए रुपये भेज देता है, लेकिन घर नहीं जाता. नये मकान में ही उसका खाना पकाती है सुमतिया.

सुमतिया लगभग पौने छह फुट की सुगढ़ सुंदर युवती है. उम्र ज्यादा नहीं, बीस-इक्कीस वर्ष. गेहुआं रंग. कसे हुए सुडौल उन्नत उरोज. उसके अंग-प्रत्यंग गढ़े हुए से लगते हैं. जिस राह से सुमतिया निकल जाती है, उस पर मौजूद लोगों की आंखें उन्माद भरे अंग-प्रत्यंग से चिपक-सी जाती हैं. लोग मुंह से आवाज निकाले बगैर, क्षण भर के लिए, जान गवां बैठते हैं. यह उसका सबसे बड़ा दुर्भाग्य है. छोटी जाति में ऐसा रूप अपने आपके लिए विष हो जाता है. उस पर वह विधवा है. मां-बाप और जात-बिरादरी का बहुत दबाव पड़ा कि वह दूसरा विवाह कर ले. बहुत से उम्मीदवार पलक-पांवड़े बिछाये थे. लेकिन, वह तैयार नहीं हुई. फिर, गांव में लोग उस पर फब्तियां कसने लगे. शोहदों ने तंग करना शुरू किया. एक दिल जला तो ऐसा दीवाना बन गया कि एक रात सुमतिया की झोपड़ी में घुस कर सोते में ही दबोच लिया. वह चीख पड़ी. घर में जाग हो गयी. उस दीवाने पर लाठियां बरसती रहीं, फिर भी पट्ठा कुछ देर तक सुमतिया को दबोचे ही पड़ा रहा. सुमतिया कातर हो उठी. अपनी रूप-ज्वाला में वह आप जलने लगी. मन में आया, कहीं भाग जाये, लेकिन कहां? चारों ओर तो गिद्ध मंडरा रहे थे, उसका कच्चा गोश्त नोचकर खा जाने के लिए.

एक दिन वह स्टेशन से आ रही थी कि रास्ते में सियाबर ने अपने बरामदे पर से कहा, “सुमतिया, यह टिफिन कैरियर मेरे घर दे आना. कहना, आज खाना जल्दी भेज दे. बाहर जाना है.”

उस दिन सुमतिया ही खाना पहुंचा गयी. दोनों ने एक-दूसरे को देखा. शायद परखा भी. सुम्मतिया को आश्चर्य हुआ. कहीं-न-कहीं गुस्सा भी सुगबुगाया. सियाबर की आंखों ने उसके उठे हुए उरोजों को सहलाया नहीं. दोनों में विशेष बातचीत नहीं हुई. लेकिन, सुमतिया समझ गयी कि अब हर रोज उसे खाना पहुंचाना है. सुमतिया गांव से दूर रहना चाहती थी. सियाबर के रूप में सबल सक्षम संरक्षक मिल रहा था. वह रोज दोनों वक्त खाना पहुंचाने लगी. भाग्य का खेल कौन समझे? एक दिन सियाबर बीमार पड़ गया. बिस्तर पर गिरा, तो बीस-बाईस रोज तक उठ नहीं पाया. ठीक हुआ तो बहुत रोज तक चलने-फिरने के लायक नहीं रह गया. उसे तपेदिक हो गया था. सुमतिया ने जी-जान से लगकर उसकी सेवा की. कई रातें सियाबर के डेरे पर ही काटीं. गांव में कानाफूसी शुरू हो गयी. सुमतिया को उसके घर वालों ने डांटा-फटकारा ही नहीं, मारा-पीटा भी. लेकिन, इन बातों का सुमतिया पर उल्टा असर पड़ा और वह सियाबर के साथ ही रहने चली आयी.

वैसे सियाबर लोकप्रिय व्यक्ति था. समय-असमय सबके काम आता था. लोग उसे आदर से पुकारते, “सियाबर दादा, बीज घट गया है.”

सियाबर मुस्कराकर पैसे दे देता था. उसी सियाबर के साथ आज भयंकर दुर्घटना घट गयी है.

गांववासी-बच्चे, बूढ़े, जवान-सियाबर के नलकूप की ओर भागे चले जा रहे हैं. अभी सूरज पूरी तरह उगा भी नहीं है, किंतु, घटना ऐसी भयानक है कि एक बारगी ही पूरा गांव जग पड़ा है. किसी ने सियाबर को उसी के नलकूप पर गोली मार दी.

“किसने मारी?”

“क्यों मारी?”

क्या पता, किसने मारी और क्यों मारी? सुमतिया ढार मारकर रोये जा रही है. अपना कलेजा पीटते-पीटते उसका बुरा हाल है. वातावरण हृदय द्रावक हो उठा है, किंतु सुमतिया की बिरादरी क्रूर हो उठी है. आखिर उसकी भी कोई इज्जत है. उसी बिरादरी के तीन-चार नौजवान उसे घसीटते हुए गांव की ओर लिये जा रहे हैं. सुमतिया का बाप भी साथ है और बेटी को भद्दी-भद्दी गालियां दे रहा है. और यह सब हो रहा है, सियाबर के बड़े भाई के आदेश पर! ☐

कहानियां कचहरी की

इन्हें प्रस्तुत कर रहे हैं दिनेशचंद्र दुबे, जो
म. प्र. की न्याय व्यवस्था के एक वरिष्ठ
अधिकारी हैं.

नियम

"ए भाई साब, कहां जा रहे हैं?"

"सिगरेट ले लूं एक मिनट."

"नहीं भई, गाड़ी लेट नहीं कर सकते हम लोग."

पसीने से लथपथ वह बैठ जाता है. उसे बेहद तलब लगी थी. लेकिन मजबूरी थी. तभी कंडक्टर की आवाज ने उसे फिर चौंकाया.

"ये जनाब सामान आपका है?"

"हां भाई."

"नीचे रखिये. सीट पर सामान रखना नियम के विरुद्ध है. सवारियों को तकलीफ होती है."

"लेकिन जब सवारी आयेगी तो मैं उठा लूंगा यार." वह बड़ी आजिजी से बोला.

"अरे साहब, आप तो पढ़े-लिखे आदमी दिखाई देते हैं. आपको अब क्या कहूं, नियम तो नियम ही है. उठाइए सामान या मैं. . ." उसने आगे की सीट की तरफ नजर उठाते हुए जोर से कहा ताकि आगे वाली सवारी सुन ले.

और आगे वाली सवारी का ध्यान इस खींचतान में स्वतः पिछली सीट पर चला गया तो वह आजिजी से अपनी सीट छोड़कर पिछली सीट पर चला आया, "अरे यार तुम! कहां से आ रहे हो. पहिचाना नहीं, मैं हूं महाजन, सिविल जज सांवेर."

फिर उन्होंने अपनी पत्नी से उसका परिचय कराते हुए कहा, "मैडम, इनसे मिलो, ये हैं मिस्टर. . .जज के साथ तुम्हारे प्रिय लेखक भी. आज रुको यार. तुमसे बहुत-सी बातें करनी हैं. कई बार तुमसे मिलने का मन हुआ पर. .."

एकाएक गाड़ी के झटके के साथ पीछे की तरफ से सीटी बजते ही रुकने पर दोनों का ध्यान गेट की तरफ चला गया. कोई स्टॉपेज नहीं था. पर. . .

तभी कंडक्टर हांफता हुआ लौटा. वह चकित था. दोनों हाथों की हथेलियां एक-दूसरे पर रखे वह खड़ा था, "माफ करें सरकार, मैंने पहिचाना नहीं था. यहां गुमटी पर यही सिगरेट मिल सकी. चल जायेगी न. आगे उज्जैन पर. . ."

सिगरेट और माचिस उसके हाथ से लेकर वह चकित-सा जेब से पैसे निकालता तब तक सबने देखा कि कंडक्टर पीछे जाकर उसका सामान नीचे से उठाकर करीने से सीट पर जमा रहा था. □

पावर्स

"हुजूर एक बार माफ कर दीजिए. यह जुर्माना मुझे गांठ से भरना पड़ेगा. नौकरी भी जा सकती है. मैं बाल-बच्चे वाला आदमी हूं. एक ही सवारी थी मालिक. वह भी दारोगाजी नहीं माने इसलिए . . ." ड्राइवर गिड़गिड़ाया.

लेकिन वे और सख्त हो गये.

"बाल-बच्चे वाले हो तो ऐसे काम ही क्यों करते हो? गलती करते हो, फिर दूसरों का नाम लेकर बचना चाहते हो! बदनाम भी करते हो उन्हें!"

"पहली गलती है सरकार, भविष्य में. . ."

"भविष्य में क्या, खून एक बार हो तो भी सजा मिलती है, दस बार हो तो भी सजा वही. . सौ रुपया जमा करो वरना एक माह की सादी जेल. . .नहीं है? दीवानजी, संभालो इसे. बाबूजी, वारंट बनाओ जेल का."

हताश होकर ड्राइवर और कंडक्टर ने सवारियों से उधार लेकर जुर्माना जमा किया और गाड़ी लेकर उदास से चले गये.

गाड़ी चली गयी तो समय खाली था. बात चल निकली.

"यही गाड़ी थी सर. उस दिन बच्चे-बाई साहब पिक्चर जा रहे थे. मैंने कहा भी कि साहब की सवारी है. लेकिन कहने लगा, सरकारी गाड़ी में हम मजबूर हैं बाबूजी. कोई चेक कर लेगा स्टाफ का तो नौकरी चली जायेगी."

साहब सुनकर भी चुप रहे. और लोग भी बैठे थे. वे लोग उठे तो कुछ सोचते हुए उन्होंने फिर बाबूजी को कुरेदा, "इन सालों के दिमाग बहुत खराब हो गये हैं. इसीलिए तो आज वर्षों बाद समरी पावर्स का उपयोग कर रहा हूं. वर्ना इस झंझट में दिन भर कौन. . ."

फिर उन्हें एकाएक कुछ याद-सा आया.

"हां बाबूजी, वो कौन-सी गाड़ी थी जो उस दिन पंद्रह मिनट के लिए खबर भेजने पर भी साहब के लिए नहीं रुकी थी कि लेट हो जायेगी. याद रखना, उसी के लिए खास तौर... साहब ने भी कहा था कि क्या नौकरी करते हो साली. मैं जब तुम्हारी पोस्ट पर था तो. . ."

"जी, मुझे एक बार मना कर दिया था ले जाने से फ्री. नहीं आयेगी अब."

और साहब के साथ सब गाड़ी का बेसब्री से इंतजार करने लगे.

नायक नहीं

चंद्रमोहन प्रधान

वह स्टेशन के पास स्थित बस अड्डे पर पहुंचा, तो बेली रोड जाने वाली मिनी-बस लगभग खाली थी. पीछे की सीट पर एक सफेद बाल वाले बुजुर्ग और आगे महिलाओं की सीट पर एक प्रौढ़ एक बच्ची के साथ. इतने ही यात्री अभी चढ़े थे. बस के उस किनारे की खिड़कियों से सितंबर की तीखी धूप आ रही थी, इस तरफ की सीटों पर छाया थी, किंतु उसे पता था कि जब बस घूमकर रवाना होगी, तो धूप इस तरफ आ जायेगी. वह उधर की एक धूप आती सीट पर बैठ गया, और मन ही मन अपनी दूरदर्शिता पर प्रसन्न भी हुआ.

क्रमशः बस भरने लगी. एक सरदारजी आकर उसकी बगल की सीट पर बैठ रहे.

सभी सीटें भर जाने पर दो स्त्रियां एक खाली झाबा लिये आयीं और बीच के फर्श पर झाबा रखकर वहीं रॉड पकड़े खड़ी हो गयीं. महिला सीटें पूरी भर गयी थीं.

अपने पैरों के पास झाबा देखकर उसे जरा बेचैनी होने लगी. झाबे से मछलियों की गंध आ रही थी. वह समझ गया, सुबह निकट के बाजार में मछलियां पहुंचाकर ये स्त्रियां गांव की तरफ लौट रही हैं. बेली रोड बड़ी लंबी है. राजा बाजार होती शहर के बाहर तक पहुंचती है.

उसके आगे की सीट से एक नौजवान उठा. बगल के प्रौढ़ व्यक्ति से अपनी सीट देखते रहने को कहकर नीचे उतर गया. उसने देखा, नौजवान सीधा पान की दूकान पर पहुंचा. उसकी भी तबीयत हुई कि पान खा ले जर्दे के साथ, पर सीट की सुरक्षा के खयाल से रह गया.

काला कोट, सफेद पैंट पहने एक बुजुर्ग चढ़े. गोरे, दुबले-पतले, क्लीन शेव्ड. बाल खिजाब से रंगे, जो जड़ों में भूरे होते दीख रहे थे. गले में दो उजली पट्टियां देखकर वह समझ गया, एडवोकेट हैं. उसने घड़ी देखी, साढ़े दस. जरूर हाइकोर्ट तक जायेंगे.

एडवोकेट ने बस में नजर दौड़ायी, और उसके आगे वाली सीट पर बैठने के लिए बगल के प्रौढ़ सज्जन से पूछने लगे. उसने उत्सुकता से सोचा, वह उन्हें मना कर देंगे, क्योंकि उस सीट का नौजवान पान खाने नीचे गया है. पर प्रौढ़ सज्जन ने उन्हें बैठ जाने दिया. अब उसे कौतूहल हुआ, वह युवक बाहर से लौटेगा तो बड़ी गर्मा-गर्मी होगी. वह सजग होकर युवक की प्रतीक्षा करने लगा.

पान खाकर जब वह युवक लौटा, तो अपनी सीट पर एक वयोवृद्ध सज्जन को बैठा देख मुस्कुराया. बोला, "इस पर तो मैं बैठा था. खैर, बैठे रहिए, कोई बात नहीं."

युवक बस की रॉड पकड़कर वहीं खड़ा हो गया. प्रौढ़ सज्जन और एडवोकेट दोनों शर्मिंदगी के साथ मुस्कराते रहे. उसे जरा निराशा हुई. मामला फिस्स होकर रह गया. यह युवक तो बड़ा शरीफ, आदर्शवादी लगता है.

वह सोचने लगा, सामने खड़ी दोनों स्त्रियों में से किसी को वह अपनी सीट ऑफर कर दे तो? महिला सीटें भरी हैं, ऐसे मौके पर खड़ी स्त्रियों को बैठने का हक पुरुषों से पहले है. आदर्श व्यक्ति ऐसा ही करते हैं. नैतिकता और मानवता संबंधी कुछ मूल्य होते हैं, जिनका पालन करने वाला ही समाज में नायक बनता है.

वह सोचता रहा. उसके कंधे चौड़े हो गये. ऐसे विचारों से ही वह मानो अपनी दृष्टि में ऊंचा उठ गया.

इसी हैस-बैस में वह था कि बस घर्रायी. पता नहीं, ड्राइवर कब आ बैठा. वह स्थिरता से बैठने की कोशिश करने लगा.

बस खिसकी और चौराहे के गोलंबर की परिक्रमा करती, न्यू मार्केट की ओर बढ़ी. दोनों खड़ी महिलाएं अभ्यस्त न होने के कारण बुरी तरह हिल-डुल रही थीं. रॉड पकड़कर खड़े होने में उन्हें काफी परेशानी हो रही थी. यह स्पष्ट था. उसने सोचा वह उन्हें अपनी सीट ऑफर तो कर दे, पर दोनों के लिए दो सीटें चाहिएं. एक को बैठाने में तो कोई तुक नहीं, क्योंकि दोनों समान वय की प्रौढ़ाएं हैं. उसने सरदारजी को देखा, क्यों न इन्हें कहे, ये भी खड़े हों तो दोनों को मजे की जगहें मिल जायेंगी.

सरदारजी निर्लिप्त भाव से चालक कक्ष पर दृष्टि जमाये बैठे थे. वह कसमसाया, पर कुछ कहने का साहस न हो रहा था. उसने सोचा. . .और किसी को इन स्त्रियों की चिंता नहीं है, तो वही क्यों परेशान हो

हा है! फिर उसे याद आया. किसी पत्रिका उसने पढ़ा था, प्रत्येक नागरिक को अपने र्तव्यों का पालन करना चाहिए. दूसरे न करें, तो उन्हें प्रेरणा देनी चाहिए. र स्वयं को आदर्श बनाकर सबके समक्ष स्तुत करना चाहिए.

कंडक्टर टिकट बांटता आया. इन टकर विचारों से मुक्ति पाकर उसे थोड़ा न मिला. एक रुपये का नोट देता बोला, ार्मेसी कॉलेज तक." कंडक्टर ने टिकट साथ बाकी पैसे वापस कर दिये.

तभी सेक्रेटेरिएट के पास के स्टॉप पर स रुकी, तो दोनों स्त्रियां झाबा लेकर तर गयीं. उसे बड़ी राहत महसूस हुई, से कोई पहेली हल हो गयी हो.

अभ्यासवश जेब में हाथ डालकर से सिगरेट का पैकेट बाहर निकालने के हले याद आया, बस में धूम्रपान मना ता है. नजर उठाकर उसने देखा, तो बीच ी खिड़की के ऊपर अंकित था—'धूम्रपान षेध'. तभी उसकी नजर जरा पीछे ी. पिछली सीट पर बैठे श्वेतकेशी बुजुर्ग ड़ी पी रहे थे. वह मुस्कुराया, नियम सभी ह होते हैं, टूटने के लिए ही. आश्वस्त कर उसने डिब्बी निकालनी चाही, तभी ान आया बगल में बैठे सरदारजी का.

दि सरदारजी को धुआं लगा तो? वे राज कर सकते हैं. बस में उन्हें इसका भी है. सोचा, क्यों न पूछ ले! रदारजी की तरफ दबी निगाहों से उसने ा भी, पर उनकी मुद्रा कुछ ऐसी कसी र तटस्थ लगी कि साहस न हो पाया. सने खुद को समझाया, क्या जरा सी त को लेकर किसी गैर की खुशामद रे! आधे घंटे की तो बात है. नीचे उतरेगा लगातार तीन सिगरेटें पी लेगा. तभी से ध्यान आया, बसों में धूम्रपान वैसे भी ना है. उसे तो ऐसा विचार भी नहीं करना ाहिए था. यह गलत बात है. पीछे वाले र्गु यदि बीड़ी पी रहे हैं तो उन्हें रोकना ाहिए था, न कि खुद वही गलत काम रने को सोचना? उसने गंभीर भाव से छे देखा, वृद्ध सज्जन बीड़ी पीकर खामोश े थे. कहने की जरूरत ही नहीं रही.

एक जिम्मेदार, कानून का पाबंद होने ा एहसास लिये, वह सीधा बैठा रहा.

राजा बाजार के स्टॉप पर बस रुकी. उसे पान की तलब सता रही थी. क्यों न पान खा ले! बस रुकने पर कुछ लोग उतरे, पर ज्यादा चढ़े ही. भीड़ बढ़ी, बहुत लोग रॉड पकड़कर खड़े रहे. वह प्रसन्न हुआ, कि यहां पान खाने नहीं उतरा. उसकी सीट सुरक्षित है. वह इत्मीनान से खिड़की के बाहर दूकानों के बोर्ड पढ़ने लगा.

अपने सामने की सीटों पर कुछ हलचल महसूस होने पर उसने गौर किया, उससे आगे की तीसरी महिला सीट के पास एक युवती खड़ी है, जो यहीं चढ़ी होगी. वहां की एक सीट खाली होने पर एक सज्जन बैठ गये थे. उन्हें उठना पड़ा. वह युवती उस सीट पर बैठ गयी. सीटच्युत सज्जन नाराजगी के भाव से वहीं पर रॉड पकड़े चलती बस के झोंकों से झूलते रहे. उसने युवती की पीठ पर दृष्टि जमाकर सोचा, स्टेशन के बस अड्डे पर वह उस महिला सीट के ठीक पीछे की सीट चुनता तो ठीक रहता. उसके मन ने यह भी तर्क दिया कि ये सरदारजी भी बगल में नहीं रहते, और वह मजे से सिगरेट पी सकता.

युवती के ब्लाउज का ऊपरी भाग गर्दन से काफी नीचे तक कटा हुआ था. कपड़े की चौड़ाई बहुत कम थी और आधी पीठ से कमर तक का पूरा भाग अनावृत था. बस के झोंकों से वह सीट से हिल जाती, तो उसकी पीठ स्पष्ट दिखाई देने लगती. वे खुले भाग उसकी दृष्टि को चुंबक-सा आकर्षित किये हुए थे. रंग बहुत गोरा न होते हुए भी, साफ गेहुएं रंग में ऐसी चमक थी, भरी हुई पीठ और सुडौल कमर पर ब्लाउज का ऐसा कसाव था, जो उसे सम्मोहित किये हुए था. हठात् उसे महसूस हुआ, किसी युवती के अंगों को यों घूरकर देखना उचित नहीं है. उसने बेचैनी से इधर-उधर देखा, किसी का ध्यान उस पर नहीं था. उसने स्वस्ति की सांस ली. रॉड पकड़े जो लोग उस युवती के पास खड़े थे, वे भी उससे हटकर खड़े रहने के प्रयास में थे और उसे घूरकर नहीं देख रहे थे. मन ही मन उसने अपनी भर्त्सना की. एक शरीफ, जिम्मेदार व्यक्ति के लिए यह बड़े शर्म की बात है! अब, उसने नजरों से उसकी अनावृत पीठ को न देख कर, इधर-उधर से नजरें चुराकर देखना शुरू किया. मन में उसने तर्क किया, ये

▣ चंद्रमोहन प्रधान
जन्म : 1942, मुजफ्फरपुर.
"मनुष्य के जीवन की वर्तमान परिस्थितिजन्य विसंगतियां, क्षुद्रता और विकृतियां तंग करती हैं, जिन्हें सहजात व्यंग्य प्रवृत्ति की चाशनी में ढालकर प्रस्तुत कर देता हूं."
संप्रति : सरकारी नौकरी.

ऐसी पोशाकें पहनती ही क्यों हैं. लोग देखें, इसीलिए न! ठीक सामने बैठी है, तो उसका क्या दोष? वह आंखें बंद ता नहीं कर सकता! यह तो सार्वजनिक जगह है. अब उसे वह इत्मीनान से देखने लगा.

बस फार्मेसी कॉलेज के पास वाले स्टॉप पर रुकी. वह उस खुली पीठ को अंतिम बार भरपूर दृष्टि से देखता उठ खड़ा हुआ. दरवाजे के पास कुछ भीड़ थी. लोग चढ़-उतर रहे थे. वहीं महिला सीटें थीं. उसने अधिक जल्दबाजी नहीं दिखायी. रॉड पकड़े लोगों के बीच से राह बनाता यों आगे बढ़ा, कि युवती के कंधे से छूकर निकले. किंतु वह बस की हलचल से जरा सतर-सिमटी बैठी थी. वह बेजरूरत ही थोड़ा-सा उसकी ओर दबता आगे बढ़ा, पर स्पर्श न कर पाया. निराश होकर वह धक्कम-धुक्का करता नीचे उतर आया.

उसने लंबी अंगड़ाई ली. जेब से सिगरेट निकालकर सुलगायी. लंबे कश खींचता पान की दूकान पर आया. पान खाकर बगल के न्यूजपेपर स्टाल पर पत्रिकाएं देखने लगा. उसकी दृष्टि एक गर्म किस्म की, सच्ची कहानियों की पत्रिका पर पड़ी, जिस पर एक लगभग नग्न युवती की फोटो बड़ी उत्तेजक मुद्रा में छपी थी. उसने चाहा, उठाकर देखे कि कैसी कहानियां हैं, पर दूकानदार और वहीं खड़े एक-दो व्यक्तियों के सामने उसे हिचक हुई. वे उसके बारे में क्या सोचेंगे? उसने दो साप्ताहिक पत्रिकाएं चुनीं. एक अखबार और सामान्य ढंग से वह हॉट पत्रिका भी उठाकर दूकानदार से सबके दाम जोड़ने को कहा.

दस का नोट देकर बाकी पैसे उसने वापस लिये और आगे बढ़ा. चारों तरफ खेत, हरियाली, इक्का-दुक्का घर, दूकानें, और सामने ही सड़क के उस पार 'कॉलेज ऑव फार्मेसी' था. वह कॉलेज की तरफ बढ़ा.

कॉलेज की इमारत छोटी-सी थी. किसी ने रिहाइशी घर बनवाया होगा, जिसे किराये पर ले लिया गया होगा. अभी उसमें पढ़ाई प्रारंभ नहीं हुई थी, ऑफिस आ गया था. उसे छोटे भाई के नामांकन की तिथि एक सप्ताह बढ़वानी थी.

▣

ऑफिस में दो बड़ी मेजें लगी थीं. एक पर एक क्लर्क जैसा व्यक्ति बैठा, सामने की कुर्सी पर बैठे किसी छात्र से बातें कर रहा था. उसने क्लर्क को अपनी समस्या बतायी, तो क्लर्क ने प्रिंसिपल के नाम एक आवेदनपत्र लिख देने को कहा.

एक कागज की जरूरत पड़ी. वह क्लर्क के साथ की जरा बड़ी और अधिक सजी हुई मेज के साथ बैठा था. उसने फुलस्केप साइज के कागजों का एक दस्ता वहां कई कागज-पत्रों के साथ रखा देखा. उसने एक कागज लेना चाहा, पर रुक गया. यह गलत काम है. उसे क्लर्क से पूछकर, मांगकर लेना चाहिए. यों ले लेना तो चोरी समझी जायेगी.

"इसमें से एक शीट ले लूं?" उसने क्लर्क से पूछा. क्लर्क ने अपना काम छोड़कर देखा, वह कागजों की तरफ संकेत कर रहा था.

"ले लीजिए साहब! इन्हीं कामों के लिए तो ये रखे हुए हैं. लोग-बाग तो यूं ही उठा लेते हैं, बिना पूछे."

क्लर्क की आखिरी बात में उलाहना-सा था. उसे लगा, क्लर्क ने उसकी व्याज प्रशंसा की है. उसका सीना तन गया. बड़ी गंभीरता से. . .एक शीट निकाली. बीच से मोड़कर उसका आधा हिस्सा फाड़ लिया, और आधा वापस बड़ी सफाई से दस्ते में लगा दिया. बगल में बैठे छात्र की तरफ उसने जरा अभिमान से देखा, जैसे कह रहा हो, आजाद देश के नागरिक हो, ये मैनर्स सीख लो.

वह हिचकिचाया. दरखास्त हिंदी में लिखे या अंग्रेजी में? कनखियों से इधर-उधर देखा, क्लर्क अंग्रेजी में रजिस्टर की खानापूरी कर रहा था. आसपास के लेजर, रजिस्टर सब पर अंग्रेजी दीखी. टेबल कैलेंडर, शीशे में दबे कागज, सब अंग्रेजी में थे. दीवार पर का. .कैलेंडर हिंदी में था. उसने सोचा, वह कोई अंग्रेज तो है नहीं, अपनी मातृभाषा में लिखेगा. फिर खयाल आया, यह 'कॉलेज ऑव फार्मेसी' है. यहां तो हिंदी बड़ी ऑड-सी लगेगी. अनिश्चय में उसने क्लर्क से पूछ लेने का विचार किया, पर सिर झटक दिया. ऐसी जरा-जरा-सी बात भी क्या पूछे! कहेगा, कैसा बचकाना आदमी है.

उसने अंग्रेजी में दरखास्त लिखकर क्लर्क को दे दी. एक बार पढ़कर क्लर्क ने कहा, "हो जायेगा, कोई बात नहीं. आपको दस दिन में खबर भेज दी जायेगी."

वह कृतज्ञता से मुस्कुराया. सोचा, क्लर्क को नमस्कार करे या यूं ही लौट पड़े? कुछ सोचकर उसने एक हाथ उठाकर उसका अभिवादन किया और बाहर निकल आया.

बस पड़ाव पर दो-चार व्यक्ति बस की प्रतीक्षा में इधर-उधर घूम रहे थे. वह सामने के टी स्टाल पर गया. चाय का ऑर्डर देकर वहीं बेंच पर बैठ रहा.

चाय पीते उसने छिपी नजर सच्ची कहानियों वाली पत्रिका पर डाली. कनखियों से देखा एक दूसरा व्यक्ति भी उसी के कवर को देख रहा है. उसने झट पन्ना पलट दिया. दो-चार पृष्ठ यूं ही उलट-पलटकर साप्ताहिक पत्रिका का संपादकीय पढ़ने लगा.

बस आयी. उधर से लगभग भरी आयी थी. उसे रॉड पकड़कर खड़ा होना पड़ा. कंडक्टर ने उससे एक रुपये का नोट लेकर स्टेशन तक का टिकट दिया और चालीस पैसे वापस किये. उसे बड़ा आश्चर्य हुआ. आते वक्त पैंतालिस पैसे का टिकट मिला और इस बार साठ पैसे का? पंद्रह पैसे कम दिये हैं कंडक्टर ने. उसे क्रोध आया. यह कंडक्टर उसे बेवकूफ समझता है! उसने खंखारकर गला साफ किया. कंडक्टर को वह रोबीली आवाज में पुकारना चाहता था. तभी उसने देखा, कंडक्टर एक बूढ़े को डांट रहा है. कंडक्टर एक नौजवान-सा व्यक्ति था. पैंट और लाल सैंडो बनियान भर पहने, बड़े-बड़े उलझे बाल रखे, कलमें बढ़ाये. उसे कुछ कहने का साहस वह नहीं कर पाया. लफंगा आदमी लगता है, पता नहीं क्या कह बैठे. पंद्र पैसे के लिए नाहक बेइज्जती मोल लेन मूर्खता है. चारों तरफ बदमाश ही ज्याद भरे पड़े हैं, किस-किस से तकरार करे

कंडक्टर से ध्यान हटाकर वह महिल सीटों के पास खड़ा रहा रॉड पकड़े. सी पर तीन देहाती-सी प्रौढ़ाएं बैठी हुई थीं. व जिम्मेदारी के साथ बस के झटकों के बाव जूद उनका स्पर्श करने से बचता रहा. उ आश्चर्य हुआ, इस तरफ से लड़कियां शह को नहीं जा रही हैं!

इस वार उसे पूरा सफर खड़े-ख करना पड़ा. बेली रोड के चौराहे पर कोत वाली का स्टॉप आने पर वहीं वह उत पड़ा. कौन स्टेशन तक झूलता हुआ जाये

उसने रिक्शे के लिए दृष्टि दौड़ाय रिक्शा न मिलने पर वह पैदल ही टहल हुआ स्टेशन की तरफ चला. उसकी गाड़ में अभी देर थी. स्टेशन के पास उसे जलपा भी करना था.

टेलीफोन एक्सचेंज के पास एक पान क दूकान पर उसने पान खाया और मीठा पुर की दिशा में चला. उधर अच्छी दूका हैं हलवाइयों की. स्टेशन भी पास ही में है दूकान पर कचौड़ी-जलेबी खायेगा. होट के चॉप आदि में वह बात कहां!

▣

चौराहे के गोलंबर के किनारे एक बो लगा था, 'शहर को साफ रखें'. उस इधर-उधर देखा, सड़क के उस पार गं झुग्गी-झोंपड़ी की कतारें, चारों तर फैले कूड़े के ढेर! बस, चौराहे एवं गोलं के आसपास सफाई दीखी. वह किना के कूड़े के ढेर पर पान की पीक फेंकने लगा तभी बगल से एक रिक्शे पर लदी हु तीन युवतियां जोर से हंसती-चहचहाती निकलीं. उसने रिक्शे के ओझल हो तक उन्हें दूर तक देखा और तिरस्का से मुंह बनाते हुए इधर-उधर देख, ठीक बो के नीचे गोलंबर के उजले पुते. . .किना पर पान की भरपूर पीक फेंक दी. कनखियों से चारों तरफ देखा, किसी का ध्यान उस पर नहीं था.

वह खंखारा और सीधा मीठापुर की गली में जा घुसा. ☐

● **निदेशक :** ज्ञान-कला-केंद्र, आमगोला, मुजफ्फरपुर

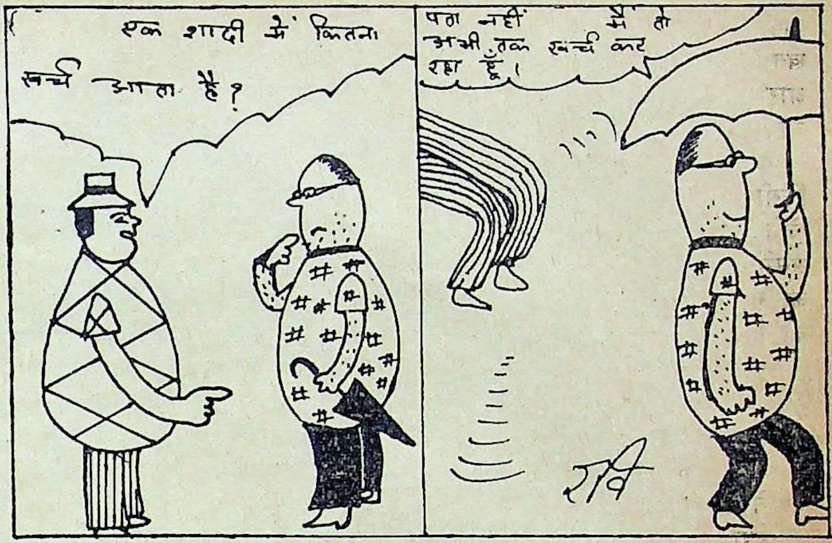
एक शादी में कितना खर्च आता है?
पता नहीं मैं तो अभी तक खर्च कर रहा हूं।
रवि

गपशप

गाइड : यह किला जो आप देख रहे हैं, 600 वर्ष पुराना है फिर भी अभी तक इसकी एक भी ईंट नहीं बदली गयी. जो सामग्री पहली बार लगी थी, बस वही है.

यात्री : लगता है, यह भी हमारे मकान मालिक जैसे किसी आदमी का रहा है.

▣

एक समाज सेविका से किसी अखबार वाले ने सवाल किया : "महोदया, लोग कहते हैं कि आपके पति बिल्कुल किताबी कीड़े हैं."

"नहीं, किताबी नहीं..." समाज सेविका का उत्तर था.

▣

एक भाषण के दौरान एक करोड़पति ने बताया, "जब मैं बच्चा था तभी घर छोड़कर नौकरी के लिए दो सौ मील पैदल चलकर शिमला गया था. वहां पांच साल तक मेहनत करने के बाद इतने पैसे जोड़ लिये कि एक साइकल खरीद ली."

कुछ देर रुककर फिर बोलना शुरू किया, "और कुछ ही दिन बाद मुझे चिट्ठी मिली कि मेरी मां बीमार है. मैं साइकल पर बैठा और अपने घर आ गया. वहां पहुंचा तो डाक्टर ने सलाह दी कि मां को शिमला की हवा से ही आराम मिल सकता है."

"तो क्या आप अपनी मां को शिमला ले गये?" एक श्रोता ने जिज्ञासा प्रकट की.

"नहीं, मैं साइकल को मां के पास लाया और उसके पहियों से शिमला में भरी गयी निकाल दी—और मेरी मां अब तक जीवित है."

▣

दो नेता एक पोखर के पास से गुजर रहे थे. उन्होंने देखा कि कुछ लड़के घोंघे पकड़ रहे हैं. वे घोंघे पकड़कर एक खुली बाल्टी में डाल रहे थे.

"तुम लोग बाल्टी को ढक क्यों नहीं लेते. ये घोंघे सरकते हुए बाल्टी से बाहर भी तो निकल सकते हैं." एक नेता ने सलाह दी.

"आप चिंता मत कीजिए. ये घोंघे तो हमारे राजनीतिक नेताओं की तरह हैं, अगर एक ऊपर आने की कोशिश करता है तो बाकी उसे घसीटकर नीचे खींच लेते हैं."

▣

एक पति का इकबालिया बयान : हम लोग बहुत खुश हैं. अलबत्ता कभी-कभी मेरी पत्नी कोई चीज मुझ पर फेंककर मारती है ...फिर भी कोई फर्क नहीं पड़ता. अगर उसका निशाना ठीक बैठता है तो वह खुश होती है और अगर चूक जाता है तो मैं खुश हो जाता हूं.

▣

एक मनोचिकित्सक ने अपने मरीज को सलाह दी, "तुम हमेशा यह सोचो कि दिन-ब-दिन मैं ठीक होता जा रहा हूं."

एक हफ्ते बाद जब वह मनोचिकित्सक के पास फिर आया तो उसने पूछा, "अब कैसा लग रहा है?"

"आपके नुस्खे से दिन में तो मैं ठीक रहता हूं पर—रात को—मुझे फिर बेचैनी होने लगती है." ☐

एक सुनी सुनायी भी

'वतन' के संपादक, मौलवी इंशाअल्लाह खां इकबाल से मिलने प्रायः उनके घर जाया करते थे. इकबाल लाहौर में अनारकली में रहते थे, जहां उन दिनों वेश्याओं के कोठे होते थे.

बाद में जब म्यूनिसपैलिटी ने वे कोठे वहां से हटा दिये, तो उन्हीं दिनों मौलवी साहब इकबाल से मिलने कुछ एक बार उनके यहां गये, तो उन्हें घर में न पाया. आखिर एक बार मुलाकात होने पर उन्होंने कहा, "डाक्टर साहब, जब से यह तवायफें अनारकली से गायब हुई हैं, आप भी जैसे उनके साथ गायब हो गये हैं."

"बेशक", इकबाल ने मुस्कराकर कहा, "आखिर तो वे 'वतन' " की बेटियां हैं.

पखवारे की पुस्तकें

राजनीति : जो आदमी को मारती है

□ सुधीर चंद्र

'धांसू' संग्रह की अधिकांश कहानियां गोविंद मिश्र के लेखन में एक नये दौर की द्योतक हैं, यद्यपि इनमें से कुछ का मूड पिछले दौर से प्रभावित लगता है. 'धांसू' से पूर्व प्रकाशित 'अंतःपुर' कहानी संग्रह में गोविंद मिश्र का इष्ट था—'कथ्य से भी आगे उस मानसिकता को अपने सारे उलझाव के साथ प्रस्तुत करने का. . . .जो कहीं से हमारे युग से जुड़ी हुई है और जिसकी मात्र एक झलक हम किसी स्थिति-विशेष में देख पाते हैं.'

'धांसू' की दस कहानियों में शायद 'पैंतालीस अंश का कोण' और 'झूला' ही इस क्रम में आती हैं. बल्कि सिर्फ 'झूला' ही पूरी तरह से उपर्युक्त इष्ट के साथ न्याय करती है. इस कहानी में मानवीय संबंधों में हो रहे उत्तरोतर अवमूल्यन का चित्रण पहले जैसी मार्मिक तटस्थता से किया गया है.

पर 'धांसू' की दूसरी कहानियों में मानवीय संबंधों से अधिक व्यक्ति और स्थितियों के संबंध उभरकर आते हैं. यह संबंध किसी व्यक्ति-विशेष के न होकर हमारे समाज में जहां-तहां फैले टाइप हो चुके संबंध अधिक हैं. इस टाइप की जो टकराहट स्थितियों में होती है, उनसे समाज में व्याप्त विकृतियां बार-बार उभरकर आती हैं जो विशेषकर, बेईमानी और भ्रष्टाचार और इनसे त्रस्त आम आदमी की बेबसी उभारते हैं. . . . .यहां तक कि विशुद्ध राजनीति के क्षेत्र में काम कर रहे एक अपेक्षाकृत ईमानदार आदमी की बेवसी (गोबर गनेस) भी. यह एक ऐसी बेबसी है जो कभी-कभार किसी नाटकीय किंतु प्रभावहीन प्रतिशोध में परिणति के अलावा किसी दूसरी राहत के परे है ('स्वरलहरी'):

'धांसू' में मार्मिक तटस्थता का स्थान लेता दिखता है—निर्मम व्यंग्य. मानवीय अंतस की पीड़ा और व्यवस्था में दबे उसके नाना स्रोतों को उद्घाटित करने के प्रयत्न में एक अनिश्चितता का एहसास निहित-सा था. इस विषयगत अनिवार्य अनिश्चितता से हटकर गोविंद मिश्र अब अपने जटिल यथार्थ को कहीं अधिक स्पष्टता से देख पा रहे हैं. . . . .कम से कम उनका ऐसा विश्वास इन कहानियों में दिखाई पड़ता है और इस स्पष्टता अथवा विश्वास का कारण है, उनकी यह मान्यता कि 'हमारे रोज-ब-रोज जीवन पर कहर ढाने वाली' मूल शक्ति है राजनीति, जो अपने-आप में एक संस्था है, जीवन-प्रणाली है, जिसके अपने कायदे-क़ानून हैं और जो समाज को मरोड़ते समय उस रूप में नहीं आती जिसमें वह धंधे के रूप में होती है!

'बहुवंधीय' इसी दिशा में एक प्रयास है, पर इसकी संभावनाएं पूरी तरह से निखरकर आती हैं 'धांसू' में. यह कहानी भारतीय जीवन के हर क्षेत्र में उपस्थित उन विचौलियों को लेकर लिखी गयी है, जो सत्ता और सामाजिक अन्याय, अनाचार और उत्पीड़न के बीच व्यवस्थात्मक स्थायित्व का पोषण करते हैं. भाषा और शिल्प की दृष्टि से अनोखा प्रभाव उत्पन्न करने वाली कहानी अपने-आप में एक मुकाम है हिंदी सैटायर में. उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं कुछ अंश. 'धांसू' का प्रारंभिक परिचय—

'बचपन में वह दौड़ता ही रहता होगा. बैठता भी होगा तो उचक-उचक पड़ता होगा, सीलिंग की तरफ, जैसे कुछ नोचकर ले आना चाहता हो!'

'और यह तो वह साफ मानता है कि वह ऊपर-नीचे जाने वाले झूलों में कभी नहीं बैठा, क्योंकि उसे नीचे जाना पसंद नहीं आता था. हाकी फुटबाल भी नहीं खेला क्योंकि उसमें आगे बढ़कर फिर पीछे आना था! . . . . .अब तीसरी उम्र के उतार पर भी वह तितली-सा फड़फड़ाता ही रहता है जैसे उसके अंदर कोई राक्षस बैठा है जिसे हर वक्त कुछ न कुछ चाहिए. . . .कोई काम, कोई ऐसा काम जिससे लगे कि वह लगातार ऊपर जा रहा है, तरक्की कर रहा है!'

विषय के अनुसार सशक्त शैली औ शिल्प के अलावा 'धांसू' हमारी राजनी में हुए तथाकथित क्रांतिकारी परिवर्तन भी पर्दाफाश करती है. आपात्काल तुरंत बाद प्रकाशित यह कहानी उस सम का मोहभंजक चित्र उपस्थित करती है

'चुनाव के अंधड़ के फौरन बाद चंदबरदाई के पद के लिए मारामारी चा हुई. . . . .बंदे वही थे जो कल तक उ का गुणगान करते थे. . .एकाएक दूसरी तरफ मुंह बाये भागे जा थे. . . . .जैसे कि वे कब के थे और तत्काल ही कोई मंत्री उनके में न गया तो वे पगला जायेंगे. . . तेजी से एक घेरा नये मंत्रियों के चारों तरफ लपेट कस रहा था जिससे कि वह तबक भूल जायें जहां से वे आये थे, फूलमाला से सिर ही नहीं उठा सकें, कभी उठायें तो सिर्फ उन्हें ही देखें जिनसे वे घिरे थे. . जनता से संपर्क बनाये रखने के नाम प उन्हीं के आयोजनों में जा-जाकर संतुष्ट र उन्हीं के घर भरने में व्यस्त रहें जो उनक तारीफें गाते थे. . . . जनता की सेवा लिए हमेशा की तरह भाषण पर्याप्त थे!'

और मौके की तत्काल पकड़ धां को है—

'उसने आंखें मलकर सामने देखा- कुछ नहीं हुआ था. . . . .तेज दौड़ में आ निकला हुआ खरगोश सिर्फ आराम कर लगा था!'

अपने इस दर्दनाक यथार्थ से गोविंद मि ने 'धांसू' में हंसते-हंसते साक्षात्कार किय और करवाया है. पर इसके पीछे है जबर दस्त आक्रोश, विवश यंत्रणा की अनुभू जो उनके 'लेखकीय सोच' में दूसरे ही स्व में मुखर हो उठती है : 'मेरा असली ताल्लु तो उस राजनीति से है जो आदमी क मारती है. . .और वहां हर दल की मा एक-सी है!'

यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि जह यंत्रणा को व्यक्ति विशेष के बजाय इ तरह टाइप से जोड़कर उठाया जाता है वहां क्या वह उतनी ही मार्मिक रह पात

....कभी-कभी दोनों चीजों को एक य भी रखा जा सकता है. . . .और वह मानवीय स्तर पर. . . . .जैसे कि ‘सिल-ला’ कहानी में गोविंद मिश्र ने करने की शिश भी की है.

पर इस विवश यंत्रणा का दहला देने ला चित्रण हुआ है ‘जनतंत्र’ में. यह विंद मिश्र के किसी दौर-विशेष की ानी नहीं है. यह एक ऐसी कहानी है स तक चरम प्रेरणा के किसी क्षण में कोई क कभी-कभी ही उठ पाता है. पर णा उसकी वही है—संश्लिष्ट यथार्थ संपूर्ण उलझावों को पकड़ने की. यह एक ी प्रेरणा है जिसे काफ्का और सोल्जेत्सिन की अलग लगती दुनियाओं की एक मान्य मानवीय यंत्रणानियति कहते लगता है.

परिणामतः यहां एक विशिष्ट ाजिक-ऐतिहासिक संदर्भ में व्यक्त आम मी के दर्द को साहित्य की शाश्वतता हो गयी है. ‘जनतंत्र’ उस ‘अद्वैत’ की नी है जो व्यक्ति के अंतस और व्यवस्था त से उत्पन्न होता है, जिसे कहानी और वे’ में साफ-साफ पहचाना सकता है. यह अद्वैत ही वह है जो देश काल के परिवेश में यंत्रणा भोगता है. . . इस कहानी में यह यंत्रणा ह्यूमर में व्यक्त र और भी गहन हो जाती है—

वे कहते हैं कि तुम्हारा दिमाग खराब कोठियों से नीचे बात ही नहीं करते. ते-सोचते ही खराब हुआ है. मैं कहता नुष्य चितनशील प्राणी है—दर्जा पांच किताब में लिखा है. वे ही मेरे बारे में ा क्यों सोचते हैं? डाक्टर साहब कहते म्हें सोचना नहीं चाहिए. अब गालियां , हर वक्त बात भी वे करें, मेरी कोई नहीं और मैं सोचूं भी नहीं. भई चलता-ता हूं तो कुछ तो करूंगा सही!’ □

र्चित पुस्तक

गोविंद मिश्र
कमल प्रकाशन, दरियागंज,
दिल्ली-2,
: 10 रुपये.

हवेलियां वाले : गांव वाले...देश वाले

▣ डा. पुष्पपाल सिंह

‘हवेलियों वाले’ प्रेमचंद के ‘गोदान’ की परंपरा का सशक्त उपन्यास है, जो अपने कथ्य और बयानी में ‘गोदान’ की परंपरा को आगे बढ़ाता है. यह उपन्यास अपने पात्रों और परिवेश (थोहा माहर्म खां, पाकिस्तान) की जो गहरी पहचान देता है, वह इधर के ग्रामीण कथा-लेखन में दूभर रहा है.

आगे बढ़ता गोदान

इस उपन्यास का ‘गोदान’ से एक और आकस्मिक संयोग देखने को मिलता है. ‘हवेलियों वाले’ का ‘सोहणलाल’ होरी के गोबर का वंशज-सा लगता है. वह भी रोजी-रोटी की तलाश में शहर जाता है और जब वहां से लौटता है तो ग्रामीण जीवन-परिवेश की गलाज़तों के प्रति विद्रोह करता है. किंतु दोनों की नियति यही है कि वे उस व्यवस्था को बदलने में असमर्थ, बेबस रहे हैं. दोनों उपन्यासों की ये समताएं इस बात का प्रमाण है कि प्रेमचंद के ‘सेमरी’ और ‘बेलारी’ तथा द्रोणवीर कोहली के ‘थोहा माहर्म खां’ गांव हिंदुस्तान के उस स्वातंत्रयोत्तर पूर्व ग्राम के चित्र हैं जो देश के कोने कोने में एक जैसी परंपराओं और रूढ़ियों की गुंजलक के शिकार हैं. ताराशंकर वंद्योपाध्याय के ‘गणदेवता’ का गांव भी इन्हीं से मिलता-जुलता है.

आंचलिक उपन्यास?

‘हवेलियों वाले’ के फ्लैप की प्रकाशकीय विज्ञप्ति और कुछ अन्य विज्ञप्तियों में भी इस उपन्यास को ‘आंचलिक उपन्यास’ कहकर परिचित कराया गया है. किंतु एक उपेक्षित अंचल की कथाभूमि को अपनाकर ही उपन्यास आंचलिक नहीं बन जाता. इस उपन्यास का थोहा माहर्म खां किसी गांव विशेष का ही चित्र नहीं रह जाता है. इस गांव के माध्यम से तत्कालीन भारत की ग्राम-दशा का जीवंत आलेखन हुआ है.

थोहा माहर्म खां की रामरक्खी के पुत्र की ‘निविध्रि’ के बहाने किसी भी ग्राम का परिवेश साक्षात हो जाता है. उनकी ‘मेहझक्कड़’ ‘दबाना’, मेंहदी लगाने, लड़के के रूठने, लुड्डी खेलने, जलपीर लाने, भाभी सतभिराई की ‘चूक’ बांधने, आदि की रस्में, रिश्तों (ब्याह कराने) की गोटी भिड़ाने की वही तुरुप-चालें, ‘ट्रिस’ और ‘मिस’ और ‘सावणी’ और ‘हाड़ी’ की फसलें, वधू के घर भेजी जाने वाली ‘कुड़त्तन’ और शृंगारदानी आदि जिस ग्रामीण परिवेश को साक्षात करते हैं, वह भारत का कोई भी ग्राम हो सकता है और अपने इन्हीं संदर्भों में यह उपन्यास आंचलिकता की सीमा को लांघकर वृहत्तर भारतीय ग्रामीण परिवेश का चित्रण करता है. रामरक्खी के बेटे के विवाह पर संबंधियों द्वारा दिखाये गये नखरे, जाति-बिरादरी के बड़े-बूढ़ों की चौधर (चौधरीपना) सास-बहू के रिश्ते की खड़खड़ाहट, ब्याह की भाजी के रूप में थाली (परोसे) भेजना, किसी का थाली स्वीकारना और किसी का अस्वीकार करना, गणपत के भाइयों में फूट, गणपत का बिरादरी के लोगों से उलझना, शिक्षा और नयी शिक्षा को समस्त मूल्य-परिवर्तन की जिम्मेवार ठहराना (गोपाल का अपनी पत्नी के यहां विवाह से पहले जाने का कारण उसका दसवीं पास होना बतलाया जाना) आदि सब जस का तस आज भी गांव में है. इसलिए इसकी कथा अपने समय-संदर्भ से निकलकर वर्तमान संदर्भों में सहज रूप में ही आ बैठती है. उपन्यास के आकर्षण का मूल यही है.

रोमानी स्पर्श का अंदाज!

उपन्यास में सोहणलाल का चरित्र गांव के उस नवयुवक की तस्वीर है, जो शहर में नौकरी करते हुए शहर और शहरी दुनिया का ज्ञान भी अपने साथ गांव में स्थांतरित कर रहा है. किंतु यह चरित्र कुछ विसंगतिपूर्ण बन गया है. गांव की विपरीत परिस्थितियों से जूझता यह कथानायक उपन्यास के अंत तक आते-आते अपनी जुझारू मुद्रा खो देता है. वह गोबर की दिखाई हुई राह पर आगे नहीं बढ़ता अपितु होरी के आदर्शों पर लौट आता है.

उपन्यास के एक ओर अभाव की ओर

संकेत करना अभीष्ट है. 'नाड़े का सुच्चा' प्रसंग में तोरा डाकू का प्रसंग अवांछित रूप से लंबा हो जाता है. उससे कथा संघटना अथवा अन्य कोई प्रयोजन भी सिद्ध नहीं हो पाता है.

यह प्रसंग दीर्घ होकर उपन्यास के कथा-शिल्प को क्षत करता है. इसी प्रकार 'ईसा के पैरों की खाक' शीर्षक कथा-नायक के चरित्र को एक रोमानी स्पर्श प्रदान करता है. यह शीर्षक कुछ ऐसा होना चाहिए था, जो सोहणलाल के चरित्र की लौकिकता और मानवधर्मी गुणों को ही व्यंजित करता.

ग्राम्य संस्कार की भाषा

किंतु उपन्यास के इन अभावों को गौण कर जाती है लेखक की अपने पात्रों और परिवेश को उनकी असलियत में प्रस्तुत करने की अद्भुत क्षमता. अपने इन पात्रों की प्रस्तुति जिस रूप में उपन्यासकार ने की है, वे पेशावर के नजदीक की पंजाबी बोलकर भी हमारे लिए एकदम परिचित हो जाते हैं. पंजाबी के संवादों का प्रयोग बहुतायत में होकर भी अपरिचय का अंतराल नहीं छोड़ता.

इधर कई रचनाओं के लंबे आंचलिक संवादों ने यह सवाल पैदा किया था कि उनका इतना अधिक प्रयोग हिंदी की प्रवृत्ति में कहां तक खप सका है, किंतु 'हवेलियों वाले' में ये संवाद पात्रों के मिजाज के अनुरूप कुछ इस रूप में नियोजित हैं कि 'बाहरी' नहीं लगते. पात्रों की बोलचाल ही नहीं, प्रसंगों के बीच लेखकीय टिप्पणियों में भी उपन्यासकार ने जिस भाषा-शैली आदि का इस्तेमाल किया है, वह भी गांव के संस्कार में इस प्रकार रच-बसकर किया है कि उस परिवेश की प्रामाणिक और पात्रों की मनोवैज्ञानिक प्रस्तुति हो सकी है. □

चर्चित पुस्तक

हवेलियों वाले

▣ द्रोणवीर कोहली

राजपाल एंड संस कश्मीरी गेट,
दिल्ली-6.

मूल्य : 15 रुपये

हलचल

ग्वालियर में 'कंजूस' और 'त्रिशंकु' मंचित

नगर की जानी मानी रंगकर्मी संस्था कला मंदिर ग्वालियर ने हाल ही में अपने रंग शिविर में तैयार किये गये 'कंजूस' और 'त्रिशंकु' का मंचन किया. देश के सुविख्यात नाट्य निर्देशक श्री बृजमोहन शाह के निर्देशन में इन नाटकों को प्रस्तुत किया गया.

'कंजूस' को वर्तमान रूप में पहली बार मंचित किया गया था. दर्शकों की बड़ी आस्था एवं आकांक्षाओं के साथ इसके दोनों शो 'हाउसफुल' थे. यह प्रसन्नता की बात है कि नाटक ने उन्हें पूर्ण संतुष्टि प्रदान की.

'कंजूस' मौलियर की श्रेष्ठ कामेडी 'माइजर' का अनुवाद है. निर्देशक व प्रस्तुतकर्त्ताओं के अनुसार इस नाटक का कंजूस शखावत बेग एक ऐसा पात्र है, जो न तो स्वयं कुछ खर्च करता है और न ही दूसरों को करने देना चाहता है. वह एक ऐसे बहुत बड़े वर्ग का प्रतिनिधि है, जो सारी संपत्ति पर अधिकार जमाये बैठा है, मात्र इसलिए कि दूसरों की मजबूरी पर कहकहा लगाया जा सके. नवकजार बागची ने इस भूमिका को बहुज सशक्त ढंग से निभाकर वांछित प्रभाव की सृष्टि की. उनका चलने व बोलने का ढंग उन जैसे मंजे हुए कलाकार के अनुरूप था. पैसा गायब हो जाने पर जो कोहराम और वेदनापूर्ण चीख पुकार वे मचाते हैं, उससे इस पात्र के चरित्र में अंतर्निहित विडंबना मुखर हो उठती है. नासिर (पूरनचंद शंखवाय), अल्फ़ (देवेंद्र जैन), दलाल (वीरेंद्र शर्मा) एवं नब्बू (आनंद विरमानी) ने अपनी भूमिकाओं के साथ न्याय किया है.

यूं तो पूरे देश में प्रेमचंद जन्मशताब्दी मनायी गयी, पर उत्तर प्रदेश सरकार के सूचना विभाग ने इस महान कथाकार के जीवन के 134 छायाचित्रों की प्रदर्शनी सूचना केंद्र में लगाकर एक बहुत ही महत्वपूर्ण और विरला काम किया. इससे प्रेमचंद को समग्रता से समझने में मदद मिली. प्रदर्शनी में समकालीन दैनिक पत्रों 'प्रताप,' 'भविष्य' तथा साप्ताहिक 'जागरण' की झलक भी दिखायी गयी. दैनिक 'आज' के 8 अक्तूबर, सन् 36 के अंक में प्रकाशित प्रेमचंद की मृत्यु का छायाचित्र बड़ा मार्मिक था. 'ईदगाह' कहानी का 36 चित्रों में सफल छायांकन भी प्रदर्शनी की एक उपलब्धि थी.

● **प्रस्तुतिः किरण श्रीवास्तव**

छायाचित्रों में प्रेमचंद

त्रिशंकु की अभिनेयता असंदिग्ध है, यद्यपि ता उसमें है. इस नाटक के माध्यम से ी, जो स्वयं नाटककार और निर्देशक के साथ साथ नाट्यविधा के जिज्ञासु ता हैं, नाटक से यह दिखाना चाहते हैं र व्यक्ति में अहमन्यता का एक भाव र व्यक्ति के दो चेहरे हैं, जिसमें से के नीचे का चेहरा वास्तविक होने थ ही वीभत्स एवं तिरस्करणीय है.

स व्यंगात्मक निरूपण का केंद्रबिंदु है पोस्टग्रेजुएट युवक (विजय मोडक), श्वविद्यालय और रोजगार कार्यालय च एक प्रश्नचिह्न बना घूमता रहता र पात्र उसे भाषण पिलाता है, उसका करता है और युवक बेचारा उनकी भी नहीं कर सकता. इस समस्त ति को निस्पृह भाव से देखता है ीवी (वीरेंद्र शर्मा). इस प्रकार त्रिशंकु कथानक आज के जीवन का व्यंग्य त्र है, एक सार्थक अनुकृति है.

ॉ. रघुवीरसिंह चौहान

वाक्यम्ः कलियुग द्वापर

लिदास अकादमी, उज्जैन (संचालक आद्यरंगाचार्य) द्वारा महाकवि भास संस्कृत नाटक 'दूतवाक्यम्' का मंचन कवलम् नारायण पाणिक्कर ने इसे कुड़ियाट्टम् की चाक्यार शैली में प्रस्तुत कर अपनी विशिष्ट निर्देशन पद्धति में एक नया अध्याय जोड़ा. भारती शिवाजी का नृत्य एवं मुद्रा-निर्देशन मनोहारी रहा.

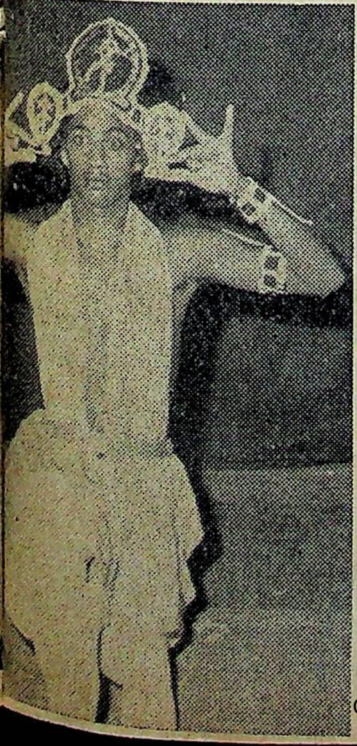

मध्यप्रदेश के विभिन्न अंचलों से आये 70 नाट्य-प्रशिक्षणार्थियों के लिए चार सप्ताह का प्राच्य नाट्य प्रशिक्षण शिविर आयोजित किया गया था. इस शिविर में उन्हें उच्चारण, लय-बोध, नृत्य-गति एवं नाटक के तत्वों का प्रशिक्षण दिया गया. यह प्रस्तुति भी इसी की देन थी.

युद्ध और शांति मानव जीवन के लिए शाश्वत-चिंतन के विषय हैं. 'दूतवाक्यम्' का कथानक भी इससे संबंधित है. कृष्ण, कौरव और पांडवों के पारिवारिक कलह को सुलझाने के लिए दूत की भूमिका अदा करते हैं. जब विवाद उग्र रूप धारण कर लेता है तो दुर्योधन श्रीकृष्ण को बंदी बनाने का प्रयत्न करता है. इस पर श्री कृष्ण अदृश्य हो जाते हैं. वे भी दुर्योधन पर बल-प्रयोग का विचार करते हैं, किंतु सुदर्शन उन्हें ऐसा करने से रोकता है. तत्पश्चात धृतराष्ट्र अपने पुत्र की उद्दंडता के लिए क्षमा मांगते हैं.

सूत्रधार की भूमिका में जयंत बड़े का नृत्य प्रभावशाली रहा. कांचुकीय के रूप में वीरेंद्र सिंह ने आम आदमी की इच्छा व विवशता को रेखांकित किया. धीरेंद्र कुमार ने दुर्योधन के रोल में अपनी अभिनय दक्षता का परिचय दिया, किंतु देवकांत शुक्ल श्रीकृष्ण के गौरवशाली व्यक्तित्व को आत्मसात न कर सके. सुदर्शन के रूप में प्रवीण चिटणिस प्रस्तुति की निर्विवाद उपलब्धि रहे. धृतराष्ट्र एवं युधिष्ठिर की छोटी भूमिकाओं में क्रमशः आलोक अग्रवाल एवं रखबचंद जैन ने अपनी पहचान बनायी. द्रोपदी की निरुपायता एवं दुःशासन की धूर्तता प्रस्तुति के लिए वंदना शुक्ल एवं अश्विनी शास्त्री लंबे समय तक याद किये जायेंगे. शांग की भूमिका में पद्मजा दांडेकर ने शास्त्रीय एवं लोकनृत्य से मुग्ध किया.

25 पात्रों के इस नाटक ने अपने सहज संगीत, नृत्य-भाव एवं मुद्रा-प्रभाव से अभिजात एवं आम दोनों वर्गों के प्रेक्षकों से निरंतर तादात्मय बनाये रखा.

● **इसरार मोहम्मद खान.**

उन ने कहा था

अपने समवयसियों में शायद मैं ही ऐसा हूं, जो आज भी नये रचनाकारों की अप्रकाशित रचनाएं सबसे अधिक पढ़ता हूं. यह मेरी चर्या रही है, रुचि भी और सुख भी.

▣ अज्ञेय (आजकल)

'दिव्या' ही में नहीं, 'मनुष्य के रूप', 'पार्टी कामरेड' और 'झूठ-सच' इत्यादि सभी उपन्यासों में (यशपाल) पहले अपने नायक को आदर्श सौंपता है और फिर उनसे इन आदर्शों के प्रति गद्दारी कराता है. . .यह कहां का मार्क्सवाद है? कहां की क्रांतिकारिता है? यह निरा व्यवहारवाद है, आत्मसमर्पण है.

▣ हंसराज रहबर (संचेतना)

प्रेमचंद तो हम सब कथाकारों के बाप थे.

▣ राजेंद्रसिंह बेदी

अगर मुझे 'काम न करने' या 'शादी न करने' में से एक का चुनाव करना हो तो मैं बेहिचक 'शादी न करने' को चुनूंगी.

▣ मल्लिका साराभाई (सोसायटी)

एक औरत के लिए यही काफी नहीं कि वह शृंगार तथा नये से नया फैशन कर ले, डिस्को पार्टियों में हिस्सा ले ले और जहां चाहे, जो भी उसे आकर्षित करे, उससे यौन संपर्क हासिल कर ले, नशीली दवाएं ले, जाहिलों की तरह बेशर्म होकर जन स्थानों पर आ जाये. यह मुक्ति नहीं, यह तो पुरुष प्रधान बुर्जुवा समाज में एक अन्य ढंग से कैद हो जाने जैसा है. नारी मुक्ति दरअसल आर्थिक स्वतंत्रता में ही निहित है.

▣ इस्मत चुगताई (ईव्स वीकली)

इसमें कोई शक नहीं कि सूअर एक गंदा जानवर है, मल खाता है. कुत्ते ही कौन मोहन भोग खाते हैं?

▣ किट्टू (रविवार)

कहे हिंदू मोहि राम प्यारा
तुरक कहे रहिमाना
आपस में दोउ लरि-लरि मुए
मरम न काहू जाना !

अगला अंक

कबीर की बाणी की यह पीड़ा इधर हिंदुस्तान की ही नहीं, उधर ईसाइयों और यहूदियों की भी रही है, जो आज पूरी दुनिया में कहीं जात-पात तो कहीं काले-गोरे तो कहीं अमीर-गरीब के रूप में पनप रही है. इस मानसिकता का विरोध करते हुए, आइए, उस दिन को याद करें जब इसी भेद-भाव को खत्म करते-करते यीशु मसीह सलीब पर लटक गये! . . . . .और पढ़ें ऐसी रचनाएं जो बतलाये कि आखिर हमारा वजूद इनसे बचना चाहकर भी क्यों नहीं बच पा रहा. इस विभिन्न स्तरों पर चल रहे संघर्ष को रेखांकित कर रही हैं—

दामोदर खडसे, सुरेश उनियाल, अरुणा सीतेश, राजेंद्र मेहता, परमानंद श्रीवास्तव की रचनाएं.

क्रिसमस के अवसर पर त्योहार और जीवन के संदर्भ में तीन विशिष्ट कहानियां—

- कहते हैं, सच्चे मन से पश्चाताप करें तो ईश्वर क्षमादान कर देता है. इस तरह एक व्यक्ति तो मुक्त हो जाता है, लेकिन वह 'पाप' ही खत्म क्यों नहीं होता? और तिस पर उस पाप के परिणाम जो चुकाये नहीं चुकते?— **पाल जकारिया** की पाप और परिणाम की मीमांसा प्रस्तुत करती कहानी
—**जोजफ गुड की पाप स्वीकृति**
- ईसा सींखचों में कैद कर दिये गये तो कुछ लोगों ने उन्हें वहां से बचा लाने की तरकीबें सोचीं. पर वे उन्हें क्यों नहीं बचा पाये? इंसान और आदमी का फर्क जतलाती. . .**कारेल चापेक** की कहानी—**जलारस**
- क्रिसमस की रात थी. महायुद्ध जारी था. उस रात दो विरोधी धड़ों के सैनिकों ने आकर एक ही घर में शरण ली! दोस्ती और दुश्मनी का मानवीय फलसफा—**फिरटर विकसीन** की कहानी—**सफेद रात**

▣ खुदा सही सलामत है:

रवींद्र कालिया

अजीबो-गरीब चरित्रों से कथात्मक परिचय के क्रम में इस बार मिलिए—पंडिताइन से. घरेलू नौकर के रूप में जिंदगी गुजारने की अभिलाषा लिये एक औरत का दर्द और द्वंद्व, जहां मालिक उसे शरीर के रूप में हासिल करना चाहता है और मालकिन उसे चोर और बेईमान समझती है!

▣ पेरिस जल नहीं रहा है!

'क्या पेरिस जल रहा है?' यह एक लोकप्रिय किताब का नाम है, जो पेरिस के संदर्भ में दूसरे महायुद्ध की पृष्ठभूमि में लिखी गयी थी. परंतु हाल ही में पेरिस होकर आये युवा पत्रकार **विनोद भारद्वाज** का कहना है कि पेरिस जल नहीं रहा है!—उस सवाल और इस जवाब के संदर्भ में देश-विदेश की सामयिक स्थितियों को रेखांकित करते हुए पेरिस के जीवन की अंतरंग झलक.

▣ कितना था बदनसीब जफर!

सन् 1803! हिंदुस्तान को तश्तरी
परोसकर अंग्रेजों के सुपुर्द कर देने वा
मुगलिया सल्तनत के अंतिम और शाय
बादशाह की बदनसीबी के हादसों क
अनजानी इतिहास कथा—**बाला दुबे** क
कलम से

प्रसंगवश

• निराशा से उबरने की कहानी! . . . .
सूरत कहानियां! . . . .एक और बदसू
अनुभव की रचना! . . . .लोग कैसे मरते हैं
—लेखकों और किताबों के संसार
घुमड़ते सवालों पर **महेंद्र कुलश्रेष्ठ** द्वार
बेबाक और रोचक टिप्पणियां

▣ तस्वीर बोलती है

इंसानियत के वास्ते इंसान के बलिदान
गाथा कहता यीशु मसीह का सलीब चढ़
भव्य एवं अनूठा चित्र.

▣

पाठकों का पन्ना, ज़रिया-नज़रिया, आप
बीती, गपशप, कार्टून, पखवारे की पुस्तक
हलचल, पत्र-पत्रिकाएं आदि सभी स्थायी
स्तंभों सहित—

सारिका

१६ दिसंबर, १९८०

80584

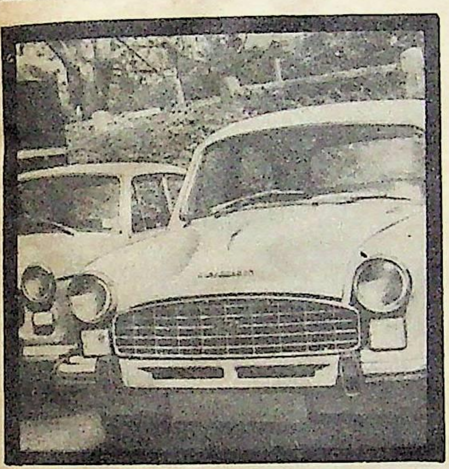

आप और
कौन-कौन से
खर्चों के लिए
योजना
बना रहे हैं?

केनरा बैंक आपकी योजनाएँ सफल बनाता है.

भविष्य के लिए योजनाएँ बनाकर और बचत कर आप जो चाहें खरीद सकते हैं. केनरा बैंक की **कामधेनु जमा योजना** की मदद से आप भविष्य के खर्चों की योजना बना सकते हैं.

आप कार, स्कूटर या अपना घर लेना चाहते हैं ?
बच्चों की शिक्षा या उनके विवाह के लिए चिन्तित हैं ?
तो कामधेनु योजना आपके काम आयेगी... आपका धन बढ़ाकर ज्यादा रकम दिलायेगी.

इसमें आपको अपनी ज़रूरत की रकम का छोटा-सा हिस्सा ही जमा करना होगा. बस **कामधेनु** में जमा की जानेवाली रकम और अवधि का फैसला आपको करना है. आपको ब्याज पर ब्याज मिलेगा... हर महीने अच्छी कमाई होगी और रकम दूनी से भी ज्यादा हो जायेगी.

अधिक जानकारी के लिए केनरा बैंक की नज़दीकी शाखा में आइए. हमारी अन्य विशेष जमा योजनाएँ हैं :
विद्यानिधि, निरंतर और **बालक्षेम**

**कामधेनु
जमा योजना**

**केनरा
बैंक**
(एक राष्ट्रीयकृत बैंक)
देश भर में १२०० से
भी अधिक शाखाएँ

GROWING TO SERVE SERVING TO GROW
CANARA BANK

maa CB 5 Hin B 80

कोलमैन ऍंड कंपनी लिमिटेड, स्वत्वाधिकारी के लिए रमेशचन्द्र द्वारा नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, 10 दरियागंज, नयी दिल्ली-110002 से मुद्रित व प्रकाशित. जनरल मैनेजर :
ाम तरनेजा. पंजीकृत कार्यालय : डा. दादाभाई नौरोजी रोड, बंबई-400001. शाखाएँ : 7, बहादुरशाह जफर मार्ग, नयी दिल्ली-110002; 139, आश्रम रोड,
ाबाद-380009; 105/7ए, एस. एन. बनर्जी रोड, कलकत्ता-700014. कार्यालय : 13/1, गवर्नमेंट-प्लेस ईस्ट, कलकत्ता-700069; 63, मोंटियथ रोड, इग्मोर,
-600008; 407-1, तीरथ भवन, क्वार्टर गेट, पुणे-411002; 26, स्टेशन एप्रोच, सडबरी, वेंबले, मिडिलसेक्स, लंदन, यू. के., लंदन टेलीफोन : 01-90[illegible]696.

पंजीयत सं. D-(C)-779
पूर्व शुल्क के बिना डाक में डालने
की अनुमति-लाइसेंस सं. U-89

MADRAS
Regn. No. G6/TN/MS(C)/499

पेण्टिंग की समस्याओं से निपटना है जितनी बड़ी बात, इन समस्याओं से बचना भी उतनी ही बड़ी बात.

आइए, नेरोलॅक पेण्ट्स की मदद से इसे आसान बनाएं.

अच्छा पेण्ट खरीदने पर खर्च होता है आपकी मेहनत का कमाया हुआ रुपया! स्वाभाविक है, आप उसकी ज्यादा से ज्यादा कीमत पाना चाहते हैं. ये रहे आपकी पेण्टिंग संबंधी समस्याओं से निपटने के लिए कुछ उपयोगी सुझाव.

1. आप किसी भी सतह पर पेण्ट करना चाहें, हमेशा उपयुक्त पेण्ट पद्धति अपनाइए. क्योंकि प्राइमर, पट्टी और फिनिशिंग कोट के सहीपन से ही यह निश्चय होगा कि पेण्ट कैसे चला. **नेरोलॅक पेण्ट्स** सभी तरह की सतहों के लिए अलग-अलग पद्धतियां पेश करते हैं.

2. पेण्ट कैसे चलता है, इस बात पर भी निर्भर है कि सतह किस तरह तैयार की गई है. आदर्श सतह सूखी और खुरच कर साफ की हुई होनी चाहिए, जिससे यह एकसार हो जाए और चिकनाई मोम, ज़ंग और दूसरे हानिकारक तत्वों से रहित हो जाए.

3. पेण्ट लगाने की हरेक अवस्था में यह निश्चय कर लीजिए कि सतह पूरी तरह सूखी है. अगला हाथ तभी लगाइए.

4. पेण्ट अच्छी तरह हिला लेना चाहिए और ठीक तरह पतला कर के छान लेना चाहिए. इससे 'पिग्मेंट' अच्छी तरह फैलते हैं.

हरेक आरंम्भिक सावधानी बरतने पर भी, पेण्टिंग की प्रक्रिया में कई दोष सामने आ सकते हैं जैसे उभार आना, पपड़िया निकलना, फटना या दरारें पड़ना और शोरा या खार लगना आदि. कारण हो सकता है बहुत सी बातों का संचित प्रभाव जैसे कि मौसम, प्लास्टर की बुरी हालत और वातावरण का दूषण. इसलिए पेण्टिंग के समय पूरा ध्यान रखना चाहिए अगर आप पेण्टिंग संबंधी आम समस्याओं का समाधान चाहें तो हमारी **नेरोलॅक पेण्ट्स** पुस्तिका **'सही पेण्ट कैसे चुनें और करें'** की मुफ्त प्रति के लिए लिखिए. नीचे दिए कूपन को भरकर फौरन डाक से भेज दीजिए.

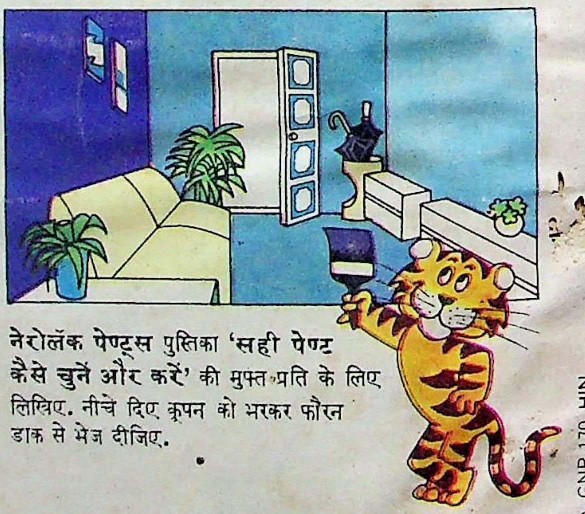

ULKA-GNP-170 HIN

NEROLAC
SOLDIER
NEROLAC
ACRYLIC EMULSION

नेरोलॅक पेण्ट्स

नेरोलॅक लगाइए! रंग में आइए!!

कृपया मुझे नेरोलॅक पेण्ट्स पुस्तिका की एक हिंदी प्रति भेज दीजिए.

नाम :...
पता :...
..................................पिन कोड :...............

गुडलॅस नेरोलॅक पेण्ट्स लिमिटेड
बिक्री विभाग, पी. ओ. बॉक्स नं. 16322
बम्बई-400 013.

170 (P)

[illegible]
[illegible]

Compiled
1939-2000

SARIKA

Vol. 20
1980

G. K. V.
Lib.
HARDWAR